श्री मुकुन्दी लाल द्विवेदी,
आयुर्वेदिक एवं यूनानी सेवा निदेशक,
उत्तर प्रदेश।

पत्र सं० 873 ह/स- दिनांक लखनऊ 30/12/75

प्रिय महोदय,

आप का पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'धन्वन्तरि' अपना स्वर्ण जयन्ती वर्ष "स्वास्थ्य रक्षा विशेषांक" के रूप में प्रकाशित कर रहा है।

'धन्वन्तरि' ने पिछले 50 वर्षों में आयुर्वेद जगत की बहुमूल्य सेवा की है और आयुर्वेद चिकित्सकों में धन्वन्तरि अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। मुझे आशा है कि धन्वन्तरि भविष्य में भी इसी प्रकार आयुर्वेद जगत की सेवा में संलग्न रहेगा। धन्वन्तरि के स्वर्ण जयन्ती के इस अवसर पर मैं अपनी शुभकामनायें प्रेषित करता हूं।
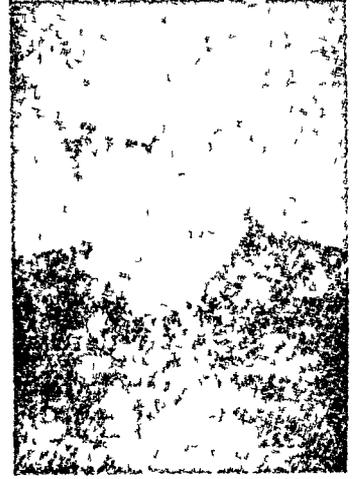
श्री दाऊ दयाल गर्ग,
सम्पादक,
श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन,
मामू भांजा रोड, अलीगढ़।

ह० (मुकुन्दी लाल द्विवेदी)

× × ×

धन्वन्तरि पत्र ने आयुर्वेद जगत् मे एक विशेष स्थान प्राप्त किया हुआ है। १९२४ में जब उत्तर प्रदेश के एक गाव विजयगढ़ से इसका प्रकाशन आरम्भ हुआ तो उस समय एलोपैथी का प्रचार सारे विश्व मे फैल रहा था। ऐसे समय मे आयुर्वेद की पत्रिका का प्रकाशन बड़े साहस का कार्य था। १९२७ से विशेषाक की शृंखला जो आरम्भ की वह वर्तमान मे भी चलती देखकर कई प्रकाशको को अपने मुख मे अगुली दबानी पड रही है, यहाँ तक कि सरकार के स्वास्थ्य और पत्र सूचना कार्यालय के अधिकारियो को भी आश्चर्य मे डाल दिया है।

भारत मे एक भी आयुर्वेदीय पत्र ऐसा नही है जिसका विशेषाक २० हजार तक प्रकाशित होता है। यह सम्पादक और प्रकाशक की कुशाग्र बुद्धि का एक ज्वलन्त प्रमाण है।

स्वास्थ्य रक्षा अक में प्रकाशित मूर्धन्य विद्वानो के लेख भारत ही नहीं विदेशो के लिये भी आदर्श होंगे। यह विशेषांक जनता को स्वास्थ्य रक्षा के लिये मार्ग दर्शन करायेगा।

—वेद प्रकाश गुप्ता
वैद्य कविराज— वैद्य वाचस्पति—लाहौर
आयुर्वेदाचार्य—B I. M. S. दिल्ली, आयुर्वेद बृहस्पति-D Sc. Ay पटना
प्रधान—वैद्य सभा पूर्वी दिल्ली
प्रधान मन्त्री—अखिल भारतीय आयुर्वेद पत्रकार सघ
भूतपूर्व प्राध्यापक—सनातन धर्म आयुर्वेदिक कालेज लाहौर,
आयुर्वेद विद्यापीठ महाविद्यालय, दिल्ली
पता—६-ई कृष्णनगर दिल्ली—११००५१

धन्वन्तरि के स्वर्ण जयन्ती अङ्क के रूप में "स्वास्थ्य रक्षा विशेषाङ्क" की सफलता के लिए मेरी हार्दिक मङ्गल कामनायें प्रेषित हैं।

गत अनेक वर्षों से चुने हुए कतिपय विशिष्ट विषयों पर विशेषाङ्क के रूप में 'धन्वन्तरि' प्रति वर्ष आयुर्वेद जगत को महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करता आ रहा है उससे वैद्यसमाज तो लाभान्वित हुआ ही है आयुर्वेदीय साहित्य की वृद्धि में भी महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त हुआ है।

—आचार्य राजकुमार जैन

एम ए (हिन्दी-संस्कृत) एच. पी. ए, दर्शनायुर्वेदाचार्य,
साहित्यायुर्वेद शास्त्री, साहित्यायुर्वेद रत्न,
टेक्नीकल आफीसर (आयुर्वेद) भारतीय चिकि० केन्द्रीय परिषद,
1E/6, झण्डेवाला प्रसार, नई दिल्ली

× × ×
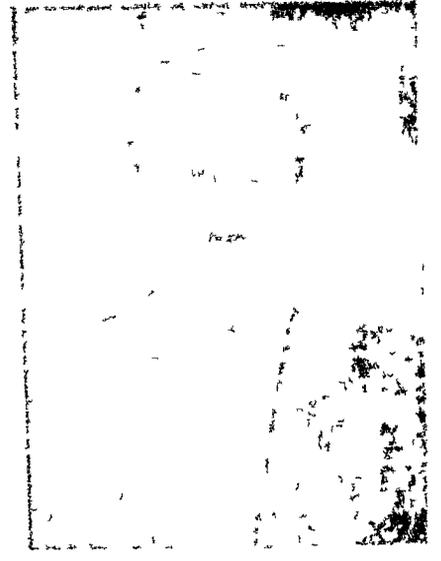
यह जानकर प्रसन्नता हुई कि धन्वन्तरि का आगामी विशेषांक स्वास्थ्य रक्षा विशेषांक निकाल रहे हैं। 'स्वास्थ्य रक्षा' प्रत्येक व्यक्ति समाज व राष्ट्र के लिये अपेक्षित है। इस निमित्त प्रत्येक देश की तरह भारतवर्षीय प्रदेश सरकारें भी करोड़ों रुपया खर्च करके सफल नहीं हो रही हैं। इसका कारण भारतीय स्वास्थ्य-रक्षा प्रणाली का अनुसरण करना है। आयुर्वेदीय स्वास्थ्य प्रणाली के द्वारा अनागत बाधा प्रतिषेधात्मक दिनचर्या, रात्रि चर्या, ऋतु चर्या व सामाजिक राजनैतिक व धार्मिक चर्या का अध्ययन करके पूर्ण स्वास्थ्य रक्षा सम्भव है। आशा है आपके इस विशेषांक में उनका समावेश होगा और इस विशेषांक से जन स्वास्थ्य रक्षा पर प्रभाव पड़ेगा। इस सुन्दर कार्य के लिये हम हार्दिक शुभ कामना करते हैं। अन्य विशेषांकों की तरह यह भी सफल सिद्ध होगा।

—आचार्य विश्वनाथ द्विवेदी आयु० शास्त्राचार्य, B A

भूतपूर्व निदेशक—आयु० अन्वेषण संस्थान जामनगर
भूतपूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष—स्नातकोत्तर प्रशिक्षण संस्थान, जामनगर
भूतपूर्व अध्यक्ष—भारतीय चिकित्सा परिषद्, लखनऊ
भूतपूर्व प्रिंसिपल—आयु० महाविद्यालय, वाराणसी, स. वि वि. वाराणसी,
कुसुम भवन, शिवपुरी कालोनी, नगवा, वाराणसी।

× × ×

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि 'धन्वन्तरि' मासिक पत्र का इस वर्ष "स्वास्थ्य रक्षा विशेषांक" स्वर्ण जयन्ती अङ्क के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। आयुर्वेद भारत की परम्परागत चिकित्सा-प्रणाली है। आपका यह मासिक पत्र पिछले अनेक वर्षों से आयुर्वेद चिकित्सा के सम्बन्ध में जनता की पर्याप्त सेवा करता आ रहा है। मैं आपके इस विशेषांक की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभकामनायें भेजता हूं।
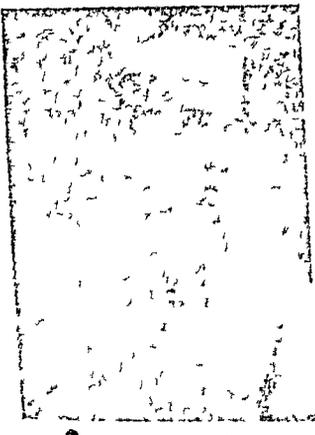
– महर्षि डा हरिकृष्ण छँगाणी
ज्योतिषाचार्य, एम. ए., पी. एच. डी., (ज्योतिष)
छगाणी स्ट्रीट, फलौदी (राजस्थान)

'धन्वन्तरि' मासिक पत्र १९७६ मे 'स्वास्थ्य रक्षा विशेषांक' स्वर्ण जयन्ती अङ्क के रूप में प्रकाशित करने जा रहा है। आज के इस वैज्ञानिक युग में इस तरह के प्रकाशनो की बहुत आवश्यकता है। मुझे आशा है कि इस विशेषाक में शोध पत्रों का संकलन कर प्रकाशित किया जावेगा। श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन का यह प्रयास वास्तव मे सराहनीय है। मैं स्वर्ण जयन्ती अङ्क के प्रकाशन की सफलता चाहता हू।

वैद्य सीताराम मिश्र आयुर्वेदाचार्य
अध्यक्ष, राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन
उपाध्यक्ष, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन
विद्यापीठमन्त्री, निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ (१९५७ ६८)
सदस्य, वैज्ञानिक सलाहाकार वोर्ड आयुर्वेद, भारत सरकार
सदस्य, आयुर्वेद परामर्शदातृ मण्डल, राजस्थान सरकार
आयुर्वेद बृहस्पति, आयुर्वेद शिरोमणि (श्रीलका)
३२४०, मिर्जा इस्माईल रोड, पाच बत्ती, जयपुर।

× × ×

'धन्वन्तरि' के स्वर्ण जयन्ती के शुभअवसर पर 'स्वास्थ्य रक्षा अङ्क' प्रकाशित करने का आपका निश्चय अतीव प्रशसनीय है। देश का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है। इस दिशा मे आयुर्वेद स्वास्थ्य व सद्वृत' के अमर सदेश अच्छी भूमिका निभा सकते है बशर्ते कि जनता पर इनका भलीभाति प्रकाशन व प्रभाव हो।

आशा है आपके विशेषाक के माध्यम से देश की स्वास्थ्य नीति को एक नया मोड मिलेगा।

मैं आपके विशेषाक की सफलता चाहता हूँ।

पुरुषोत्तमदेव मुलतानी
अध्यक्ष, आयुर्वेद अकादमी हैदराबाद
सम्पादक, आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका, नई दिल्ली
भू० पू० उपनिदेशक (आयुर्वेद) आंध्र प्रदेश राज्य

× × ×

आगामी विशेषाङ्क धन्वन्तरि पत्रिकाया स्वास्थ्यरक्षाविषयको भवष्यतीति विदित्वा महान् हर्ष. सजातः। आयुर्वेदस्य पत्रिका 'धन्वन्तरि" सर्वाधिका प्रख्या समाहृता च। अनया आयुर्वेदस्य राद्धान्ता' गृहे-गृहे ग्रामे-ग्रामे गच्छन्ति। आत्मनमेव मन्येत कर्त्तार सुखदु खयोरिति चारकीया सदुक्ति स्वास्थ्यरक्षाया. महत्व प्रदर्शयति। तदैव जीवनविज्ञानस्य महोच्च पदे आसीनोऽयमस्माकमायुर्वेद ः भवतामेतद्विषयकोऽय प्रयास सर्वथा श्लाघनीयोऽनुमोदनीयश्च मयैतस्य साफल्य सम्पूर्णहृदयेन-काम्यते। आशासे, आयुर्वेदात्मक ज्योति शाश्वत न प्रकाशतामिति गुरूणा गुरुवरेण्याना श्रीलक्ष्मीराममहाभागानां हृदयोद्गारा साफल्यमेवमेव प्राप्नुवन्ति।

विद्वज्जनविधेय.
गोपीनाथ पारीक "गोपेश"
पचार (सीकर-राजस्थान)

यह जानकर हर्ष हुआ है कि 'धन्वन्तरि' इस वर्ष अपने ५० वर्ष पूर्ण कर स्वर्ण जयन्ती अङ्क के रूप मे "स्वास्थ्य रक्षा विशेषांक" प्रकाशित करने जा रहा है। मेरा सम्बन्ध 'धन्वन्तरि' से कोई ४० वर्ष से चल रहा है। स्वपरम्परानुसार आयुर्वेद सेवा मे लगातार रत रहकर इस पत्रिका ने जन साधारण तथा चिकित्सक समुदाय की सराहनीय सहायता की है। मुझे आशा है कि इस अङ्क मे प्राचीन एव अर्वाचीन गवेषणा पूर्ण उपलब्धियो का समावेश होगा। मैं इसके सफल प्रकाशन के लिए हार्दिक शुभकामना व्यक्त करता हूं।

— धर्मदत्त चौधरी
सगठन मत्री–अ. भा. आयुर्वेद कांग्रेस
निदेशक–वैद्यक शोध सस्थान आयुर्भवन
११७२, १८–सी, चण्डीगढ।

× × ×
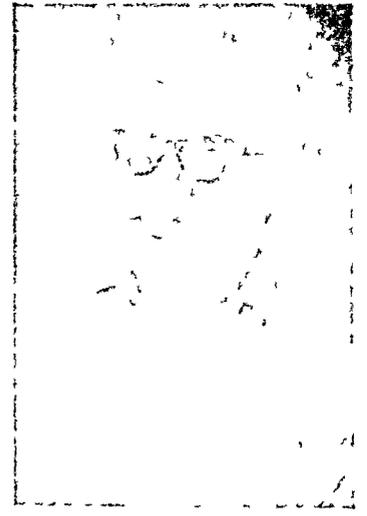
भारत को कर भव्य, रोग विघ्नो को टारै।
"धन्वन्तरि" शुभ पत्र, स्वास्थ्य रक्षा व्रत धारै।
सुन्दर सुन्दर लेख, रम्य ग्राहक उर धारैं।
आयुर्वेद विचार सदा, बुधजन उच्चारें।
"धन्वन्तरि" करता रहै, आयुर्वेद समाज हित।
नव्य वर्ष मे यह बनै, जनसुख दायक ललित नित॥

—आचार्य वेदव्रत शर्मा, कासगज (एटा) उ. प्र.

× × ×

आशा ही नही विश्वास है कि स्वास्थ्य रक्षा का प्राचीन एव अर्वाचीन प्रस्तुतीकरण एक नये चरण की शुरुआत करेगा जिससे आयुर्वेद को विद्वान लोग नये ढङ्ग से समझ सकेगें ओर कटकाकीर्ण मार्ग को प्रशस्त करेगें। स्वास्थ्य रक्षा विशेपाक हेतु मेरी शुभकामनायें स्वीकार करें।

—डा. सिद्धगोपाल शुकुल "पुरोहित"
एम. ए, बी ए. एम एस.,
एक्स आफीसर इन्चार्ज मेडीसनल प्लान्टस, जबलपुर

× × ×

असीम प्रसन्नता हुई कि आगामी (सन् १९७६) वर्ष का स्वर्ण जयन्ती विशेपाक "स्वास्थ्य रक्षा अङ्क" प्रकाशित होकर सामने आरहा है। विशेष उत्सुकता की वात यह है कि इसका सम्पादन आयुर्वेद के मूर्द्धन्य-विद्वान श्री 'समदर्शी' जी के द्वारा होगा, यह आयुर्वेद के विद्वद्जनो के बीच "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" को ध्यान मे रखते हुए स्वास्थ्य रक्षा का प्रमुख ग्रन्थ होगा।

मै उसकी सफलता के लिऐ हृदय से शुभकामना करता हूं।

— पुण्यनाथ मिश्र "आयुर्वेदाचार्य"
अनुसधानक द्रव्य गुण विज्ञान,
चिकित्सक अरियादह रामानन्द चेरिटी औषधालय,
५–एम. एम. फीडर रोड, कलकत्ता–७०००५७
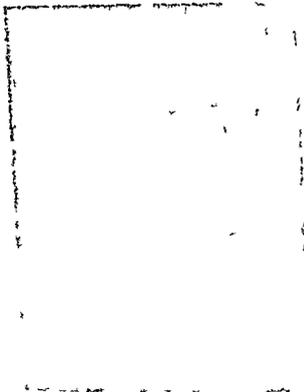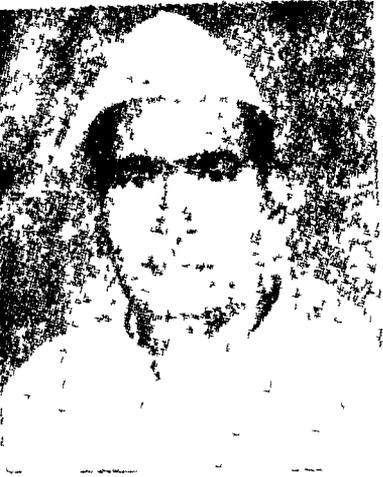
हमारे प्राचीन महर्षियों द्वारा वैज्ञानिक आयुर्वेद आविष्कृत एवं परिस्कृत विज्ञान है जिसका मानव कल्याण मे स्वास्थ्य सरक्षण तो पहला ध्येय है। "स्वास्थ्यस्यस्वास्थ्य रक्षणम्" जिसकी परम्परा गत प्रणाली से सभी जानकारी रखते है। यह भी सत्य है कि विदेशी शासन के साथ साथ ही हमारे ऊपर विदेशी चिकित्सा विज्ञान भी लादा (थोपा) गया जिसका परिणाम प्रत्यक्ष है कि एक रोग की निवृत्ति और अन्य रोगो का प्रादुर्भाव ऐसी। स्थिति मे हमे आवश्यकता है जनसाधारण को आयुर्वेद की स्वास्थ्य सरक्षण सम्वन्धी जानकारी मिले तो इस अङ्क के प्रकाशन से आयुर्वेदीय स्वास्थ्य प्रणाली की जानकारी अवश्य होगी अत विशेपाक परमोपयोगी रहेगा।

मै आपके इस प्रयास की पूर्ण रूप से सफलता की कामना करता हूं।

—आचार्य विरिञ्चिलाल शास्त्री
कार्यवाहक अध्यक्ष राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन
प्रधान चिकित्सक श्री माहेश्वरी आयुर्वेदीय दातव्य औषधालय
पो. इस्लामपुर जि. झुझुनू -(राजस्थान)

× × ×

अत्यन्त हार्दिक प्रसन्नता है कि 'धन्वन्तरि' अपने ५० वे वर्ष मे सगर्व पदार्पण कर रहा है और "धन्वन्तरि" स्वर्ण जयन्ती मना रहा है। इस पावन पर्व पर 'स्वास्थ्य रक्षा' विशेपाक को वैद्य ही नही सर्व-साधारण भी प्राप्त कर असीम आनन्द अनुभव करेगे। विशेषाङ्क ही क्यो ? धन्वन्तरि का तो प्रत्येक अङ्क पठनीय और सग्रहणीय है। पिछले कुछ दिनो से अग्रवाल जी ने "धन्वन्तरि" की कायाकल्प कर दी है।

—आयुर्वेद वृहस्पति, आयुर्वेद वाचस्पति (झाँसी) आयुर्वेद वारिधि वैद्यरत्न
मोहरसिंह आर्य वाचस्पति, मिसरी जि. भिवानी (हरयाणा)

× × ×

आप "धन्वन्तरि" के स्वर्ण जयन्ती अङ्क के रूप मे "स्वास्थ्य रक्षा विशेपाङ्क" श्री वैद्य छगनलाल सम-दर्शी के सम्पादकत्व मे प्रकाशित कर रहे है यह जानकर अतीव प्रसन्नता है। आशा है कि ससार का प्रत्येक मानव इसके द्वारा मार्ग दर्शन प्राप्त कर स्वस्थवृत्त के नियमो का पालन कर अपना हित-कल्याण करेगा और चिरकाल तक स्वस्थ बना रहेगा।

—गजेन्द्रसिंह छौकर ए, एम बी. एस., सादावाद (मथुरा)

× × ×

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि धन्वन्तरि का वर्ष १९७६ मे स्वर्ण जयन्ती अङ्क के रूप मे "स्वास्थ्य रक्षा विशेषाङ्क" प्रकाशित किया जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए उसका स्वास्थ्य एक महत्वपूर्ण विषय है। यह विशेषाक न केवल वैद्य, हकीम या डाक्टरो के लिए ही वरन प्रत्येक पढे-लिखे व्यक्ति को महत्वपूर्ण प्रतीत होगा, इसमे कोई शक नही।

—विद्यारत्न डॉ प्रकाशचन्द्र गाङ्गराड़े,
१०/३३ नार्थ टी. टी. नगर, भोपाल

यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई, कि वर्ष १९७६ में जनवरी मे धन्वन्तरि अपने ५० वें वर्ष में प्रवेश करने जा रहा है, अतएव इस अवसर पर स्वर्ण जयन्ती के रूप में 'स्वास्थ्य रक्षा विशेषाङ्क' अपने सुहृद पाठकों के हाथों भेंट रूप मे देने जा रहे हैं। मैं इसके व्यवस्थापक व सम्पादक के साथ ही श्री समदर्शी जी जो इसके विशेष सम्पादक है उनके श्रम के प्रति अपनी शुभकामनायें प्रेषित करते हुए सफलता की कामना करता हूं

—गोपालजी द्विवेदी वैद्य

अध्यक्ष, चिकित्सक एसोसियेशन जिला परिषद् वाराणसी।
चिकित्सक-जिला परिषद् आयुर्वेदिक औषधालय
ग्राम—नरहनकला पो गंढी (चन्दौली) वाराणसी (उ. प्र)।

× × ×

स्वर्ण जयन्ती अङ्क के रूप में "स्वास्थ्य रक्षा विशेषाङ्क" "धन्वन्तरि की ओर से प्रकाशित किया जा रहा है यह जानकर प्रसन्नता हुई। ५० वर्ष के नियमित प्रकाशन से पत्रिका की लोक प्रियता तथा उपयोगिता स्वय सिद्ध है। स्वास्थ्य रक्षा आयुर्वेद का प्रमुख उद्देश्य रहा है सम्भवत. इसी को दृष्टिगत रखकर धन्वन्तरि ने "स्वास्थ्य रक्षा विशेषाङ्क" का प्रकाशन करने का निश्चय किया है। मुझे विश्वास है यह विशेषाङ्क आयुर्वेद जगत के साथ साथ सामान्य नागरिकों को जो स्वास्थ्य रक्षा मे रुचि रखते है अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। मेरी ओर से "धन्वन्तरि" परिवार को इसके स्वर्ण जयन्ती अङ्क के प्रकाशन पर हार्दिक बधाई है।

—रमेशदत्त शर्मा बी. ए, बी आई एम एस.
पी. जी. एस. (दिल्ली) डी. ए. वाई एम. (प्रसुति, बालरोग)
बी एच यू. (वाराणसी) राजकीय सरकल अस्पताल
कटराई (कुल्लू) हि प्र.

× × ×

'धन्वन्तरि" पत्रिका के माध्यम से आपने ऐसे विशेषाक आयुर्वेदिक जगत को सदा प्रदान किये हैं, जो युग-युग तक स्वास्थ्यिक वसुन्धरे को अलोकित करते रहेगे। "धन्वन्तरि" की इसी पुनीत अतुलनीय परम्परा मे वर्ष १९७६ का "स्वास्थ्य रक्षा विशेषाक' प्रकाशित करके न केवल आयुर्वेदज्ञो अपितु जन साधारण के लिए भी जो स्वास्थ्यिक पथ प्रशस्त किया है .... .एस उपलक्ष मे मेरी शुभ कामनायें स्वीकार करियेगा।

कविरत्न 'अनिल' एम. ए. एस.
साहित्यरत्न, साहित्याचार्य, साहित्य विशेषज्ञ
श्री हनुमतेश्वर महादेव मन्दिर, पुरानी शिवपुरी

* इस वर्ष नवीन ग्राहक अवश्य बनावें *

अभी-अभी पोस्टेज में जो असाधारण वृद्धि हुई है उसके कारण हमको बडी हानि हुई है। एक विशेषांक वी. पी. से भेजने में १ ३० पोस्ट व्यय अधिक लगाना पड रहा है। इस सकट से उबारना चाहते हैं तथा आप चाहते हैं कि हम इसी मूल्य मे 'धन्वन्तरि' की महानता को बनाए रखकर आपकी सेवा करते रहें तो आपको भी थोडा सहयोग देना होगा और देना चाहिए। आप इस समय थोडा परिश्रम करके धन्वन्तरि के कुछ नवीन ग्राहक बनावें। धन्वन्तरि के सम्माननीय ग्राहकों ने समय-समय पर हमारी सहायता की है इस बार भी हमको विश्वास है कि आप हमारे आग्रह को अनसुना नहीं करेंगे तथा अधिक से अधिक नवीन ग्राहक बनाकर उनसे वार्षिक मूल्य १४ ०० मनियार्डर से ही भिजवायेंगे। वी. पी. से मगावेंगे तो १) की टिकट हमको अधिक लगानी होगी। १४) मनियार्डर से मिलने पर उस समय तक के छपे अङ्क-विशेषाक सुरक्षित रजिस्ट्री से भेज दिये जायेंगे। अस्तु, रुपया अग्रिम मनियार्डर से ही भिजवाने का प्रयत्न करें। वी. पी. द्वारा ही मंगाना चाहें तो साथ के Business Reply label का उपयोग करते हुए नवीन ग्राहकों के पते सूचित करें।

धन्वन्तरि का वार्षिक मूल्य और बढाना नहीं चाहते तथा इसकी विशालता एवं सुन्दरता में भी कमी करना अभीष्ट नही है। ऐसी दशा में आप सभी 'धन्वन्तरि' को सहायतार्थ हमारा उक्त निवेदन स्वीकार अवश्य करें और नवीन ग्राहक बनाने का प्रयत्न करे। २-४ ग्राहक बना देना आपके लिए कठिन नही होगा।

मनियार्डर इस पते से भेजें —
श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन,
मामू भांजा रोड, अलीगढ

—अनुकरणीय-सहायता—

अमरकंटक म. प्र. के महर्षि श्री स्वामी पिप्पलायन जी महाराज ने इस वर्ष 'धन्वन्तरि' के अब तक ६० ग्राहक बना दिये है वह भी निःस्वार्थ भाव से, धन्वन्तरि की सेवाओं से प्रसन्न होकर धन्वन्तरि की सहायतार्थ। वे जहाँ भी जाते हैं 'धन्वन्तरि' के नवीन ग्राहक बनाने का प्रयत्न करते है। उनकी इस सहायता के प्रति हम हृदय से कृतज्ञ है। इसी प्रकार अन्य कृपालु ग्राहक भी 'धन्वन्तरि' के प्रति स्नेह एव उदारता बरते और 'धन्वन्तरि' के नवीन ग्राहक बनाने मे जुट जावें तो इसकी ग्राहक-संख्या पर्याप्त बढ सकती हैं। मासिक पत्र का आधार ग्राहक संख्या ही होती है, ग्राहक संख्या बढेगी तो हमको बहुत सहारा मिलेगा और हम 'धन्वन्तरि' को अधिकाधिक उपयोगी एवं विशाल बनाने मे समर्थ हो सकेंगे। वार्षिक मूल्य में और वृद्धि करना हम उचित नही समझते और न करेंगे ही। अब तो आप सभी के सहयोग से ही 'धन्वन्तरि' की महानता बनाये रखनी है और विश्वास है कि आप इस ओर ध्यान अवश्य देंगे।

—यहाँ से काटिए—

नवीन ग्राहक से वार्षिक मूल्य १४) मनियार्डर से भिजवाये तब इस जवाबी लेबिल का उपयोग न करे। इस कार्ड के लिए हमको २५ पैसा देने पडते है। मनियार्डर-फार्म के नीचे कूपन मे ही सभी विवरण लिख दीजियेगा।

अब तो रुपया मनियार्डर से ही भेजना चाहिए। वी. पी. मे खर्चा अधिक होता है।

प्रकाशकीय निवेदन

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ द्वारा प्रकाशित 'धन्वन्तरि' का यह चतुर्थ विशाल विशेषाक—"स्वास्थ्य-रक्षा विशेषांक" जो धन्वन्तरि के ५० वे वर्ष के उपलक्ष मे स्वर्ण-जयन्ती अंक के रूप मे प्रकाशित किया गया है आपके कर कमलों में समर्पित करते हुए महान प्रसन्नता है। यह विशेषांक साधारण जन समुदाय के लिए तो महान उपयोगी साहित्य प्रमाणित होगा ही, चिकित्सकों को भी इसमें बहुत कुछ जानने-समझने की सामिग्री मिलेगी, ऐसी हमारी मान्यता है।

इसी अंक में प्रकाशित स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू के आयुर्वेद के प्रति उद्गार के अनुसार निश्चय ही आयुर्वेद मात्र रोगों की चिकित्सा करना ही नही सिखाता प्रत्युत मनुष्य किस प्रकार नीरोग सबल एवं दीर्घायु रह सकता है और इसके लिए उसे क्या करना चाहिए यह भी सिखाता है। इस विशेषाक का भी यही उद्देश्य है कि जनता समझे कि रोग होने पर चिकित्सा कराने से उत्तम है रोग हो ही नही और इसके लिए क्या-कब-कैसे करना है इसे सीखे-समझे। इस उद्देश्य मे हम कहा तक सफल हुए हैं इसका निर्णय तो हमारे पाठक ही कर सकेंगे।

इस विशेषाक के विशेष-सम्पादक महोदय वैद्य श्री छगनलाल जी समदर्शी आयुर्वेद रत्न इस विशेषाक का मैटर समय पर नही भेज सके। कई बार प्रेस २-२, ३-३ दिन के लिए बेकार रहा, समदर्शी जी को पत्र-रजिष्ट्री पत्र तथा तारो का तांता लगाना पडा। अन्त मे निराश होकर चि० दाऊदयाल गर्ग को उनकी सेवा मे भेजा तब कही जैसा बन पडा उन्होंने मैटर दे दिया। प्रेस बंद है, कर्मचारी बेकार हैं ऐसे समय मे थोडा-थोडा मैटर मिला। उसे न हम देख सके, न लेखों मे आवश्यक चित्रादि की व्यवस्था कर सके। विशेषाक के प्रकाशन में भी समय अधिक लगा। बडी मानसिक तथा आर्थिक परेशानी हुई। फिर भी हमने इसे सुन्दर तथा उपयोगी बनाने में जी-जान से परिश्रम एवं व्यय किया है। अस्तु विश्वास है कि पाठक इसे अवश्य पसंद करेंगे।

पोस्ट-व्यय बढ़ गया

'धन्वन्तरि' का यह ५० वा वर्ष है। स्वर्ण जयन्ती वर्ष मे 'धन्वन्तरि' को हम विशेष रूप से आकर्षक तथा उपयोगी प्रकाशित करने की योजना बना रहे थे कि सरकार ने प्रथम मार्च से पोस्टेज में वृद्धि कर हमारी सभी योजनाओं पर तुषारापात कर दिया है। अब एक विशेषांक को भेजने के लिए हमको १ ३० और अधिक टिकट लगानी पड रही हैं। हमको ग्राहको का सहयोग मिला तो अपनी योजनाओ को अवश्य ही कार्यरूप मे परिणत करेंगे। धन्वन्तरि के प्रकाशन मे हमने सदैव घाटा उठाया है, इस बार यह घाटा अधिक होगा। किन्तु कुछ भी हो 'धन्वन्तरि' की महानता मे कमी नही आएगी।

लेख-प्रतियोगिता—लेखकों से निवेदन

इस वर्ष उत्तम लेख प्राप्ति हेतु लेख प्रतियोगिता का विवरण अप्रेल के अङ्क मे प्रकाशित कर रहे हैं। विद्वान एवं अनुभवी लेखको से साग्रह निवेदन है कि वे इस प्रतियोगिता मे अवश्य भाग ले और 'धन्वन्तरि' को अपना सहयोग दे। वर्ष १९७७ में प्रकाशित होने वाले विशाल विशेषाँक 'आयुर्वेदीय औषधि गुण धर्म विवेचनाँक" का विवरण अप्रैल के अङ्क मे देखे तथा इसमे अपना सक्रिय सहयोग देकर आभारी करें।

इस वर्ष के लघु-विशेषांक

(१) काम विज्ञानांक—धन्वन्तरि के पाठकों के जाने-माने लेखक श्री चांदप्रकाश मेहरा के विशेष सम्पादन मे प्रकाशित होगा। श्री मेहरा जी ने इस विषय का विशेष अध्ययन मनन किया है। आपने इस विषय का विशाल-विशेषांक प्रकाशित करने का अनुरोध किया था, इसे हम स्वीकार नहीं कर सके। तब आप लघु विशेषांक मे ही काम विज्ञान विषय प्रस्तुत कर रहे हैं, जो निश्चय ही इस विषय की नवीन जानकारी पाठको को देगा।

(२) मलावरोधांक—श्री प० नन्दकिशोर जी शर्मा (विशेष सम्पादक—यन्त्र तन्त्र मन्त्रांक तथा यज्ञ चिकित्सांक) इस विशेषांक का बडे मनोयोग से सम्पादन कर रहे हैं। मलावरोध ऐसा रोग है जिससे प्राय हर व्यक्ति समय-समय पर परेशान रहता है, अस्तु यह विशेषांक भी सभी के लिए पठनीय एवं सग्रहणीय होगा।

इन दो विशेषांको के अतिरिक्त एक या दो लघु विशेषांक और भी प्रकाशित करने की योजना विचाराधीन है जिसकी जानकारी आगामी अक मे देगे।

इस बार ग्राहक हमको विशेष सहयोग दें

पोस्ट व्यय बढ जाने के कारण आपके प्रिय 'धन्वन्तरि' को महान सकट उपस्थित हुआ है। वार्षिक मूल्य पहिले ही पर्याप्त बढा चुके हे अब उसे और बढाना अभीष्ट नही है। इस समय हमारे ग्राहक यदि यह चाहते हैं कि धन्वन्तरि इसी प्रकार आपकी सेवा करता रहे तो वे अपना सहयोग अवश्य दे। हम चाहते हैं कि आप सभी २-२, ३-३ नवीन ग्राहक प्रयत्न करके बना दे। बूंद-बूंद से घट भर जाता है। आप सभी थोडा-थोड़ा सहयोग देंगे तो 'धन्वन्तरि' को बडा सहारा मिलेगा। इस निवेदन को व्यक्तिगत-प्रार्थना समझे और ग्राहक बनाने का प्रयत्न अवश्य करे। यदि आप प्रयत्न करेंगे तब १-२ ग्राहक बनाना कठिन नही होगा।

नवीन ग्राहको से १४) मनियार्डर से ही भिजवाये। वी पी पर १) पोस्ट व्यय अधिक लगाना पड़ता है। रुपया मिलने पर भी अक-विशेषांक सुरक्षित रजिस्ट्री से ही भेजे जायेंगे।

भवदीय

ज्वालाप्रसाद अग्रवाल

सावधान ?

अब पोस्ट व्यय बढ गया है। 'धन्वन्तरि' वी. पी. से भेजने में ३.३० खर्चा होता है, अतएव 'धन्वन्तरि' की वी पी वापस न करें तथा न करने दें। यदि कोई ग्राहक वी. पी. वापस कर रहा हो तो उसे समझा-बुझाकर वी. पी. छुटवा दें। वह न छुटावें तो किसी अन्य सज्जन को ग्राहक बनाकर उस वी पी को छुटवा दें तथा पोस्ट मास्टर से तसदीक कराके सूचना हमको दे दें।

इसी प्रकार औषधियों-पुस्तकों आदि के आर्डर सोच-विचार कर दें। वी पी पहुँचने पर अवश्य छुटालें। कोई भूल हो तो वी पी छुटाकर पत्र लिखें। भूल का सुधार किया जायगा।

'धन्वन्तरि' के नवीन ग्राहकों से रुपया अग्रिम मनियार्डर से ही भिजवाने का प्रयत्न करें। वी पी से भेजने पर हमको १) अधिक खर्चा करना होगा।

निवेदक—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, अलीगढ़।

खतरे की जंजीर खींचते ही रेलवे चालन मे एक के बाद एक भारी गडबडी शुरू हो जाती है। सैकड़ों यात्रियों सहित अनेक रेलगाडिया रुक जाती हैं। उनके पीछे आने वाली गाड़ियों का समय भी अनियमित हो जाता है। बाद के स्टेशनों पर प्रतीक्षा करने वाले यात्रियो को भारी असुविधा का सामना करना पडता है।

हो सकता है कि रोकी गयी गाड़ियों मे से किसी में आपत्कालीन कार्य के लिए मनुष्य और माल ले जाया जा रहा हो या पीड़ित क्षेत्रों के लिए दवाइया तथा भोजन भेजा जा रहा हो।

आपके अविवेकपूर्ण कार्य से गाड़ियों के चलने मे बाधा के कारण आवश्यक राष्ट्रीय प्रयासों में बाधा पड़ सकती है। इस लिए समझदार और उत्तरदायी बनिए। यदि आवश्यक न हो तो इस सुरक्षा उपकरण मे छेड़ छाड न करें।

केवल आपत्ति के समय ही उपयोग कीजिये

उत्तर रेलवे

पंकज फार्मा का नवीन आविष्कार 'चर्मोल ट्यूब'

आकर्षक छपे ट्यूब पेकिंग में भरी गई सुपरीक्षित चर्मनाशक मल्हम। जिसने व्यवहार किया उसी ने प्रशंसा की है, जिसने इसका पेकिंग देखा उसी ने पसन्द किया है। आधुनिक युग के अनुरूप सुन्दर पैकिंग में यह मल्हम खाज खुजली, फोड़ा फुन्सी, घाव आदि चर्मरोगों में अत्युपयोगी है। खाज गीली हो या सूखी शीघ्र नष्ट होता है। शरीर पर दाग धब्बे पड़ जाते हैं वह भी इसकी मालिश से नष्ट होते हैं। घर में हर समय रखने योग्य दवा है। मूल्य—२८ ग्रा. का २.५० रु, १५ ट्यूब एक साथ मंगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन सेलटैक्स व पोस्ट व्यय पृथक (१५ ट्यूब मंगाने पर पोस्ट व्यय ६.५०, ३० ट्यूब मंगाने पर पोस्ट व्यय १०.५०) थोक विक्रेताओं को विशेष रियायत। पत्र डालकर मालूम करें।

अति शीघ्र प्रभावकारी औषधियां

१. **सीटामोल टेबलेट**—सर्दी, वर्षा, थकान अथवा तेज धूप से उत्पन्न ज्वरों तथा ज्वर के साथ होने वाले शरीर दर्द, शिर दर्द, कमर दर्द में हानिरहित आश्चर्यजनक औषधि है। इससे ज्वर २-३ घण्टे में पसीना आकर उतर जाता है। इसके अतिरिक्त दांत का दर्द, मासिक धर्म का दर्द, मांस पेशियों और संधियों का दर्द, आमवात का दर्द एवं सभी प्रकार की वेदनाओं को तुरन्त शांत करती है। एलोपैथिक सुपरीक्षित टेबलेट है। १०० टेबलेट (स्ट्रिप) का डिब्बा १८.००।

२. **आराम टेबलेट**—सभी प्रकार के दर्द जैसे शिर दर्द, आधा शीशी दर्द, पसली का दर्द, वायु का दर्द, चोट, फोड़े का दर्द, आँख, दाढ़, कान, नाक आदि का दर्द, गठिया का दर्द, जुकाम से दर्द या हरारत आदि को खाते-खाते दूर करता है। हर प्रकार के दर्द में तुरन्त आराम पहुंचाने के कारण ही इसका नाम 'आराम टेबलेट' है। १०० टेबलेट (स्ट्रिप) का डिब्बा ८.५०।

३. **एन्थेलीन टेबलेट**—उदर कृमियों को नष्ट करने वाली विश्वसनीय औषधि है। १०० टेबलेट ९.००।

४. **पीलैक्स टेबलेट**—कब्ज को दूर करने की अत्युत्तम टेबलेट है। रात्रि को सोते समय २ टेबलेट चबाकर पानी के साथ लेने से सुबह दस्त साफ होता है। १०० टेबलेट (स्ट्रिप) का डिब्बा मूल्य ६.००।

५. **एन्टेरोल टेबलेट**—इससे सभी प्रकार की प्रवाहिकाओं (पेचिस) तथा सभी प्रकार के अतिसारों, पुरानी पेचिश, मरोड़, खूनी दस्तों, पेचिश से उत्पन्न यकृत विकारों में पूर्ण व शीघ्र लाभ होता है। दस्तों में अपूर्व लाभकारी दवा है। १०० टेबलेट (स्ट्रिप) का एक डिब्बा २५.००।

नोट—५०) के मूल्य की दवा मंगाने पर २० प्रतिशत कमीशन। पोस्ट व्यय व सैल टैक्स पृथक।

मंगाने का पता- **पंकज फार्मा** D-79 इन्डस्ट्रियल स्टेट अलीगढ़-२७

धन्वन्तरि

स्वास्थ्य रक्षा विशेषांक

की

विषयानुक्रमणिका

—:०:—

तृतीय खण्ड—संक्रमण

चतुर्थ खण्ड—व्याधियाँ व उनकी रोकथाम

धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगाः तस्यापहर्तारि श्रेयसो जीवितस्य च ।। —चरक सूत्र १/१५

भाग ५० अङ्क २-३ | स्वास्थ्य रक्षा विशेषांक | फरवरी-मार्च १९७६

✤ स्वास्थ्य प्रशस्ति ✤

स्वास्थ्य का संरक्षण अनिवार्य,
स्वास्थ्य से सम्पादित सब कार्य ।। १ ।।
रोग से पीड़ित होना ताप
भोग से बढ़ जाते तन पाप ।
रोग तो भूलो का परिणाम
रोग तो निज का निज को शाप ।। २ ।।
स्वास्थ्य है उत्तमतम उपलब्धि,
स्वास्थ्य है अनुपम ऋद्धि सिद्धि ।
स्वास्थ्य है सर्वोदय सोपान,
स्वास्थ्य बिन फीकी सभी समृद्धि ।।
स्वस्थ सम्पूजित जग नर–नार्य,
स्वास्थ्य का सम्पोषण अनिवार्य ।। ३ ।।

स्वस्थ चढ़पाते हिम गिरि तुंग,
स्वस्थ पढ़ पाते शास्त्र षडंग ।
रुग्ण कब ! संपद शक्ति मंत,
स्वस्थ बढ़ पाते साहस–संग ।।
स्वास्थ्य है "धन्वन्तरि" का ध्येय,
स्वास्थ्य "सपादक लेखक" श्रेय ।। ४ ।।
स्वास्थ्य की गरिमा-गुणीगण ज्ञेय,
स्वास्थ्य "समदर्शी "शकर" प्रेय,
स्वस्थ हो तन मन भारत आर्य,
स्वास्थ्य का संवर्धन अनिवार्य ।
स्वास्थ्य संरक्षण अनिवार्य,
स्वास्थ्य से सम्पादित सब कार्य ।। ५ ।।

—कविराज श्री उमाशकर आचार्य "शंकर"
प्रधान चिकित्सक — केदारमल आयुर्वेदिक
होस्पिटल, तेजपुर (असम)

निबन्ध-प्रतियोगिता

'धन्वन्तरि' का यह ५० वाँ वर्ष है। हम चाहते है कि इस वर्ष का प्रत्येक अङ्क अपनी एक विशेषता लिये हुए हो तथा धन्वन्तरि के ग्राहक एव वैद्य समाज "धन्वन्तरि" से अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। इसके लिए विद्वान लेखको के सहयोग की आवश्यकता है। इस वर्ष उत्तमोत्तम लेखो पर विपुल पुरष्कार देने की घोषणा करते हैं। आशा है आयुर्वेद के विद्वान एव अनुभवी सज्जन अपना सहयोग अवश्य देंगे। निम्न ५ विषय चुने गये हैं। इनमे से जिस विषय (एक या अधिक विषय) पर चाहे अपना लेख १५ मई १९७६ से पहिले ही भेजें—

१—मूत्रावरोध—किस-किस रोग की किस अवस्था मे होता है तथा उसकी क्या चिकित्सा करनी चाहिये।

२—किसी भी रोग विशेष पर अपनी अनुभवपूर्ण सफल प्रमाणित चिकित्सा। चिकित्सा मे प्रयुक्त औषधिया शास्त्रीय हो तो उनके ग्रन्थ सकेत दें। व्यक्तिगत प्रयोगो की निर्माण विधि स्पष्ट दें।

३—रक्तचाप न्यूनता (Low Blood Pressure) कारण, लक्षण तथा उपचार।

४—स्वप्न प्रमेह और उसकी सफल चिकित्सा।

५—घरेलू या सर्व सुलभ वस्तुओ से विभिन्न रोगो की चिकित्सा (अपने द्वारा अनुभूत चिकित्सा ही लिखें। पुस्तको की सहायता से लेख न लिखे।)

पुरुष्कार—

१—हर-विषय के प्रथम श्रेणी के लेख के लेखक को १२५)।
२—हर विषय के द्वितीय श्रेणी के लेख के लेखक को ७५)।
३—हर विषय के तृतीय श्रेणी के लेख के लेखक को ५०) दिये जायेगे।

नियम —

१—पुरुष्कार प्राप्त करने के लिए लेख १५ मई-१९७६ तक भेजना आवश्यक होगा।
२—लेख कागज की एक ओर सुवाच्य अक्षरो में लिखा होना आवश्यक है।
३—लेख धन्वन्तरि के अधिक से अधिक ८ पृष्ठ और कम से कम ४ पृष्ठो में छपने योग्य हो।
४—मौलिक एव अप्रकाशित लेख ही भेजें।
५—पुरुष्कार की घोषणा जौलाई ७६ के अङ्क में की जायगी तथा पुरुष्कृत लेख 'धन्वन्तरि' में क्रमश प्रकाशित किये जायेंगे। लेख प्रकाशित होने के बाद ही पुरुष्कार की राशि भेजेंगे।
६—सम्पादक मण्डल का निर्णय अन्तिम होगा।
७—आपका लेख पुरुष्कृत न किया जा सके तो उसे वापस भेजा जाय या आगे प्रकाशित करने के लिये सुरक्षित रखें यह स्पष्ट सूचित करें।
८—लेख भेजते समय 'निबन्ध प्रतियोगिता के लिए" अवश्य लिखें।

पता —श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ़।
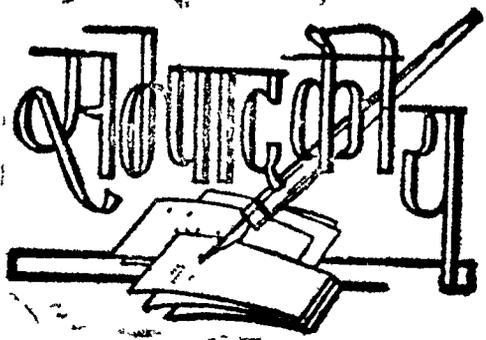
मानव शरीरधारी के लिये आरोग्य सबसे पहली आकाक्षा है। सबसे पहली आवश्यकता की वस्तु है, आरोग्यता ही मनुष्य जीवन की सार्थकता बतलाती है। आरोग्य रहकर ही मनुष्य अपना ऐहिक और पारलौकिक कर्तव्य पूरा करने मे समर्थ होता है। पूर्ण आयुष्य और दीर्घायुष्य की प्राप्ति उसे ही होती है जो आरोग्य है सशक्त है और सब प्रकार के कर्त्तव्य पालन मे समर्थ है। शरीर और जीवात्मा के सयोग का नाम ही जीवन है और उस जीवन की उपस्थिति ही आयुष्य' है। आरोग्य-पूर्वक निर्विघ्न आयुष्य की कामना करना मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य है, क्योकि इसी के रहने से मनुष्य अपना कर्त्तव्य पूरा कर पाता है। आरोग्य के लिए आयुर्वेद के उपदेशो का विधिपूर्वक निर्वाह करना मनुष्यमात्र का आदि कर्त्तव्य है। आरोग्य के बिना धर्म चतुष्टय की प्राप्ति ही नही हो सकती है। आचार्य वाग्भट्ट कहते हैं—

आयुः कामयमानेन धर्मार्थ सुख साधनम्। आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः॥

अत मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए पूर्णायु तक जीवन-यापन के लिए निम्न निर्दिष्ट तीन प्रमुख नियमो का परिपालन करना अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि ये शरीर अथवा जीवन के तीन उपस्तम्भ है—

(१) आहार (२) निद्रा (३) ब्रह्मचर्य।

जब कभी भी इनके समुचित परिपालन में येन केन प्रकारेण व्यवधान उपस्थित होगा (वह व्यवधान त्रिविध चर्या एव सदवृत से सबधित ही हो सकता है) तभी रोगमूलक परिणाम प्राप्त होगे। इस सम्बन्ध मे शास्त्रोपदिष्ट रोगोत्पादक कारणो को हम इस प्रकार समझ सकते है। यथा-मयो रोगस्यहेतन—

(१) आत्मेन्द्रियार्थ सयोग. (२) प्रज्ञापराध (३) परिणाम.

प्रत्येक रोग की उत्पत्ति रे कारणो का वर्गीकरण, समावेश इन शास्त्रोपदिस्ट मूल कारणो मे ही अन्तर्निहित होता है। क्योकि बिना प्रज्ञापराध के किसी भी इन्द्रिय का स्व-स्व इन्द्रियार्थो मे असात्म्य (हीन मिथ्या, अति) सयोग सभव नही।

इस प्रकार जब तक हम सद्वृत का पालन नही करेंगे तब तक इसी प्रकार बहुत सी आधि-व्याधियो से ग्रसित होते रहेगे। इसके लिये आयुर्वेद मनीषियो का तो उद्देश्य ही अप्रतिम एवं महान् रहा है जैसा कि इससे स्पष्ट है- 'नात्मार्थ नापि कामार्थमथभूतदयाप्रति' अर्थात् आयुर्वेदीय समग्र शिक्षा का प्रमुखतम् उद्देश्य भूतदया ही रहा है। भूत-शब्द यहा प्राणिमात्र परक है, इसी से उस उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर आयुर्वेदीय उपदेशो को दो प्रकार से अनुशासित कर हित आयु सुखायु परप्त किया गया है। जैसा कि आयुर्वेद का उद्देश्य हे—

(१) स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम् (२) आतुरस्य रोग प्रशमन च
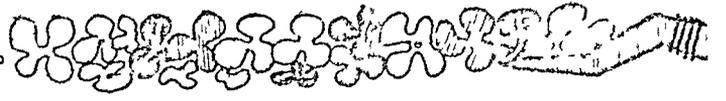
आज तक ससार मे जितनी भी प्रसिद्ध चिकित्सा पद्धतिया प्रचलित है उन सबमें निदान-परिवर्जन एवं 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षण' को अल्प एव 'आतुरस्य रोग प्रशमन' को ही अत्यन्त महत्व दिया जाता रहा है। विशेषकर आज जिसे हम आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के नाम से जानते हैं, कल तक उसके पाठ्यक्रम भी कुछ इसी प्रकार के थे। अब तक भारतीय चिकित्सा परिषद् ने भी 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षण' के प्रमुख महत्व का उचित मूल्याकन नही किया था। लेकिन आज उसने भी इसका समुचित मूल्याकन कर अपने समस्त चि० वि० म० मेडिकल कालेज के पाठ्य-क्रम मे 'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षण, सद्वृत्त को'—"प्रवेटिव एण्ड सोशल मेडिसिन" के रूप मे समुचित प्रतिनिधित्व ही नही अपितु विशेष महत्व प्रदान किया है। इसी के महत्व को आयुर्वेदज्ञ मनीषियो ने हजारो वर्ष पहले भगवान वेद द्वारा उपदिष्ट आदेशो द्वारा न सिर्फ जान ही लिया था अपितु भूत-दयार्थ प्रचलित एव प्रसारित भी किया था।

"मानवो येन विधिना स्वस्थास्तिष्ठति सर्वदा। तमेव कारयेद् वैद्यो यतः स्वास्थ्यं सदेप्सितम्॥ दिनचर्या ऋतुचर्या यथोदिताम् आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा॥"

प्राचीनतम ग्रन्थो का सिंहावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि तत्कालीन महर्षि जिनके ऊपर उस समय की सामाजिक व्यवस्था मे प्राणिमात्र की भलाई की पूरी जिम्मेदारिया थी- मानव के सुख एव स्वास्थ्य के प्रति कितने चिन्तित थे, जैसाकि उपर्युक्त उपदेशो से स्पष्ट ही ज्ञात होता है—

'इट इज फर्स्ट एण्ड फारमोस्ट ड्यूटी आफ दी क्वालिफाइड फीजिसिएन्स टू प्रीवेट दी डिजीसेस वाई दी मीन्स एण्ड मेथड्स ऑफ दी हेल्थटिजिम टू एचीव दी मेन गोल ऑफ ह्यूमन बीइंग्स लाग एण्ड प्रासपेरस लाइफ'

इसीलिए आयुर्वेद मे स्वस्थवृत्त एव सद्वृत्त के पालन का विशेष उपदेश निहित है। त्रिविध चर्या (दिन चर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या) एव तीन उपस्तम्भो का विधिवत् पालन करते हुए ही मानव सुखी एव दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता हैं। हमारे आहार-विहारादिक मे किसी भी प्रकार का व्यव-धान ही दोष प्रकोपक होता है जिससे कि शारीरिक अथवा मानसिक रोगोत्पत्ति की पूरी सभावना रहती है। आज के इस वैज्ञानिक (साइंटिफिक एण्ड एलेक्ट्रोनिक्स वर्ल्ड) युग मे जहा कि विज्ञान उच्च से उच्चतम् शिखर पर पहुचता ही जा रहा है। जहा कि विशिष्ट रोगो के लिए आधुनिकतम् रामबाण औषधियो का (स्पेसिफिक ड्रग्स ब्राॅडस्पेक्ट्रम् एन्टीबायोटिक्स) उपयोग हो ही रहा है, फिर भी हम देखते है कि रोगियो की सख्या दिन प्रतिदिन बढती ही जा रही है। पाल्यूशन की समस्या बढती ही जा रही है। क्या इन सबका कारण शास्त्रोपदिष्ट स्वस्थवृत्त के नियमो का उल्लघन नही है ? इसकी तरफ हमारा ध्यान सहसा ही आकृष्ट होता है।

आज का प्रगतिशील मानव आधुनिक युग की चकाचौध मे परिपोषित होता हुआ कृत्रिम बाह्याडम्बरो से अपने आपको सुखी एव समृद्ध जानता हुआ भी ऐसे स्थायी सुख की खोज मे भटकता फिरता है जो कि उसे केवल अपने बौद्धिक प्रवाह को बदलकर 'माडल ओरिएन्टल वे आफ थिंकिग एण्ड लिविग' मे ही उपलब्ध हो सकता है, इस चिरन्तन एव शाश्वत सत्य का साक्षात्कार हम सहस्रो पश्चिमी सभ्यता मे जन्मे पले, पोषित, शिक्षित विद्वानो एव विचारको मे कर सकते है जो कि अपनी उस 'वे आफ लिविग एण्ड थिंकिंग' से मुक्ति पाने के लिए पूर्व की दिव्यभूमि मे आते रहते है। लेकिन हमारे यहा की आधुनिक कही जाने वाली सभ्यता मे पोषित परिवर्द्धित मानव इस शाश्वत सुख को प्राप्त करने का उपाय जो शास्त्रोपदिष्ट है, का पालन करना अपनी शान के खिलाफ समझ कर 'आउट आफ डेट' कहने मे ही इतिश्री समझ लेता है। इस स्थिति मे यदि कोई साधारण व्यक्ति भी

उसे हितोपदेश दे कि ब्राह्म मुहूर्त मे उठना चाहिए, प्रात: भ्रमण करना चाहिए, शीतल जलपान करना चाहिए जिससे कि विबन्ध न रहे, नानृत ब्रूयात् नान्यस्त्रियमवजानीत, न कार्यकाल मतियातयेत् इत्यादि तो उसे यह सब मिथ्या या अनुपयुक्त ही लगता है, क्योकि वहाँ दृष्टि भेद है।

मानव सदा से वातावरण से प्रभावित होता आया है और इस वातावरण का प्रभाव-स्थानगत, समाजगत, देशगत ही होता है, साथ ही इससे सम्पृक्त अन्य तथ्य भी उसके अन्तर्गत आ जाते है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह स्वय तो स्वस्थवृत्त का पालन करे ही, समीपस्थ सबको इसके लाभो से अवगत कराये जिससे सामाजिक स्वस्थवृत 'सोशल हाइजिन' का प्रचार होगा।

ससार के आदिज्ञान-स्रोत वेदो से लेकर स्मृतिग्रन्थों तक का पर्यालोचन करने से यही तथ्य सामने आता है कि मनुष्य को किस देश मे रहकर स्वस्थ रहने के किन किन नियमो का पालन करना चाहिये तथा उनका पालन न करने से किस-किस प्रकार की व्याधियो से ग्रसित होना पडता है। अतएव शास्त्र मे ऐसे समस्त सिद्धान्तो एवं नियमो का यथास्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण ढग से प्रतिपादन किया गया है जिससे प्रेरणा लेकर मानव आदिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक तीनो प्रकार के तापो (व्याधियो) से अपने आप को मुक्त रखने मे सफल हो सकता है। लेकिन इसके लिए हमको एक काम करना होगा, वह है 'आस्था परिवर्तन' जो कि अत्यन्तावश्यक है क्योकि जब तक हमे आयुर्वेदीय उपदेशो के ऊपर श्रद्धा नही होगी तब तक उनके द्वारा मिलने वाले अमूल्य लाभ का मूल्याकन कर सकना हमारे सामर्थ्य से परे की वात होगी।

आयुर्वेद मे जैसी स्वस्थ मनुष्य की विशद एव सर्वांगीण व्याख्या की गई है वैसी अन्यत्र अन्य तथाकथित चिकित्सा विज्ञान के साहित्य मे भी उपलब्ध नही होती। जैसा कि लिखा है—

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमन स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

आयुर्वेदीय स्वस्थ की परिभाषा न सिर्फ मनुष्य के शारीरिक धातु, अग्नि साम्य के मापदण्ड का ही ध्यान रखती है अपितु उसका वैशिष्ट्य इस बात मे छिपा है कि वह मनुष्य को आत्मना, इन्द्रियेण एव मनसा भी प्रसन्न देखना अपेक्षित समझती है तभी सच्चे अर्थो मे मनुष्य को स्वस्थ कहा जा सकता है। वैसे इसी के परिपेक्ष्य मे एक प्रश्न सहज ही उठता है कि इस परिभापा के अनुसार ससार मे कितने व्यक्ति स्वस्थ है ? क्योकि इस वैज्ञानिक प्रगति 'एटोमिक एण्ड न्यूक्लीयर एज' के युग मे अत्याधुनिक सुख सुविधा सम्पन्न होते हुए भी आज हम विभिन्न प्रकार की नई-नई शारीरिक व्याधियो के साथ साथ मानसिक रूपेण विभिन्नावस्था मे जीवन यापन कर रहे है। आज ससार के अत्याधुनिक स्तर का जीवन-यापन करने वालो मे लगभग ६०-७०% व्यक्ति ब्लडप्रेसर (हाइपरटेंशन), डायबिटीज मेटल स्ट्रेन, इत्यादि व्याधियो से ग्रस्त है। इसलिए वैदिक मन्त्रो मे ईश्वर से हमे शारीरिक तथा मानसिक रूपेण स्वस्थ एवं हमारे मन को शुभ सकल्पो से युक्त बनाने की प्रार्थना की गई है— ओ३म् यज्जाग्रतोहर-भुदैतिदैव ... ज्योतिषा ज्योतिरेक तन्मेमनः शिव संकल्पमस्तु।'

श्रुति एव स्मृति के आदेशो का जो कि वैयक्तिक एव सामाजिक स्वास्थ्यपरक है यदि हम समुचित रूपेण पालन करे तो यह रोग रूपी दुःख का अवसर ही नही आएगा। क्योकि हमे धर्मार्थ काममोक्ष के महान उद्देश्य के प्राप्त्यर्थ शारीरिक एव मानसिक रूप से स्वस्थ रहने के शास्त्रोक्त उपायो को ही करना चाहिये।

आयुर्वेद मे स्वास्थ्य से अभिप्राय शारीरिक एव मानसिक दोनों ही प्रकार से स्वस्थ रहने से है। यहा शास्त्रो मे उत्तम मेधा की कामना की गई है जिससे कि यह चचल मन असात्म्येन्द्रियार्थ

संयोग द्वारा प्रज्ञापराध रूपी दुष्टवृत्तियों मे न प्रवृत्त हो सके, तथा जिससे कि हममें बुराइयाँ भले ही वह सामाजिक हो या व्यक्तिगत, दूर हो सके तथा हम सत्य पथ के पथिक बन सकें। इसी प्रकार स्मृति सन्दर्भों मे तो उन नियमो का जिनका हमे पालन करना चाहिए स्पष्ट उल्लेख ही किया गया है। इन सन्दर्भों मे वैयक्तिक एवं सामाजिक स्वास्थ्योपयोगी नियम इस बात के प्रमाण हैं कि आर्य सभ्यता पुराकाल मे व्यक्तिगत एव सामाजिक स्वास्थ्य के प्रति कितनी प्रबुद्ध थी।

आरोग्य का महान शत्रु त्रिदोष है—

वायु पित्तं कफश्चेति त्रयोदोषाः समासतः। विकृता-विकृता देह घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च ॥

प्रकुपित हुए दोष शरीर के समस्त प्राकृतिक कार्य व्यापार को दुष्प्रभावित करते हैं। अतएव इस प्रकार का प्रयत्न होना चाहिए कि जिससे इन दोषो का सचय-प्रकोप प्रशमादि की गति प्राकृतिक ही बनी रहे। क्योकि कि यथर्तु इनका चयादिक होता रहता है—अतएव शास्त्रकार का उपदेश है कि इन दोषो का यथर्तुशोधनादि करना चाहिए। यदि उचित अवसर पर दोषो का शोधन कर दिया जाय तो दोष रोगोत्पत्ति करने मे समर्थ ही नही होंगे। इसी प्रकार यदि मनुष्य नित्य ही शास्त्रोपदिष्ट नियमो का पालन करे तो हमेशा स्वस्थ ही रहेगा।

हमारा यह विशेषांक

उपर्युक्त व्यक्तिगत एव सामाजिक आरोग्य की प्राप्ति हमे किस प्रकार हो सकती है ? इन सब विषयो का विशद विवेचन प्रस्तुत विशेषांक की प्रमुख विशेषता है। आशा है कि पाठकगण इस अङ्क का भलीभाँति अध्ययन मनन कर अपने स्वास्थ्य को समुन्नत कर सकेंगे।

यह विशेषाक स्वास्थ्य विषयक विभिन्न महत्वपूर्ण ग्रन्थो के सारभाग से सुसज्जित, उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक हिमाचल के हिमाच्छादित शृंगो से सागर की उत्ताल तरंगो तक छाये कुछ पीयूषपाणि चिकित्सको, कुछ अध्यात्मरत मनीषियो, कुछ रिसर्च और पोस्टग्रेजुएट प्रशिक्षण मे सलग्न प्रोफेसर, टीचर, लेक्चरर और डिमोस्ट्रेटरो, कुछ सर्जन, प्राचार्य, वैद्य, हकीम, होम्योपैथ एवं प्राकृतिक चिकित्सको (जो विभिन्न विषयो के आचार्य सिद्धहस्त, उदीयमान विभिन्न वर्गो के लेखक है) द्वारा लिखित लेखो के समन्वय का रूप है जैसे जलनिधि मे सभी प्रकार की जीवात्माओ का निवास है वैसे ही 'धन्वन्तरि' के इस 'स्वास्थ्य रक्षा विशेषाक' मे भी सभी प्राणाचार्यो का प्रवेश है। मैं अपने इस परिवार को जिसमे अग्रज भी है और अनुज भी देख कर जिस अनन्त अखण्ड अभग आनन्द और चिति का अनुभव करता हू वह वर्णनातीत है, लेखनी से परे का विषय है।

'धन्वन्तरि' अब तक के आयुर्वेद जगत मे प्रकाशित होने वाले पत्रो मे पहला पत्र है जो हजारो पाठको को अपने ज्ञान से अभिसिञ्चित करता हुआ अपने ५० वे वर्ष मे पदार्पण करता हुआ अपनी 'स्वर्ण जयन्ती' मना रहा है। 'स्वास्थ्य रक्षा अक' स्वर्णजयन्ती वर्ष के रूप मे 'धन्वन्तरि' का प्रथम विशेषाक है जो स्वप्निल धरातल पर खचित हुआ और जो उस सत्ता की कृपा कोर के बल पर पूर्ण हुआ है। "मेरा मुझको कुछ नही जो कुछ है सो तोर, तेरा तुझ को सौंपते क्या लागत है मोर"—यह सब उस परम सत्ताधीष के इङ्गित पर हुआ है, कैसा है ? क्या है ? वह सब तो अब पाठक प्रवरो का कार्य है। प्रस्तुत विशेषाक से यदि आपको स्वास्थ्य-सवर्धनार्थ तनिक भी मार्गदर्शन मिल सका तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी। इतिशुभम्

नित्यं हिताहार विहार सेवी, समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्त ।
दाता समः सत्यपर क्षमावान, नाप्तोपसेवी भवत्यरोग ॥

रायपुर २४ फरवरी १९७६ —विनीत—वैद्य छगनलाल समदर्शी

आचार्य श्री वेदव्रत शास्त्री, कासगज

-स्वास्थ्य रक्षा का एकमात्र उपाय-

कालभोजनम्-आरोग्यकराणाम्

— ० —

प्रत्यक्षधर्मा पुनर्वसु, मननशील मुनिवृन्द, मनीषी महर्षियो की मण्डली एक बार पुण्य भूमि भारत का भ्रमण करते हुये भागीरथी के पवित्र तट पर आत्मा, इन्द्रिय, मन तथा इन्द्रियो के विषय रूप पुरुष के आमयो के कारणो का निश्चय करने के विचार से ज्ञानचर्चा में प्रवृत्त हुए। काशिपति वामक ने सबका अभिवादन कर इस विषय में सबसे प्रथम अपने विचारो का प्रारूप वहा प्रस्तुत किया।

भगवान् पुनर्वसु ने समस्त समुपस्थित समुदाय को सम्बोधन करते हुये कहा—कि आप सब अमित ज्ञान विज्ञान सम्पन्न हैं अत काशिराज द्वारा प्रस्तावित शकाओ का निराकरणपूर्वक नि सशय निर्णय कर उत्तर से मानव कल्याण का मार्ग निर्देशन कीजिये।

वहाँ उपस्थित परीक्षित, मौद्गल्य, शरलोमा, वायोर्विद, कुशिक हिरण्याक्ष, शौनक, भद्रकाप्य, भरद्वाज, काकायन, भिक्षुरात्रेय आदि सभी ने अपने अपने वहाँ विचार उपस्थित किये। परन्तु विचारचर्चा निश्चयात्मक स्थल से भटक कर वाद का रूप धारण करती जा रही थी। उग्रता बढ़ती जा रही थी, इसे देखकर महर्षि पुनर्वसु ने सबको शान्त करते हुये कहा—

वाद प्रतिवाद मे अपने अपने पक्षो को निर्भ्रान्ति कहने वाले समुदाय से वास्तविक पक्ष का निर्णय असम्भव हो जाता है, अतएव वाद युद्ध को परित्याग कर अध्यात्म (मानव आत्महित) के चिन्तन का विचार कीजिये और यह सिद्धान्त निश्चित, ध्रुव, अचल मानिये।

येषामेव हि भावानां सम्पत संजनयेत् नरम्।
तेषामेव विपद व्याधीन् विविधान् समुदीरयेत्॥

भगवान् पुनर्वसु के इस कथन के पश्चात् भी काशिराज ने पुन अग्रेसरता प्रदर्शित की उनको समझाते हुये भगवान् पुन बोले—

हित आहार का उपयोग ही पुरुष की वृद्धि का कारण होता है। अहित आहार का सेवन व्याधि का कारण बनता है। भगवान् आत्रेय के इन वचनो से प्रभावित होकर अग्निवेश ने हित, अहित आहार की मात्रा, काल, क्रिया, भूमि, देह, दोष, पुरुषावस्थादि अनेक विषयो की एक तालिका उनके सम्मुख जानकारी हेतु प्रस्तुत करदी। भगवान् पुनर्वसु आत्रेय ने सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय समस्त प्रश्नो को युक्तिपूर्वक समझाते हुए आरोग्यता का कारण बताते हुए कहा—

काल भोजनमारोग्यकराणाम्।

अर्थात् समय पर भोजन करना ही आरोग्य का एक मात्र कारण है।

आज प्रत्येक राष्ट्र मे जितना व्याधि ग्रस्त मानव दिखाई देता है उसका कारण अकाल भोजन ही है। समय पर भोजन करने के महत्व को मानव ने जब से भुलाया है वह उसी समय से अनेक व्याधियो का दास बनता गया है। धर्म शास्त्रकारो ने भी—

"शत विहाय भोक्तव्यम्"।

सौ कार्यो का त्यागकर प्रथम भोजन करना चाहिए ऐसा निर्देश दिया था उसका भी यही कारण है कि मनुष्य समय पर भोजन करना सीखे। अत —

भोजन के समय पर भोजन करना ही स्वास्थ्य रक्षा का एक मात्र कारण है।

वैदोक्त प्रशस्ति

संकलन कर्ता - वैद्यरत्न कविराज प० श्रीशङ्करलाल गोड "शम्भु कवि"
साहित्य व्याकरण शास्त्री सम्पादक "शङ्कर भारती" तपस्थली बूरा (आगरा)
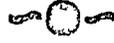
सक्रामतं माजहीतं शरीरं,
प्राणापानौ ते सपुजा विहस्ताम् ।
शत जीव शरदो वर्धमानो,
ग्निष्ठे गोपा अश्विना वशिष्ठः ।। (अथर्व ७/५३/२)

अर्थ—प्राण अपान वायु शरीर मे रहकर निरन्तर चलते रहे, शरीर का त्याग न करें और अग्नि शरीर की रक्षा करता रहे अपना कार्य यथावत् करे तो मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रहता है ।

प्रत्यौहृतमश्विनामृत्युमस्मद् ।
देवानामग्ने भिषजा शचीभि ।। (यजु० २७/६)

अर्थ—शल्य चिकित्सक और काय चिकित्सक दोनो प्रकार के वैद्य अपनी शक्तियो से हमसे मृत्यु को अर्थात् रोग को दूर करें ।

पुरुष अत. उत्क्राम् ! मा अवपत्था ! मृत्योः पडवीशं अवमुञ्च मानः ।

अर्थ—हे मनुष्य उन्नत होओ गिरो मत, मृत्यु के पाशो को तोड़ डालो ।

"O man ! rise up from this place ! Sink not downward, casting away the bonds of death that hold thee

मा पुरा जरसो मृथाः ।। (अथर्व ५/३०/१७)

अर्थ—वृद्धावस्था से पहिले मत मर ।

पश्येम शरद. शतं जीवेम शरद शतं ॐ शृणुयाम शरद. शतम् ।
प्रब्रवाम शरदः शतमदीनास्याम शरद शतं भूयश्च शरद शतात् ।। (यजु. ३६/२४)

अर्थ—हम सौ वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक जीवित रहे, सौ वर्ष तक सुनें, सौ वर्ष तक बोलें, सौ वर्ष तक दीनतारहित रहे और सौ वर्ष से भी अधिक आनन्द के साथ रहे ।

सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत् ।
तद्भावेहि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम् ।। —अग्निवेश मुनि

अर्थ—सब बातो का परित्याग कर सर्व प्रथम शरीर सम्पत्ति का पालन करना चाहिये, क्योकि स्वस्थ शरीर के अभाव में अन्य सब धन सम्पत्ति आदि सुख साधनो का भी अभाव हो जाता है ।

श न इन्द्राग्नी भवतामवोभि शन्न इन्द्रा वरुणा रात हव्या ।
शमिन्द्रा सोमा सुविताय शयो शन्न इन्द्रा पूषणा वाज सातौ ।।

अर्थ—रवि चन्द्र वारि चपला सब सौख्य भाग्य जागै ।। रुज शोक भय भयकर अति निकट न हो भागै ।।

—शंकर कवि

— महर्षि श्री स्वामी पिप्पलायन जी महाराज

परमादरणीय श्री स्वामी जी का 'धन्वन्तरि' के प्रति अपार स्नेह है। इस वर्ष आपने 'धन्वन्तरि' के ६० से ऊपर नवीन ग्राहक बनाये है तथा अभी और बना रहे है।

आपके गुरु श्री गदाधरदास जी देवधुनी (उ प्र.) के है। गुरुदेव की कृपा से योग क्रिया में रम गये तथा सभी तीर्थो की पैदल यात्रा की। अब आप अमरावती कटक में सिद्धाश्रम मे निवास कर रहे है। आपने नमक. मिर्च आदि मसालो का परित्याग कर दिया है तथा अत्यन्त सरल भक्तिमय जीवन व्यतीत कर रहे है।

आपने स्वास्थ्यप्रद कुण्डलियो की पद्यात्मक रचना कर प्रेषित की है। आपने कुण्डलिया तो काफी बनाकर प्रेषित की थी लेकिन स्थानाभाव वश मात्र १२ कुण्डलिया प्रकाशित कर रहे है। दिनचर्या का प्राय पूर्ण विषय इन कुण्डलियों से सजोया गया है। आशा है कि पद्य के रसिक पाठको को यह कुण्डलिया पसन्द आयेगी तथा श्रद्धेय स्वामी जी भी 'धन्वन्तरि' के प्रति अपना कृपाभाव रखते हुए तथा नित नवीन ग्राहक बनाते हुए अपना प्रेम बरसाते रहेगे।

— दाऊदयाल गर्ग

१—प्रात काल उठना

पिपलायन जो विगत निशि ब्रह्म मुहूरत काल।
उठ जावे है रोज ही, वे कर देत कमाल॥
वे कर देत कमाल, आयु शत सहजहि लहते।
प्रभु की कृपा अघाइ, आयु भर सुख से रहते॥
वैदिक वैदक ग्रन्थ, बहुत महिमा है गायन।
कोटिन करत प्रणाम नियम को नित पिपलायन॥

२—ऊष. पान

पिपलायन जो प्रात ही, करते ऊष पान।
सूर्योदय के पूर्व ही, पाते बुद्धि महान॥
पावे बुद्धि महान, गृद्ध सम दृष्टिहु पाते।
होत पलित वलि नाश, रोग सब दूर पराते॥
यह धन्वन्तरि योग, नाक से पीजै भायन।
तभी लाभ हो पूर्ण, सही कहते पिपलायन॥

३—प्रातः वायु सेवन

पिपलायन जो प्रात ही, सेवन करते वायु।
मस्त भ्रमण करते हुये, पाते वे दीर्घायु॥
पाते वे दीर्घायु, रोग नहिं पास फटकते।
निर्मल रहती बुद्धि, रोग वपु सहज सटकते॥
मुख की वढती कान्ति, प्रेम हिय रहत अघायन।
बिन पैसे की वात, सही कहते पिपलायन॥

४—अभ्यङ्ग

पिपलायन जो प्रात ही तैल लगाते अङ्ग।
अति घर्षण के साथ में तभी सही अभ्यङ्ग॥
तभी सही अभ्यङ्ग वज्र सम वपु बन जाता।
होत पलित वलि नाश वदन सुन्दर दर्शाता॥
लहते वे दीर्घायु रहत नित ही मुदितायन।
ज्यो रहते नव ज्वान रहित चिन्ता पिपलायन॥

५—प्रातः स्नान

पिपलायन जो प्रात ही नित करते असनान।
या निज सुविधा से कभी शीतल जल शुचि जान॥
शीतल जल शुचि जान वस्त्र कर घर्षण करके।
फुरती आती अग कान्ति को साथी करके॥
अरुचि अन्न को नाशि क्षुधा लगती मनभायन।
बढ़त ओज अरु बुद्धि सहज दृष्टी पिपलायन॥

६—गर्मजल स्नान

पिपलायन जल गर्म से जो करते असनान।
उर्ध्व गला शिर भाग की होती हानि महान॥
होती हानि महान अधो शिर लाभ करैया।
मल छाँटत अति शीघ्र विषय वासना वढैया॥
रुज अकड़ाई नाशि गात मृदु देत बनायन।
पर शीतल जल श्रेष्ठ स्वास्थ्य हित है पिपलायन॥

७—शीतल जल से शौच

पिपलायन जो ठंड जल, लेत शौच के माहिं।
सुख पातीं सब इन्द्रियाँ उष्ण वारि से नाहिं॥
उष्ण वारि से नाहिं अर्श नहिं होने पाता।
रहता स्वस्थ उपस्थ पुरुष जिससे सुख पाता॥
रहत ठीक मस्तिष्क क्रिया सब होति सुभायन।
ठहहिं जल शौचार्य कहत वैद्यक पिपलायन॥

८—तिलक धारण

पिपलायन गुरु दत्त जो तिलक धारते लोग।
अति श्रद्धा निष्कपट हिय बडभागी वे लोग॥
बडभागी वे लोग कृपा गुरु की नित रहती।
इष्टहु रहत प्रसन्न सदा सुख पावत महती॥
कहत तार्किक लोग सम्प्रदा चिह्न दृढायन।
राज-चिह्न सम तिलक अहै साक्षी पिपलायन॥

९—माला धारण

पिपलायन गुरु दत्त जो माला धारहिं लोग।
तिलक सदृश गुरु इष्ट कृप पावत हैं वे लोग॥
पावत हैं वे लोग भक्ति रण माल लड़ाती।
जापक का वह ध्यान लक्ष्य पर सदा दृढाती॥
कह वैज्ञानिक लोग रोग वह देत नशायन।
तार्किक मानत चिह्न सही माला पिपलायन॥

१०—सात्विक जलपान भोजन

पिपलायन भोजन त्रिविधि सत रज तम रस जान।
सत सात्विक रज राजसी तम राक्षसी प्रमान॥
तम राक्षसी प्रमान राक्षसी बुधि उत्पादक।
रज राजा सी बुद्धि सन्त बुधि सत प्रतिपादक॥
सात्विक सब गुण खानि प्रभु पद प्रेम करायन।
वैदक वेद व सन्त, सभी का मत पिपलायन॥

११—भोजनकाल में थोडा थोड़ा जल पीवें

पिपलायन खाते समय बिच बिच भोजन माहिं।
स्वल्प २ जल पियत जो वे बड भागी आहिं॥
वे बडभागी आहिं जठर की अग्नि जुगाते।
कब्ज अजीरन रोग उन्हे नहिं कभी सताते॥
उदर मलाशय ठीक रोग किमि करै चढायन।
रहत सदा वपु स्वस्थ, सही कहते पिपलायन॥

१२—कम भोजन करना

पिपलायन जो भूख से कम खाते हर रोज।
रोग उन्हे होता नहीं लखि लीजै करि खोज॥
लखि लीजै करि खोज, यकृत तिल्ली सुख लहते।
उत्तम रक्त बढाय खोजि रुज भीतर दहते॥
उभय यन्त्र दृढ़ होइ आयु भी देत बढायन।
वह गुण दायक नेम कहत वैदक पिपलायन॥

—महर्षि श्री स्वामी पिप्पलायन जी महाराज
श्री सिद्धाश्रम, अमरावती गगा, अमरकटक (म.प्र)

धन्वन्तरि के इतिहास की झलक एवं सम्पादकों का परिचय

-डा० दाऊदयाल गर्ग, ए.एम.बी.एस. आयु बृह०
सम्पादक-'धन्वन्तरि'

※ धन्वन्तरि के आविर्भाव की कहानी ※

धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव किन परिस्थितियो मे किस प्रकार हुआ तथा वह किस प्रकार से शनै शनै उन्नति की ओर अनेक सामयिक झझावातो को झेलता हुआ आगे बढता गया, इसके वारे मे सही अधिकृत जानकारी देने वाला कोई उपयुक्त व्यक्ति उपलव्ध नही है। सब काल के गाल मे समा गये। जो कुछ जानकारी मुझे धन्वन्तरि की गत फाइलो से ज्ञात हुई है, उसको ही सक्षेप मे आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हू।

धन्वन्तरि के वर्तमान मुख्य सम्पादक पूज्य पिताजी श्री ज्वाला प्रसाद जी अग्रवाल B. Sc. के पूज्य पिता तथा मेरे पितामह आयुर्वेद के मार्मिक विद्वान और विलक्षण वैद्य स्व० श्री राधावल्लभ जी वैद्यराज ने सर्वप्रथम सवत् १९७० मे 'आरोग्य-सिन्धु' नामक-पत्र निकाला जो वहुत लोकप्रिय रहा। 'आरोग्य-सिन्धु' कितने समय निकला ज्ञात नही होता लेकिन स्व० श्री वैद्य राधावल्लभ जी वैद्यराज ने ही इसका नाम वदल कर धन्वन्तरि कर दिया। यह नामकरण क्यो एव कब कर दिया गया, ज्ञात नही होता, परन्तु कुछ समय धन्वन्तरि आपके सम्पादकत्व मे प्रकाशित होता रहा फिर आपका स्वर्गवास अल्प आयु मे ही अकस्मात् हो गया तथा धन्वन्तरि का प्रकाशन रुक गया।

पॉच वर्ष तक प्रकाशन रुके रहने के बाद पुन. चैत्र पूर्णिमा १९८० तदनुसार अप्रैल १९२२ को धन्वन्तरि का प्रकाशन श्री ज्वालाप्रसाद जी अग्रवाल के मामाजी स्व० वैद्य श्री वाकेलाल गुप्त के सम्पादन मे प्रारम्भ हुआ। उस समय धन्वन्तरि का आकार वर्तमान समय के आकार से आधा किताबी साइज मे था और दो रुपये मात्र मे ग्राहको को वर्ष भर मिलता था। उस समय ग्राहको को दो रुपये मूल्य की पुस्तके भी उपहार स्वरूप दी जाती थी।

इस तरह धन्वन्तरि के विशाल वृक्ष का वीजारोपण स्व० श्री वैद्य राधावल्लभ जी वैद्यराज द्वारा हुआ और स्व० वैद्य श्री बॉकेलाल गुप्त के कर कमलो द्वारा अभिसिंचित होकर हम सभी को आरोग्य प्रदान कर रहा है। धन्वन्तरि का पुन प्रकाशन चूकि चैत्र पूर्णिमा १९८० अर्थात् अप्रैल १९२२ से नियमित चलता रहा है। अत उसे ही हम 'धन्वन्तरि' का प्रथम वर्ष मानकर चलते है। धन्वन्तरि के आविर्भाव की इस सक्षिप्त कहानी मे तब से अब तक विभिन्न आयुर्वेद मनीषियो का वरदहस्त प्राप्त हुआ है। उन सभी आयुर्वेद ज्ञाताओ का परिचय सेवाकार्य आदि आगामी पृष्ठो मे दिया जा रहा है।

※

'धन्वन्तरि' के संस्थापक-सम्पादक

स्वर्गीय ला० राधावल्लभ जी वैद्यराज

श्री ज्वालाप्रसाद अग्रवाल के पिता स्व० राधावल्लभ वैद्यराज (मेरे पितामह) ने सम्वत् १९१३ में सर्वप्रथम "आरोग्य सिन्धु" नाम से आयुर्वेदिक मासिक पत्रिका प्रारम्भ की थी। आरोग्य सिन्धु को २-३ वर्ष प्रकाशित कर इसका नाम बदल कर उन्होंने ही "धन्वन्तरि" कर दिया। कुछ समय "धन्वन्तरि" आपके जीवन काल में प्रकाशित हुआ तथा अल्पायु ही में देहावसान हो जाने के कारण "धन्वन्तरि" का प्रकाशन रुक गया। आपके देहावसान के पश्चात् विक्रमी सवत् १९८० में "धन्वन्तरि" का प्रकाशन पुनः प्रारम्भ हुआ तथा उस समय से निरन्तर प्रकाशित होते रहने के कारण ही हम उसे "धन्वन्तरि" का प्रथम वर्ष मानकर चलते रहे हैं।

पूज्य पितामह के जीवन के बारे में बहुत अल्प जानकारी उपलब्ध है। आपने बहुत ही अल्पायु में संस्कृत ज्ञान में अच्छी प्रगति कर ली। इसके पश्चात् जयपुर तथा पीलीभीत के आयुर्वेदिक विद्यालयों में आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। अपनी तीव्र बुद्धि, निर्लोभ स्वभाव तथा चिकित्सा सम्बन्धी अगाध ज्ञान के कारण अत्यन्त अल्पायु में ही आप अखिल भारतीय प्रसिद्धि के वैद्य विद्वानों की पंक्ति में आ गये और उनका चिकित्सा क्षेत्र अन्तर्प्रान्तीय हो गया। संग्रहणी रोग के अपने समय के श्रेष्ठतम चिकित्सक थे, और इस रोग के सहस्रों असाध्य समझे जाने वाले रोगियों को पूर्ण आरोग्य लाभ कराकर अनेक बार एलोपैथिक चिकित्सकों को आश्चर्य में डाल दिया था। एक बार अखिल भारतीय मैडीकल एसोसियेशन के मुख पत्र "मैडीकल जनरल" में आपकी चिकित्सा प्रणाली पर कई माह तक चर्चा चलती रही थी। पूज्य पितामह जी की इच्छा थी कि संग्रहणी तथा क्षय रोग को सर्वथा निर्मूल कर देने वाली औषधियां आविष्कृत की जांय और इस सम्बन्ध में वह प्रयत्न कर ही रहे थे। लेकिन परमात्मा को यह स्वीकार नहीं था जिससे मई सन् १९१८ को काल का एक आकस्मिक झोंका आया और आयुर्वेद सम्बन्धी अपनी समस्त उच्च आकांक्षाओं तथा लालसाओं को लिये केवल सैंतीस वर्ष की अल्पायु में ही वे मृत्यु की चिर निद्रा में सदैव के लिये सो गये। आज जो सज्जन "धन्वन्तरि" की वर्तमान उन्नति के सम्बन्ध में जिज्ञासा रखते हैं उनसे हमारा यही निवेदन है कि यह मेरे पूज्य पितामह के ही सद्प्रयत्नों का परिणाम है और हमारा विश्वास है जब तक हम उनके चरण चिह्नों पर चलते रहेंगे तब तक "धन्वन्तरि" अपने मार्ग की समस्त बाधाओं को रौंदता हुआ इसी सफलता और प्रगति के साथ आयुर्वेद जगत के सेवा मार्ग पर चलता रहेगा। "धन्वन्तरि" को सजाना, संवारना, निखारना तथा उसे सर्वाधिक प्रचलित, जनप्रिय पत्र बनाये रखना ही हम उस पूज्य दिवंगत के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जली समझते हैं तथा आशा है कि इसी में उनकी आत्मा को सच्ची शान्ति प्राप्त होगी।

★ **धन्वन्तरि के आदि सम्पादक**

स्व० वैद्य बांकेलाल गुप्त

आपका जन्म अलीगढ मे अग्रवाल कुल भूषण श्री ला मक्खनलाल जी के यहा हुआ। आप दो भाई व दो बहिन थे। एक बहिन की विजयगढ एव दूसरी की हाथरस मे शादी हुई थी। वडे भाई का नाम ला० प्यारेलाल था जो अलीगढ ही रहे। स्व० वाकेलाल जी के वहनोई वैद्यराज स्व० राधावल्लभ (मेरे पितामह) थे जो विजयगढ निवासी थे। स्व० वाकेलाल जी अपने यौवन काल मे ही विजयगढ आ गये थे और उनकी शिक्षा (आयुर्वेद) अपने वहनोई के पूज्य पिता लाला नारायण दास के पास हुई और उन्ही से क्रियात्मक अनुभव भी ग्रहण किया। उसी समय वैद्यराज राधाबल्लभ जी का स्वर्गवास ३७ वर्ष की अल्पायु मे ही हो गया। इस समय उनके पुत्र रत्न श्री देवीशरण एव ज्वाला प्रसाद जी अल्पायु मे थे अत सर्व सम्मति से विजयगढ स्थित सम्पूर्ण व्यापार का भार वैद्य वाँकेलाल जी पर डाल दिया गया। उस समय औषधि निर्माण एव विक्रय कार्य वहुत ही साधारण रूप मे चालू था। आपने अपने वुद्धि चातुर्य से उसमे वृद्धि की और धन्वन्तरि मासिक का पुन प्रकाशन प्रारम्भ किया।

सन् १९४६ मे घरेलू कारणो से सम्पूर्ण व्यवसाय का बटवारा हो गया और वैद्य जी ने प्राणाचार्य भवन की नीव डाली तथा प्राणाचार्य मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। आपने उसके सचालन मे दिन रात परिश्रम करके इसको काफी प्रसिद्ध किया। सन् १९५६ को ३ अगस्त के दिन आपका स्वर्गवास ५ मास की लम्वी वीमारी से हो गया। आपने अपने पश्चात् अपनी पत्नी दो पुत्र श्री गोपाल एव कृष्ण गोपाल तथा ४ पुत्री छोडी।

स्व० गणपति चन्द्र केला

विजयगढ मे सन् १९०७ मे मारवाडी परिवार मे गणपति चन्द्र जी अपने आधा दर्जन भाइयो मे सबसे छोटे थे। ६ वर्ष की आयु मे रामायण से परिचय कराया गया तो उन्होने कठस्थ कर डाला। संस्कृत के अन्य ग्रन्थ भी कण्ठस्थ कर लिये। उस समय हिन्दी संस्कृत के मान्य ग्रन्थो का ज्ञान अपनी स्कूली शिक्षा के साथ-साथ करते गये। गणपति चन्द्र जी की शिक्षा विजयगढ के बाद भवाना, बडौदा और कलकत्ता मे भाइयो के व्यवसाय और प्रवास के अनुसार चली। परिवार गाव लौटा तो अर्जन का साधन भी गाव मे बिठाना आवश्यक हो गया। उस समय वैद्य बाकेलाल जी ने फार्मेसी के व्यवसाय के लिए एक पत्रिका की आवश्यकता को समझा और काम छेड दिया। "धन्वन्तरि" सम्पादन का कार्य श्री केला जी को सौंप दिया गया। अतिरिक्त समय मे उसी गाव मे केला जी ने अग्रेजी का अल्प ज्ञान रखने वालो के लिए डाक द्वारा अग्रेजी सिखाने के पाठ छपवा कर दूर-२ प्रान्तो मे भेजे। वह भी उन्होने कुछ माह या साल नही पूरे २५ साल तक व्यवसाय रूपसे चलाया।

धन्वन्तरि बहुत समय तक हैण्ड प्रेस व ट्रेडिल मशीनो पर छपा। सिलेण्डर मशीन उसके प्रेस मे स्थापना के दस साल बाद ही लग गयी थी। सामान्य मासिकों में बड़े पैमाने पर [illegible] विशेषांक निकाले जिन्हें ४० वर्ष बाद [illegible] जाता है। आकर्षक मुखपृष्ठ, [illegible] के [illegible] से सज्जित जैसा आयुर्वेद की सम्पन्न पत्रिकाओं में देखने में नहीं मिलते। केला जी का धन्वन्तरि पर [illegible] सम्पर्क १९३८ तक रहा। [illegible] प्रवास में काम [illegible] और दिल्ली के [illegible] (स्वामी ब्रह्मानन्द [illegible] उस समय [illegible]) [illegible] धन्वन्तरि के लिए दिल्ली में सामग्री जुटाने, [illegible] लिखवाने, कलकत्ता के [illegible] में [illegible] यह काम "धन्वन्तरि" से हटने के बाद भी उसी लिए करते रहे थे। "धन्वन्तरि" के [illegible] उठा और [illegible] का ही परिणाम था कि आयुर्वेद जगत से केला जी का सम्पर्क टूट जाने और दैनिक समाचार पत्र व्यवसाय में लग जाने के २५ साल बाद भी उन्हें आयुर्वेद सम्मेलन के निमन्त्रण और आयुर्वेद की मानद उपाधियां प्राप्त होती रही थीं। सन् १९७४ मे स्वर्गवास से कुछ वर्ष पूर्व लखनऊ मे आयुर्वेद पत्रकार सम्मेलन मे आग्रह करके सभापतित्व के लिए बुलाया गया था। उन्हे यह प्रतिष्ठा धन्वन्तरि मे हुए कार्यों के कारण ही तो मिली। ६८ वर्ष की अवस्था मे वे दूर कलकत्ता चुपचाप जा बसे और वहा निर्धन वर्ग की चिकित्सा व अन्य सहायता सेवा करने के साथ साथ छोटे साधनो से ही उस तूफानी नगरी मे त्रिगापी दैनिक पत्र का प्रकाशन स्वास्थ्य के साथ न देने पर भी अकेले शुरू कर दिया। लेकिन काम और काम करने की अभिलाषा के साथ ३० अगस्त १९७४ को कलकत्ता के अस्पताल मे लीवर के आपरेशन के बाद उनका स्वर्गवास हो गया। आगरा का प्रसिद्ध दैनिक पत्र "उजाला" आपके द्वारा फैलाया गया उजाला ही है। आगरा के दैनिक "अमर उजाला" के प्रधान सम्पादक श्री डोरी लाल अग्रवाल आपके प्रमुख सहयोगी रह चुके है।

आपका समस्त जीवन पत्रकारिता मे ही बीता। पत्रकारिता के जीवन का प्रारम्भ "धन्वन्तरि" से हुआ तथा उजाला फैलाते हुए पूर्व की ओर जाकर कलकत्ता मे "त्रिगापी दैनिक पत्र" निकालते हुए तिरोहित हो गया।

स्वर्गीय वैद्य देवी शरण गर्ग

स्वर्गीय वैद्यराज श्री राधावल्लभ जी के सुपुत्र मेरे पूज्य पित्राग्रज (ताऊजी) स्व० श्री वैद्य देवीशरण गर्ग का जन्म आषाढ कृष्णा ६ सम्वत् १९६८ तदनुसार १८ जून १९११ को हुआ। आपके मात्र १ भाई (पूज्य पिता जी) श्री ज्वालाप्रसाद जी अग्रवाल का जन्म आपसे २। वर्ष उपरान्त हुआ। जब आपकी आयु ७ वर्ष की थी तभी आपके पिता जी देवलोक प्रस्थान कर गये तथा आपकी माता जी (मेरी दादी) ने ही आपका लालन पालन किया। आपकी माता जी बहुत ही सरल स्वभाव की तथा धर्म परायणा स्त्री थी जिनका कि स्वर्गवास मई १९५४ मे हुआ। पूज्य दादी जी की स्मृति अब भी कभी-कभी विह्वल कर देती है। अस्तु। पूज्य दादी जी ने ही अपनी दोनो सन्तानो को सदैव अपने पिता की तरह आगे बढने की प्रेरणा दी तथा दोनो के मानस मे आयुर्वेद के बीज अकुरित किये।

आपकी शिक्षा प्राइमरी तक विजयगढ पाठशाला मे हुई। तत्पश्चात् सोरों मे मेहता संस्कृत महाविद्यालय मे गुरु जी श्री गगा वल्लभ जी पाण्डेय के सान्निध्य मे सस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् खुर्जा मे श्री प नारायण दत्त जी के मुख्य आचार्यत्व मे सचालित आयुर्वेद महाविद्यालय मे आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की तथा जयपुर की आयुर्वेदीय परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आप विजयगढ आगये।

बिजयगढ आकर आप व्यावसयिक कार्यो मे अपने मामा जी स्व० श्री बाकेलाल गुप्त के साथ कार्य करने एव हाथ बटाने लगे। अगस्त १९४६ मे कतिपय मनोमालिन्य के कारण आप तथा पूज्य पिता जी अपने मामा जी को १,२५,००० रु० देकर तथा सम्पूर्ण व्यवसाय अपने हाथो मे लेकर उनसे अलग हो गये। आपने तथा पूज्य पिताजी ने सहयोगपूर्वक कार्य किया तथा दोनो ने मिल कर व्यवसाय को कम से कम चार-पाच गुने स्तर पर पहुचा दिया। तभी कतिपय कारणो से दोनो भाईयो के बीच मे कुछ मनोमालिन्य बढता गया तथा दोनो ने व्यवसाय का बटवारा १ अक्टूबर १९७२ को कर लिया। पूज्य पिताजी सदैव कठिन परिश्रम- पूर्वक तथा अपने बड़े भाई के निर्देशन मे उनकी आज्ञा पूर्वक सम्पूर्ण व्यवसाय सभालते आ रहे थे कभी कोई ननु नच न करते थे लेकिन बटवारे के पश्चात् उनके अलीगढ चले आने पर सम्पूर्ण कार्यभार श्री देवीशरण गर्ग पर आ पडा। पहले भी वह कुछ बीमार रहते थे अब और भी स्वास्थ्य गिर गया तथा १८ मार्च ७४ को इस असार ससार को छोड कर सबको रोता विलखता छोड सदैव के लिये महाप्रयाण कर गये। आपके निधन पर विजयगढ वासियो तथा "धन्वन्तरि" के लेखको, पाठको एव अन्य सम्पर्क मे आने वाले सज्जनो को कितना दुःख हुआ, कितनी श्रद्धाजलियां समर्पित की गईं इनका सग्रह किया जाय तो पृथक ही एक ग्रन्थ बन जायेगा। इतना अवश्य है कि आप कठिन परिश्रमी, सकट के समय धैर्यवान, दूरदर्शी एव सूझ वाले, दृढ निश्चयी, आशावान तथा प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे।

धन्वन्तरि के वर्तमान सम्पादक

श्री ज्वाला प्रसाद अग्रवाल

मेरे पूज्य पिताजी श्री ज्वाला प्रसाद जी अग्रवाल बी एस्-सी, जो कि इस समय "धन्वन्तरि" के प्रधान सम्पादक है का जन्म १ अगस्त १९१३ को हुआ। आपके पिता का नाम स्व० ला० राधा वल्लभ जी वैद्यराज था जो कि आयुर्वेद के अपने समय के अग्रणी विद्वान थे। आपके एक मात्र भाई स्व० वैद्य देवीशरण गर्ग थे जो आपसे २। वर्ष बडे थे। आपसे बडी एक बहिन सरस्वती देवी भी थी जो कि ३ वर्ष की आयु मे कालकवलित हो गई। जब आपकी आयु मात्र ४ वर्ष की थी तो आपके पिता (मेरे पितामह) का स्वर्गवास हो गया तथा आपकी माताजो ने ही आपका पालन-पोषण किया। आपकी माताजी बहुत ही सरल स्वभाव की, धर्म परायणा, परिश्रमी महिला थी तथा उनके सद्गुणो की छाप आप पर भी पर्याप्त पडी। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा विजयगढ ही हुई। अग्रेजी की शिक्षा आपने विजयगढ से लगभग १८ मील की दूरी पर स्थित नगर हाथरस मे फूलचन्द बागला कालेज मे प्राप्त की। तत्पश्चात् आप आगरा कालेज आगरा चले गये और सन् १९३६ मे बी एस्-सी (जीव शास्त्र) उत्तीर्ण किया। पठन–पाठन मे आप कठोर परिश्रमी रहे। बी एस्-सी करने के पश्चात् आप विजयगढ आ गये तथा उसी समय स्व० गणपतिचन्द्र केला अपना चुनाव "वीर अर्जुन" देहली के सम्पादक पद पर होने के कारण देहली चले गये। इस कारण तुरन्त आपने "धन्वन्तरि" का सम्पादन करना प्रारम्भ कर दिया। जिस समय आपने "धन्वन्तरि" का कार्य सभाला उस समय ग्राहक सख्या मात्र १०८३ थी जो कि पूज्य पिताजी को अभी तक स्मरण है। अब 'धन्वन्तरि' १७५०० छप रहा है अर्थात् लगभग १६ गुना। यह आपके कठोर तप का ही फल है। धन्वन्तरि के सम्पादन मे तभी से आपका निरन्तर सक्रिय सहयोग चला आ रहा है। वैसे औषधि–निर्माण, पैकिंग एव सप्लाई व्यवस्था भी आप अच्छी प्रकार से सभालते थे।

अगस्त सन् १९४६ मे आप तथा आपके बडे भाई अपने मामाजी से १,२५,००० रु० देकर तथा सम्पूर्ण व्यवसाय दोनो भाई सभाल कर उनसे पृथक हो गए। आपने सम्पूर्ण व्यवसाय को सभी प्रकार सभाला तथा उसे ४–५ वर्ष मे ही ५–६ गुना [illegible] किया। जिस समय आपने धन्वन्तरि का कार्य भार अपने मामा जी से सन् १९४८ मे सभाला था उस समय ग्राहक सख्या ८१०० थी। परिवार वालो से आप तथा भाई से पृथक होकर सन् १९५२ मे [illegible] भाग मे 'धन्वन्तरि' के प्रकाशन का अधिकार तथा भाग की मशीनें लेकर एव विजयगढ [illegible] जायदाद तथा सम्पूर्ण व्यापार अपने बडे भाई को सौंप कर [illegible] आ गये तथा यहा से "धन्वन्तरि" के प्रधान सम्पादकत्व का भार सभाले है। आप सदैव से "धन्वन्तरि" को पूर्णतया सभाला। इस कारण इनसे व्यापार होने के कारण ही अत्यन्त मुनाफा देने वाला औषधि निर्माण एव बिक्री का व्यवसाय छोड दिया तथा "धन्वन्तरि" को लिया जिससे कि किसी भी प्रकार के लाभ की आशा नहीं थी तथा न ही उससे लाभ लेने का प्रयास किया गया। सन् ७३–७४ मे तो कागज की महगाई ने कमर तोड दी है फिर भी आपने 'धन्वन्तरि' के आकार मे कमी करना स्वीकार नही किया है। धन्वन्तरि ही आपका जीवन है। यह भी एक सयोग ही है कि अगस्त १९१३ मे आपका जन्म हुआ है और उसी समय अर्थात् अगस्त १९१३ मे ही धन्वन्तरि के पूर्ववर्ती "आरोग्य सिन्धु" का प्रथम प्रकाशन मेरे पूज्य पितामह ने प्रारम्भ किया। आरोग्य सिन्धु का नाम ही कतिपय वर्ष पश्चात् "धन्वन्तरि" कर दिया गया था। इस प्रकार से आपका तथा धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव साथ साथ ही हुआ है। वैसे सन् ३६ मे सन् ७६—अर्थात् ४० वर्ष की दीर्घ अवधि तक आपने "धन्वन्तरि" की साज सवार की है। आप कठोर परिश्रमी एव शीघ्रता मे कार्य निपटाने वाले व्यक्ति है। भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना है कि आप शतायु हो तथा अधिक से अधिक समय तक "धन्वन्तरि" के सजाने सवारने, सम्पादन करने मे सक्षम रहे एव मेरा मार्ग निर्देशन करते रहे।

धन्वन्तरि के सम्पादक

डा० दाऊदयाल गर्ग

ए० एम० बी० एस०, आयु० बृह०

मेरा जन्म विजयगढ ही ८ जनवरी १९३७ को हुआ। पिता का नाम श्री ज्वाला प्रसाद अग्रवाल जी वी एस्-सी प्रधान सम्पादक "धन्वन्तरि" हे। हाईस्कूल उत्तीर्ण करने के पश्चात् अलीगढ विश्वविद्यालय मे २ वर्ष अध्ययन किया

तथा परीक्षा उत्तीर्ण कर हरिद्वार मे ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज के बी०आई०एम०एस० पचवर्षीय डिग्री कोर्स मे प्रवेश लिया। सन् १९५७ मे इस डिग्री को बदल कर ए०,एम०वी०एस० कर दिया गया। सन् १९५९ मे ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज से ए०, एम०वी०एस० परीक्षा उत्तीर्ण की। परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही विजयगढ आ गया तथा "धन्वन्तरि" के सम्पादन मे सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया। हरिद्वार से शिक्षणकाल मे भी मैने कतिपय लेख प्रकाशनार्थ "धन्वन्तरि" मे भेजे थे तथा प्रकाशित किये गये थे लेकिन सक्रिय सहयोग देना सितम्बर १९५९ से प्रारम्भ किया। सन् १९६० मे "नारी-रोगाङ्क" के कई लेख लिखे तथा विषयानुसार अनेक चित्रो का चयन, लेखो का चयन एव उनकी काट-छाँट परिवर्द्धन किया। इस पद्धति को पाठको, विद्वानो ने वहुत पसन्द किया। सन् १९६२ मे प्रकाशित विशेषाक "शिशुरोगाङ्क" भी इसी ढग से प्रकाशित किया ।

मैने जून १९६० से दाऊ मैडीकल स्टोर्स का काम सभाला तथा इसकी सप्लाई मे ८ १० गुनी वढोत्तरी की। उचित मूल्य पर अच्छा सामान शीघ्र ही भेजना यह परम उद्देश्य मेरे सामने थे । ग्राहको ने भी इस योजना को पसन्द किया तथा उनसे पूरा सहयोग मिला।

अक्टूवर १९७२ मे विजयगढ छोडकर अव अलीगढ ही आ गया हू तथा "धन्वन्तरि" को सजाना, सवारना, उसमे उत्तमोत्तम पाठ्य सामग्री प्रदान करना एव दाऊ मैडीकल स्टोर्स द्वारा वैद्य वन्धुओ की दैनन्दिनी आवश्यकताये पूरी करना — बस यही दो उद्देश्य इस समय मेरे समक्ष है। बस भगवान से यही प्रार्थना है कि वैद्य बन्धुओ की सेवार्थ मुझे अधिकाधिक अवसर मिलते रहे तथा उनकी पूर्ति मे मै सक्षम रहू।

साहित्य क्षेत्र — "धन्वन्तरि" मे मेरे लेख प्रकाशित होते रहते हैं। यन्त्र शस्त्र परिचय, ड्रग एक्ट, एव आयुर्वेद पर ड्रग एक्ट यह तीन पुस्तके मैंने लिखी है। यन्त्र शस्त्र परिचय का द्वितीय सस्करण हो गया है। आयुर्वेद पर ड्रग एक्ट पुस्तक का समावेश ड्रग एक्ट के द्वितीय सस्करण मे कर लिया गया तथा अव ड्रग एक्ट का यह द्वितीय सस्करण भी समाप्त हो गया हे।

चिकित्सा क्षेत्र — विजयगढ मे रहने की अवधि मे चिकित्सा कार्य पर्याप्त चलता था। प्रतिदिन प्रात से दोपहर तक का समय रुग्णो की सेवा मे ही व्यतीत होता था। यही प्रयत्न होता था कि किसी भी रोग से ग्रसित रोगी आवे ठीक होकर ही जावे तथा भगवान धन्वन्तरि की कृपा से प्राय यही होता था। अव अलीगढ़ आने पर कतिपय पारिवारिक कठिनाइयो के कारण रुग्णजनो की सेवा का कार्य अवरुद्ध प्राय है।

धन्वन्तरि के विशेष सम्पादक

डा० दाऊदयाल गर्ग ए., एम-बी. एस. सम्पादक धन्वन्तरि

धन्वन्तरि के प्रथम विशेष सम्पादक

वैद्यभूषण प्राचार्य स्व० प० गोवर्धन शर्मा छांगाणी

श्री छागाणी जी का जन्म जोधपुर राज्य के पोकरण नगर मे सवत् १९३३ के आश्विन शुक्ला १०को प्रात स्मरणीय पडित जीतमल जी के घर हुआ था। आप अपने सब बन्धुओ मे प्रखर बुद्धि वाले हुए। आपके समय का कोई

विरला ही वैद्य होगा जो उस समय आपके नाम से परिचित न रहा हो। आप सस्कृत, अग्रेजी, फारसी, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि ६ भाषाओ पर पूर्ण अधिकार रखते थे। आप आयुर्वेद के ही नही न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि शास्त्रो के भी महान पण्डित थे। काशी आदि विद्यापीठ प्रधान नगरो मे आपको सदैव सम्मान प्राप्त रहा। निखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल आदि कई सस्थाओ के आप अध्यक्ष रहे। और वैद्य सम्मेलन पत्रिका का कई वर्ष सम्पादन किया। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के परीक्षक रहे। आप श्री धन्वन्तरि महाविद्यालय के सस्थापक तथा आचार्य रहे तथा अनेको शिष्य भारत के कोने कोने मे मौजूद है। धन्वन्तरि के आदि सस्थापक स्व० राधावल्लभ जी (मेरे पितामह) से आपका अत्यन्त स्नेहपूर्ण व्यवहार रहा था।

आपने "धन्वन्तरि" के इतिहास मे स्थायी सम्पादकों के अतिरिक्त किसी विशेष विषय मे पारङ्गत किसी अन्य विद्वान द्वारा विशेष सम्पादन करने की परम्परा का सूत्रपात किया। आपने फरवरी १९३४ मे 'सिद्ध योग अक' का सम्पादन किया जो कि आपकी विद्वता का प्रतीक है।

स्व० वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिह डी एस. सी.

आपका जन्म उदयपुर स्टेट (राजस्थान) मे एक कुलीन जागीरदार के घर सवत् १९६२ के जून माह की ३ ता० को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा मध्यमा आचार्य सस्कृत और अग्रेजी की उदयपुर मे हुई।

आयुर्वेद की शिक्षा दीक्षा मद्रास आयुर्वेदिक कालेज मे वैद्यरत्न प० श्री गोपालाचार्लु गारु की अध्यक्षता मे हुई। वहा से प्रथम श्रेणी में प्रथम पद से उत्तीर्ण महा-

महोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन एम ए एल एम एस की अध्यक्षता मे कल्पतरु आयुर्वेदिक विद्यालय कलकत्ता मे शिक्षा प्राप्त की। साथ ही साथ आप कार्माइल मैडीकल कालेज मे भी पढते रहे। उभयविद ज्ञान प्राप्त कर आपने

धन्वन्तरि के इतिहास की झलक एवं संस्थापक परिचय

-डा० दाऊ दयाल गर्ग, ए.एम.बी.एस. आयु वृह०
सम्पादक-'धन्वन्तरि'

※ धन्वन्तरि के आविर्भाव की कहानी ※

धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव किन परिस्थितियो मे किस प्रकार हुआ तथा वह किस प्रकार से शनै शनै उन्नति की ओर अनेक सामयिक झझावातो को झेलता हुआ आगे वढता गया, इसके वारे मे सही अधिकृत जानकारी देने वाला कोई उपयुक्त व्यक्ति उपलव्ध नही है। सब काल के गाल मे समा गये। जो कुछ जानकारी मुझे धन्वन्तरि की गत फाइलो से ज्ञात हुई है, उसको ही सक्षेप मे आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हू।

धन्वन्तरि के वर्तमान मुख्य सम्पादक पूज्य पिताजी श्री ज्वाला प्रसाद जी अग्रवाल B Sc के पूज्य पिता तथा मेरे पितामह आयुर्वेद के मार्मिक विद्वान और विलक्षण वैद्य स्व० श्री राधाबल्लभ जी वैद्यराज ने सर्वप्रथम सवत् १९७० म 'आरोग्य-सिन्धु' नामक-पत्र निकाला जो बहुत लोकप्रिय रहा। 'आरोग्य-सिन्धु' कितने समय निकला ज्ञात नही होता लेकिन स्व० श्री वैद्य राधाबल्लभ जी वैद्यराज ने ही इसका नाम बदल कर धन्वन्तरि कर दिया। यह नामकरण क्यो एव कब कर दिया गया, ज्ञात नही होता, परन्तु कुछ समय धन्वन्तरि आपके सम्पादकत्व मे प्रकाशित होता रहा फिर आपका स्वर्गवास अल्प आयु मे ही अकस्मात् हो गया तथा धन्वन्तरि का प्रकाशन रुक गया।

पाँच वर्ष तक प्रकाशन रुके रहने के बाद पुन चैत्र पूर्णिमा १९८० तदनुसार अप्रैल १९२२ को धन्वन्तरि का प्रकाशन श्री ज्वालाप्रसाद जी अग्रवाल के मामाजी स्व० वैद्य श्री बाकेलाल गुप्त के सम्पादन मे प्रारम्भ हुआ। उस समय धन्वन्तरि का आकार वर्तमान समय के आकार से आधा किताबी साइज मे था और दो रुपये मात्र मे ग्राहको को वर्ष भर मिलता था। उस समय ग्राहको को दो रुपये मूल्य की पुस्तके भी उपहार स्वरूप दी जाती थी।

इस तरह धन्वन्तरि के विशाल वृक्ष का बीजारोपण स्व० श्री वैद्य राधावल्लभ जी वैद्यराज द्वारा हुआ और स्व० वैद्य श्री बाँकेलाल गुप्त के कर कमलो द्वारा अभिसिचित होकर हम सभी को आरोग्य प्रदान कर रहा है। धन्वन्तरि का पुन प्रकाशन चूकि चैत्र पूर्णिमा १९८० अर्थात् अप्रैल १९२२ से नियमित चलता रहा है। अत उसे ही हम 'धन्वन्तरि' का प्रथम वर्ष मानकर चलते है। धन्वन्तरि के आविर्भाव की इस सक्षिप्त कहानी मे तब से अब तक विभिन्न आयुर्वेद मनीषियो का वरदहस्त प्राप्त हुआ है। उन सभी आयुर्वेद ज्ञाताओ का परिचय सेवाकार्य आदि आगामी पृष्ठो मे दिया जा रहा है।

※
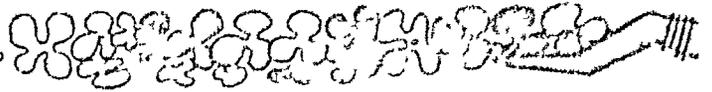
'धन्वन्तरि' के संस्थापक-सम्पादक

स्वर्गीय ला० राधाबल्लभ जी वैद्यराज

श्री ज्वालाप्रसाद अग्रवाल के पिता स्व० राधावल्लभ वैद्यराज (मेरे पितामह) ने अगस्त १९१३ में नवप्रथम "आरोग्य सिन्धु" नाम से आयुर्वेदिक मासिक पत्रिका प्रारम्भ की थी। आरोग्य सिन्धु को २-३ वर्ष प्रकाशित कर इसका नाम बदल कर उन्होंने ही "धन्वन्तरि" कर दिया। कुछ समय "धन्वन्तरि" आपके जीवन काल मे प्रकाशित हुआ तथा अल्पायु ही मे देहावसान हो जाने के कारण "धन्वन्तरि" का प्रकाशन रुक गया। आपके देहावसान के पश्चात् विक्रमी संवत् १९८० मे "धन्वन्तरि" का प्रकाशन पुन प्रारम्भ हुआ तथा उस समय से निरन्तर प्रकाशित होते रहने के कारण ही हम उसे "धन्वन्तरि" का प्रथम वर्ष मानकर चलते रहे है।

पूज्य पितामह के जीवन के बारे मे बहुत अल्प जानकारी उपलब्ध है। आपने बहुत ही अल्पायु मे संस्कृत ज्ञान मे अच्छी प्रगति कर ली। इसके पश्चात् जयपुर तथा पीलीभीत के आयुर्वेदिक विद्यालयो मे आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की। अपनी तीव्र बुद्धि, निर्लोभ स्वभाव तथा चिकित्सा सम्बन्धी अगाध ज्ञान के कारण अत्यन्त अल्पायु मे ही आप अखिल भारतीय प्रसिद्धि के वैद्य विद्वानो की पंक्ति मे आ गये और उनका चिकित्सा क्षेत्र अन्तर्प्रान्तीय हो गया। संग्रहणी रोग के अपने समय के श्रेष्ठतम चिकित्सक थे, और इस रोग के सहस्रो असाध्य समझे जाने वाले रोगियो को पूर्ण आरोग्य लाभ कराकर अनेक बार एलोपैथिक चिकित्सको को आश्चर्य मे डाल दिया था। एक बार अखिल भारतीय मैडीकल एसोसियेशन के मुख पत्र "मैडीकल जनरल" मे आपकी चिकित्सा प्रणाली पर कई माह तक चर्चा चलती रही थी। पूज्य पितामह जी की इच्छा थी कि संग्रहणी तथा क्षय रोग को सर्वथा निर्मूल कर देने वाली औषधिया आविष्कृत की जाँय और इस सम्बन्ध मे वह प्रयत्न कर ही रहे थे। लेकिन परमात्मा को यह स्वीकार नही था जिससे मई सन् १९१८ को काल का एक आकस्मिक झोका आया और आयुर्वेद सम्बन्धी अपनी समस्त उच्च आकाक्षाओ तथा लालसाओ को लिये केवल सैंतीस वर्ष की अल्पायु मे ही वे मृत्यु की चिर निद्रा मे सदैव के लिये सोगये। आज जो सज्जन "धन्वन्तरि" की वर्तमान उन्नति के सम्बन्ध मे जिज्ञासा रखते हैं उनसे हमारा यही निवेदन है कि यह मेरे पूज्य पितामह ही सद्प्रयत्नो का परिणाम है और हमारा विश्वास है जब तक हम उनके चरण चिह्नो पर चलते रहेंगे तब तक "धन्वन्तरि" अपने मार्ग की समस्त बाधाओ को रौंदता हुआ इसी सफलता और प्रगति के साथ आयुर्वेद जगत के सेवा मार्ग पर चलता रहेगा। "धन्वन्तरि" को सजाना, संवारना, निखारना तथा उसे सर्वाधिक प्रचलित, जनप्रिय पत्र बनाये रखना ही हम उस पूज्य दिवंगत के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जली समझते हैं तथा आशा है कि इसी से उनकी आत्मा को सच्ची शान्ति प्राप्त होगी।

★ धन्वन्तरि के आदि सम्पादक

स्व० वैद्य बांकेलाल गुप्त

आपका जन्म अलीगढ मे अग्रवाल कुल भूषण श्री ला. मक्खनलाल जी के यहा हुआ। आप दो भाई व दो बहिन थे। एक बहिन की विजयगढ एव दूसरी की हाथरस मे शादी हुई थी। बडे भाई का नाम ला० प्यारेलाल था जो अलीगढ ही रहे। स्व० बांकेलाल जी के बहनोई वैद्यराज स्व० राधावल्लभ (मेरे पितामह) थे जो विजयगढ निवासी थे। स्व० बांकेलाल जी अपने यौवन काल मे ही विजयगढ आ गये थे और उनकी शिक्षा (आयुर्वेद) अपने बहनोई के पूज्य पिता लाला नारायण दास के पास हुई और उन्ही से क्रियात्मक अनुभव भी ग्रहण किया। उसी समय वैद्यराज राधावल्लभ जी का स्वर्गवास ३७ वर्ष की अल्पायु मे ही हो गया। इस समय उनके पुत्र रत्न श्री देवीशरण एव ज्वाला प्रसाद जी अल्पायु मे थे अत सर्व सम्मति से विजयगढ स्थित सम्पूर्ण व्यापार का भार वैद्य बांकेलाल जी पर डाल दिया गया। उस समय औषधि निर्माण एव विक्रय कार्य बहुत ही साधारण रूप मे चालू था। आपने अपने बुद्धि चातुर्य से उसमे वृद्धि की और धन्वन्तरि मासिक का पुन प्रकाशन प्रारम्भ किया।

सन् १९४६ मे घरेलू कारणो से सम्पूर्ण व्यवसाय का बटवारा हो गया और वैद्य जी ने प्राणाचार्य भवन की नीव डाली तथा प्राणाचार्य मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ किया। आपने उसके सचालन मे दिन रात परिश्रम करके इसको काफी प्रसिद्ध किया। सन् १९५६ को ३ अगस्त के दिन आपका स्वर्गवास ५ मास की लम्बी बीमारी से हो गया। आपने अपने पश्चात् अपनी पत्नी दो पुत्र श्री गोपाल एव कृष्ण गोपाल तथा ४ पुत्री छोडी।

स्व० गणपति चन्द्र केला

विजयगढ़ में सन् १९०७ में मारवाड़ी परिवार में गणपति चन्द्र जी अपने आधा दर्जन भाइयों में सबसे छोटे थे। ६ वर्ष की आयु में रामायण से परिचय कराया गया तो उन्होंने कण्ठस्थ कर डाला। संस्कृत के अन्य ग्रन्थ भी कण्ठस्थ कर लिये। उस समय हिन्दी संस्कृत के मान्य ग्रन्थों का ज्ञान अपनी स्कूली शिक्षा के साथ-साथ करते गये। गणपति चन्द्र जी की शिक्षा विजयगढ़ के बाद सवाना, बड़ौदा और कलकत्ता में भाइयों के व्यवसाय और प्रवास के अनुसार चली। परिवार गाव लौटा तो अर्जन का साधन भी गाव में बिठाना आवश्यक हो गया। उस समय वैद्य बांकेलाल जी ने फार्मेसी के व्यवसाय के लिए एक पत्रिका की आवश्यकता को समझा और काम छेड़ दिया। "धन्वन्तरि" सम्पादन का काम श्री केला जी को सौंप दिया गया। अतिरिक्त समय में उसी गाव से केला जी ने अंग्रेजी का अल्प ज्ञान रखने वालों के लिए डाक द्वारा अंग्रेजी सिखाने के पाठ छपवा कर दूर-२ प्रान्तों में भेजे। वह भी उन्होंने कुछ माह या साल नहीं पूरे २५ साल तक व्यवसाय रूपमें चलाया।

धन्वन्तरि बहुत समय तक हैण्ड प्रेस व ट्रेडिल मशीनों पर छपा। सिलेण्डर मशीन उसके प्रेस में [illegible]

[illegible]

... सन् १९७४ में [illegible] आयुर्वेद [illegible] के लिए बुलाया गया था। [illegible] के साथ ३० अगस्त १९७४ को कलकत्ता के अस्पताल में लीवर के आपरेशन के बाद उनका स्वर्गवास हो गया। आगरा का प्रसिद्ध दैनिक पत्र "उजाला" आपके द्वारा फैलाया गया उजाला ही है। आगरा के दैनिक "अमर उजाला" के प्रधान सम्पादक श्री डोरी लाल अग्रवाल आपके प्रमुख सहयोगी रह चुके हैं।

आपका समस्त जीवन पत्रकारिता में ही बीता। पत्रकारिता के जीवन का प्रारम्भ "धन्वन्तरि" से हुआ तथा उजाला फैलाते हुए पूर्व की ओर जाकर कलकत्ता में "त्रिभाषी दैनिक पत्र" निकालते हुए तिरोहित हो गया।

स्वर्गीय वैद्य देवी शरण गर्ग

स्वर्गीय वैद्यराज श्री राधावल्लभ जी के सुपुत्र मेरे पूज्य पिताग्रज (ताऊजी) स्व० श्री वैद्य देवीशरण गर्ग का जन्म आषाढ कृष्णा ६ सम्वत् १९६८ तदनुसार १८ जून १९११ को हुआ। आपके मात्र १ भाई (पूज्य पिता जी) श्री ज्वालाप्रसाद जी अग्रवाल का जन्म आपसे २। वर्ष उपरान्त हुआ। जब आपकी आयु ७ वर्ष की थी तभी आपके पिता जी देवलोक प्रस्थान कर गये तथा आपकी माता जी (मेरी दादी) ने ही आपका लालन पालन किया। आपकी माता जी बहुत ही सरल स्वभाव की तथा धर्म परायणा स्त्री थी जिनका कि स्वर्गवास सन् १९५४ मे हुआ। पूज्य दादी जी की स्मृति अब भी कभी-कभी विह्वल कर देती है। अस्तु। पूज्य दादी जी ने ही अपनी दोनो सन्तानो को सदैव अपने पिता की तरह आगे बढने की प्रेरणा दी तथा दोनो के मानस मे आयुर्वेद के बीज अकुरित किये।

आपकी शिक्षा प्राइमरी तक विजयगढ पाठशाला मे हुई। तत्पश्चात् मोरो मे मेहता सस्कृत महाविद्यालय मे गुरु जी श्री गगा बल्लभ जी पाण्डेय के सान्निध्य मे सस्कृत की शिक्षा प्राप्त की। तत्पश्चात् खुर्जा मे श्री प नारायण दत्त जी के मुख्य आचार्यत्व मे सचालित आयुर्वेद महाविद्यालय मे आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की तथा जयपुर की आयुर्वेदीय परीक्षा उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् आप विजयगढ आगये।

विजयगढ आकर आप व्यावसयिक कार्यो मे अपने मामा जी स्व० श्री बाकेलाल गुप्त के साथ कार्य करने एव हाथ बटाने लगे। अगस्त १९४६ मे कतिपय मनोमालिन्य के कारण आप तथा पूज्य पिता जी अपने मामा जी को १,२५,००० रु० देकर तथा सम्पूर्ण व्यवसाय अपने हाथो मे लेकर उनसे अलग हो गये। आपने तथा पूज्य पिताजी ने सहयोगपूर्वक कार्य किया तथा दोनो ने मिल कर व्यवसाय को कम से कम चार-पाच गुने स्तर पर पहुचा दिया। तभी कतिपय कारणो से दोनो भाईयो के बीच मे कुछ मनोमालिन्य बढता गया तथा दोनो ने व्यवसाय का बटवारा १ अक्टूबर १९७२ को कर लिया। पूज्य पिताजी सदैव कठिन परिश्रम- पूर्वक तथा अपने बडे भाई के निर्देशन मे उनकी आज्ञा पूर्वक सम्पूर्ण व्यवसाय सभालते आ रहे थे कभी कोई ननु नच न करते थे लेकिन बटवारे के पश्चात् उनके अलीगढ चले आने पर सम्पूर्ण कार्यभार श्री देवीशरण गर्ग पर आ पडा। पहले भी वह कुछ बीमार रहते थे अब और भी स्वास्थ्य गिर गया तथा १८ मार्च ७४ को इस असार ससार को छोड कर सबको रोता बिलखता छोड सदैव के लिये महाप्रयाण कर गये। आपके निधन पर विजयगढ वासियो तथा "धन्वन्तरि" के लेखको, पाठको एव अन्य सम्पर्क मे आने वाले सज्जनो को कितना दुख हुआ, कितनी श्रद्धाजलिया समर्पित की गईं इनका सग्रह किया जाय तो पृथक ही एक ग्रन्थ बन जायेगा। इतना अवश्य है कि आप कठिन परिश्रमी, सकट के समय धैर्यवान, दूरदर्शी एव सूझ वाले, दृढ निश्चयी, आशावान तथा प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे।

धन्वन्तरि के वर्तमान सम्पादक

श्री ज्वाला प्रसाद अग्रवाल

मेरे पूज्य पिताजी श्री ज्वाला प्रसाद जी अग्रवाल बी एस्-सी, जो कि इस समय "धन्वन्तरि" के प्रधान सम्पादक है का जन्म १ अगस्त १९१३ को हुआ। आपके पिता का नाम स्व० ला० राधा वल्लभ जी वैद्यराज था जो कि आयुर्वेद के अपने समय के अग्रणी विद्वान थे। आपके एक मात्र भाई स्व० वैद्य देवीशरण गर्ग थे जो आपसे २। वर्ष बडे थे। आपसे बडी एक बहिन सरस्वती देवी भी थी जो कि ३ वर्ष की आयु मे कालकवलित हो गई। जब आपकी आयु मात्र ४ वर्ष की थी तो आपके पिता (मेरे पितामह) का स्वर्गवास हो गया तथा आपकी माताजी ने ही आपका पालन-पोषण किया। आपकी माताजी बहुत ही सरल स्वभाव की, धर्म परायणा, परिश्रमी महिला थी तथा उनके सद्गुणो की छाप आप पर भी पर्याप्त पडी। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा विजयगढ ही हुई। अंग्रेजी की शिक्षा आपने विजयगढ से लगभग १८ मील की दूरी पर स्थित नगर हाथरस मे फूलचन्द बागला कालेज मे प्राप्त की। तत्पश्चात् आप आगरा कालेज आगरा चले गये और सन् १९३६ मे बी एस्-सी (जीव शास्त्र) उत्तीर्ण किया। पठन–पाठन मे आप कठोर परिश्रमी रहे। बी एस्-सी करने के पश्चात् आप विजयगढ आ गये तथा उसी समय स्व० गणपतिचन्द्र केला अपना चुनाव "वीर अर्जुन" देहली के सम्पादक पद पर होने के कारण देहली चले गये। इस कारण तुरन्त आपने "धन्वन्तरि" का सम्पादन करना प्रारम्भ कर दिया। जिस समय आपने "धन्वन्तरि" का कार्य सभाला उस समय ग्राहक सख्या मात्र १०८३ थी जो कि पूज्य पिताजी को अभी तक स्मरण है। अब 'धन्वन्तरि' १७५०० छप रहा है अर्थात् लगभग १६ गुना। यह आपके कठोर तप का ही फल है। धन्वन्तरि के सम्पादन मे तभी से आपका निरन्तर सक्रिय सहयोग चला आ रहा है। वैसे औषधि–निर्माण, पैकिंग एव सप्लाई व्यवस्था भी आप अच्छी प्रकार से सभालते थे।

अगस्त सन् १९४६ मे आप तथा आपके बड़े भाई अपने मामाजी को १,२५,००० रु० देकर तथा सम्पूर्ण व्यवसाय दोनो स्वय सभाल कर उनसे पृथक हो गये। आपने सम्पूर्ण व्यवसाय को भली प्रकार सभाला तथा उसे ४–५ वर्ष मे ही ५–६ गुने स्तर पर पहुचा दिया। जिस समय आपने धन्वन्तरि का कार्य भार अपने मामा जी से सन् १९४६ मे सभाला था उस समय ग्राहक सख्या ४१०० थी। कतिपय कारणो से आप अपने भ्राता से पृथक होकर सन् १९७२ के अक्टूबर मास मे 'धन्वन्तरि' के प्रकाशन का अधिकार तथा मात्र दो मशीनें लेकर एव विजयगढस्थ अधिकाश जायदाद तथा सम्पूर्ण व्यवसाय अपने बडे भाई को सौपकर अलीगढ आ गये तथा यहा से "धन्वन्तरि" के प्रधान सम्पादकका कार्य भार सभाल रहे है। आपने सदैव से "धन्वन्तरि" को पूर्णरूपेण सभाला इस कारण इससे लगाव होने के कारण ही अत्यन्त मुनाफा देने वाला औषधि निर्माण एव बिक्री का व्यवसाय छोड दिया तथा "धन्वन्तरि" को लिया जिससे कि किसी भी प्रकार के लाभ की आशा नही थी तथा न ही इससे लाभ लेने का प्रयास किया गया। सन् ७३–७४ मे तो कागज की महगाई ने कमर तोड दी है फिर भी आपने 'धन्वन्तरि' के आकार मे कमी करना स्वीकार नही किया है। धन्वन्तरि ही आपका जीवन है। यह भी एक सयोग ही है कि अगस्त १९१३ मे आपका जन्म हुआ है और उसी समय अर्थात् अगस्त १९१३ मे ही धन्वन्तरि के पूर्ववर्ती "आरोग्य सिन्धु" का प्रथम प्रकाशन मेरे पूज्य पितामह ने प्रारम्भ किया। आरोग्य सिन्धु का नाम ही कतिपय वर्ष पश्चात् "धन्वन्तरि" कर दिया गया था। इस प्रकार से आपका तथा धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव साथ साथ ही हुआ है। वैसे सन् ३६ से सन् ७६—अर्थात् ४० वर्ष की दीर्घ अवधि तक आपने "धन्वन्तरि" की साज सवार की है। आप कठोर परिश्रमी एव शीघ्रता से कार्य निपटाने वाले व्यक्ति है। भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना है कि आप शतायु हो तथा अधिक से अधिक समय तक "धन्वन्तरि" के सजाने सवारने, सम्पादन करने मे सक्षम रहे एव मेरा मार्ग निर्देशन करते रहे।

धन्वन्तरि के सम्पादक

डा० दाऊदयाल गर्ग

ए० एम० बी० एस०, आयु० बृह०

मेरा जन्म विजयगढ ही ८ जनवरी १९३७ को हुआ। पिता का नाम श्री ज्वाला प्रसाद अग्रवाल जी बी एस्-सी प्रधान सम्पादक "धन्वन्तरि" है। हाईस्कूल उत्तीर्ण करने के पश्चात् अलीगढ विश्वविद्यालय मे २ वर्ष अध्ययन किया

तथा परीक्षा उत्तीर्ण कर हरिद्वार मे ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज के बी०आई०एम०एस० पचवर्षीय डिग्री कोर्स में प्रवेश लिया। सन् १९५७ मे इस डिग्री को बदल कर ए०,एम०बी०एस० कर दिया गया। सन् १९५९ मे ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज से ए०, एम०बी०एस० परीक्षा उत्तीर्ण की। परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् ही विजयगढ आ गया तथा "धन्वन्तरि" के सम्पादन मे सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया। हरिद्वार से शिक्षणकाल मे भी मैने कतिपय लेख प्रकाशनार्थ "धन्वन्तरि" मे भेजे थे तथा प्रकाशित किये गये थे लेकिन सक्रिय सहयोग देना सितम्बर १९५९ से प्रारम्भ किया। सन् १९६० मे "नारी-रोगाङ्क" के कई लेख लिखे तथा विषयानुसार अनेक चित्रो का चयन, लेखो का चयन एव उनकी काट-छाँट परिवर्द्धन किया। इस पद्धति को पाठको, विद्वानो ने बहुत पसन्द किया। सन् १९६२ मे प्रकाशित विशेषाक "शिशुरोगाङ्क" भी इसी ढग से प्रकाशित किया।

मने जून १९६० से दाऊ मैडीकल स्टोर्स का काम सभाला तथा इसकी सप्लाई मे ८-१० गुनी वढोत्तरी की। उचित मूल्य पर अच्छा सामान शीघ्र ही भेजना यह परम उद्देश्य मेरे सामने थे। ग्राहको ने भी इस योजना को पसन्द किया तथा उनसे पूरा सहयोग मिला।

अक्टूबर १९७२ मे विजयगढ छोडकर अब अलीगढ ही आ गया हू तथा "धन्वन्तरि" को सजाना, सवारना, उसमे उत्तमोत्तम पाठ्य सामग्री प्रदान करना एव दाऊ मैडीकल स्टोर्स द्वारा वैद्य बन्धुओ की दैनन्दिनी आवश्यकताये पूरी करना – बस यही दो उद्देश्य इस समय मेरे समक्ष हैं। बस भगवान से यही प्रार्थना है कि वैद्य बन्धुओ की सेवार्थ मुझे अधिकाधिक अवसर मिलते रहे तथा उनकी पूर्ति मे मै सक्षम रहू।

साहित्य क्षेत्र—"धन्वन्तरि" मे मेरे लेख प्रकाशित होते रहते हैं। यन्त्र शस्त्र परिचय, ड्रग एक्ट, एव आयुर्वेद पर ड्रग एक्ट यह तीन पुस्तके मैने लिखी है। यन्त्र शस्त्र परिचय का द्वितीय सस्करण हो गया हे। आयुर्वेद पर ड्रग एक्ट पुस्तक का समावेश ड्रग एक्ट के द्वितीय सस्करण मे कर लिया गया तथा अब ड्रग एक्ट का यह द्वितीय सस्करण भी समाप्त हो गया है।

चिकित्सा क्षेत्र—विजयगढ मे रहने की अवधि मे चिकित्सा कार्य पर्याप्त चलता था। प्रतिदिन प्रात से दोपहर तक का समय रुग्णो की सेवा मे ही व्यतीत होता था। यही प्रयत्न होता था कि किसी भी रोग से ग्रसित रोगी आवे ठीक होकर ही जावे तथा भगवान धन्वन्तरि की कृपा से प्राय यही होता था। अब अलीगढ आने पर कतिपय पारिवारिक कठिनाइयो के कारण रुग्णजनो की सेवा का कार्य अवरुद्ध प्राय है।

धन्वन्तरि के विशेष सम्पादक

डा० दाऊदयाल गर्ग ए., एम-बी. एस सम्पादक धन्वन्तरि

धन्वन्तरि के प्रथम विशेष सम्पादक

वैद्यभूषण प्राचार्य स्व० प० गोवर्धन शर्मा छागांणी

श्री छागाणी जी का जन्म जोधपुर राज्य के पोकरण नगर मे सवत् १९३३ के आश्विन शुक्ला १०को प्रात स्मरणीय पडित जीतमल जी के घर हुआ था। आप अपने सब बन्धुओ मे प्रखर बुद्धि वाले हुए। आपके समय का कोई
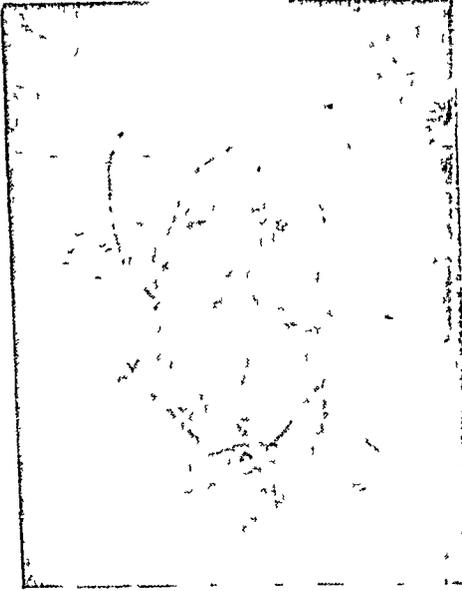
विरला ही वैद्य होगा जो उस समय आपके नाम से परिचित न रहा हो। आप सस्कृत, अग्रेजी, फारसी, हिन्दी, मराठी, गुजराती आदि ६ भाषाओ पर पूर्ण अधिकार रखते थे। आप आयुर्वेद के ही नही न्याय, व्याकरण, साहित्य आदि शास्त्रो के भी महान पण्डित थे। काशी आदि विद्यापीठ प्रधान नगरो मे आपको सदैव सम्मान प्राप्त रहा। निखिल भारतीय आयुर्वेद महामण्डल आदि कई सस्थाओ के आप अध्यक्ष रहे। और वैद्य सम्मेलन पत्रिका का कई वर्ष सम्पादन किया। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के परीक्षक रहे। आप श्री धन्वन्तरि महाविद्यालय के सस्थापक तथा आचार्य रहे तथा अनेको शिष्य भारत के कोने कोने मे मौजूद है। धन्वन्तरि के आदि सस्थापक स्व० गयावल्लभ जी (मेरे पितामह) से आपका अत्यन्त स्नेहपूर्ण व्यवहार रहा था।

आपने "धन्वन्तरि" के इतिहास मे स्थायी सम्पादकों के अतिरिक्त किसी विशेष विषय मे पारङ्गत किसी अन्य विद्वान द्वारा विशेष सम्पादन करने की परम्परा का सूनपात किया। आपने फरवरी १९३४ मे 'सिद्ध योग अक' का सम्पादन किया जो कि आपकी विद्वता का प्रतीक है।

स्व० वैद्यरत्न कविराज प्रतापसिंह डी. एस. सी.

आपका जन्म उदयपुर स्टेट (राजस्थान) मे एक कुलीन जागीरदार के घर सवत् १९६२ के जून माह की ३ ता० को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा मध्यमा आचार्य सस्कृत और अग्रेजी की उदयपुर मे हुई।

आयुर्वेद की शिक्षा दीक्षा मद्रास आयुर्वेदिक कालेज मे वैद्यरत्न प० श्री गोपालाचार्लु गारु की अध्यक्षता मे हुई। वहा से प्रथम श्रेणी मे प्रथम पद से उत्तीर्ण महा-

महोपाध्याय कविराज गणनाथ सेन एम ए एल एम. एस की अध्यक्षता मे कल्पतरु आयुर्वेदिक विद्यालय कलकत्ता मे शिक्षा प्राप्त की। साथ ही साथ आप कार्माइल मैडीकल कालेज मे भी पढते रहे। उभयविद ज्ञान प्राप्त कर आपने

बाबा कालीकमली के यहा आयुर्वेदिक कालेज का सचालन किया। वहा से आकर ललित हरि कालेज मे प्रिंसीपल पद पर कार्य करते रहे। ख्याति होने से आपको पूज्य महामना मालवीय जी महाराज ने हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक और सुपरिण्टेण्डेन्ट हास्पिटल फार्मेसी एव वार्डन पद पर नियुक्त किया। वहा २४ वर्ष तक कार्य करने के बाद आपको राजस्थान के आयुर्वेद विभाग का डायरेक्टर बना दिया गया। वहाँ से मध्य भारत मे इन्दौर के राजकुमार सिह आयुर्वेद कालेज के प्रिंसीपल रहे। फिर अवकाश ग्रहणकर आप गुष्टिका, गाँगेरुकी, जटामासी, जटाशक्करी तरुणकन्द, नागार्जुनी, पुन्नाग (पोलग) एलायती, पपीता के बीज (इगर्नेशिया) भूनाग, श्रृङ्गालक (क्षयरोग) आदि पर अनुसधान किया।

आपने आचार्य आयुर्वेद ट्रस्ट बनाया। उसका एक अस्पताल स्वनामधन्य बिरला परिवार की तरफ से वाराणसी मे सचालित हो रहा है। उसके आप मैनेजिङ्ग ट्रस्टी रहे। आपने यादवाश्रम नाम का एक आश्रम भी बनाया जिसे इस समय बनारस सेवा समिति चला रही है।

सन् १९३३ मे अ० भा० आयुर्वेद काग्रेस के प्रेसीडेण्ट नियुक्त हुए। आपने भारतीय आयुर्वेद की महामण्डल जयन्ती ग्रन्थ प्रकाशित किये। गवर्नमेंट आफ इण्डिया ने आपको वैद्यरत्न की पदवी व पोशाक दी। आपने बोर्ड आफ इण्डियन मैडिसिन यू० पी० की प्राय २६ वर्ष तक सदस्यता की। इसी प्रकार पटना गवर्नमेण्ट आयुर्वेदिक कालेज के गर्वनिग बोर्ड की सदस्यता की। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की वर्षों तक सदस्यता की।

आपने निम्नलिखित साहित्य प्रकाशित किया—

(१) आयुर्वेद खनिज विज्ञान २ भाग

(२) प्रसूति परिचर्या।

(३) जच्चा

(४) आरोग्य सूत्रावली

(५) सैकडो लेख प्रकाशित किये। धन्वन्तरि और प्राणाचार्य के विशेपाको को सम्पादित किया।

(६) प्रताप कण्ठाभरण दो भाग प्रकाशित किये।

ससद सदस्यो के लिए दातव्य औषधालय,प्रदर्शनालय, पुस्तकालय का उद्घाटन नई दिल्ली मे कराया। प्राय अनेक सम्मेलनो के अध्यक्ष रहे। कुछ दिनो एडवाइजर गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया मिनिस्ट्री आफ हैल्थ के पद पर काम किया। आप सेन्ट्रल रिसर्च इन्स्टीटयूट इण्डीजीनस मेडीसन की व पोस्ट ग्रेजुयेट सेण्टर जामनगर के गवर्निग बोर्ड के सदस्य रहे बाद मे आप डायरेक्टर मूलचन्द्र खेराती राम हास्पीटल व रिसर्च इन्स्टीट्यूट का किया तथा देवी कोटड नामक कद पर अनुसन्धान किया।

आपके तीन पुत्र है जो अपने धन्धे योग्यतापूर्वक काम कर निर्वाह कर रहे हैं। आपकी पत्नी आक्सफोर्ड यूनिवर्सटी की पढी हुई है और आयुर्वेद की सेवा मे बडा सहयोग देती रहीं है।

आपका देहावसान ७ अप्रेल १९६२ की रात्रि को हो गया।

श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त, कानपुर

नाम श्री मुन्नालाल गुप्त

पिता का नाम स्व० बाबूलाल जी

जाति - अग्रवाल वैश्य गोयल गोत्र

जन्म — १२-३-१९०८ ई.

शिक्षा—श्री ताराचन्द्र आयुर्वेद पाठशाला, महेन्द्रगढ (हरियाना)

शिक्षक - स्व० प० मनोहरलाल जी शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, द्वितीय और तृतीय गुरु स्व० प० रामप्रिय जी त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य तथा स्व काशीनाथजी मिश्र, कानपुर।

परीक्षोत्तीर्ण प्र० मा० विद्यापीठ से।

भू० पू० सम्पादक—अनुभूत योग माला (१९३३)

विशेप सम्पादक—ज्वराक, ग्रहणीरोगाक तथा नाडी विज्ञानाक "धन्वन्तरि"। सिद्धचिकित्सा अङ्क—अनुभूत योगमाला।

आगामी वर्ष आप 'धन्वन्तरि' के विशाल विशेपाङ्क औपधि गुण धर्म विवेचनाङ्क का सम्पादन करेंगे।

लेख—हर विपय मे—धन्वन्तरि, राकेश, अनुभूतयोग माला, रत्नाकर, आरोग्य-दर्पण इत्यादि-इत्यादि पत्रो मे।

प्रकाशित पुस्तके १ नूतन रोग चिकित्सा विज्ञान २ सिद्ध प्रयोगाकी कुजी ३ छतिविज्ञान ४ विपम ज्वर चिकित्सा ५ प्रेम पीयूप ६. प्रयोग सग्रह ७. होम्यो मटरिया मैडिका आदि-आदि।

रुचि — आयुर्वेदोद्धार एवं अनुसन्धान । [illegible] ग्रन्थों मे आयुर्वेद की खोज करना ।

विशेषज्ञता — यकृत, हृद्रोग, ज्वर-चिकित्सा मे ।

अनुसंधान — कैंसर तथा दूसरे असाध्य रोगो मे ।

वर्तमान पता—श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त।
५८/६८ सीतावाली गली, कानपुर ।

स्वर्गीय रूपलाल जी वैश्य

आप स्वर्णकार वैश्य थे। आपके पिता का नाम—बाबू चन्दू लाल जी था। आप तीन भाई थे, बडे का नाम राम रुचि लाल जी छोटे का नाम महदेव लाल जी था, और मझिले आप स्वयं थे।

जन्म स्थान—आपका जन्म सं० १९२८ को जिला-सारन (छपरा) के अन्तर्गत हराजी ग्राम, पोष्ट मानूपुर में हुआ था ।

अध्ययन — आप बाल्यकाल मे ग्राम की पाठशाला में पढना शुरु करके तीव्र बुद्धि के कारण मिडिल इंगलिस स्कूल में जाते ही ४) मासिक छात्रवृत्ति पाने लगे। और ग्राम की शिक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद सन् १८८८ ई० जि० स्कूल छपरा मे आपका नाम लिखाया गया। आपका बाल्यकाल से ही आयुर्वेद की जडी-बूटियों मे प्रेम था, आप [illegible] में [illegible] तारीफ किया [illegible] है।

नौकरी — सन् १८९३ ई० में [illegible] मैट्रिक की परीक्षा पास कर आप पटना [illegible] में नाम लिखाने के लिये गये, किन्तु नाम लिखाने के १-२ मास के बाद आपके छोटे भाई का शरीरान्त हो जाने तथा धन की कमी के कारण बाध्य होकर आपको पटना छोड देना पडा। अतएव प्राय. एक वर्ष के बाद बी.एन.डब्लू. आर. के. सोनपुर Loco office मे १५) मासिक पर क्लर्क के पद पर काम करना पडा। किन्तु कुछ ही दिनों के बाद अपनी योग्यता से हेड क्लर्क का पद प्राप्त हुआ। सन् १९१३ ई० मे आप सोनपुर से बनारस कैन्ट आ गये थे, तभी से इन्कुतिनिया [illegible] मे रहते रहे। वहाँ पर रह कर आपने आफिस का कार्य सम्मानपूर्वक अवकाश प्राप्ति होने के समय तक पूर्ण योग्यता से किया।

बूटियों से प्रेम—आप पहिले से ही आयुर्वेद के प्रेमी होने से नौकरी करते समय सर्व प्रथम देशोपकारक मासिक पत्र का ग्राहक होकर बूटियों का अनुसंधान करने लगे।

ग्रन्थ निर्माण—आपने सर्व प्रथम [illegible] निघण्टु कोष लिखने का उत्साह किया। जो कि पूर्ण होने पर नागरी-विकास पुर नर नागरी प्रचारिणी सभा को रायल्टी पर दे दिया।

दशमूल - दशमूल के ऊपर सुन्दर सचित्र निबंध भी आपने लिखा जिससे आपको वैद्य सम्मेलन से रौप्य पदक भी प्राप्त हुआ था।

अभिनव बूटी दर्पण — भाग १ और २ भी आपकी ही कृति हैं। और ये ग्रथ सचित्र परिचायक सुन्दर ग्रथ हैं। भाव प्रकाश निघण्टु का विवरण भी आपने लिखा एव आपका अन्तिम ग्रथ वैद्यक पथ प्रदर्शक है जो कि अभी तक छपा नही है, जिसकी प्रशसा वैद्यवरो ने मुक्त कठ से का है।

सम्पादन कार्य — आपने लाहौर से निकलने वाले भूतपूर्व बूटी दर्पण मासिक पत्र के सहायक सम्पादक का कार्य किया था। एव धन्वन्तरि मासिक पत्र के 'बूटी चित्राक' नामक विशेषाक का भी सम्पादन किया था। इस भॉति १९२७ ई० के मार्च मास मे रेलवे की नौकरी से

छुटकारा पाने के बाद से अन्त समय तक आप बराबर आयुर्वेद की सेवा करते रहे।

अस्वस्थता—पूर्वोक्त नियमानुसार अधिक समय श्रम करने एव श्वास रोग से पीडित होने से आपका स्वास्थ्य इधर ३-४ वर्षों से बिगडता गया। अन्त मे १९३९ के मार्च मे अपनी दो लडकियो का विवाह करने के बाद बनारस से अपनी जन्म भूमि हराजी ग्राम मे आये। और जैसे जैसे आपका अन्तिम समय आता गया वैसे-वैसे रोग श्वास भी बढता गया जिससे धीरे-धीरे आप चलने फिरने मे असमर्थ हो गये।

मृत्यु—इस तरह श्वास रोग के कारण ३ जनवरी सन् १९४० बुधवार को दिन के १० बजे इस संसार को छोड चल बसे।

वैद्य समाज से अनुरोध— भारत के वैद्य समाज के समक्ष श्रद्धेय लाला रूपलाल जी वैश्य के अभिनव बूटी दर्पण, सदिग्ध बूटी चित्रावली ग्रथ सामने है। रूप निघण्टु कोष का केवल १ भाग प्रकाशित हुआ है। शेष ऐसे ११ या १२ भाग अभी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पास अप्रकाशित पडे है। यदि उत्तर प्रदेश का वैद्य समाज, उत्तर प्रदेश का इण्डियन मैडिसन बोर्ड, नागरी प्रचारिणी सभा से किसी प्रकार प्राप्त कर शेष भागो को प्रकाशित करे तो आयुर्वेद और जनहित मे बहुत बडा काम होगा। धन्वन्तरि के वनौषधि विशेषाक के सभी भाग एव प्राणिज खनिज द्रव्याक एव सदिग्ध वनौषधि अङ्क से भी अधिक जो काम आयुर्वेद प्रेम के नाते जीवन की परवाह नही करके अनवरत २७ वर्षों तक परिश्रम करके रूपलाल जी वैश्य ने रेलवे की नौकरी करते हुये किया है वैसा कार्य अब तक किसी भी प्रदेश के वैद्य बन्धु द्वारा नही हुआ है। इसलिये उत्तर प्रदेश की सरकार, जनता और वैद्य समाज का पूर्ण कर्तव्य का हो जाता है कि उनके ३५ वर्षों से पडे अधूरे कार्य को पूरा करके रूपलाल जी वैश्य की आत्मा को शांति देवे और उनके परिश्रम को सार्थक बनावे।

स्व० हरिदास वैद्यराज

स्व श्री वा हरिदास जी जिह्होन्ने चिकित्सा चन्द्रोदय, स्वास्थ्य रक्षा ग्रथ के अतिरिक्त अनेक साहित्यिक पुस्तके

भी लिखी थीं इनका धन्वन्तरि से विशेष स्नेह था। इसी कारण आपने "धन्वन्तरि' के बाल रोगाक तथा वात रोगांक का सम्पादन किया। प्रारम्भ मे आप राजस्थान के शिक्षा विभाग मे कहीं शिक्षक थे। बाद मे आपका झुकाव चिकित्सा व्यवसाय की ओर हुआ। हरिदास एण्ड कम्पनी मथुरा की स्थापना की। आप सिद्धहस्त लेखक थे। आपकी भाषा बडी सरस एव प्रभावोत्पादक होती थी। आपके लिखने मे एक विशेषता थी कि कही भी एक कौमा-डैस या अनुस्वार इधर उधर नही होता था कही सुधार करने की गुजाइश नही रहती थी।

कवि विनोद स्व० पं० ठाकुर दत्त शर्मा वैद्य भूषण आविष्कारक-"अमृतधारा" देहरादून

आपके पिता जी का नाम स्व० प० मूलचन्द शर्मा था। आपके बारे मे अधिक ज्ञात नही हो सका। अमृत धारा फार्मेसी को कई पत्र दिये लेकिन उत्तर न मिला। आपने 'अमृतधारा' का आविष्कार किया जिससे आपकी ख्याति भारत के कोने-कोने मे फैल गई। आप लाहौर निवासी थे तथा वही आपने अपना कार्य प्रारम्भ किया था। बाद मे एक शाखा देहरादून मे प्रारम्भ की। भारत का विभाजन होने से कुछ दिन पूर्व ही आप अपना सभी व्यापार देहरादून समेट ले गये। आपने अनेको
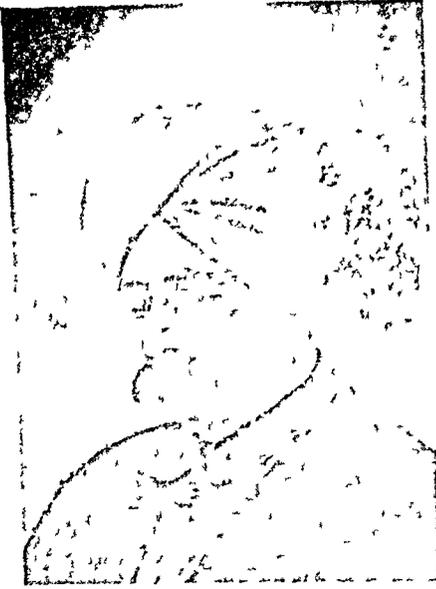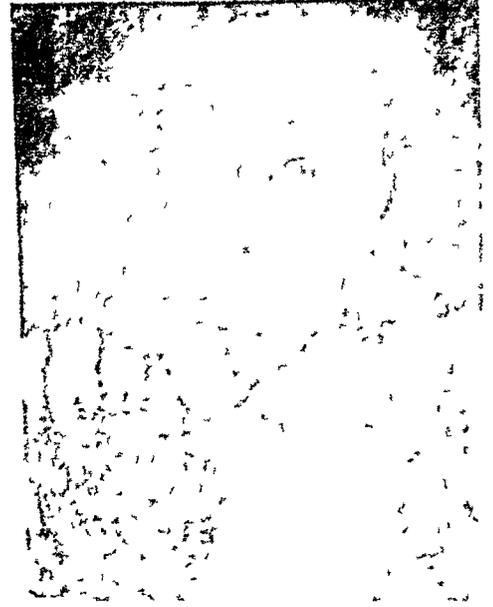
पुस्तकें लिखी व "देशोपकारक" पत्र का सम्पादन किया। कलकत्ता से "कवि विनोद" एवं अखिल भारतवर्षीय वैद्य सम्मेलन द्वारा 'वैद्य भूषण' की उपाधि से आपको सम्मानित किया गया। पुरुष रोगों के आप विशेषज्ञ थे तथा धन्वन्तरि के पुरुष रोगांक का आपने विशेष सम्पादन सन् १९४५ में किया। धन्वन्तरि का शायद ही कोई ऐसा विशाल विशेषांक हो जिसमें आपका लेख प्रकाशित न किया गया हो। आपके लेख तर्क संगत एवं ठोस सामग्री युक्त होते थे। "धन्वन्तरि" के प्रति आपका विशेष स्नेह था। कई वर्ष हुए आपका देहावसान हो गया। आपके देहावसान से हुई क्षति की पूर्ति होना असम्भव है।

स्व.कवि. उपेन्द्रनाथदास काव्य व्याकरण सांख्य तीर्थ

स्व० कविराज जी का जन्म सन् १८९५ में श्री राजमोहन दास जी के यहां हुआ था। आप आयुर्वेद के धुरन्धर विद्वान तथा पीयूष पाणि चिकित्सक थे। आपने विधिवत अध्ययन करके काव्य, व्याकरण एवं सांख्य में उच्च उपाधियां प्राप्त की तथा भारत के इने गिने शास्त्रवेत्ताओं में आपकी गिनती थी। आप आयुर्वेद एवं तिब्बिया कालेज देहली के सन् १९२२ से सीनियर प्रोफेसर तथा सन् १९४४ से नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ के प्रधान मंत्री रहे। आपने अनेक उत्तम सारगर्भित पुस्तकें लिखी जिनसे कि आयुर्वेद समाज में आपकी विद्वता की धाक जम गई। आपके अनेकों शिष्य भारत के कोने-कोने में आज भी सफलतापूर्वक चिकित्सा कर रहे हैं।

"धन्वन्तरि" पर आपकी सदैव ही कृपा रही। पुन जुलाई १९४६ में "कल्प एवं पंचकर्म चिकित्सांक" तथा अगस्त १९४८ में उसके परिशिष्टांक का आपने सम्पादन किया था जोकि "धन्वन्तरि" का एक उच्चकोटि का विशेषांक था।

स्वर्ण पदक प्राप्त श्री मदन गोपाल वैद्य ए.एम.एस. भू०पू० एम एल-ए. फैजाबाद विशेष संपादक-संक्रामक रोग विशेषांक 'धन्वन्तरि'

आपका जन्म कार्तिक कृष्ण ४ सवत् १९६८ में फैजाबाद नगर में हुआ। आपके पिता हकीम कामताप्रसाद अति प्रसिद्ध लोक-प्रिय चिकित्सक। हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण होने पर आचार्य नरेन्द्र देव की कृपा से काशी विश्वविद्यालय के आयुर्वेद कालेज में प्रवेश लिया और अति गौरव के साथ विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक प्राप्त किया तथा ए एम एस उपाधि प्राप्त की। छात्र जीवन में ही अ भा आयुर्वेद महासम्मेलन वाराणसी के अवसर पर संस्कृत भाषा में त्रिदोष विज्ञान पर ८० पृष्ठों का लेख लिखा जो सर्वश्रेष्ठ घोषित किया

गया तथा काशी विश्वविद्यालय मे होने वाले त्रिदोष पच महाभूत सभाषा परिषद् जो दो सप्ताह तक चलती रही मे बडी सतर्कता से भाग लिया। १९३८ मे क्रान्तिकारी युवक काग्रेस का अन्तिम सम्मेलन सफलता के साथ सम्पन्न कराया और उसके जिला अध्यक्ष बने। इसी वर्ष अयोध्या मे प्रदेशीय राजनैतिक सम्मेलन व प्रदर्शनी का आयोजन किया जिसमे पडित नेहरू आदि सब उच्चतम नेता पधारे। १९४१ मे काग्रेस मे कार्य करते रहने के कारण वसन्त पचमी की रात्रि को सोते समय तामीपुर ग्राम मे गिरफ्तार कर लिए गये और ६ मास के कठोर कारावास की सजा हुई। फतेहगढ सेन्ट्रल जेल मे आयुर्वेद के चोटी के
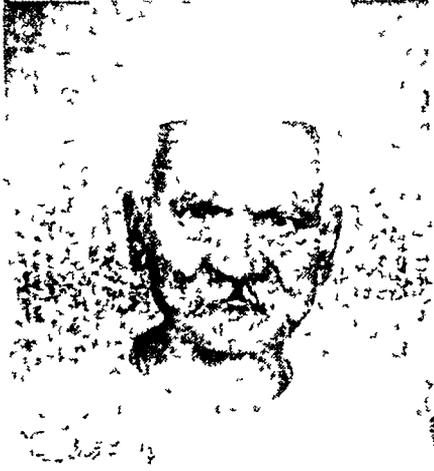
नेताओ प० रघुवरदयाल भट्ट, प० बदरी विशाल त्रिपाठी, प० राम गोपाल शास्त्री झासी, आदि से गहरा सम्पर्क व शास्त्र चिन्तन भी हुआ। जेल मे अनेक चोटी के नेताओं जैसे डा० सम्पूर्णानन्द आदि से भी गहरा सम्पर्क हुआ। १९४२ के स्वतन्त्रता आन्दोलन मे नजरबन्द कर लिए गये और ३ वर्ष तक नजरबद रहे। १९५२ के आम चुनाव मे फैजाबाद नगर से विधान सभा के लिए चुने गये। १९५७ मे पुन आप विधान सभा के सदस्य चुने गये। १९५५ मे हरिद्वार मे रस गुण वीर्य विपाक प्रभाव पर १० दिन तक ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज मे शास्त्र चर्चा परिषद् हुई जिसमे वैद्य जी ने क्रान्तिकारी रूप मे भाग लिया। इस अवसर पर आपने "द्रव्यगुण रहस्य" नामक एक महत्वपूर्ण लेख ५७ पृष्ठो का लिखा जो सर्वश्रेष्ठ १० निबन्धो के साथ विचारार्थ मुद्रित हुआ। यह लेख द्रव्य गुण शास्त्र पर कार्य करने वालो का आज भी पथ प्रदर्शक है।

वैद्य जी ने यादवाभिन्दन ग्रन्थ मे "सार्वभौम चिकित्सा मे होम्योपैथी का स्थान" शीर्षक क्रान्तिकारी विचारात्मक लेख लिखा जिसकी चोटी के विद्वानो ने भी प्रसशा की। धन्वन्तरि मे भी इसकी समालोचना हुई।

इस समय वैद्य जी आरोग्य धाम आयुर्वेद विद्यालय का सचालन कर रहे है। इस विद्यालय के अन्वेषण कार्यों का प्रदर्शन आगरा, पटियाला, पाडिचेरी आदि सम्मेलनो के अवसर पर सक्रिय रूप मे किया गया है।

सन् १९४८ मे आपने "धन्वन्तरि" के सक्रामक रोगाक का विशेष सम्पादन किया जो कि आपकी विद्वता का प्रतीक है। इस प्रकार आप आयुर्वेद शास्त्र के प्रामाणिक प्रवक्ता व सशोधक के रूप मे आयुर्वेद समाज की अनुपम सेवा कर रहे है। भगवान आपको चिरायु करे।

श्री पं० रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी

आयुर्वेदाचार्य ए. एम. एस.

पिताजी–श्री प० नन्नूमल त्रिवेदी

माताजी–श्रीमती जावित्री देवी

जन्म स्थान–पुरदिलनगर तह० सिकन्द्राराऊ जिला अलीगढ

आपका घर पुरदिल नगर के मध्यभाग मे मुहल्ला पण्डितान मे स्थित है। जो आपके प्रपितामह को यहाँ के नवाब ने इलाज करने के कारण प्रसन्न होकर प्रदान किया था।

बडे भाई वैद्य वशीधर त्रिवेदी जी है जिन्होने आपका बचपन से ही लालन-पालन किया और आयुर्वेदीय शिक्षा काशी हिन्दु विश्वविद्यालय मे दिलाई क्यो कि आपके पिताजी का देहान्त शैशव काल मे ही हो गया था।

प्राइमरी शिक्षा पुरदिल नगर के प्राइमरी स्कूल मे हुई वर्नाक्यूलर मिडिल सिकन्दराराऊ की तहसील स्कूल से किया। हाईस्कूल धर्मसमाज इण्टर कालेज अलीगढ से तथा इण्टरमीडियेट साइन्स N R E C इण्टर कालेज खुर्जा से किया। उसके बाद काशी हिन्दु विश्वविद्यालय

के आयुर्वेदिक कालेज से १९४८ मे आयुर्वेदाचार्य विद मार्डन मैडिसन एण्ड सर्जरी की डिग्री ली।

आयुर्वेद स्नातक होने के बाद आयुर्वेद कालेज फार्मेसी मे कवि० प्रताप सिंह आचार्य, द० अ० कुलकर्णी जी के निर्देशन मे रसशास्त्र मे पारद पर अनुसंधान किया और राजकीय औषध योग सग्रह नामक ग्रन्थ लिखा। उससे पूर्व छात्रावस्था मे ही कौमारभृत्य लिखा। फार्मेसी मे ही सहायक फार्मेसिस्ट पद पर भी कार्य किया। अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय मे भी कार्य किया। फिर पुरदिल नगर आकर सस्कृत ज्ञान मन्दिर की स्थापना की। पुन काशी हिन्दूविश्वविद्यालय मे आयुर्वेद रिसर्च की स्थापना होने पर स्व० प० शिवदत्त शुक्ल और श्री राजेश्वरदत्त शास्त्री प्रिंसीपल के विशेष आग्रह पर इस विषय मे क्लिनिकल रजिस्ट्रार का पद स्वीकार किया। यहाँ पर दो वर्ष कार्य करने पर तथा गृहणी, जलोदर, मधुमेह और बोन ट्युबर्कुलोसिस पर अनुसधान कार्य किया। काशी मे प्रोफेसर आफ फिजियालोजी के पद पर गुलाब कुवरवा आयुर्वेदिक सोसायटी के मत्री श्री बालकृष्ण भाई वैद्य ने जामनगर आग्रहपूर्वक बुला लिया और गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध गुलाब कुवरवा आयुर्वेद कालेज मे कार्य किया। इस सस्था के इन्स्टीट्यूट फार आयुर्वेदिक स्टडीज एण्ड रिसर्च मे विलयन होने पर उसमे शारीर विभागाध्यक्ष और प्रोफेसर पद पर कार्य किया और ग्रेजुयेट एव पोस्ट कक्षाओ का अध्यापन किया। वहा से लोक सेवा आयोग इन्दौर द्वारा चयन किये जाने पर मध्यप्रदेश के स्वास्थ्य विभाग मे उपसचालक आयुर्वेद पद पर लगभग ३ वर्ष कार्य किया। फिर हाथरस आकर सपरिवार बस गये। यहा त्रिवेदी नगर मे अपना मकान बनवा लिया है।

काशी मे अभिनव विकृति विज्ञान की रचना की। यही बृहच्चरकसार लिखा। पुरदिल नगर और जामनगर मे धन्वन्तरि, जय आयुर्वेद तथा प्राणाचार्य के भैषज्य कल्पनाक, चरक चिकित्साक, प्रसूति विज्ञानाक, काय चिकित्साक, पथ्यापथ्य चिकित्साक तथा शिशु रोगाक नामक विशेषाको का लेखन और सम्पादन किया।

हाथरस मे स्त्रियो के रोग और उनकी आधुनिक चिकित्सा, वृद्धो के रोग और वृद्धावस्था की प्रतिकारिता,
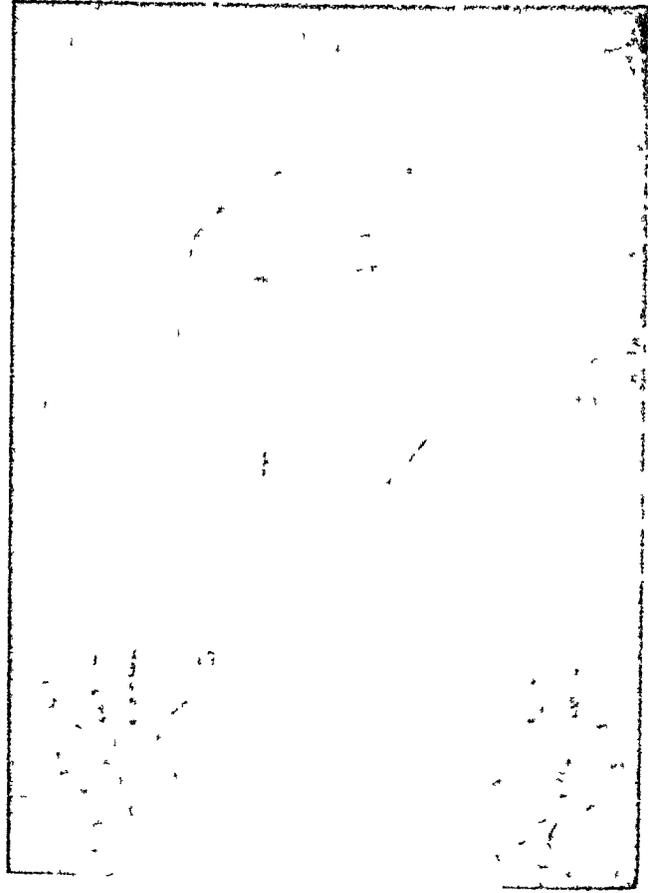
वात्स्यायन कामसूत्र, वाग्भट कृत आदि पुस्तके लिखी। श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की ओर से हुई तृतीय शास्त्र चर्चा परिषद शारीर शब्दावली पर वृहत् भूमिका लिखी। चतुर्थ शास्त्रचर्चा परिषद लक्ष्मण झूला मे श्री प० रामनारायण शर्मा वैद्य सस्थापक श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के आग्रह पर १९६९ मे सयोजक का कार्य किया और उससे सम्बद्ध अम्लपित्त पर पुस्तिका लिखी। इस सम्बध की अन्य पुस्तकें भी तैयार की है।

आजकल सपाडिया आयुर्वेदिक महाविद्यालय मे प्राचार्य, निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ के उप मत्री रूप मे कार्यरत हैं। कोई ही ऐसा विश्वविद्यालय होगा जहाँ आयुर्वेद फैकेल्टी हो और जहाँ किसी न किसी विषय का परीक्षक न बनाया गया हो। पहले आप बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिन के सदस्य रहे, अब आयुर्वेद तिब्बी अकादमी उत्तर प्रदेश के सदस्य है। आपका छोटा परिवार है। पत्नी श्रीमती शातीदेवी त्रिवेदी परम साध्वी

और हरकर्म मे सहयोगिनी है। पुत्री कु० साधना त्रिवेदी तथा २ पुत्र राकेश कुमार, राजेशकुमार हैं। राजेश पीली-भीत आयुर्वेद कालेज मे पढ रहा है। आजकल उत्तरप्रदेश के आयुर्वेद यूनानी सेवा निदेशक आचार्य श्री मुकुन्दीलाल द्विवेदी के अवकाश प्राप्ति से पूर्व उन्हे एक अभिनन्दन ग्रन्थ भेट करने मे तल्लीन है।

श्री डा० तेजवहादुर सिंह चौधरी

आपका जन्म १३ जनवरी १९१३ मे देहरादून मे हुआ था। पिताजी का नाम चौ० तारीफ सिंह जी था। आप जाट परिवार के है। आपके पिताजी कलक्ट्रेट मे चीफ रीडर थे। वचपन जि० गोडा (उ० प्र०) मे व्यतीत हुआ तदुपरान्त कुछ दिनो तक देहरादून मे जहाँ पिताजी चीफरीडर थे रहते हुए वही से दसवा दरजा पास करके सन १९३० मे ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज हरिद्वार

(उ०प्र०) मे प्रवेश लिया और सन १९३४ मे DIM (Diploma in indegineous medicine) प्राप्त किया। उसी वर्ष चिकित्सा अभ्यास करने के हेतु शिमला मे गढखल सेसाधुराम तुलाराम गोयेनका मारवाडी सेनिटोरिम मे कम्पाउडर, फिर लेब्रोटरी इन्चार्ज, मैनेजर एव बाद मे वहाँ के वरिष्ठ चिकित्साधिकारी के कलकत्ता चले जाने पर उनका कार्य भार सभाला। एक वर्ष के उपरान्त त्याग पत्र देकर अपने गांव एलम जिला मुजफ्फरनगर में अपनी प्राइवेट प्रेक्टिस तीन वर्ष तक की और जुलाई १९३१ मे उत्तर प्रदेश की सरकारी आयुर्वेदिक डिस्पेन्सरी गजस्थल, रानीनागल, अकरौली, गजरौला (मुरादाबाद) मे एव बरेली जिलान्तर्गत उरला ग्राम तथा रामपुर के आयुर्वेदिक चिकित्सालयो मे चिकित्साधिकारी पद पर १९५६ तक रहे। तदुपरान्त त्यागपत्र देकर यहाँ मध्य प्रदेश के दुर्ग जिला मे "नवागढ" ग्राम मे अभी तक प्राइवेट प्रेक्टिस कर रहे है।

"धन्वन्तरि" पत्रिका मे आपके काम सम्बन्धी लेख १९५० से प्रकाशित होने लगे है। अपने मूल विषय 'काम विज्ञान' पर ही प्राय लेख देते रहे है 'काम विज्ञान' मे अधिक रुचि रहने से पाश्चात्य काम सम्बन्धी वैज्ञानिक लेखो का विशेष अध्ययन किया।

सन् १९४७ मे पुन वी. आई एम. एस की परीक्षा उत्तीर्ण की तथा झासी से आयुर्वेद वृहस्पति प्राप्त की।

चिकित्सा के अतिरिक्त आपको सङ्गीत(शास्त्रीय सङ्गीत) एव हिन्दी साहित्य मे यदा कदा कहानी लिखने की भी रुचि है। आपकी कहानिया हिन्दी की पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रहती है।

आपने अप्रेल १९५१ मे धन्वन्तरि के सुप्रसिद्ध इजेक्शन विज्ञानाङ्क का सम्पादन किया। १६५ पृष्ठ के इस अङ्क को सभी पाठको ने बहुत पसन्द किया था। इसी इजेक्शन विज्ञानाक का द्वितीय भाग सन् १९५२ मे आपके लेखन-सम्पादन मे निकाला गया था।

श्री ताराशकर वैद्य, वाराणसी

वैद्य जी का जन्म वाराणसी जिले के टाण्डा ग्राम मे सन् १९१६ ई० मे एक सुप्रतिष्ठित शाक द्वीपीय ब्राह्मण परिवार मे हुआ था। आपके पूज्य पिताजी स्व प सकटमिश्र एव माता स्व श्रीमती पवित्रा देवी थी। स्थानीय मिडिल स्कूल से वर्नाक्यूलर फाईनल परीक्षा सन्१९३० मे उत्तीर्ण करने के पश्चात् आपने हिन्दू विश्व विद्यालय वाराणसी की प्रवेशिका परीक्षा प्रथम श्रेणी प्राप्त कर उत्तीर्ण की। सन् १९३९ मे श्री अर्जुन आयुर्वेदिक विद्यालय वराणसी की आयुर्वेदाचार्य परीक्षा प्रथम श्रेणी मे प्रथम होकर उत्तीर्ण की।

उक्त आयुर्वेद विद्यालय की शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करते ही आप वहा अध्यापक नियुक्त हो गये। वही उप-

प्रधानाचार्य पद पर कार्य करने के पश्चात् सन् १९७० की ९ जुलाई तक प्रधानाचार्य पद पर सेवा कार्य किया। उसके पश्चात् से आज तक आयुर्वेद महाविद्यालय श्री सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी मे सुश्रुत संहिता के अध्यापक पद पर सेवारत है।
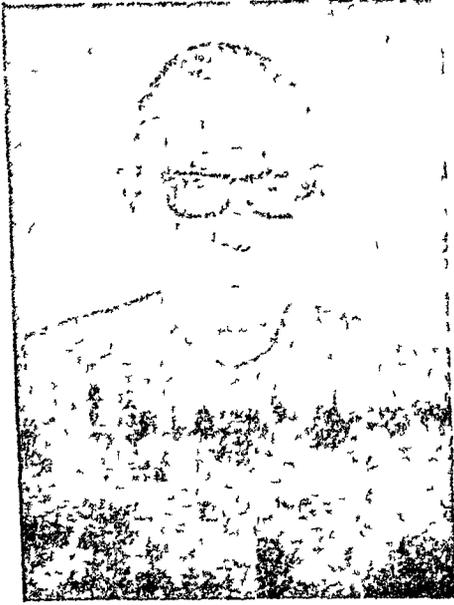
लगभग १६ वर्षो तक इण्डियन मेडिसिन बोर्ड उत्तर प्रदेश के सदस्य एव ४ वर्षो तक उसकी फैकल्टी के सदस्य रहे। कई वर्षो तक निखिल भारतीय आयुर्वेद देहली के उपमन्त्री एव अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका देहली के प्रधान सम्पादक रहे। "दिव्यालोक वाराणसी के प्रधान सम्पादक रहे। "आयुर्वेद विकास" देहली आदि पत्रो के परामर्श दाता है। "आज" वाराणसी के आयुर्वेद विशेषाको के सम्पादन मे भी हाथ बटाते रहे। धन्वन्तरि विष-चिकित्साङ्क एव चिकित्सा समन्वयाक के भी आप प्रधान सम्पादक रहे। आयुर्वेद महाविद्यालय संस्कृत विश्वविद्यालय की स्मारिका एव पत्रिका के आप प्रधान सम्पादक रहे हैं।

आपकी "नाडी दर्शन" पुस्तक पर उत्तर प्रदेश शासन से पुरस्कार प्राप्त हुआ है। "कायचिकित्सा" पर सीलोन (लका) से डाक्टरेट प्राप्त हुआ है "आयुर्वेद परिभाषा" एव स्वस्थ वृत्त समुच्चय के आप टीकाकार है। आपका साहित्य सारे देश मे पाठ्य ग्रन्थ आदि के रूप मे सम्मानित है। धन्वन्तरि संस्कृत और हिन्दी नाटक (अप्रकाशित) पदार्थदर्शन, दोषदर्शन, देहदर्शन आपकी अप्रकाशित रचनायें है।

हिन्दू विश्वविद्यालय, संस्कृत विश्वविद्यालय-पंजाबी विश्वविद्यालय, निखिल भारतीय आयु० विद्यापीठ, उत्तर प्रदेशीय इण्डियन मेडिसिन बोर्ड, देहली आयुर्वेद यूनानी बोर्ड, राजस्थान माध्यमिक परीक्षा विभाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रभृति परीक्षा संस्थाओं मे आयुर्वेद के परीक्षक रहे है।

अपने गाव पर हायर सेकण्ड्री स्कूल, हरिजन विद्यालय, कन्या विद्यालय आदि के आप संस्थापक है। अन्यान्य कई संस्थाओ के जन्मदाता, अध्यक्ष और मन्त्री आदि रहे है।

शुद्ध आयुर्वेद के लिये जीवनभर संघर्षरत श्री मिश्र जी स्पष्टवादिता, व्यवहार कुशलता और चिकित्सा कुशलता के प्रतीक है। आयुर्वेद, संस्कृत एव वाराणसी के नाम पर कड़े से कड़ा बलिदान भी आपको सह्य है आप स्वस्थ एव दीर्घायु हो यही भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना है।

स्व० कृष्ण प्रसाद त्रिवेदी बी०ए०, आयुर्वेदाचार्य

पूज्यनीय आयुर्वेदाचार्य श्रीमान कृष्ण प्रसाद जी त्रिवेदी का जन्म मध्य प्रदेश के बादा जिले मे हुआ था। आपके पिता श्री गणपत प्रसाद जी पुलिस विभाग मे कोर्ट इन्सपेक्टर थे। आपने नागपुर मे कालेज का शिक्षण प्राप्त करते हुए वैद्यक का अध्ययन राजवैद्य इन्दोरकर जी से किया था। सर्व प्रथम वर्धा के मारवाड़ी विद्यालय ने आपको विद्यालय मे संस्कृत, इगलिश और वैद्यकी के अध्यापन कार्य मे नियुक्त किया था। पहले आपकी इच्छा वकालत पास करने की थी किन्तु १९२० की नागपुर काग्रेस ने आपके इरादे को तोडकर निस्वार्थ जनसेवा की ओर प्रवृत्त कर दिया।

हिंगनघाट के माननीय सेठ मथुरादास जी के बुलाने पर आप हिंगनघाट आये। और वहाँ पर एक श्रीकृष्ण औषधालय स्थापित किया जहा पर धर्मार्थ रूप से जनसेवा का उत्तम कार्य हुआ। इसके अतिरिक्त आपके प्रयत्नो से हिंगनघाट मे स्थानीय वैद्यो की एक सभा स्थापित हुई

जिसका सम्बन्ध निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद महामण्डल से हुआ। आपने कृष्ण विषहरण नामक एक अपूर्व औषधि शोध कर निकाली जिसका पूर्ण प्रयोग धन्वन्तरि के चिकित्साक मे आपने उदार अन्त करण से प्रकट किया है। इस प्रयोग से महान विषधर सर्प नष्ट किये जा सकते है तथा अन्य पचासो रोगो पर सफलतापूर्वक प्रयोग होता है।
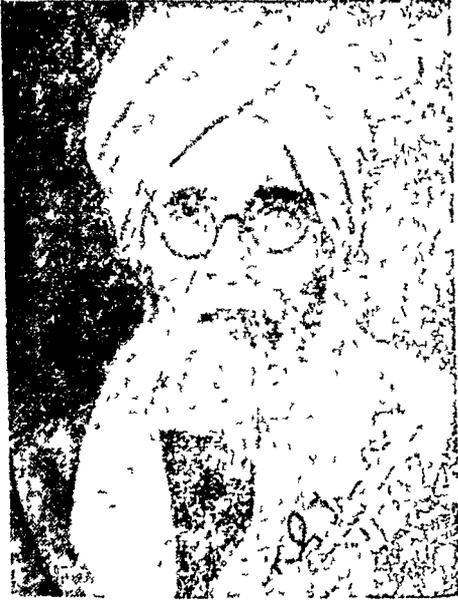
आपने अनेक वर्षो तक अनुभूत योगमाला नामक प्रसिद्ध मासिक पत्रिका मे सारगर्भित लेखो के अतिरिक्त उत्तरकला के द्वारा कष्टसाध्य रोगियो को रोग से छुटकारा दिया है। आपके दीर्घकाल के अनुभव से लिखी हुई निम्न पुस्तके लोकप्रिय साबित हुई है जो वैद्यो तथा गृहस्थो के लिये अत्युपयोगी है। वृहदासवारिष्ट सग्रह दो भाग, औषधि गुणधर्म विवेचन २ भाग, अन्त्रवृद्धि, अर्श चिकित्सा, वृ० पाक सग्रह, चिकित्सा रहस्य, इन्फुएन्जा, चिकित्सा रहस्य का दूसरा भाग (जो कि पहले भाग की अपेक्षा लगभग तीन गुना वडा ग्रन्थ है अभी प्रकाशित नही हुआ) धन्वन्तरि के पाच वृहत्काय विशेषाक "वनौषधि विशेषाक" जिन मे से प्रथम भाग के ही तीन सस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

पूज्य त्रिवेदी जी को १९५७ मे विजयगढ लाया गया। यहा पर 'धन्वन्तरि' विशेषाक के रूप मे लगातार १० वर्षों के (वृद्धावस्था मे) अनवरत परिश्रम से वनौषधि विशेषाक ४ भाग की अमूल्य निधि प्रकाशित हुई तथा पाचवा भाग आधे से ऊपर लिखा जा चुका था कि दि० १४-६-६७ को महानिमन्त्रण प्राप्त हुआ और वे सदा के लिए प्रस्थान कर गये।

श्री डा० दौलतराम शास्त्री

जन्म ३० जुलाई १९२६ ई०, पिता—श्री चुण्टेलाल जी। जाति सोनी (अयोध्यावासी स्वर्णकार)।

सन् १९४२ मे हितकारिणी हाईस्कूल से अग्रेजी माध्यम मे अग्रेजी, उच्चगणित, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, भूगोल और सस्कृत विषय लेकर मैट्रिक किया।

हितकारिणी संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य प० श्री गगा विष्णु पाण्डेय के पास आयुर्वेद पढा और हि०सा० सम्मेलन से १९५२ मे "आयुर्वेदरत्न" उपाधि प्राप्त की।

चिकित्सा करते हुए एलोपैथी का गम्भीर अध्ययन अग्रेजी पुस्तको से किया। श्री डा० एल० एस० चौहान के साथ २ वर्षों तक सहायक चिकित्सक के रूप मे कार्य करते हुये गुप्त रोग और विद्युत—चिकित्सा का विशेष क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त किया। अब उन्ही का दवाखाना अनसे लेकर गत ८ वर्षों से स्वतन्त्र रूप से चला रहे है। आजकल केवल पुरुषो और स्त्रियो के गुप्त रोगो (नपुंसकता, बाझपन, प्रदर, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, शुक्रमेह, गर्मी, सुजाक आदि) तथा लकवा और कठिन रोगो का इलाज करते है। साथ ही सैक्स सम्बन्धी मार्ग दर्शन और
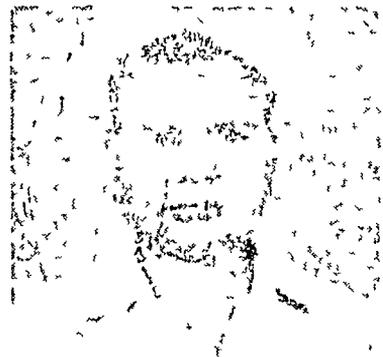
तत्सम्बन्धी कठिनाइयों के निवारणार्थ परामर्श भी देते हैं।

आयुर्वेद और एलोपैथी के गम्भीर अध्ययन के अतिरिक्त यूनानी, होम्योपैथी, बायोकैमिक और नेचुरोपैथी का साधारण ज्ञान भी आपको है।

कामशास्त्र (प्राच्य और पाश्चात्य), रसशास्त्र (कीमिया), रसायन शास्त्र (कायाकल्प), धर्मशास्त्र और तन्त्र शास्त्र का आपने गम्भीर अध्ययन किया है। योग, ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्रों का मामूली अध्ययन किया है।

हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं पर पूर्ण अधिकार है। इनके अतिरिक्त बंगला, मराठी और गुजराती का भी सामान्य ज्ञान है।

लेखन कार्य—धन्वन्तरि में प्रकाशित बहुत से लेखों और माधव निदानादि की टीका-व्याख्या (सन् १९५७ में)। रस रत्नाकर के ऋषि-वादि खण्ड की हिन्दी टीका (अप्रकाशित), काम-शास्त्र पर एक शोधपूर्ण ग्रन्थ शीघ्र ही लिखने का विचार है। रसार्णव की भी हिन्दी टीका कर रहे हैं। श्री भुवनेश्वरी पीठ गोंडल से रसशास्त्री (रसशास्त्र में शास्त्री) की उपाधि आपने प्राप्त की है।

श्री आचार्य ज्ञानेन्द्र पाण्डेय आयु०

अनेकों पत्र डालने पर भी आपका जीवन परिचय प्राप्त नहीं हो सका। आपने "धन्वन्तरि" के दो लघु
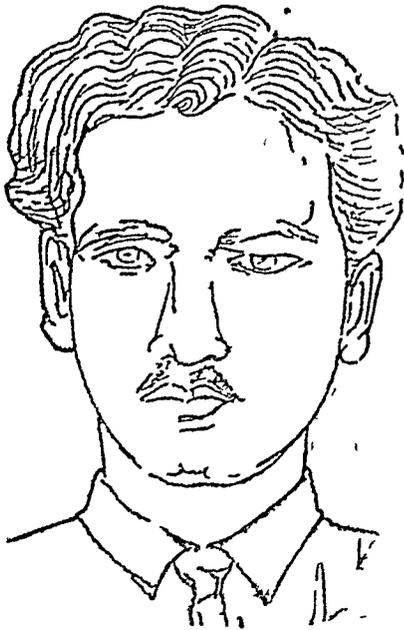
विशेषांकों का सम्पादन किया है—१ आयुर्वेद शिक्षांक २ मूत्र रोगांक। इन दोनों विशेषांकों से जिनने पढ़ा है वह आपकी विद्वत्ता का अनुमान लगा सकते हैं। इस समय आप ग्वालियर के आयुर्वेद कालेज में अध्यापन कर रहे हैं। आपका पत्र भी परिचय भेजने को प्राप्त हुआ था लेकिन परिचय मिल न सका। शायद कार्य व्यस्तता रही होगी। आपका पता निम्न है—

श्री डा. ज्ञानेन्द्र पाण्डेय एम ए, एच पी ए, पीएच डी
१४/८६ बापू दण्डी की गोठ, माधौगंज,
ग्वालियर-१ [म प्र]

कविराज श्री शिवकुमार व्यास

प्राचार्य आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज नई दिल्ली।

हरियाणा प्रान्त में गुड़गांव जिला अन्तर्गत बड़ौदा कला ग्राम में गौड़ भारद्वाज ब्राह्मणों का व्यास वंश बहुत प्रसिद्ध है। इस कुल में स्व० प० रामचन्द्र व्यास अपने समय के विद्वान आयुर्वेदज्ञ हुए हैं। उनके सुपुत्र वैद्य भूदेव व्यास आयुर्वेद-शास्त्री एक सफल चिकित्सक थे। श्री शिवकुमार जी वैद्य भूदेव जी के सुपुत्र हैं और वंश परम्परा से चिकित्सा के कितने ही अंश आपने प्राप्त किये हैं।

आरम्भिक शिक्षा—श्री व्यास का जन्म अपने ग्राम में १९३६ में हुआ। आरम्भिक शिक्षा गांव में मिडिल स्कूल में प्राप्त की और कुछ समय नूह तहसील में अपने पिताजी के साथ रहकर अध्ययन किया। पाँचवीं कक्षा से हिन्दी का अध्ययन आरम्भ किया और फिर अंग्रेजी एवं संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। अध्ययन काल में ही आप अपने पिताजी के साथ दिल्ली आ गये और उचित शिक्षा यहीं प्राप्त की। आरम्भिक शिक्षा में आपने इण्टर, प्रभाकर एवं साहित्यालंकार की उपाधियां प्राप्त की।

चिकित्सा साहित्य का अध्ययन—चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन करने के लिए श्री व्यास एशिया प्रसिद्ध दिल्ली के आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज में पढ़े। आरम्भ में चार वर्ष का मिश्रित पाठ्यक्रम का अध्ययन कर डी आई एम एस भिषगाचार्य धन्वन्तरि

की उपाधि प्राप्त की। बाद मे १।। वर्ष का कन्डेन्सड कोर्स पास कर बी आई एम. एस की उपाधि प्राप्त की। दिल्ली प्रदेश के बोर्ड मे सर्व प्रथम 'चरक' मे आनर्स आपको मिला जिस पर आपको स्वर्ण पदक प्रदान किया गया।

अध्यापक एव चिकित्सक श्री व्यास की विशेष योग्यता के आधार पर तिब्बिया कालेज मे ही आप को प्राध्यापक नियुक्त किया गया और १९६२ मे आप वहा पर अध्यापन कार्य कर रहे हैं। आप द्रव्य गुण, रस शास्त्र विभाग के अध्यक्ष है और सम्प्रति प्राचार्य पद का कार्य वहन कर रहे है। आपने तिब्बिया कालेज अस्पताल मे पचकर्म विभाग का आरम्भ कराया और वहाँ ५ वर्ष तक अध्यक्ष पद पर कार्य करते रहे। कुछ घरेलू कारणो से फिर अस्पताल मे समय नही दे सके।

लेखक रूप मे प्रारम्भिक जीवन मे हिन्दी कवितायें एव लेख ही लिखते थे परन्तु बाद मे चिकित्सा साहित्य के लेखन की ओर रुचि हुई और पत्रिकाओ मे लेख प्रकाशित होने लगे। "धन्वन्तरि" की ओर से लेख पुरस्कार प्रतियोगिता का आयोजन किया गया तो आरम्भ मे आपके 'अर्शचिकित्सा' नामक लेख पर पुरस्कार प्रदान किया गया।

आपने आयुर्वेद विषयक ग्रन्थो का लेखन आरम्भ किया और अब तक निम्नलिखित पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। (१) पचकर्म विज्ञान (२) आयुर्वेद द्रव्य गुण विज्ञान (३) ल्यूकोडर्मा (हिन्दी) (४) आयुर्वेद रत्नावली (५) वैद्य विशारदिका (६) उप वैद्य गाइड।

आपका धन्वन्तरि के 'पचकर्म विज्ञानाक नामक लघु विशेषाँक का लेखन एव सम्पादन १९६२ मे किया। धन्वन्तरि मे चिकित्सा विशेषाँक प्रथम एव द्वितीय भाग मे यूनानी और एलोपैथिक खण्डो के आप विशेष लेखक एव सम्पादक रह चुके है।

सरकारी पुरुस्कार आपकी पुस्तक पचकर्म विज्ञान पर मध्य प्रदेश की ओर से ६४-६५ मे दिया गया। १९६६ मे उत्तर प्रदेश सरकार आयुर्वेदिक तिब्बिया आकादमी ने आपकी पुस्तक आयुर्वेदिक द्रव्य गुण विज्ञान पर पुरुस्कार प्रदान किया।

श्री व्यास कई समस्याओ, अधिकायो एव विश्व विद्यालयो के परीक्षक हे और सम्प्रति कुछ पुस्तको का लेखन कार्य एव तिब्बिया कालेज, देहली मे प्राचार्य पद पर कार्य कर रहे है।

वैद्यराज हकीम श्री. दलजीत सिंह

आयुर्वेदीय विश्वकोषकार, आयुर्वेद बृहस्पति (D Sc.A.)

हकीम श्री दलजीतसिह का जन्म सम्वत् १९६० वि तदनुसार (११ जुलाई सन् १९०३ ई०) श्रावण कृष्णा द्वितीया शनिवार को ९ बजे दिन मे तहसील चुनार जिला मिरजापुरान्तर्गत रायपुरी ग्राम के उच्च एव सभ्रान्त
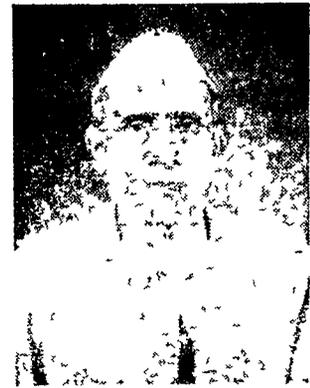
प्रतिष्ठित जमीदार परिवार मे हुआ था। आपके पिता सम्मानीय बा० छत्रधारी सिंह के आत्मज श्री बा० महावीर प्रसाद जी थे। आपके दो सहोदर भ्राता है। मध्य और कनिष्ठ। मध्य भ्राता का नाम बा० इन्द्रजीत सिंह है। आपके कनिष्ठ भ्राता अर्थात अनुज आयुर्वेदाचार्य डा० रामसुशील सिंह एम ए,ए एम एस साहित्याचार्य द्वितीय खण्ड (गवर्नमेंट संस्कृत कालेज वाराणसी, (मौलवी) कामिल, प्रोफेसर, द्रव्य गुण (इण्डियन मेटीरिया मेडिका), इन्स्टीट्यूट आफ मेडिकल साइन्सेज (बी० एच० यू०) वाराणसी है।

आयुर्वेद की पत्र पत्रिकाओ मे लगभग १०० लेख छपे है। "धन्वन्तरि" सहित अनेक विशेषाङ्को का सम्पादन भी किया है। तत्कालीन स्वास्थ्य मन्त्राणी राजकुमारी अमृत कौर की अध्यक्षता मे आयुर्वेदिक यूनिवर्सिटी भारी के कन्वोकेशन मे स्वर्णपदक एव D Sc A की सम्मानित उपाधि प्रदान की गई।

साहित्य एव ग्रन्थ रचना

(१) सर्प-विष-विज्ञान (२) आयुर्वेदीय कोष भाग–१ (३) आयुर्वेदीय कोष बनाम आयुर्वेदीय विश्वकोष (४) आयुर्वेदीय विश्वकोष भाग–३ (५) आयुर्वेदीय विश्वकोष भाग–४ (६) यूनानी सिद्ध योग सग्रह (७) यूनानी-द्रव्य गुण-विज्ञान (८) यूनानी वैद्यक के आधार भूत सिद्धान्त (कुल्लियात) (९) यूनानी चिकित्सा–विज्ञान (पूर्वार्ध) (१०) रोगनामावली कोष तथा वैद्यकीय मान तोल (११) यूनानी चिकित्सासार (१२) आयुर्वेद यूनानी समन्वयात्र (१३) यूनानी चिकित्सांक (१४) यूनानी द्रव्य गुणादर्श (१५) यूनानी द्रव्य गुणादर्श (१६) यूनानी द्रव्य गुणादर्श तृतीय खण्ड (प्राणिज)

आपके इन उपर्युक्त ग्रन्थो पर प्राय आयुर्वेदीय (हिन्दी, मराठी, गुजराती) तथा यूनानी (उर्दू) पत्र-पत्रिकाओ मे बडी ही स्तुत्य समीक्षाये प्रकाशित की गई है तथा भारत वर्ष के कोने-कोने से प्रतिष्ठित वैद्य हकीम-डाक्टर बन्धुओ की शतश सम्मतिया एव शुभ कामनाये प्राप्त हुई है।

प्रकाशनार्थ प्रस्तुत ग्रन्थ

(१७) पुरुष रोग चिकित्सा–विज्ञान (१८) औपसर्गिक मूत्रमेह (सुजाक) विज्ञान (१९) सिद्ध योग रत्नावली (२०) यूनानी वैद्यक के आधारभूत सिद्धान्त (कुल्लियात)-उत्तरार्ध (२१) यूनानी चिकित्सा विज्ञान (उत्तरार्ध) (२२) हुम्मयात कानून–(हिन्दी) (२३) आयुर्वेदीय विश्वकोष (२४) पाश्चात्य द्रव्यगुण विज्ञान (२५) मनुष्य और उसका अन्तिम लक्ष्य तथा उसकी प्राप्ति के अनुभवभूत साधन–

श्री डा. पद्मदेव नारायण सिंह एम बी बी एस

बहुत प्रयत्न करने पर भी आपका जीवन परिचय प्राप्त नही हो सका। किसी पत्र का उत्तर भी प्राप्त नही हुआ। आपने विधि विधानाक नामक लघु विशेषांक का सफल सम्पादन किया। पुरुष रोगाक, चिकित्सा विशेषांक प्रथम एव द्वितीय भागो के एलोपैथिक खण्डो का सम्पादन किया। 'धन्वन्तरि' मे आपकी कई बार लेख माला खण्ड रूप मे चल चुका है। आप प्रसिद्धि से दूर रहकर मौन रूप मे चिकित्सा जगत की सेवा करने वाले है। भगवान आपको दीर्घायु प्रदान करे यही प्रार्थना है।

सत्व चिकित्सक श्री गगा प्रसाद गौड "नाहर"

एन डी प्राकृतिक चिकित्साचार्य

जन्म तिथि—१० अगस्त सन् १९०२।

जन्म स्थान–ग्राम सूरतिपुर, पो०, चिरयाकोट, जि० आजमगढ, यू० पी०।

जानकारी—हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी तथा बगला।
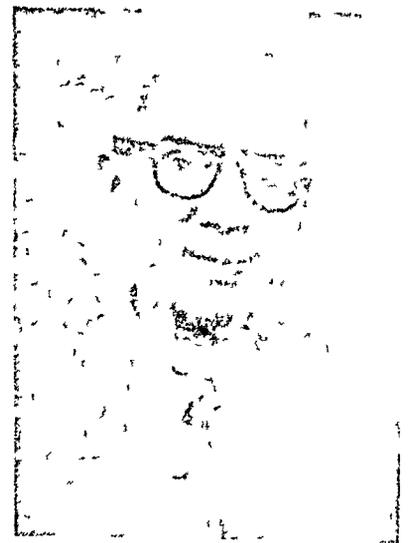
विशेष ज्ञान—इलाहाबाद हाईकोर्ट से मुख्तारी व रेवन्यू ऐजेन्ट शिप के डिप्लोमे लिए तथा नेशनल कालेज आफ नेचुरोपैथी लखनऊ से एन डी की डिग्री एव प्राकृतिक चिकित्साचार्य की साम्मानित उपाधि प्राप्त की। पूर्व कार्य १९२४ से १९२६ तक शिक्षक। १९२६-१९५७ तक रेलवे विभाग मे कार्य।

वर्तमान कार्य—

१—प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी साहित्य का सृजन।

२—मासिक पत्रिका "प्राकृतिक जीवन" का सम्पादन।

३—प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा रोगो का उपचार। जो रोगी घर बैठे अपने रोग की प्राकृतिक चिकित्सा स्वय करके रोग मुक्त होना चाहते है उन्हे चिटठी पत्र द्वारा चिकित्सा परमर्श देकर उनको रोगो से छुटकारा दिलाना। धन्वन्तरि मे प्राकृतिक चिकित्सा प्रश्नोत्तरी का लेखन काफी समय किया है।

४—शिक्षार्थियो को प्राकृतिक चिकित्सा का पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षण।

५—रेडियो पर वार्ता प्रसारण।

प्रथम रचना प्रकाशित—१९१७ "दोष किसका" कहानी "हिन्दी गल्पमाला" मे।

प्रकाशित रचनाये—प्रवासिता (उपन्यास), कालेज गर्ल (कहानी सग्रह), मृत्यु और उसके बाद (दर्शन), कान्ता (सविता), स्वास्थ्य पत्रक-दवाओ से बचो, दुग्ध विज्ञान, उपवास-विज्ञान, हमारा शरीर, डाक्टर नीबू, डाक्टर शहद, डाक्टर आवला, डाक्टर मिट्टी, डाक्टर तुलसी, प्राकृतिक चिकित्सा का इतिहास विशेषाक, (स्वस्थ जीवन कलकत्ता), प्राकृतिक चिकित्साक (धन्वन्तरि)

रचनाये प्रेस मे—यौन रोग और उसकी प्राकृतिक चिकित्सा, आकस्मिक दुर्घटनाओ की सरल चिकित्सा, शिशु पालन विज्ञान।

अभी कुछ दिन पूर्व आप एक दुर्घटना मे घायल हो गये। यह परिचय लिखने के समय तक आप अस्पताल मे प्रविष्ट है। भगवान से प्रार्थना है कि आप शीघ्र ही स्वस्थ हो। आपके द्वारा सम्पादित एव लिखित प्राकृतिक चिकित्साङ्क (धन्वन्तरि का सन् १९६६ का विशाल विशेषाक) को हमारे पाठको ने बहुत अधिक पसन्द किया तथा उसी वर्ष यह समाप्त हो गया। अब इसका द्वितीय सस्करण छप रहा है।

स्व० चन्द्रशेखर जैन 'शास्त्री'

प० जी का जन्म १८-८-१९१६ को हुआ था। आप शुरू से ही कुशाग्र-बुद्धि के थे। आपने १६ वर्ष की अवस्था मे शास्त्री की परीक्षा प्रथम श्रेणी मे पास की। तथा साथ ही साथ न्याय शास्त्र मे भी योग्यता प्राप्त करके पडित लाइन मे सबसे आगे और प्रमुख स्थान बना लिया था।

आपने जबलपुर-नगर मे जैनियो के बीच प्रमुख स्थान बनाया और १० हजार जैनियो के गुरू बन गये। हर

जैनी आपको गुरु मानकर चरण स्पर्श करता था तथा साथ ही साथ जबलपुर नगर मे पडित कहे जाते थे। परन्तु आयुर्वेद मे भी कम नाम अर्जित नही किया। वे आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान माने जाते थे। उन्होने अपने जीवन काल मे आयुर्वेद के ३२ ग्रन्थ लिखकर आयुर्वेद को काफी ऊँचा बढाया।

आपको कई सस्थानो ने उचित आदर देकर उनका नाम काफी ऊँचा उठाया। कई सस्थाओ ने आयुर्वेद शास्त्री आयुर्वेद भिषक्, आयुर्वेद बृहस्पति, न्यायाचार्य आदि उपाधिया देकर उनका आदर किया। आप प्रधान सम्पादक आयुर्वेद चिकित्सक, भूतपूर्व सहसम्पादक 'धन्वन्तरि'

आदि आयुर्वेद मासिक पत्रो के सम्पादक रहे। आपने सितम्बर १९६७ मे धन्वन्तरि के पक्षाघात अक (पूर्वार्ध) तथा अक्टूबर १९६७ मे पक्षाघात अङ्क (उत्तरार्ध) का सफल सम्पादन किया। तथा कई छोटे-मोटे कम से कम ५-७ हजार लेखो को लिखकर आयुर्वेद जगत मे नाम रोशन कर लिया।

आप कुछ वर्षो से पेरालेसिस से ग्रसित हो गये थे। तथा उनको ३ बार पीठ पर हाथ मे वाग्य मे कोटे हए। अन्त समय सब कुछ छोड़कर स्वर्गवासी हो गये।

होमियोरत्न डा० बनारसी दास दीक्षित

एच एम टी. एम

आपका जन्म ता० २३ जुलाई १९२७ आषाढ शुक्ला १० सोमवार सवत् १९८० को थोई ग्राम जिला सीकर (राजस्थान) मे स्व वैद्य हनुमान प्रसाद जी दीक्षित के तृतीय पुत्र के रूप मे हुआ। उस समय आपके पिता जी टाटानगर मे आयुर्वेदीय चिकित्सा मे सर्वोपरि वैद्य थे।

बचपन मे शिक्षा टाटा नगर मे ही हो रही थी कि ६ वर्ष की आयु मे ही ४ भाई और ३ बहनो को छोड कर पिता जी का स्वर्गवास टाटा नगर मे ही हो गया। माताजी आपको लेकर थोई (राजस्थान) आ गई और आपके सबसे ज्येष्ठ भ्राता स्व० प्रभूदयाल जी टाटानगर मे ही सर्विस करने लगे और बडे भाई श्री जगदीश प्रसाद जी, आप और छोटा भाई मदनलाल तीनो भाईयो को स्थानीय राजकीय माध्यमिक शाला मे पढाना आरम्भ कर दिया। स्कूल की पढाई समाप्त करके भाई श्री जगदीश प्रसाद जी भी सर्विस करने टाटानगर चले गये। आप और मदन वेद वेदाग-संस्कृत पाठशाला थोई (सीकर) मे परम पूज्यनीय स्व० गुरुदेव श्री सामराज जी शास्त्री के पास संस्कृत का अध्ययन करने लगे। इसी पाठशाला से मध्यमा एव आयुर्वेद विशारद उत्तीर्ण करके आयुर्वेदाचार्य का अध्ययन कर ही रहे थे कि पाठशाला के सचालको ने पाठशाला चलाना बन्द कर दिया। गुरुदेव एव उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री सूर्यदत्त जी वैद्य दोनो ही आयुर्वेद के विद्वान थे अत आप भी इनके ही पास रहकर अध्ययन एव प्रेक्टीकल करते रहे। गुरुदेव से आपको आयुर्वेद का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त हुआ।

होमियोपैथी मे प्रवेश—सन् १९४[illegible] में आप कलकत्ता गये। वहां बड़े भाई श्री जगदीशप्रसाद जी दीक्षित फ्लोर मिल (आटाचक्की) का काम करते थे। कलकत्ता आने पर चक्की का गरम आटा खाने के कारण आपको आमाशय (डिसेन्ट्री) हो गई। रातदिन मे आव और रक्त का पाखाना ४०-५० बार तक होता रहा। एलोपैथिक आयुर्वेदिक चिकित्सा कराई पर कोई लाभ नहीं हुआ। आप आरोग्य होने से निराश हो चुके थे इस प्रकार २५
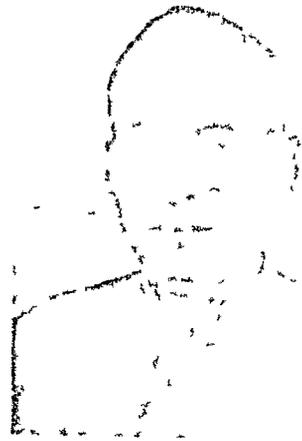
दिन बीत गये। आपकी दुकान से कुछ ही दूर एक छोटी सी दुकान एक मे बगाली सज्जन होमियो-डाक्टर बैठते थे। डाक्टर साहब ने सिर्फ दो खुराक दवा दे दी वह भी छोटी छोटी मीठी-मीठी गोली १ खुराक उसी समय जीभ पर डाल कर चूसने को कहा और एक खुराक १ घण्टा बाद मे उसी रात को १५-२० दिन बाद से आप सुख की नींद सोये। रातभर एठनो और दस्तो मे बैचेन को आज शान्त निद्रा आई। सुबह दस्त मे एठन कम थी रक्त भी कम था। यह डाक्टर थे स्वर्गीय-महर्षि आध्यात्मवादी परोपकारी रामकृष्ण परमहस देव के अनुयायी श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जिनकी उम्र ८५वर्ष की थी तथा जिन्होंने आपके हृदय मे होमियो ज्योति प्रज्वलित कर दी।

गुरु की खोज—अनेको विद्वानो से मिलने पर इच्छा पूर्ण नही हुई तब डा० रविन्द्रनाथ दत्तो से भेंट हुई। उन को शिष्य तैयार करने की सनक थी और आपको पढने की सनक लग रही थी। ईश्वर ने मेल बैठा दिया। दिन

में डा० रविन्द्रनाथ दत्तो से पढ़ने और रात में होमियोपैथिक कालेज में जाते । इस प्रकार २ साल के अध्ययन के बाद श्री सत्य नारायण दातव्य चिकित्सालय खुलना में प्रधान चिकित्सक के पद पर कार्य किया। यहीं पर बंगला साहित्य का संग्रह आरम्भ किया ।

संवत् २०१५ में पासपोर्ट कैंसिल होने के कारण पुनः कलकत्ता आये । श्री विश्वनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० की संभलपुर (उड़ीसा) में ब्रान्च मैनेजर के स्थान पर कार्य किया । वहां से पटना, मुजफ्फरपुर, झरिया आदि ब्रान्चों में भी व्यवस्थापक के स्थान पर कार्य कर रक्सौल ब्रांच का कार्यभार संभाला । कुछ वर्षों तक कार्य करके स्वयं के चिकित्सालय दीक्षित फार्मेसी की स्थापना करके चिकित्सा कार्य करने लगे । पुराने रोगों की सफल चिकित्सा के कारण दूर-दूर से रोगी आने लगे एवं अब २ साल से "होमियोपैथिक होस्पीटल" लायन्स क्लब-वीरगंज द्वारा संचालित चिकित्सालय में प्रधान चिकित्सक के पद पर आप कार्य कर रहे हैं ।

सन १९५० से ही बंगला होमियोपैथिक पत्रिकाओं में लेख भेजते थे । शिशुरोगांक विशेषांक सन् १९६२ में सुखंडी रोग पर सर्व-प्रथम लेख भेजा । वह प्रकाशित होने पर पाठकों ने उसे बहुत ही पसन्द किया । डा० दाऊदयाल गर्ग नेपाल यात्रा के समय में रक्सौल गये । आपसे भेंट की एवं वहां ३-४ दिन रहे थे । यह उनकी तथा गर्ग की प्रथम मुलाकात थी । इसी भेंट के दौरान आपने प्रतिमास लेख भेजना स्वीकार किया । साधारण अङ्कों में लेख निकलते ही रहे । संवत् १९६८ में पुरुष रोगांक विशेषांक के होम्योपैथिक खण्ड का सम्पादन आपने ही किया एवं पूर्ण होमियोपैथी खण्ड आपने ही लिखा था । सन १९७० में चिकित्सा विशेषांक प्रथम भाग एवं सन् १९७२ में चिकित्सा विशेषांक द्वितीय भाग के होमियोपैथिक खण्ड का आपने सम्पादन का भार ग्रहण किया । गतवर्ष १९७४ लायन्स क्लब द्वारा संचालित होम्योपैथिक चिकित्सालय वीरगंज (नेपाल) के प्रधान चिकित्सक का कार्य भार एवं दीक्षित मेडीकल स्टोर का कार्य आदि के कारण समय कम मिलने के कारण लेख आप नहीं भेज पा रहे हैं । अब पाठकों के बराबर अनुरोध के कारण यह श्रृंखला पुनः शीघ्र ही आरम्भ करेंगे ।

होम्योरत्न–मिथिला होम्योपैथिक विकास संघ के वार्षिक अधिवेशन के समय होम्यो रत्न की उपाधि से आपको सम्मानित किया गया । एतदर्थ हम आपको बधाई देते हैं ।

वैद्य उदयलाल जी महात्मा, देवगढ़ (उदयपुर) राज.

जैन धर्मान्तिर्गत भोगकुल की महाना पद वाच्य जाति में आपका जन्म दि १४अप्रेल१९१८ को हुआ । आपके पिता जी का नाम नाथूलाल जी और नाथद्वारा के निवासी थे । गत ६४ वर्षों से देवगढ़ (उदयपुर) राजस्थान के ही निवासी हो गये हैं ।
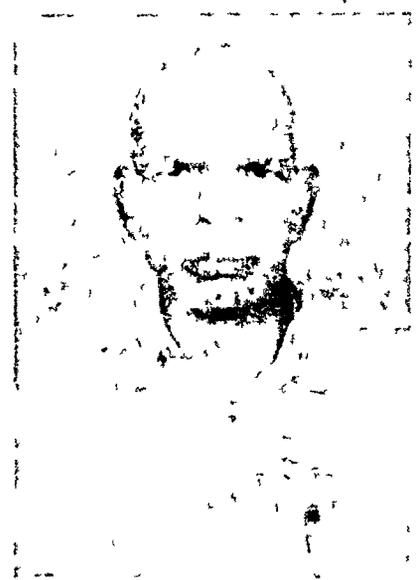
आपकी शिक्षा चतुर्थ श्रेणी तक देवगढ़ में हुई उसके बाद श्री गोवर्धन हाई स्कूल नाथद्वारा में । शुरू से ही आपकी लगन आयुर्वेद की ओर से होने आपने महासम्मेलन प्रयाग की आयुर्वेद रत्न परीक्षा में सं २००० में उत्तीर्ण की । विद्यापीठ दिल्ली की वैद्यचार्य परीक्षा सन् १९५५ में उत्तीर्ण की और उसमें सर्व प्रथम आये । निजी चिकित्सा व्यवसाय सन् १९३५ से ही कर रहे हैं । आपको रस, भस्मे, कूपीपक्व रसायन और ताल, शिला, तुत्थ, और अभ्रकादि सत्व पातन, उनका भस्मी करण और चिकित्सा में प्रयोग की काफी लगन है ।

इसी समय में जरगा, सीतामाता, आबू, ऋषिकेश,

देहरादून, मसूरी आदि जंगलो का भ्रमण कर वनस्पतियों का परिचय प्राप्त किया। उसी अनुभव के आधार पर सन् १९५९ से सन् १९६१ तक सचित्र रंगीन बूटियों पर लेख सचित्र आयुर्वेद में निकले और वही संकलन वनौषधि शतक नामक पुस्तक रूप में वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन पटना से प्रकाशित है। श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी और श्रद्धेय ज्वालाप्रसाद गर्ग से प्रार्थना करके वनौषधियों पर अकारादि क्रम से सचित्र वनौषधि साहित्य संकलन कराया और चित्रों का प्रबन्ध आपने-अपने ऊपर लिया जो सन् १९६१ से सन् १९७२ तक धन्वन्तरि वनौषधि विशेषांक भाग १ से ६ तक प्रकाशित हुये। पूज्य त्रिवेदी जी वनौषधि विशेषांक का पांचवा भाग आधा लिखकर स्वर्ग सिधार गये। उस शेष काम की पूर्ति भी आपने ही की और छठा भाग पूरा आपके द्वारा ही सम्पादित है।

आपने महाना पद वाच्य जैन ब्राह्मण जाति के हजारों घरों की भी खोज की, जो स्वर्ण बैलगोला, महाराष्ट्र, कारकल, मैसूर, बैंगलोर आदि स्थानों में स्थित हैं।

इस समय चिकित्सा व्यवसाय के साथ योगाभ्यास में रत हैं।

कविराज श्री वी एस. प्रेमी शास्त्री

ज्योतिष, साहित्य, साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम ए एम. एस रस शास्त्र विशेषज्ञ, अग्निस्थाई पारद के अनुसंधानकर्ता, वनौषधि विशेषज्ञ, भूतपूर्व प्रोफेसर-सनातन धर्म (पी जी) आयुर्वेदिक कालेज लाहौर, बम्बई, दिल्ली-२। वर्तमान प्रोफेसर-आयुर्वेदिक व यूनानी तिब्बिया कालेज करौल बाग, नई दिल्ली-५।

कविराज श्री प्रेमी जी आयुर्वेद जगत के जाने माने प्रकाण्ड विद्वान हैं। आयुर्वेद साहित्य, वैदिक साहित्य, संस्कृत साहित्य के निष्णात हैं। हिन्दी साहित्य के ओजस्वी लेखक प्रखरप्रवक्ता एवं कुशल अध्यापक हैं। योग दर्शन पर आपका विशेष गूढ़ अध्ययन है।

१—आप आयुर्वेद के महान नेता एवं विद्वान प्रातः स्मरणीय श्री प० बालक रामजी शुक्ल प्राणाचार्य, शास्त्राचार्य, प्रिंसीपल एवं अध्यक्ष श्री १०८ बाबा काली कमली वाला आयुर्वेद कालेज एवं औषध निर्माण शाला ऋषिकेश जि० देहरादून के प्रमुख शिष्य हैं।

२—आप एस टी पी जी आयुर्वेद कालेज लाहौर व बम्बई दिल्ली के कुशल अध्यापकों में अग्रणी माने जाते हैं। भारत विभाजन के पश्चात् आप दिल्ली आ गये और पिछले १५ वर्षों से आयुर्वेदिक व यूनानी तिब्बिया कालेज कालेज करौल बाग नई दिल्ली में आप चिकित्सा के प्राध्यापक हैं।
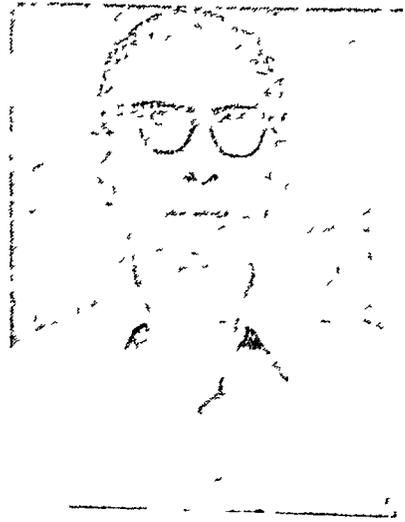
३—आप तिब्बिया कालेज अस्पताल में आयुर्वेदिक विभाग के अध्यक्ष हैं। अस्पताल के अन्तरंग विभाग में प्रायः जीर्ण डाक्टरों से परित्यक्त, कष्ट साध्य एवं असाध्य रोगियों पर ही आपकी अनुभवपूर्ण चिकित्सा का प्रयोग कर रहे हैं। चिकित्सा विज्ञान में यहाँ पर आपकी कुशलता सर्व विदित है।

४—आप कई संस्थाओं एवं अधिकारियों के परीक्षक, सदस्य तथा सम्मानित सदस्य रहे हैं।

५—श्री प्रेमी जी को उसी वर्ष आयुर्वेद की सेवा प्रचार-एवं प्रसारकार्य करने के फलस्वरूप अखिल भारतीय आयुर्वेद विज्ञान सम्मेलन ईशीपुर भागलपुर ने आयुर्वेद बृहस्पति डी एस-सी. की मानद उपाधि से सम्मानित किया है। धन्वन्तरि मासिक के अमूल्य दो चिकित्सा विशेषांकों का सम्पादन करके आयुर्वेद जगत में तथा देश में आयुर्वेद क्षेत्र की धूम मचादी है, जैसा कि धन्वन्तरि के सभी पाठकगढ सुपरिचित हैं।

६—श्री प्रेमी जी के रस शास्त्र सम्बन्धी अगाध ज्ञान की प्रतीक लेखमाला "अग्निस्थायी पारद" के नाम से धन्वन्तरि में कई वर्षों तक प्रकाशित होती रही है।

७—आपकी आयुर्वेद विषय पर बहुत सी अप्रकाशित रचनायें हैं जिन्हें वे प्रकाशित करने के लिए समय की अनकूलता की प्रतीक्षा मे हैं। इन रचनाओं के नाम से ही उनके अन्तर्गत विषय का ज्ञान होता है जैसे (१) अग्निस्थाई पारद संहिता। (२) प्राचीन और अर्वाचीन रसशास्त्र (३) रसशास्त्र की दिव्य औषधियां (४) धातुवाद विवेचन (५) बालरोग संहिता (६) प्रसूतिरोग विज्ञान (७) आयुर्वेदीय अगदतन्त्र विवेचन (८) रसायन और वाजीकरण प्रदीपिका(९)आयुर्वेदीय शल्यशाला की कुछ समस्यायें (१०) निघण्टु-समन्वय (११) काम चिकित्सा विज्ञान(१२) भूतविद्या शास्त्रम् (१३) स्वास्थ्य और दीर्घायु (१४) मानस रोग विज्ञान (१५) चरक सुश्रुतयो क श्रेष्ठ (१६) रस सिद्धाचार्य प्रकाशिका (१७) आयुर्वेद और ज्योतिष (१८) त्रिदोषवाद एवं जीवाणुवाद (१९) संक्रामक रोग विज्ञान (२०) योग के द्वारा चिकित्सा।

९—श्री प्रेमी जी ने सन् १९४३ तक स्वतन्त्रता संग्राम में भी सक्रिय भाग लिया है। अनेक बार जेलयात्रा की है और आपने शहीदे आजम सरदार भगतसिंह की फासी पर खिन्न होकर "समाजवाद" नामक पत्र निकाला था जो कि पूज्य बापू की अहिंसक क्रांति के साथ-साथ लाल क्रांति का भी समर्थन करता था।

१०—श्री प्रेमी जी टिहरी गढवाल के विश्व विख्यात कांग्रेसी नेता श्री देव सुमन जी के अंतरंग साथियों में से हैं। श्री सुमन जी का प्रायः सम्पूर्ण प्रचारात्मक साहित्य श्री प्रेमी जी के पास ही रखा जाता था।

११—श्री प्रेमी जी के गुरुजनों के नाम निम्नलिखित हैं जिनसे सदा ही कुछ न कुछ ज्ञान मिलता रहा है—(१) प्रसिद्ध आर्य सन्यासी श्री लक्ष्मणानन्द जी ब्यावर (सिन्ध वाले) (२) योगीराज स्वामी श्री सियाराम जी महाराज के परम शिष्य श्री स्वामी विशुद्धानद जी सरस्वती (३) उपदेशक विद्यालय गुरुदत्त भवन लाहौर के स्वामी स्वतन्त्रानद जी महाराज (४) ब्राह्मण महाविद्यालय लाहौर के आचार्य प० ऋषीराम जी (५) अघोर पन्थ के महान आचार्य स्वामी श्री वैरवा नद जी महाराज (६) रसशास्त्र के महाविद्वान स्वामी श्री शकरानद जी महाराज (७) थूलिंग म्र कसल श्री लर्गसिंह जी महाराज।

श्री वैद्य अंबालाल जोशी

वंश—दाधीच वंश

जन्म—१३ अक्टूबर १९१८

पितृनाम-वैद्य भूषण प० मोहनलाल जी शास्त्री आयुर्वेद केशरी

पितामह—आयुर्वेद मार्तण्ड प० वेनीराम जी शर्मा

जन्म स्थान—जोधपुर

कार्यस्थली—जोधपुर

अध्ययन—इण्टर साइन्स तक

संस्कृत अध्ययन—आशु कवि प० नित्यानन्द जी शास्त्री प्रभाकर (पंजाब) १९४४-साहित्य रत्न- (हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग) १९४८-भिषग-(नि भा. आ विद्यपीठ दिल्ली), आयुर्वेद रत्न (प्रयाग) १९४९

आयुर्वेद का अध्ययन तथा क्रियात्मक ज्ञान—प० श्री वेणीराम जी कार्य विधि-

१—स्वर्ण पदक सम्मानित—(राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन) बीकानेर अधिवेशन

सर्व प्रथम लेखन—धन्वन्तरि मासिक से ही प्रारम्भ, आयुर्वेदिक के सभी अंग्रेजी, हिन्दी पत्रों में निबन्ध लेखन

प्रधान सम्पादक—आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका

विशेष सम्पादक—विधि विधानांक (आयुर्वेद सन्देश)

" " वात रक्त रोगाङ्क (धन्वन्तरि)

सम्पादक—जय आयुर्वेद जोधपुर
„ „ सजीवन मासिक जोधपुर
सम्पादक मण्डल सदस्य—स्वास्थ्य
„ „ „ —राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन पत्रिका (कवि, लेखक, तथा कहानीकार)
सार्वजनिक सेवायें—
भू० पू० सदस्य—नगरपालिका, जोधपुर
„ „ जलसुधार समिति—राजस्थान
वर्तमान सदस्य—सार्वजनिक प्रन्यास मण्डल
भू०पू० सदस्य—राजस्थान आयुर्वेद परामर्शदातृ मण्डल
„ क्षेत्रीय परिवार नियोजन सलाहकार समिति, जोधपुर
भू पू प्रधान मंत्री—श्रीमा (दाधीच) ब्राह्मण महासभा
भू० पू० सदस्य—भाव नियंत्रण समिति जोधपुर
„ „ राजकीय पुस्तकालय समिति, जोधपुर
भूतपूर्व कन्वीनर—जोधपुर होलसेल सहकारी भण्डार
युत डाइरेक्टर „ „
भू० पू० कन्वीनर—महगाई संघर्ष समिति, जोधपुर
पुस्तक प्रकाशन—
रातझर—(साहित्यिक)
वाल्मीकीय रामायण मे आयुर्वेद (शोध ग्रन्थ)
भारतीय लोक साहित्य मे आयुर्वेद (शोध ग्रन्थ)
वात रक्त रोगाङ्क—धन्वन्तरि
आयुर्वेदीय गरल चिकित्सा कौस्तुभ

वैद्यरत्न डा० श्री जयनारायण गिरि "इन्दु"

विश्ववन्दित मिथिला भू के परम पावन रजकण से उद्भूत विद्या विनयावनत वैद्य रत्न श्री डा जय नारायण गिरि "इन्दु" आयुर्वेद गगन के जाज्वल्यमान नक्षत्र है जो आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी जी के शब्दो मे अपनी षोडश कलाओ से भौतिकवादी इन्दु को भी तिरस्कृत करते हैं। अतएव वैद्यरत्न, आयुर्वेद रत्नाकर, होमियो भूषण आदि कितने ही अर्घ्य से इनकी वन्दना की गई है। उनके मस्तिष्क मे ज्ञान प्रदायिनी सरस्वती का सघन निवास है जिसके फलस्वरूप "इन्दु" की ज्योत्स्ना आयुर्वेद के सभी पत्र-पत्रिकाओ पर छिटककर ज्ञान पिपासु चकोरो को अपनी सुधाबिन्दु से तृप्त करती है। सहृदय व्यक्तित्व युक्त श्री "इन्दु" जी हृदय से कवि है और कर्म मे धर्मिराज। इनके उर-अरण्य मे क्रांति की अनल शिखा प्रज्वलित है और मस्तिष्क मे हिमानी की शांत सरिता।

जन सेवा—जन सेवा के चलते दो बार जेल-यात्रा करने वाले श्री गिरिजी की वाणी मे प्रवाह है और लेखनी मे भी।

साहित्य—आयुर्वेद और समाज सेवा के पुनीत कर्मों मे अहर्निश जीवन के क्षण-क्षण को समर्पित करने वाले विद्याव्यसनी श्री गिरि जी के परिवार मे आयुर्वेदिक व्यवसाय लगभग दो सौ वर्षो से निरन्तर चला आ रहा है। आयुर्वेद के पूर्व आचार्यो की गौरवमयी परम्परा के वाहक श्री इन्दु जी का वंश कितने ही गौरवमय सुयोग्य वैद्यवरो से मण्डित और भूषित है और उसी गुप्त परम्परा से प्राप्त अनेकानेक अमोघ शस्त्र सरीखे योगो और अपने अनुभवो
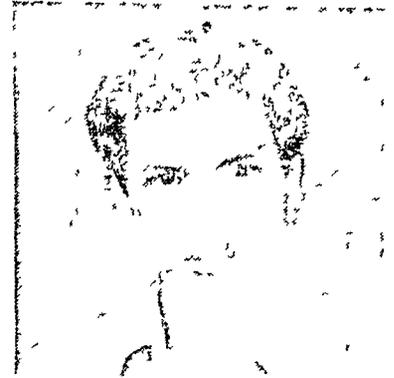
के बल पर कठिन से कठिन रोगो की चिकित्सा मे सिद्धहस्त और अपने क्षेत्र मे पीयूषपाणि चिकित्सक के रूप मे समादृत है। "अनुभूत योगमाला" के "मैथिली अङ्क" और "धन्वन्तरि" के आयुर्वेदिक सूची भरणांक एव कैपसूल अंक" जैसे ऐतिहासिक विशेषांको का यशस्वी सम्पादन, आकाशवाणी पटना द्वारा कई वार्ताओ का प्रसारण और 'विद्यापति नाट्य परिषद' द्वारा आयोजित अनेको नाटको मे प्रमुख भूमिकाओ मे सफल अभिनय किया है। भगवान इनके हाथो मे अमित यश प्रदान करें जिससे रुग्ण जनो की सेवा तत्परतापूर्वक अबाध गति से करते रहे और इनकी लेखनी आयुर्वेद के गूढतम रहस्यो को सदा-सर्वदा प्रतिपादित करने मे जूझती रहे यही मगल कामना है।

आचार्य दीनदयाल विष्ट (आयुर्वेदालंकार)

आपका जन्म ३ जुलाई १९३७ को पौडी गढवाल (उ० प्र०) के परिसैण स्थान मे राजपूत परिवार मे हुआ। पिताजी उस समय ब्रिटिश काल मे मुख्याध्यापक के पद पर थे और अत्यन्त धार्मिक विचारो के थे। अत बचपन मे ही गुरुकुल कागडी हरिद्वार मे प्रविष्ट हुये।

इस प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा से स्नातक स्तर की शिक्षा आपने यही पर प्राप्त की। १९६१ मे ए, एम वी एस आयुर्वेदालकार की परीक्षा उत्तीर्ण की और १९६२ मे हिमाचल प्रदेश की राजकीय सेवा मे आ गये। कुछ वर्षों तक औषधालयो मे रहे। परतु औषधि निर्माण मे विशेष रुचि एव अनुभव होने के कारण विभाग ने आपको अपनी माजरा स्थित फार्मेसी मे निर्माण कार्य पर प्रधान वैद्य के रूप मे नियुक्त किया।

इस दौरान आपने शर्बत निर्माण, आसव निर्माण, आयुर्वेदीय मान, भस्म एव अर्क निर्माण पर क्रियात्मक अनुभव प्राप्त लेख विभिन्न आयुर्वेदिक पत्रिकाओ मे प्रकाशित करवाये।

आसव निर्माण पर आपका अच्छा क्रियात्मक अनुभव है। १९७१ मे आसव निर्माण पर एक विस्तृत क्रियात्मक लेख लिखा जो ख्याति प्राप्त "धन्वन्तरि" के जुलाई ७५ अङ्क मे आसव निर्माण विशेषाँक के रूप मे प्रकाशित हुआ। आयुर्वेद के ज्ञाता होने के साथ ही आप वैज्ञानिक प्रतिभा सम्पन्न नवयुवक है।

आपके पास अनेक आसव निर्माताओ के विभिन्न प्रकार की समस्याओ से भरे पत्र आये जिनका आपने समाधान किया एव निर्माणशालाओ मे जाकर मार्ग दर्शन भी किया।

सविष एव निर्विष सापो के बारे मे भी आपकी अच्छी जानकारी है। १९७४ के ग्रीष्म एव वर्षाकाल मे आपने ३७ साप एकत्रित किये जिनमे से १६ जीवित पाले और क्रियात्मक अनुभव किया। पुन ‘जीवित सविष साप केन्द्रीय अनुसधान सस्थान कसौली (जिला शिमला) को एव मृत साँप केन्द्र सरकार के सोलन स्थित प्राणि विज्ञान सर्वेक्षण विभाग को दे दिये।

वर्तमान मे आप हि० प्र० की राजकीय आयर्वेदिक फार्मसी जोगेन्द्र नगर मे उपव्यवस्थापक के पद पर कार्य कर रहे है। यह फार्मेसी हिमाचल प्रदेश के ४३० आयर्वेदिक औषधालयो एव केन्द्रीय आयर्वेदिक चिकित्सालयो की माँग पूरी करती है।

श्री नन्द किशोर शर्मा

जाति—गौड ब्राह्मण

आयु—५२ वर्ष

निवास—पिपलौन कला प्र आगर (उज्जैन के पास)

शिक्षा—वैद्य विशारद, एव विद्यावाचस्पति प्रथम तथा वैद्य रत्न 'मानद' उपाधि।
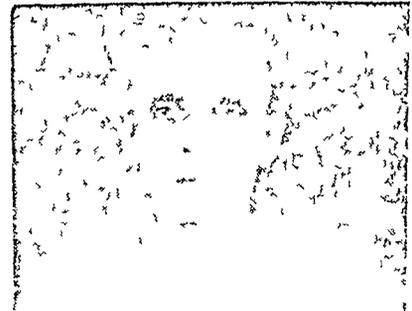
व्यवसाय — कृषि एव सचालक युग निर्माण योजना गायत्री तपो भूमि, मथुरा से सम्बन्धित ।

विशेष सम्पादक — धन्वन्तरि यंत्र-मंत्र तंत्राक भाग १ व २ एव "यज्ञ चिकित्साक"

विशेष सम्पादक — अनुभूत योगमाला "मंत्राक" एव "साधनाक"

पैतृक कुल की जमीदारी को ३५ वर्ष पूर्व छोड कर आयुर्वेद सूरि पं० कृष्ण प्रसाद जी त्रिवेदी बी ए. आयु से आयुर्वेद की शिक्षा प्राप्त की तथा पंडित श्रीराम जी शर्मा आचार्य के साथ रहकर युग निर्माण योजना का प्रचार किया । धन्वन्तरि से सन् ४० से परिचय है। आयुर्वेद विकास आदि पत्रो मे सारगर्भित लेख निकलते हैं। आयुर्वेद की आनरेरी खोजपूर्ण अहर्निश सेवा के फलस्वरूप भारतीय जन स्वास्थ्य रक्षक सघ देहली द्वारा नवम्बर ७४ मे "वैद्य रत्न" की मानद उपाधि प्रदान की है। आपको आयुर्वेद, ज्योतिष, एव यज्ञ-हवन, गायत्री पूजा से विशेष प्रेम है एव हवन-यज्ञ के बारे मे आपने बहुत अधिक अध्ययन एव विवेचन किया है।

श्री डा० रामचन्द्र साहू

अध्यक्ष — नेचरो आयुर्वेदिक रिसर्च हास्पीटल एव कैंसर-सशोधन केन्द्र, मटेरा बाजार, बहिराइच (उ प्र)

श्री डा० रामचन्द्र साहू मटेरा बाजार बहिराइच उ० प्र० के प्रख्यात चिकित्सक एव लेखक हैं। इनकी

शैक्षिक योग्यता बी ए, एन. डी प्राकृतिक चिकित्साचार्य एव वैद्य विशारद है। इन्होने "धन्वन्तरि" के "कैंसर रोगाङ्क" का सफल सम्पादन किया है। अनुभूत योगमाला के परिवार नियोजन अङ्क, विश्वेश्वर स्मृति अङ्क (गुप्त सिद्ध प्रयोगाक) एव प्राकृतिक चिकित्साक का सफल सम्पादन किया। इनके द्वारा विशेष चिकित्सा पद्धति से कई बडे २ डाक्टरो एवम् वैद्यो द्वारा असाध्य घोषित किये हुए रोगियो की सफलतापूर्वक चिकित्सा हुई है। ये कठिन एव पुराने रोगो के सिद्धहस्त चिकित्सक है। इनके गवेषणात्मक लेख धन्वन्तरि, आयुर्वेद विकास, अनुभूत योगमाला, शुचि, स्वास्थ्य, सुधा निधि आदि भिन्न-२ पत्र पत्रिकाओ मे सदैव प्रकाशित होते रहते है।

श्री वैद्य छगनलाल जी समदर्शी आयु० रत्न

प्रारम्भिक परिचय — वैद्य श्री छगनलाल जी 'समदर्शी' को २० जून १९५० को प्रात वेला मे राजस्थान राज्य के झालावाड जिलान्तर्गत एक छोटे से ग्राम 'सेमली भवानी' मे प्रात स्मरणीय माता श्री सीताबाई ने जन्म दिया। आपके पूज्य पिता श्री रामचन्द्र जी पाटीदार एक विशेष सेवाभावी, साहसी, धर्मनिष्ठ, सूझबूझ वे उद्योगशील व्यक्ति हैं।

कौटुम्बिक परिचय — आपके दो सहोदर भ्राता हैं। आपके सबसे बडे भ्राता श्री जगन्नाथ प्रसाद कुलमी अपने पिता श्री के साथ तन मन एव वैज्ञानिक तकनीकी से कृषि कार्य करते है तथा उनसे छोटे भाई (मध्य भ्राता) श्री ओकार लाल कुलमी जो पहले शासकीय सेवा मे F P H.A (फैमिली प्लानिंग हैल्थ असिस्टेण्ट) के पद पर कार्यरत थे, अपने बडे भाई के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कृषि कार्य कर रहे हैं। वैद्य श्री छगनलाल जी समदर्शी अपने पिता श्री के कनिष्ठ पुत्र हैं। स्वभाव से आप बड़े चचल परन्तु सन्तोषी, कला प्रिय, आडम्बरहीन और प्रसिद्धि से दूर रहने वाले है।

प्रारम्भिक शिक्षा — आपकी प्रारम्भिक शिक्षा ५ वी कक्षा तक समीप के राजकीय प्राथमिक विद्यालय (अब माध्यमिक विद्यालय) दीवलखेडा ग्राम मे हुई। आपके समय (सन् १९५९) मे वहाँ माध्यमिक शाला न होने से, घर छोडकर आपको शासकीय आदर्श माध्यमिक विद्यालय

(वर्तमान में उच्च माध्यमिक विद्यालय) रायपुर आना पड़ा। यहाँ से भी शिक्षा समाप्त होने के बाद आपने गवर्नमेंट स्कूल झालरापाटन नगर में प्रवेश लिया तथा पारिवारिक कठिनाइयों के कारण दसवीं कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आपको अपना अध्ययन बन्द कर देना पड़ा।

आयुर्वेदिक शिक्षा—आपकी हार्दिक अभिलाषा थी कि मैं वैद्य बनकर समाज सेवा करूँ। विद्याध्ययन समाप्त होने के बाद अचानक ही एक दिन आपकी भेंट आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान वैद्य श्री रेवाशंकर जी शर्मा वैद्याचार्य D. Sc. (जो १५ वर्ष तक 'अ' श्रेणी राजकीय चिकित्सालयों में सेवा कर चुके हैं) से हुई। आपकी ही छत्रछाया में रहकर श्री समदर्शी जी ने आयुर्वेद का विधिवत अध्ययन किया, एवं हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से 'आयुर्वेद रत्न' की उपाधि प्राप्त की।

चिकित्सा के क्षेत्र में—आप अपने निजी चिकित्सालय 'समदर्शी सर्वोपयोग हास्पीटल' का संचालन कर रहे हैं। आप त्वचा रोग, रक्तरोग, महिला एवं पुरुषों के जटिल एवं उलझे हुए गुप्त रोगों की चिकित्सा में विशेष ज्ञान रखते हैं।

लेखन कार्य—आपका सर्वप्रथम 'तालुमूल प्रदाह' शीर्षक लेख 'सचित्र आयुर्वेद' के अगस्त १९६८ के अंक में प्रकाशित हुआ इसके बाद आपके लेख आयुर्वेद के प्रायः सभी मासिक अङ्कों यथा—धन्वन्तरि, आयुर्वेद विकास, सुधानिधि, आयुर्वेद मार्तण्ड आदि में प्रकाशित होते रहे हैं। आपके सभी लेख, उत्तम, ज्ञानवर्धक, खोजपूर्ण एवं पठनीय होते हैं।

विशेष सम्पादक के रूप में—आपने सितम्बर १९७२ में धन्वन्तरि के 'आम-दोष-विज्ञानांक' नामक लघु विशेषांक का सम्पादन किया। 'आमदोष' विषय विवेचन पर जितना ठोस एवं विस्तारपूर्वक विवेचन इस अङ्क में संजोया गया है, अन्यत्र मिलना कठिन ही है। इस विशेषांक के विषय विवेचन की क्षमता को देख कर आपको सन् १९७३ में पुनः 'प्राणिज-खनिज-द्रव्यांक' के विशाल विशेषांक का सम्पादन कार्य सौंपा गया। रात-दिन अहर्निश कठिन मेहनत करके अल्प समय में ही आपने उपरोक्त विशेषांक में इतनी ठोस एवं ज्ञानवर्धक सामग्री संकलित
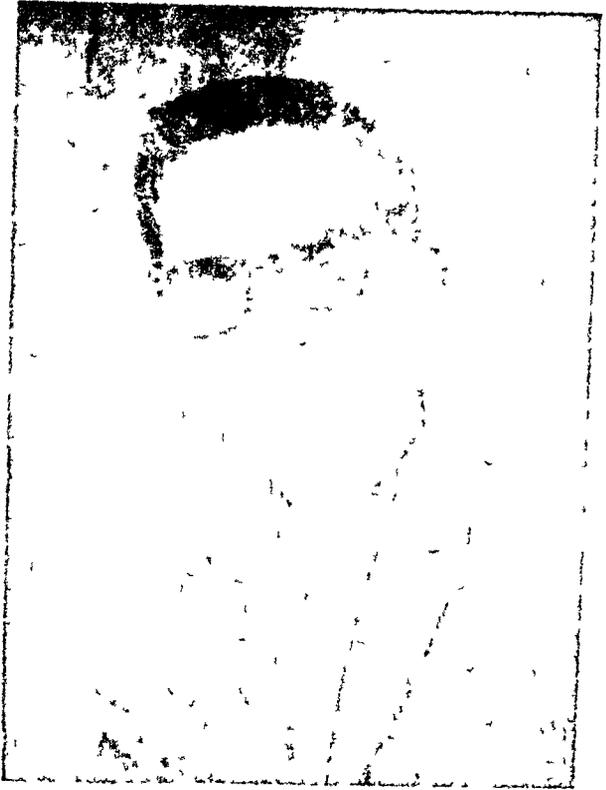
की कि आयुर्वेद के सभी अधिकाधिक विद्वानों, वैद्यों तथा पाठकों ने हृदय से इस अंक की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

यह स्वर्ण जयन्ती अङ्क—भी आपके ही सफल सम्पादन में प्रकाशित किया जा रहा है। अङ्क आपके कर-कमलों में है। यह अङ्क आपको कैसा लगा, अपने विचार, सुझाव धन्वन्तरि के माध्यम से सूचित कर आपके परिश्रम को सार्थक बनावें।

श्री डा० केवल धीर

यौन विशेषज्ञ एवं मनोविद चिकित्सक, चिकित्सा स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, सैक्स एवं मनोविज्ञान साहित्य के यशस्वी लेखक, उर्दू के प्रख्यात कहानीकार, डाक्यूमेण्ट्री फिल्मों के कहानी लेखक, लन्दन से प्रकाशित उर्दू मासिक "नई सदी" के भारत में विशेष सम्पादक, साप्ताहिक स्वतन्त्र (पटना), पाक्षिक "धारा" (पटना), मासिक सेक्स पत्रिका स्त्री पुरुष का सम्पादन अनुभव। इन दिनों पंजाब सरकार के स्वास्थ्य विभाग में मैडीकल आफीसर हैं।
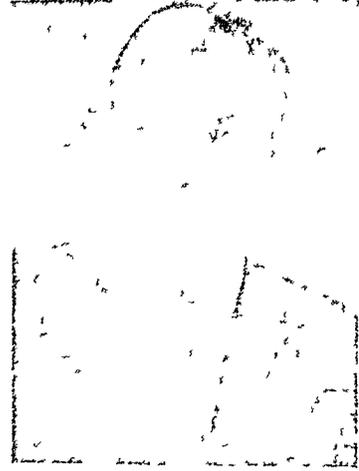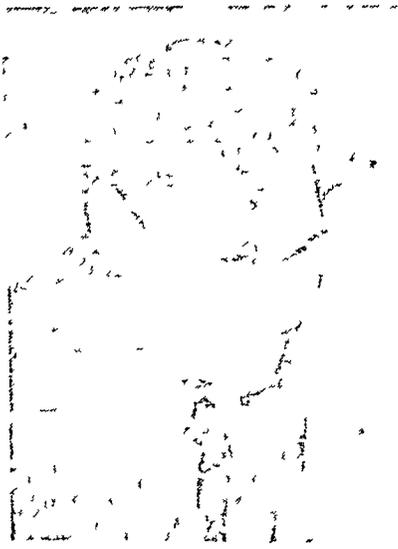
अनेक पुस्तकों के पुरुस्कार विजियता "यौन-समस्यायें"—"स्त्री रोग चिकित्सा" "दत विज्ञान"—"परिवार नियोजन"—"नरनारी—विवाहितो के लिये" "प्राथमिक चिकित्सा' आदि दो दर्जन से अधिक अ ग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और पजाबी पुस्तको के रचयिता डा० धीर ने नवम्बर १९६७ मे धन्वन्तरि के 'सैक्स रोगाङ्क' का सम्पादन कर सैक्स पर बहुतही उत्तम गवेषणापूर्ण जानकारी प्रदान कर आयुर्वेद के भडार की श्री वृद्धि की है। आपने ही अक्टूबर १९७३ मे 'एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्साक' का भी सफल सम्पादन किया है।

कविराज श्री श्रीनिवास 'व्यास' B I M S

कविराज श्री श्रीनिवास व्यास का जन्म हरियाणा के जिले गुडगाव के अन्तर्गत ग्राम बहौडा कलाँ मे गौड ब्राह्मण वशज भारद्वाज गोत्रीय राजवैद्य प० रामचन्द्र शर्मा के सुपुत्र वैद्यराज प० भूदेव शर्मा के यहा १९४५ मे हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा एव आयुर्वेद शिक्षा सब नई दिल्ली मे ही हुई।

आप कविराज श्री शिवकुमार व्यास (परिचय पृष्ठ ५० पर) प्राचार्य एव रीडर—आयुर्वेदिक एव यूनानी तिब्बिया कालेज, नई दिल्ली—५ के कनिष्ठ भ्राता है, और उन्ही के पदचिह्नो पर चल रहे है।

आपने बी०आई०एम०एस०, आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरि परीक्षा योग्यता के साथ पास की और प्रशसापत्र प्राप्त किया। उत्तर भारत, पश्चिमी एव पूर्वी भारत के आयुर्वेदिक सस्थानो का आपने ज्ञानवर्धक दौरा किया और आयुर्वेद शिक्षण के बारे मे विशेष अध्ययन किया।

सस्कृत विश्व-विद्यालय बिहार मे सम्बन्धित कालेज, मदन मोहन मालवीय आयुर्वेदिक कालेज एव कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के आयुर्वेद कालेज मे अध्यापन कार्य किया। सम्प्रति विद्यापीठ के सनातन धर्म आयुर्वेदिक कालेज मे प्रोफेसर पद पर कार्य कर रहे है।

अखिल भारतीय आयुर्वेदिक विज्ञान सम्मेलन, बिहार ने आपको डी० एम—सी० ए० से सम्मानित करने का निश्चय किया है।

आपके सम्पादन मे धन्वन्तरि का वर्ष १९७४ मे आयुर्वेद शिक्षणाक प्रकाशित किया गया था। इससे पाठको को आयुर्वेद शिक्षा सम्बन्धी अनेक जानकारिया ज्ञात हुई।

आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी बी. ए., आयुर्वेद शास्त्राचार्य

श्री द्विवेदीजी का जन्म पवित्र ब्राह्मणकुल सरयूपारीय वश के जयमिधीय गोत्र मे बलिया मण्डलान्तर्गत ओझवलिया ग्राम के भारत दूबे का छपरा नामक स्थान पर विक्रमीय सवत् १९६३ कृष्णपक्ष चतुर्थी भाद्रपद मे हुआ। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने ग्राम के पास ही रायपुरा ग्राम मे हुई। इसके पश्चात् हिन्दी व उर्दू की परीक्षा

बमारीपुर ग्राम से सम्पन्न हुई। इसके पश्चात् इंग्लिश के अध्ययन के लिये १९२० ई० में ये अपने लघु भ्राता डा० हजारी प्रसाद के साथ पूर्वी बंगाल के बर्द्धमगंज फरीदपुर में अपने पितृव्य के साथ गये, किन्तु महात्मा गान्धी जी के 'अंग्रेजी स्कूल छोड़ो' आन्दोलन में स्कूल छोड़ दिये।

इसके पश्चात् दोनों भाई भारतीय वाङ्मय की सर्व श्रेष्ठ भाषा संस्कृत के अध्ययन के लिए हिन्दू विश्वविद्यालय के तत्वाधान में चलने वाली रणवीर संस्कृत पाठशाला में प्रख्यात विद्वान श्री अनन्तराम शास्त्री से संस्कृत शिक्षा प्राप्त कर प्रवेशिका परीक्षा अत्यल्प समय में उत्तीर्ण करली। इसके पश्चात् हिन्दू विश्वविद्यालय में मध्यमा, शास्त्री व शास्त्राचार्य की परीक्षायें क्रमश १९२५, १९२७ व १९२९ में उत्तीर्ण की। इसके साथ ही साथ एडमिशन लेकर इण्टर व बी ए की परीक्षायें भी हिन्दू विश्वविद्यालय से ही उत्तीर्ण की।

इनके अतिरिक्त साहित्यालंकार, अखिल भारतीय संस्कृत एसोसियेशन से आयुर्वेद बृहस्पति, डी एस् सी आयुर्वेद (काशी से) तत्कालीन स्वास्थ्य मंत्री श्रीमती अमृत कौर के कर कमलों द्वारा तथा आयुर्वेदोपाध्याय आयुर्वेदीय ऐकेडमी हैदराबाद व प्राणाचार्य वैद्य परिषद दिल्ली के द्वारा इनके सम्मान में अर्पित की गयी।

अध्ययन के पश्चात् श्री द्विवेदी जी ने पीलीभीत में ललितहरि आयुर्वेदिक कालेज में प्रिंसिपल के पद पर सन् १९३२ में कार्य प्रारम्भ किया। आयुर्वेदिक कालेज में लगातार २० वर्षों तक ये आचार्य पद पर कार्य करते रहे। इसके पश्चात् चार वर्षों तक किंग जार्ज मेडिकल कालेज लखनऊ में जब बी० एम० बी० एस० कोर्स आयुर्वेद का चल रहा था उसमें विभागाध्यक्ष आयुर्वेद का कार्य करते रहे। सन् १९५६ से १९६८ अर्थात् १२ वर्षों तक स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र जामनगर में प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष द्रव्य गुण तथा डायरेक्टर आई० ए० आर० जामनगर में कार्य करते रहे।

इसके पश्चात् आचार्य जी यहां से रिटायर होकर वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी, आयुर्वेद महाविद्यालय में आचार्य पद पर निरन्तर पांच वर्षों तक कार्य करते रहे। वहां से अवकाश लेने के बाद अब वे अपने निवास स्थान कुसुम भवन—नगवा वाराणसी में निवास करते हैं और चरक चिकित्सालय का संचालन करते हैं। इस प्रकार श्री द्विवेदी जी का सम्पूर्ण जीवन आयुर्वेद की शिक्षा दीक्षा तथा अनुसंधान में व्यतीत हुआ है और अब भी उन कार्यों में रत हैं। अपने इस कार्य
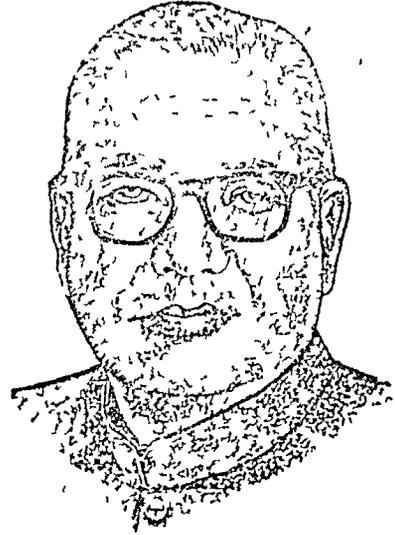
काल में आप प्रान्तीय व केन्द्रीय सरकारों से सम्बन्धित अनेक आयुर्वेदीय संस्थाओं से सम्बद्ध रहे हैं। यथा—

१—आयुर्वेद यूनानी रीआर्गनाइजेशन कमेटी, गवर्नमेंट आफ यू०पी०, लखनऊ।
२—आयुर्वेद यूनानी एकेडमी, लखनऊ।
३—एकेडमी कौंसिल, फार्माकोपिया कमेटी, लखनऊ।
४—चेयरमेन-बोर्ड आफ इण्डियन मेडीसिन, लखनऊ।
५—सदस्य—बोर्ड आफ एजूकेशन कमेटी, गु० विश्वविद्यालय, अहमदाबाद।
६—सदस्य—बोर्ड आफ एजूकेशन कमेटी, जीवाजी यूनिवर्सिटी, ग्वालियर।
७—सदस्य—सिनेट आफ गुजरात यूनिवर्सिटी, अहमदाबाद।
८—सदस्य फैकल्टी आफ आयुर्वेद, लखनऊ यूनिवर्सिटी।
९ ,, ,, ,, जबलपुर यूनिवर्सिटी
१०— ,, ,, ,, लखनऊ ,,
११— ,, ,, ,, मैसूर ,,
१२— ,, ,, ,, काशी विश्वविद्यालय

१३–डीन आफ दी फैकल्टी आयुर्वेद गुजरात यूनिवर्सिटी अहमदाबाद।

१४–सदस्य–मेरिट पे कमेटी, जयपुर, यूनिवर्सिटी।

१५–सदस्य–पोस्ट ग्रेजुएट इन्स्टीच्यूट आफ मेडीकल साइन्स बी एच यू।

१६–सदस्य–मेडिसिनल प्लान्ट्स एण्ड माइनर क्राप्स कमेटी, I C A R, दिल्ली।

१७–सदस्य–फार्माकोपिया कमेटी गवर्नमेंट आफ इण्डिया, दिल्ली।

१८–सदस्य–जरनल आफ इण्डियन मेडिकल साइन्स, वाराणसी।

१९–सदस्य–ड्रग्स स्टेण्डर्डाइजेशन कमेटी, इलाहाबाद।

२०– ,, ,, ,, गवर्न आफ इण्डिया, दिल्ली।

२१– ,, साइन्टीफिक एडवाइजरी बोर्ड C C R I M H नई दिल्ली, इत्यादि।

लेखन कार्य—द्विवेदी जी शिक्षक और आयुर्वेद के अधिकारी लेखक की तरह प्रसिद्ध रहे। उनके स्वय लिखे हुए १२ ग्रन्थ प्रसिद्ध है जो निम्नलिखित है—

१—त्रिदोषालोक–निखिल भारतीय महासम्मेलन नागपुर से स्वर्ण पदक प्राप्त २—वैद्य सहचर

३ –जर्म्स थ्योरी इन दि वेदाज-वेदो मे जीवाणु विज्ञान

४—तैल सग्रह ५—अभिनव नेत्र रोग विज्ञान

६—प्रत्यक्ष औषधि निर्माण

७ – क्रियात्मक द्रव्य गुण विज्ञान

८—आयुर्वेद की औषधियो का वर्गीकरण

९—औषधि विज्ञान शास्त्र १०—नाडी विज्ञान

११–बृहत्रयी निघण्टु १२–आरोग्य शास्त्र

द्विवेदी जी ने स्नातकोत्तर प्रशिक्षण केन्द्र मे ४० महा-निबन्धो का निर्देशन किया है और ३६ एकौषधि सग्रह का निर्देशन किया है। सन् १९७४ मे आपने "धन्वन्तरि" के सदिग्ध वनौषधि अक का सम्पादन किया जो आपकी विद्वता एव आपके अगाध ज्ञान का प्रतीक है।

यहाँ तक मैने 'धन्वन्तरि' के सक्षिप्त इतिहास तथा स्थायी एव विशेष सम्पादको का नाति विस्तरेण परिचय प्रस्तुत किया है। लगभग १० वर्षो से 'धन्वन्तरि' मे स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी एव विधि विधान प्रश्नोत्तरी को साधारण अङ्को मे प्रकाशित किया जाता रहा है। स्थानाभाव के कारण इनके लेखक महोदयो का चित्र मात्र ही नीचे दे रहे है। परिचय नही दे सके इसका खेद है। कृपया क्षमा करेगे।

– दाऊदयाल गर्ग सम्पादक 'धन्वन्तरि'

←विधिविधान प्रश्नोत्तरी के लेखक
राजवैद्य श्री प० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित
आयु० बृह०
सम्पादक–आयुर्वेद सन्देश
त्रिवेणीगज (नौबस्ता), लखनऊ
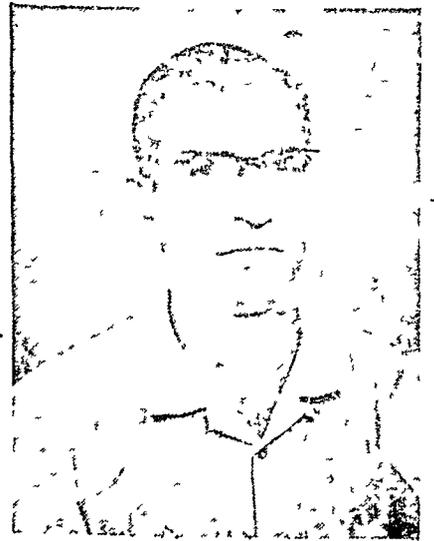
स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी के लेखक→
श्री प० कृष्णदत्त शर्मा आयुर्वेदाचार्य
एच पी ए
मानद सम्पादक–आयुर्वेद मार्तण्ड
गणेशगढ (श्री गगानगर) राज०
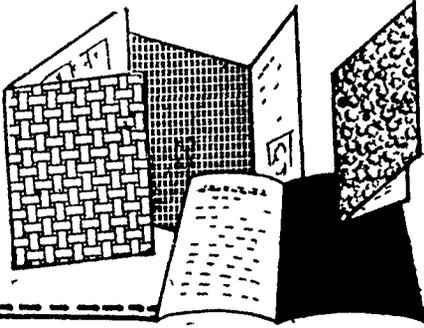
धन्वन्तरि के अब तक प्रकाशित विशेषाङ्क एवं क्रमिक इतिहास

डा दाऊ दयाल गर्ग, ए, एम बी एस आयु वृह 'सम्पादक-धन्वन्तरि'

पूज्य पितामह स्वर्गीय वैद्यराज राधाबल्लभ जी वैद्य द्वारा रोपित 'धन्वन्तरि' रूपी विशाल वृक्ष ने फल फूल रूपी अनेक उत्तमोत्तम विशाल एव लघु विशेषांक पाठको को दिये है । प्रथम वर्ष मे धन्वन्तरि का कोई विशेषांक नही निकल पाया लेकिन द्वितीय वर्ष से ही इसके विशेषाक प्रकाशित होने लगे । अब तक इसके निम्नलिखित विशेषांक प्रकाशित हुए है—

वर्ष २ (सन् १९२३ संवत् १९८१ विक्रमी)—

(१) धन्वन्तरि महोत्सवाक—कातिक सवत् १९८१ तदनुसार अक्टूबर १९२३ को 'धन्वन्तरि महोत्सवाक' नामक विशेषाङ्क प्रथम बार प्रकाशित किया गया। यद्यपि इसमे किसी एक विषय पर विस्तृत जानकारी नही थी लेकिन विभिन्न रोगो पर सुन्दर २ लेख प्रकाशित किये गए । दशमूल की सभी घटक वनस्पतियो पर विस्तृत विवेचन भी इस विशेषाङ्क मे है । आर्ट पेपर पर सभी वनस्पतियो के पृथक-पृथक चित्र दिये गए है । इस अङ्क मे कई तिरगे चित्र उपलब्ध है । पुस्तकाकार ८० पृष्ठो का यह विशेषाङ्क स्वर्गीय बांकेलाल गुप्त के सम्पादन मे प्रकाशित हुआ था ।

वर्ष ३ (सन् १९२४ ई० संवत् १९८२ वि०)—

(२) स्वप्न प्रमेहाक - कार्तिक एव मार्गशीर्ष सम्वत् १९८२ (अक्टूबर नवम्बर १९२४) का सयुक्ताक 'स्वप्न प्रमेहाङ्क' प्रकाशित किया गया । पुस्तकाकार २०८ पृष्ठो का यह प्रथम विशेषाक है जिसमे शीर्षक के अनुरूप एक ही विषय पर क्रमबद्ध लेख प्रकाशित किये गये है । इसमे अनेक बहुरङ्गी सुन्दर चित्र तथा शरीर रचना चित्र आर्ट पेपर पर दिये गए है । यह अङ्क भी स्वर्गीय बाकेलाल जी गुप्त के सम्पादन मे ही प्रकाशित किया गया था ।

वर्ष ४ (सन् १९२७)—

(३) मलावरोधाक— जनवरी-फरवरी १९२७ मे प्रकाशित १७२ पृष्ठो का सयुक्तांक 'मलावरोधाङ्क' आयुर्वेद जगत द्वारा बहुत पसन्द किया गया । जहा पहले पुस्तकाकार मे विशेषाङ्क प्रकाशित हुए वहा अब की बार यह अङ्क दूने आकार मे प्रकाशित किया गया । इस अङ्क मे अनेको बहुरगे चित्र दिये गए है । चतुर्थ वर्ष मे मलावरोधाक के अतिरिक्त दो अन्य लघु विशेषाक भी प्रकाशित किए गए थे ।

वर्ष ५ (सन् १९२८)—

(४) हिस्टेरिया विशेषाक—१३६ पृष्ठो की सामग्री का यह अङ्क जनवरी फरवरी १९२८ का सयुक्ताक है । इसी वर्ष दो लघु विशेषाङ्क—

(५)-(६) वैद्य सम्मेलनाक एव प्रयोगाक—प्रकाशित किये गये । वैद्य सम्मेलनाक मे आयुर्वेद सम्मेलन के विस्तृत समाचार, अधिकारियो के भाषण तथा फोटो दिए गए है । प्रयोगाक नवम्बर-दिसम्बर १९२८ का सयुक्ताक है जो २०० पृष्ठो की सामग्री को लिए डा० गणपति चन्द केला के सम्पादन मे प्रकाशित हुआ है ।

वर्ष ६ (सन् १९३०)—

(७) गृहस्थाक—सितम्बर-अक्टूबर १९३० मे गृहस्थाङ्क' नामक सयुक्ताङ्क प्रकाशित हुआ । इसमे अनेको बहुरगे तथा एक-रगे चित्र छापे गए है । यह अङ्क स्व० वैद्य बाकेलाल गुप्त एव स्व० डा० गणपति चन्द्र केला के सम्पादन मे निकाला गया है ।

वर्ष ७ (सन् १९३१) -

(८) योगांक - सप्तम वर्ष अर्थात् वर्ष १९३१ मे 'योगाङ्क' नामक विशाल विशेषांक प्रकाशित किया गया। इसमे योग आसनो के विषय मे सचित्र विवरण दिया गया।

वर्ष ८ (सन् १९३२) -

(९) परीक्षित प्रयोगांक ६२८ प्रयोग रत्नो से सजोया 'परीक्षित-प्रयोगांक' अगस्त १९३२ का अङ्क है। इस अङ्क मे लेखको के चित्र आर्ट पेपर पर सुन्दर ढङ्ग से पृथक प्रकाशित किए गए हैं।

(१०) मधुमेहांक-फरवरी १९३३ का यह लघु विशेषांक है। जिसमे बड़े ही उत्तमोत्तम प्रयोग दिए गए हैं। इस वर्ष कुल मिलाकर १११९ प्रयोग प्रकाशित किये गये है।

वर्ष ९ (सन् १९३३) --

(११) अनुभूत चिकित्सांक—अगस्त सितम्बर १९३३ मे 'अनुभूत चिकित्सांक' प्रकाशित किया गया। इसके विशेष सम्पादक वैद्य भूषण स्व० गोवर्धन शर्मा छांगाणी रहे। विशेषांक के लिए विशेष सम्पादक नियुक्त करने की परम्परा इसी वर्ष से प्रारम्भ हुई है।

(१२) सिद्ध योग अंक फरवरी १९३४ मे नवम् भाग का दूसरा विशेषांक प्रकाशित किया गया। इसमें लेखको के चित्र आर्ट पेपर पर या रङ्गीन कागज पर छापकर पृथक से लगाये गये हैं।

वर्ष १० (सन् १९३४) —

(१३) अनुभूत चिकित्सांक गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी अनुभूत चिकित्सांक नामक विशाल अंक प्रकाशित किया गया जिसके विशेष सम्पादक हिन्दूविश्वविद्यालय के अन्तर्गत कार्यरत आयुर्वेदिक फार्मेसी के तत्कालीन अध्यक्ष स्व० कविराज श्री प्रतापसिंह जी रसायनाचार्य रहे। इसी वर्ष दो अन्य विशेषांक —

(१४) ज्वरांक-वैद्य विशारद श्री मुन्ना लाल जी गुप्त के सम्पादन मे, तथा —

(१५) पथ्यांक—स्थाई सम्पादकों के सानिध्य में प्रकाशित किये गये।

वर्ष ११ (सन् १९३५) —

(१६) बूटी चित्रांक-रूपनिघण्टुकार तथा तत्कालीन वनौषधि विषय के सर्वोत्तम विद्वान बनारस निवासी स्व० रूपलाल जी वैश्य के विशेष सम्पादकत्व मे 'बूटी चित्रांक' अगस्त सितम्बर १९३५ मे प्रकाशित किया गया। अक्टूबर १९३५ मे इसका परिशिष्टांक निकाला गया। परिशिष्टांक प्रकाशित करने का धन्वन्तरि का पहला अवसर है। इस बूटी चित्रांक को वैद्य जगत ने पसन्द किया। धन्वन्तरि के वनौषधि विशेषांक के सभी भागो की सामग्री एवं चित्र सकलन मे इस विशेषांक से पर्याप्त सहायता ली गई है।

(१७) फरवरी १९३६ मे गुप्त रोगांक एवं मार्च १९३६ मे—

(१८) होलिकांक प्रकाशित किये गये।

वर्ष १२ (सन् १९३६)—

(१९) बालरोगांक—आयुर्वेद जगत के तत्कालीन उद्भट विद्वान स्व० हरिदास जी वैद्य के विशेष सम्पादकत्व मे 'बाल रोगांक' प्रकाशित किया गया जोकि अगस्त सितम्बर १९३६ का सयुक्तांक रहा। अक्टूबर १९३६ मे इसका परिशिष्टांक प्रकाशित किया गया। इस बाल रोगांक की इतनी अधिक मांग रही कि उसके कई सस्करण बाद मे निकाले गये तथा सन् १९६२ मे इसे नए रूप मे शिशु रोगांक के नाम से प्रकाशित किया गया। अप्रैल १९३७ मे—

(२०) मकरध्वजांक—नामक लघु विशेषांक प्रकाशित किया गया जिसमे आयुर्वेदीय रस चिकित्सा की रीढ़ चन्द्रोदय एवं मकरध्वज पर विस्तृत विवेचन है।

वर्ष १३ (सन् १९३८)--

(२१) शारीरांक स्व० डा० गणपति चन्द्र केला के विशेष सम्पादकत्व मे जनवरी- फरवरी १९३८ मे शारीरांक प्रकाशित किया गया इसमें सैकडो चित्र दिये गये हैं। मार्च १९३८ से सम्पादक मण्डल मे परिवर्तन हुआ स्व० गणपति चन्द्र केला का स्थान स्व० वै० देवीशरण गर्ग ने ले लिया। इस तरह अब स्थाई सम्पादक स्व० वैद्य बांकेलाल गुप्त तथा स्व० वैद्य देवीशरण गर्ग हो गए। अगस्त १९३८ मे—

(२२) चर्म रोगाङ्क—नामक लघुविशेषांक प्रका-

शित किया गया तथा इसी का परिशिष्टाक सितम्बर १६३८ मे प्रकाशित किया गया।

वर्ष १४ (सन् १६३६) -

(२३) वात रोगाक—चिकित्सा चन्द्रोदय तथा स्वास्थ्य रक्षा ग्रथो के लेखक स्व० बाबू हरिदास जी वैद्यराज के विशेष सम्पादकत्व मे 'वातरोगाक' प्रकाशित किया गया। यह जनवरी फरवरी १६३६ का सयुक्ताक रहा। इस वर्ष परम्परा से थोड़ा हट कर वर्ष का सर्व प्रथम अङ्क विशेपाक रहा। इस अङ्क मे विभिन्न वात रोगियो के सैकडो फोटो चित्र प्रकाशित किये गये जिनसे कि विषय स्पष्ट हो जाता है। (अगस्त १६३६ मे)—

(२५) नेत्र रोगाक—नामक लघु विशेषाक प्रकाशित किया गया।

वर्ष १५ (सन् १६४०) —

(२६) नारीरोगाक—स्वय स्थाई सम्पादको द्वारा जनवरी फरवरी का सयुक्ताक 'नारी रोगाक' वर्ष १६४० में निकाला गया। मार्च माह मे नारी रोगाक का परिशिष्टाक भी निकाला गया। यह वही विशेपाक है जिसके कि २ सस्करण हाथो हाथ समाप्त हो गये, १६६० में नवीन सामग्री के साथ इसका पुन विशेपाक के रूप मे प्रकाशन किया गया। इस १६६० मे प्रकाशित विशेपाक के भी २ सस्करण हुये जो कि तुरन्त ही समाप्त हो गये। इस अक मे अनेको तिरगे चित्र आर्ट पेपर पर छापे गये। यह अक आयुर्वेद जगत द्वारा बहुत पसन्द किया गया।

वर्ष १६ (सन् १६४१) —

(२७) अनुभवाक—स्थाई सम्पादको द्वारा सोलहवें वर्ष जनवरी फरवरी १६४१ का सयुक्ताक 'अनुभवांक' निकाला गया। इस अनुभवाक की माग भी आयुर्वेद समाज मे बहुत अधिक रही। मार्च माह मे इसका परिशिष्टाक भी निकाला गया। इस अक मे अनेक तिरगे चित्र आर्ट पेपर पर छापे गये।

वर्ष १७ (सन् १६४०) —

(२८) ज्वराक—जनवरी फरवरी १६४२ मे 'ज्वराङ्क' निकाला गया जिसके विशेष सम्पादक आयुर्वेद के विद्वान मनीषि प० श्री कृष्ण प्रसाद जी त्रिवेदी रहे। श्री त्रिवेदी जी ने ही बाद मे वनौषधि विशेषाक के ५ भाग लिखे, जिन्हे आयुर्वेद जगत मे बहुत आदर मिला है।

इसमे तिरगे तथा सादा चित्र बहुत अधिक तथा प्रथक आर्ट पेपर पर छापकर लगाये गये। इन चित्रो की प्रथक से भी बिक्री की गई। इस बात से भी आप इन चित्रो की सुन्दरता आदि का अनुमान लगा सकते है। ज्वर का जैसा विवेचन एव उस पर कार्य करने वाले प्रयोगो का सग्रह इस विशेपाक मे उपलब्ध होता है वैसा कही भी अन्यत्र प्राप्त होना दुर्लभ है। यह विशेपाक तुरन्त ही समाप्त हो गया।

मार्च १६४६ मे ज्वराक का परिशिष्टाक निकाला गया।

वर्ष १८ (सन् १६४३)—

(२९) उदर रोगाक—अठारवे वर्ष तदनुसार जनवरी—फरवरी १६४३ का सयुक्ताक 'उदर रोगाङ्क' प्रकाशित किया गया। मार्च १६४३ मे इसका परिशिष्टाक प्रकाशित किया गया। इसमे तिरगे तथा सादे बहुत अधिक चित्र प्रकाशित किये गये। उदर रोगो का विवेचन इस विशेषाक मे अत्यन्त सुन्दर ढङ्ग से किया गया है। यह विशेपाक इतना प्रिय रहा कि प्रकाशित होने के ३-४ माह बाद ही समाप्त हो गया।

वर्ष १९ (सन् १६४४) —

(३०) पुरुष रोगाक—आयुर्वेद जगत के जाने माने विद्वान 'अमृत धारा' के आविष्कारक तत्कालीन लाहौर निवासी (बाद मे देहरादून) प० ठाकुर दत्त जी शर्मा के विशेष सम्पादकत्व मे वर्ष १६४४ का जनवरी फरवरी माह का सयुक्ताक 'पुरुष रोगाक' प्रकाशित किया गया। इस विशेषाक मे पुरुष रोगो से सम्बन्धित अनेक तिरगे चित्र तथा एकरगे पूर्ण पृष्ठीय चित्र लगाये गये। यह अक भी अपने विषय का महत्वपूर्ण अक था।

वर्ष २० (सन् १६४५)

(३१) क्षय रोगाक—आयुर्वेद जगत के विशेष सेवाभावी स्व० कवि० प्रताप सिंह जी रसायनाचार्य के सफल सम्पादकत्व मे धन्वन्तरि का यह 'क्षय रोगाक' जून जोलाई-अगस्त—तीन माह का सयुक्ताक वर्ष १६४५ मे प्रकाशित किया गया। अगस्त माह मे ही इस विशेपाक का परिशिष्टाक भी प्रकाशित किया गया।

वर्ष २१ (सन् १६४६)—

(३२) रक्त रोगाक— इक्कीसवे वर्ष का विशाल

विशेपाक 'रक्त रोगाक' जून १९४६ मे प्रकाशित हुआ।

इक्कीसवा वर्ष 'धन्वन्तरि' का एक एतिहासिक वर्ष था। इस रक्तरोगाक से ही धन्वन्तरि के स्थाई सम्पादको मे से स्व० वैद्य बाँकेलाल जी गुप्त हट गये। आपका स्थान मेरे ताऊजी स्व० वैद्य श्री देवीशरण गर्ग एव उनके अनुज मेरे पिताजी श्री ज्वाला प्रसाद जी अग्रवाल ने सम्पादक के रूप मे ले लिया जो कि अव धन्वन्तरि पत्रिका के प्रधान सम्पादक हैं। वस्तुत श्री ज्वाला प्रसाद जी अग्रवाल ७-८ वर्षो से 'धन्वन्तरि' के सम्पादन मे विशेप सहयोग दे रहे थे लेकिन सम्पादक रूप मे नाम इम 'रक्त रोगाक' से ही दिया गया है।

वर्ष २२ (सन् १९४७)—

(३३) गुप्त सिद्ध प्रयोगाक (प्र भा)—जून-जौलाई १९४७ का सयुक्ताक विशाल विशेपाक 'गुप्तसिद्ध प्रयोगाक' प्र० भा० प्रकाशित हुआ। इस विशेपाक की वैद्य जगत मे पर्याप्त प्रसशा हुई तथा उसी वर्प ससाप्त हो हो गया। पश्चात् इसके कई सस्करण तथा इसकी रूप रेखा पर कई भाग प्रस्तुत किये गये। यहा तक कि गत वर्प मन् १९७४ का विशाल विशेषाक इसी शैली पर आधारित प्रयोगो का सग्रह है। इसमे रगीन या एक रगे चित्र तो प्रकाशित नही किये गये क्योकि यह विशेपाक मात्र प्रयोगो का सग्रह था लेकिन प्रयोगो के लगभग सभी लेखको के फोटो चित्र अवश्य छापे गये।

वर्ष २३ (सन् १९४८)—

(३४) कल्प एव पचकर्म चिकित्साक—देहली के तिब्बिया कौलेज के प्रोफेसर सुप्रसिद्ध विद्वान कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास काव्य व्याकरण साख्यतीर्थ के विशेप सम्पादकत्व मे जून-जौलाई १९४८ का सयुक्ताक 'कल्प एव पचकर्म चिकित्साङ्क' प्रकाशित किया गया। अगस्त १९४८ मे इसका परिशिष्टाक भी प्रकाशित किया गया।

(३५) 'गुप्त सिद्ध प्रयोगाङ्क' का द्वितीय भाग फरवरी १९४९ मे १२५ पृष्ठो की सामग्री से पूर्ण लघु विशेपाक के रूप मे प्रकाशित किया गया।

वर्ष २४ (सन् १९४९)—

(३६) सक्रामक रोगाङ्क—चौवीसवें वर्प मे अगस्त सितम्बर १९४९ का सयुक्ताक 'सक्रामक-रोगाङ्क' फैजावाद निवासी कविराज श्री मदन गोपाल जी वैद्य ए एम एम. के विशेप सम्पादन मे प्रकाशित हुआ।

सक्रामक रोगाङ्क का परिशिष्ट अङ्क अगस्त १९४९ मे प्रकाशित हुआ। इस अङ्क मे सक्रामक रोगो का विवेचन अति सुन्दर ढग से किया गया है।

(३७) गुप्त सिद्ध प्रयोगाक का तृतीय भाग अप्रैल १९५० मे प्रकाशित किया गया।

वर्ष २५ (सन् १९५०-५१)—

(३८) सिद्ध चिकित्साक - धन्वन्तरि के स्थाई सम्पादको के सम्पादकत्व मे ही अगस्त सितम्बर १९५० का सयुक्ताक 'सिद्ध चिकित्साक' प्रकाशित किया गया। अक्टूबर १९५० मे इसका परिशिष्ट अङ्क भी निकाला गया।

(३९) इन्जेक्शन विज्ञानाक प्र भा - श्री चौधरी तेज वहादुर सिंह डी आई एम, वी आई एम एस द्वारा लिखित सम्पादित 'इन्जेक्शन विज्ञानाक-प्र भा का प्रकाशन अप्रैल १९५१ मे किया गया। इम विशेपाक मे १९५ पृष्ठो की सामग्री दी गई थी।

वर्ष २६ (सन् १९५२)—

(४०) भैषज्य कल्पनाक—आयुर्वेद के धुरन्धर विद्वान आयुर्वेदाचार्य श्री प० रघुवीर प्रसाद जी त्रिवेदी ए०एम० एम० के विशेप सम्पादकत्व मे 'भैपज्य कल्पनाक' का प्रकाशन अगस्त-सितम्बर १९५२ के सयुक्तांक के रूप मे हुआ।

'भैपज्य कल्पनाँक' का परिशिष्ट अङ्क भी अक्टूबर १९५२ मे प्रकाशित किया गया था।

(४१) 'इन्जेक्शन विज्ञानाक' का द्वितीय भाग श्री चौधरी तेज वहादुरसिंह डी आई एम, वीआई एम, एस के लेखन सम्पादन मे मई १९५२ मे प्रकाशित किया। इस अक की विपय सामग्री भी गतवर्पानुसार १९५ पृष्ठो के लगभग ही थी।

वर्ष २७ (सन् १९५३)—

(४२) विष-चिकित्साक— जनवरी - फरवरी १९५३ मे विप चिकित्साक का प्रथम भाग तथा मार्च १९५३ मे विप चिकित्साक का द्वितीय भाग तत्कालीन अर्जुन आयुर्वेद विद्यालय के उपप्रधानाचार्य श्री प० तारा

शङ्कर जी मिश्र वैद्य के विशेष सम्पादकत्व मे प्रकाशित किया गया ।

(४३) यकृत प्लीहा रोगाक-अक्टूबर १९५३ मे एक लघु विशेपाक प्रकाशित किया गया ।

वर्ष २८ (सन् १९५४) –

(४४) चिकित्सा समन्वयाक-२८ वॉ वर्ष अर्थात् जनवरी-फरवरी १९५४ का सयुक्ताक 'चिकित्सा समन्वयाक' काशी के प्रसिद्ध आयुर्वेद विद्वान श्री प ताराशकर मिश्र वैद्य आयुर्वेदाचार्य के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हुआ । मार्च १९५४ मे इसी का द्वितीय भाग साधारण अङ्क के रूप मे प्रस्तुत किया गया ।

(४५) ज्वर प्रश्नोत्तरी अक–इसी वर्ष लघु विशेषाक के रूप मे स्व० प कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी द्वारा लिखित प्रकाशित किया गया ।

वर्ष २९ (सन् १९५५) –

(४६) चरक चिकित्साक--आचार्य श्री प रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य के विशेप सम्पादन मे वर्ष १९६५ का जनवरी + फरवरी माह का सयुक्ताक 'चरक चिकित्सांक' प्रकाशित किया । इस अक मे ७०० से अधिक पृष्ठ थे जोकि 'धन्वन्तरि' के इस समय तक के इतिहास में सर्वाधिक हैं । किसी आयुर्वेद सहिता ग्रन्थ का प्रकाशन विशेषांक मे करना धन्वन्तरि का यह प्रथम प्रयास है । श्री त्रिवेदी जी ने इस अक को बड़े ही परिश्रम से लिख कर धन्वन्तरि एवं आयुर्वेद साहित्य की श्री वृद्धि की है ।

वर्ष ३० (सन् १९५६) –

(४७) प्रसूति विज्ञानाक–जनवरी-फरवरी १९५६ सयुक्ताक रूप मे प्रसूति विज्ञानाक आचार्य श्री रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य के सम्पादकत्व मे प्रकाशित किया गया जो कि धन्वन्तरि के पिछले दो विशाल विशे-षाको का सफलतापूर्वक सम्पादन कर चुके थे । इस विशेषांक मे रङ्गीन चित्रो का अभाव रहा । लेकिन एक रगे चित्र जो कि लेखो के मध्य विपय के साथ ही छापे गये, बहुत अधिक दृष्टगोचर होते है ।

वर्ष ३१ (सन् १९५७) –

(४८) माधव निदानाक–३१ वे वर्ष मे जबलपुर के आचार्य श्री दौलतराम सोनी (अब आप अपने नाम के साथ सोनी शब्द नही लिखते, अपितु शास्त्री लिखते है) आयुर्वेद रत्न के सम्पादकत्व मे फरवरी-मार्च १९५७ के सयुक्ताक रूप मे 'माधव निदानाक' प्रकाशित किया गया जो कि चरक चिकित्साक के लगभग बराबर ही पृष्ठ वाला विशेपाक है। इसके पश्चात् इतने अधिक पृष्ठ का कोई विशेपाक प्रकाशित नही हुआ । इस विशेपांक मे निदान मे सहायक अनेको चित्र दिये गये ।

वर्ष ३२ (सन् १९५८) –

(४९) गुप्त सिद्ध प्रयोगाक-चतुर्थ भाग-३२ वे वर्ष मे विशाल विशेपाक 'गुप्त सिद्ध प्रयोगाक', चतुर्थ भाग प्रकाशित किया गया जिसकी पहले भागो के समान ही बहुत अधिक माग रही । इस विशेषाक के अलावा (५०) भगन्दर अक एव (५१) 'चेचक अक' भी लघु विशेषाक के रूप मे निकाले गए । तीनो विशेषाको का सम्पादन स्थाई सम्पादको ने किया ।

वर्ष ३३ (सन् १९५९) –

(५२) काय चिकित्साक – सन् १९५९ के ३३ वें वर्ष मे भैषज्य कल्पनाक प्रसूति विशेपाक तथा चरक चिकित्साक के विशेष सम्पादक आयुर्वेद के मर्मज्ञ विद्वान तथा बाद मे जिनकी म० प्र० मे आयुर्वेद निदेशक के पद पर नियुक्ति भी हुई उन श्री प० रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी आयुर्वेदाचार्य ए एम एस के सम्पादकत्व मे 'काय चिकित्साक' नामक विशाल विशेपाक फरवरी-मार्च मे प्रकाशित किया गया ।

इस विशेपाक के अतिरिक्त सितम्बर १९५९ मे (५३) 'मधुमेहाक', (५४) नवम्बर १९५९ मे श्वास रोग अक तथा दिसम्बर १९५९ मे आयुर्वेदीय स्नातकोत्तर शिक्षण केन्द्र जामनगर के श्री प० शिवकुमार मिश्र द्वारा श्वास रोग पर लिखी विस्तृत थीसिस (५५) श्वास रोगाक (स्नातकोत्तर निबध) प्रकाशित किए गए । ये सभी अपने विषय के अनुरूप ज्ञानवर्धक रहे ।

अगस्त १९५९ से ही मैने धन्वन्तरि के इतिहास मे सह सम्पादक रूप मे प्रवेश किया तथा अब स्थायी सम्पादक स्व० वैद्य श्री देवीशरण गर्ग श्री ज्वाला प्रसाद अग्रवाल तथा डा० दाऊदयाल गर्ग रहे ।

वर्ष ३४ (सन् १९६०)—

(५६) नारी रोगांक - वर्ष १९६० का विशाल अंक 'नारी रोगांक' फरवरी-मार्च का संयुक्तांक निकाला गया। अप्रैल १९६० में इसका परिशिष्ट 'परिवार नियोजन अंक' प्रकाशित किया गया। इससे पूर्व सन् १९४० में नारीरोगांक प्रकाशित किया गया था तथा उसी समय उसके समाप्त हो जाने पर बाद में उसके २ संस्करण और हुए। वह भी समाप्त हो गए तथा माग बराबर बनी रही। इस कारण निश्चय किया गया कि नये रूप में नारीरोगांक निकाला जाय। इसमें पुराने विशेषांक की उपयोगी जानकारी को सम्मलित करने के साथ-साथ अनेकों नये लेख, नये चित्र दिये गये। इसके समाप्त होने पर इसका एक संस्करण और निकाला गया तथा वह भी समाप्त हो गया।

इस विशेषांक के कतिपय लेख लिखने में एवं लेखों के चयन में तथा नवीन चित्रों के निर्माण में मैंने पूज्य पिताजी के निर्देशन में पर्याप्त परिश्रम किया।

सितम्बर १९६० में एक लघु अङ्क कानपुर के श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त वैद्य भूषण डी आई एम. के विशेष सम्पदकत्व में (५७) ग्रहणी रोगांक निकाला गया। आप ही आगामी वर्ष विशाल विशेषांक का सम्पादन करेंगे।

वर्ष ३५ (सन् १९६१)—

(५८) वनौषधि विशेषांक प्रथम भाग—सन् १९६१ के पैंतीसवें वर्ष में फरवरी-मार्च का संयुक्तांक विशेष सम्पा० स्व० पं० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य के सम्पादकत्व में 'धन्वन्तरि' का वनौषधि विशेषांक 'प्रथम भाग' प्रकाशित किया गया। यह वही विशेषांक है जिसके बाद में पाच भाग और प्रकाशित किये गये तथा छः भागों का एक विशाल सैट बन गया। इस प्रथम भाग के समाप्त हो जाने पर २ संस्करण और हो चुके है। यह विशेषांक स्व० त्रिवेदी जी का अन्तिम प्रसाद है जोकि उन्होंने 'धन्वन्तरि' के पाठकों को दिया तथा इतना उपयोगी है कि उसे घट फेर ही जाना जा सकता है।

अगस्त १९६१ में गुरुकुल स्नातक श्री वैद्य ज्ञानेन्द्र पाण्डेय के विशेष सम्पादकत्व में (५९) सूखा रोगांक प्रकाशित किया गया

वर्ष ३६ (सन् १९६२)—

(६०) शिशु रोगांक—सन् १९६२ में फरवरी-मार्च का विशाल विशेषांक 'शिशु रोगांक' प्रकाशित किया गया। यह अङ्क शिशु रोगों का विस्तृत अध्ययन कराने वाला उत्तम विशेषांक है।

(६१) कास रोगांक जौलाई माह में तथा दिसम्बर माह में श्री पं० शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य बी आई.एम.एस. प्राध्यापक-आयुर्वेदिक एवं यूनानी तिब्बिया कालेज दिल्ली के विशेष सम्पादकत्व में (६२) पंचकर्म कल्पनांक प्रकाशित किया गया।

वर्ष ३७ (सन् १९६३) —

(६३) वनौषधि विशेषांक द्वि० भाग स्व० पं० श्री कृष्ण प्रसाद जी त्रिवेदी के सम्पादकत्व में वनौषधि विशेषांक द्वितीय भाग फरवरी-मार्च १९६३ में प्रकाशित किया गया। वनौषधि विशेषांक के सभी भागों के सभी चित्रों का निर्माण देवगढ (राजस्थान) के वैद्याचार्य श्री उदयलाल जी महात्मा एच एम डी एस की देख रेख एवं निर्देशन में हुआ। इस दूसरे भाग के भी समाप्त होने के बाद द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया गया है।

(६४) पायरिया रोगांक—अगस्त १९६३ में एक लघु विशेषांक प्रकाशित किया गया।

वर्ष ३८ (सन् १९६४)—

(६५) यूनानी चिकित्सांक—आयुर्वेदीय विश्वकोषकार, अनेक पुस्तकों के रचयिता श्री वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह आयुर्वेदाचार्य, आयु० बृह० के विशेष सम्पादकत्व में यूनानी चिकित्सांक का प्रकाशन फरवरी-मार्च १९६४ के संयुक्तांक के रूप में हुआ। यह विशेषांक यूनानी चिकित्सा पद्धति का ज्ञान देने वाला उत्तम एवं ज्ञानवर्धक अङ्क है।

(६६) शूल रोगांक— सितम्बर १९६४ में यह लघु विशेषांक प्रकाशित किया गया।

वर्ष ३९ (सन् १९६५)—

(६७) वनौषधि विशेषांक तृतीय भाग—वनौषधि विशेषांक का यह तीसरा भाग भी पूर्व की भाँति स्व० पं० श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी के सफल सम्पादन लेखन में प्रकाशित किया गया। यह विशेषांक फरवरी-मार्च

१९६१ का सयुक्ताक रहा । इसमे अनेको चित्र दिये गये हैं ।

(६८) विधि विधानाँक—यह सितम्बर १९६५ का लघु विशेषाक है । श्री डा० पद्मदेव नारायण सिंह एम बी. बी एस के सफल सम्पादकत्व मे यह प्रकाशित किया गया । आयुर्वेद से सम्बन्धित विभिन्न कानूनी विषयो का सकलन इस विशेषाँक की विशेषता है ।

वर्ष ४० (सन् १९६६)—

(६९ प्राकृतिक चिकित्साँक-फरवरी-मार्च १९६६ मे प्रकाशित यह विशाल विशेपाक 'प्राकृतिक चिकित्साक,' डा० श्री गङ्गाप्रसाद गौड 'नाहर' एन. डी के विशेष सम्पादन मे लिखा गया है । इस विशेपांक को पाठको ने बेहद पसन्द किया तथा इसकी काफी माग रही । बहुत शीघ्र ही समाप्त हो गया । अब पुन इसका द्वितीय सस्करण सचित्र मुद्रित हो रहा है । आशा है यह १९७६ मे प्रकाशित हो जायेगा ।

नवम्बर १९६६ मे धन्वन्तरि त्रयोदशी पर प्रकाशित लघु विशेषाक (७०) आयुर्वेद शिक्षणाक, डा० श्री ज्ञानेन्द्र पाण्डेय की लेखनी मे लिखा गया है । आयुर्वेदिक शिक्षण प्रशिक्षण की समस्त भारत की सस्थाओ का तथा उनके नियम एवम् विपयो का आलेखन इस अङ्क की अपनी विशेषता है ।

वर्ष ४१ (सन् १९६७)—

(७१) बनौषधि विशेषाँक चतुर्थ भाग—४१ वे वर्ष सन् १९६७ फरवरी-मार्च मे वनौषधि विशेपाक चतुर्थ भाग श्री प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी वी ए आयुर्वेद सूरि के विशेष सम्पादकत्व मे प्रकाशित किया गया । यह विशेषाक भी शीघ्र समाप्त हो गया । अब इसका द्वितीय सस्करण प्रकाशित कर दिया गया है ।

(७२) पक्षाघात चिकित्साँक(दो भागो मे)—न्यायायुर्वेदाचार्य स्व० वैद्य प० चन्द्रशेखर जैन शास्त्री जबलपुर के विशेष सम्पादकत्व मे पक्षाघात चिकित्साक का पूर्वार्ध सितम्बर १९६७ मे एवम् (७३) उत्तरार्ध अक्टूबर १९६७ मे प्रकाशित किया गया ।

वर्ष ४२ (सन् १९६८)—

(७४) पुरुष रोगाँक—यह सन् १९६८ का विशाल विशेषाक फरवरी-मार्च का सयुक्ताक है । पुरुष रोगाक के ४ खण्ड थे जिसके आयुर्वेद खण्ड का सम्पादन स्व वैद्य देवीशरण गर्ग, श्री ज्वाला प्रसाद जी अग्रवाल तथा डा० दाऊदयाल गर्ग ने किया । एलोपैथिक खण्ड का सम्पादन श्री डा पद्मदेव नारायण सिंह एम वी बी एस ने किया । प्राकृतिक चिकित्सा खण्ड का सम्पादन सत्वचिकित्सक डा० श्री गङ्गाप्रसाद गौड 'नाहर' एन डी. ने किया । होमियोपैथी चिकित्सा खण्ड का सम्पादन डा० वनारसीदास दीक्षित एच एम डी एस ने किया । बहुमूल्य विशेप सम्पादको द्वारा सम्पादित यह प्रथम विशेपाक है जो पुरुष रोगो की समस्त प्रकार की चिकित्सा पद्धतियो की जानकारी देता है ।

(७५) गृहवस्तु चिकित्साक—धन्वन्तरि के स्थाई सम्पादको द्वारा सम्पादित यह गृहवस्तु चिकित्साँक नवम्बर १९६८ का लघु विशेपाक है जो घरेलू वस्तुओ द्वारा सरल, सफल, सत्वर चिकित्सा करने की जानकारी देता है ।

वर्ष ४३ (सन् १९६९)—

(७६) बनौषधि विशेपाक पाचवा भाग—यह फरवरी मार्च १९६९ का विशाल विशेपाक है । इसमे आधे से अधिक का लेखन स्व० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी ने किया । आपके स्वर्गवास के पश्चात् इस कार्य भार को देवगढ (राजस्थान) के श्री उदयलाल जी महात्मा वैद्याचार्य ने सभाला । आप अभी तक वनौषधि विशेषाक के सभी भागो के चित्र अपने निर्देशन मे बनवा रहे थे लेकिन अब दोनो कार्य ही आपने सभाल लिये ।

(७७) सैक्स रोगाँक—पजाब सरकार के स्वास्थ्य विभाग मे मैडीकल आफीसर श्री डा० केवल धीर के विशेप सम्पादकत्व मे 'सैक्सरोगाङ्क' नवम्बर १९६९ मे प्रकाशित हुआ था । सैक्स सम्बन्धित रोगो का चिकित्सात्मक विवेचन इस विशेपाक मे बडे ही मनोयोगपूर्वक किया गया है ।

वर्ष ४४ (सन् १९७० ई०)—

(७८) चिकित्सा विशेषाँक प्रथम भाग—धन्वन्तरि के चौवालीसवे वर्ष मे विशाल विशेपाक फरवरी + मार्च का सयुक्ताँक देहली के तिब्बिया कालेज के प्रोफेसर श्री कविराज बी एस. प्रेमी M I M S के सफल विशेष सम्पादकत्व

मे 'चिकित्सा विशेपाङ्क' प्रथम भाग प्रकाशित किया गया जिसकी कि कुछ प्रतिया अब भी शेष है। इस विशाल विशेपाक के आयुर्वेद खण्ड के सम्पादक है, स्वय श्री वी एस प्रेमी। श्री शिवकुमार व्यास, प्रोफेसर तिब्बिया कालेज देहली ने सम्पादन किया—यूनानी एव एलोपैथी खण्ड का तथा होमियोपैथिक खण्ड का सफल सम्पादन किया है डा० श्री बनारसीदास दीक्षित एच एम डी एस, रक्सौल (चम्पारन) बिहार ने। यह अक भी अपने विषय का अद्वितीय साहित्य है।

(७९) आयुर्वेदिक सूची भरणाँक—आयुर्वेद मे भी इन्जेक्शन है तथा इस पद्धति का आविष्कार आज से हजारो वर्ष पूर्व हमारे आयुर्वेद ज्ञाताओ ने कर लिया था। इसे प्रतिपादित करने वाला यह लघु विशेपाँक अक्टूबर १९७० मे ग्राम बजवा, पो० नूरचक, जिला दरभगा के वैद्यरत्न श्री डा० जयनारायण गिरी 'इन्दु' के विशेष सम्पादन लेखन मे प्रकाशित किया गया है। इसमे विभिन्न आयुर्वेदिक इन्जेक्शनो के गुण धर्मो का विवेचन है।

वर्ष ४५ (सन् १९७१)—

(८०) वनौषधि विशेपाँक छठा भाग—फरवरी, मार्च १९७१ मे देवगढ (राजस्थान) के वैद्याचार्य श्री उदय लाल जी महात्मा के विशेष सम्पादकत्व मे 'वनौषधि-विशेपाङ्क छठा भाग' जो कि इस विशेपाक माला का अन्तिम भाग है, का प्रकाशन किया गया। इसके पहले सभी भागो के तथा इसके भी चित्र आपकी ही देख-रेख मे बने वस्तुत. वनौषधि विषयक साहित्य के सकलन का श्रेय स्व० प० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी को है तथा उसके चित्रो के बनवाने का श्रेय श्री महात्मा जी को है। धन्वन्तरि एव वैद्य समाज आपका एव स्व० त्रिवेदी जी का सदैव ऋणी रहेगा।

(८१) आसवारिष्ट निर्माण विशेपाँक—यह धन्वन्तरि का जौलाई मास का लघु विशेपाक है तथा विशेष सम्पादक, हिमाचल प्रदेश राजकीय आयु० फार्मेसी माजरा के आसव निर्माण विभाग के अध्यक्ष आचार्य श्री दीनदयाल विष्ट है। आसवारिष्ट निर्माण एव सेवन सम्बन्धी विषय पर विवेचनात्मक सामग्री इस विशेपाक मे दी गई है।

(८२) यन्त्र मत्र-तत्राक प्रथम भाग—आगर (मालवा) म० प्र० के श्री नन्द किशोर शर्मा के विशेष सपादकत्व मे यन्त्र-मत्र तत्राक का अक्टूबर मे प्रथम भाग प्रकाशित किया गया। यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र से सम्बन्धित जानकारी इस अक मे दी गई है। द्वितीय भाग जून १९७३ में प्रकाशित किया गया।

वर्ष ४६ (सन् १९७२)—

(८३) चिकित्सा विशेपाक द्वितीय भाग—चिकित्सा विशेपाक प्रथम भाग के सभी विशेष सम्पादकों के सक्रिय सहयोग से सम्पादित चिकित्सा विशेपाक द्वितीय भाग वर्ष ४६ सन् १९७२ का फरवरी + मार्च का सयुक्तांक है। पूर्व भाग की भाति इस भाग मे भी चारो प्रकार की चिकित्सा पद्धतियो द्वारा रोगो की निदान-चिकित्सा का वर्णन किया गया है। यह अब भी उपलब्ध है।

(८४) कैंसर अक—जौलाई १९७२ मे मटेरा बाजार बहराइच के श्री रामचन्द्र साहू के विशेष सम्पादकत्व मे कैंसर रोगाक प्रकाशित किया गया। इसमे कैंसर रोग पर कई उत्तम लेख हैं।

(८५) आम-दोष अक-इस स्वास्थ्य रक्षा विशेपाक (स्वर्ण जयन्ती अक) के विशेष सम्पादक लेखक वैद्य श्री छगनलाल जी समदर्शी 'आयुर्वेदरत्न' द्वारा 'आम-दोष अक, का लेखन सितम्बर १९७० मे किया गया था। 'आम-दोष के बारे मे आयुर्वेद मे जो प्रकीर्ण साहित्य बहुत अल्पतम रूप मे मिलता है उसी को सकलित कर पूर्ण विवेचना के साथ इस अक मे लिखा गया है। आमदोष से उत्पन्न लगभग ७५ व्याधियो की चिकित्सा भी इस लघु अङ्क की विशेषता है।

यह वर्ष ४६ (सन् १९७२) "धन्वन्तरि" के लिये क्रातिकारी रहा है। कतिपय कारणो से "धन्वन्तरि" प्रकाशन एव औषधि व्यवसाय पृथक-पृथक हो गये। नवम्बर १९७२ से निम्न परिवर्तन हुए।

१ धन्वन्तरि का प्रकाशन विजयगढ के स्थान पर मामू भाजा रोड, अलीगढ से होने लगा जो अद्यावधि हो रहा है।
२ स्व वैद्य देवीशरण गर्ग 'धन्वन्तरि'के सपादक नही रहे।
३ सम्पादक मण्डल मे मेरे छोटे भाईयो चि रामेश्वर दयाल अग्रवाल, चि रामकृष्ण अग्रवाल तथा चि. गिरीराज किशोर को सम्मलित किया गया।
४ मुद्रण मीरा प्रिंटिंग प्रेस अलीगढ मे होने लगा।
५ "धन्वन्तरि" के प्रकाशक श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन

की स्थापना हुई तथा औषधियों का निर्माण इसी संस्था के अन्तर्गत किया जाने लगा।

६ दाऊ मैडीकल स्टोर्स ने 'धन्वन्तरि' की प्रकाशक संस्था श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन को सहयोग देना आरम्भ किया तथा दाऊ मैडीकल स्टोर्स का भी सम्पूर्ण व्यवसाय विजयगढ से हटकर अलीगढ आ गया जो अद्यावधि है।

वर्ष ४७ (सन् १९७३)—

(८६) **प्राणिज-खनिज द्रव्यांक**—आम दोष अङ्क के सफल सम्पादक वैद्य श्री छगनलाल समदर्शी आयुर्वेद रत्न द्वारा 'प्राणिज खनिज द्रव्याक' का रोचक सम्पादन धन्वन्तरि के वर्ष ४७ सन् १९७३ मे फेरवरी-मार्च के सयुक्ताक के रूप मे हुआ था। प्राणिज और खनिज द्रव्यो का विस्तृत सचित्र विवेचनात्मक प्राच्यपाश्चात्य साहित्य इस अक मे जितना सजोया गया है उतना साहित्य अन्यत्र एक ही स्थान पर मिलना दुर्लभ ही है। श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ से प्रकाशित होने वाला यह प्रथम विशाल विशेपाक है। इसने 'धन्वन्तरि' की कीर्ति मे और भी वृद्धि की तथा पाठको ने इसे काफी पसन्द किया। इसकी कुछ प्रतियां अभी भी उपलब्ध है।

(८७)**प्राणिज-खनिज द्रव्याक का परिशिष्ट अक**—अप्रेल १९७३ मे निकाला गया था। इसमे उक्त विशेपाक मे न दिये जा सके अवशिष्ट लेखो का उत्तम सग्रह है।

(८८) **यन्त्र-तन्त्र-मंत्रांक** जून १९७३ मे आगर (मालवा) म० प्र० के श्री नन्द किशोर जी शर्मा द्वारा सम्पादित यह यन्त्र तन्त्र मत्राक का द्वितीय भाग है। यह भी इस समय उपलब्ध है।

(८९) **कैपसूल अक**—आधुनिक युग का वहुचर्चित कैपसूल हमारे महर्षियो की वर्षा पूर्व कल्पना का फल है। इसकी क्यो आवश्यकता हुई तथा कैपसूल से कौन से लाभ प्राप्त होते हैं आदि विषया का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत 'कैपसूल अक' मे डा० श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु' नूरचक धजवा (बिहार) ने अपने सफल सम्पादन मे अगस्त १९७३ के लघु विशेपाक मे किया है।

(९०) एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्साक—यह अक अक्टूबर १९७३ का लघु विशेषाक है तथा डा० केवलवीर के विशेष सम्पादकत्व मे निकाला गया है। इसमे आधुनिक आशुफलप्रद पेटेण्ट औषधियो का वर्णन किया है।

वर्ष ४८ (सन् १९७४)—

(९१) सफल सिद्ध प्रयोगांक—फरवरी-मार्च १९७४ का यह सयुक्ताक धन्वन्तरि के स्थाई सम्पादको के प्रयास का फल है। अप्रेल मे इसका परिशिष्ट अङ्क भी निकाला गया है। प्रस्तुत विशाल विशेषांक मे आयुर्वेद के विभिन्न अनुभवी विद्वानो के सैकडो सफल सिद्ध प्रयोगो का उत्तम सग्रह किया गया है। सभी लेखको के परिचय एव फोटोचित्र भी दिए गये है।

(९२) अप्रेल १९७५ मे उपरोक्त विशेपाक का परिशिष्ट प्रकाशित किया गया जिसमे नारी रोगाक, शिशुरोगाक तथा पुरुष रोगाक के उपयोगी प्रयोगो को सग्रहीत किया गया है। सग्रह उपयोगी है।

(९३) आयुर्वेद शिक्षणाक—जून १९७४ मे श्री डा श्री निवास व्यास के विशेष सम्पादन मे आयुर्वेद शिक्षणाक प्रकाशित किया गया। अपने विषय की पूर्ण जानकारी इस अङ्क द्वारा पाठको को मिलती है।

(९४) नाडी विज्ञानांक—कानपुर के वैद्य श्री मुन्ना लाल जी गुप्त के विशेष सम्पादकत्व मे 'नाडी विज्ञानाक निकाला गया, जो सितम्बर १९७४ का लघु विशेपाक, था।। नाडी ज्ञान सबधी कई वैज्ञानिक एव विचारणीय सामग्री इस अङ्क मे सजोई गई है।

वर्ष ४९ (सन् १९७५)—

(९५) सन्दिग्ध वनौषधि अक—वर्ष ४९, सन् १९७५ गत वर्ष मे फरवरी-मार्च का विशाल विशेषांक आयुर्वेद जगत के प्रसिद्ध उद्भट विद्वान वाराणसी के आचार्य श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी आयुर्वेद शास्त्राचार्य बी ए आयुर्वेद बृहस्पति के विशेष सम्पादकत्व मे 'सन्दिग्ध वनौषधि अक' प्रकाशित किया गया। (९६) अप्रेल १९७५ मे इस का परिशिष्टाक प्रकाशित किया गया। सन्दिग्ध वनौषधियो के निराकरण आदि का बहुत ही मननीय विवेचनात्मक साहित्य इस अक मे दिया गया है। विभिन्न चित्र भी दिये गये है। अभी उपलब्ध है।

(९६) यज्ञ चिकित्साक—जून १९७५ मे श्री प० नन्द किशोर शर्मा आगर (मालवा) म. प्र के विशेष सम्पा-

रूप मे 'यज्ञ चिकित्साक' प्रकाशित किया गया । इसके द्वारा हवन से कई व्याधियों को नष्ट करने का सफल प्रयास श्री शर्मा जी ने किया है ।

(९८) फल गुणाक–प० श्रीगंगाप्रसाद गौड 'नाहर' एन डी. के विशेष सम्पादन मे प्रकाशित धन्वन्तरि का यह सितम्बर १९७५ का लघु विशेपाक है । इसमे विभिन्न ऋतुओ मे प्राप्त फलो का सचित्र गुण धर्म एव उनसे रोगो की चिकित्सा लिखी है । प्रत्येक गृहस्थ के बडे काम का विशेषाक है ।

वर्ष ५० (सन् १९७६)—

(९९) स्वर्ण जयन्ती अ क–प्रस्तुत स्वर्ण जयन्ती अक अर्थात् स्वास्थ्य रक्षा विशेपाक आपके हाथो मे है । जिसका लेखन सम्पादन आम दोप अक, प्राणिज,–खनिज द्रव्याक के विशेष सम्पादक, समदर्शी मल्टीपर्पज हास्पीटल रायपुर (झालावाड) राज० के सचालक वैद्य श्री छगन लाल जी द्वारा हुआ है । यह कैसा बन पडा है तथा इसके बाद के अक एव लघु विशेपाक कैसे बन पडेंगे यह आप स्वय ही निर्णय करे ।

अपनी बात एवं आभार प्रदर्शन —

धन्वन्तरि के आविर्भाव की कहानी, सम्पादको के परिचय एव अब तक के प्रकाशित सभी विशेपाको के इस सक्षिप्त इतिहास को लिखने मे कई व्यवहारिक कठिनाइयाँ प्रस्तुत हुई है । सबसे अधिक कठिनाई यह थी कि सन् १९७२ मे बटवारे के बाद सभी सामान जब विजयगढ मे अलीगढ लाया गया तब धन्वन्तरि की १० फायले नदारद हो गयी । बिना इन फाइलो के इस सक्षिप्त इतिहास का लेखन कार्य रुका रहा । पर्याप्त प्रयास करके सभी फाइले उपलब्ध की गई । मात्र सातवें वर्ष की फाइल न मिल सकी । पुरानी फाइलो को उपलब्ध कराने के लिए 'धन्वन्तरि' के आदि सम्पादक स्व० वैद्य बांकेलाल जी गुप्त के ज्येष्ठ पुत्र वैद्य श्री श्रीगोपाल जी गुप्त का अत्यन्त आभारी हूँ । छर्रा के श्री वैद्य गौरीशंकर शर्मा से भी 'धन्वन्तरि' की कुछ पुरानी फाइले उपलब्ध हुई अत मे उनका भी आभारी हूँ । सासनी के निकट जगराना के श्री आर० वी० त्रिवेदी गर्ग द्वारा पत्र लिखने पर धन्वन्तरि की पुरानी फाइले वृद्ध वैद्यो से एकत्रित करके लाये । लेकिन उस समय तक फाइलें पूर्व उल्लिखित दो सज्जनो से प्राप्त हो चुकी थी अत उन्हे वह सधन्यवाद वापिस कर दी गयी । लेकिन हमारी सहायता करने की जो भावना उनमे व्याप्त देखी उसे देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई । मै उनका आभारी हूँ । आगरा के श्री वैद्य शिवकुमार शास्त्री का भी पुरानी फाइलें उपलब्ध करने का पत्र आया लेकिन उनकी प्राप्ति उससे पूर्व ही हो चुकी थी ।

धन्वन्तरि के सस्थापक, सम्पादक, विशेष सम्पादक आदि के सक्षिप्त जीवन परिचय प्रस्तुत करने मे भी कठिनाई रही है । अनेको सज्जन ऐसे है जिनके लिए बीसियो पत्र लिखने पडे लेकिन स्वय के बारे मे इतने सकोची रहे कि प्रकाशनार्थ अपना जीवन परिचय नही भेजा ।

कुछ स्वर्गीय विशेष सम्पादको का जो भी परिचय यथासभव उपलब्ध हो सका प्रस्तुत किया गया है । स्व० रूपलाल वैश्य बूटी विशेपज्ञ का जीवन परिचय आदि विवरण श्री उदयलाल जी महात्मा से प्राप्त हुआ है । जिसके लिए हम आभारी हैं । १९५९ मे श्वास अक (थीसिस) के सम्पादक एव लेखक श्री शिवकुमार मिश्र आयुर्वेदाचार्य का पता ही न चल सका तथा उनके पते पर भेजे गये पत्र वापिस आ गये । अत उनका जीवन परिचय फोटो आदि नही दे सके इसका खेद है । अनेक पत्र लिखने पर भी श्री डा पद्मदेव नारायण सिंह से उनका परिचय एव फोटो प्राप्त नही हो सका इस कारण आपका परिचय आदि प्रकाशित न कर सकने का मुझे हार्दिक खेद है । श्री डा० ज्ञानेन्द्र पाण्डेय का भी जीवन परिचय न मिल सकने के कारण प्रकाशित नही किये जाने का मुझे खेद है । लेकिन उनका फोटो आयुर्वेद शिक्षणाक मे प्रकाशित हुआ था उसे वहा से लेकर यथास्थान दिया है । यदि इस इतिहास लेखन मे कोई भूल रह गई हो तो उसके लिए हृदय से क्षमा प्रार्थी हू ।

—डा दाऊदयाल गर्ग आयु वृह, ए , एम.बी एस
सम्पादक 'धन्वन्तरि'
मामू भाजा रोड, अलीगढ ।

स्वास्थ्य-रक्षा विशेषांक

द्वितीय खण्ड

(स्वास्थ्य के साधन)
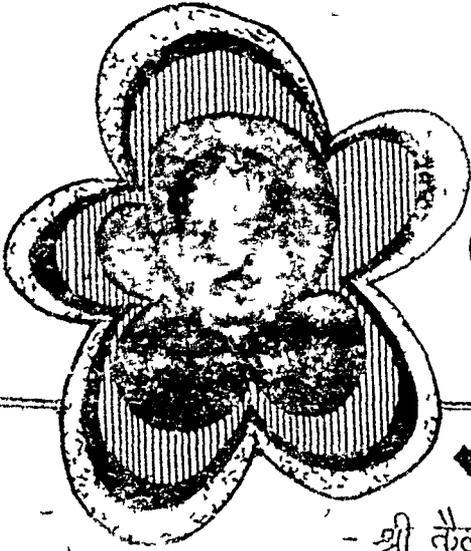
काशी के सम्मानित ज्योतिर्विद, तान्त्रिक एवं याज्ञिक श्री केदारनाथ जैतली के पुत्र रूप मे सन् १९२० की पहली जनवरी को काशी मे सारस्वत जाति में कैलाश नाथ जैतली ने जन्म लिया। यौवन के प्रथम प्रहर मे ही कुछ विशिष्ट कर दिखाने वाले श्री जैतली जी ने अमृतसर मे सन् १९४६ मे गुरुदेव श्री सत्यदेव वशिष्ठ से सम्पर्क कर नाडी विज्ञान को उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचाने की नीव डाली। तथा सन् १९६५ मे आपने 'नाडी विज्ञान अनुसधान' को स्थापना की। तब से आज तक इस सस्था मे शास्त्रानुसधान, कर्मानुसधान, दूतनाडी विज्ञान, मानसिक रोग परीक्षा का कार्य चल रहा है। उपरोक्त विपयो पर अब तक आपने ११ शोध पत्र लिखे है जिनमे से कई शोध पत्र प्रकाशित हो चुके है। इस समय आप आयुर्वेद महाविद्यालय वाराणसी मे त्रिदोप विभाग मे व्याख्याता पद को सुशोभित कर रहे है।

'वायु और उसका स्वास्थ्य पर प्रभाव' शीर्षक ९ पृष्ठीय लेख को सक्षिप्त रूप मे प्रकाशित करना पडा है। आशा है विशेपाक की सीमित पृष्ठ सख्या को ध्यान मे रखते हुए आप प्यार से क्षमा कर देगे। — वैद्य छगनलाल समदर्शी

चरकाचार्य ने वातकलाकलीय द्वादश अध्याय मे वात पित्त और कफ का कुपित और अकुपित रूप का विशद् वर्णन किया है। इस पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि शरीर की सभी क्रियाओ के विकास और विनाश का मूल वात, पित्त और कफ है। ये वात, पित्त और कफ शरीर मे विशद् रूप, वायु, सूर्य और चन्द्रमा के प्रतिनिधि है। जिस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य और वायु जगत् मे क्रमश विसर्ग, आदान और विक्षेप क्रियाये करते है उसी प्रकार शरीर मे कफ, पित्त और वायु भी उपर्युक्त क्रियाये क्रमश करते है। सुश्रुताचार्य ने कहा भी है—

विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद्देह कफ पित्तानिलास्तथा॥

— सु० सू० अ० २१

इस विवेचन से व्यष्टि और समष्टि जगत् मे एकात्मता प्रतीत पड़ती है। चरकाचार्य ने कहा भी है—'यावन्तो भावविशेषा लोके तावन्त शरीरे। यावन्त शरीरे तावन्तोहि लोके।' अर्थात् जो भाव विशेष लोक मे है वही शरीर मे, जो शरीर मे है, वही लोक मे भाव विशेष होते है। जैसे वर्षा ऋतु मे आकाश मे वायु की गड़गड़ाहट होती है और शरीर के पेट रूपी आकाश मे वायु की गुड़गुड़ाहट होती है।

वायु की निरुक्ति

वा—गतिगन्धनयो धातु से वात शब्द की निष्पत्ति होती है। वातीति वायु।

वायु की उत्पत्ति

किसी के मत मे केवल वायु से वायु की उत्पत्ति होती है। किन्तु व्यापक मत है—आकाश और वायु से वायु की उत्पत्ति होती है। सुश्रुताचार्य ने कहा भी है—

तत्र वायोरात्मैवात्मा, पित्तमाग्नेय श्लेष्मा सौम्य इति।

(सु सू ४२/५)

वाय्वाकाशधातुभ्या वायु— अ. स अ. २०

आयुर्वेद दार्शनिको के मत मे वायु एक होते हुए भी स्थान भेद और कार्यभेद से पाच प्रकार का माना गया है। जैसे प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान से वायु के पाँच भेद है। इनके मुख्य कार्य भी क्रमश पाँच है—स्पन्दन, उद्वहन, पूरण, विवेक और धारण। इनके विस्तृत रूप से अन्य कार्य आयुर्वेद ग्रन्थो मे है। इन पाच प्रकार के वायुओ मे प्राणवायु श्रेष्ठतम है। प्राणवायु का प्रधान कार्य है—प्रस्पन्दन। वाग्भट्ट की दृष्टि मे प्राणवायु की श्रेष्ठता के कारण—

विशेषाज्जीवित प्राण उदानो बलमुच्यते।
स्यात्तयो पीडनाद्धा निरायुंच बलस्य च॥
प्राणवायुसमायुक्तो प्राणीति परिकथ्यते।
प्राणहीनो जडो लोके मृतो परिगण्यते॥
तस्मात् सर्वेषु गतेषु प्राणः श्रेष्ठ इतिस्मृत।

अर्थात् विशेषकर प्राणवायु से प्राणी जीवित रहता है। उदान वायु शरीर मे बलरूप मे है। यदि इन दोनो वायुओ को पीड़ित किया जाय तो बल और आयु की हानि होती है। प्राणवायु से युक्त शरीर को प्राणी कहते है। प्राणवायु हीन होने पर जड़ अथवा मृतक के रूप मे गणना होती है। अत पाँचो वायुओ मे प्राणवायु की श्रेष्ठता है।

प्राण की सुरक्षा मे वायु जल और अन्न की अत्यन्त आवश्यकता है। इन तीनो मे जीवित रहने के लिए वायु की मुख्यता है। जल के अभाव मे ३-४ दिन कष्ट से जीवित रहा जा सकता है। अन्न के अभाव मे कई महीनो तक जीवित रहते हुये देखे गये है। गत वर्षों मे गोवध के विरोध मे पुरी के शकराचार्य श्री निरजन देव तीर्थ जी ७५ दिनो तक अन्नाभाव का अनशन किया था, परन्तु जीवित रहे। किन्तु वायु के विना कुछ क्षण भी जीवित रहना असम्भव हो जाता है।

भारतीय दार्शनिको के मत मे सृष्टि की रचना मे परमात्मा और परमात्मा के भेद मे परमात्मा का जो अणु अश है, वही जीवात्मारूपी प्राणवायु है। जैसे समुद्र तरग और महाकाश मे घटाकाश आदि। आयुर्वेद दार्शनिको ने स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर का आधार प्राणवायु माना है।

प्राणवायु की परिभाषा

वायुर्या वक्त्रसचारी स प्राणेनाम देहधृक्।
सोन्न प्रवेशयत्यन्त प्राणाश्चावलम्बते॥

—सु० नि०।

अर्थात् बाहर की हवा नाक और मुख द्वारा प्रधानतया प्राणवह स्रोतो मे प्रविष्ट होती है। इस हवा मे प्राणद्रव्य रहता है। यह 'प्राणद्रव्य' रक्त के द्वारा

प्रथम हृदय में और वहां से समस्त शरीर में सचार करता है। प्राणद्रव्य शरीर का पोषक ही नहीं, किन्तु जीवन की मुख्य वस्तु होने के कारण देहधारक होता है। उक्त श्लोक में मुख में सचार करने वाले वायु को प्राणवायु और देहधृक् इसी आशय को लक्ष्य करके कहा गया है। अन्न के निगलने के समय भी बाहर की वायु की आवश्यकता होती है।

बाहर की वायु जब तक अन्नमार्ग मे सहायक नही होती तब तक अन्न निगलने मे कठिनाई होती है। हृदय के अन्दर स्थिर होकर वह 'प्राणद्रव्य' (आक्सीजन विशिष्ट होने से) प्राणो का अवलम्बन करता है।

शारीरिक एव मानसिक स्वस्थता के लिए वाह्य वायु तथा आभ्यन्तरिक वायु शुद्ध एव समरूप मे रहना आवश्यक है।

वायु का व्यावहारिक स्वरूप

तत्र रौक्ष्य, शैत्य, लाघवं, वैशद्यं, गतिरमूर्त्तत्व च वायोरात्म रूपाणि—च० सू० २०। तात्पर्य यह है कि शरीर के अन्दर रौक्ष्यात्मक, शैत्यात्मक, वैशद्यात्मक लाघवात्मक, गत्यात्मक तथा अमूर्त्तभाव मे सभी वायु के ही स्वरूप हैं।

यही वात के गुण भी हैं। शब्द और स्पर्श वात के नैसर्गिक गुण कहे हैं। त्रिगुणात्मक होने पर भी वायु को रजोबहुल कहा गया है। अत शरीरस्थ धातु मे उक्त गुण वायु के कारण होते है।

वायु के कर्म

उत्साहोच्छ्वास निःश्वास चेष्टा धातुगतिः समाः।
समो मोक्षो गतिमतां वायोः कर्माविकारजम् ॥

——च० सू० १८

शरीरस्थ सभी चेष्टायें अर्थात् उत्साह, उच्छ्वास, निःश्वास, समभाव से धातुओ की गति, गतिमान् पुरीषादि का समभाव से बाहर निकलना इत्यादि सभी कर्म प्राकृत् वात धातु के ही हैं।

वातावरण का स्वास्थ्य पर प्रभाव—व्यक्तिगत स्वास्थ्य और स्वास्थ्य सुरक्षा वाह्यवातावरण और आभ्यन्तरिक स्थूल सूक्ष्म एव कारण शरीर की क्रियाओ पर आधारित है।

सामूहिक स्वास्थ्य के विकृति कारण—चरकाचार्य ने विमानस्थान तृतीय अध्याय मे जनपदोध्वस के प्रकरण मे चार कारण बतलाये है—वायु, उदक, देश और काल—इन चारो की विगुणता की जड अधर्म और पूर्वकृत बुरे कर्म है। इन दोनो की उत्पत्ति का कारण प्रज्ञापराध है।

वायु विकृति के लक्षण—ऋतु विपरीत, अत्यन्त निश्चल, अतिवेग से बहने वाला (आधी आदि) अत्यन्त कर्कश, अत्यन्त शीतल, अत्यन्त गरम, अत्यन्त रूखा, अत्यन्त अभिष्यन्दी (क्लेश को उत्पन्न करने वाला) अति भीषण शब्द करने वाला, विपरीत दिशाओ मे बहते हुए आपस मे अत्यन्त टकराने वाला, अत्यन्त कुण्डली (बवण्डर) तथा असात्म्य दुःखकर गन्ध, वाष्प, रेत, धूल और धुयें से युक्त वायु विकृत होता है।

उपर्युक्त विकृतिया अनेक रोगो का कारण होती है। इसका प्रभाव सामूहिक रूप मे व्यक्तिगत स्वास्थ्य पर पडता है।

शास्त्रो मे कहा है कि 'पूर्वजन्म कृत पाप व्याधिरूपेण बाधते।' अत पूर्वजन्मकृत पाप के निवारण के लिए धर्म शास्त्रोक्त धर्म का आचरण करना चाहिए तथा आयुर्वेदोक्त आचार रसायन का सेवन करना चाहिये।

स्वस्थ को स्वस्थ रखने के लिये तथा रोगी के रोग को दूर करने के लिए स्वास्थ्यकर आचरण का सर्वदा पालन करना चाहिये। उद्योग धन्धो के स्थानो को तथा घृणित धन्धों के स्थानो की बनावट और सफाई तथा स्वच्छता मे वायु का सर्वदा ध्यान रखना चाहिये।

वायु शुद्धि के लिए

व्यक्तिगत रहन-सहन और सामाजिक रहन-सहन की विभिन्न क्रियाओ से कई प्रकार से वायु की विकृति होती है। अत दूषित वायु का निवारण करते रहना चाहिये। इसके लिये यदि यज्ञ, धूप आदि प्राकृतिक साधनो को अपनाया जाय तो मानव सर्वदा स्वस्थ रहता है।

—नाडी विशेषज्ञ श्री कैलाश नाथ जैतली,
आयुर्वेदाचार्य, वी आई एम एस.
नाडी विज्ञान अनुसन्धान सस्थान,
के० १३/७९ मगलागौरी, वाराणसी

'यो वायुर्वक्त्रसचारी स प्राणो नाम देहधृक् ।
स प्राणांश्चाप्यवलम्बते ।' —सुश्रुत ।

वायु का महत्व—विश्व की रचना त्रिगुणात्मक पञ्चमहाभूतात्मक, षट्रसात्मक और त्रिदोषात्मक रूप मे हुई है । प्रत्यक्ष रूप मे विश्व की रचना और विकास मे पचमहाभूत मौलिक रूप मे है । इन पचमहाभूतो के जगत् एव देह मे भिन्न-भिन्न कार्य हैं । लोक और शरीर मे गतिरूप कार्य वायु का ही है । वायु लोक और शरीर मे अविकृत रूप मे विकास करता है और विकृत रूप मे विनाश करता है ।

शरीर के मुख्य तीन स्तम्भो मे वायु का ही प्रथम स्थान है । जल और अन्न का स्थान क्रमश दूसरा और तीसरा है । शरीर के जीवित रहने मे वायु ही सबसे अधिक आवश्यक है । मनुष्य अन्न के विना सप्ताहो तक जी सकता है, तथा जल के विना कई दिनों तक रह सकता है, परन्तु वायु के विना एकाध कला भी जीवित नही रह सकता है । वायु का सेवन जन्म के क्षण से लेकर मृत्यु के क्षण तक अनवरत जारी रहता है ।

प्राण वायु और स्वास्थ्य

भूमण्डल के चारो ओर लगभग ५०८-५०० मील की ऊचाई तक वायु का मण्डल होता है जिसको वातावरण (Atmosphere) कहते हैं । वातावरण की हवा अनेक वायु रूप पदार्थो के भौतिक मिश्रण से बनी है । इस मिश्रण मे प्राणवायु (Oxygen), भूयाति (Nitrogen), प्रागार द्विजारेय (Carbon dioxide), जल वाष्प, धूलि, तिक्ताति (Ammonia), प्रजारक (Ozone), सेन्द्रिय और खनिज द्रव्यो के कण इत्यादि समाविष्ट रहते हैं । इनमे से 'प्राणवायु' ही शरीर के लिये आवश्यक है ।

प्राणवायु सम्पूर्ण हवा मे १/५ भाग (२०.९%) होती है । प्राण धारण के लिये केवल इसी प्राणवायु की आवश्यकता होती है । वातावरण के अन्य वायुरूप पदार्थ प्राण धारण की दृष्टि से व्यर्थ होते हैं । अत आचार्य शार्ङ्गधर ने इस वायु को 'प्राणपवन' (Oxygen) की सज्ञा दी है । यथा—

नाभिस्थ. प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम् ।
कण्ठाद्बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम् ॥
पीत्वा चाम्बरपीयूष पुनरायाति वेगत ।
प्रीणयन् देहमखिलं जीवयञ्जठरानलम् ॥

—शा० सं० पू० खं० अ० ५/५१

प्राणवायु रग, स्वाद तथा गन्ध से विरहित है । यह जैसे जीवन के लिए आवश्यक है वैसे ही ज्वलन के लिये भी आवश्यक है । क्योंकि ये दोनों कर्म वास्तव मे एक ही हैं । 'प्राणधारण' का कर्म शरीर के भीतर होता है और 'जलन' का कर्म शरीर के बाहर होता है । जलाने के गुण के कारण प्राणवायु को 'जारक' भी कहा जाता है । जीवन और ज्वलन के लिये इसकी जितनी मात्रा आवश्यक होती है उससे बहुत अधिक मात्रा वातावरण मे विद्यमान होती है । यदि इसकी मात्रा २२-१५%तक कम हो तो इसकी कमी से स्वास्थ्य पर दुष्परिणाम होने लगते हैं । यदि इसकी मात्रा ७% से कम हो जाय तो हम बेहोश हो सकते हैं ।

वातावरण और स्वास्थ्य

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं कि वातावरण की हवा अनेक वायु रूप पदार्थो के मिश्रण से बनी है । इनमे से केवल प्राणरक्षण की दृष्टि से 'प्राणवायु' ही श्रेष्ठ है । शेष वायु रूप सगठक हमारे दैनिक क्रिया कलापो मे विभिन्न प्रकार की लाभ हानि की क्रिया करते हैं । हम यहाँ उन सभी का वर्णन क्रमश देते है—

(१) भूयाति—वातावरण का ४/५ भाग (७९%) इस वायु मे बना है । विपुलता के कारण यह वायु भूयाति (Nitrogen) कहलाता है । मनुष्यो की तथा अन्य प्राणियो की दृष्टि से यह वायु अनुपयोगी है । न यह ज्वलन मे सहायता करता है न जीवन के लिये उपयुक्त है । इस लिए इसको अजीवाति (Azote) कहते है । वातावरण के जारक वायु की जारण शक्ति को घटाना इसका कार्य है । उसका मुख्य कार्य निम्न प्रकार मे वनस्पतियो का

पोषण करने का है। (१) कई वनस्पतियाँ भूमिगत भूयन कर (Nitrifying) तृणाणुओं द्वारा अपनी जडो की सहायता से वातावरण के भूयाति को ग्रहण कर लेती है। (२) वर्षा ऋतु मे विद्युल्लता से भूयाति का कुछ भाग भूयिक (Nitric) अम्ल मे परिवर्तित होकर पानी के साथ पृथ्वी पर गिरता है और वनस्पतियों का पोषण होता है। सक्षेप मे वनस्पतियो की खाद का मुख्य सघटक भूयाति होता है। भूयाति स्वाद, रग तथा गध से विरहित है। भूयाति के साथ १% के प्रमाण मे दूसरी एक वायु मिली है जो उसी के समान ज्वलन और जीवन के लिए अनुपयोगी है। इसको मन्दाति (Argon) कहते है। यह वायु भूयाति मे भी अधिक मन्द और निष्क्रिय होने के कारण इसका उपयोग बिजली के लटटू (Bulb) भरने के लिये किया जाता है।

(२) प्रजारक - यह वायु जारक का ही अपरावर्तिक (Allotropic) योग है और इसका व्यूहाणु (Molecule) ३ परमाणुओ का (O_3) अर्थात् जारक से १ अधिक परमाणु का बना है। इसका रग किंचित नीलाभ है और अपनी विशेष प्रकार की गध से पहचाना जाता है। कृत्रिम रीत्या विद्युत-प्रवाह द्वारा यह बनाया जाता है। प्रकृति में यह वायु आकाश मे वज्रापात से तथा जहाँ बडे पैमाने पर पानी की भाप होती है वहा पैदा होता है। इसलिए पर्वतीय स्थानो, समुद्र के पृष्ठ भागो और किनारो पर बहुतायत से पाया जाता है। वायुमण्डल मे इसकी राशि बहुत कम (सभवत १००० मे १ भाग) होती है। यह वायु बहुत जारणकर्ता (Oxidizing agent) है, इसलिये जब सेन्द्रिय पदार्थो के साथ इसका सम्बन्ध आता है तब तुरन्त उनको जारित कर डालता है। शहरो तथा घनी बस्तियो मे जहा हवा मे सेन्द्रिय पदार्थ बहुतायत से पाये जाते है वहाँ यह वायु नहीं पायी जाती है। पानी को शुद्ध करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है क्योकि यह जीवाणु नाशक भी है।

(३) प्रांगार द्विजारेय—इसको प्रागारिक अम्ल वायु (Carbonic acid gas) कहते है। यह निर्गन्ध, रग रहित तथा खट्टे स्वाद वाला है। हवा के सब घटको की अपेक्षा यह वजनदार है। इसलिए यह कभी-कभी गहरे परन्तु जल शून्य कुओ की तली मे इकट्ठा होता है। भूपृष्ठ से ८–१० फुट तक इसकी राशि अधिक होती है क्योकि यह जमीन से बाहर आता है। यह वायु न ज्वलनशील है, न ज्वलन और जीवन का पोषण है, इसलिये इसमे रक्खा हुआ चिराग बुझ जाता है और मनुष्य भी इसमे नही बचता। हवा के १० हजार भाग मे यह वायु ३–४ भाग होता है। श्वास प्रश्वास कर्म, ज्वलन, तथा सडी वस्तुओ से इसकी मात्रा बढती जाती है तथा वनस्पतियो द्वारा और बहुत पानी की उपस्थिति से घटती जाती है। इस लिये ग्रामो की अपेक्षा शहरो मे यह वायु अधिक होती है। फिर भी ५% से अधिक प्राय नही होती और इससे स्वास्थ्य को हानि नही पहुच सकती। इसलिये इसकी राशि केवल हवा की अशुद्धता की सूचक मानी जाती है। मनुष्यो और प्राणियो के स्वास्थ्य की दृष्टि से यद्यपि यह वायु इतनी खतरनाक है, तथापि इस वायु से ही वनस्पतियाँ पुष्ट होती है। सूर्य के प्रकाश मे वनस्पतियाँ अपने पत्तो मे उपस्थित रहने वाले पर्णशाद (Chlorophyll) की सहायता से प्रा० द्वि० को चूस लिया करती है और फिर उसको विघटित कर प्रांगार को अपने शरीरस्थ धातु बनाने के काम मे लाती है और जारक को मुक्त कर बाहर निकाल देती है।

यह क्रिया सूर्य के प्रकाश मे हुआ करती है। रात मे इसकी विपरीत क्रिया होती है अर्थात् वनस्पतियाँ जारक को चूसती है और प्रा० द्वि० को छोडती है। रात के समय वृक्षो के समीप न सोने (नक्त सेवेत न द्रुमम्-अ हृ) का यह मुख्य वैज्ञानिक कारण है।

(४) जलवाष्प—हवा का यह अस्थिर सघटक है। सूर्य का ताप पानी को भाप के रूप मे खीचा करता है। आप जो थोडा बहुत पानी अपने यहा के बर्तन मे रख देते है वह धीरे-धीरे उड जाता है। जलवाष्प का मुख्य निकास समुद्र है। शास्त्रज्ञो की यह राय है कि सूर्य के ताप से प्रति मिनट समुद्र के एक वर्ग मील पृष्ठ भाग से ३५०० सेर पानी की भाप बनती है। भाप की राशि वातावरण के ताप पर, आस-पास के पानी की राशि पर और कमरे के भीतर मनुष्यो की सख्या पर निर्भर होती है। परन्तु मुख्यतया हवा की सर्दी या गर्मी पर यह राशि आश्रित रहती है। जैसे शीत प्रदेश की अपेक्षा उष्ण प्रदेश मे, भूपृष्ठ भाग की अपेक्षा समुद्र पृष्ठ भाग पर, शिशिर

ऋतु की अपेक्षा ग्रीष्म ऋतु मे और प्रात तथा सायकाल की अपेक्षा मध्याह्न मे जलवाष्प की राशि अधिक होती है। निश्चित ताप (Temperature) पर हवा मे जल वाष्प की राशि भी निश्चित रहती है। जब यह राशि पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है तब हवा को जलवाष्प सपूरित (Saturated) कहते है। जब यह जलवाष्प की राशि न्यून या अधिक हो जाती है तब हवा खुश्क या तर मालूम होने लगती है। रहने के कमरो मे भाप की मर्यादा ७५% से अधिक न होनी चाहिये। प्रत्येक मनुष्य के शरीर से २४ घण्टे मे १–२ सेर के करीब पानी की भाप निकलती है जिसमे २५ तोले के करीब फुफ्फसो से और ५०-७५ तोले के करीब त्वचा से निकलती है। यदि हवा मे पानी की भाप का भाग न होता तो सूर्य की गर्मी से हमारे शरीर झुलस जाते और वनस्पतिया जल कर भस्म हो जाती। जब जलवाष्प पूर्ण हवा ठण्डी होने लगती है तब भाप छोटी-छोटी बून्दो के रूप मे जमा होती है और उसे कुहरा या ओस (Dew) कहते है।

(५) धूलि – धूलि मे सेन्द्रिय तथा निरिन्द्रिय पदार्थो के सूक्ष्मांश पाये जाते है। हवा मे धूलि के जो निरिन्द्रिय अ श पाये जाते है वे प्राय बालू, चूना, कोयला इत्यादि के होते ह। जो अ श घरो मे पाये जाते हे वे घरेलू व्यवहार की चीजों के फूटने से अथवा धूम्रग्ज, राख के अ श से बनते है। यदि आस पास कोयले की खाने, धूएँ के यन्त्र (एन्जिन) रुई, ऊन तथा रेशम बनाने वाले कारखाने हो तो उनके खनिज तथा अन्य पदार्थो के सूक्ष्माश भी हवा मे पाये जाते हैं। सेन्द्रिय पदार्थो मे चरबी, त्वचा, बाल, पीप, थूक इत्यादि के साथ मसूरिका, रोमान्तिका इत्यादि विस्फोटक रोगो से पीडित रोगियो के दानो के सूक्ष्माश पाये जाते है। धूलि हवा का एक आवश्यक सघटक है। धूलि के विना ओस, बादल या बरसात नही हो सकती। हवा मे जो पानी की भाप होती है वह धूलि के कणो को केन्द्र बना कर उनके ऊपर जम जाती है। हवा मे धूलि न होने से भाप प्राणियो के शरीरो वनस्पतियो तथा घरो पर जम जायगी।

(६) तृणाणु–हवा मे तृणाणु (Bacteria) और उनके क्षुल्लक (Spore) भी पाये जाते है। सामान्यत ये जमीन मे रहते ह और जब आँधी हवा जोर से चलने लगती है तो गर्द के साथ हवा मे उडने लगते हैं। उनमे जो रोगजनक जीवाणु होते है वे मनुष्य के शरीर मे श्वास प्रश्वास या व्रण द्वारा प्रवेश करके अनुकूल अवस्था प्राप्त होने पर रोग उत्पन्न कर सकते है वैसे ही खुले खाद्य द्रव्यो को दूषित करके मनुष्यो मे रोग उत्पन्न कर सकते है। उच्च पर्वतो पर, समुद्र पर और जगलो मे तृणाणुओं की सख्या नगण्य सी रहती है। परन्तु बडे-बडे नगरो और घनी बस्तियो के वातावरण मे ये अधिक सख्या मे पाये जाते है।

(७) धूम्र–धुएे मे कोयले के कण, उदागार (Hydrocarbons), कुछ विषैले वायु और खनिज अम्ल इत्यादि द्रव्य होते है। इनके अतिरिक्त धूए मे जो अलकतरा होता है उससे वह जिस पर बैठता है उसको पकड लेता है और उसका नाश करता है। पत्थर के कोयले मे गन्धक भी होता है। और उससे बनने वाले द्रव्य Sulphuric acid, Carbon bisulphide, Ammonium Sulphide इत्यादि वातावरण को खराब करते है।

धुए से जैसे वस्तुओ को वैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य को भी हानि पहुचती है। धुएँ से श्वसनसस्थान मे विकृति होकर राजयक्ष्मादि रोग उत्पन्न होते है। इसके अतिरिक्त धूमित वातावरण मे शुद्ध हवा ठीक तौर पर आ नही सकती, प्रकाश कम होता है और नील लोहातीत (Ultraviolet) किरणे घट जाती है।

(८) श्वास प्रश्वास–इसमे हवा मे निम्न परिवर्तन हुआ करते हैं–

विशुद्ध हवा मनुष्यो-प्राणियो की घनी बस्ती से दूर पहाडो जगलो और समुद्रो पर मिलती है। मनुष्यो की बस्ती के आस-पास उसकी खराबी निम्न कारणो से हुआ करती है—

सघटक	श्वसित हवा	निश्वसित हवा
प्राण वायु	२० ९६%	१६ ४०%
भूयाति(Nitrogen)	७९ ००%	७९ १९%
प्रा द्विजारेय (CO_2	० ०३- ०४%	४ ४१%

इससे स्पष्ट है कि जो हवा प्रश्वास द्वारा बाहर आती है उसमे जारक की मात्रा घटती है, और प्रा०

द्विजाहेप की मात्रा सौ गुना अधिक हो जाती है। एक मनुष्य प्रति मिनट १७ बार श्वास-प्रश्वास की क्रिया करता है और हरवक्त लगभग २५ घन इन्च हवा को भीतर लेकर उतनी ही बार छोडता है। निश्वसित हवा मे ४% प्रा० द्वि० रहने से २५ घन इन्च मे १ घन इन्च उसकी मात्रा रहेगी। इस हिसाब से एक घण्टे मे १ मनुष्य १०२० घन इच (१×१७×६०) या $\frac{१०२०}{१७२८}$ घन फुट (६) प्रा० द्वि० बाहर छोडता है। यह राशि परिश्रम, वेग, तथा लिग के अनुसार बदलती रहती है। कठिन परिश्रम के समय यह राशि बढकर २ घन फुट तक हो जाती है। स्त्रियो तथा बच्चो मे ६ घनफुट से कुछ कम होती है। तथापि जहाँ स्त्री, पुरुष और बच्चे रहते है वहाँ इसकी औसत मात्रा ६ घनफुट के हिसाब से गिननी चाहिए। इस वायु के अतिरिक्त निश्वसित हवा मे जल वाष्प और मैला भी रहता है। किसी शीशे पर श्वास छोडने से जल वाष्प का पता लग जाता है। निश्वसित हवा मे जल वाष्प ५% हुआ करता है। फेफडो मे २४ घण्टें मे २५ तोले पानी की भाप निकलती है।

निश्वसित हवा मे जो मैला निकलता है वह प्रत्येक मनुष्य के स्वस्थ्य के अनुसार बदलता रहता है। उसमे मुख तथा फेफडो के निकले हुए उड़नशील (Volatile) सेन्द्रिय पदार्थ, स्निग्ध अम्ल (fatty acids) तथा मुख और फेफडो की झिल्ली के सूक्ष्माश रहते है। ये सब पदार्थ दुर्गन्धित और जीवाणुओ के लिए अच्छे पुष्टि कारक होते हैं। दूध, मास तथा अन्य खाद्य पदार्थ इनके सम्पर्क से दूषति हो जाते हे।

साधारणतया स्वस्थ मनुष्य की निश्वसित हवा मे जीवाणु नही पाये जाते। परन्तु यदि मनुष्य इफ्लुएजा, खासी, राजयक्ष्मा इत्यादि श्वसन सस्थान तथा गले के रोगो से पीडित हो तो उसके खासने और छीकने के समय ये रोगोत्पादक जीवाणु बाहर निकलते है और अन्य मनुष्य के मुख, नाक तथा गले की झिल्ली पर बैठकर अनुकूल परिस्थिति मिलते ही रोग उत्पन्न करते है। यदि अनुकूल स्थिति प्राप्त न हो तो वैसे ही निकल जाते है या मर जाते हे। निश्वसित हवा का ताप (Temperature) शरीर की उष्णता के बराबर हो जाता है।

सक्षेप मे निश्वसित हवा मे जारक की मात्रा ४ ५% तक घट जाती है और करीब-करीब उतनी ही प्रा० द्वि० की मात्रा बढती है। इन रासायनिक परिवर्तनो के अतिरिक्त ताप और भाप की वृद्धि ये दो भौतिक परिवर्तन भी होते है।

(९) ज्वलन-ज्वलन के लिए लकडी, कोयला, अनेक तरह के तैल, मोमबत्ती, अङ्गारवात (कोल गैस) तथा बिजली का प्रयोग किया जाता है। बिजली को छोडकर हर एक प्रकार की ज्वलन क्रिया मे एक ही रासायनिक क्रिया हुआ करती है जारक के विना कोई भी चीज नही जल सकती। यदि किसी जलते दिये को वन्द पात्र मे रख दिया जाय तो वह एक दो मिनट मे बुझ जाता है। इसका कारण यह है कि पात्रस्थित प्राणवायु नष्ट होकर उसके स्थान पर प्रा० द्वि० बन जाता है। श्वास-प्रश्वास की अपेक्षा ज्वलन के लिए अधिक जारक की आवश्यकता होती है। यदि हवा मे १०% प्राणवायु हो तो प्राणी सजीव रह सकता है, परन्तु यदि प्राणवायु १६ ५% से कम हो तो मोमवत्ती नही जल सकती। प्रा० द्वि० के अतिरिक्त प्रत्येक पदार्थ के ज्वलन मे और भी कई प्रकार के वायव्य पदार्थ पैदा होते है। लकडी जलाने से प्रा० द्वि०, पानी की भाप और गन्धक के दूसरे वायव्य पदार्थ उत्पन्न होते है। अगार (कोयला) जलाने से कज्जली, प्रागार द्वि, प्रा एकजारेय (co), (शुलबारिक (Sulphurous) और शुल्वारिक (Sulphuric) जारेय (Oxides) तथा पानी की भाप उत्पन्न होती है। अगार वात (coal gas) जलाने से भूथित, प्रा० एक और द्विजारेय तिक्तातित (Ammonia) और शुल्वार्य जारेय उत्पन्न होते है। तेल और मोमबत्ती जलाने से कज्जली, प्रा० द्वि० और पानी की भाप उत्पन्न होते ह। जव हवा मे जारक की मात्रा पर्याप्त नही होती है तब प्रा० एक जारेय उत्पन्न होता हे। यह वात अत्यन्त विषैला ह। शीत देशो मे अगीठी जला करके और दरवाजे खिडकिया बन्द करके सोने पर लोगो की मृत्यु इस बात के कारण हुआ करती है, क्योकि दरवाजे खिडियाँ वन्द करने से कमरे के भीतर जारक की कमी हो जाती है।

एक तिमिसिक्थवर्ति (Sperm candle) यह सिक्थवर्ति तिमिगिल (Wadle) नामक बड़ी मछली की स्पर्श
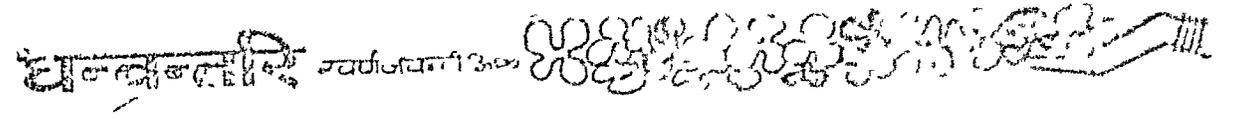
नामक चरबी से बनती है। जो १ घण्टे मे ६० ग्रेन जलाती है। जितना प्रकाश देती है उतने प्रकाश को एक बत्ती का प्रकाश (one candle power) मानते है। बत्ती जलाने के लिए सरसो, तिल्ली, अण्डी, मिट्टी तथा अन्य अनेक प्रकार के तेल, मोम इत्यादि कामो मे लाए जाते है। आजकल मिट्टी का तेल बहुत सस्ता और अधिक होने के कारण उपयोग मे अधिक आता है। इन तेलो के अतिरिक्त बडे-बडे शहरो मे बिजली और अगारवात का भी उपयोग प्रकाश के लिए किया जाता है। इन बत्तियो के जलाने से मनुष्यो के श्वास-प्रश्वास के समान मकानो के भीतर की हवा खराब नही होती है। अत मुख्य मुख्य बत्तियो के लिए १ घण्टे मे कितना प्राणवायु खर्च होता है, उनमे कितना प्रा० द्वि० उत्पन्न होता है और वे कितने मनुष्य के बराबर हवा को खराब करती है इसको सारणी नीचे दी जाती है—

बत्ती	जारक व्यय	प्रां द्वि उत्पति	मनुष्य
मोमबत्ती	१०७ घ. फु	७.३ घ. फु	१२
मिट्टी का तेल	५.९ ,,	४१ ,,	७
अगारवात,	६५ ,,	२.८ ,,	४
अगार वात उज्वल	४.६ ,,	९८ ,,	३
बिजली	०.० ,,	०० ,,	०

इस सारणी से यह स्पष्ट होता है कि स्वास्थ्य की दृष्टि से बिजली की बत्ती सबसे अच्छी है क्योकि न तो उससे जारक घटता है, न प्रा द्वि. बढता है जिससे हवा दूषित हो जाय। इसके अतिरिक्त अन्य बत्तियो की तुलना मे उससे कमरे की उष्णता भी कम बढती है। बिजली की बत्ती के पश्चात् उज्जवल (Incandescent) अङ्गार वात की बत्ती आती है क्योकि उससे अन्य बत्तियो की अपेक्षा जारक व्यय कम होता है और प्रां० द्वि० की उत्पत्ति भी कम होती है। इसमें एक दोष यह है कि इससे कमरे की उष्णता बहुत बढ जाती है। सक्षेप मे जलन कर्म से श्वास प्रश्वास के समान हवा मे परिवर्तन हुआ करते हैं। फर्क इतना ही है कि ज्वलन शरीर के बाहर होता है और श्वसन कर्म भीतर होता है।

(१०) सेन्द्रिय पदार्थो का विघटन—प्राणियो तथा वनस्पतियो के मरने से उनके शरीर सडने लगते है। यह कार्य भूमिगत प्रत्युपजीवी जीवाणुओं द्वारा [illegible] है। इस विघटन के कार्य से अनेक विषैले वायु (यथा H_2S, NH_3, CS_2 इत्यादि) उत्पन्न होकर आस-पास के वातावरण को खराब कर देते हैं। शहरों में [illegible] गन्दे नालों, मोरियों, अस्तबलों, गौशालाओं, पाखानों, पेशाबखानो मे मल मूत्रादि सेन्द्रिय पदार्थों के विघटन से अनेक दूषित वायु उत्पन्न होते है। इनमें उदजन गुल्वेय (H_2S) इतना विषैला होता है कि ५००० भाग मे एक भाग होने पर भी मनुष्यों के लिए भयावह होता है।

(११) जीवाणु—वनस्पति श्रेणी के जीवाणुओं को तृणाणु (Bacteria) और प्राणी श्रेणी के जीवाणुओं को कीटाणु (protozoa) कहते हैं। इनमे जो सजीव प्राणियो पर जीवन व्यतीत करते हैं वे परोपजीवी (parasite) और जो सडी गली चीजो पर जीवन व्यतीत करते है वे प्रत्युपजीवी (saprophyte) कहलाते है। इनमे बहुत थोडे जीवाणु रोगोत्पादक है। इनका मुख्य स्थान भूमि है। खादवाली जमीन तथा बगीचे की जमीन में ये अधिक पाये जाते हैं। क्योंकि वहाँ उनके पोषण के लिए सब प्रकार से परिस्थिति अनुकूल रहती है। विशेष करके ये जमीन के ऊपरी भाग मे ज्यादा होते है। जब आधी या हवा जोर से चलती है तो वे धूलि के साथ हवा मे चले जाते हैं।

(१२) स्थानिक तथा आकस्मिक कारण—चमार, कसाई, रगरेज आदि खराब रोजगार करने वाले लोग अपने रोजगारो से हवा खराब कर डालते हैं। रासायनिक धातुओं के तथा ऊन, रेशम, रुई आदि के कारखानो मे भी हवा खराब हो जाती है। मुर्दा जलाने तथा दफन करने से भी हवा खराब हो जाती है।—स्वा०दि० से साभार

इस प्रकार हम देखते हैं कि वातावरण विभिन्न कारणो से दूषित होकर प्राणवायु को भी दूषित करता रहता है, जो हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

वायु शुद्धिकरण के तरीके

वायु शुद्धिकरण के तरीको को हम दो भागो मे विभाजित कर सकते हैं। (१) प्रकृति द्वारा वातावरण की शुद्धि और, (१) कृत्रिम प्रयोगो द्वारा वातावरण की शुद्धि। इनका क्रमश वर्णन नीचे दिया गया है—

प्रकृति द्वारा वातावरण की शुद्धि—जैसाकि हम ऊपर लिख आये हैं कि वातावरण विभिन्न कारणो से खराब होता रहता है। तथापि उसको शुद्ध करने के लिए प्रकृति मे साधन उपस्थित रहते हैं, जो उसको फिर से विशुद्ध करते रहते हैं। वे निम्न हैं—

(क) वनस्पतियाँ—प्राणियों के श्वास प्रश्वास द्वारा प्राणवायु की राशि घटती है और प्रा० द्वि० की राशि बढती रहती है। वनस्पतियाँ प्रा० द्वि० से विपरीत क्रिया करती हैं। वे प्रा० द्वि० को चूसती है और प्राणवायु को छोड़ती है। इन विरुद्ध क्रियाओ से वायु मण्डलगत प्राणवायु और प्रा द्वि की मात्रा मे कोई फर्क नही होता। इस विषय मे यह ध्यान मे रखना चाहिये कि वातावरण मे प्राणवायु की राशि इतनी अधिक है कि इस प्रकार का प्रबन्ध न होने पर भी हजारो सालो तक उसकी राशि मे परिणामकारी फर्क नही हो सकता।

(ख) वर्षा—जब वर्षा जल धारा रूप मे पृथ्वी पर गिरता है तो गिरते समय कई वायु रूप पदार्थ धूलि, तथा अन्य अवलंबनस्थ पदार्थ अपने साथ लेकर गिरता है। वर्षा ऋतु के आरम्भ मे हवा इन अवलंबनस्थ पदार्थों से परिपूर्ण रहती है परन्तु वर्षा होने पर हवा शुद्ध होकर निर्मल बहने लगती है।

(ग) हवा की गति—प्रकृति हवा मे गति पैदा करती है जिससे खराब हवा झपारे के साथ हमसे दूर हो जाती है और ताजी हवा के दूषित हवा के साथ मिलने से दोष की तीव्रता कम हो जाती है। वायु की गति उसके विभिन्न-सघटकों की विभिन्न घनता तथा वातावरण के विभिन्न भागो के भिन्न ताप के कारण होती है।

प्रत्येक वायु की घनता (Density) अलग-अलग होती है और उसकी प्रसरण (Diffusion) शक्ति उसके घनता के वर्ग मूल के उल्टे अनुपात से होती है। इससे यह सिद्ध है कि जितना वायु वजनदार होगा उतनी उसकी गति कम होगी और जितना हलका होगा उतनी उसकी गति ज्यादा होगी। घनता भिन्नता के अनुसार कमरे की हवा दरवाजो और खिडकियो के छिद्रो से, ईंटो के बीच मे से, छत के फूस से, तथा कच्ची दीवालो मे से निकलकर बाहर चली जाती है और बाहर की हवा भीतर आती है। वायु की इस गति पर विशेष भरोसा न रखना चाहिए क्योकि यह अवलंबनस्थ सूक्ष्म पदार्थों को बाहर नही लेजा सकती तथा इस गति से हवा मे विशेष हलचल नही होती। गरमी से वायु विरल होकर हलकी हो जाती है और सर्दी से घनघोर भारी हो जाती है। इस भौतिक नियम के अनुसार श्वासोच्छ्वास तथा जलन क्रिया द्वारा मकान के भीतर की हवा बाहर की अपेक्षा अधिक हलकी होकर कमरे के छिद्रो द्वारा बाहर निकल जाती है और बाहर की ठंडी हवा मकान के अन्दर आ जाती है। इसमें वायु मे सदा गति रहती है। तथापि गरम मुल्को मे तथा गरमी के मौसम मे बाहर की और भीतर की हवा में कोई विशेष भेद नही होता।

वायुमण्डल का एक भाग सूर्य की गरमी से गरम होता है और उसके न होने से दूसरा भाग ठण्डा रहता है। इन ठण्डे और उष्ण भागो मे हमेशा अदला बदली हुआ करती है और इसीसे वायु मण्डल मे प्रवात (Winds) पैदा होते रहते हैं। वायु मण्डल का सघटन एकसा रखने का सबसे बडा यही साधन है।

(घ) प्रजारक—हवा के जारक और प्रजारक उसको शुद्ध रखने मे सहायभूत होते है। प्रजारक मे जारक से जारण करने का गुण (Oxidizing) ज्यादा है, और जब यह किसी सेन्द्रिय पदार्थ से मिलता है तो उसे विघटित करके उसका जहरीलापन दूर करता है। इस कारण से प्रजारक शहरो के वायु मण्डल मे, जहाँ सेन्द्रिय पदार्थ बहुत हुआ करते है, नही पाया जाता।

(ड) सूर्य की किरणे—इनका महत्व रोगोत्पादक जीवाणुओ की दृष्टि से है। सूर्य की औष्ण्य और नीललोहितातीत (Heat and ultraviolet) किरणो के प्रभाव से वायुमण्डलस्थ रोगोत्पादक जीवाणु मर जाते है या उनकी रोगोत्पादक शक्ति घट जाती है।

—स्वास्थ्य विज्ञान

कृत्रिम प्रयोगो द्वारा वातावरण की शुद्धि

कृत्रिम साधनो द्वारा वायु कई तरीको से शुद्ध की जाती है, जिसका वर्णन हम निम्नलिखित रूप मे कर रहे हैं—

प्रेरण विधि—इसको Plenum System कहते हैं। बड़े-बड़े पंखों अथवा भाप के फुहारों (Steam gets) द्वारा कमरे में बाहर की हवा को प्रविष्ट किया जाता है और दबाव के कारण कमरे का दूषित वायु नलिकाओं द्वारा बाहर निकल जाता है। ये पंखे विद्युत, वाष्प अथवा अन्य शक्ति द्वारा चलाये जाते हैं। इसमें हवा के प्रवेश का मार्ग कमरे के निचले हिस्से में और निकलने का मार्ग ऊपर के हिस्से में होना चाहिये। प्रेरणविधि सिनेमा घरों, थियेटरों, कारखानों आदि के लिये बड़े काम की है।

शून्यक विधि इस विधि (Vacuum system) में अग्नि और धूम मार्ग (Fire and Flue) या पंखों की सहायता से निस्सारण मार्गों (Extraction shafts) द्वारा कमरे की हवा बाहर निकाली जाती है। इसके लिये धूमनी के नीचे आग जलाते हैं जिससे आसपास की हवा गरम होकर ऊपर उठती है और चारों ओर की ठण्डी हवा उसका स्थान ले लेती है। रंग भूमि, सभागृह, अस्पताल, खानों इत्यादि में यह विधि प्रयोग की जाती है।

मिश्र विधि(Combined method)—इसमें उपरोक्त दोनों विधियों को मिलाया जाता है। इसको संतुलित (Balanced) पद्धति भी कहते है। बहुत बड़े सभागृहों केलिये इसका उपयोग किया जाता है जिससे एक ओर से अनुकूल वायु प्रविष्ट की जाती है और दूसरी ओर से खींच कर निकालते हैं।

अन्य साधन—(१) फिनायल, डेटौल आदि को जल में मिश्रित कर कमरे में छिड़कने से कमरे की वायु में मिश्रित रोगाणु नष्ट हो जाते हैं और कमरे की वायु शुद्ध हो जाती है।

(२) वायु शुद्धिकारक द्रव्यों द्वारा हवन करने से भी वायुमण्डल शुद्ध होकर शुद्ध हवा हमें प्राप्त होती है। इस विषय में पूर्ण जानकारी आगे लेख में देखिये।

वायु के सम्बन्ध में अन्य तथ्य

(१) शिशिर ऋतु में पूर्व की ओर का बहने वाला वायु शीत पदार्थों में मधुरता लाने वाला, बल देने वाला, वायु प्रकोपक, वात रोगी, व्रणी एवं शोथ के रोगियों को हानिकारक है।

(२) हेमन्त ऋतु में आग्नेय दिशा का वायु किंचित कटु परन्तु मधुर रस उत्पन्न करने वाला, घाव और शोथ रोगियों के लिये हानिकारक है। यह वायु मलय पर्वत के आस-पास से आने से पुष्पों में कटु कषाय और मधुर रस का उत्पादक होता है। यह मन्द-मन्द बहकर सुगन्धित और शीत गुणों से युक्त [illegible] जाता है।

(३) बसन्त ऋतु में [illegible] दक्षिण दिशा से बहने वाला कफ और पित्त की वृद्धि करता [illegible] शीतल होता है। यह वायु गुणकारक है।

(४) ग्रीष्म ऋतु में नैऋत्य दिशा का वायु चलता है। यह रूक्ष और दाह नाशक है। इससे [illegible] की उत्पत्ति होती है। इसके योग से [illegible] और [illegible] की उत्पत्ति होती है। यह कफ को बढ़ाने वाला और [illegible]नाशक है।

(५) वर्षा ऋतु में पश्चिम का वायु बहता है यह अत्यन्त सूक्ष्म और निर्दोष है। यह व्रण, कफ और शोथ रोगियों के लिये लाभदायक है।

(६) शरद ऋतु में वायव्य दिशा का वायु बहता है। यह स्वच्छ, कषाय रस विशिष्ट और शोषण करने वाला, वायु का संचय करने वाला तथा घाव और सूजन वाले रोगियों के लिये लाभदायक है।

(७) शिशिर और हेमन्त ऋतु में कभी-कभी उत्तर दिशा का भी वायु चलता है। यह कषाय रुचिकर कफ का कोप करने वाला, पानी बरसाने वाला और ठण्डा होता है। यह वायु त्याज्य नहीं है।

(८) शिशिर मौसम में ईशान दिशा का भी वायु चलता है। यह शीत, मन्दकारक, कफदोष का प्रकोपक और व्रण, शोथ, श्वास, कास और क्षय रोगियों को अहितकर है।

कृत्रिम वायु के गुणधर्म

अनेक प्रकार के पंखे आदि द्वारा जो वायु संचालन किया जाता है, उनमें भी कारण भेद से कार्य में गुण भेद होता है। जैसे ताड़ के पंखे का वायु लाभदायक है, परन्तु भी अधिक निरोग वायु मोरपंख की होती है। कपड़े से हवा करने से व्रण और शोथ रोगों में हानि होती है। खासकर लाल कपड़े से हवा नहीं करना चाहिए। यह कफ प्रकोपक होता है तथा श्रमग्लानि शोक सुस्ती,नींद आदि विकार पैदा करता है। बकरा, हिरण, भेड़ आदि के चमड़े का वायु हितकारक है। इससे श्वास, कास, क्षत, क्षय और तृषा

—शेषांश पृष्ठ ८७ पर

डा० श्री रणवीरसिंह की धर्मपत्नी तथा पिताश्री अन्नोजीराव और माता श्रीमती राजा बाई की लाडली श्रीमती सावित्री देवी, उपनाम 'आरोग्या' का जन्म आरोग्य प्रदान करने हेतु बगलौर (मैसूर स्टेट) के पास टिपटूर नामक ग्राम मे सन् १९३० ई० मे अक्षय तृतीया के शुभ दिन हुआ। आपका लालन, पालन एव शिक्षा महाराजा भोज की नगरी 'धारा नगरी' मे पूर्ण हुये। भा० वि० बम्बई से साहित्य शास्त्री, गव० स० का० काशी से ज्ञान प्रभा और ज्ञानश्री, हि० वि० वि० प्रयाग से आयुर्वेदरत्न और आर्य वि० परिषद् से विद्यावाचस्पति विभूषित श्रीमती 'आरोग्या' इन्द्र औषधालय आगरा मे स्त्री एवम् बाल रोगियो की सेवा मे सदैव तत्पर रहती है।

प्रस्तुत लेख मे आपने वायु शुद्धि के उपायो मे सरल एवँ अल्प व्यय साध्य यज्ञ से वायु शुद्धि के उपाय पर प्रकाश डाला है। प्रकृतिरूप से आवास, गृह, ग्राम, नगर एवँ देश यहाँ तक कि सम्पूर्ण वायु मण्डल को शुद्धि करने का एकमात्र साधन यज्ञ ही है।

— वैद्य छगनलाल समदर्शी

यज्ञ आर्य जाति का दैनिक कर्तव्य है। हवन से लौकिक एव व्यवहारिक दृष्टि मे वायु शुद्धि तथा पारमार्थिकरूप मे धर्म एव पुण्य होता है। अपने तथा सामाजिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी कार्यों को शास्त्रकारो ने धर्म के अन्तर्गत माना है। जिससे चाहे अनचाहे जनता के विश्वजीवन कल्याण कार्य अनवरत होते रहे और जन साधारण का स्वास्थ्य सर्वाङ्गीण रूपेण समीचीन होता रहे।

यज्ञ के पर्याय—अग्निहोत्र, इष्टि, होम, याग, यज्ञ, हवन, आदि शब्द सर्वसाधारण यज्ञो के लिए प्रयुक्त होते हैं। यद्यपि ज्योतिष्टोमयाग, दर्शपौर्णमासयाग, अश्वमेध यज्ञ, बाजपेय यज्ञ, राजसूय यज्ञ, अग्निहोत्र आदि नाना प्रकार के साधारण व विशिष्ट यज्ञो का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थो, श्रौतसूत्रो तथा गृह्यसूत्रो मे विधि-विधानपूर्वक प्राचुर्येण मिलता है, तथापि यहा केवल दैनिक यज्ञ पर लिखा जा रहा है।

अभिप्रेत व वर्ण्य विषय

आवास, गृह, ग्राम, नगर, देश, उपवन आदि की दूषित वायु की शुद्धि के लिए दैनिक हवन या दैनिक अग्निहोत्र वैदिक काल से ही आवश्यक कर्त्तव्य के रूप मे प्रचलित था। इस अनन्त ब्रह्माण्ड मे सदा से यज्ञ होता रहा है, वैदिक काल मे भी होता रहा, आज भी हो रहा है और आगे भी अनन्त काल तक होता रहेगा। यही सच्ची शास्त्र मर्यादा है।

वायु का दूषित होना

मनुष्य देह से उत्पन्न अपान वायु, प्रस्वेद, मूत्र, पुरीष, श्वास, शिङ्घाण, ष्ठीवन आदि से निवासस्थान की छत, फर्श, व भित्तिया शनै शनै दोषो को एव कीटाणुओ को अपने अन्तस्तल मे सुरक्षित करती रहती हैं। तन्निवारणार्थ तुत्थ मिश्रित चूने के विषनाशक जल से सारी दीवारो की पुताई की जाती है परन्तु जो कीटाणु वायुमण्डल को या मकान के बाह्य

वातावरण को दूषित करते हैं, उस की शुद्धि या हनन हवन के वाष्प या धूम द्वारा ही हो सकती है।

अन्य प्राणियो एवं वृक्ष वनस्पतियो से भी वायु दूषित होता है। प्राणी मात्र के मलो से स्वास्थ्यप्रद वायु रोग का कारण हो जाती है। इसी प्रकार स्थावर वृक्ष आदि के पुष्प, पत्र, फल आदि के सडने से भी वायु दूषित होता है। ६६ प्रतिशत वृक्ष जातियाँ रात्रि मे अपान वायु (Carbon di-oxide gas) को छोडती हैं तथा दिन मे प्राण वायु (Oxygen gas) देती है। इन्ही बहुत से कारणो से पृथिवी का वायु मण्डल विषाक्त होता है। मिट्टी का तेल, पत्थर का कोयला, गैस, लकडी, कण्डे आदि भोजन के निर्माण कार्य से जलाए जाते हैं। इनके धुएे मे भी वायु दूषित हो जाती है। अन्न जल, कूडा, ईंधन आदि के सडने से, पक्षियो के मल मूत्र पखो मे शौचालय, मूत्रालय, नालियो की स्वच्छता न रहने से घर का वायु मडल दूषित हो जाता है जिससे घर के आवाल वृद्धो का स्वास्थ्य विगड जाता है। इस मशीनी युग (कलयुग) मे अनेक यन्त्रो के चलाने के साधन डीजल पैट्रोल, मिट्टी का तैल, क्रूड आयल, गैस आदि के जलने से भी देश का वायु मण्डल अस्वास्थ्यकर हो रहा है।

दुष्ट वायु से स्वास्थ्य की हानि

मनुष्य मात्र के स्वास्थ्य के लिए शुद्ध स्वास्थ्यप्रद वायु का होना आवश्यक है। प्राण वायु (Oxygen) की कमी मे अनेक रोगो की उत्पत्ति तथा जीवन का ह्रास होता है। विषैली वायु या रोगाणु युक्त वायु मे श्वास प्रश्वास लेने से फुफ्फुसो मे आया हुआ रक्त शुद्ध न होकर दूषित हो जाता है। देह स्वास्थ्य के लिये शुद्ध रक्त ही जीवन है।

वायु शुद्धि के लिये हवन सर्वोत्तम

गन्दगी, मलमूत्र, सडान्द आदि का साफ करना जितना आवश्यक है उतना ही उनसे फैली हुई या फैलने वाली दुर्गन्धि का दूर करना भी जरूरी है। फिनैल, कार्बोलिक लोशन, ब्लीचिंग पाउडर या डी० टी० टी० आदि स्वय विष है। पूर्वोत्पन्न दुर्गन्धि को दूर करने पर इनकी तीव्र दुर्गन्धि असह्य व अहृद्य हो जाती है। हवन कीटाणुनाशक वायु शोधक एव सुगन्धि प्रसारक है। हृद्य है, चित्त मे आह्लाद उत्पन्न करता है। प्राण वायु का सर्वत्र सचार करता है।

अग्नि का स्वभाव है सुगन्धित व रोगनाशक सामग्री को दग्ध करके सूक्ष्मातिसूक्ष्म कर वायु मण्डल मे फैलाना। इसमे स्थूल द्रव्य छिन्न भिन्न होकर श्वास के द्वारा ग्राह्य हो जाता है। वायु मे प्रसृत नाना रोगोत्पादक जीवाणुओ, कीटाणुओ और दुर्गन्धि को यज्ञ का वाष्प एव धूम शीघ्र दूर कर देता है और मन प्रसन्न करता है।

ऐसे शुद्ध सुगन्धित वायु मे श्वास लेने से फेफडो मे आने जाने वाला रक्त शुद्ध हो जाता है उसमे जीवनीय तत्व मिल जाते है। अनेक रोगो को उत्पन्न करने वाले कीटाणु स्वय नष्ट हो जाते हैं। यज्ञ प्राचीन काल से विज्ञान सम्मत है और आज के भौतिक विज्ञान की कसौटी पर भी सही उतरता है। यज्ञ की सामग्री के विषय मे निम्न पक्तियो मे प्रकाश डाला जा रहा है।

हवन सामग्री का निर्माण

बाजार मे बहुत प्रकार की हवन सामग्री मिलती है— परन्तु उसमे सस्ती, पुरानी, अनुपयोगी चीजे डालकर सामिग्री को गुणहीन बना दिया जाता है, सामग्री थोडी हो परन्तु उत्तम सुगन्धित व रोगनाशक वस्तुओ से बनी हो, कीड़ो से रहित हो।

चार प्रकार के पदार्थो को मिलाकर हव्य का निर्माण होता है।—(१) मिष्ट, (२) पुष्ट, (३) सुगन्धित और (४) रोग नाशक। यद्यपि इन सभी पदार्थो मे रोगनाशक एव सुगन्धित गुण है, पुनरपि हृदयङ्गम करने के लिये विस्तार से स्पष्ट लिखा जा रहा है।—

(१) मिष्ट—गुड, शक्कर, बूरा, मिश्री, छुआरे दाख आदि।

(२) पुष्ट—घृत, फल, कन्द, चावल, जौ, तिल आदि।

(३)—सुगन्धित—केशर, अगर, तगर, चन्दन, मलयागिरी, इलायची, जायफल, जावित्री, बावची, गूगल वच, जटामाँसी, पानडी, तुम्बरु, खस सिल्हक आदि।

(४) रोगनाशक—सोमलता, गिलोय, धायफूल तालीसपत्र, वायविडग, पित्तपापडा, चिरायता, कालमेघ तथा जीवनीयगण की समस्त औषधिया आदि।

उक्त सभी प्रकार के पदार्थ मनुष्य के लिए उपयोगी हैं। परन्तु एक व्यक्ति जितने परिमाण में उक्त पदार्थो

को सेवन कर अपनी पुष्टि करता है, हवन किये हुए उतने पदार्थ हजारो मानवो, प्राणियों एव स्थान वृक्ष वनस्पति आदि को लाभ पहुचाते है । यज्ञ से मनुष्य जीवन मे परोपकार वृत्ति बढती है स्वार्थ भावनाएँ न्यून हो जाती है ।

हवन सामग्री

छरीला, तालीसपत्र, तेजपात, शीतलचीनी, अगर, तगर, गूगल, चन्दन मलयागिरी, पुष्पकरमूल, दालचीनी, तुम्वरु वीज, खस, वालछड, नागरमोथा, इलायची दोनो, कपूर कचरी, पानडी, वावची, गिलोय, वायविडग, देव-दारु इन सवको १००-१०० ग्राम सममाग ले । इनमे से गूगल, बालछड़, चदनचूरा असली श्वेत, तुम्वरु बीज और तगर ३००-३०० ग्राम लेकर कूट ले । इसमे कपूर कैसर, जावित्री, जायफल और लवग हवन करते समय थोडा-२ मिला लें । केशर को आहुति घृत मे मिला दे । सामग्री को बन्द डिब्बो मे सुरक्षित रखे । यज्ञ करते समय इसमें शुद्ध घृत, बूरा, मेवा आदि मिलाकर प्रात. सायं अग्निहोत्र करें ।

हवन कुण्ड

ताम्बा, चादी, पीतल, लोहा आदि धातुओ या मिट्टी का बना हुआ अथवा भूमि को खोदकर बनाना चाहिए । कुण्ड का ऊपरी भाग १ फुट, नीचे पेदी मे चौथाई अर्थात् तीन इच चौडा और ऊचाई भी १ फुट होना चाहिए ।

समिधायें

आम, गूलर, पीपल, वड, देवदार, चीड, चन्दन, ढाक पिलखन प्रभृति वृक्षो की सूखी लकडियो को उक्त कुण्ड मे डालकर प्रात सायं उक्त सामग्री की आहुतिया वेद-मन्त्रो, प्रार्थनामन्त्रो या गायत्री मन्त्र को २१ वार बोलकर दे । यदि दो या तीन व्यक्ति हो तो एक व्यक्ति को शुद्ध घृत की आहुतिया देना चाहिए । यज्ञ मे हुत, हवि, और सामग्री सूक्ष्म होकर वायुमण्डल मे मिल जाती है । यह दूषित वायु को सुगन्धित और स्वास्थ्यप्रद बना देता है ।

विशेष—(१) यदि किसी व्यक्ति को यज्ञ करने की श्रद्धा या इच्छा नही हो तो भी उक्त सामग्री को बनाकर या किसी विश्वस्त स्थान से क्रय करके प्रात साय जलते हुए अगारो पर डालना चाहिए । सामग्री व घृत के वाष्प से शारीरिक एव बौद्धिक रोगो का शमन होता है। घर के अन्तराल या आस-पास फैली हुई दुर्गन्धि दूर हो जाती है ।

(२) भिन्न-२ ऋतुओ मे कालानुकूल गुणो वाली रोगनाशक औषधियां तथा सुगन्धित पदार्थों से बनी सामग्री का प्रयोग होता है । उक्त सामग्री सर्वऋतुओ के अनुकूल है और विशेष सुगन्धित तथा रोगनाशक है । अत सभी ऋतुओ मे इस सामग्री का प्रयोग किया जा सकता है ।

(३) सामग्री को शुद्ध घृत और मीठा मिलाकर ही अग्नि मे डालना चाहिए । यदि शुद्ध वस्तुयें व कीमती चीजे मोल लेना सामर्थ्य से वाहर हो तब साधारण उपरि-निर्दिष्ट सुगन्धित द्रव्यों से हवन करना चाहिए ।

(४) अगरवत्ती, चन्दनवत्ती और धूप वत्तीयो के जलाने से सुगन्धि तो हो जाती है परन्तु दीप्ताग्नि मे हुत द्रव्यो के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाजित अशो से अतर्कित मह-नीय लाभ होता है । वायु शुद्धि का इससे अच्छा और सरल उपाय दृष्टिगोचर नही होता ।

—श्रीमती सावित्री देवी शास्त्री आयु रत्न
सावित्री सस्थान, इन्द्रभवन, आगरा ।

(शेष पृष्ठ ८४ का)

विकार नष्ट होते हैं । बकरे के चमड़े का वायु निर्दोष, शीत और शूल नाशक है । खल्लीवात, व्यङ्ग, खाज-खुजली और कुष्ठ का भी इससे नाश होता है ।

वास के पखे का वायु सुस्ती और नीद पैदा करने वाला, रूक्ष, अतिशय कषाय किन्तु वायु का प्रकोप न करने वाला है । कास के पतरे से हाँका हुआ वायु रूक्ष, वातनाशक, दाह, श्रम और स्वेदनाशक, निद्रा तथा सुख प्रदाता है । हरे ताड और केले के पत्तो का वायु शीत, शान्तिकारक, श्रमनाशक और कफ कारक निद्रा तथा तृप्ति करने वाला है । शोथ, दाह, श्रम, ग्लानि तथा भ्रम नाशक है । खस और मोर का पखा सुगन्धित तथा धीरे-धीरे ठडक लाने वाला, ग्लानि, मूर्च्छा, श्रम, शोष और विष विकार नाशक होता है ।
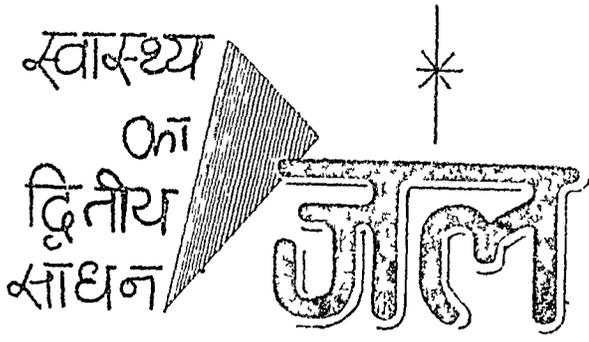
जल का महत्व

स्वास्थ्य का दुसरा आधार पानी है। पानी का महत्व उसकी दुष्प्राप्यता होने पर अथवा जरूरत पर पानी न मिल सकने पर महसूस होने लगता है। जिस समय थोडी देर के लिए पानी नही मिलता उस समय प्राणी पानी के लिए छटपटाने लगता है और ऐसा मालूम होने लगता है मानो प्राण निकले जा रहे हो। सस्कृत मे इसीलिए पानी को 'जीवन' सज्ञा दी गई है। क्या वनस्पति और क्या प्राणी कोई भी इसके बिना जीवित नही रह सकता है। मनुष्य शरीर मे करीब करीब ³⁄₈ जल ही है। शरीर मे भोजन के पाचन और प्रचूषण मे जल ही मदद करता है। और जल के सहारे ही शरीर के मल स्वेद मूत्रादि के द्वारा बाहर निकलते है। आचार्य वाग्भट्ट ने जल के महत्व को बताते हुए लिखा है—

अन्नपाने सलिलमेव श्रेष्ठम् ।
सर्वरसयोत्वात् सर्वभूतसाम्याज्जीवनादि गुणयोगाच्च ॥

जल केवल पीने के लिए ही नही अपितु रसोई बनाने बर्तन माँजने, कपडा धोने और फर्श तथा मोरियाँ साफ रखने के लिए घरेलु कार्यो मे दिन-रात व्यवहार होता है। जल कल कारखानो के लिए, शहर की सफाई रखने के लिए, सडको पर छिडकाव करने के लिए, आग बुझाने के लिए, परनाले, मोरिया साफ रखने के लिए तथा ऐसे ही अन्य अनगिनत कामो मे प्रयुक्त होता है। अत. जल हमारी रक्षा के लिए विभिन्न रूपो मे सहयोगी बन कर हमे जीवित रखता है। इसीलिए कहा भी है—

"पानीयं प्राणिना प्राणा विश्वमेव हि तन्मयम्"

जल के गुण

जल प्राण धारक, तृप्तिदायक, हृदय (या मन) के लिए, आह्लादकर, बुद्धिवर्धक, सूक्ष्म, अव्यक्त रस (जिसमे से एक भी रस स्पष्टतया अनुभूत नही होता), मृष्ट (जिह्वाप्रिय), ठन्डा हलका और अमृतोपम होता है—वाग्भट। आकाश से बरसने वाला ऐन्द्र जल (ससार के सब प्रदेशो मे उपर्युक्त गुण विशिष्ट) एक ही प्रकार का होता है। परन्तु गिरते समय और गिरने पर वह (अपने गुणो की दृष्टि से) देश कालापेक्षी हो जाता है—चरक। वह जल पात्रापेक्षी होने से वस्तुत पात्र दोषो के अनुसार भूमि पर पहुँचकर (उसके गुणो के अनुसार) अनेक रसो का (तथा गुणो का) ग्रहण करता है, (जैसे कही सफेद, कही काला, कही मटियाला, कही मीठा, कही खारा, कही हलका, कही भारी-ऐसा हो जाता है)-काश्यप।

पीने योग्य श्रेष्ठ जलो मे इन्द्र से छोडा हुआ जो जल आकाश से गिरता है और बताए हुए (विशुद्ध) पात्रो मे ग्रहण किया जाता है उसको 'ऐन्द्र' जल कहते है। वह राजाओ के पीने योग्य और सर्वोत्तम जल होता है—चरक

इसी प्रकार प्रावृट् (आषाढ श्रावण) और प्रोष्ठपद (भाद्रपद) के अतीत हो जाने पर प्रथम मास मे (शरद ऋतु मे) आकाश से गिरने वाला दिव्य कल्याणकारी, जल, 'हसोदक' कहलाता है—काश्यप। वह सूर्य और अगस्त्य नक्षत्र की किरणो से निर्विष (शुद्ध) रहता है। इसलिए स्नान पानादि कार्यो के लिए अमृत के समान हितकर होता है—चरक। इसी प्रकार जिसमे कोई गन्ध न हो, कोई रस विशेष रूप से प्रकट न हो ऐसा तृषाशामक, शुद्ध, शीतल, स्वच्छ, हलका, और मन मे प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला जल हितकर होता है—सुश्रुत।

पानी के निकास (Sources)

आकाश	भू-पृष्ठ	भू-गर्भ
आन्तरिक्ष जल	नदी	निर्झर
ओले	तडाग	कूप
	प्रस्त्रवण	

जल प्राप्ति के उपरोक्त साधनो का परिचय एव इनसे प्राप्त प्रत्येक जल के गुण धर्म आप पिछले

लेख मे पढ चुके है। यहा पर पेय जल की समस्या एव उनके समाधान पर कुछ विवरण दे रहे है–

पेय जल समस्या और समाधान

(क) आन्तरिक्ष जल समुद्र का पानी सूर्य की गरमी से भाप बनकर आकाश मे मेघ बन जाता है। इस प्रकार से वर्षा जल की उत्पत्ति होती है। भूमि पर गिरने के बाद अन्तरिक्ष जल का कुछ भाग भाप बनकर फिर से आकाश मे चला जाता है, कुछ भाग वनस्पतिया चूस लेती है कुछ भाग भू-पृष्ठ पर नदो और नदियो के रूप मे बहता है, कुछ भाग जमीन के छिद्रो द्वारा उसके भीतर शोषित होकर कूपो और गहरे स्रोतो को पानी देता है। शोषित जल की राशि भूमि की प्रकृति पर आश्रित रहती है। प्रकृति मे जो जल मिलता है उसमे वर्षा जल जैसा विशुद्ध, निर्मल और पथ्यकर दूसरा जल नही है। चूना और भ्रजातु (मैग्नेशिया) के अभाव से यह बिलकुल मृदु (Soft) होता है। और कपडे धोना, रसोई बनाना, स्नान करना आदि कामो के लिए बहुत फायदेमन्द रहता है।

इसमे रोगोत्पादक जीवाणु (विशेष करके आन्तरिक सन्निपात तथा विसूचिका के) नही पायेजाते, परन्तु इडिस इजिप्टी (Aedes aegypti) मच्छरो अन्य जल सचयो की अपेक्षा वर्षा जल के सचयो मे अण्डे देना अधिक पसन्द करती है। भूमि जल की अपेक्षा यह जल कम रुचिकर भी होता है यह जल वायु मण्डल की शुद्धाशुद्धता पर ही आश्रित होता है। इसमे हवा मे से जमीन पर गिरते समय हवा के कई वायु रूप पदार्थ, दूसरे ठोस अवलम्बनस्थ सूक्ष्माश, धूलि आदि हवा के सघटक इसमें विलीन हो जाते हैं। समुद्र-तटवर्ती शहरो मे वर्षा जल मे नमक भी होता है। बडे-बडे व्यापारी शहरो मे कल-कारखानो से निकले हुए बहुत जहरीले और गन्दे वायु रूप पदार्थ कज्जली धूलि और तरह-तरह के सूक्ष्माश वर्षा जल मे विलीन हो जाते है।

वर्षा के आरम्भ मे वायु मण्डल इन पदार्थों से भरा रहता है अत शुरु का जल इकट्ठा न करना चाहिए। वर्षा जल समान्यत घरो की छतो से इकट्ठा कर छोटे-२ मर्तबानो तथा हौजो मे भरकर रखना चाहिए। सम्भव हो तो राबर्ट या गिब का वर्षा वेचक (Roberts or Gibbs Rain water Separator) का प्रयोग करना चाहिए। यह यन्त्र इस प्रकार बनाया गया है कि शुरू के दूषित जल को अन्दर नही आने देता, परन्तु थोडी देरके बाद इसका ढकना ऊपर उठ जाता है और शेष शुद्ध पानी को मर्तवान या नाली मे, जो कि पानी केलिए बनायी गई है, जाने देता है। सर बिलयम म्याक ग्रीगर (Sir William Mac Gregor) ने एक ऐसा प्रवन्ध किया है जिससे कि शुद्ध पानी जमा किया जा सकता है तथा उसे मच्छरो एव अन्य छोटे-२ कीटो से सुरक्षित रक्खा जा सकता है।

यदि वर्षा जल को भूमि पर से इकट्ठा करना हो तो उस स्थान की तली पर सीमेट या अन्य अप्रवेश्य पदार्थ की तह बिछानी चाहिए और इसे नल के द्वारा जमीन के अन्दर के हौजो मे ले जाना चाहिए। भूमि को जिसे वन्द
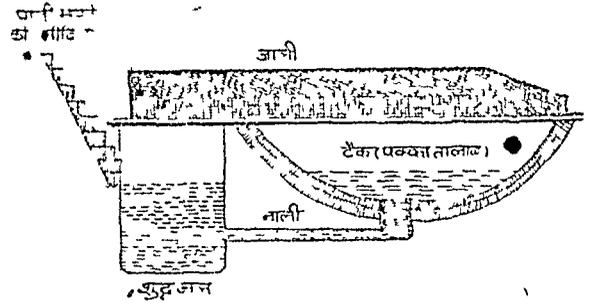
शुद्ध वर्षा जल को भूमि पर से एकत्रित करना

भूमि (Catchment area) कहते है, वहुत साफ रखना चाहिए और उसके चारो ओर अहाता बनवाना चाहिए ताकि पशु इसके पास आकर गन्दगी न करे, इस भूमि से हौज तक जाने वाली नलिका भी साफ रखनी चाहिए।

(ख) भूपृष्ठ जल(Surface Water)–१ नदी–नदी का जल भूपृष्ठ जल और स्रोत जल का मिश्रण है जो भाँति भाँति के स्तरो और चट्टानो मे से बहकर आता है। भूमिगत जल से यह अधिक मृदु होते हुए भी इसमे सेन्द्रिय द्रव्य अधिक रहता है। भारतवर्ष के सब प्रमुख नगर तथा असख्य ग्राम नदीतट पर ही बसे है और सब कामो के लिए नदी जल का ही उपयोग वहा के रहने वाले किया करते है। यदि नदी मे पानी बहुत हो तथा पानी का वहाव ठीक हो तो पीने के लिए भी नदी का पानी काम मे ला सकते है। क्योकि वह नैसर्गिक साधनो द्वारा शुद्ध होता रहता है। परन्तु बारहो मास अधिक पानी और

प्रवाह की नदियाँ बहुत कम होती हैं और निम्न कारणो से उनका पानी बराबर दूषित होता रहता है—

१. वर्षा ऋतु मे नदी के पानी मे चारो ओर की गन्दगी जलके साथ वह कर मिल जाती है। इसलिए वर्षा ऋतु मे नदी का पानी खराब (वर्षानादेय जलानाम् 'अपथ्यकरम्'—चरक) और पीने के लिए अयोग्य रहता है।

२. बहुतेरे नगरो के परनाले नदियो मे छोड दिये जाते है। इससे नदी का पानी बारहो मास पीने के अयोग्य रहता है।

३ नदी तट पर बसने वाले नगरो और गावो के लोग रोगियो के कपडे तथा अन्य दूषित पदार्थ नदी में धोते है, या छोडते हैं। इससे विसूचिका, आन्त्रिक अतिसार, कृमि इत्यादि विकार उत्पन्न होते है।

४ किसान लोग गाय, बैल, भैंस इत्यादि के झुण्ड के झुण्ड नदी में लाकर धोते हैं।

५ सैकडो आदमी सुवह शाम नदी के किनारे पाखाना फिरते हैं और पेशाब करते हैं। जिस समय नदी का पानी बढ़ता है उस समय ये सब गन्दे पदार्थ नदी मे जाकर मिलते है।

६ नदी के किनारे पर मुर्दे जलाते तथा गाढते हैं। कभी कभी मनुष्य की तथा जानवरो की लाश नदी मे पडकर उसी मे गल पच जाती है।

७ कहीं-कहीं कल कारखानो का खराब पानी नदी मे छोड देते है।

८ झाडियो मे से होकर बहने वाली नदियो का पानी वनस्पतिज अशुद्धियो मे भरा रहता है।

९ यदि नदी किसी खाद वाली जमीन मे से बहती हो तो खाद की गन्दगी भी उसमे मिली रहती है।

इसलिये इन सब बातो को देखकर यह कहना पडता है कि यदि नदी का पानी पीना हो तो बहुत सावधानी से पीना चाहिए। पीने के लिए किनारे के नजदीक का पानी न लेकर बीचो बीच का पानी लेना चाहिए, क्योकि उथले स्थान से गहरे स्थान का पानी कहीं अच्छा होता है तथा बीच मे प्रवाह होने से अशुद्धिया वह जाती हैं।

२. प्रास्रवण जल (Upland Surface water)—यह वर्षा जल है जोकि भूमि से शोषित न होकर भूपृष्ठ पर नदियो के मुख के नजदीक पहाडो के ऊपर इकट्ठा हो जाता है। ये प्राकृतिक जल सचय होते हैं और भारत मे बहुत स्थानो पर इनका पानी बढता जाता है। यह पानी अक्सर पहाडी और निर्जन प्रदेशो से आकर इकट्ठा होता है और सामान्यतया 'आन्तरिक्षानुकारी' रहता है।

यह वर्षा-जल सा ही मृदु होता है एव इसमे भूमित और भूयीय (नायट्राईट और नाइट्रेट) इत्यादि लवण भी ज्यादा नही होते, परन्तु इसमे वर्षाजल की अपेक्षा वनस्पतिज सेन्द्रिय पदार्थ ज्यादा हुआ करते है। यदि पहाडो के माथे पर जीर्णक (Peat) नामक मिट्टी हो तो वह भी पानी मे मिल जाती है और बहुत अधिक मात्रा मे होने से प्रवाहिका पैदा कर देती है। यदि जीर्णक नामक द्रव्य न हो तो यह पानी पीने के लिए काफी शुद्ध रहता है। आधुनिक खोज से यह साबित हुआ है कि जीर्णक मिट्टी मे अम्लजनक (Acid Producing) जीवाणु हुआ करते हैं, जिनसे इस पानी की प्रतिक्रिया अम्ल (Acid reaction) होती है। ऐसा पानी जब शीशे की नलिकाओ द्वारा शहर मे पहुचाया जाया करता है तब सीसे को घोलकर पानी-पीने वालो मे सीस-विषमयता (plumbism) पैदा कर देता है। अत इस प्रकार के जल का उपयोग करते समय उपरोक्त बातो को ध्यान मे अवश्य रखना चाहिए।

३ तालाब—ये जमीन मे लम्बे चौडे गड्ढे खोद कर किसी तग घाटी मे एक तरफ बाँध बना करके तैयार किये जाते हैं और उनमे वर्षा का पानी चारो तरफ सेआकर इकट्ठा होता है, इन्ही का नाम तालाब या तलैया है। भारतवर्ष के बहुत से देहातो मे इनका ही पानी पीने के लिए बरता जाता है। कितने तालाब सोते वाले होते है अर्थात् इनमे झरना आया करता है। जिससे उनमे पानी सदा सर्वदा भरा रहता है। कितने ही केवल बरसात के पानी से भर जाते हैं और गर्मी के दिनो मे अकसर सुख जाया करते हैं। बरसात का पानी आस-पास की जगहो से आकर इकट्ठा होता है और थोडे ही दिनो मे निर्मल हो जाता है। यदि इसके पानी मे किसी तरह की गन्दगी न की जाय तो पानी पीने योग्य हो सकता है। बहुतेरे

लोग स्वास्थ्य रक्षा के विषय मे इतने अज्ञानी होते है कि जिस स्थान का पानी पीने के लिए इस्तेमाल करते है उसी स्थान पर और मलिनताये पैदा कर पानी खराब कर डालते है। यदि तालाब का पानी पीना हो तो नीचे लिखी बातो पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए —

(१) तालाब अच्छी जगह मे खुदवाना चाहिए और उसके आस-पास पारस्थली (Made soil) तथा गन्दे पानी का सचय न होना चाहिए। (२) तालाब के ढालू किनारे पर घास लगवानी चाहिए तथा इसके चारो ओर ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि तालाब तथा उसकी बन्ध भूमि (Catch water area) के सिवा दूसरे किसी स्थान का पानी उसके भीतर न आ सके। (३) उसके चारो ओर परकोटा चाहिए ताकि जानवर उसमे जाकर गन्दगी न कर सके। (४) तालाब के नजदीक पेड न होने चाहिए (५) उसमे छोटी-२ मछलिया होनी चाहिए जो मच्छरो की इल्लियो (Larvae) तथा अन्य सेन्द्रिय अशुद्धियो का नाश करें। (६) उसके घाट पर तथा पानी मे नहाना, कपडे धोना, बासन माजना, मलमूत्र त्याग करना, कूडा कर्कट फेंकना आदि कर्म न करने चाहिए। (७) उसमे काई, सिवार आदि जो समय-समय पर तैयार हो जाते है उनको निकलवा देना चाहिए (८) उसमे से पानी निकल जाने की स्वतन्त्र व्यवस्था करनी चाहिए।

(ग) भू-गर्भगतजल — यह एक आन्तरिक्ष जल का ही भाग है जो कि जमीन के छिद्रे (porous) भाग को लाघकर चट्टानो के अप्रवेश्यस्तर (Impervious layer) के ऊपर और नीचे तक पहुच कर निर्झर अथवा कूप की शकल मे पानी का निकास बन जाता है। भू-गर्भगत जल स्वाभाविक शुद्ध रहता है क्योकि अप्रवेश्यस्तर तक पहुचते-२ स्वय ही उसका विस्रवण हो जाता है। तथापि प्रा० द्विजारेय को तथा भूमिगत पदार्थों की राशि अधिक होने के कारण यह पानी अधिक कठिन रहता है।

(१) निर्झर (Spring) — निर्झर प्राय पहाडो के आस-पास की तराई, घाटियो, दरियो तथा समुद्र आदि के मध्य भूमि में पाये जाते है। ये दो प्रकार के होते हैं। एक भू-पृष्ठ निर्झर और दुसरा भू-गर्भ निर्झर। भू-पृष्ठ निर्झर (Land spring) उस पानी से बनते है जो कि पृथ्वी के अप्रवेश्य स्तर के ऊपर-ऊपर फैली हुई रेतीली अथवा ककडीलो तह मे सचित हुआ रहता है। फलत ये भूमिगत जल सचय मे निकलते है। ये गरमी के मौसम मे बन्द हो जाते है और बरसात मे फिर शुद्ध हो जाते है। भू-गर्भ निर्झर (Deep spring) का जल भू-गर्भ मे रहता है वह जोर लगाकर फूटने का प्रयत्न करता है इसी जोर के ये परिणाम है कि यह जमीन की खडिया, रेतीली, पत्थरवाली तहो से निकलते है। इनका पानी स्वच्छ और चमकीला होता है, और फूटने के समय मार्ग मे छन जाने के कारण इसमे मलिनता का भी डर नही होता। इसमे कठिनता होती है। ये प्राय स्थायी होते है।

इनके पानी की रक्षा करने के लिए इनके चारो ओर एक छोटी मुण्डेर बनवानी चाहिए जिससे भू-पृष्ठ का जल दूर से बहकर चला आवे। इनके आस-पास घास-पात न होना चाहिए, परन्तु थोडी दूर पर घास अवश्य होनी चाहिए ताकि पानी की रक्षा धूलि से हो सके। इनके पास जानवरो को न आने देना चाहिए तथा टट्टिया न बनवानी चाहिए।

(२) कूप — भूगर्भगत जल को प्राप्त करने के लिए पृथ्वी मे जो गड्ढा खोदा जाता है उसे कुआँ कहते है। कुआँ पक्का करने के लिए उसे बाँधने की आवश्यकता होती है। जब वह अल्पकाल के लिए काम मे लाया जाता है तब मामूली तौर पर लकडी से बाधते है। इसे 'कठकुइयाँ' कहते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से कुआ पक्का होना चाहिए।
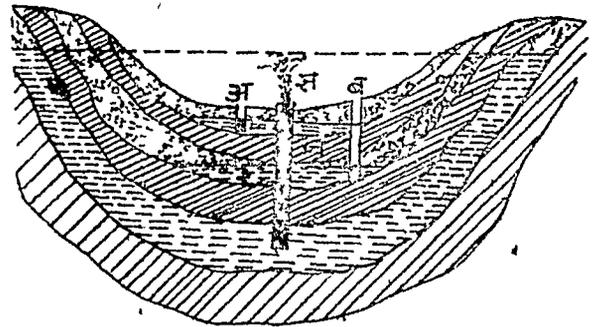
अ= उथला कुआँ, ब- गहरा कुआ स= सोमकुआ
न= अप्रवेश्य मिट्टी की पर्त, र= जल स्तर

गहरे एवं उथले कुयें

निर्माण भेद से कूप को इष्टिका कूप (Masonary well) या केवल कुआँ और नलिका कूप (Tube well) तथा प्रकार भेद से 'उथला' और 'गहरा' करके दो प्रकार के
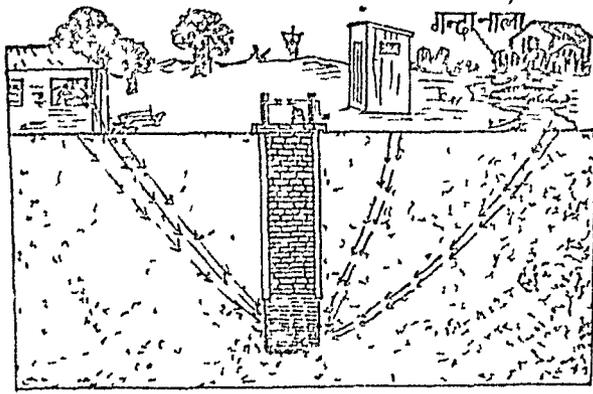
कुएँ मे विभिन्न स्रोतो द्वारा गन्दगी पहुँचना।

कूप कहे जाते है । सामान्यतया कूप की गहराई की चौगुनी दूरी से या इससे भी कुछ अधिक दूरी से कूप मे पानी आ सकता है। कुएँ के चारो ओर के जितने क्षेत्र से रिसकर पानी कुएँ मे आ सकता है वह कुएँ का प्रभाव क्षेत्र (Zone of influence) कहलाता है। इसकी आकृति शंकु (Cone) के समान होती है और शंकु का नुकीला भाग कुएँ की तली मे और चौडा भाग ऊपर रहता है। यदि किसी कुएँ की गहराई ५० फुट हो तो उसके चारो ओर २०० फुट दूरी मे कोई गन्दे पानी का नाला, पोखरा या सचय हो तो उससे कुएँ मे पानी आ सकता है। इसलिए गन्दे जल सचय कुएँ के प्रभाव क्षेत्र मे दूर ही रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त नदी का साक्षात् सम्बन्ध, कुएँ के नजदीक मुर्दा गाडने की भूमि या श्मशान, चूहो के विल, वृक्षो का कूप के नजदीक अस्तित्व, कुए के नजदीक की जमीन मे दरार आदि जल को दूषित कर देते है अत इन्हे भी दूर रखना चाहिए। इनके अलावा भी कुएँ की परीक्षा मे निम्नलिखित वातो का ध्यान रखना चाहिए—

१ जिस भूमि मे कुआ खोदना हो उस भूमि की प्रकृति उत्तम होनी चाहिए। पानी के गुणो का सबसे बडा आधार जमीन है। यदि कुएँ की जमीन खराब हो तो कुएँ का जल भी खराब हुआ करता है।

२ जहा तक हो सके कुआ मैदान मे और ऊँचे स्थान मे ही होना चाहिये ताकि उसमे सूरज की रोशनी पड सके और वर्षा का पानी उसमे जा सके।

३ कुएँ के नजदीक पेड न होने चाहिए। यदि हो तो तोड डालने चाहिए क्योकि पेडो के पत्ते सड़कर पानी को गन्दा कर डालते हैं, पेडो की जडे कुएँ मे जाकर उसकी दीवाल को विकलित करती है, जिससे गन्दा पानी कुए मे जाने की बहुत सम्भावना होती है, पेडो के ऊपर पक्षियो के बैठने से उनकी बीट पानी मे गिरा करती है और पेडो की छाया से कुएँ मे सूर्य की रोशनी अच्छी तरह से नही पडती है।

४ मनुष्य बस्ती से कुआ कम से कम २५० फुट दूरी पर होना चाहिए तथा उसकी गहराई के चौगुने पचगुने फासले में परनाला, मोरी, अस्तवल, पेशावखाना, पाखाना इत्यादि न होने चाहिए, क्योकि इनकी खराबिया कुएँ में जाने की सम्भावना रहती है।

५ कुआ गहरे प्रकार का होकर पक्का बधवाना चाहिए। इसके भीतर की दीवाल भूमिगत अप्रवेश्य स्तर तक सीमेंट की होनी चाहिए, ताकि अनुस्थली का जल (Subsoil water) उसमे न आ सके। कच्चे कुएँ की दरारो और गडढो मे कबूतर आदि घर बनाते है और कुए को गन्दा करते है।

६ कुए के पृष्ठ भाग के ऊपर चारो ओर २ फुट की ऊँचाई की चहार दीवारी या मुडेर बनवाना चाहिये, ताकि छीटे अन्दर न जा सके।

७ कुएँ के चारो ओर ५-६ फुट तक सीमेंट का चबूतरा बनवाना चाहिए और वहा का खराब पानी पक्की नाली द्वारा दूर छोड देना चाहिए।

८. कुएँ से पानी निकलवाने के लिए एक डोलची और डोर सदा के लिए रखना चाहिए और जिसको जल लेना हो वह अपने घडे या बालटी से पानी न निकालकर अपने घडे मे लेवे। यदि पम्प बैठाया जाय तो सबसे अच्छा है।

९. कुए के ऊपर टिन आदि का एक सछिद्र ढकना होना चाहिए जिससे उसमें धूल और पेडो की पत्तिया न जा सकें। जिस समय कुआँ उपयोग मे न हो तथा रात के समय ढक्कन ऊपर डाल देना चाहिए।

१० कुए के नजदीक स्नान करना, कपडे धोना,

बासन माजना इत्यादि कर्म उचित नही हैं। इससे गन्दे पानी के छीटे कुए मे जाकर तमाम पानी को दूषित कर देते है।

११ प्रति वर्ष गर्मी के अन्त में कुए का कीचड निकलवाकर उसकी मरम्मत और सफाई करवानी चाहिए।

दूषित जल और स्वास्थ्य

जीव रक्षा करने के लिए पानी आवश्यक होने पर भी यदि विशुद्धावस्था मे न मिले तो वह तरह तरह की बीमारियाँ पैदाकर जीवन की रक्षा करने के बजाय जीवन का अकाल नाश करने मे सहायभूत होता है। पानी मे विभिन्न प्रकार की अशुद्धिया रहती तथा उसके पीने से व्याधिया उत्पन्न होकर स्वास्थ्य को चौपट कर देती है। यहा इन सबका सक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है—

जल की अशुद्धियाँ[1]

विलीन (Dissolved)	अवलंबनस्थ (Suspended)
प्रा. द्विजारेय, प्राणवायु, उदजन शुल्वेय तिक्ताति, इत्यादि वायु, चूना, भ्राजातु अयस् इत्यादि खनिज और भूमिगत सेन्द्रिय पदार्थ	बालू, मिट्टी, अभ्रक आदि खनिज, काई, सीवार आदि वनस्पतिज, कीटाणु, तृणाणु कृमि के अण्डे इत्यादि प्राणिज

अशुद्धि जनित रोग

वनस्पतिज	खनिज	प्राणिज
मितली, वमन, प्रवाहिका, मरोड	प्रवाहिका, मलावरोध अग्नि की मन्दता	अतिसार आन्त्रिक विसूचिका, विविध कृमि रोग इत्यादि

(१) वनस्पतिज—यह अशुद्धि वनस्पतियो के सूखे पत्तो तथा अन्य पदार्थो के पानी मे सडने से उत्पन्न होती है। इससे पानी का रग बदलकर दुर्गन्ध आने लगती है। काई, सिवार इत्यादि भी अधिक मात्रा मे हो तो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती है। वनस्पति की अशुद्धता से दस्त, मरोड आदि विकार पैदा होते है।
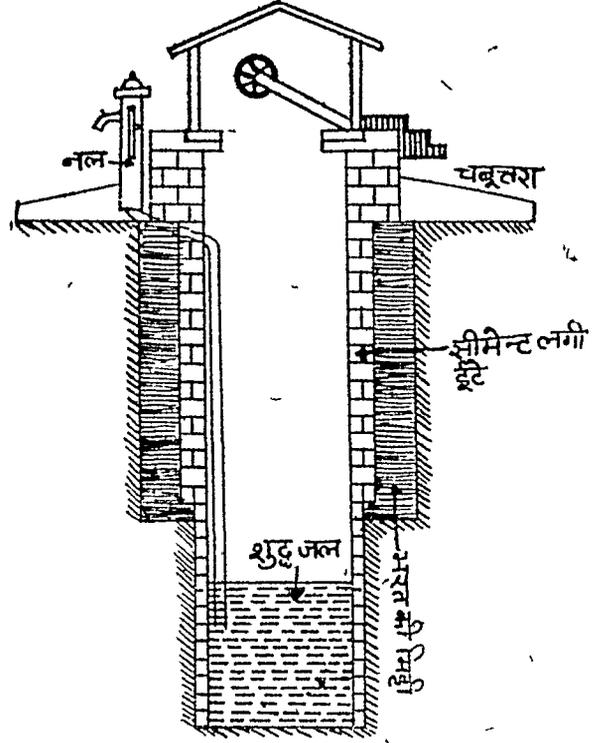
आदर्श कुआँ

(२) खनिज—जिन जिन स्थानो मे से पानी आता है या जिस स्थान मे कुआँ, तालाव इत्यादि खुदा होता है उस स्थान की प्रकृति पर यह अशुद्धता का असर भी भिन्न २ होता है। पार्थिव अशुद्धता से पानी के रङ्ग रूप मे विशेष फर्क नही होता तथापि उसकी रुचि मे फर्क पडता है। पानी मे यदि अयस् (Iron) का अश अधिक हो तो अग्निमाद्य और कब्ज, चूना और जसद हो तो सख्त कब्जियत तथा अभ्रक और भ्राजातु (Magnesium) हो तो प्रवाहिका रोग उत्पन्न होते है। कभी कभी गहरे कूपो के पानी मे तरस्विनी (Fluorine) होता है। इससे बच्चो के दाँतो का दुष्पोषण (Dystrophy) होकर उसके कवच पर दागी पड जाती है। पानी मे जम्बुकी (आयोडीन) की कमी या जीवाणुओ के पानी के द्वारा पेट मे प्रवेश करने से आन्त्र मे विष उत्पन्न होकर अवटुका (throid) ग्रन्थि की वृद्धि होती है और गलगण्ड जैसा रोग पैदा होता है। सीसे के नल मे से पानी आने से अथवा किसी तरह सीसे के पानी मे घुल जाने से सीसविष भी मनुष्यो को आक्रान्त कर देता है जिसके फलस्वरूप अजीर्ण, अग्निमाद्य, मूत्रावरोध, मुँह का जायका मीठा,

---

[1] विण्मूत्रतृणनीलेकाविषयुतं तप्तं घनं फेनिलम्।
बत ग्राह्यमसातव हि रुजलं दुर्गन्धि शैवालजम्॥
नानाजीवविमिश्रितं गुरुतरं पर्णौघयकाविलम्।
चन्द्रार्कांशु सुगोपितं मय पिबेन्वारि सदा दोषलम्॥
—हारीत सहिता

मसूढो पर नीली लकीर, आन्त्रशूल, रोगो की पेशियों मे ऐंठन, हाथ की प्रसारक पेशियो का घात होने से मणिभ्रंश, जोडो में दर्द, अश्मरी हृदय, वृक्क, आदि के उपद्रव, आखो मे रोशनी की कमी और अन्त मे अन्धता जैसे विकार पैदा हो जाते है।

(३) प्राणिज—यह सबसे महत्वपूर्ण तथा हानिकारक अशुद्धि है। यह बडे बड़े जानपदिक रोगो का उत्पादक है। यह अशुद्धि रोगी के मल मूत्र का पानी के साथ ससर्ग होने मे पैदा होती है। इसमे निम्नलिखित रोग होते है—

(क) विसूचिका (Cholera)—पानी से फैलने वाले रोगो मे यह प्रधान रोग है और इस रोग के फैलाव मे रोगी के मल और वमन मे दूषित पानी का विशेष भाग है। हैजे का वक्राणु (Vibrio) मनुष्य के शरीर मे अधिकतर जल के साथ ही जाता है।

(ख) आन्त्रिक ज्वर (Typhoid fever)—यह भी प्राय पानी द्वारा फैलता है। जो मनुष्य इस रोग से पीडित मनुष्य के मल-मूत्र से दूषित पानी पीता है वह इस रोग से पीडित होता है।

(ग) पलित मज्जा शोथ (Poliomyelitis)—इसको शैशवीय अगघात कहते हैं। इसके विषाणु रोगी के मल से निकलते हैं। ऐसे मल से दूषित जल रोग का सक्रमण करता है।

(घ) आन्त्र कृमि रोग (Entozoal diseases)—कृमि रोग से पीडित मनुष्य के पुरीष में कृमियो के असख्य अण्डे होते हैं। इनके सक्रमण से युक्त जल का पान करने से गण्डूपद कृमि (Round worm), सूत्र कृमि (Thread worm), अकुश कृमि (Hook worm), प्रतोद कृमि (Whip worm), स्नायुक कृमि (Guinea worm) और यकृत् कृमि (Distoma hepaticum) शरीर में प्रवेश करते हैं। इनके अलावा दूषित पानी से नेत्राभिष्यन्द, दाद, प्रवाहिका, अतिसार आदि भी पैदा हो जाते हैं।

जल विशुद्धिकरण के तरीके

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध है कि मनुष्य यदि दूषित जलजन्य रोगो से अपनी रक्षा करना चाहे तो उसे पानी विशुद्ध करके पीना चाहिए। पानी मे जो अवलम्बनस्थ और विलीन पदार्थ होते है, उनको पानी से अलग करना पानी के विशोधन का उद्देश्य होता है।

जल विशुद्धिकरण के साधन

नैसर्गिक	भौतिक	रसायनिक	यान्त्रिक
१ सूर्यरश्मियाँ	१ उबालना	१ निस्सारक	१ मन्दवालू निथारक
२. सचय	२ तिर्यक पातन	२ जीवाणु नाशक	
३ गुरुत्वाकर्षण	३ नीललोहितातीत रश्मियाँ	३ अधिचूषक	२ यान्त्रिक निथारक
४ प्रवाह इत्यादि			आदि

पानी का विशोधन नैसर्गिक और कृत्रिम दो प्रकार से होता है। निसर्ग मे वायुमण्डल की तरह कुछ नैसर्गिक साधनो से जल की शुद्धि होती रहती है। परन्तु इन पर पूर्णतया विश्वास नही किया जा सकता अत आवश्यकतानुसार कृत्रिम साधनो का भी प्रयोग करना पडता है।

(क) पानी की नैसर्गिक शुद्धि—यह शुद्धि नदी, तालाब या जहाँ पानी बहुत होता है वहाँ हो सकती हैं। इसमे निम्न साधन सहायभूत होते हैं—(१) पानी का बडा सचय—पानी बहुत होने से मैले की तीव्रता कम हो जाती है। (२) पानी का प्रवाह—इससे पानी में जो मैला आता है वह एक स्थान मे इकठ्ठा न होकर तमाम पानी में मिलता है तथा नीचे निकल जाता है। कहा भी है—बहता पानी निर्मल बधा गन्दा होता। (३) सूर्य की किरणें—सूर्य की नीललोहितातीत किरणो के द्वारा जलगत जीवाणुओ का नाश होता है। (४) काई सिवार इत्यादि जल वासी वनस्पतिया—ये प्राणवायु को पानी मे छोडकर मैले को जारित (भस्म) करती हैं। (५) मछलिया-कछुआ आदि जलवासी जीव ये मैले को खाते हैं। (६) जीवाणु—पानी में प्रत्युपजीवी, तृणाणु भक्षक, और वातपी तृणाणु होते है। ये क्रमश मृत सेन्द्रिय द्रव्यो, रोगोत्पादक जीवाणुओ का नाशकर सेन्द्रिय द्रव्यो को जारित करते हैं। (७) प्राणवायु - यह वातपी जीवाणुओ को को जारणकर्म में सहायता करता है। (८) गुरुत्वाकर्षण और अवसादन—इसमे जलासीत अवलम्बनस्थ पदार्थ नीचे तली में बैठ जाते हैं और जलस्थ जीवाणु भी साथ ही ले जाते हैं। (९) समय—अधिक समय तक सूर्य की किरणो तथा अवसादन से जल करीब करीब शुद्ध हो जाता है।

(ख) पानी की कृत्रिम शुद्धि—इसमे भौतिक, रासायनिक और यान्त्रिक विधियो द्वारा कृत्रिम तौर से पानी की शुद्धि की जाती है। यहा पर इनका सक्षेप मे वर्णन प्रस्तुत है—

(१) तिर्यक्पातन (Distillation)—तिर्यक्पातन करने से पानी का शोधन हो जाता है, तथापि व्यवहार मे बड़े पैमाने पर इसका उपयोग नही कर सकते। इसका विशेष उपयोग जहाजो पर किया जाता है। इस विधि का पानी रुचिकर नही होता, अत पीने के पहले इसको वातेरित (Areated करना पडता है। एदन और लाल समुद्रवर्ती नगरो मे कुओ का खारा पानी शुद्ध करने मे यह उपयोगी है।

(२) उत्क्वथन - घरेलू व्यवहार के लिये जल विशोधन की यह उत्तम और सुलभ विधि है। उबालने से पानी की अस्थायी कठिनता निकल जाती है, रोगोत्पादक जीवाणु मरते हैं, और पानी मे विलीन तिक्ताति (Ammonia) आदि वायु रूप पदार्थ निकल जाते हैं। विशोधन की विधियों मे उत्क्वथन (व्यापन्नस्याग्निक्वथनम्-सुश्रुत) संशयातीत श्रेष्ठ विधि है।

(३) निस्सारक (Precipitants)—इस विधि मे निस्सारक द्रव्यो से पानी मे निस्सार बनकर उसके साथ अवलम्बनस्थ द्रव्य और जीवाणु नीचे तली मे बैठ जाते हैं। इनका उपयोग जहाँ पर निस्सार पूर्णतया दूर करने का प्रबन्ध होता है वहाँ पर ही जलशुद्धि के लिये कर सकते हैं। निम्न द्रव्य इसके लिये काम मे लाये जाते हैं— १. चूना, २. फिटकरी, ३ अयस् अतिनिरेस (Iron perchloride) और निर्मली[१] का फल (Strychnos Potatorum) आदि निस्सारक द्रव्य।

(४) जीवाणु नाशक—दहातु अतिलोहकित (K Mn O_4), जिसे लाल दवा भी कहते हैं, तुत्थ (Copper sulphate) नीरजो (Cholorine) आदि से जल का शोधन होता है।

इनके अलावा प्रजारण (Ozonization), नील लोहितातीत रश्मियाँ ('Ultra-violet-rays), अधि चूषक

[१] फल कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादनम्।
न नामग्रहणादेव तस्यवारि प्रसादति ॥ —मनु

(Absorbents) जैसे लकडी का कोयला आदि का भी प्रयोग होता है। जल शोधन की कई विधियाँ हैं कुछ खर्चीली है, कुछ मे दोष है, कुछ जनसाधारण के उपयोग से बाहर हैं। अत. यहाँ सभी का वर्णन न देकर केवल एक घरेलू विधि का प्रयोग दे रहे है—
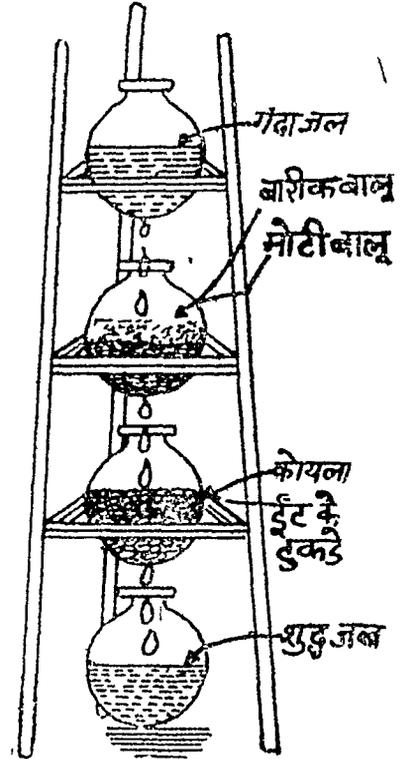
(५) तीन या चार घड़ा निथारक—पानी शुद्ध और ठण्डा करने के लिये इस प्रकार के निथारक का प्रचार भारतवर्ष मे विशेष है। इसमें तीन या चार घडे एक दूसरे के ऊपर घडोची पर रखे जाते है। ये घड़े प्राय मिट्टी के बने रहते है। सबसे ऊपर के घडे मे कपडे से
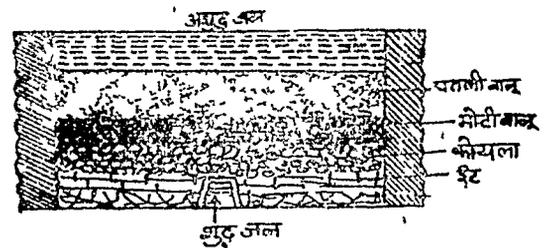
छना हुआ खराब पानी रखा जाता है। इस घडे की पेंदी मे एक छोटा सुराख रहता है, जिसमे रुई का फोया होता

शेषांश पृष्ठ ९८ पर
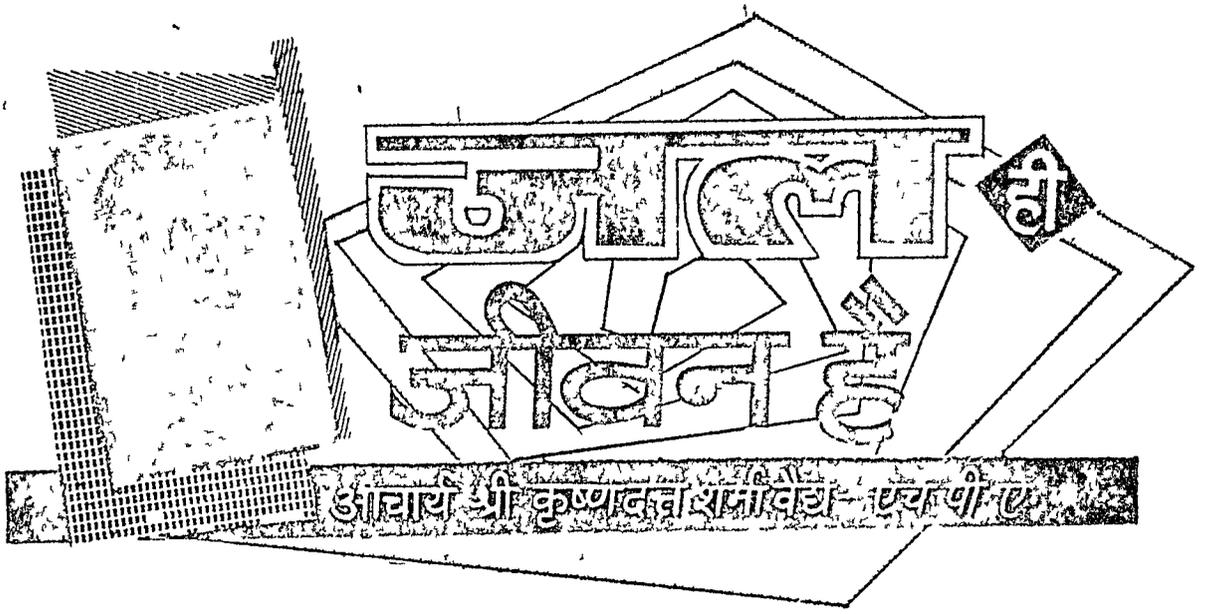
आचार्य श्री कृष्णदत्त शर्मा वैद्य से 'धन्वन्तरि' के पाठक सुपरिचित है। कई वर्षो से 'धन्वन्तरि' मे स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी आप ही के द्वारा लिखी जाती है। आप आयुर्वेद शास्त्र के सुयोग्य विद्वान है। साथ ही सफल चिकित्सा कला विशारद तो है ही। आपने जामनगर से स्नातकोत्तर उपाधि १९६२ मे प्राप्त की। कौमारभृत्य पर आपने विशेष अध्ययन किया है। आपके लेख सचित्र आयुर्वेद, आयुर्वेद विकास, स्वास्थ्य, सुधानिधि आदि मासिक पत्रो मे भी प्रकाशित होते रहते है।

इस समय आप आयुर्वेद विभाग राजस्थान मे वरिष्ठ चिकित्सक (वैद्य I ग्रेड) पद पर कार्य कर रहे है। आप आयुर्वेद विभागीय चिकित्सक सघ राजस्थान के सभापति, आयु० पोस्ट ग्रेजुएट्स एसो० राज० के महासचिव तथा आयुर्वेद मार्तण्ड' मासिक के मानद सम्पादक है। आपकी 'आयुर्वेदिक पेटेण्ट मेडीसिन' पुस्तक प्रकाशनाधीन है।

प्रस्तुत 'जल ही जीवन है' शीर्षक लेख व्यस्तता मे लिखने पर भी 'गागर मे सागर' भरने की कहावत को चरितार्थ करता है।

—विशेष सम्पादक

सभी द्रव्य पचभूतमय हैं। आयुर्वेदिक निदान एव चिकित्सा का मूलभूत आधार त्रिदोष है। त्रिदोष (वात, पित्त, कफ) को पचमहाभूत की दृष्टि से समझने की कोशिश करते है तो हमे पता चलता है कि शरीर मे पृथ्वी तथा जल मुख्यत कफ के रूप मे, अग्नि मुख्यत पित्त के रूप मे और आकाश तथा वायु मुख्यत वायु के रूप मे रहकर अपना-अपना कार्य सम्पादन करते हैं। शरीर की उत्पत्ति और पुष्टि मे प्रत्येक महाभूत का विशिष्ट कर्म होता है। वायु महाभूत शरीर मे दोष, धातु, मल और अग-प्रत्यग का विभाग करता है—उन्हे विभिन्न आकृतिया प्रदान करता है। अग्निपाक अर्थात् एक वस्तु को अन्य वस्तु के रूप मे परिणत करने का कार्य करता है। जल शरीर मे क्लेद (आर्द्रता) उत्पन्न करता है, एव इस क्लेद द्वारा वायु और अग्नि के प्रभाव से होने वाले शोषण से शरीर का त्राण भी करता है। पृथ्वी इसमे काठिन्य उत्पन्न करती है-अर्थात् शरीरावयवो के निर्माण के लिये उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करती है। आकाश (अवकाश) खाली स्थान प्रदान करता है। वायु तथा अग्नि की क्रिया

से बनने वाले स्रोतो और आशयो के विस्तार के लिये उन्हे सर्वत्र अवकाश देकर शरीर की वृद्धि मे सहायक होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि—

महाभूत	दोष
पृथ्वी, जल	कफ रूप मे
अग्नि	पित्त रूप मे
आकाश, वायु	वात रूप मे

विशेष रूप मे अपने-अपने कर्मो को करते है। अब जल, स्वास्थ्य का प्रमुख साधन है। इस विषय पर सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना प्रासंगिक होगा।

शरीर के वात, पित्त, कफ तीन स्तम्भ है। इन मे भी जल का प्रतिनिधि कफ स्वय स्तम्भ रूप मे है। —इसी प्रकार आहार, स्वप्न, ब्रह्मचार्य भी शरीर के तीन उपस्तम्भ है। इनमे भी आहार के साथ जलका अन्तर्भाव हो जाता है। हमारे आयुर्वेद के निर्मानाओ ने भी तीन स्तम्भो तथा तीन उपस्तम्भो मे जल की गणना की है। शरीर रूपी भवन इन ही तीन स्तम्भो पर खडा है। ये तीन स्तम्भ भी पाञ्चभौतिक हैं। पाञ्चभौतिक शब्द के साथ-साथ कई 'पञ्चतत्व' का प्रयाग भी करते है।

जल प्राणरक्षा के लिए पञ्चभूतो मे चौथा पञ्चभूत है। जल का बोध रस से होता है। आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी का बोध, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध रूप मे होता है। श्वास लेने के लिए वायु जितना आवश्यक है, जीवन के लिए उतना ही आवश्यक जल भी है।

तृप्त करना, प्राणियो को जीवित रखना, ताप की निवृति करना, सब प्रकार की स्वच्छता प्रदान करना, श्रम, क्लान्ति, मूर्च्छा, पिपासा, तन्द्रा, वमन, विबन्ध और निद्रा को दूर करना, शरीर को बल देना, हृदय को प्रफुल्लित रखना, शरीर के रोगो को दूर करना छह प्रकार के मधुरादि रसो का कारण बनना तथा प्राणियो के लिए सर्वदा अमृत तुल्य सिद्ध होना आदि जल के गुण एव कर्म हैं। चरक सहिता के यज्ज पुरुषीय अध्याय सूत्र २५/४० मे जल की विशेषता एक वाक्य मे इस प्रकार प्रतिपादित की है—

उदकमाप्यायन कराणाम् श्रेष्ठम् (उदकमाश्वास कराणाम्)

जल प्राणियो का प्राण है। जल प्राणियो के लिए जीवन है। प्राणियो के लिए अमृततुल्य है। यथा—

"जीविनां जीवनम् जीवोजगत् सर्वन्तुतन्मयम्"

अर्थात् जल प्राणियो का प्राण है। सम्पूर्ण ससार जलमय है। मतलब यह है कि जल वर्षण से हमे खाद्य पदार्थ मिलते है। जल मे सम्पूर्ण रोग नाश करने की शक्ति विद्यमान है तथा आश्रय और ससर्ग भेद से जल मे जीवन दान के कितने ही अन्य गुण भी जल मे पाये जाते हे। जिनसे उत्तम स्वास्थ्य एव दीर्घायु की उपलब्धि होती है। वेदो मे जल का एक नाम 'सोम' भी है। और वहा इस सोम को ही बल वर्द्धन, द्युम्न बर्द्धन, शौर्य बर्द्धन तथा मधुमत्तम आदि कहा है। वेदो मे स्थान-स्थानपर यह बताया गया है कि शरीर के सवर्द्धन और रक्षण आदि मे सोम अर्थात् जल के स्वाभाविक साम्य कार्य है। वेदो मे जल द्वारा रोग निवृत्ति के वर्णन मे कई ऋचाएं उपलब्ध होती हैं। जिनका भावार्थ इस प्रकार है—

(क) जल अत्यन्त आरोग्यप्रद एव बलदायक है।

(ख) भगवान आदेश करते है कि जल अभिसिंचन करो। जल से उपसिंचन करो। जल सर्वप्रधान औषधि है। इसके सेवन से जीवन सुखमय बनता है और शरीर की अग्नि भी आरोग्यवर्द्धक होती है।

(ग) अप्स्वन्तर भूतमप्सु भेषजम्—जल मे अमृत है, जल मे औषधि है, जल ही जीवन है अर्थात् जल मे आरोग्यदायक गुण है।

(घ) 'अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तविश्वानी भेषजा सोमने'—सृष्टि रचियता परमात्मा ने हमसे कहा है कि जल मे सब औषधिया है।

(ङ) जल मे हमारी चिकित्सा हो और रोगो से शरीर का बचाव होकर हम दीर्घायु बने।

(च) आप इन्द्रा भेषजीरापो अमीवचातनी, आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वायुञ्जन्तु क्षेत्रियात्।' जल नि सदेह औषधि है। जल रोगनाशक है। जल सब रोगो की दवा है। वह जल गुण क्षेत्रीय रोगो से मुक्त करे।

जल शरीर का पोषक है। शरीर की क्षतिपूर्ति भी जल ही करता है। वेदो मे भी जल को भेषज, अमृत, जीवन कहा गया है। इस सदर्भ मे कई विचारको का मत है कि 'जल चिकित्सा' नयी खोज है तथा इसकी खोज जर्मनी के डा० लूई कूने ने की है, यह धारणा गलत है। क्योकि भारत मे बहुत समय पूर्व से ही चिकित्साके रूप मे जल का व्यवहार होता रहा है। इसके प्रमाण मे आयुर्वेद के दो उदाहरण यहा प्रस्तुत कर रहा हू—

१ 'पित्त ज्वर के रोगी को चित्त लिटाकर उसके पेडू पर ताम्र या कास्य का एक गहरा वर्तन रखे (कटोरा या गहरी
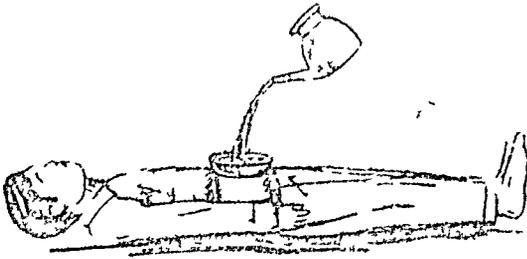
कटोरी) और ऊपर से ठण्डे पानी की मोटी धार गिरावे। यह विधि पित्तज्वर को तुरन्त शान्त करती है। (पित्त के निवारण में 'यन्त्रवारि' या फुहारे के स्नान का जिक्र है)'—

उत्तान सुप्तस्य गम्भीरताम्र,
कांस्यादि-पात्रे निहतेच नाभौ।
शीताम्बु-धारा बहुला पानी,
निहन्तिदाह त्वरित ज्वरश्च ॥

२ जल बार बार परन्तु थोडा थोडा करके पीना चाहिये। कारण, जल ज्यादा पी लिया जाय तो अन्न का परिपाक नही होता है। जल थोडा भी पियें तो पाक नहीं होता है। अत अग्नि की दीप्ति के लिए उपर्युक्त प्रकार से (जल बार-बार थोडा-थोड़ा पीना चाहिए) जल का सेवन करना ठीक है। आधुनिको ने प्रत्यक्ष किया है कि थोडे-थोडे काल के पीछे, योग्य प्रमाण मे जल लिया जाय तो लाला, याकृतपित्त, आमाशय रस, आन्त्ररस तथा अग्नाशय रस की वृद्धि होती है। आयुर्वेदज्ञो का 'वह्नि वर्धन' भी यही हे। परन्तु जल अधिक प्रमाण मे लिया जाय तो पाचन विकृत होता है तथा अतिसार होता हे—

अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्न,
निरम्बुपानान्न स पाकमेति।
तस्मान्नरो वह्नि विवर्धनाय,
मुहुर्मुहुर्वारि पिबेद् भूरि ॥

जल मे 'योगवाही' गुण भी है। जल किसी वस्तु के सम्पर्क मे आने पर उसी के गुण के अनुरूप अपना गुण बना लेता है। वैद्यो डाक्टरो मे औषधि के सेवन के लिए रोगी को अनुपान के रूप मे जल ही अधिक बताया जाता है। जल किसी भी अन्य वस्तु की अपेक्षा अधिक गर्मी या ठडक रोके रह सकता है। जल ही के कारण चिकित्सा विधियो मे काम आसानी से होता है। जल अन्य चीजो को घुलाकर बहा सकता है। जिसकी सहायता से इन्जेक्शन, सभी प्रकार के स्नान, एनिमा, डूस आदि के लिए उपयुक्त होता है। शरीर मे ताप सम्बन्धी तीन यन्त्र हैं— पहले को उष्ण-उत्पादक, दूसरे को उष्ण प्रसारक और तीसरे को उष्ण वाहक कहते हैं। इन्ही के द्वारा शरीर मे गर्मी का उत्पादन, प्रसारण और वहिष्करण होता है।

आयुर्वेद मे उष पान की भी बहुत ही प्रशसा की गयी है। गुण बताये गये हैं जो नि सन्देह उचित हैं। आयुर्वेद मे निरन्न जलपान (ब्राह्ममुहूर्त मे उठकर पानी पीना उष पान कहलाता है) को वय स्थापन कहा गया है। जो द्रव्य बुढापे को रोके, यौवन को स्थिर रखे तथा शरीर को नीरोग रखता हुआ आयु को अकाल नष्ट होने से बचाये उसे वय स्थापन कहते है।

समप्रकृति मे शीतजल, पित्तप्रकृति मे दूध, कफप्रकृति मे मधु, वातप्रकृति मे घृत तथा मिश्र प्रकृतियो मे उन द्रव्यो मे दो तीन या चार का यथायोग्य सयोग करके प्रभात मे सेवन किया जाय तो आयु स्थिर रहता है।

—आचार्य श्री कृष्णदत्त शर्मा, आयुर्वेदाचार्य, H P A
महासचिव—आयुर्वेदिक स्नातकोत्तर, सम्मेलन
राजस्थान गणेशगढ़ (श्री गगानगर) राज०

(पृष्ठ ९५ का शेषांश)

है और जिसमें से होकर पानी दूसरे घड़े में टपकता है। इस दूसरे घड़े में सबसे नीचे तिहाई ककड, उसके ऊपर तिहाई लकडी का कोयला और उसके ऊपर महीन रेती का स्तर रहता है। जो पानी ऊपर के घडे मे धीरे-धीरे टपकता है पहिले रेत में होकर छनता है, जिसमें अवलम्बनस्थ सूक्ष्मांश रेत मे रह जाते है। उसके बाद कोयले की तह पर पहुचता है। कोयले मे खराब वायु को सोखने की शक्ति है। इसलिये पानी में घुले हुए वायु कोयले मे सोख लिए जाते है। इसी प्रकार से दूसरे घडे में पानी शुद्ध होकर तीसरे मे आता है। कभी-कभी तीन के स्थान पर चार घडे होते हैं, तब दूसरे घडे मे आधा कोयला होता हे, तीसरे मे ककड तथा महीन रेत होती हे और चौथे में निथरा हुआ शुद्ध जल आ जाता है। यदि इस प्रकार के शुद्ध जल को पुन उबाल लिया जाय तो वह श्रेष्ठ शुद्ध हो जाता है।

सार्वजनिक प्रतरण जलावगाह

आजकल बडे शहरो में तैराकी के लिये सार्वजनिक स्थान (Public swimming baths) बनाये गये है। इनमें रुग्णो के स्नान करने से विविध व्याधिया स्वस्थ व्यक्तियो को लग सकती हैं। अत ऐसे स्थानो पर तैराको का परीक्षण कर ही उन्हे प्रवेश देना चाहिये। विशेषकर त्वचा व श्वसन सस्थान के रोगियो को अन्दर न जाने देना चाहिये। मल मूत्र से विरत, धारा मे साबुन से स्नान कर पैरो को धोकर तथा स्वच्छ वस्त्रो को पहन कर ही तैरना स्वास्थ्यप्रद है।

आपो अस्मान मातरः

श्री वैद्य ओम प्रकाश शर्मा

'चिकित्सितात् पुण्यतमम् न किंचिदपि, के समर्थक कविराज श्री ओमप्रकाश जी शर्मा बी आई एम. एस उपाधि प्राप्त, प्रभारी चिकित्साधिकारी राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय करणवास का वरदहस्त धन्वन्तरि पर सदैव से रहा है। आपके लेख खोजपूर्ण, ज्ञानवर्धक, पठनीय एव मननीय होते हे। वेदो मे आयुर्वेद के खोज-पूर्ण अध्ययन की आपकी विशेष रुचि है। चिकित्सा समय के अतिरिक्त आप अपना अमूल्य समय वेदो के अध्ययन मे लगाकर आयुर्वेद की सेवा कर रहे है। प्रस्तुत 'आपो अस्मान मातर' शीर्षक लेख भी आपके वेदो के अध्ययन का फल है। उत्तम स्वास्थ्य के लिए जल के विषय मे बहुत बडी उपलब्धि वेदो मे बहुत समय पहले से ही प्राप्त होती है।

आशा है कि प्रस्तुत लेख पाठको का ज्ञानवर्धन करेगा।

—विशेष सम्पादक

विश्व मे जीवन के लिए अनिवार्य जल है तभी तो यजुर्वेद के चौथे अध्याय मे हमारे मलो विकारो रोगो का शमन एव शुद्धिकरण के कारण जल को हमारी माता कहा है।

जल का महत्व हमारे पौराणिक आख्यानो मे है कि जब प्रलय होती है तब जल ही जल होता है। ऋगवेद ऐतरेयोपनिषद मे (से ही उपरोक्त आख्यायिकाये ली सी प्रतीत होती हैं, उसमे) लिखा है। **स इस्मांल्लोकान सृजत अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भ परेण दिव द्यौ प्रतिष्ठा-न्तरिक्षं मरीचय. पृथिवी मरोया अधस्तात्ता आप** अर्थात् सर्व शक्तिमान भगवान ने (आगे वर्णित लोको को रचा) अम्मस मरीची, मर और आप रचे। इनमे अम्भस वाष्प है, जो ऊपर आकाश मे हैं, मरीच अन्तरिक्ष मे है। पृथ्वी पर मर नामक जल है, इसी से जगत वना है।

दूसरे शब्दो मे पूर्ण महतत्व का यह अग भी पूर्ण है, सारे जगत मे जल व्याप्त है, भले ही वह अन्तरिक्ष मे हो या जमीन पर अथवा उसके नीचे। हमारे प्रयासो, कर्मों से उसकी स्थिति मे परिवर्तन होता रहता हे। यथा अनावृष्टि मे सव ऊपर, अतिवृष्टि मे सव नीचे। तभी तो यजुर्वेद की शाखा शतपथ ब्राह्मण (काण्व शाखा) मे अर्थात् वृहदाण्यक उपनिषद के ५ वें अध्याय १ ब्राह्मण की प्रथम कण्डिका मे **'ओम पूर्णमद पूर्णमिद पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते'** जगत पूर्ण वताया है।

जल का महत्व

जीवन जीवना जीवो जगत्सर्वन्तु तन्मयम्।
वातोऽयन्त निषेधेन कदापिद्वारिवारयेत्॥

—भा० प्र०

तृष्णा गरीयसी घोरा सद्यः प्राण विनाशनी।
तस्माद्देय तृषातपि पानीयं प्राण धारणम्॥-हा० स०

इसी प्रकार महर्षि सुश्रुत ने भी प्यासे मनुष्य को जल न मिलने स मोह और मोह से मृत्यु होना लिखा है अत जल मनुष्य को अवश्य मिलना चाहिए—

तृषितो मोह मायाति मोहात्प्राणान विमुञ्चति ।
अतः सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद वारि वर्जयेत् ॥
-सु०सं०

जल प्राप्ति के साधन

जल के गुण जल प्राप्ति के साधनो पर निर्भर है । वेद ३ प्रकार के जलागार का विवरण देते है–

त्रीन समुद्रान समसृपत स्वर्गानया पतिर्वृषभ इष्ट का नाम । यजु १३-३१

सुख देने वाले जल ऊपर अन्तरिक्ष तथा धौ एव पृथ्वी पर है । समुद्र स्त्रोत्यानामधिपति अर्थात् जल का स्वामी समुद्र है । यही समुद्र पृथ्वी पर न हो तो जल के स्रोत झरने, कुए, तालाब आदि सब सूख जाये । ग्रीष्म ऋतु मे पृथ्वी का समुद्र कम होने से जल कष्ट से मिलता है । इसी प्रकार अन्तरिक्ष मे समुद्र न हो तो वृष्टि न हो, उसी प्रकार द्यूलोक मे समुद्र न हो तो काल चक्र एव जीवन सामर्थ्य न हो, इसे ही आयुर्वेद दो खण्डो मे विभाजित करता है–**'पानीय मुनिभिः प्रोक्तम् दिव्य भौम इतिद्विधा'** अर्थात् पृथ्वी मे पहिला और पृथ्वी से ऊपर दूसरा, इसमे अन्तरिक्ष एव द्युलोक दोनो समुद्रो का समावेश है ।

जलों के गुण

१ दिव्य–यह सम्पूर्ण दोषनाशक एव सर्व गुण सम्पन्न है । दिव्य जल ४ प्रकार का है–

(क) धारा जल–यह दो प्रकार का है-(१) गाग जल और (२) सामुद्र जल ।

(१) गांग जल-शाल्यन्न येन ससिक्त भवेद क्लेदि वर्णवत (चरक) –जिस जल मे चावल भिगोकर रखने पर ज्यो के त्यो वर्ण के रहते है, वह गाग जल है ।

(२) सामुद्रजल–" सामुद्रमन्यथा तत्तु सक्षारलवण शुक्र दृष्टिलावहम , सामुद्र जल निकृष्ट है क्योकि यह क्षार युक्त खारा, दुर्गन्धित होता है ।

गाग जल-आश्विन मे प्राय वर्षा का जल आकाश गगा से आता है ।

धारा जल के गुण

धार नीरं त्रिदोषघ्न निर्देश्य रस लघु ।
सौम्य रसायनं बल्य तर्पण ह्लादि जीवनम् ॥
पाचनतमति कृम्मूर्च्छा तन्द्रा दाह श्रमक्लमान ।
तृष्णां हरति चास्यर्थ विशेषात्प्रावृषि स्थितम् ॥

(ख)करका जल—

करकाजं जलं रूक्ष विशदं गुरू च स्थिरम् ।
दारूणं शीतल सान्द्रम् पित्त हृत्कफवात कृत ॥

ओला जल रूखा, विशद, भारी, बधा हुआ, ठण्डा पित्त नाशक तथा कफ एव वात वर्धक होता है ।

(ग) तौषार जल–अपथ्या प्राणिना । प्राय वृक्षादि के लिये हितकर एव प्राणियो के लिए अहितकर होता है ।

(घ) हैम जल – हिमन्तु शीतल दारुण । अर्थात् हैम जल ठण्डा और दारुण होने से श्रेष्ठ नही है । इन चारो मे प्रथम सर्वश्रेष्ठ है किन्तु यज्ञ से सस्कारित वृष्टि कराने पर उपरोक्त सभी जल गाग जल के रूप मे स्रवित होते है–

२. भौम जल-- भौम जल के स्थान भेद से निम्न तीन वर्ग किये है—

(क) जागल जल– रूखा, खारा, हल्का, पित्तनाशक

(ख) आनूप जल– अभिष्यन्दी, मधुर, स्निग्ध, कफ-कारक ।

(ग) साधारण जल– मधुर, अग्निदीपक, शीतल, हल्का त्रिदोष शामक, तृषान्दाह हर्ता, रुचिकारक है ।

उपरोक्त भौम जल के उद्भव भेद से गुण—

(१) नदी– नदी का जल भी स्थान भेद से विभिन्न गुण युक्त होता है । हिमालय से उद्गम वाली गगा यमुना आदि का पानी श्रेष्ठ एव शेष का निकृष्ट पानी होता है । श्रेष्ठ पानी स्वच्छ, रूखा अग्निसदीपक, हल्का कफ पित्तहारक, होता है । (२) औद्भिद्—पित्तनाशक, आल्हादक, शीतल, मधुर, हल्का, बलदाता है । (३) सरोवर- बलदायक, तृषानाशक, मधुर, हल्का, कषैला, है । (४) झरना – रुचिकारक, कफनाशक, हल्का, मधुर, वातकारक है । (५) तालाब–मधुर, कसैला वातकारक है । (६) बावडी– खारा, वातकफहर्ता, पित्तकर्ता, मधुर, है । (७) कुआ –त्रिदोषघ्न, हल्का, हितकारी, मधुर है। स्नान भेद से खारा,कफ वातनाशक, अग्निदीपक,पित्तकारक भी होताहै । (८) चौञ्च जल-अग्निकारक, रूक्ष, कफ नाशक,हल्का तथा मधुर है । (९) अंशुदक-पाचक एव स्वच्छक है बलकारक, निर्दोष, मेधावी अमृत है ।

उपरोक्त जलो (दोनो वर्गो) के ऋतुभेद से गुण—

(क) हेमन्त-शिशिर मे सरोवर तथा तडाग का,

(ख) बसन्त-ग्रीष्म मे कुआ, बावडी एव झरने का,

(ग) वर्षा मे औदभिद्, आन्तरिक्ष, कुओ का एव,

(घ) शरद मे नदी और अशूदक का जल पीना श्रेष्ठ है।

उपरोक्त गुणो के आधार पर प्रति माह निम्न जल श्रेष्ठ महर्षि सुश्रुत ने बताये है —चैत्र में चौञ्ज, बैसाख मे झरना, ज्येष्ठ मे औद्‌भिद,आषाढ मे कुआ, श्रावण मे आतरिक्ष,भादो मे कुआ, क्वार मे चौञ्च, कार्तिक अगहन मे सब जल श्रेष्ठ है। पौष मे झील, माघ मे तालाब, फागुन में कुआ का जल पीना चाहिये। पीने वाले-पेय जल का उपरोक्त वर्णन है। पृथ्वी पर अन्य कार्य स्नान, सींचन आदि कर्मों मे भी जल का उपयोग होता है। अत प्रचुर परिमाण मे मलिन एव अशुद्ध जल का शोधन होना आवश्यक है।

आपः शान्ति (वैज्ञानिक जल)

प्राकृतिक शुद्ध निर्मल जल के स्थान पर अपना वैज्ञानिक गङ्गाजल (अमृत जल) पेय के रूप में दे रहे हैं। इसमे 'सोडियम क्लोरीन' मिलाकर यह पेय वैज्ञानिको ने बताया है। अभी तक उक्त गङ्गा जल विदेशो मे ही था किन्तु यज्ञो के शोधने के स्थान पर नकल की आदत से भारत के बडे बडे शहर एव नगरनिगम, नगर पालिकाओ तथा भारत के स्वास्थ्य विभाग की कृपा से हमे भी यह अमृत जल प्राप्त हो रहा है। अमृत जय निर्माता सोडियम क्लोरीन का परिचय केमिकल डिक्सनरी मे इस प्रकार है—

सोडियम क्लोरीन—गुण—विषाक्त। उपयोग—जल स्वच्छव। खबरदार यह विष है। चूहे एव वनस्पति सहारक है। खाने मे घातक, श्वास से मृत्यु, धूल से श्वास मे जाकर विषाक्त लक्षण उत्पादक है।

इसका जल मे ३०-४० का मिश्रण किया जाता है जल के साथ जाकर शरीर मे धीरे-२ मन्दविष (स्लो पायजन) बनता है। पानी के कीटाणु नष्ट करने के साथ परिणाम मे पीने वाले को भी नष्ट कर देता है विदेशो के परीक्षोपरान्त परिणाम—स्वीडन, स्विस आयर लैंड तथा अमरीका के टैक्सास राज्य मे स्टेट मेडिकल ऐसोसिऐसन ने सोडियम क्लोरीन मिलाना अस्वीकार कर दिया। जिसके परिणामस्वरूप अमरीका के सबसे बडे शहर न्यूयार्क मे इसका मिलाना बन्द कर दिया। साथ ही अमरीका मे ओ-हासो, सिनसिनारी, सिएटल, वाशिंगटन जैसे बडे शहरो मे भी यह मिलाना (कानूनन बन्द) अवैधानिक है।

इस अमृत (गङ्गा) जल के निरन्तर प्रयोग से शरीर कठोर होकर गठिया जैसे कष्टप्रद रोग से ग्रसित रहता है। विशेष विवरण पानी और आग उगलने वाले अजगर मे देखा जा सकता है, जिसमे डोरियस ग्रन्ट ने सावधान किया था, इसी प्रकार जीवन का मकड जाल भी एव लियोलार्ड विक्रेता के कैनी कीक्ट लैटर नेचरल फूड एव फ़ार्मिग जून ५७ भी इसी प्रकार के तथ्यो से युक्त है।

—आयुर्वेद सन्देश ११ मई ६६ से

पाक्षिक आयुर्वेद सन्देश के उपरोक्त अश से यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिकता के नाम पर इस जल की शोधन विधि से मृत्यु को आमन्त्रण देना है। अत प्राचीन विधि से ही शोधन श्रेयस्कर है। तभी वेद के शब्दो मे 'महीना पयोऽसि' सार्थक होगा।

जलाभाव चिन्ता

जब पृथ्वी स्वय प्यासी हो, नदी-नाले, ताल, तलैया ही नही कुए आदि भी सूख गए हो, तब जल के अभाव से अन्न, औषधि, वनस्पति, घास आदि प्राप्त ही नही हो सकते। भूखे, प्राणी, प्यासी जनता त्राहि-त्राहि कर उठती है, तब पुरुषार्थ से भी पूर्ण सफलता सदिग्ध है और उस पर भी यदि ३-४ वर्ष वर्षा न हो तब कैसे जीवन बचे यही समाधान आवश्यक है।

जल समस्या का समाधान

'वर्ष वर्धमासि' वेद द्वारा हल सम्भव है। अर्थात् जल प्राप्ति के लिए वर्षा कराना आवश्यक है।

अन्नाद भवति भूतानि पर्जन्यादन्न सभव।
यज्ञाद भवति पर्जन्य यज्ञ कर्म समुद्भव॥ गीता

यज्ञ द्वारा ही वर्षा हो सकती है और जब चाहो तब क्योकि वेद मे कहा है—'निकामे निकामे न पर्जन्यो वर्षतु' यज्ञ से वायु, सूर्य की शक्ति बढती है और तीनो की बढी सम्मलित शक्ति ही वर्षा कराती है, तब

प्यासी धरती और सूखे कुए नल आदि भी हर्षित होंगे
जमीन से १० किलोमीटर ऊपर जल वाष्प रूप में है। इसे यज्ञ द्वारा ही भूमि पर (वर्षनुते भी तथा वृष्टिं दिन परिश्रव) उतारते हैं। अतः समस्या का समाधान है कि यज्ञ[1] से वर्षा करायें जिससे जल प्राप्ति के सभी स्थान जल से परिपूर्ण हो, मधुर हो।

जल विशुद्धिकरण

'पय पृथिव्या पय औषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधा पयस्वती। प्रदिश सन्तु मह्यम् (यजु १८-३६)

भूमि के ऊपर नदी, तालाब, झरना आदि भीतर नल कुआ आदि में कुछ मे जल शुद्ध और कुछ मे जल अशुद्ध रहता है। इनकी वृद्धि एव शोधन भी यज्ञ से ही सम्भव है। जल भूमि पर है। पेय जल औषधियो में भी है, यथा—नारियल, तरबूज, टमाटर, सन्तरा, आम आदि औषधियो में निहित वह पेय (जल) जीवन प्रदाता है। औषधियों के जल को मधुर करने का साधन भी यज्ञ ही है।

महर्षि दयानन्द ने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' में यज्ञ को अनिवार्य बताते हुए लिखा है मनुष्य शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियो को दुःख कराता है उतना ही पाप उस मनुष्य का होता है। अत अग्नि में उतना ही सुगन्ध वायु एव जल में फैलाना चाहिए।

यज्ञ द्वारा वर्षा ही स्वास्थ्य संवर्धनार्थ जल प्राप्ति का एकमात्र उपाय है और यज्ञ से ही पृथ्वी एव अन्तरिक्ष के जलो का शोधन कर पाना सम्भव है। अन्त में यही प्रार्थना है कि विश्व हिरिप प्रवहन्ति' मनाग के दोष, मल दूर करने वाले ये जल हमारे अदृश्य पापो को हमसे दूर करें। आपोमा तस्मादेनस · ·· मुञ्चतु (यजु ६-७)

—वैद्य श्री ओमप्रकाश शर्मा बी आई एम एस.
प्रभारी—राज० आयु० औष०,
कर्णवास (बुलन्दशहर) उ.प्र.

[1] वर्षा ऋतु मे जब पानी नही गिरता तब ग्रामवासी गाँव से बाहर भोजन वगैरह बनाते है, यज्ञ करते है। तब भोजन करते-करते भी वर्षा आरम्भ हो जाती है, ऐसा आज भी प्रत्यक्ष सिद्ध देखने मे आता है। यज्ञ वर्षा एव जल शोधन का श्रेष्ठ साधन है।

कौन रोगी नहीं होता ?

नित्यं हिताहार बिहार सेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावान् आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः॥

जो नित्य हितकारी आहार-विहार का सेवन करता है, प्रत्येक कार्य करने से पूर्व उसके भावी परिणामो पर भली प्रकार विचार कर लेता है, विषयो मे आसक्त नही है, दानशील है, दुःख सुख मे या ऊँची-नीची प्रत्येक स्थिति मे समान रहता है। सत्य परायण है, क्षमता होते हुए भी क्षमाशील है एवं जो शास्त्रज्ञ एव सदाचारी विद्वानो का सेवन करता है—वह कभी भी रोगी नही होता।

—श्री गोकुलराम शर्मा 'योगेश' बी ए, आचार्य (आयुर्वेद)
योगेश धर्मार्थ औषधालय, नावदी (नारनौल) हरियाणा

स्वास्थ्य का तृतीय साधन * आहार

अन्न सामान्य वर्णन

शरीर का तीसरा उपस्तम्भ आहार है। इस ससार मे आहार की जितनी कदर की जाती है उतनी शायद ही दूसरी किसी वस्तु की की जाती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि प्राणिमात्र को अन्न प्राप्त करने के लिए कष्ट उठाना पड़ता है, मेहनत-मजदूरी करनी पडती है, देश या विदेश ढूढने पडते है, तिस पर भी कई बार पेट भर अन्न मिलना मुश्किल हो जाता है। परमेश्वर की यह परम कृपा समझनी चाहिए कि हवा और पानी के लिए प्राणीमात्र को कष्ट उठाना तथा धन खर्चना नही पडता है। इन तीनो के लिए यदि मनुष्य को कष्ट उठाना पड़े तो इस ससार मे रहना भी मुश्किल हो जायगा।

अन्न के कार्य

प्राण प्राणभृतामन्नमन्न लोकोऽभिधावति।
वर्णप्रसादः सौस्वर्यं जीवित प्रतिभा सुखम् ॥
तुष्टिः पुष्टिर्बल मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥चरक॥

आहार प्राणिन सद्यो बलकृद देहधारक।
आयुस्तेज. समुत्साहस्मृत्योजोऽग्निविवर्धन. ॥ सुश्रुत ॥

चरक सुश्रुत के उपरोक्त वाक्यो से विदित होता है कि अन्न के मुख्यतया ४ कार्य होते है। जैसे--

(क) क्षति पूरण--हमारा शरीर जबसे इस ससार मे अवतीर्ण होता है तबसे मरते दम तक कुछ न कुछ कार्य करता रहता है। जब हम गाढ निद्रा मे होते है तब हमारे शरीर को कुछ आराम मिलता है। तथापि शरीर के समस्त अङ्गो को सम्पूर्ण आराम जब तक मनुष्य जीवित है तब तक नही मिल सकता। मृत्यु ही एकमात्र पूर्ण आराम है। गाढ़ निद्रा मे भी हृदय से सकोच विकास का, फेफडो से श्वासोच्छ्वास का, आंतो से पाचन- परिसर्पण (Peristalsis) का काम होता रहता है। सक्षेप मे शरीर मे प्रतिक्षण कुछ न कुछ कार्य, मनुष्य गाढ निद्रा मे क्यो न हो, होते रहते हैं। अङ्ग प्रत्यगो की इन विविध क्रियाओ के कारण शरीर के असख्य परमाणु [आधुनिक परिभाषा मे कोशाएँ--cells, शरीरावयवास्तु
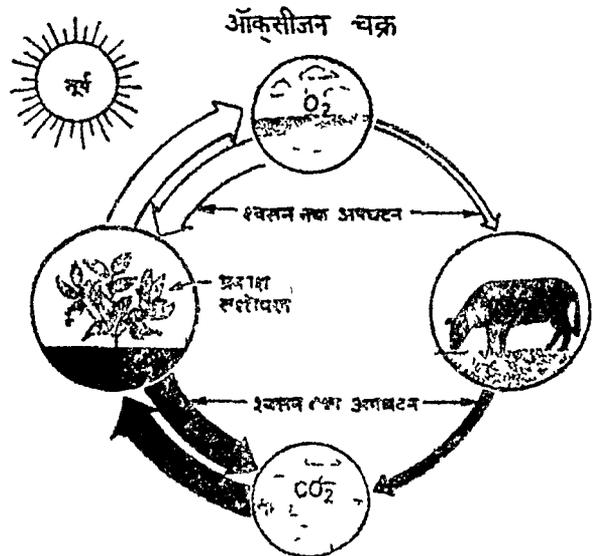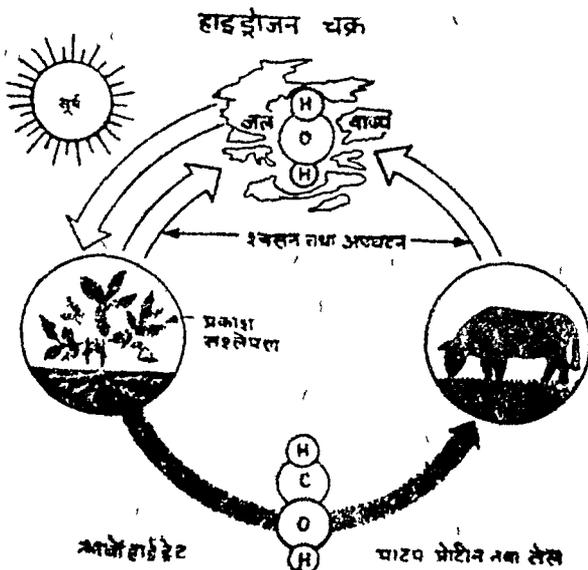
प्रकृति का विचित्र सतुलन हाइड्रोजन चक्र और ऑक्सीजन चक्र
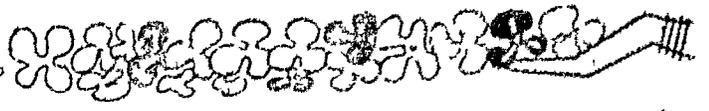
परमाणुभेदेननापरिसंख्येया भवन्त्यतिबहुत्वादति सौक्ष्म्या-दतीन्द्रियत्वाच्च ॥ चरक ॥ प्रतिक्षण शीर्यते इति शरीरम्) प्रतिक्षण नष्ट होते रहते है और मल, मूत्र, थूक स्वेद इत्यादि के साथ शरीर के बाहर उत्सर्गित होते रहते है। कई शास्त्रज्ञो ने यह अनुमान किया है कि हमारा शरीर प्रत्येक सात वर्ष मे नया बनता है। इसका अर्थ यह है कि सात वर्ष के पहले हमारे शरीर मे जो परमाणु थे वे आज नही हैं और आज हमारे शरीर मे जो परमाणु हैं वे सात वर्ष पश्चात् नही पाये जायेंगे।

हमारे शरीर मे होने वाली इस ह्रास की यदि पूर्ति न होती तो अल्पकाल मे हमारे शरीर दुबले-पतले और क्षीण होकर प्राय धारण करने योग्य न रहते। परन्तु स्वस्थावस्था मे उचित मात्रा मे अन्न मिलने पर शरीर क्षीण होने के बदले हृष्ट-पुष्ट होकर मनुष्य अल्पायु होने के बदले दीर्घायु होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हमारे शरीरो मे जो क्षतिया होती रहती हैं उनकी पूर्ति अन्न से हुआ करती है। अन्न को छोडकर अन्य उपस्तम्भो से वे शरीर के लिए कितने ही आवश्यक क्यो न हो, क्षतिपूर्ति नही हो सकती। अन्न से ही शरीर की नष्ट हुई कोषाओ के स्थान मे नयी कोषाएँ बनती हैं और शरीर ज्यो का त्यो रहता है। क्षति की पूर्ति अन्न का प्रथम कार्य है।

(ख) धातु बृंहण—जन्म के समय हमारे शरीर का तौल ३-४ किलो तक होता है, लम्बाई १८-२२ इन्च तक होती है और शरीर के दूसरे नाप-तौल इन दोनो के अनुसार छोटे रहते है। तब से जवानी तक हमारा शरीर चन्द्रकला के समान बढता ही जाता है और जवानी मे उसका तौल ७५-१०० किलो तक होता है। लम्बाई ६० से ७० इन्च तक हो जाती है और शरीर के दूसरे नाप तौल इन दोनो के अनुसार बढे हुए होते है। अन्य प्राणियों मे भी जन्म से जवानी तक इसी प्रकार की शरीर वृद्धि हुआ करती है। बाल्य और यौवन के शरीर संघठन म ये जो महदन्तर होता है इसका एक मात्र कारण अन्न है। हसना, रोना, खेलना, कूदना, पाचन, प्रश्वसन, रक्तपरिभ्रमण इत्यादि अनेक ऐच्छिक क्रियाओ के कारण शरीर मे होने वाली क्षति की पूर्ति करने के अतिरिक्त अन्न शरीर की सम्पूर्ण धातुओ की तथा अग प्रत्यगो की वृद्धि करके शरीर में यह भिन्नतर पैदा करता है। अन्न का यह दूसरा कार्य है।

(ग) उष्णता जनन—मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों के शरीरों मे सदैव एक प्रकार की ज्वलन क्रिया होती रहती है जो उनके शरीरों को गरम रखती है। मनुष्यों के शरीर का ताप देश, काल, ऋतु, प्रकृति, वय भेद होते हुए भी प्राय ९८.४ फै पर स्थिर रहता है। यह ताप जीवन का एक प्रधान लक्षण है शरीर के भीतर उत्पन्न होने वाली उष्णता जो शरीर को बराबर गरम रखती है अन्न ही से उत्पन्न होती है। अन्न का यह तीसरा कार्य है।

(घ) ऊर्जोत्पादन—मनुष्यों का शरीर एक जीवित यन्त्र है जिसकी तुलना ऊष्म यन्त्र (Heat engine) के साथ कर सकते है। जैसे यन्त्र मे कोयला जलने से उष्णता उत्पन्न होती है और उस उष्णता का कुछ भाग ऊर्जा (Energy) मे परिवर्तित होता है वैसे ही मनुष्यो के शरीरो मे अन्न के जलने (जारण Oxidation) से उष्णता उत्पन्न होती है और उसका कुछ भाग ऊर्जा (शक्ति) मे परिवर्तित हो जाता है। इन बातो से मनुष्य ऊष्म यन्त्र से कही अच्छा है, क्योकि ऊष्मयन्त्र में जितना कोयला जलता है उसका २२.७-३३.७% भाग उष्णता मे परिवर्तित होता है और जितनी उष्णता उत्पन्न होती है उसका १/८ भाग ऊर्जा मे परिवर्तित होता है। उसकी तुलना मे मनुष्य जितना अन्न सेवन करता है उससे अधिक से अधिक ४५% उष्णता उत्पन्न होती है और जो उष्णता उत्पन्न होती है उसका १/५ भाग ऊर्जा मे परिवर्तित होता है। इसका अर्थ यह है कि मनुष्य शरीर ऊष्मयन्त्र की अपेक्षा दुगुना कार्यक्षम है। शरीर मे जो यह शक्ति उत्पन्न होती है वह अन्न से ही उत्पन्न होती है। अन्न का यह चौथा कार्य है।

अन्न का वर्गीकरण

अन्न के द्वारा शरीर मे जो विविध कार्य हैं उनके अनुसार अन्न द्रव्यो के तीन वर्ग किये जाते हैं—

(१) ऊर्जाप्रद (Energy producing)—प्रांगोदीय (Carbohydrates) और स्नेह (Fats) मुख्य ऊर्जाप्रद हैं। प्रोभूजिन (Proteins) गौण ऊर्जाप्रद है।

(२) धातुवर्धक (Body building)—इस वर्ग में

प्रोभूजिन मुख्य है तथा प्रा।ोदीय, स्नेह, गौण धातु-वर्धक है।

शरीर रक्षक (Protective) खनिज (Minerals) और जीवतिक्तिया (Vitamins) मुख्य शरीर रक्षक है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होगा कि जो खाद्य-द्रव्य सेवन करने पर उपर्युक्त चतुर्विध कार्यों से एक या अनेक कार्यों को सुसपन्न कर सकता वही हमारे अन्न का सघटक हो सकता है और वही अन्न कहा जा सकता है। मनुष्य के शरीर के विविध अङ्ग प्रत्यग तथा धातूप-धातु अन्न के विविध द्रव्यो से उत्पन्न होते हैं। इसलिए अन्न के विविध द्रव्यो मे वे सघटक होने चाहिए जो शरीर मे हाने है। जिन अन्न द्रव्यो मे शरीरगत सघटक पूर्णत वा अशत नही होगे उन्हे वस्तुत. अन्न कहना ही अनुचित है। अतएव अन्न वर्गीकरण मे बताये अन्न के सघटक-प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, चिकनाई (स्नेह), विटामिन, खाद्य लवण, और जल के बारे मे आवश्यक जानकारी, इनकी बनावट, कार्य आदि के बारे में विचार करना युक्तिसगत होगा।

(१) प्रोटीन (Proteins)

शारीरिक वृद्धि-विकास तथा क्षतिपूर्ति के लिये आहार मे प्रोटीन बहुत आवश्यक होती है। जिनके शरीर मे प्रोटीन की कमी होती है वे प्राय. कमजोर बने रहते हैं। कमजोर अवस्था के कारण केवल जवानी ही नही बल्कि उमसे मिलने वाला सौंदर्य, लावण्य, उत्साह, स्फूर्ति तथा कार्य सलग्नता भी विदा हो जाती है। यदि प्रोटीन के सम्बन्ध मे उचित जानकारी करले तो भविष्य मे इस प्रकार की भूल न हो और हमारी भावी सतान सुन्दर, सतेज, सशक्त तथा सौन्दर्यपूर्ण हो। आवश्यकता से अधिक प्रोटीन लेने पर सडान पैदा होकर रक्त दूषित हो जाता है और वायु और पसीने मे बदबू आने लगती है।

प्रोटीन का प्रभाव क्षेत्र -प्रोटीन द्वारा शरीर को नाइट्रोजन, सल्फर, फास्फोरस हाइड्रोजन, ओषजन और कार्बन आदि आवश्यक तत्व मिलने के साथ ही शरीर के महत्वपूर्ण अङ्ग स्नायु, पेशी, ग्रन्थियो आदि की रचना विकास, क्षतिपूर्ति तथा सचालन भी होता है।

प्रोटीन के अभाव मे थकान, कमजोरी, वृद्धि, विकास का रुकना, स्नायुविक दुर्बलता, क्षतिपूर्ति का न होना, गर्भावस्था मे माता तथा भ्रूण के तन्तु का कमजोर होना, माँ के दूध का कम होना, तन्तुओ का ठीक ठीक पोषण न होने पर शरीर का समय से पूर्व ही जवाब देना आदि होता है।

अधिक प्रोटीन—जिस प्रकार कम प्रोटीन मिलने से शिकायत पैदा होती है। प्रोटीन से उत्पन्न रोग दूर करने के लिये सम्पूर्ण शरीर-शोधन की आवश्यकता होती है। अधिक प्रोटीन से यकृत और गुर्दा खराब हो जाते है। गर्भावस्था मे रक्तचाप हो जाता है। धमनियो एव शिराओ मे मल सचय होने से रक्त सचालन क्रिया मे जोर पडता है। इनका प्रभाव हृदय पर यह होता है कि वह भी कमजोर हो जाता है और कभी रक्त नलिका फट जाने से पक्षाघात हो जाता है। जोडो मे मूत्राम्ल इकठ्ठा होने पर गठिया एव वात रोग हो जाता है।

प्रोटीन के तितिक्त अम्ल मे बदलने के बाद बचे हुए यूरिया को बाहर निकालने का काम गुर्दे करते है पर अधिक प्रोटीन लेने पर वे समय से पहिले ही खराब हो जाते है। जब ये अवयव निष्क्रिय हो जाते है तो वही कार्य त्वचा को करना पडता है। त्वचा पर इसके अतिरिक्त काम का बहुत बुरा प्रभाव पडता है। भोजन शास्त्री यकृत, गुर्दा एव त्वचा की खराबी मे प्रोटीन बन्द कर देते है।

प्रोटीन की बनावट—यह नेत्रजन, ओषजन, उद्जन,

कार्बन, गन्धक और फासफोरस के सयोग से बनता है। यह पचकर बारीक दानों की शक्ल मे शरीर की रचना मे बुनियाद का काम करता है। इसके दानो को ही तिनिक्त अम्ल कहा जाता है। यो तो एमिनो एमिड की सख्या ५० से भी अधिक है पर शारीरिक विकास तथा क्षतिपूर्ति के कार्य मे आने वाले १८ है जिनके नाम इस प्रकार हैं—

ग्लाईमिन, एलानाइन, वैलाइन, ल्युमिन, प्रोलाइन, हाइड्रोआक्सीप्रोलाइन, फेनीलेलेनाईन, ग्लूटेमिक एसिड, हाइड्रोआक्सीग्लूटेमिक एसिड, एस्प्रेटिक एसिड, सेराइन, टायरोसीन, सिक्टाइन, हिरटडीन, आर्गिनिन, लीसिन, ट्रोइप्टोपेन, अगोनियाँ।

अनेक पदार्थ ऐसे भी है जिनमे प्राणियो के लिए आवश्यक प्रोटीन का अभाव होता है। अभाव वाले खाद्यो को अपूर्ण कहते है। जिनमे आवश्यक प्रोटीन होता है उन्हे हम पूर्ण कहते है।

वनस्पति वर्ग के खाद्यो मे भी बहुत से पूर्ण प्रोटीन होते हैं। अनेक काष्ठज मेवे तथा सोयावीन का प्रोटीन शत प्रतिशत ततुओ के बनावट तथा क्षति पूर्ति के काम मे आता है। इस प्रकार गुण के अनुसार प्रोटीन को चार भागो मे बाटा जा सकता है—

१ दूध तथा दूध से बने पदार्थ—दही, खोवा, पनीर आदि।

२ काष्ठज मेवे—बादाम, पिस्ता, अखरोट, चिलगोजा, नारियल, चिरौंजी आदि।

३ दाल—अरहर, मसूर, उरद, मूग आदि। लेकिन इन सबमे सोयावीन प्रथम श्रेणी के प्रोटीन मे आता है।

वैज्ञानिको ने अनुसन्धान करके बताया है कि शारीरिक वृद्धि-विकास के लिये भोजन मे लीसिन एमिनो एमिड का होना आवश्यक है। यह निम्नाकित खाद्यो से इस प्रकार प्रकार प्राप्त किया जा सकता है—

१ लीसीन (गाय एव माता के दूध) मे	७ ६१%
२ गेहू के चिपचिपे भाग मे	१ ६२%
३ ज्वार	२ ६३%
४ बादाम	० ७२%
५. पाट के बीज मे	१ ६५%
६ सोयावीन	४ ६८%

प्रकृति के अनुसार ही हमारे लिये उपयोगी प्रोटीन-युक्त खाद्य की रचना की है। जीव विज्ञान के अनुसार बच्चों की बाढ़ जिन तत्त्वों (दूध के प्रोटीन) से होती है उनमे लीसिन पर्याप्त मात्रा मे पाई जाती है।

निरामिष लोगों को प्रोटीन की मात्रा उपयुक्त बनाये रखने के लिए उपर्युक्त खाद्यो मे से अपने अनुकूल कोई न कोई खाद्य अवश्य लेना चाहिए। अन्यथा अभाव मे कमजोर होने का भय रहता है। [illegible] इन्स्टीट्यूट के सचालक ने बच्चो के भोजन मे एक पाव [illegible] दूध देकर देखा तो केवल चार सप्ताह मे बच्चो का वजन २-२ तथा ३-३ पौण्ड बढ़ गया।

अनपचा प्रोटीन—प्रत्येक प्रोटीन मे बारीक कण होते हैं और वे अनपचे रहने पर विष का काम करते हैं, पर पच जाने पर उनका विषैलापन दूर हो जाता है।

प्रोटीन का उपयोग—हमारे आहार के प्रोटीन का ५० प्रतिशत से भी अधिक भाग बढ़ने वाले नवतन्तुओ के निर्माण कार्य मे लगता है और प्रौढ़ता प्राप्त करने के बाद प्रोटीन का सब भाग तन्तुओ के पोषण के काम मे आता है। अत. बचपन मे अधिक और बाद मे कम प्रोटीन की आवश्यकता होती है।

कुछ वर्ष पूर्व जापानियो के विकास रुक जाने के कारण की खोज की गई थी। उससे वहा के अन्वेषक इस नतीजे पर पहुचे कि उनके भोजन मे केवल ५८ ग्राम ही प्रोटीन रहता था जो उनके लिये अपर्याप्त था।

भोजन मे नित्य कितना प्रोटीन आवश्यक है उस पर विभिन्न भोजन शास्त्रियो एव वैज्ञानिको के मत इस प्रकार हैं—

सीवेनने २८ ग्राम, हर्चीफीन्ड ने ३७/१/२ ग्राम, जर्मन शास्त्री वेटने ११८ ग्राम, भारत वर्ष के आहार शास्त्री मैक्किमनने ७२ ग्राम, विटेंडन अनुसन्धानशाला वालो ने प्रति पौंड वजन पर १/३ ग्राम अथवा १/३/४ कैलोरी डाक्टर शेरमैन ने प्रतिपौंड वजन पर १ कैलोरी और कितनो ने तो इससे भी कम बताया है। इस पर अनेको मत हैं।

आयु के अनुसार प्रोटीन—छोटे बच्चो को शरीर के प्रतिपौंड २ ग्राम, प्रौढ को ५ ग्राम प्रोटीन लेनी चाहिये। इस प्रकार साधारणत १५० पौंड वजन के व्यक्ति को ३०-७५ ग्राम और १२० पांड वाले को ६०-६५ ग्राम तक

प्रोटीन दिया जा सकता है। श्रम एव आयु के अनुसार इसकी मात्रा घटानी वढानी चाहिये।

प्रोटीन के प्रकार—

नित्य प्रति के भोजन को दो भागो मे बाटा जा सकता है—

१ वह प्रोटीन जो एमिनोएसिड में बदलने के बाद रक्त द्वारा तन्तुओ मे इसलिये पहुँचाया जाता है कि उनमे जो क्षय-प्रक्षय हुआ हो उसकी पूर्ति करें।

२ प्रोटीन का वह अतिरिक्त भाग जो तन्तुओ के पोपण के काम मे नही आता साधारण रूप से।

गुर्दे की निष्कासन शक्ति— अधिक प्रोटीन के आहार मे ३१-३७ ग्राम पूर्ण मासाहारी मे १०० ग्राम, प्रोटीन रहित आहार मे ६ ग्राम, चिटेण्डन के मतानुसार १-२-३ औंस तक मल विसर्जन करना पडता है। इससे प्रत्यक्ष है कि मासाहारी के गुर्दे को कम प्रोटीनयुक्त आहारवालो की अपेक्षा २-५ गुना तक अधिक काम करना पडता है। गुर्दा खराब होने पर प्रोटीनरहित आहार पर रहकर निश्चय ही लाभ उठाया जा सकता है।

काला अथवा गहरा भूरा पाखाना अधिक प्रोटीन लेने के कारण ही हो सकता है और गन्दा, तथा बदबूदार पेशाब भी उसी कारण से होता है।

प्रोटीन और कीटाणु— डा० टिबिल का कहना है कि अन्न प्रणाली के कीटाणु नित्य ६०-७० ग्राम प्रोटीन तोडते एव विभिन्न दूषित पदार्थों को विष मे बदलते हैं और उससे उत्पन्न गन्दगी बाहर निकालते हैं। अत नित्य के आहार मे इससे अधिक प्रोटीन लेकर शरीर को विषाक्त नहीं बनाना चाहिये। ३० ७० ग्राम प्रोटीन से अधिक लेना खतरे से खाली नही है।

अमेरिका के प्रसिद्ध एलोपैथ डा. जे. एच. केलाग, जो बाद मे प्राकृतिक चिकित्सक एव आहार-शास्त्री बन गये, ने अपने चिकित्सालय के रोगियो को अधिक एव कम-प्रोटीन युक्त खाद्य पर रखकर देखा कि—

नाम	अधिक प्रोटीन युक्त	कम प्रोटीन युक्त	अतिरिक्त%
यूरिया	२६.८००	११ ७५	१५ ५
यूरिक एसिड	० ३७०	.३२३	१४

ऊपर की तालिका से प्रत्यक्ष है कि अधिक प्रोटीन लेने पर मल विसर्जन करने वाले अवयवो को कितना अधिक कार्य करना पडता है।

पूर्ण प्रोटीन— प्रत्येक वनस्पति अपने अन्दर अनुकूल प्रोटीन उत्पन्न करता है पर प्राणियो मे यह नही है। मानव शरीर मे आधे से कम एमिनो एसिड काम आते हैं। अत जिस पदार्थ द्वारा हमारे लिये आवश्यक प्रोटीन मिले वही पूर्ण प्रोटीन है-जैसे काष्ठज मेवे, नारियल तथा बादाम और द्विदल मे सोयाबीन को पूर्ण प्रोटीन बताया है।

उत्तम तो यह है कि हमारे नित्य के आहार का प्रधान खाद्य गेहूँ, चावल, जौ, बाजरा, ज्वार हो क्योकि इसमे उत्तम प्रकार का प्रोटीन पाया जाता है। डा० शेरमैन ने भी बताया है कि अन्य अन्न कण के साथ २ छटाक दूध या ४ छटाक मठा या १/२-१ औस पनीर से भी काम चल जाता है। साधारण तौर पर आवश्यकतानुसार २-३ पाव दूध लेने मे शरीर के लिये पूर्ण मात्रा मे आवश्यक प्रोटीन मिल जाता है।

दूध के अभाव मे— काष्ठज मेवे, अडा, मास एव सोयाबीन से काम लिया जा सकता है। निम्नाकित खाद्य का प्रोटीन ४ औस दूध के प्रोटीन के बराबर होता है —

नाम	औंस	केलारी
बादाम	० ७	१३४
अखरोट	१.३	१२०
सोयाबीन	१/३	४१

वैज्ञानिको ने अनेको प्रयोग करके सिद्ध किया है कि कम प्रोटीनयुक्त आहार मे यदि उचित जाति का प्रोटीन हो, तो उससे रोग प्रतिरोधक शक्ति और साथ ही आयु भी बढती है। अनेक शारीरिक एव मानसिक रोगो से भी मुक्ति मिलती है। पर स्मरण रहे कि भोजन मे प्रोटीन का अधिक नहीं पर्याप्त मात्रा मे ही होना आवश्यक है।

प्रोटीन से उत्पन्न यूरिया जब बाहर नही निकल पाती तो आतो मे पहिले सडान पैदा करके धीरे-धीरे जीर्ण रोग का रूप धारण कर लेती है। अत हमे उतना ही प्रोटीन लेना चाहिये जो शरीर के काम आ जाये। मास के प्रोटीन से सडान तेजी से वढती है।

(२) कार्बोहाइड्रेट

यह तो बताया ही जा चुका है कि कार्बोहाइड्रेट से

हमे शक्ति तथा गरमी प्राप्त होती है। उष्णाश के दृष्टि-कोण से हमारे भोजन मे भी यह २-३ भाग पाया जाता है।

कार्बोहाइड्रेट के दो अग माने गये हैं—

१. श्वेतसार

२. शर्करा

प्रत्येक श्वेतसार पूर्णरूप से पचने के बाद शर्करा मे परिणित हो जाता है और मधुजन (ग्लाईकोजिन) बनकर मासपेशियो मे जमा रहता है।

अभाव—आलस्य, निष्क्रियता एव उत्साहहीनता रहती है।

अधिकता—यह श्वासनली, आमाशय, आतो, हृदय तथा गर्भाशय पर श्लेष्मा के रूप मे इकट्ठा होकर विभिन्न प्रकार के रोगो को जन्म देता है।

किसी प्रदेश मे गेहूं, किसी मे चावल, किसी मे मकई, किसी मे ज्वार, बाजरा तथा जौ आदि प्रधान खाद्य के रूप मे इस्तेमाल किये जाते है। आलू के श्वेतसारीय मूल्य को आक कर इसका भी उपयोग तेजी से बढ रहा है।

अपने कार्य सम्पादन के कारण प्रत्येक अवयव—हृदय, फेफडा, पेशी अथवा कोई भी अङ्ग क्यो न हो शक्ति का ह्रास होता ही है और उस शक्ति की पूर्ति के लिये हमे गरमी की आवश्यकता पडती है। यह हमे जब उन अवयवो को पूरी शक्ति नही मिलती तब ये शिथिल पड जाते हैं और फलस्वरूप हृदयगति मन्द पड जाती है, कार्य के प्रति मन पेशिया किसी चीज से स्पर्श करते भय खाती हैं।

भारतवर्ष की गरीब जनता महुआ का इस्तेमाल करती है। जाडे मे काष्ठज मेवे के साथ सूखे मेवे, किशमिश, खजूर, मुनक्का एव गुड आदि मीठी चीजो के खाने का चलन है।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि जीवन-आनन्द, कार्यक्षमता एवं स्वास्थ्य की दृष्टि मे गरमी का बडा महत्व है जिससे श्वेतसार प्राप्त किया जा सकता है। श्वेतसार का उपयोग केवल गरमी के लिए ही नही होता। गरमी के लिये उसका जो अश काम मे आता है उसके बाद बचा हुआ अश वसा मे बदलकर त्वचा के नीचे इकट्ठा रहता है। यह सचित श्वेतसार अभाव के समय काम में आता है।

मनुष्य श्वेतसार, हरीसब्जी, फल एव सूखे तथा काष्ठज मेवो पर अपना सुन्दर स्वास्थ्य कायम रख सकता है। वैज्ञानिको ने प्रयोग करके देखा है कि ६ मास तक केवल रोटी, आलू तथा हरी सब्जियो पर रहने से एक पहलवान के स्वास्थ्य मे तनिक भी अन्तर नही पडा। इन्हे पीसकर दूध के साथ बच्चो को दिया जाये तो उससे उस विटामिन की पूर्ति होती है जिसका माता की अपेक्षा पशु दूध मे सर्वथा अभाव रहता है।

श्वेतसार के तत्व श्वेतसार सब प्रकार के अन्नकण तथा कुछ फलो और कन्दो मे पाया जाने वाला एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ है।

श्वेतसार मे लगभग कार्बन ६, हाइड्रोजन १०, और आक्सीजन ५ के अनुपात मे पाया जाता है। पचने के पहिले द्राक्षशर्करा बनता है और अन्त मे पाचन क्रिया द्वारा मधुजन (ग्लाईकोजिन) बनकर शरीर के काम आता है।

प्रत्येक पौधे, फल एव अन्नकण का श्वेतसार विविध प्रकार का होता है और उसमे साइट्रिक एसिड, मैलिक एसिड, तथा टारटेरिक एसिड पाया जाता है। ये अम्ल भोजन पचाने मे सहायक होते है।

फल—श्वेतसार जब पककर शर्करा मे बदल जाता

है तभी ये अम्ल उपयोगी भी सिद्ध होते हैं वरना कच्ची अवस्था मे खाने पर ये अम्ल अपान वायु उत्पन्न कर सकते हैं।

श्वेतसार खाद्य का वर्गीकरण—श्वेतसार का प्रधान साधन हुआ अन्नकण और मीठे फल। इन्हे वैज्ञानिको ने पाचन, क्षार तथा अम्ल के अनुसार निम्नांकित भागो मे बाँटा है—

१ जो अम्लमय हो तथा आसानी से पच जाये और क्षारमय भी हो।

२ जो अम्लमय हो तथा आसानी से पच जाय।

३. जिसके पचने मे अधिक समय तो लगता हो, परन्तु साथ ही अम्लमय भी हो।

यह लगभग सभी प्रकार के अन्नकण गेहूँ, ज्वार बाजरा आदि मे पाया जाता है। इन अन्नो से चोकर अलग कर देने पर तो वे लगभग शत प्रतिशत अम्ल हो जाते हैं। शेष तत्व क्षारपाचक प्राकृतिक लवण तथा फुजला आदि नष्ट हो जाते हैं।

श्वेतसार कच्चा भी पच सकता है पर पचने के लिये उसके कण का टूटना अति आवश्यक है ताकि श्वेतसार की थैली फट जाये और साधारण (लार) थूक उस पर ठीक-ठीक काम कर सके। इसके लिए खूब चबा-चबा कर खाने की आवश्यकता है।

जलवायु, आयु तथा श्रम के अनुसार—विभिन्न मात्रा मे आवश्यकता होती है। अधिक श्रम करने वाले को अपेक्षाकृत अधिक श्वेतसार की आवश्यकता होती है। बच्चो और बुड्ढो की अपेक्षा नौजवान को अधिक आवश्यकता होती है। इसी तरह गरम जलवायु एव ग्रीष्म ऋतु मे कम और ठण्डे जलवायु तथा शरद ऋतु मे अधिक श्वेतसार की आवश्यकता होती है।

कम श्वेतसार कम होने से शरीर मे शक्ति एव गरमी की कमी का अनुभव होता है। काम करने मे उत्साहहीनता, थकान तथा शरीर मे दुर्बलता आती है।

अधिक श्वेतसार—उपयोग करने पर जब उसकी पाचन क्रिया ठीक नही हो पाती और शरीर उसका उपयोग नही कर पाता तब आतो मे सडान होकर रक्त के अनेक रोगो का जन्म होता है। श्वेतसार की सड़ान से उसमे श्लेष्मा पैदा होती है।

श्वेतसार का उपयोग—इसका उपयोग प्राकृतिक रूप मे ही अधिक उपयोगी है। हाँ, यदि दूसरे रूप मे इस्तेमाल करना हो तो मद-मद आच मे पकाकर इसका व्यवहार करना चाहिये। चोकर समेत आटे की रोटिया तथा कन समेत चावल का भात ठीक है। पर मैदे की पूडी, कचौडी, बिस्कुट, केक, मिठाई, पराठा आदि तो हरगिज न खाना चाहिये। इनके व्यवहार से स्वास्थ्य खराब होता है।

सर्वोत्तम तो यह है कि श्वेतसार को हरी अवस्था मे ही इस्तेमाल किया जाय। उस समय उनमे मिठास तथा सुपाच्यता के साथ ही वह क्षारमय होता है। सूखे को अकुरित करके ही खाना चाहिये।

शर्करा के प्रकार—कई हैं पर मुख्यत लोग इख से ही परिचित है। श्वेत शर्करा (चीनी) स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होती है। गाँधीजी ने इसे सफेद जहर कहा है। शर्करा के निम्नलिखित भेद है—

दुग्ध शर्करा
द्राक्ष शर्करा
फल शर्करा
अन्न शर्करा
ईख शर्करा

दुग्ध शर्करा की आवश्यकता—प्राणियो की अपेक्षा स्त्री के दूध मे अधिक मात्रा मे पायी जाती है। इसलिए बच्चो को बाहर का दूध देते समय उसमे अलग से चीनी की आवश्यकता होती है। ईख की शर्करा मिलाने से बच्चे के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पडता है। बच्चा पेचिश, आव, दूध फेंकना, अपच, पतले दस्त, यकृत विकास तथा सूखा आदि रोग का शिकार होता है। अत बच्चे के दूध मे सदा दुग्ध शर्करा मिलानी चाहिये। इनके अतिरिक्त शहद से भी काम लिया जा सकता है।

दुग्ध शर्करा की पाचन क्रिया - आन्त्रिक रस द्वारा दुग्ध शर्करा का कण टूटने पर फल शर्करा तथा अन्न शर्करा के कण बनते है। इसके खाने से पेट मे उफान, सड़ान एव किसी प्रकार की उत्तेजना नही होती। अधिक
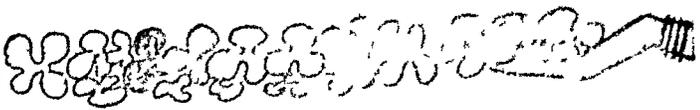
रोग के कीटाणु बदलते हैं। यदि रोजाना ३-५ औंस ४-४ घण्टे पर तीन चार बार दुग्ध शर्करा ली जाये तो आन्त्रिक गदगी आसानी से दूर की जा सकती है।

यह उत्तम प्रकार के अगूर तथा अन्य फलो मे भी पाया जाता है। वैज्ञानिको ने इसे पूर्व पचा खाद्य कहा है। खाने के बाद शीघ्र शरीर इसका उपयोग कर लेता है।

एक चिकित्सक महोदय तो १ छटाँक किशमिश को पाव भर पानी मे और एक नीबू के रस मे भिगोकर सुबह ८ बजे उसे रोगियो को देते थे। इसका नाम उन्होने फ्रूट जल रखा था। इस पेय से अनेक प्रकार के रोग दूर होते हैं।

फल शर्करा प्राय सभी फलो मे पाया जाता है। पौधे के रस मे यह फल शर्करा के साथ पाया जाता है। फल पकने पर उसका ईख शर्करा द्राक्ष शर्करा मे बदल जाता है। अत. सदा पके हुये फल खाना चाहिये वरना कच्चा फल खाने से क्षार के बदले अम्ल मिलता है। मधुमेह के रोगी के लिये भी अन्न शर्करा की अपेक्षा फल शर्करा निरापद सिद्ध हुआ है।

अन्न शर्करा—गेहू, जौ, चावल, मकई आदि श्वेतसारीय खाद्यो मे पाया जाता है। यह ईख शर्करा से अधिक उपयोगी है।

इसकी पाचन क्रिया लाला रस (लार) से शुरू होकर आन्त्रिक रस द्वारा प्रत्येक कण फलशर्करा मे बदल जाता है।

बच्चा अपने प्रति पौंड भार पर १/४ दुग्ध शर्करा ओपजनित कर सकता है। इससे कैलशियम, लोहा एव अन्य विटामिन, जिसका ईख शर्करा मे अभाव है, मिलता है। आँतो के प्रदाह, कब्ज एव बच्चो तथा अन्य रोगियो के लिये बडा उपयोगी है।

ईख शर्करा—की पाचन क्रिया—केवल आन्त्रिक स्राव द्वारा होती है। चीनी के ग्लूकोज आन्त्रिक स्राव द्वारा टूटते हैं और पचकर अन्त मे फल शर्करा बनकर रक्त मे मिल जाते हैं।

चीनी क्यो नहीं ?—यही नही कि प्राकृतिक चिकित्सक ही बल्कि बडे-बडे एम० डी० जैसे डा० केलाग, डा० लिंडलार, रैंसस अलसेकर ऐसो ने भी इसका विरोध किया है।

जिस प्रकार आटे से चोकर, चावल से कन, सब्जी तथा फल से छिलका निकाल देने पर उसके बहुत से आवश्यक तत्व नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार गन्ने के रस से चीनी को जितना ही सफेद किया जाता है उतना ही उसमे कैलशियम, लोहा, अन्य प्राकृतिक लवण तथा विटामिन आदि उपयोगी तत्व नष्ट होते चले जाते है।

चीनी और रोग—चीनी को पचाने के लिये शरीर मे उन तत्वो का अभाव हो जाता है। अधिक मिठाई खाने वालो के शरीर पर फोडे फुन्सी नजर आते हैं। अधिक चीनी खाने मे आक्जेलिक एसिड तैयार होता है। इसे बाहर निकालने के लिये जब पर्याप्त कैलशियम नहीं मिलता तो यह शरीर के अन्दर रह कर उपद्रव पैदा करता है।

अन्य खाद्यो की अपेक्षा सफेद चीनी भूख संतुष्टि अधिक करता है। इसलिये जब यह लिया जाता है तो अन्य आवश्यक मूल्यवान तत्व अलग हो जाते हैं। सफेद चीनी लेने पर मुह मे एक प्रकार के कीटाणु बढते हुए पाये जाते है जो तेजी से दातो को हानि पहुचाते हैं।

चीनी और आन्त्रिक रोग—इससे श्लैष्मिक झिल्लियों मे जलन उत्पन्न होती है और इसके कारण अनेक रोग आव, पेचिश, सग्रहणी एव दर्द आदि होता है। सर्दी, जुकाम, खासी एव दमा आदि मे भी इसका उपयोग बन्द कर दिया जाता है।

चीनी के साथ अन्य बुराइयां—इससे विभिन्न प्रकार की मिठाई, पकवान पर मन चलता है। प्राकृतिक रूप मे गन्ना, गुड, खजूर, किशमिश, केला, अजीर एव आम आदि मीठे फल जो जिस ऋतु मे मिल जायें लेना चाहिये।

चीनी के बदले राव, शीरा उपयोगी है। इसमे प्रचुर मात्रा मे ग्लुकोज कैलशियम, लोहा एव तावा आदि आवश्यक तत्व रहते हैं।

(३) चिकनाई

बल-शुक्र-रस-श्लेष्म-मेदो-मज्जा विवर्धनः।
मज्जा विशेषतोऽस्थिना च बल कृत्स्नेहने ॥

बल, शुक्र, रस, श्लेष्म, मेद तथा मज्जा को बढाती है। विशेषकर अस्थियो की शक्ति बढाती एव शरीर को चिकना बनाने मे विशेष रूप से हितकारी है। प्रसिद्ध ग्रंथ चरक मे चिकनाई को चार भागो मे बाटा गया है—

१. घी, २ चर्बी, ३ तेल, ४. मज्जा, पर अपने यहाँ तो केवल घी और तेल का ही प्रचलन है।

सर्व साधारण के लिये—दोनो प्रकार की चिकनाई मे गाय, भैंस का घी तथा नारियल और तिल्ली का तेल अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है।

चिकनाई की पाचन क्रिया—पाचन क्रिया के दौरान मे साबुन बनाने की तरह प्रक्रिया होती है। चिकनाई से पहले तैलमयी सफेद फेन (झाग) बनता है, इसके बाद अम्ल एव ग्लिसरीन बनता है और अन्त मे पित्त तथा क्लोम रस द्वारा पोटाश और सोडा से मिलकर साबुन बनता है। ग्लिसरीन जज्ब होने के बाद चिकनाई अनेक प्रकार के अम्ल के रूप से मिल जाता है। चिकनाई मे ब्युटाइरिक, मक्खन तथा अन्य प्रकार की कुछ चिकनाई मे कैप्रिलिक, बकरी, गाय तथा नारियल की चिकनाई मे कैप्रिक, नारियल के तेल, बकरी तथा गाय के मक्खन मे लारिक अम्ल तथा कुछ अन्य वनस्पति तेल मे पाया जाता है। गिरिस्टिक नारियल के तेल तथा मक्खन मे पामिटिक अम्ल, वनस्पति तथा प्राणीजन्य चिकनाई मे होता है एव स्टियरिक मेदाम्ल पाये जाते हैं। इनके अलावा दो प्रकार के और मेदाम्ल होते है।

१ **जमने वाला मेदाम्ल**—यह घी, चर्बी, नारियल, गुल्लू तथा बिनौला का तेल आदि।

२ **न जमने वाला मेदाम्ल**—जैसे सरसो, तिल्ली, अलसी, मूंगफली, जैतून, सोयाबीन, आदि का तेल।

आवश्यक मेदाम्ल कैलशियम तथा फासफोरस को दात एवं हड्डियो मे इकट्ठा होने मे विटामिन डी की क्रिया के पूरक का काम करते है।

इनसे सक्रामक रोग प्रतिरोधक शक्ति प्राप्त होती है। विशेषकर यक्ष्मा को रोकने की।

वनस्पति घी और स्वास्थ्य—जब इसके कण हमारी आतो मे पहूँचते है तो वे पचने मे कठिन होने के कारण हमारी आतो की परतो मे पिचक जाते है। इस चिपकन से हमारी आन्त्र-पेशियो की गति मन्द पड जाती है और आत मे सिकुडन होकर रक्त सचार मे कमी आ जाती है। जिससे कब्ज, आव, कोलाइटिस आदि अनेक रोगो का जन्म होता है।

"वनस्पति घी एक गैरजरूरी चीज है। तेलो में से नुकसान पहुचाने वाले भाग निकाले जा सकते हैं पर उन्हे जमाने की शक्ति देने की जरूरत नही। जाली सिक्के बनाने पर सजा होती है फिर जाली घी के लिये क्यो न काफी सजा दी जाये क्योकि असली घी सिक्को से कही ज्यादा कीमती है।" —गाधीजी

एक से अधिक चिकनाई का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव भी पडता है। मोटापा के कारण आयु भी क्षीण होती है। हृदय पर अधिक वसा इकट्ठा होने से उसकी गति मन्द पड़ जाती है और रक्त-सचार तथा दबाव में हृदय पर जोर पड़ता है।

स्त्रियो के शरीर मे अम्लता तथा गर्भाशय पर चिकनाई जम जाने से बध्यापन भी हो जाता है।

चिकनाई के अभाव मे भी अनेक प्रकार के रोग होते हैं। शारीरिक तापक्रम साधारण नही रहता, त्वचा मे रूखापन हो जाता है क्योकि पर्याप्त चिकनाई पहुचने पर त्वचा के नीचे चिकनाई की एक तह बनती हे और त्वचा रन्ध्र द्वारा चिकनाई ऊपर आकर त्वचा मे चिकनाहट पैदा करती है।

मल मे जब चिकनाहट का अभाव रहता है तो वह सूख कर कब्ज को जन्म देता है। आतो मे धीरे-धीरे पत्थर की भाति सख्त होकर जम जाता हे। चिकनाई के अभाव में भोजन की तृप्ति नही होती और भूख बराबर बनी रहती है।

चिकनाई और रोग पित्त विटामिन ए० डी० युक्त खाद्य को टुकड़े टुकड़े करके पचाता है। यकृत-जुकाम मे पित्त स्राव रुक जाता है। अत पित्ताशय के जुकाम मे चिकनाई बन्द कर देना आवश्यक है। छोटी आत के सूजन तथा क्लोम ग्रन्थि के खराब होने मे भी यही सिद्धात लागू किया जाता है।

चिकनाई पचाने और यकृत तथा क्लोम को सदा स्वस्थ रखने के लिये खुले मे गहरी साँस लेकर ओपजन प्राप्त करना चाहिये।

पशुजात वसा, जैसे मक्खन, घी, मे विटामिन ए होता है किन्तु जब उसमे वनस्पति तेल या वनस्पति घी की मिलावट हो जाती है तो ऐसे नमूने के घी का विटामिन ए घट जाता है। यही कारण है कि मिलावट का घी खाने से अनेक प्रकार के नेत्र रोग उत्तरोत्तर बढते जा रहे हैं।

(४) विटामिन

आहार मे कुछ अन्य सुक्ष्म तत्वों का होना भी अनिवार्य है। वैज्ञानिको ने इस सूक्ष्म तत्व को सन् १९२० ई मे खोज निकाला था।

विटामिन ए यकृत, गुर्दा तथा फेफड़ो मे इकठ्ठा होता है और कैरोटीन त्वचा के नीचे एकत्र होता है। जिससे त्वचा मे चिकनाहट, कोमलता एव सुन्दरता आ जाती है।

अभाव में आख की कनीनिका मे घाव, तथा आँख के सफेद भाग मे चकत्ते हो जाते हैं। इसके अभाव मे विभिन्न आयु के लोगो को विभिन्न रोग होते हैं। बच्चो के शरीर की बाढ रुकती है और मास वृद्धि रुकती है। आँखो में नेत्र रोग होता है। आँखो मे आँसुओ को मात्रा कम हो जाती है, कनीनिका के कमजोर पड जाने से रोग कीटाणु का आक्रमण होने लगता है और मनुष्य अंधा तक हो जाता है।

बी-२ शारीरिक विकास मे सहायक है। गर्मी से नष्ट नही होता है। यह त्वचा को स्वस्थ तथा आखो को चमकीला रखता है।

बी-३ स्नायु को सशक्त करता है पर गरमी से नष्ट होता है।

अभाव—पाचन क्रिया तथा भूख मे कमी, वजन घटना शक्ति की कमी, कब्ज, कमजोरी, असाधारण ताप, क्लोम ग्रन्थि, पल्ली, हृदय, यकृत, पेट और चुल्लिका ग्रन्थि मे वृद्धि तथा मस्तिष्क मे जड़ता आती है।

अनुपस्थिति—बेरी बेरी तथा स्नायुविक दुर्बलता।

मेलिक एसिड - भी बालो को स्वाभाविक अवस्था मे रखने के लिए आवश्यक है। इनोसिटल बालो की बाढ को उत्तेजित करता है। आटओटिन शक्ति उत्पन्न करने तथा बौद्धिक और त्वचा के स्वास्थ्य को ठीक रखता है। कान्लिन यकृत का स्वास्थ्य तथा शरीर का साधारण वजन कायम रखता है एडीनिलिक अम्ल शक्ति उत्पन्न करता है। इस प्रकार और भी विटामिन बी हैं जो स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं।

सौभाग्य मे ये सारे विटामिन प्राकृतिक खाद्यो मे प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। किन्तु यह सबसे अधिक यकृत, गेहू का अकुर, चावल का कन, चोकर, राब आदि मे पाया जाता है। पर उसे कम लोग इस्तेमाल करते हैं।

आवश्यकता यो तो लोगो के अलग-अलग मत हैं पर मुख्यत कुछ ये हैं—

डा० हामा के अनुसार सामान्यत पुरुष को नित्य ४-७ मिलीग्राम तथा स्त्रियो को अपना सौंदर्य कायम रखने के लिए ३-५ मि० ग्रा० लेना चाहिए।

प्रधान साधन - यह विटामिन पूर्ण अन्न कण, दूध, गद्दरफल, सब्जी, चोकर तथा फल-सब्जी के छिलके आदि प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है। कोनूर सस्था ने विटामिन

बी की ३०० अ० ई० प्रतिदिन बताई है और इतना नित्य निम्नाकित खाद्यो मे से कोई एक लेने से मिल जाता है।

विटामिन सी—जीवन के लिए बडा आवश्यक विटामिन है। स्कर्वी (मसूडो से खून आना) पायरिया, तथा दात के अन्य रोगो से बचाना, त्वचा का सशक्त एव सुन्दर रखना आदि इसके प्रधान कार्य हैं। इसके अतिरिक्त घाव, व्रण, टूटी हड्डी तथा अन्य प्रकार की चोट को भी ठीक करता है।

१६२४ मे लोजर ने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि दातो पर इसके अभाव का बहुत बुरा प्रभाव पडता है।

विटामिन सी सुन्दर तथा शक्तिशाली बनाकर बुढापे मे होने वाले परिवर्तन से बचाता है।

आग के सपर्क से अथवा यो ही सूख जाने पर यह विटामिन नष्ट हो जाता है पर आवला का विटामिन सूखने पर भी नष्ट नही होता।

अभाव—विटामिन सी के न रहने से त्वचा रोग, स्कर्वी तथा पायरिया होता है। इसकी मात्रा नित्य लेनी चाहिये। डा० हासा ने आयु के अनुसार इस प्रकार मात्रा दी है–

आयु	मि० ग्रा०
बढते हुए बच्चे (१२ वर्ष के नीचे)	८०-१५०
वयस्क (लडकी-लडका)	१६०-२००
प्रौढ	१५० या अधिक

यह तो स्वस्थ व्यक्तियो की मात्रा बताई गई है पर सक्रामक रोग, ज्वर, वात, आलस, दाँत निकलने के बाद प्रत्येक प्रकार के चीड़-फाड आदि के समय जब ठीक होना चाहे तब इसको अधिक मात्रा मे लेना चाहिए।

विटामिन डी—विटामिन डी शरीर के कैलिशियम के सतुलन को ठीक रखता है और अन्य प्राकृतिक खाद्य तथा लवण के समीकरण मे सहायक होता है।

शरीर मे सुन्दरता, आकृति मे सतुलन, दातो मे सफेदी और मजबूती, सीने मे चौडाई और सिधाई, हाथ पाव मे सुन्दरता आदि की रचना मे इसका महत्वपूर्ण स्थान है। यह सूखा रोग मे भी लाभ पहुचाता है।

फास्फोरस तथा कैलशियम मे गहरा सम्बन्ध है। विटामिन डी के अभाव मे कैलशियम और फासफोरस का उचित उपयोग नही हो सकता।

धूप लेने पर सूर्य-रश्मिया हमारे अन्दर प्रवेश करती है। तेल की मालिश कराकर धूप लेने से रोम-कूप विटामिन डी को अपने अन्दर शोषित करते है।

स्त्रियो को ऊपरी भाग विशेषकर स्तन मे अवश्य ही धूप लेनी चाहिए।

इसके अभाव मे सक्रामक रोग, मासपेशियो की दुर्बलता, स्नायु सस्थान की दुर्बलता और यक्ष्मा तथा अन्य रोग प्रतिरोधक शक्ति का ह्रास होता है। अस्थि-विकृति, यक्ष्मा, रक्ताभाव तथा सूखा रोग भी होते है।

साधन—विटामिन डी दूध, मक्खन, घी मे विशेष रूप से मिलता है। धूप जो इसका खजाना है। कम से कम आध घण्टा नित्य धूप लेने से विटमिन डी पर्याप्त मात्रा मे मिल जाता है। तेल लगाकर धूप लेने के बाद कई घण्टे तक तेल हटाना नही चाहिये। यदि हटाना ही पड़े तो साबुन किसी प्रकार इस्तेमाल नही करना चाहिए।

विटामिन ई—१६२२ मे ईवान्स और विशप ने बताया कि सतानोत्पत्ति की क्षमता के लिए विटामिन ई की आवश्यकता होती है। साधारण वृद्धि-विकास एव पिट्युइट्री ग्रन्थि की उचित क्रिया के लिए भी यह आवश्यक है।

यह सम्पूर्ण अन्नकण, गेहू, मकई, दूध, सब्जी तथा अकुरित खाद्य मे प्रचुरता से पाया जाता है। यह अकुरित गेहू, मटर, मू गफली, मू ग मे विशेष रूप से होता है।

सोयाबीन के तेल, काष्ठज मेवे, बिनौला तेल, पाटका तेल, मूंगफली का तेल, तथा गेहू के डिम्बाणु का तेल तथा टमाटर मे यह प्रचुर मात्रा मे होता है।

विटामिन के—रक्तस्राव विरोधी विटामिन है। इसके अभाव मे रक्त स्राव शुरू हो जाता है और स्कर्वी की तरह त्वचा के नीचे माँसपेशियो के अन्दर और उदर मे स्राव आरम्भ हो जाता है।

साधना—सनके बीज के तेल, सोयाबीन के तेल, चावल की भूसी तथा हरी सब्जी मे पाया जाताहे। यह हरी पत्ती, पालक, गाजर की चोटी मे विशेषकर होता है।

विटामिन पी भी के की तरह रक्तस्राव रोकता है पर दोनो का मार्ग बिल्कुल भिन्न है। यह रक्तचाप घटाने मे सहायक है।

अभाव—अभाव मे रक्त नलिकाओं की दीवर झर्झरी हो जाती है तथा तन्तुओ में लाल रक्त कण प्रवेश करते है। यो तो यह कुछ प्रकार की हरी मिर्च तथा साइट्रस रस मे भी होता है पर नीबू का छिलका सर्वोत्तम है।

स्नायु एव हृदय सस्थान पर थायोमीन के कमी का घातक प्रभाव पड सकता है। वेरी वेरी में तंतुओं में पानी इकट्ठा हो जाने से सूजन हो जाती है। मासपेशियो की शक्ति का ह्रास होने के साथ भूख में भी कमी आ जाती है।

विटामिन के अभाव मे रोग

यो तो विटामिन के अभाव में अनेकरोग होते हैं। पर मुख्यत ये हैं—

सूखा—बच्चो को प्राय अस्थि विकार रोग हो जाता है और विशेष कर उन बच्चो को जो सदा सूर्य रश्मियो से दूर माँ अथवा अन्य की गोद से चिपके रहते है। स्वच्छ वायु तथा रोशनी का अभाव भी इसका कारण होता है। भोजन से सदा इसका भय बना रहता है। यह भोजन मे विटामिन ए की कमी से होता है। गर्भवती को विटामिन ए पर्याप्त मात्रा मे नहीं मिलता तो बच्चे को यह रोग हो जाता है।

लक्षण—हड्डियो की खराबी के साथ ही पेशिया ढीली पड जाती है। पसीना अधिक विशेषकर खोपड़ी पर आके जमता है। बच्चे देर से पैर पर खड़े हो पाते हैं। पसलियो मे सूजन हो जाती है। आँखें अधिक गोल हो जाती हैं। लिंग कुछ लम्बा और ढीला हो जाता है। दात देर से निकलते है और उनमे चमक की कमी रहती है।

चिकित्सा—प्रतिदिन आध सेर पूर्ण दूध (गाय या बकरी), जैतून का तेल तथा बिनौले का तेल, हरी सब्जी, सतरा, आँवला, गाजर, पालक तथा पात गोभी आदि। इनमे से किसी एक तेल की मालिश करके बच्चे को १५-३० मिनट तक धूप मे रखने के बाद या तो धूप मे पानी से या पहिले गुनगुने फिर ठडे पानी से नहला देना चाहिए।

नोट चिकित्सा के आरम्भ मे दूध तथा मक्खन नही देना चाहिए, जब भूख खूब खुलकर लगने लगे तो १०-१५ दिन बाद दिया जा सकता है।

बेरी-बेरी—यह विटामिन बी के अभाव मे होने वाले कुछ विशेष रोगो मे से बेरी-बेरी विशेष रूप से स्मरण किया जाता है। यह नया नहीं बहुत पुराना रोग है। पूर्वी एशिया मे इसका अधिक विस्तार है। कनरहित चावल खाने वाले लोगो तथा कुछ वर्ष पूर्व मिल का चावल तथा तेल खाने वाले बगालियों मे जोरो से फैला था।

लक्षण पैरो मे भारीपन, चलने पर घुटनो का लड़खड़ाना, श्रम करने के बाद दिल मे धड़कन, पैरो की त्वचा मे मुरझायापन, अगुली से दबाने पर पैर मे गड्ढा होना, रक्तचाप मे परिवर्तन तथा श्वेताणुओं की सख्या १००% बढ जाती है।

बेरी-बेरी के प्रकार—(१) हल्का—मेहनत करने के बाद पैर भारी और दिल धड़कने लगता है।

(२) शुष्क—लकवा सा मालूम होता है, पैर सुन्न हो जाता है हाथ ढीला पड जाता है। लटक जाता है, मुट्ठी अधखुली रहती है।

(३) दिल की धड़कन बढ़ती है। पाव तथा पैर के जोड की हड्डी पर पानी आ जाने से सूजन आ जाती है। मूत्र कम मात्रा मे आता है तथा गम्भीर अवस्था उत्पन्न होने पर यह लक्षण शीघ्र बढते है और नाडी की गति १३० तक हो जाती है।

बेरी बेरी वाली माताओ का दूध पीने से बच्चे भी उसी रोग से पीड़ित हो जाते हैं।

चिकित्सा—भोजन मे चावल, गेहू तथा जौ आदि के कन चोकर की मात्रा अधिक कर देने तथा धारोष्ण दूध पीने से यह रोग चला जाता है। बच्चे को स्वस्थ गाय का दूध देना चाहिये। इस रोग मे नीरा (ताड वृक्ष का रस) बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जिन बच्चो को कृत्रिम दूध बोतल का या उबालकर दिया जाता है उनमे यह अधिक फैलता है। दूध के साथ नीबू, नारगी, टमाटर अथवा ताजे फल खाने से भी इसके होने की कम सम्भावना रहती है।

लक्षण त्वचा मे पीलापन, स्वभाव मे सुस्ती, शरीर मे ढीलापन, साँस लेने मे कठिनाई, कमर मे दर्द, पैर मे जलन, आमवात, पैर की त्वचा मे रक्तस्राव के कारण

लाली, घुटनो के ऊपर सूजन, मसूडे गहरे लाल एव कोमल होने लगते है, मसूडो की सूजन से दाँत ढक जाते हैं। दाँत गिरना, कभी-कभी मूर्छित हो जाना, हृदय दुर्बल, नाडी की गति तेज होना, मल मे रक्त आना, तथा अन्य ससर्गज रोग के लक्षण हो जाते हैं।

चिकित्सा--हरी सब्जी, ताजे फल, ताजा दूध (बिना गरम किया) इसकी दवा है। १ चम्मच नीबू या सतरे का रस प्रतिदिन देने से भी यह रोग चला जाता है। अकुरित अन्नकण तथा द्विदल भी उपयोगी होता है। जिसे सतरा खरीदने मे कठिनाई हो उन्हे सन्तरे नीबू के छिलके के रस या टमाटर के रस से काम लेना चाहिये।

घातक रोगो से बचने के लिये विटामिन बी-६ एफ ई अनिवार्य है।

(५) प्राकृतिक-खाद्य लवण

आहार के अन्य तत्व प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, चिकनाई तथा विटामिन आदि की अपेक्षा प्राकृतिक खाद्य लवण का किसी प्रकार भी कम महत्व नही है। यह शरीर के शोधन, रचना तथा विकास के लिये आवश्यक है।

प्रत्येक अन्नकण मे प्राकृतिक लवण पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है पर उन्हे चोकर तथा कण समेत ही इस्ते-माल करना चाहिये। ये लवण विशेषकर कण, चोकर, तथा अन्न के मध्य भाग मे पाये जाते है।

शाक-सब्जियो मे प्राकृतिक लवण पर्याप्त मात्रा मे मिलता है पर ऊपरी भाग में अधिक पाया जाता है।

सारांश--हमे ऐसा ही खाद्य इस्तेमाल करना चाहिये जिन्हें शुद्ध वायु, धूप, अच्छी मिट्टी तथा पानी मिला हो।

खाद्य लवणों का प्रभाव--यह जान लेना आवश्यक है कि किस लवण का किस अङ्ग विशेष पर प्रभाव पडता है।

अभाव मे--हड्डी दात का विकास रुक जाता है, हड्डिया लुवलुबी हो जाती है। दाँत सडने लगते है, सूखा रोग होने का खतरा रहता है, अधिक रक्तस्राव हो सकता है।

अन्य लवणो की अपेक्षा कैलशियम तथा फासफोरस की आवश्यकता होती है।

शरीर मे कैलशियम का स्थान--हमारे शरीर से नित्य १० ग्रेन कैलशियम निकलता है। अत उसकी पूर्ति के लिये १० ग्रेन और विकास के लिये ५ ग्रेन। इस प्रकार कुल १५ ग्रेन कैलशियम चाहिये, इसका ९९% हड्डियो और १% शरीर के प्रत्येक तन्तु, कोमल तन्तु, रक्त तथा अन्य धातुओ मे पाया जाता है।

कैलशियम का निस्कासन--आत, पेशाव तथा त्वचा मार्ग से होता है। प्राय. देखा जाता है कि कैलशियम के अभाव मे पाखाने मे छोटे कीडे और पेशाव मे फास्फेट आने लगता है।

यह भी वताया गया है कि इसकी मात्रा कम से कम ०.५ तक और उससे उत्तम फल के लिये १ ४ तक बढाया जा सकता है।

द्विदलो मे, मसूर में पर्याप्त मात्रा मे कैलशियम है और तिल मे तो कैलशियम भरा पडा है। यदि तिल न ले सके तो खल (खाली) ही लेनी चाहिये, उसमे भी कैलशियम उतना ही होता है जितना तिल मे।

इसके अतिरिक्त नित्य चोकर समेत आटे की रोटी, कन समेत चावल और साथ ही हरी सब्जी, फल और दूध लेते रहे तो आवश्यक कैलशियम अपने आप मिलता रहता है।

गाजर, चुकन्दर तथा पातगोभी मे क्रमानुसार ८०, ३५, ७४% दूध की तरह का कैलशियम होता है। इसका थोडा अश रक्त मे मिल जाता है और वह आतो को सक्रिय बनाता है।

फासफोरस—शरीर कोष मे शक्ति सचार करता हैं। कैलशियम के साथ दात, हड्डी को दृढ तथा स्नायु संस्थान को सशक्त बनाता है।

आवश्यकता— साधारणत. नित्य ८८ ग्राम तथा दूध काल मे १ ५० ग्राम की आवश्यकता होती है।

कैलशियम तथा फासफोरस के समीकरण के लिये विटामिन डी सी ए आवश्यक हैं।

अभाव—शरीर का विकास सीमित हो जाता है, हड्डी, दात का उचित विकास नही होता, सूखा, वजन घटना और साधारणत कमजोरी का अनुभव होता है।

साधन—दूध, पनीर, फलिया, सम्पूर्ण अन्नकण, काष्ठज मेवे, हरी सब्जी आदि।

लोहा—लोहे के समीकरण के लिये भोजन मे तावा तथा क्लोरोफिल का रहना आवश्यक है। यह हीमोग्लोबिन के बनाने, रक्तकोष का विकास करने, औषजन को एक स्थान से दूसरे स्थान मे ले जाने तथा तन्तुओ की श्वास प्रश्वास क्रिया मे सहायक होता है। पीलिया, रक्ताभाव तथा पाचन सम्बन्धी गड़बडी को ठीक करता है।

अभाव—इसके अभाव में जीर्ण रक्ताभाव, हीमोग्लोबिन का कम होना, रक्त कण का कम होना, लाल रक्त कण का अभाव तथा जीवनी शक्ति का क्षीण होना आदि अनेक रोग पैदा हो जाते हैं।

साधन—यह हरी पत्तीदार सब्जिया, पात गोभी, सूखे मेवे, गाजर, चोकर, धनिया, खुबानी आदि मे अधिक मात्रा मे पाया जाता है।

तावा—हीमोग्लोबिन की रचना के लिये लोहे के साथ तावा का रहना आवश्यक है। पेशी, यकृत तथा हड्डियो मे ताँवा अधिक भाग मे रहता है। साधारणत लोहा के साथ तावा पाया जाता है।

आवश्यकता-तावा की कितनी आवश्यकता पडती है इस पर कई मत हैं पर अधिकाश लोगो ने आयु, बल तथा अवस्था के अनुसार नित्य सेवन के लिये निम्नांकित मात्रा में बतायी है—

शिशु	१ से १ ५ मिलीग्राम
बच्चो की	१ ५ से २ मिलीगाम
वयस्क	२.५ मिलीग्राम
गर्भिणी और दूध	५ से ६.५ मिलीग्राम

अभाव—मे लोहा का ठीक-ठीक उपयोग न होने पर रक्ताभाव, श्वास मे खराबी, साधारण कमजोरी तथा वृद्धि सीमित हो जाता है।

साधन—सम्पूर्ण अन्न कण तथा लोहायुक्त खाद्य मे पाया जाता है।

आयोडीन—यह चुल्लिका ग्रन्थि को स्वस्थ रखता है बुद्धि तीव्र करता, घेंघा तथा मोटापा से बचाता है। चिकनाई तथा प्रोटीन के ओषजन के लिये यह आवश्यक है।

अभाव में—घेंघा हो जाता हैं, चुल्लिका ग्रन्थि बढ जाती है, अशक्ति उत्पन्न करता है।

आवश्यकता—७० किलोग्राम (१५४ पौंड) के वजन के मनुष्य मे २५ मिलीग्राम के लगभग आयोडीन रहता है। चुल्लिका ग्रथि मे कम से कम १० और अधिक से अधिक २० मिलीग्राम आयोडीन होता है।

साधन—सम्पूर्ण अन्नकण, काष्टज मेवे, जलज खाद्य जैसे कमल गट्टा, नारी का शाक, मेर की पवनार, मसीड, सिंघाडा आदि, मछली तथा हरी सब्जी आदि मे आयोडीन अधिक पाया जाता हैं।

मैगनेशिया—वृक्षो मे हरितिका तत्व का बहुत आवश्यक अंग है। ७०% मैगनेशिया हड्डियो मे पाया जाता हैं।

आवश्यकता २० किलोग्राम (४४ पौंड) के बच्चो के लिये नित्य ० २३ ग्राम और ७० कि ग्राम (१५४ पौंड) वयस्क के लिये ० ३५ ग्राम।

अभाव—मे पाचन की खराबी, थकान, चिडचिडापन तथा स्नायु दौर्बल्य।

साधन—दूध तथा हरी पत्तीदार सब्जियो मे पाया जाता है।

क्लोरिन—प्रधानत क्लोराइड के रूप मे सभी खाद्यो मे पर्याप्त मात्रा मे पाया जाता है।

आवश्यकता—नित्य ३०-३५ ग्रेन तक चाहिये।

अभाव मे पाचन मे खराबी, पानी को रोकने की शक्ति का अभाव, वजन घटना एव मासिक स्राव की गडबडी।

साधन—दूध, हरी सब्जियाँ, काष्ठज मेवे और अन्न कण मे पाया जाता है।

सोडियम—का भोजन मे विशेष महत्व है। रक्त और पट्ठा (रक्तवारि) के लिये आवश्यक है।

सोडियम क्लोराइड के अभाव मे ताप, गरमी का ऐंठन तथा लू लग सकती है।

गरमी के दिनों मे भोजन मे कोई एक नमक युक्त खाद्य लेना चाहिये और दिन मे २-३ ग्लास पानी मे २-५ चुटकी बनस्पति नमक चाहिये।

आवश्यकता—नित्य ८-१० ग्राम तक चाहिए।

अभाव—पाचन प्रणाली की खराबी, श्लैष्मिककला की खराबी तथा खराश, वजन घटना, नमक की भूख, साधारण कमजोरी, शरीर मे पानी का हीन रुकाव, सन्धि प्रदाह आदि लक्षण हैं।

साधन—हरी सब्जिया विशेषकर पत्तीदार पालक, मूली, शलजम आदि छिलके समेत फल। सम्पूर्ण अन्नकण तथा छिलका समेत द्विदल और दूध मे भी पाया जाता है।

सिलिकन—ओषजन की भाति यह भी जमीन मे अधिक पाया जाता है। सब्जियो मे फासफोरस के साथ जुडा रहता है। मनुष्य के तन्तुओ में मिला है। त्वचा और तन्तुओ मे लचीलापन, बालो को काला करने तथा बढाने मे सहायक होता है।

आवश्यकता—नित्य १.५ मिलीग्राम की जरूरत है।

अभाव—मे छोटी आतो की शोषण शक्ति कम, बाल सफेद तथा विकास रुक जाता है।

साधन—सम्पूर्ण अन्नकण, हरी सब्जी तथा फल और विशेषकर भगरैया (भृङ्गराज) मे होता है।

पोटेशियम—यकृत, पेशी तथा कोमलास्थि से शर्करा-जन बनाने के लिये बडा महत्वपूर्ण है। इससे पेशियो एव तन्तुओ मे लचीलापन आता है, शरीर मे क्षमता को सन्तुलित रखता है तथा मस्तिष्क और लाल रक्त कोष के लिए आवश्यक है। ओषजन को धारण कर नेत्रजन को बाहर निकालने मे सहायक तथा स्नायु सस्थान को शक्तिशाली बनाता है।

आवश्यकता—२० किलोग्राम (४४ पौड) बच्चो के लिये १.५ ग्राम तथा ७० किलोग्राम (१५४ पौड) के लिये ३ ग्राम चाहिए।

अभाव—अल्प अभाव से भी मेद विकास, कब्ज, वायु प्रकोप, स्नायुविक रोग, अनिद्रा तथा आलस आदि होता है। हृदय मन्द अनियमित चलता है और हृदय पेशियो का क्षय हो जाता है।

यह समस्त पेशियो की साधारण सिकुडन के लिये आवश्यक है किन्तु पारिवारिक पक्षाघात मे कोष मे कम मात्रा मे पोटेशियम रहने के कारण पेशियो की सिकुडन कम हो जाती है किन्तु आहार मे पोटेशियम की मात्रा देने से यह दोष दूर हो जाते हैं।

(६) पानी

हमारे शरीर का २/३ भाग पानी है और इसके सहारे ही प्रत्येक अवयव ठीक-ठीक काम करता है। नित्य २६०० ग्राम पानी हमारे शरीर से खर्च होता है। कुछ पानी तो आहार से प्राप्त होता है फिर भी २-२॥ लिटर पानी तो रोज लेना ही चाहिए।

पाइप के पानी मे क्लोरिन होता है और इसमे ओषजन का अभाव होता है। इस पानी से आतो मे कीटाणु उत्पन्न होकर कमजोरी आती है और पेचिश का कारण होता है।

आयु के अनुसार पानी—मनुष्य की आयु ज्यो-ज्यो बढती जाती है उसी प्रकार पानी की आवश्यकता भी कम होती जाती है। शिशु को प्रौढ की अपेक्षा चौगुना पानी चाहिये।

उपवास और पानी—प्रारम्भ से २-३ दिन तो मासपेशियो तथा ततुओ मे इकट्ठा हुये पानी से काम चल जाता है, पर बाद मे शरीर से छूटी हुई गदगी को दूर करने के लिये उपवास-काल मे पानी आवश्यक है।

हल्का पानी बडा सुपाच्य होता है, भारी पानी मे खनिज तत्व होते है जिससे उनका निष्कासन कठिन हो जाता है और ऐसा पानी पीने वालो के मूत्राशय तथा गुर्दे मे पथरी हो जाती है। पाचन क्रिया कमजोर हो जाती है।

पानी कब—यो तो जब प्यास लगे तभी पीना चाहिये, पर कुछ लोगो को प्यास लगती ही नही अत पानी पीने की आदत निम्न प्रकार बना ले तो अच्छा है—

सुबह उठ एव मुँह साफकर एक गिलास। गरमी मे मिट्टी या तावे के बर्तन मे रखा हुआ वासी और जाडे मे, बरसात मे ताजा पानी पीना चाहिए, क्योकि जाडे मे वासी पानी अधिक ठडा होने के कारण, यकृत खराब होने का भय रहता है।

८ बजे शौचादि से निवृत होने पर प्रात काल शुद्ध ताजा पानी अथवा फल सब्जी का एक गिलास रस पीना

चाहिए। भोजन के एक घण्टा पहले एक गिलास पानी आमाशय में बना हुआ भोजन आंतों में चला जाये और भूख अच्छी तरह लग जाये। जिन्हें भूख कम लगे उन्हें गुनगुना पीना चाहिये, अच्छा हो कि उसमें आधा नींबू मिला लें।

भोजन के दौरान में पानी पीने से उसके साथ पाचन रस निकल जाने से अपच हो जाता है। केवल बीच-बीच में जबान की सफाई तथा भोजन के स्वाद के लिए १-१ घूंट ३-४ बार पी सकते हैं।

पानी के अभाव में—शरीर के तन्तुओं तथा रक्त से पानी खर्च होता है। तब तन्तुओं का गीलापन चला जाता है और रक्त गाढ़ा हो जाता है। मल सूखने लगता है और कब्ज होकर उसमें सड़ान उत्पन्न हो जाता है। तथा पेट में मरोड़, पतले दस्त और उसके बाद ही हैजा शुरू होकर पेशाब भी बन्द हो जाता है।

पानी की अधिकता में—जिस प्रकार अभाव में रोग हो जाता है उसी प्रकार अधिकता में मन्दाग्नि, पेट भारी, पेट बढ़ना, मोटापा तथा गुर्दे में खराबी हो सकती है।

पानी के बदले—में चाय, काफी, सफेद चीनी का शर्बत, कोका-कोला, सोडा, शराब, ताड़ी पीने का रिवाज है, पर इससे बहुत ही हानि होती है। पानी के स्थान पर फल-सब्जियों का रस, आम का पानी पी सकते हैं। जब रक्त में किसी प्रकार का परिवर्तन होता है तो उससे प्यास घटती बढ़ती है क्योंकि रक्त में ७८ प्रतिशत पानी ही है।

प्यास की अधिकता—श्लेष्मिक झिल्लियों के सूखने, नमक तथा चीनी आदि मीठी, नमकीन तथा मसालेदार खाद्य लेने पर प्यास लगती है। पानी के अभाव में शरीर में विष उत्पन्न हो जाता है तथा जुबान गन्दी हो जाती है।

संतुलित आहार (Balanced diet)

अन्न के जो चार कार्य बताये गये हैं ये कार्य यथा-प्रमाण, यथायु और यथाव्यवसाय जिस प्रकार के आहार से सुसपन्न होते हैं उसको 'सतुलित आहार' (नियमित-आहार) कह सकते हैं। इसके निम्न लक्षण है—

१ अवस्था, व्यवसाय, देश, ऋतु इत्यादि के अनुसार मिलनी [illegible] है—[illegible] करने की शक्ति [illegible] है (Calorific value) आहार की [illegible] । दिन भर [illegible] (शरीर के) [illegible] [illegible] (Joules) [illegible]।

२ [illegible]

३ उष्णतापादक द्रव्यों के अतिरिक्त [illegible], जल और जीवतिक्तियाँ उचित मात्रा आहार में होनी चाहिए।

४ आहार के सब द्रव्य पाचन और प्रचूषण की दृष्टि से हलके होने चाहिये।

५. आहार में कुछ कोषाणु (Cellulose) जैसा रेशादार कुपाच्य पदार्थ भी आवश्यक होता है। इससे मलोत्सर्जन में सहायता होती है।

६ यह सब कुछ होते हुए भी आहार प्रत्येक व्यक्ति की रुचि और इच्छा के अनुसार होना चाहिए। इसके विरुद्ध होने से मन अप्रसन्न होकर अन्न का पाचन ठीक नहीं होता। इसके साथ साथ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि संतुलित आहार में रुचि का महत्व गौण है। यदि उचित आहार में रुचि भी अनुकूल हो जाय तो सोने में सुगन्ध की सी बात हो जाती है। इस प्रकार की रुचि उत्पन्न करने का अभ्यास प्रारम्भ से करना चाहिये।

आहार की मात्रा निर्णय

आहार की मात्रा निर्णय में आहारज्ञों ने प्रयोग, परिश्रम और पर्यालोचन से उत्तम आहार के सम्बन्ध में बहुत नियम और सूत्र बनाये हैं। उन नियम एवं सूत्रों को 'प्रमाप आहार' (Standard dieteries) कहा जाता है। ये प्रमाप आहार बन्दिशाला, पाठशाला, छात्रावास,

अनाथालय इत्यादि सार्वजनिक साघिक सस्थाओ मे सर्व साधारण मार्गदर्शन के लिए उपयोगी होते है । परन्तु इनसे व्यक्ति मात्र के उचित आहार का प्रश्न निर्णीत नही हो सकता। इसके लिए निम्न बातो पर ध्यान देना चाहिये —

(१) **देश प्रकृति** — शीतदेशो मे शरीर से उष्णता का अधिक नाश होने के कारण उष्णतोत्पादक द्रव्यो की अधिक आवश्यकता होती है और यह कार्य स्नेह से ही करना पडता है। जैसा कि कहा है— शीते स्निग्ध सदा हितम्। शीते शीलानिलस्पर्शसरुद्धो-वलिना बली। पक्ता भवति हेमन्ते मात्राद्रव्यगुरुक्षम (सुश्रुत) ग्रान लेण्ड जैसे अत्यन्त शीत प्रदेश मे, इसीलिए मछली की चरबी के तेल का अधिक उपयोग किया जाता है। उष्ण प्रदेशो में इसके विपरीत स्थिति होती है।

(२) **ऋतु**-शीत ऋतु मे उपर्युक्त कारण से ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा अधिक उष्णतोत्पादक खाद्य द्रव्यो की आवश्यकता मालूम होती है और उनका सेवन स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से जरूरी भी होता है। ग्रीष्म ऋतु मे इसके विपरीत स्थिति होती है।

(३) **अवस्था** —शरीर की दृष्टि से बाल्य वृद्धिकाल, यौवन स्थितिकाल और वार्धक्य हानिकाल होता है। बाल्य में क्षतिपूरण के अतिरिक्त शरीर की सम्पूर्ण धातुओ की वृद्धि हुआ करती है। भार की दृष्टि से शरीर के पृष्ठ भाग का क्षेत्र अधिक रहता है और बालक सदैव उद्योग· शील रहते है। इसलिए बाल्य मे धातुवर्धक प्रोभूजिनो की तथा ऊर्जोत्पादक स्नेह एव प्रांगोदीयो की अधिक आवश्यकता रहती है। जब शरीर की पूर्ण वृद्धि हो जाती है तब प्रोभूजिनो की आवश्यकता केवल क्षतिपूरण के लिए ही रहती है अतएव उनकी मात्रा कम करनी पडती है। वार्धक्य मे क्षतिपूरण भी ठीक नही होने पाता। इस लिए उस समय प्रोभूजिन और भी कम करने पडते है।

(४) **लिंग** — साधारणतया पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो को कम अन्न की आवश्यकता होती है। क्योकि उनका काम हलका, घरेलू और मामूली होता है। यह नियम एक समाज या जाति के लिए लागू है। विभिन्न समाज, वर्ण या वर्ग के स्त्री पुरुषो का विचार करने पर यह नियम उलटा हो सकता है। श्रमजीवी जाति की मेहनत मजदूरी करने वाली स्त्रियो को बुद्धिजीवी जाति के पुरुषो की अपेक्षा अधिक अन्न की आवश्यकता होती है।

(५) **व्यवसाय**—ससार मे मनुष्यो के मुख्य दो भेद होते है-श्रमजीवी और बुद्धिजीवी। बुद्धिजीवियो की अपेक्षा श्रमजीवियो को उष्णतोत्पादक अन्न की आवश्यकता अधिक होती है। इसलिए मेहनत-मजदूरी करने वाले लोग चावल, आलू, शकरकदी इत्यादि प्रागोदीयो पर अपना निर्वाह भली भाति कर सकते है। बुद्धिजीवियो से शारीरिक श्रम कम होने के कारण उनको उष्णतोत्पादक द्रव्यो की आवश्यकता कम होती है। और प्रोभूजिनो की आवश्यकता अधिक होती है। इसलिए उनको प्रागोदीय अधिक खाकर अपना पेट भारी न करना चाहिए। उसके बदले दूध, मलाई, घी, बादाम इत्यादि प्रोभूजिन स्नेहयुक्त भोजन करना चाहिए।

(६) **आयाम और सहनन**—शरीर तोल, लम्बाई, विस्तार (Height and built) इत्यादि के अनुसार अन्न की मात्रा न्यूनाधिक हुआ करती है। भारी, लम्बे और स्थूल मनुष्य को हलके, ठिगने और पतले मनुष्य की अपेक्षा अधिक अन्न की आवश्यकता होती है।

(७) **अभ्यास**—अधिक मात्रा मे अन्न सेवन करने का अभ्यास रखने से मनुष्य को अधिक अन्न की और कम मात्रा में सेवन करने का अभ्यास रखने पर कम अन्न की आवश्यकता मालूम होती है। बहुतेरे लोग अल्प मात्रा मे अन्न सेवन करके बहुत अधिक काम करते हुए दिखाई देते है। यह सब अभ्यास का ही फल है। कहा भी है–

उद्योगः कलह कण्डूर्द्यूत मद्य परस्त्रियः।
आहारो मैथुन निद्रा सेव्यमानतु वर्धते ॥

अन्न की पाच्यता

महास्त्रोत के पाचक रसो के द्वारा आहार्य द्रव्यो के बडे-बडे जटिल सयोगो का छोटे छोटे प्रचूषणयोग्य सयोगो मे परिवर्तित होना पाचन कहलाता है। आहार्य द्रव्यो का उत्तम पाचन होने के लिए उनका सुपाच्य होना आवश्यक होता है जो निम्न बातो पर निर्भर करता है—

(अ) **भौतिक स्थिति** — कठिन और ठोस पदार्थ मृदु

और तरल पदार्थों की अपेक्षा पचने मे भारी होते हैं। इसका कारण यह है कि ठोस और कठिन पदार्थों के साथ पाचक रस भली भाति नही मिल सकते। इसको भौतिक गुरुता कहते है जो चर्वण के द्वारा मनुष्य दूर कर सकता है। अन्न की पोषणार्हा (Nutritive value) बढाने मे इसलिए चर्वण बहुत उपयोगी है।

(ब) रासायनिक सघटन—अन्न के सघटको मे जल, खनिजो और जीवतिक्तियो को पाचन की आवश्यकता नही होती। प्रोभूजिन, स्नेह और प्रागोदीयो को पाचन की आवश्यकता होती है। इनमे पाचन मे स्नेह सबसे गुरु और प्रागोदीय सबसे लघु होते है। प्रागोदीयो मे भी एकशर्करेय (Monosaccharides) सबसे हलके (जैसे मधु), द्विशर्करेय (जैसे गुड, चीनी) उससे भारी और बहुशर्करेय तथा कोषाधुयुक्त (Cellulose) द्रव्य सबसे अधिक भारी होते हैं। यही कारण है कि थकने के पश्चात् गुड या चीनी पानी के साथ सेवन करने से दूसरे खाद्य द्रव्यो की अपेक्षा अधिक शीघ्र आराम होता है।

(स) अग्नि संस्कार[१]--इससे खाद्य द्रव्या का स्वाद बढता है जो पाचन मे सहायता करता है। इसके अतिरिक्त उनकी भौतिक और रासायनिक स्थिति मे भी परिवर्तन करता है जिससे पाचन मे लघुता आ जाती है। यथा चावलो की अपेक्षा धान की खील अधिक लघु होती है। कच्चे अण्डे की अपेक्षा हलका उबाला हुआ अण्डा लघु होता है। शाकाहार सामान्यतया अग्नि सस्कार से हलका हो जाता है। अग्निसस्कार जैसे खाद्य द्रव्यो को हलका बनाता है वैसे उनको गुरु भी बना देता है। अण्डा अधिक उबालने पर पचने मे कठिन होता है। चावलो से चिवडा भारी होता है। सामान्यतया मासाहार अग्नि सस्कार से भारी हो जाता है।

(द) जठराग्नि—जिन पाचक रसो के द्वारा खाद्य द्रव्यो का पाचन होता है उसके बलाबल पर द्रव्यो की पाचन क्षमता निर्भर होती है। जठराग्नि बल बढाने मे खाद्य द्रव्यो की रुचि और गन्ध सहायता करती है और रुचि बढाने मे चटनी, अचार, मसाले इत्यादि सहायता करते है। जठराग्निबल बढाने का दूसरा साधन चर्वण है। चर्वण जैसे खाद्य द्रव्यो की भौतिक स्थिति मे परिवर्तन करके पाचन मे सहायता करता है वैसे ही लालास्त्राव को बढाकर तद् द्वारा जाठर रस और आन्त्र रस को बढाकर पाचन मे सहायता करता है।

---

१ नैसर्गिक खाद्य द्रव्यो को पोषण शक्ति उनकी भौतिक स्थिति तथा उनके ऊपर किए संस्कारों से परिवर्तित होती है। चरक ने खाद्य द्रव्यो के गुण धर्म मे लिखा है—

द्रव्य सयोगसंस्कारविकारान् समवेक्ष्य तु।
भिषगायास भक्ष्याणामाविशेद् गुरु लाघवम् ॥

—⊛—

'धन्वन्तरि' की अभिलाषा—

नाहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुख तप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम् ॥

न मैं राज्य चाहता हूँ, न स्वर्ग और न मोक्ष ही। मैं तो दु ख से सतृप्त जीवो के (न केवल मनुष्यो के) दु खो का नाश चाहता हू। कितनी महान एव पवित्र अभिलाषा है "धन्वन्तरि" की ?

—श्री गोकुलराम शर्मा 'योगेश' बी ए आचार्य (आयुर्वेद)
योगेश धर्मार्थ औषधालय, नावदी (नारनौल) हरियाणा

आहार के अष्टविध विशेष आयतन

श्रीजगदीश चन्द्र असावा, रीडर-ल० ह० राजकीय आयु० कालेज, पीलीभीत

स्वास्थ्य विज्ञान मे वर्णित तीन उपस्तम्भो मे आहार का स्थान सर्वोपरि है। जीवन मे सर्व प्रथम आहार की आवश्यकता होती है। शरीर के धारण-पोषण-वृद्धि आदि सभी जैवकीय क्रियाओ के संचालन हेतु आहार की आवश्यकता होती है। आहार के सम्बन्ध मे चरक सहिता मे आठ विशेष आयतन कहे गये हैं। इन अष्ट विध आहार विशेष आयतनो मे आहार सम्बन्धी नियमो का उल्लेख किया गया है। आहार का इन नियमो के अनुसार ग्रहण करना ही स्वास्थ्यदायक होता है, इनके विपरीत आहार रोगो का कारण होता है।

स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से इन सिद्धातो का ज्ञान परमावश्यक होता है। चिकित्सा विज्ञान मे स्वस्थ व्यक्ति के आहार एव रोगी के पथ्य दोनो की व्यवस्था का विषय सम्मलित रहता है अत दोनो अवस्थाओं में इन नियमो का पालन आवश्यक है। चरक में आठ विशेष आयतन निम्न प्रकार कहे गये है-१. प्रकृति, २ करण, ३ सयोग, ४. राशि, ५ देश, ५. काल, ७ उपयोग सस्था और ८ उपभोक्ता। यहा इनकी व्याख्या की गई है-

(१) **प्रकृति**-आहार एव औषधि द्रव्यो के स्वभाव का ज्ञान प्रकृति के द्वारा होता है। उदाहरणतया मास गुरु तथा मुद्ग स्वभाव से लघु होते हैं। शूकर मास गुरु तथा हरिण मास स्वभाव से लघु होता है।

प्रकृति के अनुसार द्रव्यो की पाचन सम्बन्धी क्रिया का ज्ञान होता है। कौन आहार सुपाच्य है तथा कौन दुष्पाच्य है इसका निर्णय कर आहार द्रव्यो का चयन करना चाहिए। कुछ द्रव्य मानव की पाचन क्षमता से प्रभावित नही होते है। ऐसे द्रव्यो का सेवन पाचन शक्ति पर अत्यधिक भार डालता है। अत उनका सेवन नही किया जावे। उदाहरणस्वरूप सैल्यूलोज नामक शर्करा तत्व तथा एलास्टीन (Elastin) नामक मांस तत्व का पाचन मानव शरीर मे नही होता है।

प्रकृति के अन्तर्गत आयु के अनुसार आहार द्रव्यो का चयन भी सम्मलित किया जाता है। यथा शैशव अवस्था में वनस्पति शर्करा (starch) के पाचन की क्षमता इस कारण नही होती है क्योकि इस आयु मे अग्न्याशय रस मे एमाइलेज नामक एनजाइम नही होता है।

(२) **करण** – द्रव्यो के सस्कार को करण कहते हैं। सस्कार जल, अग्नि सयोग, मथन एव भावना आदि से होता है। सस्कार से द्रव्यो के गुणो मे परिवर्तन हो जाता है। उबालने, तलने, भूनने के अनुसार आहार द्रव्यो के गुण परिवर्तित हो जाते है। रधन कर्म से जीवाणु आदि नष्ट हो जाते हैं। भोजन का आशिक पाचन हो जाता है तथा शरीर मे उसका पाचन सुगम हो जाता है। मसालो का सयोग भोजन को स्वादिष्ट बना देता है तथा पाचक रसो के स्रावो को भी उत्तेजित करता है। रधन कर्म से आहार द्रव्यो के जीवनीय द्रव्य अशतया नष्ट हो जाते है। आहार द्रव्यो मे निहितऊर्जा का लगभग ५%अश रधन कर्म से नष्ट हो जाता है।

अत आहार के निर्धारण मे उपरोक्त 'करण' के द्वारा आहार द्रव्यो के गुणो मे हुए परिवर्तनो का ध्यान रखना आवश्यक है। इस हेतु रधन द्वारा क्षीण जीवनीय तत्वो की प्राप्ति हेतु आहार मे कुछ ताजे फल सम्मलित करने चाहिए तथा आहार द्वारा वाञ्छित ऊर्जा का ५% अधिक ऊर्जा वाला आहार ग्रहण करना चाहिए। इसी प्रकार का अनुमान रधन कर्म के अतिरिक्त अन्य सस्कारो से गुण परिवर्तन के सम्बन्ध मे लगाना चाहिए।

(३) **संयोग**-आहार द्रव्यो का परस्पर मिलना सयोग कहलाता है। इसके द्वारा आहार मे अन्तर आ जाता है। सतुलित आहार मे परस्पर अनेक प्रकार के द्रव्यो का मिश्रण किया जाता है। आहार के आवश्यक घटक मास तत्व, वसातत्व, शर्करा तत्व, जीवनीय द्रव्य, खनिज तथा जल है। इनके स्रोत द्रव्यो के सयोग से सतुलित आहार

बनता है। इस निमित्त धान्य-दाले, दुग्ध, शर्करा, मांस, अण्डा, घृत तथा वनस्पति तेल आदि ग्रहण किये जाते है।

सयोग के २ भेद होते है—हितकर और अहितकर सयोग—

(१) हितकर सयोग—जब दो या अधिक द्रव्यो का सयोग स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है तो वह हितकर सयोग कहलाता है, जैसे चावल और मुद्ग से यवागू का निर्माण।

(२) अहितकर सयोग—जब आहार द्रव्यो का परस्पर सयोग स्वास्थ्य के लिए हानिकार होता है तो उसे अहितकर सयोग कहते है। यथा समान मात्रा मे घृत तथा मधु लेना।

(४) राशि—आहार की मात्रा का ज्ञान राशि से होता है। राशि का आहार के विवेचन मे सर्वाधिक महत्व है क्योकि मात्रापूर्वक आहार स्वास्थ्यकर तथा अमात्रायुक्त आहार रोग का कारण होता है। राशि दो प्रकार की होती है—

(अ) सर्वग्रह राशि—आहार की कुल कितनी मात्रा शरीर के पालन के लिए आवश्यक होती है, वह आहार की सर्वग्रह राशि (Total quantity of Diet) कही जाती है।

(आ) परिग्रह राशि—आहार के घटको की पृथक-पृथक मात्रा का ज्ञान परिग्रह राशि के द्वारा होता है। इसके द्वारा मानव स्वास्थ्य के लिए आवश्यक आहार मे धान्य दाले, सब्जी, दुग्ध, माँस आदि की पृथक मात्रा का समावेश होता है—

आहार राशि का सीधा सम्बन्ध शरीर के लिए आवश्यक ऊर्जा से होता है। अत राशि का निर्धारण निम्नलिखित हेतुओ द्वारा होता है।

(१) बी० एम० आर०—शरीर के विश्राम के समय जीवनोपयोगी क्रियाओ के सचालन हेतु आवश्यक ऊर्जा बी० एम० आर० कही जाती है। औसत व्यक्ति मे यह १८०० कैलारी प्रतिदिन होती है।

(२) शरीर की वृद्धि—बाल्यावस्था, किशोरावस्था, गर्भिणी स्त्रिया तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओ एव रोग के पश्चात् स्वास्थ्य लाभ करने वाले व्यक्तियो मे कोष-वृद्धिहेतु औसत आवश्यकता से ५०% अधिक ऊर्जा प्राप्ति हेतु अधिक मात्रा मे आहार की आवश्यकता होती है।

(३) व्यक्तिगत कार्य की प्रकृति—किसी व्यक्ति को उसके कार्य के अनुसार ऊर्जा की आवश्यकता होती है। ये कार्य मानसिक या शारीरिक मृदु, मध्य या कठोर परिश्रम वाले होते है। आहार राशि का निर्धारण निम्न अनुमान के आधार पर करना चाहिए। मानसिक कार्य करने वाले वर्ग को बी० एम० आर० से २५% अधिक, मृदु शारीरिक कार्यकरने वाले वर्ग को बी० एम० आर० से ३०–४०% अधिक, मध्यम शारीरिक श्रम करने वाले वर्ग को ५० से ६०%अधिक तथा कठोर श्रमजीवी वर्ग को ऊर्जा की बी० एम० आर० से शतप्रतिशत अधिक आवश्यकता होती है। यही कारण है कि बुद्धिजीवियो की अपेक्षा श्रमजीवियो को अधिक मात्रा मे आहार की आवश्यकता होती है।

(४) रचन-पाचन शोषण आदि क्रियाओ मे आहार की कुल ऊर्जा का १०%अश क्षीण हो जाता है। अत कुल आवश्यक ऊर्जा का १०% अधिक ऊर्जा वाला आहार ग्रहण करना चाहिए।

इन सभी हेतुओ के द्वारा आहार की सर्वग्रह राशि का ज्ञान होता है। परिग्रह राशि निर्धारण मे भी भोजन के पृथक-२ घटक निश्चित अनुपात मे ग्रहण किये जाते है। इस हेतु मास तत्व, वसा तत्व तथा शर्करा तत्व (protien and carbohydrate) की अनुमानिक निष्पति १ १ ४ होना चाहिये।

मात्रा का निर्धारण—आहार मात्रा अग्निबल पर आधारित होती है। मनुष्य का जितना भुक्त अन्न बिना प्रकृति को बाधा पहुचाए यथासमय पच जाये वही उस मनुष्य की आहार मात्रा का प्रमाण समझा जाना चाहिए। अष्टाग हृदय मे आहार मात्रा निर्धारण के सम्बन्ध मे लिखा है कि 'कुक्षि के २ भाग अन्न से तीसरा भाग जल से पूरित करलें। चतुर्थ भाग रिक्त छोड दे, जिसमे वातादि का सचार हो सके।' कुक्षि से आमाशय का ग्रहण कर आमाशय की क्षमता के आधार पर उपरि-सिद्धांत के अनुसार आहार मात्रा का निर्धारण सरल हो जाता है।

आमाशय की औसत क्षमता २ से ३ पाइण्ट होती है। अत उपरोक्त सिद्धात के अनुसार १ से १.५ पाइण्ट ठोस आहार ५ से ७५ पा० द्रव आहार ग्रहण करना चाहिए। मात्रापूर्वक भुक्त अन्न का लक्षण चरक सहिता में इस प्रकार बताया है —

(१) आमाशय पर किसी प्रकार का दबाव न पड़े। (२) हृदयके कार्य मे अवरोध न हो । (०) पार्श्व प्रदेश मे अन्न का भार प्रतीत न हो। (४) उदर प्रदेश मे भारीपन न हो। (५) इन्द्रिया प्रसन्न हो । (६) क्षुधा तथा पिपासा शान्त हो। (७) शारीरिक चेष्टाओ मे सुखानुभूति हो। (८) शरीर के समुचित पोषण की क्षमता हो।

आहार की हीन मात्रा—चरक में हीन मात्रा में ग्रहीत अन्न के लक्षणो का उल्लेख इस प्रकार किया है- बल वर्ण एव पुष्टि का क्षय, तृप्ति नहीं होती है, उदावर्त रोग होता है। वीर्य का क्षय, आयु एव ओज नाशक, शरीर मन बुद्धि एव इन्द्रियो का घात होता है। सार नष्ट हो जाता है। वात विकार होते हैं। सुश्रुत सक्षेप मे हीन मात्रा के लक्षण बताते हैं —' हीनमात्रमसतोष करोति च वलक्षयम् ।' अर्थात् सन्तोष न होना तथा बलका क्षय हीन मात्रा मे लिए गये आहार के लक्षण हैं। भोजन का पूर्ण मात्रा मे न मिलना तथा निकृष्ट कोटि का आहार शरीर मे अभावजन्य व्याधियो का कारण होता है। शरीर को आवश्यक ऊर्जा के अभाव मे धातुओ का दहन होता है जिससे दौर्बल्य शोष आदि हो जाते हैं।'पृथक-२ आहार घटको विशेषकर जीवनीय द्रव्यो तथा खनिज के अभाव मे तज्जन्य अभाव विकारो की उत्पत्ति होती है।

आहार की अति मात्रा—चरक तथा अष्टाग हृदय कार ने अतिमात्रा को दोषो का प्रकोपक कहा है- अतिमात्रा पुन सर्वानाशु दोपान प्रकोपयेत ।' सुश्रुत ने अतिमात्रा के सेवन से आलस्य, गौरव, आटोप, अवसाद आदि लक्षणो का होना कहा है।

पाचन केसस्थान स्राव मात्रावत आहार के पाचन मे समर्थ होते है। अधिक मात्रा मे आहार सेवन से निश्चय ही पाचन सस्थान के विकार अतिसार वमन आदि उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार राशि का आहार विधान मे महत्वपूर्ण स्थान है।

(५) देश—देश से स्थान का बोध होता है। स्थान का आहार के साथ बडा सम्बन्ध है। आहार द्रव्यो की उत्पत्ति स्थल, स्थानविशेप का प्रचलन , स्थान विशेष के लिए आहार विशेष की अनुकूलता आदि विपय सम्मिलित होते हैं। देश के अनुसार आहार द्रव्यो के गुणो मे अन्तर आ जाता है।

जागल्य, आनूप तथा मरु भेद से तीन प्रकार के देश कहे है। मध्यप्रदेश मे उत्पन्न द्रव्य लघु, तथा आनूप देशज द्रव्य गुरु होते है। आहार का एक ही घटक उत्पत्ति स्थल के अनुसार भिन्न गुण का हो जाता है। यह गुण वैचित्र्य उस द्रव्य की उत्पत्ति धरा के कारण होता है। खनिज लवणो के सङ्गठन के सम्बन्ध मे विशेपरूप से यह सिद्धात लागू होता है। ससार की विभिन्न भौगोलिक परिस्थितिया द्रव्यो के गुणो को प्रभावित करती हे। देश विशेष का प्रचलन आहार को प्रभावित करता है। इसके अन्तर्गत देश की सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक स्थिति, धार्मिक प्रथाये आदि का विचार किया जाता है। जैसे निर्धन वर्ग को बहुमूल्य आहार द्रव्य प्राप्त नही हो पाते। जिस आहार का अभ्यास नही होता है वह दुष्पाच्य हो जाता है। हिन्दू धर्म मे मासाहार निषिद्ध है—इत्यादि ऐसे विषय हैं जिनका आहार व्यवस्था मे ध्यान रखना आवश्यक होता है। आहार द्रव्यो का स्थानान्तरण भी पाचन को प्रभावित करता हे। यथा—अमेरिकन गेहू भारतीयो को सुपाच्य नही होता है । स्थानानुसार आहार की अनुकूलता भी विचारणीय विपय हे यथा—शीत प्रदेश मे मद्य का सेवन लाभदायक होता है जबकि उष्ण प्रदेश मे मद्य जीवन घातक होता है।

(६) काल—काल समय का बोध कराता है। आहार का समय के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होता है। काल दो प्रकार का होता है (१) नित्यग काल (२) आवस्थिक काल।

नित्यग काल—ऋतु एव सात्म्य की अपेक्षा करता है। स्वस्थ व्यक्ति को स्वास्थ्य के नियमो का पालन का निर्देश किया गया है। इसके अन्तर्गत ऋतुचर्या का समावेश होता है। प्रत्येक ऋतु के अनुसार शरीर मे दोषो की पृथक-पृथक स्थिति रहती है। तदनुसार ही आहार के चयन की व्यवस्था करनी चाहिए।

आवस्थिक काल—इसमें रुग्णावस्था का ज्ञान होता है। रोगग्रस्त व्यक्ति के आहार मे 'अन्तर आ जाता हे।

—शेपाश पृष्ठ १३० पर देखे।

अन्य जीवधारियो की भाति मनुष्य अपना अन्न अपक्वावस्था मे नही सेवन करता। प्रारम्भ मे मनुष्य भी कच्चा अन्न सेवन करते थे, परन्तु सहस्त्रावधि वर्षों के अभ्यास से उनका पचन सस्थान इस योग्य नही रहा। पकाने से अन्न प्राय सुपाच्य हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसका स्वाद बढकर वह अप्रत्यक्षतया पाचन में सहायता करता है। पकाने से उसका काठिन्य दूर होकर चर्वण मे आसानी मालूम होती है और अधिक चर्वण से भी पाच्यता (Digestibility) बढती है। शाकाहार पकाने से अधिक सुपाच्य हो जाता है। इसका कारण यह है कि शाकाहार मे जो मण्ड (Starch) रहता है वह कोशाधु (Cellulose) के खोल मे बन्द रहता है और उस पर पाचक रसो का कार्य भली भाति नही हो सकता। पकाने से कोशाधु की खोल फटकर मण्ड स्वतन्त्र होता है और पाचकरस उस पर अपना पाचन का कार्य भली भाति कर सकते हैं। पकाने से खाद्य द्रव्यो के भीतर जो अनेक विकारी जीवाणु या कृमियो के अण्डे तथा कोष्ठ हो सकते हैं उनका भी नाश हो जाता है। अन्न पकाने का सबसे बडा लाभ यही है। सक्षेप मे अग्निसस्कार से अन्न द्रव्य सुपाच्य तथा निर्जीवाणु हो जाते हैं। पकाने मे यद्यपि इतने लाभ है तथापि उससे खाद्य द्रव्यो की पोषणता कुछ घट जाती है। इसलिए पकाने मे इस बात का सदैव ध्यान देकर कार्य करना चाहिए कि खाद्य की पोषणाही मे विशेष कमी न होने पावे। शाक और चावल के पकाने मे और भी अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। यहाँ इनके बारे मे आवश्यक जानकारी दे रहे हैं—

शाक—बहुतेरे लोग शाको को अधिक पानी मे पकाते हैं और शाक गल जाने के बाद पानी को फेंक देते हैं। शाको मे हमारे शरीर के लिए बहुत लाभदायक अनेक खनिज लवण होते हैं। ये जल मे विलेय होने के कारण पानी मे निकल आते हैं और पानी फेंकने पर उनके साथ चले जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि पकाने के पश्चात् शाको का पानी फेंक देने से हम उन खनिज द्रव्यों से वचित हो जाते है। अत शाको को पकाते समय इस बात पर ध्यान दिया जाय कि इनका खनिजाश नष्ट न हो जाय। वास्तव मे शाको को पकाते समय उनमें पानी डालने की जरूरत ही नही होती, क्योकि उनमे बहुत जल होता है। यदि उन पर ढक्कन रखा जाय तो उनके जल से ही गल जायगी। यदि शाक बहुत ही शुष्क हो गयी हो तो उसमे थोडा सा पानी डालकर पकाना चाहिए। परन्तु कदापि पकाने पर पानी न फेंकना चाहिए। शाको में पकाते समय इमली डालने का जो रिवाज है, वह बहुत अच्छा है। इससे शाको की रुचि बढती है और उनके साथ-साथ अत्यम्लता के कारण शाको मे तथा अन्य द्रव्यो मे होने वाली ख, ग, घ जीवतिक्तियो की रक्षा होती है।

चावल—इनके बारे मे भी यही बात ध्यान मे रखनी चाहिए। चावलो के ऊपर जो भूसी या कन्ना होता है उसमे खनिज और जीवतिक्ति 'ख' विद्यमान रहती है। यन्त्र से साफ किये हुए प्रभृष्ट चावलो मे यह कन्ना नष्ट हो जाता है और यद्यपि देखने मे सफेद और सुन्दर दिखाई देते हैं तथापि उनकी पोषणाही बहुत घट जाती है और उनके लगातार सेवन से वातबलासक रोग (Beri-Beri) उत्पन्न होने मे सहायता होती है। हाथ से कुटे चावलो मे यह डर नही होता। क्योकि उनके ऊपर का कन्ना पूर्णतया नष्ट नही होता परन्तु इन चावलो को अधिक पानी डालकर पकाया जाय और पानी फेंक देने के पश्चात् सेवन किया जाय तो इससे उनका कन्ना नष्ट होकर वे यत्र से कूटे हुए चावलो के समान पोषणाही की दृष्टि से निकृष्ट हो जाते है। इसलिए चावलो को आवश्यक पानी डालकर ही पकाना चाहिए। चावल पकाने पर पानी

फेकने का रिवाज कुछ लोगो मे है, वह स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकर है।

भोजन पकाने की पद्धतियाँ

(१) तलना - तलना या कडकडाते हुए तैल या घी मे डालकर पकाने की पद्धति सबसे निकृष्ट है। यद्यपि इससे पदार्थों की रुचि कुछ बढ जाती है तथापि वे अधिक ताप पर पकने के कारण दुष्पाच्य और विदाही हो जाया करते हैं और लगातार सेवन करने से अग्निमाद्य, अम्लपित्त इत्यादि पाचन की खराबियाँ उत्पन्न करते है। इसके अतिरिक्त खाद्य द्रव्यो की पोषणाही भी कम हो जाती है।

(२) उबालना—इसमे पानी की सहायता से अन्न पकाया जाता है। अधिकतर खाद्य द्रव्य इसी पद्धति से पकाये जाते हैं। इससे खाद्य द्रव्यो की पाचनक्षमता बढ़ जाती है। इस विधि से अन्न पकाते समय केवल एक बात पर ध्यान देना चाहिए कि आवश्यकता से अधिक पानी न डाला जाय तथा यदि एकाध बार पानी अधिक हो जाय तो भी उसको फेंका न जाय।

(३) भूनना—इसमे आग पर रखकर या बालू में डालकर खाद्य द्रव्य पकाये जाते हैं। यह पद्धति अच्छी है। इसमे खाद्य द्रव्य अपने भीतर के जल की भाप से पकते हैं। इसके अतिरिक्त भुने हुए द्रव्यो में एक प्रकार का बढ़िया स्वाद उत्पन्न होता है जो पाचकाग्नि को तेज करता है। बाजरा, जुआर, गेहू, मकई के बाल, शकरकन्दी तथा जो भी अन्य द्रव्य इस पद्धति से पकाये जा सकते हैं उनको इसी रीति से पकाकर खाना हितकर होता है।

(४) भापना—इसमे पानी की भाप से खाद्य द्रव्य पकाये जाते हैं। भुनने और भापने मे फर्क इतना ही है कि भुनने मे पानी बाहर से नही डाला जाता और भापने मे बाहर की भाप से पकाया जाता है। इस पद्धति से खाद्य पकाने पर उनकी पोषणाही जरा सी भी कम नही हो सकती। इस पद्धति से पकाने के लिये दोहरे वर्तन की आवश्यकता होती है। बाहर के वर्तन मे पानी भरा जाता है और भीतर के बर्तन में पकाने वाली वस्तु। दोनो के ऊपर ढकना रहता है। आजकल इस पद्धति से रसोई बनाने के लिये स्वतन्त्र बर्तन मिलते है जो रधनित्र (Cooker) कहलाते हैं।

खाद्य पदार्थों को पकाने मे यह ध्यान में रखना चाहिये कि बहुत तेज आँच पर पकाये हुए पदार्थों की अपेक्षा मध्यम आँच पर पकाये हुए पदार्थ स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक लाभदायक होते है। क्योकि तेज आग पर पकाने से उनका बहुत सा भाग जलकर (Overcooked) नष्ट हो जाता है या शरीर की दृष्टि से अनुपयोगी हो जाता है। इसलिये रसोई बनाते समय कोई पदार्थ आवश्यकता से अधिक या कम पकाया जाय, इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उत्तम पकाया हुआ पदार्थ खाने मे स्वादिष्ट और अधिक से अधिक पोक्षणक्षम होता है।

यद्यपि पकाने से इतने लाभ होते है। तथापि कुछ खाद्य पदार्थ ऐसे है जो बिना पकाये खाए जा सकते हैं तथा दूसरे ऐसे है जिनको पकाने की आवश्यकता ही नही होती। दूध, चना, कुछ कन्द प्रथम वर्ग मे और विविध फल दूसरे वर्ग मे समाविष्ट होते है। यदि दूध को बिना पकाये सेवन करना हो तो वह सदैव धारोष्ण, स्वस्थ गौ के स्वच्छ थनो से, स्वच्छ कपडे से छना हुआ होना चाहिए। चना, उडद इत्यादि पदार्थ पानी से स्वच्छ धोने पर पानी मे रखकर अकुरित होने के बाद सेवन करने चाहिए। फल को भली भाँति देख भाल करके पानी से धोकर खाना चाहिए। पकाये पदार्थ पोषणक्षमता मे बिना पकाये नैसर्गिक ताजे पदार्थों का कदापि मुकाबला नही कर सकते। इसलिए दैनिक आहार मे इस प्रकार के पदार्थों का थोडा बहुत समावेश होना जरूरी है।
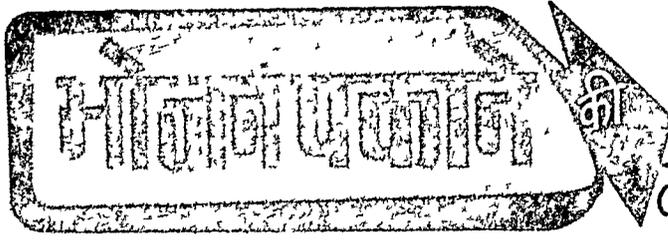
मनुष्य के धरती पर पदार्पण करने से लेकर आग के आविष्कार तक वह कच्चा मास अथवा कन्द-मूल फल ही खाता था। आग का आविष्कार मनुष्य के इतिहास मे एक क्रान्तिकारी घटना है जिसका प्रभाव उसके जीवन के अनेक क्षेत्रो पर अत्यधिक पडा। और कदाचित उससे सबसे अधिक प्रभावित हुआ भोजन का क्षेत्र। भोजन पकाने की क्रिया का आविष्कार शायद अकस्मात ही हो गया होगा जब मास का कोई टुकडा आग मे गिरकर भुन गया होगा। उस टुकडे मे मानव को एक अलग और विशिष्ट स्वाद मिला और धीरे-धीरे मनुष्य ने भोजन पकाने की कला मे अपने को पारगत कर लिया। उसने यह सीख लिया कि पकाने से खाद्य पदार्थों का महत्व बढ जाता है। भोजन पकाने मे भूनना, उबालना, तलना आदि शामिल है।

यह तो बिना किसी शका के कहा जा सकता है कि पकाने से आम-तौर पर खाद्य सामग्री की पोषकता बढ जाती है। तथा साथ ही वह और अधिक आकर्षक हो जाती है। इसके अतिरिक्त उसके स्वाद और गध मे भी सुधार होता है।

यह बात सामिष और निरामिष दोनो प्रकार की खाद्य सामग्री पर लागू होती है। मास को पकाने पर उसके सयोजी तन्तुओ मे उपस्थित इलास्टिन ऊष्मा के प्रभाव से सिकुड जाता है और जल की उपस्थिति मे कोलेजन जिलेटिन में परिवर्तित हो जाता है। फलत मासपेशियो के रेशे एक दूसरे से अलग होकर खाद्य सामग्री को मुलायम बना देते हैं। गर्मी पाकर प्रोटीन स्कदित (कोएगुलेट) हो जाते हैं जिसके होने से मास कठोर हो जाता है। वह सिकुड जाता है और उसमे से रस नि सारित होने लगते हैं। फलत उसका वजन भी कम हो जाता है। पेशीय ऊतको की माइग्लोबिन तथा रक्त कोशिकाओ की हीमोग्लोबिन के कारण मास का रङ्ग लाल हो जाता है। ऊष्मा के प्रभाव से इस विघटित मास का रग कत्थई हो जाता है। यह परिवर्त्तन सामान्यत १४६° फा से लेकर १५४° फा तक होता है।

मोटे तौर पर जिस तरीके से मास खाया जाता है उससे उसके पोषक तत्वों पर कोई विशेष अन्तर नही पडता। मास पकाने पर अधिक पचनीय हो जाता है किन्तु आवश्यकता से अधिक पकाने पर उसकी पाचकता कम हो सकती है। यही बात अण्डे से बने खाद्यो पर भी लागू होती है। पकने से प्रोटीन का पोषक पदार्थ के रूप मे महत्व बढ जाता है। वह आसानी से अङ्गीकृत हो जाता है और मास मे (इन्हीबीटर) ट्रिपसिन की मात्रा कुछ कम हो जाती है।

ट्रिपसिन कुछ दालो तथा फलीदारो फसलो मे भी पायी जाती है। अण्डे के पीले भाग मे उपस्थित बी वर्ग के एक विटामिन, बायोटिन, की सक्रियता अण्डे के सफेद भाग में उपस्थित एविडिन के कारण मन्द पड जाती है। अण्डे को पकाने अथवा थोडा उबाल देने से एविडिन पूर्णत नष्ट हो जाता है।

दूध

कच्चे दूध की अपेक्षा उबला हुआ दूध अधिक सुगमता से पचता है क्योकि उबले दूध को पीने पर पेट मे उसके कतरे छोटे आकार के बनते है। साथ ही उसमे मौजूद रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणु भी नष्ट हो जाते हैं। यद्यपि पास्चुरीकरण तथा जीवाणुरहित बनाने के उपचार मे दूध का पोषकमान कुछ घट जाता है, लगभग १० प्रतिशत थायमीन तथा २० प्रतिशत विटामिन सी नष्ट हो जाता है। जीवाणु नाशन उपचार मे ३० प्रतिशत थायमीन और ५० प्रतिशत विटामिन सी का ह्रास

होता है। फिर भी ऊष्मा उपचार से दूध के पोषक मान मे कोई विशेष अन्तर नही पडता।

कार्बोहाइड्रेट युक्त खाद्य

ऊष्मा के उपचार से मण्डयुक्त खाद्य सामग्री की पचनीयता भी बढ जाती है। इसका एक कारण हे मण्ड के कणो पर चढी सेल्यूलोज की पर्त फट जाती है और दूसरे यह कि पकने के पश्चात् मण्ड डेक्सट्रिन मे परिणित हो जाता है जो अपेक्षाकृत अधिक पचनशील है। स्टार्च के समुचित अवशोषण के लिये उसे पकाना जरूरी है। भूनने जैसी कियाओ से अपचनीय मण्ड भलीभांति पचनीय डेक्सट्रिन मे परिवर्तित हो जाता है। पानी के साथ उबालने पर कच्चा मण्ड घुलनशील मण्ड मे बदल जाता है जिस पर किण्व टियालिन तथा एनीलोप्सीन क्रिया कर सकते है।

सुक्रोज जैसे डाईसैकराइडो पर भी गीले तथा शुष्क उष्मोपचारो का यही प्रभाव पड़ता है। किसी अम्लीय माध्यम मे आर्द्र ऊष्मोपचार देने से चीनी मे प्रतीप शर्करा (इन्वर्ट शुगर) मे बदल जाती है जो अधिक पचनीय होती है। पौधो की कोषिका भित्तियो मे विद्यमान सेल्यूलोज पकाने पर मुलायम पड जाता है जिससे वह अधिक पचनीय हो जाता है। यही कारण है कि उबली हुई गाजर कच्ची गाजर के मुकाबले मे अधिक पचनशील होती है। यही बात हरी सब्जियो पर भी लागू होती है। सब बातो पर विचार करने पर इसकी पुष्टि होती है कि कार्बोहाइड्रेट युक्त किसी भी खाद्य सामग्री को पकाने से लाभदायी होता है, वह अधिक ग्रहणशील हो जाती है।

वसा

वसा गर्मी पाकर पिघलते है। उच्च ताप पर वसा वसाम्लो तथा एक्रोलीन मे विघटित हो जाते है। प्रत्येक वसा के विघटन का एक निश्चित ताप होता है। हम इसे धूम्र बिन्दु (स्मोक पाइन्ट) कहते हैं। पकाने से धूम्र बिन्दु घट जाता है। लगातार गर्म करने तथा अधिक समय तक नमी और वायु के सम्पर्क मे आने तथा अन्य खाद्य कणो की उपस्थिति के फलस्वरूप वसा ऐसी स्थिति मे आ जाता है कि गर्म करने पर उसमे केवल बुलबुले उठते है। उसमे खाना नही तला जा सकता। वह तवे से चिपक जाता है। यह स्थिति बुहलीकरण के कारण होती है और इससे वसा इस्तेमाल के योग्य नही रह जाता।

खनिजो पर प्रभाव

पानी मे उबालने पर सब्जियो मे से मैग्नीशियम तथा पोटैशियम के कुछ अश निकल जाते है परन्तु कैल्सियम और लोहा लगभग पूर्ववत रहते है। पकाने से कैल्सियम दो प्रकार से प्रभावित होता है—(क) दूध को गर्म करने से इनकी मात्रा कुछ कम हो सकती है किन्तु अनाज मे इसकी प्राप्यता बढ जाती है क्योकि उनका मण्ड पचनीय हो जाता हैं, (ख) कठोर जल मे उबलाने से हरी सब्जिया जल मे विद्यमान कैल्सियम को अपने मे खपा लेती है। भोजन पकाने पर हमारा शरीर लोहे की मात्रा को अधिक सुगमतापूर्वक ग्रहण कर सकता है। सब्जी मे पकाने के वर्त्तनो और चाकुओ के सम्पर्क मे आने पर लोहे का अश बढ जाता है। उबालने के दौरान भोजन मे से सोडियम कम हो जाता है परन्तु यह इसलिए महत्वपूर्ण नही है क्योकि भोजन मे हम काफी नमक डालते ही है और उसमे सोडियम होता है।

विटामिन

विटामिनो मे केवल विटामिन सी ऐसा हे जो वास्तव मे पकाने पर नष्ट हो जाता है किन्तु सावधानी से पकाने पर उसका भी काफी भाग भोजन मे रहा आता है। पकाने की साधारण विधि मे खाद्यो मे मौजूद विटामिन ए और डी को कोई क्षति नही पहुचती। परन्तु निम्न परिस्थितियो में विटामिन बी का कुछ अश नष्ट हो जाता है· (१) ऊँचे ताप पर पकाने से जैसा कि बिस्कुट तथा अन्य जलपान सामग्री तैयार करने के लिए जरूरी होता है, (२) सोडा मिलाने से, (३) उस पानी को फेकने से, जिसमें दाल फुलायी जाती हे, को फेक कर अथवा पकाने के दौरान पानी कम हो जाने के कारण।

परिरक्षण गुणो मे वृद्धि

इसमे कोई सदेह नही है कि पकाने से भोजन अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। यद्यपि भोजन की स्वादिष्टता का उसके पोषक मानो पर कोई प्रभाव नही पडता परन्तु वह ग्राह्यता को अवश्य बढाती हे। प्रयोगो से स्पष्ट हो गया कि कुत्ते जैसा एक मासाहारी जानवर भी कच्ची खाद्य

सामग्री के मुकाबले पके हुए भोजन को अधिक पसन्द करता है। इतना ही नही, भोजन के स्वादिष्ट होने के कारण हमारा पाचन सस्थान उसे अधिक सुरुचिपूर्ण ढग से ग्रहण करता है और इस प्रकार पाचन पर उसका अधिक लाभदायी प्रभाव पडता है।

भोजन पकाने मे गर्मी के प्रभाव से खाद्य सामग्री में विद्यमान सूक्ष्म कीटाणु नष्ट हो जाते हैं यद्यपि यह जरूरी नही कि उनके द्वारा उत्पन्न विषैले पदार्थ भी नष्ट हो जायें।

उपयोगी सुझाव

इस प्रकार हम देखते हैं कि भोजन की पौष्टिकता, स्वाद, पचनीयता के लिये पकाने का महत्व निर्विवाद है। लेकिन कभी-कभी इसके परिणाम अनुकूल नही होते। आवश्यकता से अधिक पकाने में न केवल समय अधिक लगता है, बल्कि पौष्टिकता तथा स्वाद में भी अन्तर पड जाता है। अत प्रत्येक खाद्य सामग्री के लिए अनुकूल ऊष्मोपचार का ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए कुछ सुझाव इस प्रकार है--

(१) सब्जी छीलने से पहले उसे धो लीजिये। सब्जी को बहुत छोटे टुकडो में कभी न काटिए क्योंकि जितनी अधिक सतह सम्पर्क मे आयेगी पोषक तत्वो की उतनी ही हानि होगी।

(२) सब्जिया उसी समय बनाइये जब भोजन का समय हो। सलाद वगैरह भोजन परोसने से ठीक पहले तैयार कीजिये।

(३) नीबू, दही आदि अम्लीय पदार्थों को मिलाने से सब्जियो में विटामिन सी की मात्रा बनाये रखने में सहायता पहुचती है।

(४) जमीन के ऊपर उगने वाली सब सब्जियो को गर्म पानी में और जमीन के नीचे उगने वाली सब्जियो को आरम्भ से ठण्डे पानी में ही छोड दीजिए।

(५) जड़ो वाली सब्जियां (मूली, गाजर आदि) को अच्छी तरह धोकर उबालना चाहिए क्योंकि उनका छिलका जलरोधी होता है।

(६) सोडे का प्रयोग न करें क्योंकि इससे विटामिन बी नष्ट हो जाता है।

(७) पानी की कम से कम आवश्यक मात्रा इस्तेमाल करें। सब्जी उबालने के बाद पानी को फेंकने के बजाय उसे दाल वगैरह उबालने मे इस्तेमाल कीजिए।

(८) भोजन को आवश्यकता से अधिक न पकाइए।

(९) प्याज, मूली तथा बन्दगोभी आदि के जमीन में ऊपर उठने वाले हरे भाग का उपयोग करना चाहिए क्योंकि उनमें खनिज और विटामिन होते हैं।

(१०) चावल को बीनने के बाद केवल एक बार धोना चाहिये। बार-बार धोने से खनिज और विटामिनो की मात्रा घट जाती है।

(११) चावल बनाने में जलीय शोषण की विधि अपनाइये। जितना चावल हो, उसका दो गुना गर्म पानी रखना चाहिए।

(१२) दालो वगैरह को जल की उचित मात्रा में धोकर सुखा लेना चाहिए।

(१३) पके हुए भोजन को अधिक समय तक रखना ठीक नही है। केवल समय पर भोजन पकाइये।

(१४) नष्ट हो सकने वाली खाद्य सामग्री को रेफ्रिजरेटर अथवा अन्य शीतल शुष्क स्थान मे रखिये। आवश्यक मात्रा में ही खाद्य सामग्री खरीदिये। आवश्यकता से अधिक न खरीदिये।

—(कुमारी) तंगम ई. फिलिप
प्रिंसीपल, इस्टीट्यूट आफ केटरिंग टेक्नालाजी एण्ड ऐप्लाइड न्युट्रिशन, बम्बई

अन्न परिरक्षण

प्राणिज और वनस्पतिज खाद्य द्रव्य पुतिजनक तथा विकारी जीवाणुओ के ससर्ग से सड़ने गलने लगते है । यह ससर्ग प्राय बाहर से होता है । ऐसे सड़े गले पदार्थों के सेवन मे शरीर को कुछ न कुछ हानि पहुचती है और कई बार अन्न विषमयता(Food poisoning)उत्पन्न होती है। इसलिए अन्न का परिरक्षण एक महत्व का कार्य है । खाद्य द्रव्यो की ताजगी (Freshness) और स्वाद ज्यो का त्यो रखकर उनकी पोषणक्षमता में जहाँ तक हो सके फर्क न होने देना अन्न परिरक्षण का उद्देश्य होता है । इसके लिये निम्न विधिया काम मे लाई जाती हैं । इन विधियो से बाह्य जीवाणुओ का सम्बन्ध बिच्छेद किया जाता है तथा भीतर प्रविष्ट हुए जीवाणुओ की वृद्धि होती जाती है—

(१) **शीत** (Cold)—हिम बिन्दु के नीचे का ताप जीवाणु वृद्धि का विरोधक होने के कारण आजकल शीत का प्रयोग अन्न रक्षा के लिए बहुत किया जाता है । इस ताप पर बहुतेरे परोपजीवी (Parasites) मर जाते है । अन्न परिरक्षण की दृष्टि से यह पद्धति श्रेष्ठ है, क्योकि इससे खाद्य द्रव्यो की नैसर्गिक रुचि या गन्ध मे जरा-सा भी फर्क नही होता, उनकी पाच्यता घटती नही तथा उनकी पोषणता जैसी की तैसी बनी रहती है । केवल तद्गत जीवतिक्तियो की शक्ति कुछ घट जाती है । यह इसका अल्प दोष है । परन्तु सबसे महत्व का दोष यही है कि शीत से खाद्य द्रव्यान्तर्गत जीवाणुओ का नाश न होने के कारण यदि पहले से खाद्य द्रव्य जीवाणु दूषित रहे तो शीत के बाहर आतेही तद्गत जीवाणुओ की वृद्धि प्रारम्भ होकर वे सड़ने लगते हैं । इस पद्धति का उपयोग मास, मछली, अण्डा, फल, दूध इत्यादि खाद्य द्रव्यो के लिए किया जाता है । बड़े पैमाने पर अन्न की परिरक्षा करने के लिए तथा एक देश से दूसरे देशो मे मास मछली भेजने के लिए इसका उपयोग बहुत होता है । खाद्य द्रव्यो को रखने के लिए बड़े बड़े प्रशीतक (Refrigerators) बनाये जाते है । एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त मे लोहमार्ग के (Railway) द्वारा अन्न भेजने के लिए प्रशीतक पोत (Ships) रहते है । घरेलू कामो के लिए भी इसका उपयोग किया जा सकता है क्योकि विद्युत प्रवाह पर चलने वाले छोटे छोटे प्रशीतक बनाये गये है ।

(२) **शुष्कीकरण या द्रवापहरण** (Drying or Dehydration)—जीवाणुओ की वृद्धि के लिए जलाँश की आवश्यकता होती है । यदि खाद्य द्रव्यो मे से जलाश निकाल दिया जाय तो वे अधिक काल तक सेवन योग्य रह सकते है । अनेक शाक, कन्द, फल (आलू, आवला, कच्चा आम, नारियल की गिरी, किशमिश, मेवे इत्यादि) सुखाकर रखे जाते है । विस्की और दूध की बुकनी शुष्कीकृत द्रव्यो के प्रसिद्ध उदाहरण है । सुखाने से जीवतिक्ति 'क' 'ख' और 'घ' मे कोई फर्क नही पड़ता, परन्तु 'ग' का कुछ अश नष्ट हो जाता है । आजकल मास और अण्डे भी विशेष पद्धति से सुखाकर रखे जा रहे है ।

(३) **लवणीकरण और अचार** (Salting and Pickling) —नमक का उपयोग (१८–२१%) मास मछली के लिए किया जाता है । नमक से जीवाणुओ की वृद्धि रुक जाती है परन्तु उनका नाश नही होता । विविध अचारो की परिरक्षा मे नमक एक प्रधान परिरक्षी (Preservative) द्रव्य होता है ।

(४) **धूपन** (Smoking)—मास मछलियाँ इस प्रकार से भी रखी जाती है । प्रथम उन पर लवण का प्रयोग किया जाता है । तदनन्तर धूम का प्रयोग करते है । धूपन के समय मास मछलियो का जलाश कम हो जाता है और उन पर धुंए से निकले हुए कुछ द्रव्यो (Pyroligneons) की एक पतली तह बनती है जो कुछ अश तक जीवाणुनाशन का काम करती है । परन्तु

इसका असर गहराई तक नही होता और चूँकि यह मास फिर से पकाकर नही सेवन किया जाता इसलिए यदि भीतर कोई परोपजीवी रहा हो या मास सड़ गया हो तो उससे हानि हो सकती है।

(५) तपन और डिब्बी भरण(Heat and canning)—इसमे खाद्यद्रव्य उबालकर निर्जीवाणु करके पश्चात् गरम करके निर्जीवाणु किए हुए डिब्बो मे भर दिए जाते है। पश्चात् उनका मुख बन्द किया जाता है। डिब्बो मे कुछ शून्यक [Vacuum] बनता है जिसके कारण उनके दोनो पृष्ठ भीतर दब जाते है। इस पद्धति से मास, मछली, फल, फलो के रस तथा अनेक खाद्य द्रव्य रक्खे जाते हैं। अन्न परिरक्षण की यह सबसे अधिक व्यवहृत और सर्वोत्तम पद्धति है। इसमे केवल जीवतिक्ति 'ग' की थोडी सी हानि होती है।

(६) अवलेहिका—चीनी जब अवलेह या पाक (Syrup] के रूप मे परिणित होती है तब उसमे जीवाणुनाशक और वृद्धिनिरोधक गुण उत्पन्न होता है। फलो के मुरब्बे, पाक, अवलेह इसी कारण से टिकाऊ होते हैं।

(७) रासायनिक द्रव्य—इसमे धूपिक (Benzoic) अम्ल और धूपीय (Benzoates), टॉनिक (Boric) अम्ल, और टंकण (Borax), नम्रलिक (Salicylic) अम्ल, वभ्रसुब्युद (Formaldehyde), उदजन अति जारेय (H_2O_2) क्षारातुह्यगारीय इत्यादि रासायनिक द्रव्य खाद्य द्रव्यों में छोड़ कर उनकी रक्षा की जाती है। जहाँ तक हो सके अन्नरक्षा के लिए रसायनों का प्रयोग न करना चाहिए। अनेक देशो मे इनका प्रयोग प्रतिनिद्ध किया गया है। अन्नपरिरक्षा की विधियों में प्रशीतक की विधि उत्कृष्ट, रसायन विधि निकृष्ट और शेष विधियाँ मध्यम होती हैं।

(८) वातानुकूलन (Air conditioning)—वात सचार, आक्लेद (Humidity), प्राण वायु और प्रा० द्विजारेय (CO_2) इनका अनुकूल नियन्त्रण करने से अनेक द्रव्यो का परिरक्षण होता है। इसका उपयोग आजकल फल मास इत्यादि के लिए किया जाता है। प्रा० द्विजारेय का वातावरण तृणाणुओ का यद्यपि नाश नहीं कर सकता तथापि उनकी वृद्धि को रोक सकता है। इसको वातसग्रहण (Gas Storage) भी कहते हैं।

(९) आलेपन (Glazing)—इसका उपयोग मुख्यतया अण्डो के लिये किया जाता है। इसमे क्षारातुसैकतीय (Sodium slicate) का लेपन उन पर किया जाता है।

(१०) तैलन (Oiling) तेलो मे डुबोई हुई चीजें अच्छी तरह रहती है। इसके लिए मुख्यतया सरसो का तैल प्रयुक्त किया जाता है। शाक, व फलों के अचार तैलो में ही बनने के कारण टिकाऊ होते है। नमक भी इसमें सहायता करता है।

(पृष्ठ १२३ का शेषांश) .. आहार के अष्टविध विशेष आयतन

वैकृत अवस्था मे आहार पाचन शक्ति भी प्रभावित होती है। अत लघन, पाचन आदि के अनुसार आहार की व्यवस्था की जाती है। उदाहरण रूप मे शल्य कर्म-अस्थि-भग्न आदि की अवस्था मे मासतत्व (protein) प्रधान आहार दिया जाता है। मधुमेह के रोगी को शर्करा तत्व (carbohydrate)रहित आहार की व्यवस्था की जाती है।

(७) उपयोग संस्था—इसमे आहार के उपयोग सम्बन्धी नियमो का समावेश होता है। स्वस्थवृत्त मे वर्णित आहार सेवन के नियम यथा आहार का समय, स्थान, आहार ग्रहण करते समय आसन, मागलिक वस्तुओ का दर्शन, मन की एकाग्रता, आहार मे रस सेवन का क्रम, भोजनोत्तर कर्म, वर्जन कर्म आदि नियम आहार कहे जाते है। सुश्रुत ने कहा है—'युक्तिपूर्वक सस्कार किया हुआ दोषरहित गुणो से युक्त भोजन सेवन करना चाहिए। दोष एव समय आदि का विभाग कर दोनो समय उच्च आसन पर सुखपूर्वक बैठकर समदेह, अन्न मे तल्लीन होकर भूख लगने पर समय पर शास्त्रज्ञ मनुष्य आत्मा के अनुकूल हलका, स्निग्ध, ताजा, गरम, द्रवबहुल भोजन उचित मात्रा मे करे। इस प्रकार ये नियम स्वास्थ्य के लिये लाभदायक होते है।

(८) उपभोक्ता—आहार ग्रहण करने वाला उपभोक्ता कहा जाता है आहार साम्य की दृष्टि से उपभोक्ता का विशेष महत्व है। सात्म्य का अर्थ है किसी व्यक्ति को अनुकूल आहार। अभ्यास एव उपभोक्ता का स्वभाव किसी व्यक्ति के आहार निर्धारण मे अत्यन्त आवश्यक होते हैं। उपभोक्ता की व्यक्तिगत परिस्थितियो का भी प्रभाव आहार द्रव्यो के चयन पर पड़ता है।

इस प्रकार ये आहार के आठ विशेष आयतन आहार स्वस्थ वृत्त(Hygiene of diet) के आधारभूत सिद्धात हैं।

गरम मसाला
का भोजन में महत्व

श्री सत्यप्रकाश जायसवाल

भोजन (अन्न या सब्जी) के साथ इन मसालो को एक दूसरे के साथ सहयोग कर काम चलाना चाहिए ताकि भोजन का परिपाक ठीक हो सके और उसका प्रयोग (उपयोग) करने वाला शरीर भी स्वस्थ रह सके और उसका यथोचित सवर्द्धन हो सके। यदि ये मसाले ठीक से सहयोग नही करेगे तो भोजन का ठीक से पाचन नही होगा, परिणामस्वरूप शरीर अस्वस्थ हो जायेगा।

यह विरोधी शब्द ठीक जचता नही, कारण विरोधी का मतलब तो सीधा-सीधा है सत्तारूढ़ जो कहे उसका विरोध करना, परन्तु हम इन्हे सहयोगी भी नही कह सकते, कारण ये सत्तारूढ हो जावेगे। इसके लिए, सहपान अनुपान या सात्म्य ऐसा कोई शब्द जैसाकि आयुर्वेद मे व्यवहरित है होना चाहिए जिसका मतलब होता है दवा या द्रव्य (भोजन) मे जो अच्छे गुण हैं उनका सहयोग करते हुए या बढाते हुए साथ, साथ ही जो उनमे कुछ अवगुण हो उनको कम कराना या निराकरण करना। हमारे विचार से अनुपान या सहपान का विशेष यही मतलब है कि उनके अवगुण को कम करना या नष्ट करना पहले, और दवा या भोजन तो रोग या शरीर के फायदे के लिये दिया ही जा रहा है वह तो अपना, काम करेगा ही।

जैसे हृदय रोग मे, अर्जुन चूर्ण के बदले उसका 'क्षीर-पाक' का विधान इसलिए अधिक महत्व रखता है कि उसके विशेष कषाय का दुष्परिणाम न हो और उससे होने वाला फायदा जो हृदय को मिलना चाहिए वह मिल जाय एव दूध भी आसानी से पच जाय। जैसे अनुपान के लिए कहा है—

> सुखेन पाचयत्यन्नं रोचयत्यपकर्षति।
> अनुपान मनुष्याणा सात्म्यतां च प्रयच्छति॥
>
> —भेल सहिता सू स्था

यानी अनुपान वह है जिससे अन्न का पाचन ठीक से हो एवं भोजन मे रुचि बढे और जो मनुष्य के लिए सात्म्य भी हो। सात्म्यता के विषय मे चरक वि स्था १ मे लिखा है—

> "सात्म्यं नामतद् यदात्मन्युपशेते"

यानी जो अपनी आत्मा (शरीर) के लिए सुखकारी हो। अनुपान का गुण है कि जो भोजन मे गडबडी हो उसके दोष को ठीक करते हुए शरीर को पोषकता प्रदान करें।

> दोषवद् गुरु वा भुक्तमति मात्र मथापि वा।
> यथोक्ते नानु पानेन सुखमन्न प्रजीर्यति॥
>
> सु सू ४६

अनुपान के गुण के विषय मे हमारे ऋषि एव आचार्य निम्न प्रकार का विचार प्रकट करते है—

> रोचन बृहण वृष्य दोष सघात भेदनम्।
> तर्पण मार्दवकर श्रमक्लमहर सुखम्॥
> दीपन दोष शमन पिपासाच्छेदन परम्।
> बल्यं वर्णकर सम्यगनुपान सदोच्यते॥ -सु सू ४६

हमारे आयुर्वेद की परम्परा रही है कि दोष मे भी गुण ढूढना—विष के प्रयोग से ही रोगो एवम् विष को ठीक करना, उससे अमृत सा काम लेना। ये चीजे हमारे आचार्य चरक ने भोजन के साथ अनुपान या सहपान वाले द्रव्यो मे प्रदर्शित किया हे जो देखने मे नुकसानदायक मालूम पडते हैं परन्तु सयोग भेद से अमृत सा कार्य करते है।

चरक सहिता सूत्र स्थान अध्याय २७ मे जहाँ अन्न-पान विषयक "अन्नपान प्राणिना प्राणिसज्ञकानां' ·· ' प्रकरण हे वही हितकर एव अहितकर द्रव्यो को भी गिनाया है साथ ही उसमे अन्नपान के विशेप घटको का विशेप गुण या कार्य भी अलग अलग बतलाया है—

मधु संदध्याति, क्षीर जीवगति, मास बृंहणाति रस प्रीणयति, सुरा जर्जरी करोति आदि का वर्णन किया है उसी मे देखने पर अहितकर वस्तु होने पर भी घटक सयोग की वजह से द्रव्य अहितकर से हितकर गुण वाला हो जाता है। जैसे मदिरा–सुरा जर्जरी करोति—देखने मे हानिकर वस्तु मालूम पड़ती है परन्तु चू कि वह मास को पचाने मे हितकर, वह मास पचकर ही "मासेन मास वृद्धि" को चरितार्थ कर सकेगा। वैसे मदिरा से यकृत विकृति पैदा होती है लोग मानते है परन्तु जब उसके साथ मास का प्रयोग किया जाता है तो यह विकृति नही होती है इसे आज का विज्ञान भी स्वीकार करता है।

जैसे क्षार द्रव्य है वह दृष्टिदोष पैदा करता है एव शुक्र को नष्ट करता है परन्तु अन्न को पचाता है एवम् क्षार दोष को दूर करने वाले अम्ल का उसमे सन्निवेश किया है जिससे क्षार अपने दोष को प्रदर्शित न कर सके (अम्ल क्षार को उदासीन कर देता है)।

अन्न मे भी गेहू, पुराना चावल, जौ–ये मधुर द्रव्य है परन्तु ये कफ को नही बढाते अत इन्ही अन्नो का सामान्य प्रयोग किया जाता है—आदि ....।

जहाँ चरक ने हितकर एव अहितकर आहार द्रव्यो को गिनाया है वही द्रव्यो के बारह सग्रह वर्गों को भी गिनाया है—

(१) शूकधान्य (२) शमीधान्य (३) मासवर्ग (४) शाक वर्ग (५) फल वर्ग (६) हरित वर्ग (७) मद्य वर्ग (८) जल वर्ग (९) गोरस वर्ग (११) इक्षुवर्ग (११) कृतान्नवर्ग (१२) आहारोपयोगी वर्ग

जहा तक सामान्य दृष्टि इन वर्गों पर जाती है वहाँ हम पाते है कि भोजन के अन्दर आहारोपयोगी वर्ग ही जिनमे केवल मसाला सम्वन्धी द्रव्य है पाते हैं। इसीसे हम इन मसालो की विशेषता को माप सकते है कि ये मसाले कितने महत्व के हैं जिनके लिए एक अलग वर्ग ही बनाया गया है।

शूकधान्य शमीधान्य ·" कृतान्नाहारयोगिनाम्।
—च सू २७

अब हम चरक मत से उन आहारोपयोगी वर्ग को देखते हैं तो उनमे निम्न द्रव्य पाते है—

१. तैल—

कषायानुरस स्वादु सूक्ष्ममुष्ण व्यवायि च।
पित्तलं बद्ध विण्मूत्र न च श्लेष्माभिवर्द्धनम्॥
वातघ्नेषरास वल्य त्वच्यं मेधाग्नि वर्द्धनम्।
—च सू २७,–२८६

विशेषकर इन्होने एरण्ड, सरसो, चिरौंजी, तीसी वर्रे तेलो का वर्णन किया है। ये सब अपने गुण के अनुसार अपना कार्य करते हैं।

२ वसा एव मज्जा—

मधुरो बृंहणो वृष्यो " ....विनिर्दिशेत।
—च सू २७,–२९५

३. शुण्ठी—

सस्नेह दीपनं वृष्यमुष्णं वातकफापहम्......
—च. सू २७,२९६

४ आर्द्र एव शुष्क पिप्पली—

श्लेष्मा मधुरा चार्द्रा ·· . ... ।
सा शुष्का कफ वातघ्नी...... . ॥—२९७

५ मरिच—

नात्यर्थमुष्ण मरिचम् वृष्य···· ··· ॥—२९८

६ हीग—

वातश्लेष्म विवधघ्नम् ·" ···· ॥— २९९

७ लवण—

रोचन लवण सर्व पाकि स्त्र स्य निलापहम्।
—च सू २७,–३००

विशेषकर सेंधा, सोचर, विड, उद्भिज, काला एव सामुद्र नमको का स्वभावानुसार वर्णन किये है।

८. यवक्षार–हृत पाण्डु ग्रहणी रोग ' । च. सू २७–३०५, ३०६

९. कारवी (स्याह जीरा) कुञ्जिका (मगरैला) अजाजी (जीरा) यवानी (अजवायन) धनिया, तुम्बरु (तेजवल)—ये सभी रुचि उत्पन्न करने वाले, जठराग्नि दीपक वात, कफ नाशक, शरीर की दुर्गन्ध को दूर करने वाले होते हैं।

कारवी कुञ्जिकाऽजाजी यवानी ' । च सू २७–३०७

अन्त मे यहा तक कह दिया है कि आहार मे आने वाले द्रव्यो के विभाग निश्चित नही—

आहार योगिना भक्ति निश्चयो न तु विद्यते ।

—च सू २७–३०८

आगे चार्ट मे (पृष्ठ १३४–१३५ पर) आहारोपयोगी गुण दिखाए गये हैं।

जहाँ हम चरक के आहारोपयोगी वर्गो मे उपर्युक्त द्रव्यो को पाते हैं वही हम सुश्रुत-सहिता के सूत्र स्थान के ४६ वें अध्याय मे छौकने वाले अन्नपान विधि अध्याय मे अनेक वर्गों को गिनाया है वही शाकवर्ग मे इन मसालो को फलशाक, पिप्पलादि द्रव्य के नाम से वर्णन किया है वहाँ छौकने वाले द्रव्य, मसाले के द्रव्य पिपल्यादि वर्ग को पाते है। वहा पर इसका विशद विवेचन किया है जो निम्न है—

मस्कार द्रव्य–धनियाँ, जीरा, हीग आदि

पिप्पली मरिच शृङ्गवेरार्द्र ''''' लशुन पलाण्डु कलाय प्रभितानि '''' '। —सु सू. ४६–२२१

कटून्युष्णानि रुच्यानि वातश्लेष्महराणिच ।
कृतान्नेषूपयुज्यन्ते सस्कारार्थमनेकधा ॥

—सु. सू ४६–२२२

तेषा गुर्वी स्वादुशीता पिपल्यार्द्रा कफवहा ''''''
बोधोघ्नी कटुका किञ्चित तिक्ता स्रोतोविशोधनी ॥

— सु सू ४६–२३१

आगे चार्ट मे (पृष्ठ १३४–१३५ पर) आहारोपयोगी गुण दिखाये गये है।

इसी प्रकार वाग्भट्, काश्यप सहिता, भेल सहिता, शार्ङ्गधर सहिता, भाव प्रकाश आदि मे अन्नसाधन प्रक्रया प्रकरण मे इन मसाला द्रव्यो का वर्णन मिलता है जो कृतयूष, अष्टगुण मण्ड, सप्त मुष्टिक यूष, मास रस आदि के साधन मे कार्य करते हैं। जो हमारे चरक सुश्रुत सहिताओ के ही उद्धरण हैं जिनसे अन्न आदि की विशेषता बढ़ जाती है। इनमे अधिकतर सोंठ, पीपर, मरिच, धनिया, हीग, तैल, सेधानमक आदि के लिए साधारण करक द्रव्य कहा है।

आजकल लोग सामान्यतया मसालो का प्रयोग साग सब्जी, मास, अचार आदि बनाने मे प्रयुक्त मसालों के लिए ही समझते है परन्तु हमारे आचार्यों ने इनको आहारोपयोगी द्रव्यो मे गिनाया है। यानी खाने पीने वाली जितनी भी चीजे है, जहा इनके गुणो की आवश्यकता हो प्रयोग किये जा सकते है। इसका अनुमान हम इसीसे कर सकते है कि जहाँ चरक सहिता मे आहार द्रव्यो का वर्णन किया गया है वहा शाक वर्ग ही अलग लिखा है। वहाँ इन मसालो का यानी आहारोपयोगी वर्ग ही अलग गिनाया है जिसका मतलब यह समझ मे आता है कि जहा भी आहार मे इनका उपयोग (जरूरत) समझा जाय प्रयोग किया जाय यानी इनके अनुसार उपर्युक्त बारह वर्गों मे जहा जरूरत हो जैसे शाक वर्ग मे मांस रस, कृतान्न वर्ग, कृतयूष, यवागू, वेशवार, अष्टगुण मण्ड आदि वही हम सुश्रुत सहिता मे अन्नपान विधि अध्याय मे ही पिपल्यादि कटु फल शाक पिप्पल्यादि गुण शाको के वर्णन मे मिलता है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये द्रव्य विशेषकर शाक मे ही प्रयोग करना चाहिए। वैसे जहाँ जरूरत हो ये द्रव्य मिलावेगे उसके अनुसार गुण पावेंगे जैसा इन्होने मासरस, वेशवार आदि के वर्णन मे मसालो का वर्णन किया है और इन्होने सस्कार द्रव्य कहा है।

वैसे सामान्यतया इन द्रव्यो को जिन्हे कि आजकल मसाला द्रव्य की सज्ञा देते है वाग्भट् आदि मे भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है और स्थल-स्थल पर भाव प्रकाश, शार्ङ्गधर-सहिता, भैषज्य रत्नावली आदि मे भी इनका वर्णन मिलता है परन्तु जैसा कि सामान्यतया हम आज के प्रयोग मे हल्दी, लौग, जाविश्री, राई, बडी इलायची आदि का सामान्य मसालो मे प्रयोग पाते है परन्तु चरक सहिता, सुश्रुत सहिता, वाग्भट, शार्गधर आदि मे हल्दी आदि का प्रयोग मसाले के रूप मे नही मिलता है। भाव प्रकाश में जिसकी टीका श्री प० विश्वनाथ जी द्विवेदी ने किया है वहाँ उन्होंने लिखा है कि कढ़ी के मसाले मे

मसालों के आहारोपयोगी गुण

संख्या	चरक कालीन मसाले	सुश्रुत कालीन मसाले	वर्तमान मसाले	रस	गुण	वीर्य	विपाक	दोष कर्म वात पित्त कफ	विशेष
१	तैल सामान्य			कपायानुरस	सूक्ष्म	उष्ण	कटु	— +	बलवर्द्धक, अग्नि वर्द्धक
	एरण्ड तैल			मधुर	गुरु स्निग्ध	,,	मधुर	— +	स्रोतो विशोधनी, हृद्य, वृष्य
	सरसो ,,		१ ,,	कटु	स्निग्ध	,,	कटु	— + —	शुक्रनाशक,
	चिरौंजी ,,			मधुर	गुरु	,,	मधुर	— — +	तृषा शामक
	तीसी ,,		–	म, अम्ल	स्निग्ध	उष्ण	कटु	— +	विबन्ध हर, आनाहहर
	बर्रे ,,				स्निग्ध	,,	,,	+ + +	पचने मे भारी, विदाही
२	वसा-मज्जा			मधुर		प्राणीनुसार			दीपन, ओज, वृष्य, विषनाशक
३	शुण्ठी	१ ,,		कटु	स्नि लघु	उष्ण	मधुर	— —	दीपन, वृष्य, रुचिकारक, हृद्य
४	आर्द्र पिप्पली	२ ,,		मधुर	गुरु स्नि	शीत	,,	+	दीपन
	शुष्क पिप्पली	३ ,,		कटु	ल ती स्नि	अनुष्ण	,,	—अविरोधी—	दीपन, तृप्तिघ्न, शुक्रवर्धन
५	काली मिर्च	४ ,,	२ ,,	,,	ल. ती.	,,	कटु	— + —	रुच्य, दीपन, वृष्य नही
६	हींग	५ ,,	३ ,,	,,	ल ती स्नि	उष्ण	,,	— + —	दीपन, अजीर्ण नाशक, पाचक रुचि उत्पादक, शूलशमन
७	स्याह जीरा	६ ,,	४ ,,	,,	ती	,,	,,	— + —	दीपन, मूत्रकारक, दुर्गन्धहर
	श्वेत जीरा	७ ,,	५ ,,	,,	रूक्ष ल. तीक्ष्ण	,,	,,	— + —	रुच्य, अच्छी गन्ध ,, ,, पाचन, आध्मान
८	मगरैल		६ ,,	क तिक्त	ल रु ती	,,	,,	— + —	,, ,, ,,
९	अजवायन	८ ,,	७ ,,	क ति	ती ल.	,,	,,	— + —	, ,, ,, शूलहर
१०	धनियाँ		८ ,,	क ति	स्निग्ध	,,	मधुर	— —	, ,, तृषानाशक, वृष्य
११	तेजवल			क ति	ल रू ती.	,,	कटु	— —	,, ,, ,, दीपन, पाचन
१२	लवणसामान्य			लवण	किंचित गुरु स्नि. तीक्ष्ण	,,	मधुर	—	रुच्य, पाचन, दोष निष्कासन
	,, सेंधा			ईषत् मधुर	स्निग्ध रा	शीत	,,	— — —	रुच्य, दीपन, पाचन, शुक्रवर्धक
	,, सोचर			लवण, कटु	सू ल	उष्ण	,,	—	रुच्य, उदरशोधक, दीपन, पाचन
	,, बिड			लवण	तीक्ष्ण	,,	,,	—	दीपन, ऊर्ध्व-अधो वायु अनुलोमन
	,, उद्भिज			क्षारीय क ति	तीक्ष्ण	,,	कटु	—	शरीर को गीला करना
	,,कालानमक			ल क	सू रा	,,	मधुर	—	गन्ध नहीं अन्य गुण सोचर सा
	,, सामुद्र		९ ,,	इषतमधुर ति	गु स्नि	साधारण	मधुर	— +	दोष निकालने वाला
१३	,, क्षार			कटु	ती रूक्ष ल	उष्ण	कटु	—	दीपन, पाचन
		९ गोलीकाली मिर्च			गु		मधुर	+	दीपन
		१० सफेदमिर्च				सम			अन्य मरिचों की अपेक्षा गुणकारी
		११ अदरख	१० ,,	कटु	गु ती	उष्ण	मधुर	— —	रुच्य, वृष्य, हृद्य, शूल

मसालों के आहारोपयोगी गुण

संख्या	चरक	सुश्रुत कालीन मसाले	वर्तमान मसाले	रस	गुण	वीर्य	विपाक	दोष कर्म वात पित्त कफ	विशेष
		१२ कारवी		कटु	तीक्ष्ण	उष्ण	कटु	—+—	दीपन—रुच्य
		१३ करवी		,,	,,	,,	,,	,, ,, ,,	,, ,,
		१४कालीजीरी		,,	,,	,,	,,	,, ,, ,,	,, ,,
		१५हराधनियाँ	११ ,,	कषा क. ति	लघु स्निग्ध		मधुर विशेष	—	सुस्वादु, सुगन्धित, हृदय प्रिय
१४		१६ रसोन	१२ ,,	कटु मधुर	गु स्नि ती. पिच्छिल	,,	कटु	—+	बल्य, वर्ण्य, पाचक, आध्मान खून बढ़ाने वाला
१५		१७ पलाण्डु	१३ ,,	क म	ती गु	उष्ण कम	मधुर	—+	अग्निबर्द्धक, बलबर्द्धक, दीपन वृष्य
१६			१४ हल्दी	क ति	रूक्ष	उष्ण	कटु	———	वर्ण्य, धातुपोषण, क्षतिपूर्ति
१७			१५ मेथी	तिक्त	स्निग्ध	,,	,,	———	अग्निबर्द्धक, दीपन
१८			१६ जावित्री	म ति	लघु	,,	,,	— —	रुच्य, तृषानिग्रह, विषनाशक पाचक, सुगन्धित
१९			१७ लौंग	क ति	ल. ती. स्नि	शीत	,,	———	दीपन, पाचन, तृषानिग्रह रुच्य, वृष्य, आध्मानहर
२०			१८ ब इला	कटु	ल रूक्ष	उष्ण	कटु	+——	तृषा कम करना
२१			१९ दालचीनी	म. क ति.	ल रू ती	,,	,,	——	सुगन्धित, वृष्य, वर्ण्य, तृषाहर
२२			२० तेजपात	मधुर	किंचित तीक्ष्ण लघु पिच्छिल	,,		— —	अरुचिनाशक, हृद्य
२३			२१ राई	क ति.	तीक्ष्ण किंचित रूक्ष	,,	,,	+—	अग्निप्रदीपक, किण्डवीकरण
२४			२२ लालमिर्च	कटु	ल. रू ती	,,	,,	—+—	अग्निजनक, अनुलोमक दीपन—पाचन

आजकल गरम मसाले के नाम से बाजार में बचने वाली चीजे—

१ सूखा धनिया, २ हल्दी, ३ सूखी काली मिर्च, ४. अजवायन, ५ सफेद जीरा, ६. स्याह जीरा, ७ मेथी, ८. मगरैल, ९ राई, १० मिरचा, ११ जावित्री, १२. लौंग । १३ बडी इलायची, १४ तेजपत्ता, १५ दालचीनी, १६ हींग,

इसी हल्दी का खुशबूदार स्वाद और गन्ध होता है। भैपज्य कल्पना विज्ञान श्री अग्निहोत्री जी की पुस्तक मे काजी निर्माण प्रकरण मे मिलता है। शार्गंधर सहिता मे हल्दी का प्रयोग शिण्डाकी वनाने मे किया गया है। आज हल्दी का प्रयोग हर अचार, दाल, साग-सब्जी, माँस आदि वनाने मे प्राय प्रयोग किया जाता है। इस स्थान पर हम हल्दी एव धनिया के विषय मे दो शब्द कहेंगे कि हम दिन भर जितना कार्य करते है उससे हमारे शरीर के जो उतक (Celltissus) हैं वे नष्ट होते हैं-हल्दी उन नष्ट हुए उतको की क्षति को पूरा करती है एव शरीर को पुन' हरामरा कर देती है।

वही धनियाँ स्रोतो का विशोधन करता है जिससे सारे शरीर के स्रोत जल विशोधित रहगे तो वे प्रत्येक वस्तुओ, रगो एव धातुओ को अपने स्थान पर यथावत पहुँचाने मे सहायक होते है। अत कहा है कि 'गरीव का मसाला क्या है-हल्दी-धनियाँ।'

वैसे मसालो का प्रयोग कितना वर्णन किया जाय कुछ इसका अन्त नही। भिन्न-भिन्न स्थानो मे अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न आहारोपयोगी द्रव्य वना कर लोग प्रयोग करते हैं जैसा चरक की निम्न उक्ति देखने से पता लगता है—

आहार योगिना भक्ति निश्चयो नतु विद्यते।

—च सू. २७-२०८

उसी प्रकार मसालो के भी विषय मे पाते हैं। सक्षेप मे हम एक दृष्टि इनके द्रव्यो पर देना चाहते हैं ताकि यह पता लगे कि इन द्रव्यो मे क्या विशेषता है जिसकी वजह से आचार्यो ने इनका विशेष गुण गाया है-साथ ही साथ हम थोडे मे यह कहना चाहेंगे कि जहाँ हमारे आचार्यो द्वारा वर्णित मसालो के द्रव्यो (आहारोपयोगी द्रव्यो) मे उत्तरोत्तर कुछ द्रव्य वढे है वही इनमे से कुछ द्रव्य हमारे सामान्य जीवन मे मसालो मे जिन्हें सामान्य जन प्रयोग करते है कम भी हुए है—सूखी पिप्पली, गीली मरिच, सोठ का प्रयोग आजकल सामान्य कहे जाने वाले मसालो मे नही पडता - अन्य औपधीय आहारोपयोगी द्रव्य मे पाठ के अनुसार सभी जगह प्रयोग होता है।

वैसे हम इन मसालो का प्रयोग आहार द्रव्यो के सस्कार के लिए करते है। आयुर्वेद मे इन्हे हम सस्कार द्रव्य कहते है जिससे भोजन मे पहले दूर से ही देखने पर रुचि वढे, पकते समय ही उनमें एक प्रकार का सुगन्ध मिले जिससे भोजन पकते-पकते मुह मे पानी आने लगे (लार वनना चालू हो जाय जो भोजन को पचाने में सहायक होता है।) जो भोजन पकते समय ही मन को मोह लेता है वह भोजन करते समय भी रोचक होना चाहिए। जहा भोजन मे रुचि हुई नही कि सभी ज्ञानेन्द्रियाँ एव कर्मेन्द्रिया उसके साथ सहयोग करने लगेगी। सव आवश्यकतानुसार यथास्थान अपने आप अधिष्ठित हो जावेगी और वे अङ्ग आराम से उनको ग्रहण कर लेगे। जव सव अपने-अपने स्थान पर यथावत होगे तो पाचन उनका यथावत होगा और अगले भोजन के लिए अग्नि को प्रदीप्त करेगी। इस प्रकार से शरीर जो स्रोतोमय है वह स्रोत भी शुद्ध रहेंगे तभी भोजन के सव अ श यथावत अपने अपने स्थान पर पहुच सकेंगे और उनके साथ ही एक के वाद दूसरी धातुओ का निर्माण सहज एवं सरल हो जावेगा। जिससे सप्त धातुयें—

रसाद्रक्तं ततो मास मासान् मेद प्रजायते।
मेदसोस्थि ततो मज्जा मज्ज शुक्रतु जायते॥

क्रमवद्ध ठीक से तैयार होगे एव स्रोतो की शुद्धि होने से वात, पित्त, कफ धातुयें एव त्रिदोप जिस पर यह शरीर (खडा) टिका है भी अपना कार्य यथावत कर सकेंगे जिससे शरीर भी स्वस्थ रहेगा। भोजन का शुक्रवर्द्धक होना भी जरूरी है जिससे शरीर मे शक्ति एव चमक रहती है। भोजन रोचक है तो स्वाभाविक है कि कुछ अधिक खाया जा सकता है। यदि किसी ने अधिक खा लिया है या कुछ ऐसे लोग भी होते है या कभी-कभी परिस्थितिया ऐसी होती है जिसके वजह से लोग विना पूर्व भोजन के पचे ही या अपच मे भी भोजन कर लेते हैं तो इन मसालो मे ऐसे भी द्रव्य होना जरूरी है जिसकी वजह से ये अधिक भोजन पच जाय, अजीर्ण न होने पावे तो इस प्रकार के भी द्रव्य इसमे भरे पडे हैं। कहा गया है (उक्ति है)—

"खाय के मूते सूते वाव, काहे वैद्य वसावे गांव।"

इसको चरितार्थ करने के लिये भी कुछ मूत्रल द्रव्य भी इसमे होना चाहिए ताकि भोजन के साथ कुछ हानिकारक द्रव्य यदि शरीर मे पहुच गये हो तो उनका निष्कासन भी इसी बहाने हो जायगा-शरीर मे भी हलकापन मालूम होगा और शरीर को आराम करने के क्षणो मे कोई व्यवधान नही होने पावेगा।

भोजन के बाद वायु भी कुछ साफ खुले इसलिए कुछ वातानुलोमन द्रव्य भी इसमे पडे हुए है जिससे पेट मे कोई विशेष भारीपन न होने पावे। इसमे भी आवश्यक एक बात है कि भोजन के बाद १-२ घण्टे जल लेने को लोग मना करते हैं केवल थोडा जल भोजन के बीच मे लेने का विधान है जिससे सब भोजन आपस मे खूब मिल सके—

भक्तस्यादौ जल पीतमग्नि साद कृशाङ्गताम्।
अन्ते करोति स्थूलत्वमूर्ध्वमामाशयात् कफम्॥
मध्ये मध्याङ्गता साम्य धातूना जरण सुखम्। —वाग्भट्

अत इस दृष्टि से भी जब हम देखते है तो पाते है कि इसमे तृषा को कम करने वाले द्रव्य भी हैं जिससे भोजन करने के कुछ घण्टे बाद तक प्यास ही न लगे। यदि ऐसा मसाला होगा जिसके खाने के बाद अधिक प्यास लगे तो वह हानिकारक होगा उससे पाचन भी ठीक से नही होने पावेगा। अत इसमे हम ऐसा द्रव्य पाते हैं जो प्यास कम करते है। इस प्रकार शरीर को स्वस्थ रखने वाले द्रव्यो के साथ यदि शरीर के वर्ण को भी साथ ही निखार मिल जाय तो उसमे "सोने मे सुगन्ध" वाली या "शरीर कचन के समान" वाली उक्ति भी चरितार्थ हो जाय, तो इन मसालो मे हम वर्ण्य द्रव्य भी पाते हैं। सबसे मूल्यवान् ओज द्रव्य भी हम इसमे पाते हैं—

उपर्युक्त गुणो को चरितार्थ करने वाले द्रव्यो का जो इन्ही मसालो मे से ही है एक तालिका नीचे दी जा रही है जो निम्न है—

१ सुगन्धित द्रव्य—जीरा, हीग, स्याह जीरा, दालचीनी, बडी इलायची, जावित्री, हरा धनियाँ आदि।

२ दुर्गन्धहर द्रव्य—मगरैल, स्याह जीरा आदि।

३ रुचिवर्द्धक द्रव्य—शुण्ठी, काली मिर्च, हीग, स्याह जीरा, जीरा, मगरैल, अजवायन, धनियाँ, तेजबल, लवण, घृत, अदरख, लौंग, जावित्री, हरा धनियाँ आदि।

४. अरुचिनाशक द्रव्य—तेजपत्ता, अदरख, लौग।

५ पाचन द्रव्य—हीग, जीरा, अजवायन, धनियाँ, लवण, क्षार, जावित्री, लौंग।

६. दीपन द्रव्य—स्नेह, काली मिर्च, हीग, जीरा, स्याह जीरा, मगरैल, धनियाँ, तेजबल, लवण, क्षार, मेथी, लौग, राई, लालमिर्च, पलाण्डु आदि।

७ स्रोत शोधक द्रव्य—धनियाँ, एरण्ड तैल आदि।

८ अजीर्ण नाशक द्रव्य—हीग।

९. मूत्रल द्रव्य—स्याह जीरा, धनियाँ, लवण आदि

१० दोष निवारक (विषनाशक)—लवण, जावित्री, वसा, मज्जा आदि।

११. दोष पाचक—हीग।

१२ तृप्तिघ्न (प्यास कम करने वाली चीजें)—दालचीनी, बडी इलायची, लौग, धनियाँ, चिरौंजी तैल आदि।

१३ वीर्यवर्द्धक द्रव्य—पलाण्डु, रसोन, अदरख, सेंधानमक, जीरा, धनियाँ, हल्दी, दालचीनी, वसा-मज्जा आदि।

१४. बलवर्द्धक द्रव्य—पलाण्डु, रसोन, वसा, मज्जा, तैल आदि।

१५. हृद्य द्रव्य—अदरख, तेजपत्ता, हरा धनियाँ, शुण्ठी, वसा मज्जा आदि।

१६. ओजोवर्द्धक—वसा-मज्जा।

आजकल एक सामान्य नाम इन मसालो के साथ जुडा पाते हैं वह शब्द है गरम यानी "गरम मसाला"। हम देखते है यह शब्द भी अपना एक विशेष स्थान रखता है। इस मसाला द्रव्यो के घटको पर जब हम ध्यान देते हैं तो पाते हैं कि जितने घटक हैं उनमें से केवल लौंग को छोड कर सभी द्रव्यो का वीर्य उष्ण है (तैल मे से केवल एक तेल लेना है, लवणो मे से केवल एक ही लवण का ग्रहण किया जाता है)।

अत. हम देखते हैं कि हमारी सामान्य जनता भी इन सस्कार द्रव्यो यानी मसालो से अच्छी प्रकार से परिचित है और जैसा प्रत्येक द्रव्य के साथ लोक नाम जुडा रहता है उसी प्रकार से इन सस्कार द्रव्यो को हम बोल चाल की भाषा मे "गरम मसाला" नाम से पुकारते हैं।

इन सस्कार द्रव्यों पर (मसाले पर) एक सरसरी

निगाह दौड़ाते है तो पाते है कि इनम जैसा सामान्य भाषा मे लोग इसे गरम मसाला के नाम से पुकारते है मे आर्द्र पिप्पली, (जिसका अब चलन नही है) लौंग (जो आजकल महगाई की वजह से बहुत ही कम प्रयोग होता है) को छोड़ कर शेष सभी द्रव्य उष्ण है पाते है—साथ ही अधिकतर द्रव्यो को हम पित्तकारक पाते है। जो सामान्यतया भोजन को पचाने मे सहायक होते है। कुछ द्रव्य इनमे जो पित्त शामक है वे दूषित पित्त का शमन करने वाले है न कि अग्नि के पित्त को जो भोजन को पचाने मे सहायक होता है। तीसरी चीज हम पाते है कि अधिकतर द्रव्यो के रस कटु-तिक्त है जो कि भोजन के लिए पचाने वाले पदार्थ (लार एवम् पित्त को उनके अपने कार्य को करने के लिए प्रेरित करते है। गुण भी अधिकतर ऐसे है जो भोजन को आसानी से जल्दी समय पर पचजाने मे सहायक होते है यानी अधिकतर लघु द्रव्य है। यद्यपि गुरु एवम् स्निग्ध गुण वाले भी द्रव्य इसमे है तो उनके साथ तीक्ष्ण द्रव्य लगे है जो उनकी गुरुता, स्निग्धता के बलवर्द्धक गुण को सुरक्षित रखते हुए उनमे अपनी तीक्ष्णता की वजह से उनको छोटे छोटे परमाणुओ से परिवर्तित कर लघु एव पाचन मे सहजता को प्राप्त कराते है।

इन सस्कार द्रव्यो के कार्यो की इतिश्री हम यही नही करते— यह तो आहार द्रव्यो का शरीर के लिए उपयोगी बनाना उनका सामान्य कार्य ही हुआ। जैसी आयुर्वेदोक्ति है-—

'स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम्'

इसके आगे दूसरी पक्ति की भी पूर्ति तो आवश्यक है—

"आतुरस्य विकार प्रशमनम्"

यानी जो आहार बिगड़ गए यानी बासी हो गए है, उनमे जो दो दोष या रोग, ठण्डा-वायुकारकता विलम्बता रूपी रोग आ गए है उनको भी इन सस्कार द्रव्यो के द्वारा विशेषकर सुगन्धित, पाचक एव दोषहर द्रव्यो के द्वारा उनको भी भोजन के लिए उपयुक्त बनाना इसके दोष रूपी रोग हट जाय-तभी इस श्लोक की दूसरी पक्ति ठीक बैठेगी।

एक सामान्य दृष्टि से जब हम देखते है तो पाते है कि चरक कालीन सस्कार द्रव्य ही किसी माने मे भोजन को शरीर के लिए उपयोगी बनाने मे पूर्ण है—जिसमें हींग, धनिया, जीरा, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] द्रव्य आदि पाते है। लगभग परिवर्तन के साथ मे सुश्रुत-संहिता मे जो कुछ द्रव्यो [illegible], [illegible], [illegible] को छोड़कर सब द्रव्य समान, पश्चात् अदरक [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] आदि को [illegible] के स्थान पर "[illegible]" [illegible] है— इस सस्कार द्रव्यों मे मसाले मे स्नेह पदार्थ का एक [illegible] अवश्य खटकता है परन्तु स्नेह पदार्थों का गुण लिखते समय उन्होंने इस आहार के लिए बहुत ही उपयोगी बतलाया है परन्तु वर्गीकरण की भिन्नता के कारण इसे द्रव्य [illegible] विधि अध्याय मे बतलाया है एव इसी प्रकार से नमक को भी अन्नपान विधि अध्याय मे न गिनाने पर भी लवण वर्ग मे सब लवणो का वर्णन किया है।

आज का प्रचलित मसाला द्रव्य भी अनेक दृष्टियों से देखने पर एक ओर भी सबसे [illegible] रूप मे अनेक सुगन्धित पदार्थो से सुसज्जित एव दृश्य-वर्ण्य जिसकी आज उलझ युग मे बहुत आवश्यकता है हमारे सामने उपस्थित है—यदि हम स्वय ही अपने बेचन सेठी भरे स्वाद के लिए जिससे वास्तव मे वह स्वाद सेगी मे ही छूट जाता है (सुगन्धित द्रव्यो को जिनमे उत्पतनशील तैलीय पदार्थ अधिक है जो पाचन मे काम करते है वे अधिक भूजने से अपने गुण के साथ बाहर उड़कर भाग जाती है और हम उन भागती हुई खुशबू को पाते है तो कहते है कि ठीक हो गया और 'चिड़िया उड़ गई फुर्र' ......" वाली कहावत तो देखते-देखते अधिक भूजकर सस्कारित द्रव्य के स्थान पर उसका ठठरी पाते है जो पेट मे नुकसान करता है। तो हम अनजान मे कहने लगते है कि मसाला बहुत खराब वस्तु है इससे पेट खराब होता है आदि ' '— बशर्ते सब चीज कायदे से उचित मात्रा मे ली जाय। यह नही कि खूब मिरचा झोक दिया आख, कान, नाक, मुंह तो परोये भी साथ ही टट्टी के समय निकलते हुए भी वह उस गुदद्वार को भी जाते समय याद दिलाता जाय।

मसाले पाकशास्त्र के अभिन्न अङ्ग रहे हैं। नाना प्रकार के व्यजनो मे जो-जो स्वाद, कटु, तिक्त और मधुर आदि है, उनके मूल मे मसाले ही हैं। षड्रसो की उत्पत्ति मसालो द्वारा सम्भव है। वे भोजन को सुस्वाद बनाने, उसमे सुरभि लाने एव सरसता उत्पन्न करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

पहले पहले मसालो का उपयोग कब हुआ यह ठीक-ठीक नही बताया जा सकता किन्तु धनिया और जीरा अत्यन्त प्राचीन काल से मिश्र देश मे विदित थे। समझा जाता है कि मिश्र की कब्रो से जो धनिया प्राप्त हुआ है वह १० ई पू का रहा होगा। चीनियो के १६०० ई पू. मसालो के लिये पूर्वी द्वीप समूहो की यात्रा के उल्लेख मिले हैं। पश्चिम के लोगो को मसालो का पता अपेक्षतया देर से लगा। पन्द्रहवी शती के अन्तिम दशक मे कोलम्बस ने नई दुनिया की खोज की। कहते है कि उसकी समुद्री यात्रा का एक उद्देश्य भारत के मसालो की खोज भी था। किन्तु यह सुयश पूर्तगाली नाविक वास्को द गामा को मिलना था। एशिया के मसाला-देशो के प्रति उसका भी आकर्षण अद्वितीय था। उसने दो वर्ष के भीतर ३८,००० किलोमीटर की दूरी तय करके, अफ्रीका होते हुए भारत की खोज की और कहा जाता है कि जब वह लौटा तो उसके चार जहाजो मे से केवल दो बचे थे किन्तु वे मसालो से खचाखच भरे थे। उसकी यात्रा मे जितना व्यय हुआ था, उसे सन्तोष था कि उससे ६० गुने मूल्य के मसाले लेकर वह वापस लौटा था।

मध्य-युग मे मसालो के प्रति लोगो का विचित्र आकर्षण था। एक बार भारत और पूर्वी द्वीप समूहो का पता लग जाने पर इन मसाले के देशो पर यूरोपीय देशो द्वारा सत्ता स्थापित करने के अनवरत प्रयास होते रहे। वास्को द गामा की १४९७ की साहसिक यात्रा के बाद लगातार ३०० वर्षो तक मसाले उत्पन्न करने वाले देशो को हथियाने के लिए पुर्तगाल, स्पेन, फ्रास, हालैण्ड तथा ग्रेट ब्रिटेन मे खूनी युद्ध होते रहे। भारत मे पुर्तगाली और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के जितने भी उपनिवेश स्थापित हुए वे मसाले के व्यापारियो द्वारा ही किये गये थे।

अत्यन्त मूल्यवान

मसालो के प्रति इतने प्रबल आकर्षण का कारण क्या था? इसका अनुमान इन आंकडो से लगाया जा सकता है कि मध्य युग में १ पौण्ड जावित्री देकर ३ भेड और २ पौण्ड जावित्री से १ गाय खरीदी जा सकती थी। एक एक पौण्ड काली मिर्च से एक गुलाम खरीदा जा सकता था। अत मसाले सोने की भाति मूल्यवान थे और स्थायी आय के स्रोत बन सकते थे। किंतु मसाले के लिए जो लडाइया लडी गई उनका कारण मात्र स्वाद नही वरन् मसालो का एक अन्य अद्वितीय गुण भी था जिससे यूरोपवासी परिचित थे। वह था भोजन के स्वाद को 'छिपाने' तथा उसे काफी समय तक परिरक्षित करने का गुण। मसालो से भोजन का पोषण-मान कई दिनो तक वैसा ही बना रहता है—यह मध्य युग मे एक बहुत बडा रहस्य था।

जब तक यूरोप मे मसालो का प्रचार नही हुआ था उस समय तक वहा भोजन खराब हो जाने पर उसे फेकना पडता था। इग्लैड मे शीत ऋतु के आगमन पर, चारे की कमी के कारण मारे गये पशुओ का मास पहले शीघ्र ही खराब हो जाता था परन्तु मसालो से 'परिचित' हो जाने के बाद उसे काफी दिनो तक बिना बिगडे सग्रहीत कर पाना सभव हो सका। इस तरह मसालो के कारण एक प्रकार से भुखमरी से लोगो का उद्धार हुआ। इस प्रकार से मसालो का अत्यन्त लोकोपयोगी पक्ष भोजन परिरक्षण भी रहा है। यह है मसालो की ऐतिहासिक

पृष्ठभूमि। आइये, अब प्रमुख मसालों के सम्बन्ध में कुछ विस्तार से जानकारी प्राप्ति करें।

प्रकृति ने भारत तथा पूर्वी द्वीप समूहों को 'मसालों का देश' बनने का अक्षय वरदान दिया है। इनके अतिरिक्त अफ्रीका के देश, चीन, श्रीलंका और कुछ हद तक ईरान, अरब, तुर्की और रूस के नाम भी मसालों के उत्पादन के साथ जुटे हुए हैं। इंग्लैंड, अमरीका, जर्मनी तथा स्वीडन ऐसे हैं जहाँ मसालों की पर्याप्त खपत है। हमारे देश में तमिलनाडु, केरल तथा पश्चिमी तट पर ही अधिकांश मसाले उत्पन्न किये जाते हैं।

अद्भुत गुण

यद्यपि मसालों की सूची बहुत लम्बी है इनमें कुछ प्रमुख हैं—धनियाँ, जीरा, काली मिर्च, लाल मिर्च, सौंफ, इलायची, लौंग, जावित्री, हल्दी, मेथी, अजवाइन, राई तथा लहसुन और प्याज।

मसालों का उपयोग [illegible], [illegible] या [illegible] के लिए, सुगन्ध या स्वाद के लिए अथवा व्यंजनों को आकर्षक रंग देने के लिये किया जाता है। मसालों को पीसकर, [illegible] भूनकर और तलकर सभी प्रकार से व्यवहार में लाया जाता है।

मसालों के कारण भोजन की [illegible] जाती है। मसाले के नाम पर मुंह में पानी आने का रहस्य यही है कि एकाएक पाचक रस उत्पन्न हो जाते हैं जो अधिक भोजन को पचा सकते हैं। लाल मिर्च में यह गुण सर्वोपरि बताया जाता है यद्यपि [illegible] डाक्टरों का मत है कि अधिक मिर्च (लाल) खाने से आंतों में घाव हो जाते हैं और शोथ आ जाती है।

मसाले भोजन को परिरक्षित करने के लिए इस्तेमाल किये जाते हैं। अचार को मसालों की मदद से महीनों तक बिना सड़े सुरक्षित रखा जा सकता है।

कुछ प्रमुख मसालों के सक्रिय तत्व एवं विटामिन

नाम	वनस्पति शास्त्रीय नाम	तेल (%) और सक्रिय तत्व	विटामिन	औषधीय गुण
धनिया	कोरियेन्ड्रम सटाइवम	० ५–१	ए	अग्निवर्धक, मूत्रल, रेचक
जीरा	क्युमिनियम साइमिमम	२ ५–४ (क्यूमिनाल)	ए तथा सी	पाचक
इलायची	इलेटेरिआ कार्डामोमम	८ ४	--	वातसारी और क्षुधाकारी
हल्दी*	करकुमा लांगा	ट्यूमेराल	—	—
लालमिर्च	कैप्सिकम एनुअम	कैप्सिसिन	सी तथा ई	—
कालीमिर्च	पाइपर नाइग्रम	ओलियोरेजिन ० ५४, पिपरीन–टोकोफेराल ०.१, ० ५–०.३७	निकोटिनिक अम्ल, एस्कार्बिक अम्ल, कैरोटीन, रिबोफ्लेविन,	—
राई	इल्यूसीन कोरकान	ऐलाइल सायनाइड तथा कार्बन डाइसल्फाइड		
प्याज	एलियम सीपा	० ०६–०.१ डाइसल्फाइड	सी	तपेदिक, खांसी, शूल, पीडा, मदाग्नि की दवा
मेथी	मेन्थ्या	--	—	दूधवर्धक, कैल्सियम और फास्फोरस का स्रोत, अग्निवर्धक

* इनमें रजक पदार्थ, करकुकिन, उपस्थित होता है।

कुछ हद तक मास का परिरक्षण भी मसालो से सम्भव है। उदाहरणार्थ प्राचीन उल्लेख है कि लौंग के द्वारा वर्षों तक मास सुरक्षित रखा जा सकता है। काली मिर्च की थोडी सी मात्रा भोजन को सडने से बचाती है।

समवत मसालो के सबसे महत्वपूर्ण गुण उनके औषधीय गुण हैं। विविध मसालो का उपयोग काढे के रूप में तथा चूर्ण के रूप मे देशी औषधियो तथा मान्य चिकित्सा पद्धतियो मे होता रहा है।

मसालो का उपयोग चटनी, अचार, सूप, कढी तथा तरकारियो के बनाने मे किया जाता है। इनके कारण तैयार भोजन मे तिक्तता, सुगन्धि, सुरमता एव आकर्षक रग के गुण आ जाते हैं। यह सच है कि इन सब गुणो के होने पर भी मसाला-रहित भोजन और मसाले से युक्त भोजन के पोषण मानो मे कोई विशिष्ट अन्तर नही आता किंतु प्रयुक्त मसालो के अनुसार दो प्रकार से पोषण मानो मे अन्तर तो आता ही है-- (१) कुछ विटामिनो की वृद्धि, (२) कुछ औषधीय गुणो का समावेश। यही नही, अपने आकर्षणो के कारण एन्जाइमो को क्षरित करने एव क्षुधा बढाने मे मसालो का योगदान होता है।

औषधि के रूप मे विविध मसाले पीड़ाहर, क्षुधावर्धक, रेचक, मूत्रल, उत्तेजक पाये गये हैं। इनकी समुचित मात्रा ही लाभकारी होती है और इनके अधिक प्रयोग से उल्टा प्रभाव पडता है। जहाँ तक मसालो के इस पक्ष का प्रश्न है उसके सबध मे यह इगति कर देना पर्याप्त होगा कि मसालो के सक्रिय तत्वो को पृथक करके औषधि रूप मे उपलब्ध कर दिया गया है और उनके भेषजीय गुणो की विस्तार से की गई मसालो के द्वारा भोजन मे ये गुण सहज ही कुछ अश मे आ सकते है।

पृष्ट १४० पप सारणी मे कुछमसालो के सक्रिय तत्वो एव उनमे प्राप्य विटामिनो के नाम दिये गये हैं। इस सारणी के आधार पर विभिन्न मसालो की अभिलाक्षणिक गध या स्वाद का कारण ढूंढ निकालना सहज है। सक्रिय तत्व ही उन मसालो की विशिष्टताओ के लिये उत्तरदायी है।

मसालों की संरचना

मसालो की सरचना का अध्ययन करके उनके उपयोगो की वैज्ञानिक विवेचना आसानी से की जा सकती है। मसालो मे आमतौर से पाच प्रकार के अवयव सम्मिलित होते है। वाष्पशील तेल, विटामिन, खनिज पदार्थ, सक्रिय तत्व तथा अन्य कार्बनिक अवयव।

छोक या धोगार मे मसालो की जो सुगधि आती है वह वाष्पशील तेलो के कारण है। ये तेल मसालो को किसी अन्य विलायक (तेल या घी) मे उच्च ताप तक गरम करने पर निकल कर बाहर आ जाते हैं। वस्तुत लौंग का तेल, धनिया का तेल या मिर्च का तेल ऐसे ही तेल हैं जिन्हे रासायनिक विधियो से परिष्कृत करके बेचा जाता है और वे भेषजीय गुणो से पूर्ण होते ह। इन तेलो से सुगन्धि एव स्वाद ही प्राप्त हो सकता है ये भोजन को परिरक्षित नही कर सकते।

मसालो मे से कुछ ही ऐसे हैं जो विटामिन के स्रोत कहे जा सकते हैं। इनसे ए, सी तथा ई विटामिन प्राप्त हो सकते हैं। हरी तथा लाल मिर्च विटामिन सी का प्रधान स्रोत है। मसालो मे कैल्सियम तथा फास्फोरस के साथ लोहा भी पर्याप्त मात्रा मे मौजूद होता है।

मसालो मे सबसे उल्लेखनीय एव महत्वपूर्ण है 'सक्रिय पदार्थ'। इन्हे मसालो की 'आत्मा' कह सकते हैं। लाल मिर्च और काली मिर्च मे जो अन्तर, स्वाद के अनुसार पाया जाता है, वह उनमे पाये जाने वाले भिन्न-भिन्न सक्रिय पदार्थो के कारण है। लाल मिर्च मे वह कैप्सिसिन है और काली मिर्च मे पिपरीन। पहला इतना तिक्त होता है कि १० लाख अश जल मे इसका १ अश मौजूद होने पर भी इसकी तिक्तता बनी रहती है। यह सक्रिय पदार्थ मिर्च के बीजो मे नही वरन् ऊपरी खोल के भीतरी भाग मे होता है। काली मिर्च मे ओलियोरेजिन भी होते हैं जो तिक्तता एवं सुगन्धि के लिए उत्तरदायी है। ये तेलो की विकृत गध को रोकता है और मास को सडने से बचाता है तथा भोजन को सुस्वादु बनाने के लिये डाला जाता है।

मिर्च का तेल कुडवाहटरहित होता है और इसका उपयोग भोजनो को सुस्वादु बनाने के लिये किया जाता है। यह देखा गया है कि जलने वाला स्वाद या चरपराहट का गुण पिपरीन नामक अल्कलॉयड के कारण आता है जो ओलियोरेजिन का एक अवयव है।

—श्री डा० शिवगोपाल मिश्र
वैज्ञानिक एव औद्योगिक अनुसधान परिषद,
प्रकाशन एव सूचना निदेशालय, नई दिल्ली

श्री शाकल्य जी का जन्म सुप्रसिद्ध ज्योतिष ब्राह्मण घराने मे हुआ। आपकी काव्य, सगीत एव साहित्य मे विशेष रुचि है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से आयुर्वेद रत्न हे। शासकीय आयुर्वेदिक औषधालय खमरिया झासीघाट (गोटगाव) जिला नरसिहपुर मे प्रधान चिकित्सक हैं। स्वास्थ्य रहस्य, निम्बू चिकित्सा शास्त्र, बच्चो के रोग और चिकित्सा आदि अप्रकाशित ग्रन्थो के लेखक हैं। आपके अनुभव-पूर्ण एव रुचिकर लेख विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। प्रस्तुत अंक मे भी आपके २-३ लेख अपने अगाध ज्ञान का परिचय देते है।

—विशेष सम्पादक

'तृप्तिराहार गुणानाम्'

अर्थात् 'आहार वही है जिससे तृप्ति हो।'

आज के इस सघर्षमय युग मे जहाँ महगाई अपना विराट मुह खोले खडी है तथा मनुष्य को केवल जैसा-तैसा पेट भरना ही दुष्कर है, ऐसे समय मे भोजन कैसा हो ? विचारणीय है। वस्तु-तस्तु भोजन पौष्टिक और सतुलित होना जरूरी है। महगे और कीमती भोजन शरीर के लिए आवश्यक नही हैं। अत स्वस्थ रहने के लिए सबसे अच्छा भोजन शाकाहारी या निरामिष ही उत्तम है। क्योकि शरीर की शक्ति को बनाये रखने के लिए निरोग रखने के लिए जिन पदार्थों की आवश्यकता है वे सब शाकाहार मे विद्यमान हैं। इसमे गेहू, चना, जौ, बाजरा, मक्का आदि अन्न, चावल, दाल, बिना पत्तो की तरकारिया एव पत्ते वाली तरकारिया, दूध के बने पदार्थ एव दूध, सूखे मेवे, तिलहन एव हरे फल सम्मिलित हैं। इस प्रकार मनुष्य के लिए सात्विक भोजन स्वास्थ्य के लिए श्रेष्ठ माना गया है।

सुश्रुत सहिता के अनुसार—सात्विक भोजन की परि-भाषा इस प्रकार है—"सात्विक भोजन वह है, जिससे शरीर का ठीक पोषण हो, जिसे खाकर वृद्धि हो, बच्चो मे स्फूर्ति आए, शारीरिक बल बढे, स्मरणशक्ति तेज हो तथा मनुष्य स्वस्थ और सुन्दर रहकर दीर्घजीवी हो। क्योकि हम शरीर की जरूरतो को पूरा करने के लिए आहार करते हैं ताकि हमारी मांसपेशिया पुष्ट हो, हड्डिया मजबूत हो, शरीर मे नया खून बनता रहे। काम करने के लिए ताकत बनी रहे। भोजन शरीर रूपी गाडी के लिए एक प्रकार से ईंधन की तरह है। यदि ईंधन अच्छा होगा, तो शरीर की गाडी ठीक चलेगी, वर्ना नही। पौष्टिक और सतुलित भोजन मानसिक तथा शारीरिक पूर्णता लाता है और रोगो को रोकने की शरीर व्याधि क्षमता करता है। सन्तुलित भोजन मे अन्न दूध, दाल, स्नेह, शाक, हरी सब्जी एव फल होना जरूरी है।

"आयु सत्वबलारोग्य सुखप्रीति विवर्धना। रस्या स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहारा ....॥" श्रीमद् भगवद् गीता मे लिखा है कि आयु बुद्धि, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढाने वाले एव रस युक्त, चिकने और स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव मे ही मन को प्रिय हो-इस प्रकार के भोजन करने चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे भोजन मे पौष्टिक आहार तो हो परन्तु सतुलित हों तभी हम 'स्वास्थ्य' प्राप्त कर सकते हैं । अत चोकरसहित आटे की रोटी, शाक-सब्जी, मौसमी, फल एव दाल चावल ले । दालो में मसूर एव मूग की दाल उत्तम मानी गयी है । भोजन मे दाल एक समय पके तो ठीक रहेगा । दूध पूर्ण भोजन है अत दूध को दलिया, चावल या रोटी के साथ लिया जावे तो बहुत गुणकारी है । शाम का भोजन दूध के साथ बहुत ही श्रेष्ठ है । दूध से बनी चीजे एव हरी शाक-सब्जी और मौसमी फल लेना भी उपयोगी है । जहाँ तक सभव हो फल भोजन के पश्चात् लेना चाहिए । ये तुरन्त पच जाते है ।

'हिताहारोपयोग एक एव पुरुषवृद्धि करो भवति: अहिताहारोपयोग पुनर्व्याधिति मित्तमिति ।' इसलिए भोजन ताजा, स्निग्ध, मधुरादि रसो से युक्त, सुरुचिपूर्ण, पौष्टिक होना चाहिए, हितकारक तथा युक्ताहार करना चाहिए ।

मनुष्य को रुचि, ऋतु, देश, आवहवा एव प्रकृति के अनुसार भोजन हितकारी होता है । भोजन हल्का, सुपाच्य, शक्तिप्रद करें । जहा तक हो सके तली हुई, गरिष्ठ, अधिक चटपटे मसालेदार, मैदा की बनी हुई, अचार,मिठाई, खटाई वाली तथा मासाहार से परहेज रखे । अथवा बहुत ही कम खावे । तथा नियमित समय पर भोजन करे । जो भी भोजन आप करे, उसे रुचि के साथ ग्रहण करें और उसकी प्रशसा करे तथा भोजन के सम्बन्ध मे भोजन करने के पश्चात् उसके सम्बन्ध मे कोई शिकायत न करे । साधारण रूखा सूखा भोजन वातावरण के कारण आकर्षक बन जाता है । अत अप्रसन्नता की बात न उठने दें । आहार को रुचिकर बनाने से मन प्रसन्न रहता है चाहे वह साधारण से साधारण क्यो न हो उससे सभी लाभ उठा सकते है ।

'अशाँति का भोजन बराबर पचता नही है—स्वाद मे मीठी चीज पाचन मे खट्टी होती है ।'—शेक्सपियर । अत भोजन हमेशा शात वातावरण मे खाओ और प्रसन्न रहो । जब चिन्ता क्रोध आदि दोष शरीर मे हो तब खाना नही खावे वरना भोजन के समय आपकी जैसी प्रकृति होगी वैसा ही भोजन बन जावेगा जोकि शरीर के लिए नुकसान दायक सिद्ध होगा ।

आजकल भारतवासियो के भोजन मे 'प्रोटीन' की कमी बताई जा रही है और इसके लिए शासन, चिकित्सक एव वैज्ञानिक सभी प्रोटीन को बहुत महत्ता देते हुए प्रोटीन वाले आहार का प्रचार एव प्रसार कर रहे है । वैसे प्रोटीन सोयाबीन, दूध, दाले, मूगफली मे बहुत होता है । कई लोग मास मे प्रोटीन सबसे अधिक बतलाते हुए लोगो को मास खाने की प्रेरणा देते है परन्तु यह सच नही है । इस विषय मे आस्ट्रिया के खाद्य रसायन शास्त्री श्री प्लेश एडियल ने कहा है— यह कहना गलत है कि माँस मे अधिक प्रोटीन होते हैं । पशु के माँस मे केवल २०% प्रोटीन होता है, ८०% पानी और चर्बी पदार्थ होता है । अगर केवल अन्न से तुलना करें, तो उसमे १०% प्रोटीन और ७०% स्टार्च होता है । बाकी पानी है । मानव शरीर को अपने प्रति किलो ग्राम वजन के लिए ०.५ ग्राम प्रोटीन की जरूरत होती है, यदि वजन ७० किलो ग्राम भी माना जाये तो ३५ ग्राम प्रोटीन प्रति-दिन हमे चाहिए । यह प्रोटीन सरलता से अन्न, हरी सब्जियाँ और (यदि मिल सके तो) दूध से प्राप्त किया जा सकता है । इतना ही नही १८ वी शताब्दी के एक यहूदी डाक्टर ने स्पष्ट रूप से मास और मछली के आहार की निन्दा की है और रोग के प्राकृतिक इलाज पर जोर दिया है । १९ वी एव २० वी शताब्दी के बडे-बडे डाक्टरो ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है । और शाकाहार के आधार पर ही रोगो के उपचार की व्यवस्था मानी है इनमे महत्वपूर्ण नाम है—ट्रेल और डियर बेनर ।

वस्तुवत्तु उपर्युक्त तथ्यो एव विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भोजन शाकाहारी या निरामिष ही उत्तम है । ऐसा पौष्टिक एव सतुलित भोजन ही सात्विक भोजन कहा जाता है तृप्तिकारक होता है । अत. यह सिद्ध होता है कि 'तृप्तिराहार गुणानाम्' वह आहार है सात्विक, शाकाहारी ।

—श्री डा० रामचन्द्र शाकल्य आयु० रत्न
प्रधान चिकि० शासकीय आयु० चिकित्सालय
खमरिया–झाँमीभार (गोटेगाव) जिला नरसिंहपुर

भोजन करिहैं तृप्ति हित लागी

वैद्य रत्न श्री पं. शंकर लाल गौड़ 'शम्भू कवि'

लोकनायक शुभचिन्तक सर्वशास्त्र विशारद गोस्वामी तुलसीदास जी ने विश्वजनता को स्वास्थ्य रक्षा के लिए सदुपदेश देते हुए कहा है कि 'भोजन करि है तृप्ति हित लागी' अर्थात् भोजन वही करें जो तृप्ति करने वाला और हितकर हो। जिस भोजन से आत्मा की तृप्ति हो शरीर व स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकारक हो, करना चाहिए। आयु, बल, आरोग्य, सुख-प्रीति को बढ़ाने वाला भोजन सात्विक भोजन है। यथा—

आयुः सत्वबलारोग्य सुख प्रीति विवर्धना।
रस्याः स्निग्धा स्थिरा हृद्या आहारा सात्विक प्रिय॥

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढाने वाला सात्विक भोजन रसयुक्त, चिकना और स्थिर रहने वाला तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय लगने वाला होता है। दाहकारक, दुःख, चिन्ता तथा रोगों को उत्पन्न करने वाला राजस आहार कडवा, खट्टा, लवणयुक्त, बहुत गरम, तीखा और रूक्ष होता है। ऐसा आहार राजस पुरुष को प्रिय होता है। यथा—

कट्वम्ल लवणत्युष्ण तीक्ष्ण रूक्ष विदाहिन।
आहारा राजसस्येष्टा दुःख शोकाभयप्रदा॥

जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गन्धयुक्त, बासी और झूठा है, वह अपवित्र तामसी भोजन है। राजस और तामस गुण युक्त भोजन वास्तव मे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। अत सात्विक भोजन ही स्वास्थ्य के लिए हितकर है। क्योंकि उसको जठराग्नि पचा सकती है, और वही भोजन 'तृप्ति हित लागी। जिमि सु असन पचवे जठरागी' होता है।

आयु, बुद्धि, बल को बढाने वाले पदार्थ दूध, घी, फल, शाक, गेहू, जौ, चना, मूग, चावल, मक्खन आदि जो पवित्र एव स्वच्छ हैं आहार के योग्य है। अन्य पदार्थ जो रोग, दुःख, शोक, चिन्ताकारक हैं जैसे मिर्च, अचार-

चटनी, इमली, तप्त अन्न, तप्त दुग्ध, मांस, अण्डे, प्याज, मद्य, उच्छिष्ठ भोजन आदि आहार के अयोग्य हैं।
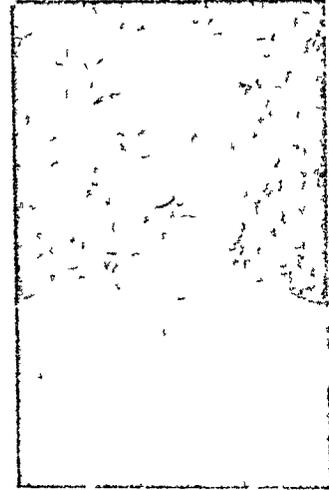
सात्विक भोजन के बारे मे भगवान श्रीकृष्ण गीता मे उपदेश करते हैं कि सयम नियम अर्थात् उचित परिमाण मे नियमित भोजन करने से दुःख, रोग नष्ट होते हैं। और भगवत् प्राप्ति होती है—'युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु' की पुष्टि मे भगवान कृष्ण नियमित आहार विहार के लिए विशेष बल देते हैं। यथा—

युक्ताहार विहारस्य योगो भवति दुःखहा।

भोजन एकान्त मे पूर्वमुख होकर करना चाहिए। प्राङ्मुखोऽश्नन्नरो धीमान् दीर्घमायुरवाप्नुते। तूर्णी सर्वेन्द्रियाह्लाद मन सात्म्य च विन्दति (का स.) स्वादहीन दुर्गन्ध-युक्त, गरिष्ठ, सडा गला भोजन नही करना चाहिए। जैसाकि सु० सू० अ० ४५ मे कहा है—

अचोक्ष दुष्टमुत्सृष्टं पाषाण तृण लोष्ठवत्।
द्विष्ट व्युषितमस्वादु पूतिचान्न विवर्जयेत्॥

रूखा भोजन स्वास्थ्य के लिए ठीक नही है। क्योंकि 'करोति रूक्षा बल वर्णनाश त्वग्रूक्षगंवातशकृन्निरोधम्'।

स्वल्प व अतिभोजन दोनो स्वास्थ्य के लिए उचित नही है। क्योकि स्वल्प भोजन से मानसिक और शारीरिक शक्ति निर्बल होती है। अति भोजन मे जठराग्नि मद होती है जो विविध विकार उत्पन्न करता है। तभी तो एक पाश्चात्य विद्वान अग्रेज अपनी पुस्तक मे लिखता है— 'Don't live to eat but eat to live' एक किवदन्ती है कि अन्नदेव भगवान के पास अपना दुःख रोने गये। कहा कि भगवन सब भूमण्डल के प्राणी मुझसे कहते है कि खाऊ ! खाऊ !! बडा दुःखी हू। भगवान कहने लगे कि जो तुझको ज्यादा खाये उसे तुम खा जाओ। इससे अन्न देव प्रसन्न होकर वापिस आ गये। किवदन्ती का भाव यह है कि जो पुरुष अति अन्न खायेगा वह रोगी बनेगा और जो भोजन सात्विकी करेगा, दीर्घायु प्राप्त करेगा। नियमित अन्न खाने को वेद मे अन्न को ससार का प्राण बतलाया है। यथा— 'अन्नवै जगत प्राणा' लिखित लेखक शीर्षक की पुष्टि वेद से होती है। अथर्व वेद मे लिखा है-

यद् गिरामि सगिरामि समुद्रइव सगिरः।
प्राणानमुष्य सगीर्य सगिरागो अमुष्यम्॥

जो कुछ वस्तु मै खाता हू उसे पचा लेना चाहिए जैसे समुद्र पचा सकता है। उस पदार्थ के जीवन तत्वो को चबाकर उसको विधिपूर्वक हम खावे। तात्पर्य यह है कि खूब चबाकर भोजन करना चाहिए तभी 'जिमि सु अशन पचवै जठराग्नि' –जठराग्नि पचा सकती है और तभी भोजन भी 'भोजन करि है तृप्ति हित लागी' सार्थक हो सकता है।

—वैद्यरत्न श्री प. शकरलाल गौड 'शम्भु कवि'
श्री शकर साहित्य सदन,
तपस्थली, दूरा (आगरा) उ० प्र०

वसा युक्त भोजन और हृद्धमनी

हृदय की रुधिर की आपूर्ति करने वाली धमनिया बहुधा ऐथिरोकाठिन्य नामक रोग से गभीर रूप मे क्षतिग्रस्त हो जाती है। समझा जाता है यह रोग कुछ विशेष प्रकार के वसायुक्त खाद्य पदार्थ खाने से हो जाया करता है (दाहिनी ओर ऊपर दिखलाई गई) सामान्य धमनी का मुँह खुला होता है और उसका अस्तर भी चिकना होता है किंतु रुग्ण धमनी (दाहिने नीचे) के अस्तर पर अनेक प्रकार के पदार्थो के जम जाने से पपडी सी बन गई है और धमनी का मुँह भी सकरा हो गया है। बहुधा जमे हुए पदार्थ के कणो से अथवा उनके कारण रुधिर मे बने थक्को के कारण धमनी अवरुद्ध हो जाती है। इसे हृद्धमनी अन्तर्रोध कहते है जोकि घातक भी हो सकता है।

—विज्ञान प्रगति से साभार।
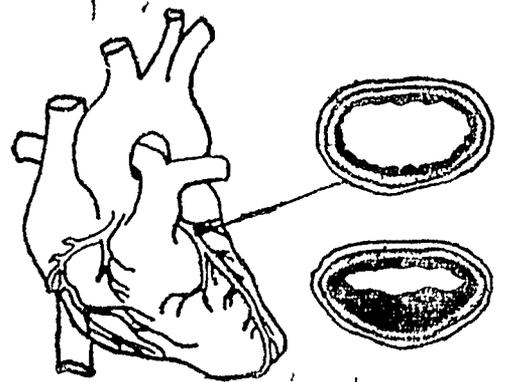
आधुनिक परिप्रेक्ष्य में क्या स्वास्थ्य रक्षा सम्भव है?

श्री पं. चन्द्र भूषण पाण्डेय वैद्य
एम. ए., आयु. रत्न

आहार और स्वास्थ्य

स्वास्थ्य के तीन उपस्तम्भो मे आहार का सर्व प्रथम स्थान है। आयुर्वेद के प्राचीन ऋषि चरक ने लिखा है कि 'त्रय उपस्तम्भा इत्याहार स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति। एभिस्त्रिभिर्युक्तैरुपस्तब्धमुपस्तम्भैः शरीरम्'। अर्थात् स्वास्थ्य के यह तीन उपस्तम्भ आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य, स्वास्थ्य रूपी तिपाई के तीन पाये के समान है। एक भी पाया गडबडाया तो स्वास्थ्य रूपी तिपाई टिक नही सकती, वह धराशायी हो जायगी।

इस आहार उपस्तम्भ के ३ घटक बताये गये है। (१) आहार (भोजन) (२) जल (३) वायु। इस प्रकरण मे हम प्राचीन निर्देशो का उद्धरण देते हुए वर्तमान परिपेक्ष्य मे उनकी वस्तु स्थिति का भी विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

आहार जीवन गाडी का पेट्रोल है। इसके द्वारा ही प्राणियो को शरीर धारण करने और अनेक शारीरिक कार्य सचालन के लिए शक्ति प्राप्त होती है। प्राचीन शास्त्रकार भोजन को हित भोजन अर्थात सतुलित भोजन कहते हैं। इसे ही ग्रहण करने का निर्देश देते हैं। भोजन ऐसा होना चाहिए जिसमे समस्त रस तत्वो का समावेश होवे, चिकनाई युक्त हो, शरीर को स्थिरता प्रदान करने की शक्ति देने वाला हो, दिल और दिमाग को शक्ति देने वाला हो, तथा आसानी से पच जाने वाला हो। इन विशेषताओ से युक्त आहार को आजकल 'सतुलित आहार' की सज्ञा दी गई है। जिसमे भोजन के रूप मे ग्रहणीय समस्त व्यजनो को एक स्वस्थ युवा व्यक्ति के लिये कितनी मात्रा मे आवश्यकता है बताया गया है। प्राचीन भारतीय भोजन के स्वरूप, उपयुक्त मात्रा आदि पर विद्वानो ने 'सामान्य वृद्धि कारण' के सूत्र की ओर सकेत किया है। जिसका मतलब यह है कि—

१ भोजन इस श्रेणी का हो कि उसके द्वारा रस रक्तादि सप्त धातुओं और स्नायु मण्डल निरन्तर वृद्धि करना रहे। जैसे दूध, अण्डा, मास, दाल आदि प्रोटीनयुक्त सामग्री।

२ भोजन मे ऐसे तत्व हो जो शरीर मे आवश्यक उष्णता, ऊर्जा प्रदान करते रहे। इस हेतु आटा, चावल, चीनी आदि शर्करायुक्त पदार्थ का निर्देश है।

३ भोजन मे उन तमाम तत्वो का भी समायोजन होना चाहिए जो शरीर को जीवनीय शक्ति प्रदान करते रहे, और कुछ स्थाई शक्ति कोष सचय का कार्य कर सके। जैसे घी, तैल, मक्खन आदि चिकनाई युक्त पदार्थ

४. भोजन मे ऐसे भी द्रव्य होने चाहिए जो शीघ्र भोजन के पाचन, प्रचूपण, एव शरीर मे प्रसारण का कार्य कर सकें यथा—जल फलो के रस, लवणाम्ल पदार्थ आदि।

हमारी इन्ही प्राचीन आहार सतुलन व्यवस्था के आधार पर आधुनिक विचारको ने सतुलित आहार की सारिणी प्रस्तुत की है। जो स्वास्थ्य को अच्छा बनाये रखने के लिए आवश्यक है। अब उसे भी देखिये। कोई भी स्वस्थ युवा व्यक्ति यदि इस तालिका के अनुसार भोजन ग्रहण करे तो उसका स्वास्थ्य अच्छा रहेगा।

सतुलित आहार तालिका

१	चावल	६ छटाक या	३०० ग्राम
२	आटा	१ पाव या	२०० ,,
३.	दाल	२ छटाक या	१०० ,,
४	घी या तेल	१ छटाक या	५० ,,
५	गुड	१ छटाक या	५० ,,
६.	आलू	१ छटाक या	५० ,,
७.	हरे साग	१ पाव या	२०० ,,
८.	मट्ठा	८ छटाक या	४०० ,,
९	मूगफली या सूखे मेवा	२ छटाक या	१०० ,,
१०	नमक	१/२ तोला या	६ ,,
११	जल या अन्य पेय	आवश्यकतानुसार	

नोट—यह भोजन की एक सामान्य तालिका है। जिनका पेट इस तालिका मे लिखी सामग्री से न भरे वह इसी अनुपात मे खाद्य सामग्री बढा सकते हैं। परन्तु जिन्हे इस तालिकानुसार भोजन अधिक मालूम पड़े वह उसी अनुपात से कम कर सेवन करे। अन्यथा ज्यादा या कम खाने पर दोनो ही स्थितियो मे अच्छे स्वास्थ्य को कायम रखने मे क्षति उठाती पड़ेगी।

प्राचीन आयुर्वेदज्ञो ने भोजन सामग्री की विविधता पर विस्तृत प्रकाश डाला है। जल तथा वायु उस समय दूषित थे ही नही फिर भी जल के ग्रहण करने के कुछ निर्देश है जैसे जहाँ पाये, कैसा भी जल हो ग्रहण न करे। कूप, बावली, नदी आदि के जल को साधारणतया 'वस्त्रपूत पिवेत जलम्' अर्थात् पानी को वस्त्र से छानकर पीने का निर्देश दिया है। प्राचीन काल में टाटा, बिरला के कारखाने तो थे नही जहाँ करोडो टन विषाक्त गैसें निकलकर वायुमण्डल को दूषित करती, हमेशा सर्वत्र यज्ञ हुआ करते थे जिससे वायुमण्डल पूर्ण शुद्ध रहता था, फिर भी जैन धर्मावलम्बियो द्वारा नाक मे पट्टी बाँधकर चलने के सिवाय वायु ग्रहण करने के कोई विशेष निर्देश स्पष्ट नही थे।

आधुनिक परिस्थितियाँ और आहार की उपलब्धता

जैसा प्रारम्भ मे बताया गया है कि आहार मानव स्वास्थ्य के तीन उपस्तम्भो मे प्रथम स्थान रखता है। जन्म से मृत्यु तक स्वास्थ्य को कायम रखने एव शारीरिक क्रिया सचालन हेतु आहार की आवश्यकता पडती है। परन्तु क्या आपने कभी यह सोचा है कि आहार के रूप मे ग्रहण किये जाने वाले अन्न, शाक भाजी, दूध, मक्खन, मसाले, मेवे, पूर्णतया शुद्ध एव जीवाणु विष से मुक्त हैं ? आज परिस्थितिया इतनी बदल गई हैं कि हम आधुनिक फैशन रूपी असभ्यता के नागपास मे इस बुरी तरह जकडे है कि बडी कठिनाई से उपलब्ध शुद्ध खाद्य पदार्थो को ग्रहण करना भी अव्यवहारिक समझने है।

खाद्यान्न एव उसका वर्तमान स्वरूप—जब बीज बोना होता है तब उसे बीज शोधन क्रिया के नाम पर भयंकर विषो के घोल मे डुबाकर तब बोया जाता है। इस प्रकार उगा पौधा प्रारम्भ से ही विषाक्त हो जाता है। जब फसल कुछ बढती है, तो फसल सुरक्षा हेतु उसमे 'फालीडाल' या ट्राइकेसिल फास्फेट जैसा भयकर विष छिडका जाता है। इस विष से आत्र शोथ, उल्टी रही तथा पैरालिसिस तक के भयकर रोग उत्पन्न होने का खतरा रहता है। फसल अच्छी हो इसके लिये हम उसमे अनेक रसायनिक उर्वरक डालते है। पौधे इन उर्वरको के तीव्र, विषाक्त तेज का शोषण कर लेते हैं। फलत जो अन्न, फल, शाक सब्जी तैयार होते हैं उनमे मानव स्वास्थ्य के लिये खतरनाक विषैले तत्व मौजूद रहते है। उसमें और इनमे विष सचरण कराया जाता है, जैसे अन्न का भण्डार करते समय उनमे पर्याप्त मात्रा मे डी डी. टी या गैमक्सीन पाउडर आदि विषो को मिलाया जाता है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक इन्हे भेजने मे भी अन्न फल तरकारियो आदि मे सडन पैदा हो जाती है तथा उनमे फफूदी आदि भयकर स्वास्थ्य शत्रु जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं। अन्न एव तरकारियो के अलावा आहार के सहायक द्रव्य जैसे मिर्च, मसाले, हल्दी, दूध, घी की हालत तो और बदतर है। हल्दी मे पीली मिट्टी, सरसो के तेल मे स्वर्ण जीरी बीज का तेल मिलाया जा रहा है, जिससे मनुष्यो को पीलिया, रक्तदोष, नेत्रदोष, सधिवात जैसे भयकर रोग उत्पन्न हो सकते हैं। दूध मे तथा घी मे क्या-क्या मिलाया जाता है यह किसी से छिपा नही है।

अब बताइये विष मिश्रण की इतनी प्रक्रियाओ से उत्पन्न अन्न, शाक भाजी आदि से तैयार सतुलित आहार शीघ्र मृत्यु देने वाला है अथवा अच्छा स्वास्थ्य और ऐसे अन्न, शाक, भाजी को छोडकर आप खा क्या सकते हैं। क्या इस भूमण्डल मे मनुष्य के रूपमे जन्म लेकर आप शुद्ध आहार पाने की कल्पना कर सकते हे।

वायु आहार का द्वितीय घटक—आहार जीवन का उपस्तम्भ है, और वायु उसका एक मुख्य घटक है। अब आप को मैं वायु के लोक को ले चल रहा हूँ। जहाँ आप यह विचार करने को विवश होगे कि वास्तव मे आज वायु का भी शुद्ध रूप मे मिलना कठिन है।

वायु को आयुर्वेद मनीषियो ने प्राण माना है। क्योकि अन्न जल न मिले तो भी हम अनशन करके ७५ से ८० दिन तक जी सकते है। परन्तु वायु के अभाव मे हमारा कुछ मिनिट भी जीवित रहना कठिन हो जायगा। पूर्णतया शुद्ध वायु शरीर के लिए, स्वास्थ्य के

लिये बडी हितकर है। वायु का पूर्ण अभाव हो गया है जिसका ही परिणाम है कि नये-नये प्रकार की निदान मे परे हजारो किस्म की बीमारियो से ग्रसित प्राणी देखने को मिल रहे हैं।

जीव मण्डल और उसकी विषाक्तता—पृथ्वी के ऊपर का ६ मील तथा नीचे का ६ मील कुल बारह मील का क्षेत्र जीव मण्डल कहलाता है। जिसमे सभी प्रकार चौरासी लाख योनियो वाले प्राणी निवास करते है। परन्तु मनुष्य सदृश्य प्राणी केवल २ मील के जीव मण्डल मे ही रहते हैं। यह दो मील का जीव मण्डल और उसमे सास लेने वाली प्राण वायु अनेको प्रकार के जीवाणुओ, विषमय धूल कणो, तथा घातक धात्वीय खनिजो के चूर्णो से मिश्रित है। प्राणवायु (oxygen) का निरन्तर अभाव होता जा रहा है। वातावरण जीवाणुओ एव विषाक्त गैसो से परिपूर्ण है जहा सास लेकर हम प्रतिदिन अपने फेफडो मे असख्य हानिकारक जीवाणु, धूलकण, एव विषैली गैसो को झौक रहे हैं।

धूम्रपान का स्वास्थ्य पर प्रभाव– धूम्रपान अथवा तम्बाकू का किसी भी विधि से सेवन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। वैज्ञानिको का ऐसा मत है कि तम्बाकू मे निकोटीन नामक विष होता है। जिससे रक्त चाप, हृदयावसाद, आत्रव्रण, रक्त का अभाव, शिराविकृति, फेफडे का कैसर, श्वासनी शोथ, एम्फाइसीमा जैसे भयकर रोग उत्पन्न होते हैं।

सिगरेट का धुवा तो महा प्रलयकारी होता है। इसके सूक्ष्म विश्लेषण से पता चला कि इसमें ३०० प्रकारके ऐसे हानिकारक द्रव्य होते हैं जो स्वास्थ्य की बोटी बोटी काट डालते हैं। वैज्ञानिको के अनुसार सिगरेट के धुवे मे मुख्यत अम्ल लिसरान, ग्लाइकाल, अल्कोहाल, एल्डीहाइड कीटोन, एलिफैटिक एव एरोमैटिक हाइड्रोकार्बन तथा फीनोल होते हैं जो सब कैसर का कारण होते है। अच्छे स्वास्थ्य के लिये तम्बाकू से निर्मित हर प्रकार के व्यसन का त्याग करना आवश्यक है।

कल कारखानों द्वारा निकला धुआं—कल कारखानो मे ईंधन के रूप मे प्रयुक्त खनिज एव कोयला एव अन्य तमाम द्रव्यों का जारण करने पर उसमें जो धूल और धुआं निकलता है वह इतना तीव्र एव विषाक्त होता है कि आस पास निवास करने वाले लोगो में अनेको फेफडे के रोग, श्वास नली के रोग, रक्त की कमी, पीलिया, कैसर, मोतिया बिन्द आदि रोगो के होने का खतरा बना रहता है। वैज्ञानिको ने सर्वेक्षण करके यह स्पष्ट कर दिया है कि भारत का ३/४ वायु मण्डल पूर्णतया विषाक्त एव हानि कारण धूल कणो से भरा पडा है। जहा श्वास लेने के लिये शुद्ध प्राण वायु उपलब्ध नही है।

क्या शुद्ध पेय जल उपलब्ध है–जल आहार के मुख्य घटको मे अत्यावश्यक तो है ही साथ ही मे बडी महत्व पूर्ण भूमिका अदा करता है। इसे शरीर धारक द्रव्यो मे विशिष्ट स्थान दिया गया है परन्तु आज शुद्ध रूप मे उपलब्ध नही है। अधिकाश शहरो मे नदियो का जल नगरवासियो के पीने के काम मे प्रयोग किया जाता है। इन नदियो के किनारे के नगरो मे स्थित, चमडे के, वस्त्र के, ऊन के, खड अथवा कागज बनाने तथा चीनी आदि के बडे बडे कारखाने स्थित रहते है जिससे उनमे से निकलने वाले तरल पदार्थ राखे आदि भारी मात्रा मे निरन्तर जल मे मिलती रहती हैं। फलत नदियो का कई मील क्षेत्र का जल भयकर विषो का मिश्रण हो जाता है।

अनेको नदियो के किनारे के नगरो मे अनेक रसायनिक कारखाने, सीमेंट आदि के कारखाने लगे हैं जिनका सारा दूषित पदार्थ नदियो के पानी मे मिलता रहता और पानी को विषाक्त बनाता रहता है। डी डी टी के कारखानो से निकला क्लोरल हाइड्रेट पदार्थ तो इतना घातक होता है कि नदियो के कई मील क्षेत्र की मछलिया तक मर जाती हैं। बम्बई के पास कालू नदी के तट पर स्थित रेयन कारखानो से इतना तेजाब निकलकर जल मे मिलता है कि वह नदी एक खारी झील बन गई है। जहा कल कारखानो से नदियो का जल विष तुल्य हो गया है। वही नदी तट के नगरो का सारा मल मूत्र, कूडा कचडा, मृतक मानव, पशु भी इन्ही मे फेंके जाते है। जिससे सारा जल मण्डल भीषण दुर्गन्धयुक्त एव हानिकारक हो जाता है। क्या ऐसा जल ग्रहण करने से अच्छे स्वास्थ्य की आशा की जा सकती है। वाटर वर्क्स मे भी जल की इन गन्दगियो और हानिकारक अनन्त तत्वो को दूर करना असम्भव है।

—शेषाश पृष्ठ १५१ पर देखे।

हमारा आहार

एक चिन्तनीय विषय ...

-:कविराज श्री हरि कृष्ण सहगल:-

कविराज जी का सम्बन्ध धन्वन्तरि से लगभग ३७ वर्षो से है। आप लाहौर के रहने वाले है। वहा आपकी ४-५ पुस्तके प्रकाशित हुई थी। भारत विभाजन के समय आप देहली आ गये। आप विद्वान लेखक है। महासम्मेलन पत्रिका के सम्पादक रह चुके है। अनेक पत्र पत्रिकाओ में आपके लेख प्रकाशित होते रहते है।

—विशेष सम्पादक

हमारा आज का युग, आठ दश नही एक हजार वर्ष पूर्व के युग से भी बिल्कुल भिन्न है। मुगलों के काल मे खाद्य पदार्थों के जो भाव थे, उसे जाने दीजिये पचास वर्ष पूर्व अग्रेज के वक्त मे जो भाव थे क्या वह आज हैं ? अग्रेजी राज्य मे पाकिस्तान सहित भारत की आबादी अठारह करोड थी आज अकेले भारत की जनसख्या पचपन करोड के लगभग है। पहले भारत गेहू चावल आदि का विदेशो मे निर्यात करता था और आज लाखो टन का आयात करता है। आज भारत मे चालीस करोड लोग गरीब नही, गरीबी से भी बहुत नीचे कगाली का जीवन व्यतीत करते है। लोग देहात को छोडकर नगरो की ओर भागे चले आ रहे है। बेरोजगारी और महगाई का एक परिणाम है कि नगरो मे ३ करोड लोग गन्दे मकानो मे अथवा फुटपाथो पर सोते है। आयुर्वेद की सहिताओ के काल का भारत और आज का भारत दोनो एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। वह जो कहते हैं 'वह दिन हवा हुये जब खलील खा फाखता उडाया करते थे' ठीक कहते है। आयुर्वेद की सहिताओ मे जो आहार उपदेश है वह बहुत पुराना हो चुका है।

ति २२. ३ ७५ को अखबार प्रताप मे एक खबर छपी है कि चीन ने अमरीकन गेहूँ लेने का सौदा समाप्त कर दिया है क्योकि वह गेहू अच्छा नही था। भारत भी अमेरिका से गेहूँ मगाता है। अमरीका जो कुछ दे देता है वह उसे स्वीकार कर लेता है। विदेशी अनाज मे दोष इस प्रकार होते है—

अनाज मे कुछ अन्य प्रकार के बीज मिले हो, देर तक स्टोरो मे पडे रहने से अथवा स्टोर के बाहर वर्षा धूप मे पडा रहने से वह गल सड गया हो। अमेरिकन

मैक्सिकन गेहूँ की रोटी ठीक नही आती। यह आतो को साम्य नहीं। लाल ज्वार तो अमेरिका मे केवल पशुओ को खिलाई जाती है।

नगरो के राशन मे बहुधा विदेशी अन्न अथवा मिलो का आटा दिये जाते हैं। मिलें आटे मे से सूजी और मैंदा निकाल लेती है, इस आटे से अजीर्ण और पाचन् विकृतिया होती है। लोग भी आटे को छानकर लेते है वह हानिकर हो जाती है। राशन दुकानो पर मिलने वाला मोटा चावल न खाने मे। रुचिकर है न देखने मे नगरो में मिलने वाले अन्न से मनुष्य जीवित तो रह सकता है परन्तु स्वस्थ नही—

गाव मे रहने वाले भी बचे नही—गोवर की खाद की जगह मिट्टी के तैल से उत्पन्न खाद ने ली है। गोवर की खाद के गुण आधुनिक खाद मे नही—पहले के अन्न और कृषि विभाग द्वारा खोजे गये भारी झाड और अधिक फसलो के अन्न की तासीर एक नही—फसलो को कृमियो और रोगो से बचाने वाले कृमिनाशक द्रव्यो के छिडकाव से उसी प्रकार इनकी शक्ति क्षीण होती है जिस प्रकार नगरो के पीने के पानी मे क्लोरीन मिलाने से होती है। हम समय की सुइयो को उल्टा घुमाकर कुछ शताब्दियो, पूर्व पर नही ले जा सकते। इसलिये हमने कहा है कि न तो प्राचीनकाल के अन्न उपलब्ध हैं, न आज के अन्नो में पौष्टिकता है। स्वास्थ्य के लिये कौन अन्न लेना चाहिये यह सोचना पडेगा।

कहते है परेशानी एक तरफ से ही नही आती और यह ठीक है। हम जानते हैं कि गले सडे आहार द्रव्य, सब्जिया और फल न खाने चाहिये, इनसे स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है परन्तु नगरो मे वडे वडे कोल्ड स्टोरेजो मे रखे द्रव्य देर तक बाहर से ठीक नजर आते है परन्तु काटने पर अन्दर से सडे और वेस्वाद निकलते है। वडे होटलो मे बचे अन्न को फ्रिजो मे रखा जाता है घरो मे कच्ची पक्की सब्जियो, फलो और आहार द्रव्यों को फ्रिजो मे रखा जाता है। फ्रिज मे रखा पदार्थ भी कुछ काल पश्चात् नि शक्ति हो जाता है। पौडर के दूध या क्रीम निकले दूध की चाय मे क्या होता है ? लोग अपने आपको धोका देते हैं। नगरो मे धनी व्यक्ति भी ठीक फल नही खा सकते। 'कार्बाइड गैस द्वारा फलो को पकाने की जो नवीन प्रणाली निकली है इसने किसी के लिये भी स्वस्थ रहना असम्भव कर दिया है। इन फलो से बने पेय-जूस-सूप कोई भी ठीक नही, यह गैस से पके फल पेट को खराब करते हैं।

देशी घी तो दवाई के लिये भी नही मिलता, डालडा के लिये भी लाइनें लगती है। तैल ! यह भी खालिस नही मिलेगा, इसमें भी मिलावट हो रही है—मक्खन और फल डालडा और चर्बी से बनता है। आज के युगमें स्वास्थ्य वर्द्धक आहार कही दृष्टिगोचर नहीं हो रहा। आज के गरीबी के वातावरण मे अनार, संतरा, सेब, अगूर का रस बताया जाये तो यह अधिक खर्चीले हो चुके है। इन्हें खाना भी एक ऐयाशी है। दूध घी भी नही बताये जा सकते। न तो शुद्ध मिलते हैं न इनकी कीमत दी जा सकती है। अवलेह पाक केवल कुछ व्यक्ति ही बनाकर खा सकते हैं। उनके निर्माण मे प्रयुक्त होने वाले मेवे, केशर, कस्तूरी आदि की कीमतें अत्यधिक चढ चुकी हैं। इन परिस्थितियो मे गाजर का रस, सूप और हलवा ही बढिया आहार द्रव्य हैं। पालक, शलजम का सूप रस रक्त वीर्य उत्पादन मे सस्ते और बढिया द्रव्य है। मांस का सूप—दूध, अण्डा सोयाबीन, तिल, नारियल का तैल स्वास्थ्यप्रद द्रव्य हैं। दलिया, खीर ही बढिया भोजन है।

स्त्री का अर्थात् गृहलक्ष्मी का स्वास्थ्य वर्द्धक आहार मे योगदान बहुत महत्व का है। हम जो कुछ कहने जा रहे हैं विषय सूची मे इसका उल्लेख नही। एक बार स्वर्गीय महामना मदनमोहन मालवीय से एक भेंट मे एक पत्राकार ने पूछा था कि महामना जी आपके उत्तम स्वास्थ्य मे क्या कारण है ?

तो मालवीय जी ने कहा था "कि इसका श्रेय मेरी पत्नि को है जो भोजन बनाते और परोसते हुए—उसमे अपना सारा स्नेह उडेल देती है" मालवीय जी ने बहुत अर्थ की बात कही है। वह भोजन तो एक मुसीबत समझ कर पकाया जाता है जिसे नौकर परोसते है अथवा खाने वाले को स्वयम् कही से उठाकर खाना होता है। उससे पाचक रस, पाचक अग्नि ठीक नही रहते। भोजन स्वास्थ्यप्रद न होकर रोगोत्पादक हो जाता है और जो स्त्री स्वभाव से कटु, तेज तरार, खुदगर्ज, जबान दराज हो तो पुरुष अनेको रोगो का शिकार होकर कम आयु मे वृद्ध हो जाता है।

स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ टैगोर भी स्त्री के प्रेम से परिचित थे। वह मन के सौन्दर्य के उपासक थे। आपने एक ऐसी लडकी से विवाह किया जिसके चेहरे पर चेचक के दाग थे। जब एक मित्र ने इसका कारण पूछा तो आपने कहा जो स्नेह यह मुझे दे सकेगी वह मैं किसी अमीर घर की सुन्दर लडकी से विवाह करके न पा सकता था।

इण्डोनेसिया के भूतपूर्व प्रधान स्वर्गीय सोकारेना एक बार कही भोजन कर रहे थे। उन्हे भोजन परोसने वाली स्त्री मे अद्भुत स्नेह दिखाई दिया। बाद मे मालूम हुआ कि वह भोजन पकाया भी उसी स्त्री ने था। इसके छ मास पश्चात् चार बच्चो की मां उस विधवा स्त्री से सोकारेना ने विवाह कर लिया। स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन के निर्माण और खिलाने मे स्त्री का योगदान बहुत महत्व का है। शायद यही कारण है कि भगवान विष्णु के नाम से पहले लक्ष्मी-श्री कृष्ण जी के नाम के पहले राधा, भगवान राम के नाम के पहले सीता और भगवान शिव के नाम से पूर्व उमा का नाम आते हैं। मानव स्वास्थ्य, शुद्ध पवित्र उत्तम भोजन और स्नेह को उड़ेल सकने मे सशक्त स्त्री के हाथ मे है। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात की मृत्यु बेशक विष के प्याले से हुई थी परन्तु वास्तव मे घातक उसकी स्त्री थी-जिसने जीवन भर उसको स्नेह न दिया और वह सुकरात से इतनी नफरत और जलन करती थी कि एक बार उसने सुकरात पर उबलती हुई दाल का पतीला दे मारा था। इस लेख के अन्त मे हम पाठको के सामने अन्तिम मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर का दस्तरख्वान रखते है।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक मुंशी फैजउलदीन बहादुर शाह जफर की डायरी मे लिखते है दोपहर का भोजन बादशाह जिस कमरे मे करता था, उसे केशर और कस्तूरी से सुगन्धित किया जाता था। मेज पर चुनी जाने वाली चीजे इस प्रकार थी—चपातियाँ, पराठे, फुलके, रोगनी रोटी, दाल भरी रोटी, बेसनी रोटी, खमीरी रोटी, नान, शीर माल, कुलचा। बाकरखानी, बादाम की रोटी, गाजर की रोटी, पिस्ते की रोटी, चावल की रोटी, परवनी पलाओ, मोती पलाओ-किशमिश पलाओ-खिचडी मुतजन, जर्दा, सवैया, फिरनी, खीर, दलिया, सम्बोसे, सलोने, शाखे, खजले, कल्लाये, कुरमा, कलिया, दो प्याजा, हिरण का कूर्मा, मछली, मुर्ग तन्दूरी, बरानी, रायता, पनीर चटनी, दहिबड़े, भुरता, दलमा-सीख कबाब-हलवे (गाजर-कद्दू-मलाई-बादाम-पिस्ता) मुरब्बे करेले, रैगतरे, निम्बू, अनानास बांस वगैरह के—खोये के बने सतरे-शरीफे सेब आदि—मौसम के फल-लड्डू (बादाम, मोतीचूर, मूंगी) पिस्ता-मगजी-इमरती-जलेबी बर्फी-फेनी-कलाकन्द- मोतिपाक- बालुशाही- दोबदिश्त अन्दर से। सब पर चाँदी सोने के वर्क लगे होते थे।

— कविराज श्री हरिकृष्ण सहगल
सदर थाना रोड, दिल्ली

—पृष्ठ १४८ का शेष—

नदियो के अतिरिक्त कुओ, वावली, झील, तालाब, टयूब वेल के पानी आदि का भी पीने के लिए प्रयोग होता है। ऐसे जलो मे भी सोडियम, पोटेशियम, कैलशियम, मैग्नीशियम के क्लोराइड, कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट और सल्फेट घुले रहते है। यह सब शारीरिक प्रक्रियाओ पर प्रभाव डालने वाले होते हैं। जो शनै शनै शरीर में अधिक मात्रा मे संचित होकर भीषण बीमारिया पैदा करते है। डा० कृष्ण बल्लभ पालीवाल ने अपने एक लेख मे तो यहाँ तक लिखा है कि जल के अन्दर फ्लुओराइड नामक पदार्थ के घुले होने के कारण राजस्थान हरियाना और आधप्रदेश मे हजारो नर नारियो को फ्लुओरोसिस नामक भयकर बीमारी का शिकार होते पाया गया है।

दूषित जल और उसका प्रभाव—वैज्ञानिको का ऐसा अनुमान है कि भारत मे ५० से ६० प्रतिशत लोग दूषित जल पीने से बीमार पडते है। दूषित जल पीने से हैजा, पोलियो, पेचिश आदि सामान्य रूप से होते रहते है। डा० राघवन का मत है कि भारत मे प्रतिवर्ष लाखो लोग फाइलेरिएसिस से मरते है जो मात्र दूषित जल के पीने से होती है।

इस प्रकार हम देखते है कि आज शुद्ध जल भी उपलब्ध नही है। क्या ऐसे जलको पीकर अच्छे स्वास्थ्य की कामना करना उपयुक्त है। आशा है कि सरकार एव स्वास्थ्य रक्षा के अन्वेषी इस पर ध्यान देंगे।

—श्री प चन्द्रभूषण पाण्डेय वद्य एम.ए. आयुरत्न,
श्री शकर आयु. चिकित्सालय,
ऐमापुर चायल (प्रयाग) उ.प्र.

आहार से सम्बन्धित रोग

येषामेव हि भावना सम्यक् सजनयेन्नरम् ।
तेषामेव विपद् व्याधीन विविधान समुदीरयेत् ।।
प्राणा प्राणभृतामन्न तदयुक्त्या निहन्त्यसून् ।
विष प्राणहर तच्च युक्तियुक्त रसायनम् ।।

—चरक

अन्न जैसे निर्दोष, सतुलित और युक्तियुक्त होने पर मनुष्यो को सशक्त और स्वस्थ बनाकर शतायु कर सकता है, वैसे ही सदोष, असतुलित और अयुक्तियुक्त होने पर उनको अशक्त और अस्वस्थ बनाकर अल्पायु भी कर सकता है। अत जिन कारणों से अन्न स्वास्थ्य हानिकर होता है। उन कारणो को मालूम करके उनको टालने का प्रयत्न करना प्रत्येक का कर्तव्य है। अन्न निम्न कारणो से स्वास्थ्य हानिकर होता है—

(१) अत्यन्न योग (Excess of food)—अपनी पाचन शक्ति से अधिक मात्रा मे जब अन्न का सेवन किया जाता है तब उसको 'अतियोग' कहते है। अधिक मात्रा (यावद्ध्यस्याशन मशितमनुपहत्य प्रकृति यथाकाल जरा गच्छति तावदस्य मात्राप्रमाण वेदितव्यम् । चरक ।। अमात्रा पुनरशनस्य हीनताऽधिक्य वा ।—अष्टाग सग्रह ।।) मे अन्न सेवन करने से पचन, हृदय, रक्त सवहन और मलोत्सर्जन के सस्थानो पर अधिक भार पडता है। पचन सस्थान पर अधिक भार पडने से अपचन, आँत्र मे अन्न का सडना, आध्मान, आन्त्रशूल, मलावरोध या प्रवाहिका, अम्लपित्त आदि अजीर्ण (अनात्मवन्त पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणत । रोगानीकस्यते मूलमजीर्ण प्राप्नुवन्ति हि ।। सुश्रुत ।।) के लक्षण उत्पन्न होते हैं। यदि अन्न का अतियोग नैत्यिक हो जाय तो आन्त्रगत सडन के विष रक्त मे जाकर आत्मान्तर्विषता (Auto toxication) उत्पन्न करते है। इस विषता का परिणाम हृदय रक्त वाहिनियो, वृक्को के ऊपर होकर मधुमेह, वातरक्त, स्थूलता, परम निपीडता (रक्त भार का बढना hyperpiesis) आदि अनेक रोगों की उत्पत्ति होती है।

(२) हीनान्न योग—जब अन्न की सकल राशि (उपकरी राशि) तथा अन्न के विविध सघटको मे एकाधी या

कुपोषण से पीडित दो व्यक्ति

अनेकों की राशि उचित राशि से कम रहती है तब उसको 'हीनयोग' (तत्र हीनाशममशन बलवर्णोपचयमनो बुद्धीन्द्रियोपघातकर विबन्धकृदधृष्यमनायुष्यमनोजस्य सारविघ्मापनमलक्ष्मीजननमशीतेश्च वातविकाराणामायतने) —(अ० स) कहते हैं। इसीको आधुनिक परिभाषा मे हीन (Deficient) और असतुलित आहार कहते हैं। स्वास्थ्य हानिकर हीनयोगो मे कुल राशि के उच्च प्रोभूजिनो के खनिजो ने और जीवतिक्तियो के हीनयोग महत्व के है—

(अ) अन्न के सब सघटको की कमी होने से मारक्षय, रक्तक्षय, बलक्षय, धातुक्षय इत्यादि— शरीर क्षयकर और दौर्बल्यकर अनेक विकार उत्पन्न होते हैं। पूर्ण अनशन से शरीर शीघ्रता से कृश होता है, श्लेष्मलावरण सूख जाते हैं, हृदय और श्वसन का कार्य ठीक नही चलता, मन्दज्वर, बेचैनी, इत्यादि लक्षण उत्पन्न होकर सन्यास से मृत्यु हो जाती है। छोटे बच्चे अनशन को सह नही सकते और और जल्दी मर जाते है। चिरकालिक अनशन के (जैसे भूखहडताल) शरीर पर बहुत ही खराब परिणाम हुआ करते हैं। पचन सस्थान उससे इतना दुर्बल हो जाता है कि आगे चलकर उचित अन्न देने पर भी वह उसको पाचित नही कर सकता न प्रचूसित कर पाता। परिणाम यह होता है कि अन्न सेवन करने पर भी उसकी मृत्यु अनशन से ही हुआ करती है।

(आ) अन्न मे उत्कृष्ट प्रोभूजिनो की कमी होने से शरीर पर सूजन उत्पन्न होती है जिसको 'अपतर्पणज या अपोषणज (Nutritional) शोक' कहते हैं तथा अपतर्पणज परमवर्णिक रक्तक्षय (Hyperchromic anaemia जैसे उष्णकटिबन्धक रक्तक्षय विशेषतया गर्भिणी स्त्रियो मे उत्पन्न होते हैं।

(इ) खनिज द्रव्यो मे चूने की कमी से अस्थि विकार, अयस की कमी से रक्तक्षय, जम्बुकी (Iodine) की कमी से गलगण्ड (Goitre) इत्यादि विकार उत्पन्न होते हैं।

(ई) जीवतिक्तियो में 'क' की कमी से रतौधी, शुष्काक्षिपाक, ख' की कमी से वात बालासक (Beri-Beri), त्वग्ग्राह, 'ग' की कमी से प्रशीताद, शैशवीय प्रशीताद' और 'घ' की कमी से अस्थिवक्रता, अस्थिमृदुता इत्यादि विकार होते हैं। जीवतिक्तियो के हीनयोग से होने वाले रोगो को ही साधारणतया 'हीनान्न रोग (Deficiency diseases) कहते हैं।

(३) अन्नज अनूर्जता (food allergy)–कुछ लोग सहज या जन्मोत्तर प्राप्त अपनी अज्ञात प्रकृति (Idiosncrasy) के कारण कुछ खाद्य द्रव्यो के लिए अक्षम होते है। जिससे उन द्रव्यो के सेवन से केवल उन्ही मे अनवधानता (Anaphylaxis) के समान विशिष्ट रोग या लक्षण उत्पन्न होते है। ये अनूर्जिक (Allergic)रोग कहलाते है। जैसे नासास्राव, तृणपुष्पाख्य ज्वर (Hay fever) श्वास शीतपित्त, उदर्द (Giant usticaria) वमन,प्रवाहिका, अर्धावभेदक, मृगी इत्यादि। अनूर्जिक रोग उत्पन्न करने वाले द्रव्य अधिकतर प्रोभूजिन भूयिष्ठ होते है–जैसे अण्डा, पनीर, मछली, सीप मछली (shellfish), घोघा, सूअर का मास इत्यादि।

(४) विषान्न योग (Endogenous food poisoning)—इसमे स्वभावत विषैले खाद्य द्रव्यो के सेवन से होने वाले रोगो का समावेश किया जाता है। जैसे विषैले छत्रक (mushrooms), मछलिया (ये मछलिया अधिक तर जापान मे पाई जाती है), आलू के अकुर, आकते की दाल इत्यादि। छत्रको और मछलियो के सेवन से जठरान्त्रिक क्षोभ, अवसाद इत्यादि से मृत्यु होती है। आकते की दाल (vicia sativa) से कलायखज (Lathyrism) और भडभाड या सत्यानाशी (Argemeone) के तेल से मरक शोफ होते हैं।

(५) दूषितान्नयोग (Exogenous food poisoning) — इसके खाद्य द्रव्य उपर्युक्त के समान स्वभावत मनुष्यो के लिये विषैले नही होते, परन्तु बाहर से उनमे कुछ विषैले द्रव्य मिल जाने से हानिकर होते है। इसके निम्न भेद होते है—

(क) रसायन विषयोग—इसमें डिब्बो मे बन्द किये हुए खाद्य द्रव्यो का समावेश होता है। जैसे-फल, मुरब्बे, मछलियाँ, अचार इत्यादि। कभी-कभी इन द्रव्यो के अम्लो का या इन खाद्यो मे उत्पन्न हुए अम्लो का डिब्बी की धातु पर परिणाम होकर वह धातु खाद्य को विपाक्त कर देती है। ताम्रपात्र का उपयोग खट्टे पदार्थों को रखने के

लिये टंकणादि रसायनो का प्रयोग किया जाता है। उनका सेवन करने से विषैले लक्षण उत्पन्न होते है।

(ख) छत्रक विषयोग—कभी-कभी शूक धान्यो पर स्वच्छमक (Ergot Fungus) उत्पन्न होते है और उनके साथ इनका भी सेवन किया जाता है जो स्वच्छत्रकता (Ergotism) नामक विकार उत्पन्न करते हैं। इसमे हाथ-पैर-कान-नाक इत्यादि अङ्गो मे कोथ (Gangrene), हाथ पैरो मे सुन्नता, झुनझुनी, खाज, पेशियो मे जकडन, लडखडाहट इत्यादि लक्षण होते है।

(ग) तृणाणु विषयोग (Bacterial poisoning)—इसमे तृणाणुओं के उपसर्ग से होने वाले विकारो का समावेश किया जाता है। इसके निम्न प्रकार होते है—

(A) सालमोनेल्ला विषता (Salmonella poisoning)—इसमे सालमोनेल्ला वर्ग के तृणाणुओ (B Enteritidis-gartner, B aertrycke, B typhi muriom इत्यादि) से अन्न विशेषतया मास उपसृष्ट होता है और उसमे ये तृणाणु वृद्धि करते हैं। इस प्रकार दूषित मास के सेवन से वमन, रक्त और आव के साथ पतले दस्त, पेट में शूल, पिंडिकोद्वेष्टन, शरीर का ठडापन, हृदय दौर्बल्य इत्यादि लक्षण होते हैं।

(B) कूप्यन्नता (Botulism)—इसमे खाद्य द्रव्यो मे कूप्यन्न गदाणु (वैसीलस बोटुलिनस) नामक तृणाणुओ के विष का सम्बन्ध आता है। यह तृणाणु तीव्र वहिर्विष उत्पन्न करता है। डिब्बो के फल, मास, शाक इत्यादि इससे दूषित हो सकते हैं। यह दण्डाणु स्वय मनुष्यो मे कुछ भी विकार नही कर सकते। मासादि मे इसकी वृद्धि होने से जो विष उत्पन्न होता है उससे यह विकार उत्पन्न होता है। यह विकार बहुत घातक है। इससे पीडितो मे ५०% रोगी २ दिन के भीतर मर जाते हैं। इस विष का परिणाम मस्तिष्क नाडियो और सुषुम्ना पर होकर भ्रम, द्वितयदृष्टि (Diplopia), स्वरघ्न, श्वसन और हृदय का अतिपात (Failure) इत्यादि लक्षण होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है। इसमे मलविबन्ध होता है और वमन भी बहुत कम होता है और जब होता है तब रोग की असाध्यता का सूचक होता है।

(C) प्राणियों के रोग—जब प्राणी राजयक्ष्मा, माल्टा ज्वर, ऐन्थ्राक्स इत्यादि से स्वयं पीडित रहता है तब उसके मास या दूध में तृणाणु उपस्थित रहते है जो मास या दूध के साथ मनुष्यो के शरीर मे प्रवेश करके रोग उत्पन्न करते हैं।

(D) बाह्योपसर्ग—वाहक या रोगी के हाथो से, मक्खियो से अन्न दूषित होकर उससे अतिसार, आन्त्रिक विसूचिका, रोहिणी-विविध कृमि इत्यादि रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

(घ) कृम्युपसर्ग—प्राणियो के शरीर मे अवस्थान करने वाले अनेक कृमि होते है। इन कृमियो के कोष्ठो से (Cysts) जब प्राणियो का मास दूषित रहता है तब उसके सेवन से ये कृमि मनुष्यो पर सक्रान्त होते है। इसमे विविध स्फीतकृमि (Tenia) आते हैं। इन कृमियो का निवास मुख्यतया गो, बैल, सुअर और मछलियाँ इनमे हुआ करते हैं।

अन्न विषोद्भेदानुसधान

जब कही पर अन्नविष का उद्भेद (outbreak) हो जाता है तब उसका अनुसधान (Investigation) निम्न प्रकार से करना चाहिये—

१—पीडित लोगो की सख्या, लक्षण और अन्नविषता से सम्बन्धित अन्न का पता लगाना।

२—सचय काल देखना—जब अन्न पहले से विषाक्त रहता है तब लक्षण जल्दी उत्पन्न होते है और जब अन्न रोगाणुदूषित रहता है तब जरा विलम्ब से लक्षण उत्पन्न होते हैं।

३—प्रयोगशाला में सशयित अन्न का रोगी के मल-वमन का भौतिक रासायनिक जीवाणु वैज्ञानिक तथा सावधिक (Cultural) परीक्षण करना।

४—यदि कोई मर गया हो तो उसके आन्त्र, यकृत्-प्लीहादि अङ्गो का मरणोत्तर परीक्षा करना।

५—यदि रोगी ७-८ रोज तक बच गया हो तो उसकी रक्तलसीका का ज्ञात जीवाणु के साथ अभिश्लेपण कसौटी (Agglutination test) पर परीक्षण करके कारणभूत जीवाणुओ का पता लगाने का प्रयत्न करना।

कहावत है 'जैसा खाओ अन्न वैसा बने तन,' अर्थात् अच्छा स्वास्थ्य काफी सीमा तक संतुलित भोजन पर निर्भर करता है। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि पौष्टिक समझे जाने वाले आहार ही अधिक मात्रा मे खाये जायें क्योंकि आवश्यकता से अधिक मात्रा मे खाने पर पौष्टिक आहार भी हानि पहुंचाते हैं। इस प्रकार हमारे लिए अल्पपोषण और कुपोषण के समान ही आवश्यकता से अधिक खाना भी रोग का कारण बनता है।

विभिन्न पोषण-जन्य विकारो के कारण हैं अल्पपोषण-भोजन की अपर्याप्त मात्रा, कुपोषण-भोजन मे आवश्यक पोषक तत्वो की कमी और अधिक चिकनाई वाला भोजन।

हमारे देश मे कम-अधिक मात्रा मे सभी प्रकार के कुपोषणिक प्रभाव देखे जाते हैं। गरीबी, अज्ञान और भोजन के सम्बन्ध मे सही धारणा का अभाव इनके प्रमुख कारण हैं।

नीचे कुछ प्रमुख कुपोषणिक विकारो का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

क्वाशियोरकर

यह भोजन मे कुल ऊर्जा (जिसका माप कैलोरी कहलाता है) और अपेक्षित मात्रा मे प्रोटीन की कमी के कारण होता है। क्वाशियोरकर का शाब्दिक अर्थ है 'लाल लडका'। यह रोग सबसे पहले अफ्रीका मे पहचाना गया था परन्तु बाद मे यह पाया गया कि लगभग हर विकासशील देश के निवासी इससे पीडित हैं। यह रोग १-४ वर्ष के बच्चो मे, भोजन के विषय मे माताओ की उचित शिक्षा के अभाव के कारण, दूध छुडाने के दौरान अथवा दूध छुडाने के तुरन्त बाद हो जाता है। उस समय अक्सर उन्हे काफी मात्रा मे रोटी, दलिया जैसे अधिक कार्बोहाइड्रेट वाले, पर कम प्रोटीनयुक्त खाद्य देना आरम्भ किया जाता है।

इस रोग के मुख्य लक्षण बच्चे का चिडचिडा स्वभाव, शरीर का सूखने लगना, यकृत अथवा जिगर का बढ जाना, शरीर पर पड़े गहरे अथवा हल्के रङ्ग के धब्बे और कम घने और रूखे बाल आदि है। यदि समय रहते इस रोग की रोकथाम न की जाय तो पैरो पर सूजन आने लगती है और रोग के अधिक बढ जाने पर रोग का उपचार कठिन हो जाता है।

उपचार इसका मुख्य उपचार बच्चे के भोजन मे उचित मात्रा मे स्वादिष्ट (जिनको बच्चा चाव से खाये) प्रोटीनयुक्त खाद्य का समावेश है। इसके लिए फेंटे हुए केले मे दूध के सूखे पाउडर का मिश्रण सर्वोत्तम है। रोगियो को अन्त शिरा से प्लाज्मा और रोग के बढ जाने पर रक्त भी दिया जाता है।

मद्यसारिक शिरोसिस

यह बीमारी अत्यधिक मदिरापान करने वालो मे देखी जाती है। इसमे सार-ऊतक कोशिकाये नष्ट होने से यकृत की संरचना बिगड जाती है, और तंतु ऊतकों की बहुलता हो जाती है। अनेक मद्यपान करने वाले व्यक्ति पैसे के अभाव अथवा अधिक शराब पीने की आदत के कारण ऐसा भोजन करते हैं जिसमे प्रोटीनो और लाइपोप्रोटीनो की कमी होती है। उन्हे मदिरा से काफी ऊर्जा प्राप्त हो जाती है, इसलिए आवश्यक पोषक तत्वो और कैलोरी आवश्यकता मे विषमता आजाने से यकृत मे वसा-अन्त संचरण हो जाता है जो कि यकृत की विसरित तन्तुमयता का केवल पूर्वरूप है। इस प्रकार इन शराबियो का जिगर काम करना बन्द कर देता है और इसका परिणाम घातक सिद्ध होता है।

अधिक चिकनाई वाले खाद्य से उत्पन्न रोग

जैसे-जैसे भोजन मे चिकनाई की मात्रा बढती है, रक्त-चाप और दिल के दौरो से पीडित होने वाले व्यक्तियो की संख्या भी बढ रही है। इसका मुख्य कारण जन्तु स्रोतो से प्राप्त चिकनाइयो मे विद्यमान कोलेस्ट्राल है,

जो रक्त मे आवश्यकता से अधिक मात्रा मे वढ जाता है। इसके कारण धमनियो की दीवारें मोटी हो जाती हैं और रक्त चाप को वढाने मे कारण वनती है। धमनियो के छिद्र (ल्यूमेन) प्राय वन्द हो जाते हैं, विशेषकर हृदय को रक्त प्रवाहित करने वाली धमनियो के छिद्र। इनके सकरे हो जाने से हृदय को प्राप्त होने वाले रक्त मे वहुत कमी हो जाती है। फलस्वरूप मरीज को दिल के दौरे पडने लगते है और कभी-कभी उसकी हृदय गति तक वन्द हो जाती है।

विटामिनो की कमी से उत्पन्न रोग

विटामिन ए— हमारे देश मे काफी वडी सख्या मे व्यक्तियो के दैनिक आहार मे जन्तु-जन्य पदार्थों और हरी सब्जियों का अभाव रहता है, जिससे उन्हे पर्याप्त मात्रा मे विटामिन ए नही मिल पाता। विटामिन ए की कमी के कारण आखो की रतौंधी, कजक्टाइवा का सूखापन, विटाट् विन्दु और केरेटोमेलेशिया और त्वक्-रूक्षता हो जाते है। त्वक् रूक्षता मे त्वचा की तह रूखी-सूखी दीखने लगती है और कोहनियो, घुटनो और नितम्वो पर लोम कूपो के वन्द हो जाने के कारण त्वचा खुरदरी हो जाती है।

ये वीमारियाँ विटामिन ए की पूर्ति करने से ठीक हो सकती हैं। विटामिन ए के मुख्य स्रोत हरी सब्जिया, तेल, मक्खन, घी, मछली और हेलीवट और काड मछली के यकृत का तेल हैं। अधिक तीव्र रोगियो मे हेलीवट मछली के यकृत तेल से प्राप्त ७५,००० अन्तर-राष्ट्रीय यूनिट प्रतिदिन तक विटामिन ए देकर यह विकार ठीक किया जा सकता है। विटामिन ए की दैनिक सतोपजनक रोग-निरोधक खुराक वच्चो के लिए ३,००० और वयस्को के लिए ५,००० अन्तरराष्ट्रीय यूनिट है।

रिकेट्स और अस्थिमृदुता—रिकेट्स शिशुओ का कैल्सियम और फास्फोरस चयापचय विकार रोग है। उन्हे यह अधिकतर माँ का दूध छुडाते समय होता है। इस कारण ही वयस्को मे अस्थिमृदुता उत्पन्न होती है। वच्चो के आहार मे विटामिन डी कम होने से आतों से कैल्सियम का अवशोषण कम हो जाता है और हड्डियाँ कमजोर होने के कारण मुडने लगती हैं। वयस्को मे अस्थि-आधात्री (वोन मेट्रिक्स) मे कम कैल्सियम जमने पाता है और इस प्रकार हड्डिया कमजोर हो जाती हैं।

रिकेट्स रोग से पीडित वच्चे वेचैन, पीले और तान-रहित मासपेशियो वाले होते हैं और उन्हे अक्सर दस्त रहते हैं। इन वच्चो का विकास यथा दातो का फूटना, वैठना शुरू करना, घुटनो चलना, खडे होना देर से सम्पन्न होता है। सघट्ट जानु (नॉक नी) और मुडी हुई टागें इसके विशेष लक्षण होते है, जो एक्स-रे परीक्षण के दौरान विशेष परिवर्तनो के रूप मे दिखाई देते हैं।

रिकेट्स और अस्थिमृदुता के उपचार के लिए समुचित मात्राओ मे विटामिन डी और कैल्सियम देना अनिवार्य है। इन रोगियो के लिए विटामिन डी की प्रतिदिन की खुराक १०००-५००० अन्तरराष्ट्रीय यूनिट है जवकि साधारणतया इसकी प्रतिदिन आवश्यकता ४०० है। यह काड लिवर और हेलीवट लिवर तेल मे मौजूद रहता है। कैल्सियम का मुख्य स्रोत दूध है।

स्कर्वी— यह रोग लम्वे अरसे तक भोजन मे विटामिन सी, जो हमे हरी सब्जियो और ताजे फलो से प्राप्त होता है, की कमी के कारण होता है। इसमे मसूढे सूज जाते है और उनसे सहज ही खून वहने लगता है और छोटे छोटे रक्तस्राव प्रारम्भ होकर विकसित अवस्था मे रक्ताल्पता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

आहार मे सश्लेषित विटामिन सी लेने से यह वहुत शीघ्र ही ठीक हो जाता है। वाद मे नियमित रूप से ताजे फल और हरी सब्जिया खाकर इसकी कमी को दूर किया जा सकता है।

वेरी-वेरी—यह विटामिन वी की कमी के कारण उत्पन्न पोषणिक रोग है। विटामिन बी के मुख्य स्रोत अकुरित गेहू मटर और खमीर है। सभी हरी सब्जियो, फलो और दुग्ध उत्पादनो मे भी विटामिन वी होती है, परन्तु इनमे इसकी मात्रा कम होती है।

वेरी-वेरी तीन मुख्य प्रकार का होता है, (१) गीली वेरी-वेरी - जिसके मुख्य लक्षण सुजन और हृदपात हैं, (२) शुष्क वेरी वेरी—इसमे मुख्यत पोषणिक वहुतन्त्रिका विकृति लक्षित होती है और (३) वालको मे पाई जाने वाली शैशव वेरी-वेरी। सभी प्रकार के रोगो का प्रारम्भ भूख न लगने, कमजोरी और टागो के भारीपन से होता
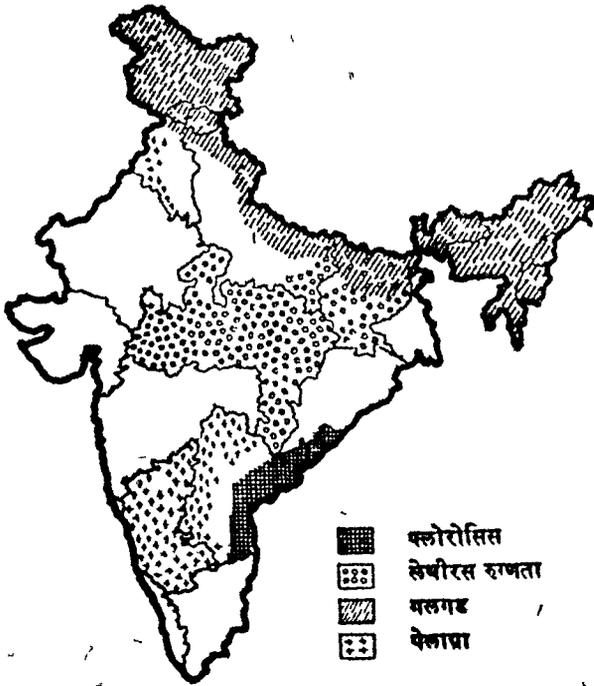
भारत के कुपोषण जन्य व्याधियो से ग्रसित क्षेत्र

पेलाग्रा से पीड़ित रोगी का हाथ

है। पैरो और मुँह की सूजन, छाती मे दर्द और धड़कन और पैरो की कमजोरी और रेंगने का अनुभव इसके कुछ अन्य लक्षण हैं।

पेलाग्रा यह मुख्य रूप मे मकई खाने वाले भागो मे रहने वाले गरीब किसान परिवारो का रोग है। मक्का मे निकोटिनिक एसिड आबद्ध और अवशोषित न होने वाले रूप मे मौजूद होता है। इसके अतिरिक्त मकई मे आवश्यक ट्रिप्टोफेन की मात्रा कम होती है जिससे यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

ताप से जल गए चकत्तो के रूप मे शरीर के खुले अगो की त्वचा पर पड गए निशान दस्त लगना और मनोभ्रंश इसके मुख्य लक्षण है।

इस रोगी को २४ घटे के भीतर प्रति ४-६ घन्टे पश्चात् १०० मिलीग्राम निकोटिनिक एसिड देने से यह ठीक किया जा सकता है।

राइबोफ्लेविन की कमी— इससे कार्निया बाहिका-बर्धन, स्रावकशोथ ओष्ठविदरण और मुख–जननेन्द्रिय (ओरोजेनीटल) सलक्षण देखे जाते हैं।

यह ५ मिलीग्राम सश्लिष्ट राइबोफ्लेविन दिन मे तीन बार और चावल की भूसी से सयुक्त सतुलित आहार करने से शीघ्र ठीक हो जाता है।

विटामिन बी ग्रुप के अन्य विटामिन बी$_6$ (पिरीडॉक्सिन) और बी$_{12}$ (सायनोकोबालामिन) अल्परक्तता को दूर करने मे सहायता करते हैं।

कुछ क्षेत्रीय पोषणिक विकार

फ्लोरोसिस - यह रोग पीने के पानी मे फ्लोरीन की अधिकता के कारण होता है। सामान्यत पीने के पानी मे २-३ भाग प्रति दस लाख भाग फ्लोरीन होनी चाहिए। तमिलनाडु के नेलोर जिले, आध्र प्रदेश, मैसूर और पजाब के कुछ भागो मे पीने के पानी मे फ्लोरीन की मात्रा अधिक पाई जाती है। जिससे इन राज्यो के निवासियो मे यह रोग पाया जाता है।

इस रोग मे प्रारम्भ मे, विशेषकर बीच के कृन्तक ... चित्ती पड जाती है परन्तु लगातार २५-३० साल ... को मे रहने वाले व्यक्तियो के अङ्गो पर ... दन अनुभव होने लगता है। रीढ की हड्डी

(शेषांश पृष्ठ १६३ पर देखें)

१ दूध (Milk)

तत्रानेकौषधिरसप्रसादः क्षीरतांगत ।
सर्वप्राणभृता तस्मात् सात्म्यं क्षीरमिहिच्यते ॥

—सुश्रुत

व्याध्यौषधाव्यभाव्यस्त्रीलघननातपकर्मभिः ।
क्षीणे वृद्धे च बाले च पयः पथ्यं यथाऽमृतम् ॥

—वाग्भट

दूध स्तनग्रन्थियो का स्राव है जो चरबी के विलम्बन (Emulsion) के रूप मे होता है और जिसके जलाश मे प्रोभूजिन, लवण और प्राणोदीय घुले हुए रहते है। खाद्य द्रव्यो मे यह एक ऐसा अद्वितीय पदार्थ है कि जिसका मुकाबला दूसरे किसी खाद्य द्रव्य से कदापि नही हो सकता। इसके निम्न कारण हैं—

(१) पूर्णाहार—हमारे शरीर के धारण-पोषण रक्षण के लिये जिन-जिन उपादानो की आवश्यकता हुआ करती है वे सब उपादान दूध मे न्यूनाधिक अंश मे विद्यमान रहते हैं जिससे मनुष्य केवल दुग्ध सेवन करके जीवित रह सकता है। इसलिये दूध को 'पूर्णान्न' कहते हैं। दुग्धाहार से स्वास्थ्य कदापि नहीं बिगडता, बल्कि सुधरता है। शैशवावस्था मे दूध ही आहार होता है। बाल्यसम,वृद्धावस्था मे रुग्णावस्था मे और श्रान्तावस्था मे दूध जितना हितकर होता है उतना दूसरा कोई पदार्थ नही हो सकता।

(२) अहिंसकाहार—मांसाहार के लिये प्राणियो की हत्या करनी पडती है यह सबको भली भांति विदित है। परन्तु शाकाहार मे भी शाक-कन्द-फल-मूल उनकी हत्या होती है यह लोग नहीं समझते। दूध के लिये किसी की हत्या करनी नहीं पडती।

(३) विविधाहार दूध और दूधविकृतियो मे अनेक प्रकार के व्यंजन बनाये जाते हैं। इनका वर्णन आगे देखें।

दूध की मिलावट

मासाहारियो के लिये मास का जो महत्व है वही शाकाहारियो के लिए दूध का है इसलिये दूध का सेवन विशुद्धावस्था मे करना अत्यन्त आवश्यक है। दूध एक ऐसा खाद्य पदार्थ है कि उसमे मिलावट आसानी से की जा सकती है और महगा होने के कारण मिलावट करने से लाभ भी हो जाता है। इसलिए आजकल बिना मिलावट का दूध, चाहे देहातों मे जाओ चाहे शहरो मे, मिलना असम्भव सा हो गया है। दूध मे निम्न प्रकारो से मिलावट की जाती है—

१ पानी—यह मिलावट का यह सामान्य प्रकार है। प्राय. यह पानी खराब भी रहता है।

२ चीनी, बताशा या अन्य मीठा पदार्थ।

३. मलाई निकाल लेना। इससे दूध की गुरुता बढती है। उसको ठीक करने के लिये उसमे पानी मिलाते है। या मलाई निकाले हुये सायकाल के दूध मे प्रात.काल का दूध मिला देते हैं।

४. आटा, पिष्टमय अन्य पदार्थ, गोंद इत्यादि को मिलाना।

५. विभिन्न प्राणियो के दूधो को मिश्रित करना। जैसे बकरी, भेड, भैंस इत्यादि का दूध गौ के दूध मे मिला देना।

मिलावट की जाँच—

दूध मे पानी की मिलावट जानने के लिये उसको शुद्ध सफेद बर्तन मे रखना चाहिए। उसमे जहां दूध और बर्तन मिलते हैं वहां पर एक फीकी नीली रेखा दिखाई देती है। दूध मे चीनी को मिलावट जानने के लिये थोड़ा सा मिलावटी दूध लेकर उसमे उतना ही मन्द उदवीरिक (Dilute HCl) अम्ल डालें। उसके बाद उसमे रेयास

(Resorcin) की दो चार रत्ती बुकनी छोडकर गरम करें, चीनी की मिलावट होने से दूध रक्त के समान लाल हो जाता है। आटा या पिष्टी की मिलावट जानने के लिये दूध मे जम्बुकी (Iodine) का थोडा सा द्रव डालें। मिलावट होने पर नीला रग बनता है।

मिलावटी दूध शुद्ध दूध की अपेक्षा जल्दी खराब हो जाता है। उसकी प्रतिक्रिया दुग्धिक (Lactic) या धृतिक (Butyric) अम्ल उत्पन्न होने से अम्ल हो जाती है। यदि गौ बीमार या सद्य प्रसूता हो तो दूध की प्रतिक्रिया क्षीण होती है। प्रतिक्रिया के अतिरिक्त वर्ण, गन्ध, रस इत्यादि मे भी खराब दूध मे फर्क होता है।

बाजार का या ग्वालोका दूध बिना मिलावट असभव है। इसलिये विशुद्ध दूध प्राप्त करने का एक मात्र उपाय घर मे गाय या भैंस को पालना है। यदि यह न हो सके तो अपने स्वच्छ पात्र मे अपने सामने दूध दोह कर लेना अच्छा है।

दूध का संघटन--

शरीर धारण --पोषण के लिये या सतुलित आहार के लिये आवश्यक सब सघटन दूध मे विद्यमान रहते है। इन विविध सघटो का प्रमाण प्रत्येक दुधार प्राणी के दूध मे उसके वश (नस्ल), जाति, आहार-विहार, रहन-सहन, प्रसूति के पश्चात् की अवधि इत्यादि के तथा जलवायु, ऋतु भेद, देशभेद इत्यादि के अनुसार भिन्न-भिन्न रहता है। परन्तु इससे न दूध का सामान्य सघटन बदलता है न उसके पूर्णत्व होने मे किसी प्रकार की कमी पैदा होती है। दैनिक रूप से व्यवहृत होने वाले कुछ प्रमुख दुग्धो का पोषणात्मक सघटन इस प्रकार है। (सारिणी देखे)

प्रमुख दूधो का पोषणात्मक संघटन

	सघटन		मातृदुग्ध	गोदुग्ध	महिषीदुग्ध	अजादुग्ध	भेडदुग्ध
प्रतिशत %	प्रोभूजिन		३ ०	३.३	४ ३	३ ७	३.५०
	स्नेहाश		३.६	३ ६	८ ८	५ ६	२.००
	कार्बोज		७.०	४ ८	५ १	४.७	१.४१
	कैल्शियम		० ०२	० १२	० २१	० १७	—
	फॉस्फोरस		० ०३	० ०९	० ३३	०.१२	—
	लोह		० २	० २	०.२	० ३	—
	कैलरीमान		६७	६५	११७	८४	३०
प्रति १०० ग्राम जीवतिक्ति (Vitamins)	ए	[illegible]	२.८	१८०	१६२	१८२	+
	बी$_2$	मा ग्रा	—	५३	—	—	+
	निकोटिनिक एसिड	मि ग्रा	—	०.३	०.३	—	+
	रिबोफ्लेबिन	मा ग्रा	३०	२००	—	४०	+
	सी	मि ग्रा.	—	२	—	—	+
रा० क्षे०	घनभाग		३३ ५-४२.५	१८.९-१४ ५	१८-२२ ५	३५ ५-३९ ५	९ ५-११ २
	गुरुता		१०३०-१०४०	१०२६-१०३५	१०३८-१०४२	१०३५-१०४२	१०३१-१०३८

दूध दूषित होने के कारण---

दूध एक ऐसा खाद्य द्रव्य है कि उसको स्वच्छ, शुद्ध और अदूषित रखना महान कठिन कर्म है। वह आसानी से दूषित किया जा सकता है, किया जाता है और दूषित होता है। उसके दूषित होने से अनेक उत्पन्न रोग होकर असख्य लोगो की मृत्यु तक हुआ करती है। इसलिये दूषित होने के कारणो का ज्ञान व्यक्ति मात्र को होना अनिवार्य है। दूध निम्न कारणो से दूषित होता है या दूषित रहता है-

१ दुधार प्राणियो के अस्वस्थ होने से उनके रोगो के जीवाणु दूध मे प्राय आ जाते हैं। जैसे स्तनशोथ होने पर दूध मे मालागोलाणु (Streptococci), स्तवकगोलाणु (Staphylococci), दुग्धिक अम्ल दण्डाणु, स्थूलान्त्र दण्डाणु (B coli) इत्यादि पूयजनक तृणाणु, खुरपका (foot and mouth disease) रोग होने पर उसके विषाणु, राजयक्ष्मा से पीडित होने पर दण्डाणु (Tubercle bacilli) माल्टा रोग से उपसृष्ट होने पर ब्रूसेला मेलिटेन्सिस (Brucella melitensis), ऐन्थ्राक्स से पीडित होने पर ऐन्थ्राक्स दण्डाणु (B Anthrax) और गर्भपात दण्डाणु (B abortus) से उपसृष्ट होने पर वे दूध मे मिल जाते हैं और दूध को दूषित करते है।

२. प्राणियो के थनो की स्वच्छता की ओर ध्यान न देने मे उनके थन सदैव मलमूत्र तथा कीचड से गन्दे रहने के कारण दोहने से पहले उनकी सफाई न करने से मलमूत्र भूमि के प्रत्युजीवी जीवाणु दूध मे आकर दूध को दूषित करते हैं।

३ दूध दोहने के पात्रो और हाथो की अस्वच्छता से या दोहने वाले रोगी या वाहक मनुष्य से तथा मिलावट के खराब पानी से आन्त्रिक, अतिसार, विसूचिका, रोहिणी इत्यादि के दण्डाणु दूध मे आ जाने से दूध दूषित होता है।

४ निकला हुआ दूध खुला रहने पर धूलि, मक्खियां, दूषित वायु इत्यादि के द्वारा दूध दूषित होता है।

५ असरक्षित स्थिति मे अधिक काल तक 'रखने से और पानी, आटा इत्यादि की मिलावट से दूध दूषित होता है।

दुग्धोत्पन्न रोग और उनसे बचने के उपाय

दूषित दूध के सेवन से राजयक्ष्मा, लहरी (Undulent) या माल्टा ज्वर, मरक मुखपाक (Epidemic Stomatitis), जठर शोथ (Gastritis), वमन, आध्मान, प्रवाहिका, आन्त्रिक अतिसार, विसूचिका, रोहिणी इत्यादि रोग उत्पन्न हो सकते हैं। दूषित दुग्धोत्पन्न रोगो से बचने के लिए निम्न उपाय काम मे लेने चाहिए-

१ रोगी पशु तथा व्रणित स्तन वाले पशुओ का दूध न पीना चाहिए।

२ दूध दुहने से पहले थनो को साफ पानी से खूब धोना चाहिए।

३. दूध दुहने से पहले हाथों को साफ पानी से धोकर साफ कपडे पहनना चाहिए ताकि दुहते वक्त कपडो से हाथ फिर से दूषित न हो जाय।

४ दूध दुहने वाला तथा उसे घर-घर पहुचाने वाला स्वस्थ विशेषकर सक्रामक रोग से अपीडित एव सक्रामक रोग से पीडित से सम्बन्ध न रखने वाला तथा किसी सक्रामक रोग का अवाहक हो।

५ क्षीरपात्र दूध दोहने के पहले अच्छी तरह से खौलाए हुए जल से धोने चाहिए और दूध दोहने के बाद उसको ढक्कन से ढककर रखना चाहिए।

६ दूध दुहते समय दुधारू पशु की पूंछ बांधकर रखना चाहिए, अन्यथा उसको हिलाने से दूध मे मलमूत्र के छींटे पडने की सम्भावना रहती है।

७ दूध रखने की जगह खुली हवादार और मोरी परनालो से अलग होनी चाहिए क्योकि दूध मे खराब हवा को शोख लेने की शक्ति है। दूध रखने के स्थान मे कदापि किसी को भी न सोना चाहिए।

उस स्थान को हमेशा अच्छी तरह से धुलवाकर धूलि रहित रखना चाहिए।

८ यद्यपि उबालने से दूध का कुछ पौष्टिक भाग नष्ट हो जाता है, तथापि जीवाणुजन्य रोगो से बचने के लिए यही सर्वोत्कृष्ट और निश्चित उपाय है। इसलिए बाजारू दूध हमेशा उबालकर पीना चाहिए।

९ दुधारू पशुओ की गोशाला खुली और हवादार होनी चाहिए और वहां की फर्श सीमेट या पत्थर की होनी चाहिए।

१० नगर-समिति की ओर से खराब दूध बेचना कानूनन बन्द करना चाहिए। दूध बिक्री के लिये ग्वालो को यदि नगर समिति की ओर से अनुज्ञप्ति (Lisence) देना चाहिए ताकि अनुज्ञप्ति निरस्त होने के भय से वे खराब दूध न बेच सकें।

दुग्ध सेवन सम्बन्धी कुछ नियम

शाकाहारी के लिए दूध एक आवश्यक खाद्य है। पीने के लिए सबसे उत्कृष्ट और पौष्टिक धारोष्ण दूध

है। खोलाया और अधिक खोलाया हुआ दूध पचनीयता और पौष्टिकता की दृष्टि से हीन हो जाता है। जैसा कि कहा है—

पयोऽभिष्यन्दि गुर्वामं युक्त्या श्रतमतोऽन्यथा।
भवेद् गरीयोऽतिश्रृतं धारोष्णममृतोपमम्॥
—अष्टागहृदय

अत धारोष्ण दूध अपने स्वच्छ हाथो से स्वच्छ वर्तन मे स्वस्थ गौ के स्वच्छ थनो से निकाल कर स्वच्छ कपडो से छानकर जब तक उसकी उष्णता शरीर की उष्णता के बरावर रहे तब तक पीना चाहिए। यदि ऐसा न हो सके तो कच्चा ठण्डा दूध न पीना चाहिए। धारोष्ण दूध के अभाव मे उसे अच्छी तरह उबालकर पीना ही ठीक है। दूध हमेशा प्रात काल या सोने से पहले पीना अच्छा रहता है-जैसाकि कहा है—

निशान्ते च पिबेद्वारि वासरान्ते पिबेत्पय।

सामान्यत पीने के लिए गौ के दूध का सेवन ही उत्तम है। माता के दूध की अपेक्षा उसमे किलारि और लवण ज्यादा होते हैं और दुग्ध शर्करा कम होती है। दूध के जम जाने की घनता किलारि और चूने पर निर्भर करती है और गौ के दूध मे अधिक होने के कारण मा के दूध की अपेक्षा गौ का दूध आमाशय मे अधिक कठिनावस्था मे जम जाता है और पचने मे कुछ भारी पड़ता है अत बच्चो को माता के दूध के अभाव मे गौ का दूध देते समय इस बात का जरूर ध्यान रखकर गौ का दूध माता के दूध के बराबर गुण मे तैयार कर देना चाहिए।

बच्चो के लिए गौ के दूध मे समान हिस्से मे पानी तथा थोडी सी शर्करा मिलानी चाहिए। यह दूध सघटन मे माता के दूध के बराबर भले ही हो जाता है, फिर भी माता के दूध का मुकाबला कदापि नही कर सकता—

मातुरेव पिबेत्स्तन्यं तत्परं देहवृद्धये।
स्तन्याभावे पय· छाग गव्यं वा तद्गुण पिबेत्॥

माता का दूध बालक को ताजा, शुद्ध, शरीर ताप के बराबर ताप का, बिना किसी चीज के मिलावट का, बाहरी जीवाणुओ से अदूषित और बालक की आयुर्वृद्धि के अनुसार सघटन मे सूक्ष्म परिवर्तन होकर मिलता है। इसके विपरीत मानवीकृत बाहर का दूध पानी, चीनी इत्यादि की मिलावट का, बाहर के जीवाणु से थोडा सा उपसृष्ट बासी, शरीर के ताप से न्यून या अधिक ताप का बोतल, हाथ इत्यादि अनेक वस्तुओ से सम्बन्धित होता है। अत' बच्चो को माता के दूध के अभाव मे ही गाय या बकरी का दूध देना चाहिये।

गौ के सिवा भैंस का भी दूध पीने के काम मे आता है, तथापि उसमे चिकनाई ज्यादा होने के कारण वह पचने मे भारी होता है। जिन्हे निद्रा कम आती हो उन्हे भैंस का दूध ही लेना चाहिये।

दूध के भेद

१ निशर (Skimmed)—इसमे हाथ से या यन्त्र से मन्थन करके मलाई निकाली जाती है। हाथ से निशर किये हुए दूध मे १% स्नेह और यन्त्र से निशर किये हुए दूध मे इससे कम स्नेह रहता है। यन्त्र निशर दूध को पृथक्कृत (Separated) दूध भी कहते हैं।

निशर दूध अग्निमाद्य से पीडितो के लिए हितकर होता है। यह अधिक पौष्टिक होता है जो छोटे बच्चो को छोडकर अधिक उम्र के बच्चो के लिए हानिकारक नही है।

२. उद्वाष्पित (Evaporated) दूध—इसमे उद्वाष्पीकरण (Evaporation) से दूध की राशि आधी की जाती है।

३ यार्व्यत दूध—यह दूध की बुकनी होती है जो दूध के साथ गेहू का आटा और यार्व्यत जौ (Malted barley) मिला करके आशिक शून्यक (Partial-vacuum) में बनायी जाती है।

४. एकरूपी दूध (Homogenised)—इसमे दूध की मलाई अलग नही होने देते। यह कार्य उच्चनिपीड के (high pressure) नीचे १४०°–१८५° फै० पर छोटे छोटे सुराखो मे से दूध को बराबर निकाल कर किया जाता है। इससे मलाई के कण बहुत सूक्ष्म बन जाते हैं और दूध एक रूप हो जाता है।

५. सघनित (Condensed) दूध—यह तीन प्रकार का होता है जो विशिष्ट पद्धति से चौगुना गाढा बनाया जाता है—

१ सघनित सम्पूर्ण दूध शर्करायुक्त।

२. सघनित सम्पूर्ण दूध शर्करारहित ।

३. „ निःसार दूध शर्करायुक्त ।

६. मानवीकृत सघनित दूध (Humanised)—यह सघनित दूध होता है जिसमें दुग्धशर्करा और मलाई मिलाई हुई रहती है। जब उचित प्रमाण में उसके साथ पानी मिलाया जाता है तब उसका सघटन लगभग मानवी दूध के समान हो जाता है।

७. शुष्कीकृत (Dried) दूध—सघनित दूध के बदले आजकल इसी का अधिक व्यवहार किया जा रहा है। इसमें जीवतिक्तियों की कुछ कमी होती है। इसलिये बच्चों के लिए इसका उपयोग करते समय सन्तरे का रस मछली का तैल इत्यादि खाद्य भी बच्चों को देने चाहिए।

दूध से बनने वाले पदार्थ

दूध का सेवन विभिन्न रूपों में किया जा सकता है। इससे बनने वाले कुछ पदार्थ इस प्रकार हैं—

मलाई—दूध कुछ देर तक पड़ा रहने के बाद उसके पृष्ठ भाग पर जो स्निग्ध भाग जम जाता है उसको मलाई कहते हैं। इसको मशीन (Churning machine) द्वारा जल्दी अलग कर सकते हैं।

दधि—यह दूध पर दुग्धिक अम्ल तैयार करने वाले जीवाणुओं की (Lactic Fermenting microbes) क्रिया से तैयार होता है। दूध को अच्छी तरह से उबाल कर कुछ ठण्डा करके उसमें कुछ मठ्ठा मिला दिया जाता है और फिर लगभग १२ घण्टों तक उसको रख दिया जाता है। पौष्टिकता की दृष्टि से दही दूध के समान है, तथापि उसमें निम्न फर्क होते हैं—

१. दही में दुग्धाम्ल जीवाणु विद्यमान होने के कारण दूसरे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, इसलिए दूषित दूध के समान दही से विशेष प्रकार की हानि नहीं हो सकती है।

२. दूध के समान दही भी आंतों में बाहर के विघटन को रोकता है, तथापि दूध से दही की क्रिया अधिक होती है। इसलिए दैनिक आहार में दही का सेवन फायदेमन्द है।

३. दूध अन्न के साथ लेना विशेष लाभदायक नहीं तथापि दही अन्न के साथ ले सकते हैं।

४. दही सेवन करने से आंतों में रहने वाले हानिकर जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, उनका विष (Ptoxin) निर्विष हो जाता है, और अनेक प्रकार के रोगों से तथा बुढ़ापा से शरीर की रक्षा होती है।

नवनीत, मक्खन—निम्न ताप (Low temparature) पर दही या मलाई मथने से निर्मित हुआ स्नेह गोलिका रूप में जम कर मक्खन बनता है। इसमें १३% पानी, १% किलाट, ८३% स्नेहभाग, १% दुग्धशर्करा और १½% लवण भाग है। इसके सिवा इसमें 'क' और 'घ' जीवतिक्तियां भी मौजूद होती हैं। खाद्य द्रव्यों में मक्खन बहुत सुपाच्य पदार्थ है तथा इसका कुछ भाग आंतों में शोषित हो जाता है। इसलिए अग्निमांद्य, क्षय, मधुमेह इत्यादि रोगों में विशेष करके बच्चों को उपकारी है। योग रत्नाकर में लिखा है—

> नवनीतं हिमं गव्यं वृष्यं वर्णबलाग्निकृत् ।
> सग्राहि वातपित्तासृक्क्षयार्शोऽर्दितकासजित् ॥
> तद्धितं बालके वृद्धे विशेषादमृतं शिशोः ॥

घृत—यह एक प्रकार का शुद्ध मक्खन ही है और मक्खन को गरम करके तैयार किया जाता है। मिठाई बनाने तथा खाने में इसका विशेष प्रयोग किया जाता है। गौ और भैंस दोनों के दूध से यह निकाला जाता है। गौ का पीला तथा सुगन्धित और भैंस का सफेद होता है। घी में जीवतिक्ति 'घ' और १००% स्नेह ही होता है। जीवतिक्ति 'क' अधिक ताप से नष्ट होती है। घी टिकाऊ खाद्य द्रव्य है। मक्खन जल्दी खराब हो जाता है अतः भारत जैसे उष्ण देश में मक्खन की अपेक्षा घी खाने का अधिक रिवाज है।

घोल, छाछ या मठ्ठा

मठ्ठा दही को मथनी द्वारा मथकर तैयार किया जाता है। पानी के अनुपात के अनुसार उसके अनेक प्रकार होते हैं। भाव प्रकाश में प्रकार बताते हुए लिखा है—

> ससर निर्जल घोल, मथित त्वसरोदकम् ।
> तक्रपादजल प्रोक्तमुदश्वदर्धवारिकम् ॥
> छच्छिका सारहीनास्यात् स्वच्छा प्रचुरवारिका ।

मठ्ठा बहुत पौष्टिक तथा पचने में हलका होता है, और पाचन की व्याधियों में हितकर रहता है।

छेना और मस्तु

जरा से गरम (१४०° फै०) दूध को वत्सातक

(Rennet), नीबू का रस या अन्य मन्द अम्ल से फाडकर और पानी को निचोड कर जो चीज बनती है उसको छेना (Curd) कहते है और जो पानी नीचे निकलता है उसको मस्तु (whey) कहते हैं। छेने मे २४०६% प्रोभूजिन, २५%स्नेह और १.१%लवण होते हैं। मस्तु में सर्व शर्करा, अधिकाश खनिज और केवल ८% प्रोभूजिन होते है।

पनीर या छैना (Cheese)

द्रव्य यह छेना, सम्पूर्ण दूध, नि शर दूध, या पूर्णदूध और मलाई इनसे बनाया जाता है। इसमे २०% प्रोभूजिन, २५%स्नेह और ६%लवण होते हैं। स्नेहाधिक्य के कारण यह कुछ दुष्पाच्य होता है। परन्तु जो इसको हजम कर सकते हैं उनके लिये यह बडा सस्ता पौष्टिक खाद्य है। इसकी पौष्टिकता मास से दुगुनी होती है। उष्ण प्रदेशो और ऋतुओ मे छेना जल्दी खराब हो जाता है।

कौमिस और केफीर

ये अभिषुत (Fermented) दूध के पेय हैं जिनमे दुग्ध शर्करा के अभिषव से विविध प्रकार के अम्ल और अल्प मात्रा मे अल्कोहल (Alcohol) विद्यमान रहते हैं।

कौमिस (Koumis)

इसको दुग्ध-मद्य (Milk wine) भी कहते हैं। यह दक्षिण एशिया के लोगो मे और टार्टर लोगो मे व्यवहृत होता है। यह घोडी के दूध से बनाया जाता है। दुग्ध-शर्करा अधिक (६–८.५%) होने से इसमे दुग्धिक अम्ल, अल्कोहल और प्रा० द्वि० ये द्रव्य विद्यमान रहते हैं।

केफीर (Kefir)

यह पेय गौ के दूध से बनाया जाता है। इसमें शुक्तिक (Acetic), दुग्धिक (Lactic) अम्ल, अल्कोहल और प्रा० द्वि० ये द्रव्य रहते है।

(पृष्ठ १५७ का शेषांश)

कड़ी हो जाती है। इससे झुकने मे दिक्कत होती है। अतिम अवस्था मे रोगी खाट में लग जाता है और अन्य किसी सक्रमण के कारण रोगी मृत्यु को प्राप्त होता है।

देशज गलगण्ड—साधारण गलगण्ड हिमालय और इसकी तराई के क्षेत्रो में स्थानीय रूप में फैला है। यह पंजाब के पहाड़ी इलाको, हिमाचल प्रदेश, बिहार, आसाम और उत्तर प्रदेश के पहाडी इलाको, जहा का पानी कठोर है और उसमे आयोडीन की कमी है, अधिक होता है।

प्रसित व्यक्तियो को शुद्ध पानी सप्लाई किये जाने पर गलगण्ड के आघटन मे भारी कमी देखी गयी है।

लेथीरस रुग्णता—खेसरी (लेथीरस सटाइवस)-सूखे क्षेत्र में उगने वाली दाल है जो भारत में बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में अधिक बोयी जाती है। इसके खाने से लेथीरस रोग हो जाती है।

उष्ण कटिबन्धी प्रदेशों की विशिष्ट यकृत सिरोसिस

विकासशील देशो मे जिनमे कुपोषण एक समस्या है, यकृत की सिरोसिस पाई जाती है और इसका कारण प्रोटीन की कमी समझी जाती है, जो यकृत को टाक्सिनों, परजीवियो और विषाणुओ के आक्रमण के विरुद्ध कमजोर बना देती है।

भारतीय बाल सिरोसिस— यह १ से ३ वर्ष के मध्यम सामाजिक वर्ग के बच्चो की समस्या है। इन परिवारो में कोई स्पष्ट निर्धनता और कुपोषण की समस्या परिलक्षित नही होती। इसका कारण पोषणिक टाक्सिन अथवा आनुवंशिक समझा जाता है। (विज्ञान प्रगति से सामार)

—श्री डा० राधेश्याम मिश्र एम बी बी.एस , एम डी.
चिकित्साधिकारी–त्वचा रोग विभाग
विलिंगडन अस्पताल, नई दिल्ली।

अन्न-विशेष विवरण

मांस (Meat)

न हि मांससमं किंचिदन्यद् देहबृहत्वकृत् ।। वाग्भट ।।
शरीरबृंहणे नान्यत्खाद्यं मांसाद्विशिष्यते ।। चरक ।।

शरीरवर्धनार्थ यथाशीघ्र क्रिया करने मे मास से बढ कर कोई अन्य प्राणिज खाद्य पदार्थ नही है। ससार की जनता का बहुत बडा हिस्सा अपनी गुजर' बसर माम सेवन करके करता है। विशेष करके शीतप्रदेश मे मास खाने का रिवाज अधिक है। विभिन्न देशो मे विभिन्न प्राणियो का मास सेवन किया जाता है। यथा– गाय, बैल' बछड़ा, भेढ बकरी, सूअर, मुर्गी, शिकार के पक्षी आदि का मांस उपयोग मे आता है। विभिन्न प्राणियो के उनके आहार विहार एव रहन–सहन के कारण मास के सघटन मे विभिन्नता होती है। कुछ प्रमुख प्राणियो के मास का सघटन इस प्रकार का होता है—

विभिन्न प्राणियों के मांस का सघटन

प्राणी	प्रोभूजिन	स्नेह	लवण	जल
गौ	२१.४०	५ २०	१.१५	७२ २५
सूअर	१४ ५०	२० ००	१.००	६४ ५०
बकरी	१७ ११	५ ७७	१ ३३	७५ ९६
मुर्गी	१९ ७२	१.४२	१.३७	७६ २२

मांस पेशीतन्तुओ से बनता है और इन तन्तुओ को सयुक्त रखने के लिए उनके साथ सयोजक धातु भी होता है। प्राणियो के मास मे प्रांगोदीय (Carbohydrate) बिलकुल होता ही नही है। उपरोक्त सघटन के अलावा मास मे ऐसे कुछ पदार्थ होते हैं जो माँसाहार की खुशबू और रुचि बढाते हैं, तथा पाचन-शक्ति को उत्तेजित करते हैं।

मांस की पाच्यता—मास एक अत्यन्त पौष्टिक और सुपाच्य द्रव्य है। इसका पाचन जठर मे होता है। कुल मास का ९५% भाग सारभूत होकर आतो मे प्रचूपित हो जाता है और केवल ५%भाग किट्ट होकर बाहर निकलता है। माम की पचनीयता उसका सङ्घठन, प्राणियो की जाति, वय, शरीरावयव तथा रसोई बनाने के तरीके पर आश्रित रहती है। मोटे लम्बे तन्तुओ के मास की अपेक्षा अल्प स्निग्ध (Lean) मास पचने मे अधिक हलका होता है।

मांस पकाना (Cooking)—पकाने मे माम के निम्न है बहुत कुछ नष्ट होते हैं, उसके प्रोभूजिन जम जाते हैं, उसका सयोजक धातु श्लिपि (Gelatin) मे परिवर्तित होता है, उसकी चरबी पिघलकर सयोजक धातु के बाहर आ जाती है और पेशी तन्तु फूलते और फूटते हैं। सबका परिणाम माम पचने मे कुछ भारी होने मे होता है। मास ताप का अच्छा वाहक न होने से पकाने का काम धीरे-धीरे और अधिक काल तक करना चाहिये।

मास पकाने से मांस की खुशबू तो बढ़ती ही है साथ ही उसकी रञ्जन भी अच्छी मालूम होती है तथा उसमें होने वाले सक्रामक रोगो के जीवाणु, परोपजीवी जन्तु और उनके कोष्ट (Cyst) मर जाते हैं और पानी की राशि कम हो जाती है।

जेसन ने प्रयोग द्वारा यह बतलाया है कि ३।। औंस कच्चा मास २ घण्टा मे, आधा उबाला २।। घण्टे मे, पूर्ण उबाला ३ घण्टे में, आधा भुना ३ घण्टे मे और पूर्ण भुना ४ घण्टे मे आमाशय से नीचे निकल जाता है।

मास सेवन सम्बन्धी आवश्यक बातें

१. हत्या करने के पूर्व प्राणियो को कम से कम २४ घण्टे अच्छी तरह से देखना चाहिये और इस अवधि मे उनके खाने पीने का प्रबन्ध ठीक रखना चाहिये। जिन पशुओ का मास खाना है वे अस्वस्थ बूढे और बच्चे न होने चाहिए।[1]

---

[1] मांसं सद्योहतं शुद्धं वयस्थं च भजेत् त्यजेत्।
मृतं कृशं भृशं मेद्यं व्याधिवारिविषैर्हतम् ।। –वाग्भट
चर शरीरावयव स्वभावो धातव क्रिया।
लिंग प्रमाण सस्कारो मात्रा चात्रपरीक्ष्यते ।।— चरक
वृद्धम् बाल उत्सृजेत् — चरक
वयस्थमित्युक्त्या शोभन तरुणं वय इति शस्यते।
तस्माद् यूनः प्राणिनो मासं भजेन्न बालवृद्धयोरपि ।।
— अरुणदत्त.

२. हत्या करने के पूर्व जीवित पशुओ के निरीक्षण के अतिरिक्त हत्या के पश्चात् उनके मास तथा विविध अगो का भी निरीक्षण करना चाहिये।

३. अच्छा मास सख्त, स्थितिस्थापक, चमकीले लाल रग का और चरवी के कारण सगमरमर के पत्थर जैसा मालूम होता है। दबाने पर उसमे गढ़ा नही पडता तथा कडकड की आवाज नही होती है। उसके बीच के रक्त स्रोत से रक्तस्राव नही होता।

४. मास से जो रस निकलता है वह रग मे लाल, प्रक्रिया में अम्ल, बू मे ताजा और खुशबूदार होना चाहिये। सडा गला मास पीला, पिलपिला और पीछे से हरा हो जाता है, तथा उसमे से एक बुरी गन्ध आती है और प्रतिक्रिया क्षारीय या प्रतिक्रियारहित होता है।

५. मास शीघ्र सडने वाला पदार्थ है। इसलिए प्राणियो की हत्या करने के वाद मास का सेवन करने मे अधिक विलम्ब न करना चाहिये।

६. बन्द डिब्बो मे विदेशी मास बहुत आता है, परन्तु भारत जैसे उष्ण देशो मे उसके खराब होने की बहुत सम्भावना होती है। जो डिब्बा खराब रहता है वह भीतर उदजन शुल्वेय (H_2S) वायु रूप पदार्थ उत्पन्न होने के कारण फूला हुआ रहता है। उससे दुर्गंध आती है तथा खोलनेपर उसका मांस उसीवात के कारण काला सा रहता है। ऐसे डिब्बे का मास सेवन नही करना चाहिए।

मांसोत्पन्न रोग

मास एक बहुत ही पौष्टिक खाद्य द्रव्य है इसेमे जरा सा सदेह नही है। परतु वह बहुत ही जल्दी सड़ने वाला द्रव्य है। उष्ण प्रदेशो मे और उष्ण ऋतुओ मे यह बहुत शीघ्र सडने लग जाता है। जिन प्राणियो का मास सेवन किया जाता है यदि वे किसी रोग से पीडित हो तो वे ही रोग मनुष्यो मे सक्रान्त हो जाते हैं। इसीलिए मास का सेवन नही करना चाहिये। मनु ने मास सेवन का विरोध करते हुए लिखा है—

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये नच मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूताना निवृत्तिस्तुमहाफला ॥ मनु ॥

मास से निम्न कारणो से रोग उत्पन्न होते है—

१. क्लिन्नता—अधिक देर तक रखने से जो मास क्लिन्न अर्थात् सड गया हो उसके सेवन से मितली वमन (क्लिन्नमुत्क्लेशजननम्। सुश्रुत ॥), उदरपीड़ा, प्रवाहिका, अवसन्नता इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। क्वचित शीत-पित्त (Urticaria) और रुधिर वर्ण (Erythematous) विस्फोट और ज्वर भी होते है।

२ विषव्याधि—अगारक्षत (Anthrasc),जल सत्रास कनार (ग्लाडर्स) राजयक्ष्मा आदि रोगो से पीडित तथा विद्युत और दुर्घटनाओ से मृत पशुओ का मास सखिया (Arsenic) अजन, (Antimony) आदि विषो (विष व्याधिहतमृत्यु त्रिदोष व्याधितम्) से मृत पशुओ का मास खाने से तद्विषज लक्षण वा त्रिदोष कोप होता है।

३ कृमियो का उपसर्ग—विभिन्न प्राणियो मे विभिन्न प्रकार के कृमियो का उपसर्ग होता है। कई प्राणा तृणाणुपसर्ग से पीडित होते हैं। इनका मास सेवन करने से अतिसार, अग्निमाद्य, ज्वर मासपेशियो मे ऐंठन, मूर्च्छा आदि विकार हो जाते है।

३. अण्डा (Eggs)

धार्तराष्ट्रचकोराणां दक्षाणां शिखिमामपि।
चटकानां च यानिस्युरण्डानि च हितानि च ॥
मधुराण्यविदायहानि सद्योवलराणि च ॥ चरक ॥

प्राय. मुर्गी के अण्डे अधिक सेवन किए जाते है। परन्तु कही कही बतखो (Duck), समुद्र पक्षियो तथा अन्य पक्षियो के भी अण्डे खाये जाते है। मास वर्ग के खाद्य द्रव्यो मे अण्डा सबसे अधिक निर्भय होता है, क्योकि ऊपर कवच होने के कारण न इसमे कोई मिलावट कर सकता है, न इसके भीतर बाहर से धूलि जीवाणु या अन्य दोष आसानी से प्रवेश कर सकते है। इसके अतिरिक्त अण्डे का अपना कोई सक्रामक रोग नही है जो उसके सेवन से मनुष्यो पर सक्रान्त हो सकता हो।

अण्डे की उपयोगिता—अण्डा बहुत धातु पुष्टिकर

खाद्य है। इसलिए शरीर क्षयकर[1] अनेक रोगो मे इसका उपयोग किया जाता है। इसके खनिज सेन्द्रिय (organic) होने के कारण शाकाहार के निरिन्द्रिय खनिजो की अपेक्षा आँतो से आसानी से तथा अधिकता से प्रचूषित हो जाते हैं। निरिन्द्रय स्थिति मे अयस् अधिक कसैला (Astringent) होने के कारण कठिनता से प्रचूषित होता है। अण्डे का अयस् सेन्द्रिय होने के कारण पाण्डुरोगियो को अण्डा एक बहुत हितकर खाद्य होता है। इसके प्रोभूजिन भी ऐसे है कि उनसे शरीर मे मिहकी (Purina) नही बनती। इसलिए वातरक्त मे भी इसका सेवन कर सकते हैं।

अण्डे का संघटन—अण्डे का औसत भार ५ तोले के करीब होता है जिसमे १२% कवच, ५८% सफेद भाग (शुक्लक white) और ३०% पीला भाग (पीतक-yolk) होता है। शुक्लक भाग में जल ८५.७%, प्रोभूजिन १२ ६%, स्नेह ०.२५%, लवण .५९%, उष १३% तथा पीतक भाग मे जल ५० ९%, प्रोभूजिन १६.२%, स्नेह ३१.७४%, लवण १ ०९%, जीवतिक्तिया क ख घ और उष (कैलोरी) ४८% होती है।

अण्डे की पचनीयता और पौष्टिकता—अण्डा एक ऊचे दर्जे का खाद्य है। आन्त्र से उसका ९७% भाग प्रचूषित होता है और केवल ३% किट्ट बनता है। एक अण्डा आधा पाव दूध के बराबर पौष्टिक है और उससे ८०--९० उप (calory) उष्णता उत्पन्न होती है। अण्डे की पचनीयता जिस प्रकार से अण्डा पकाया जाता है उसके ऊपर निर्भर होती है। आमाशय में कच्चे २ अण्डे २¼ घण्टो तक, आधे उबाले हुए १¾ घण्टो तक, अण्डा-पूय (omelette) और बहुत उबाले हुए २ घण्टो तक रहते हैं। कच्चा अण्डा नीरस होने के कारण पाचक रसो को उत्तेजित करने मे असमर्थ रहता है। इसलिए उसका पाचन आमाशय मे नही आन्त्र मे हुआ करता है। उबाले हुए अण्डे का प्रोभूजिन जमकर कठिन हो जाता है इस-लिये पाचन मे अधिक कठिनता होती है।

उत्तम अण्डे की पहचान—उष्ण प्रदेशो मे विशेष-तया उष्णकाल मे अण्डा खरीदते समय वह अच्छा है या खराव है उसको देखना बहुत आवश्यक है। क्योंकि खराव अण्डो के सेवन से पचन सस्थान के विकार उत्पन्न होते हैं। अत यदि प्रकाश मे या बत्ती के सामने अण्डा रखने से अण्डे का मध्य भाग पारभास (Translucent) दिखाई दे तो वह ताजा और अच्छा अण्डा होता है और यदि अण्डे का ऊपर और नीचे का भाग अर्थात् दोनों ठीक पारभास होकर मध्य मे काला धब्बा (Dark-spot) दिखाई दे तो वह खराव अण्डा होता है। अत ऐसे अण्डे को न लेना चाहिये। इसके अलावा ताजा अण्डा १०% नमक के पानी मे डूबता है और खराव अण्डा उतराता है।

अण्डे का परिरक्षण—यद्यपि कवच होने के कारण अण्डे के भीतरी पौष्टिक द्रव्यो की बहुत कुछ रक्षा हो जाती है तथापि शीतकाल और शीत प्रदेश की अपेक्षा उष्णकाल और उष्ण देश मे अण्डे अधिक शीघ्रता से खराव हो जाते हैं। अण्डे के कवच के छिद्रो से हवा को भीतर जाने का और भीतर की भाप को बाहर आने का मार्ग बन्द करने से उसका परिरक्षण होता है। इसके लिए—अण्डों को प्रशीतक (रेफ्रीजरेटर) मे रखना चाहिये या अण्डों के कवच पर तेल, मक्खन, चरबी, घी, मोम, गोंद आदि पदार्थ पोतने चाहिये। क्षारातु सैकतीय (Sodium Silicate) के घोल मे रखने से भी अण्डे खराव नही होते।

४. मछली (Fish)

गुरूष्णमधुरा बल्या बृंहणा. पवनापहाः ।
मत्स्या स्निग्धाश्च वृष्याश्च बहुदोषप्रकीर्तिताः ॥ चरक ॥
बलावहा विशेषेण मासाशित्वात्समुद्रजा ॥ सुश्रुत ॥

गुणधर्म—भारतवर्ष मे बगाल, काश्मीर तथा समुद्र तटवर्ति और नदी तटवर्ति प्रदेशो के लोगो मे खाने के लिये मछली का बहुत उपयोग होता है। मछली पौष्टिक खाद्य है। मास की अपेक्षा प्रोभूजिन कम होने के कारण इसकी पौष्टिकता मास से कम होती है। मछली पचने मे हल्की होती है। इसका ९५% भाग आतो मे प्रचूषित हो जाता है। मछली के मास मे अग्निदीपक भाव न होने

---

[1] क्षीणरेत सु कासेषु हृद्रोगेषु क्षतेषु च । अण्डानि हितानि
इसके अतिरिक्त जिन स्त्रियों का गर्भ पेट मे अच्छी तरह पनपता नहीं उनके लिए भी अण्डे का सेवन हितकर बतलाया है-गर्भस्त्वामगर्भेण । चरक ॥
आमगर्भेण इत्यम अण्डाविरूपेण—चक्रपाणिदत्त ॥

के कारण इससे अग्नि दीपन नही होता परन्तु यह पचन-सुलभ होने के कारण दुर्बल मनुष्यो के लिए अच्छा खाद्य होता है। मछलिया असख्य प्रकार की हैं और प्रत्येक प्रकार मे रुचि, पचनीयता, पौष्टिकता आदि बातो मे कुछ भिन्नता पाई जाती है परन्तु समुद्री मछलियाँ अधिक रुचिकर तथा अधिक स्वास्थ्यकर होती है।

संघटन—मछली मे प्रागोदीय और खनिज नही होते या नगण्य रहते है। स्नेह मध्यम और प्रोभूजिन अधिक (१६%) होते है। स्नेह के अनुपात के अनुसार मछली के कृश और स्निग्ध करके दो भेद किये जाते हैं। कृश (Sean) मछली मे २% से कम स्नेह होता है। स्निग्ध Fat) मछली मे २५% या इससे अधिक स्नेह होता है। स्निग्ध मछली मे 'ग' को छोडकर सभी जीवतिक्तियाँ विद्यमान होती हैं। मछलियो के खनिजो मे भास्वर और जम्बुकि (Iodine) विशेष महत्व के हैं। समुद्री मछलियों में जम्बुकी अधिक होती है। सेर मछली से ८००-८५० उष उष्णता उत्पन्न होती है।

मछली सेवन मे ध्यान देने योग्य बातें

१ मछली हमेशा ताजी और पकडने के बाद शीघ्र ही खानी चाहिए। गर्मी के मौसम मे मछली जल्दी सडने लगती है। अत इस मौसम मे मछली न खायें तो अच्छा है।

२. ताजी मछली सख्त दुर्गन्धरहित होती है। यदि उसे भूपृष्ट से समान्तर पकडी जाय तो उसकी पूछ नीचे नही झुकती। आँखे भरी और उभरी हुई रहती हैं। पुतलियाँ काली रहती हैं, गलफो (Gills) चमकीले और लाल दिखाई देते हैं और शरीर के ऊपर के छिलके भरे हुए दृढ होकर आसानी से अलग नही होते। अत मछली लेते समय इन सब बातो का ध्यान रखना चाहिए।

३ सडी हुई मछली की आखे भूरी, अन्दर से धसी हुई और निस्प्रभ होती हैं। इसके गलफडे भूरे तथा पिलपिले रहते हैं। त्वचा के छिलके आसानी से निकल आते हैं। शरीर मे स्थितिस्थापकता नही होती और उसमे दुर्गन्ध आती है। मछली मरने पर उसका रक्त जम जाता है और सडना प्रारम्भ होने पर वह फिर पतला हो जाता है। इसलिए सडी गली मछली काटने पर उससे दुर्गन्धित पतला द्रव निकलने लगता है।

४. डिब्बे मे मिलने वाली बन्द मछलियाँ गर्मियो मे बहुत खराब हो जाती है। इसलिए डिब्बो को खरीदते समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए।

५. डिब्बो पर कही छेद हो या मोर्चा लग गया हो तो उसको न खरीदना चाहिए। मोर्चा लगने से सुराख बनने का डर रहता है। इससे अन्दर वायु पहुँच कर मछलियों को खराब कर देती है।

६. खराब डिब्बो पर यदि अगुलियो से आघात किया जाय तो दिण्डिम ध्वनि (Tympanic note) निकलती है। अच्छे डिब्बो में अगुलमाघात से मन्द (Dull) ध्वनि निकलती है।

७. कान के पास हिलाने पर अच्छे डिब्बे मे कुछ भी नही सुनाई देता है। परन्तु खराब डिब्बो मे सडने से तरल उत्पन्न होने के कारण पकिल कीचड के समान (Sloppy) आवाज सुनाई देती है।

८ सीप मछलियो (Shell Fishes) के वर्ग मे घोघा (Oyster), भिगा (Lobster), कस्तूरा केकडा (Carb) सीपी आदि के कई आवरणयुक्त मछलियाँ है। इनमे घोघा कच्ची अवस्था मे अधिक पाचन सुलभ रहता है। बाकी सभी दुष्पाच्य हैं। अत इनकी पाच्यता बढाने के लिये सिरका, कालीमिर्च, लवण, प्याज आदि द्रव्य मिलाना चाहिए।

मछलियो से होने वाले रोग—सीप मछलियो से अनेक रोगो मे मितली, वमन, प्रवाहिका, चक्कर, पित्ती आदि रोग उत्पन्न हो जाते है। मोरी, परनाले या दूषित जलाशय, तालाब की मछलियो से अन्नविषता, अतिसार, विशूचिका, कृमिरोग आदि हो सकते हैं। अत. इनके सेवन मे ध्यान एव सावधानी रखना चाहिये।

वनस्पतिज आहार को पाच भागो मे बाँटा जा सकता है—१. शूकधान्य, २. शिम्बीधान, ३. कन्दमूल, ४ शाक-पत्ती, ५ फल तथा दृढ़ फल। इन पाचो भागो के आहार का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. शूक धान्य वर्ग (Cereals)

इस वर्ग में गेहूँ, चावल, ज्वार, बजड़ा, मकई, यविका (जवी Oat) इत्यादि का समावेश होता है। इनके बारे मे सक्षिप्त जानकारी इस प्रकार है—

(१) गेहूँ—

इस ससार मे दूध को छोडकर दूसरी ऐसी कोई भी खाद्य वस्तु नही है जो गेहूँ से अधिक खाने के व्यवहार में आती हो। इसका उपयोग समस्त ससार भर में होता है। इसमें प्रोभूजिन ८ ५-१८ ६, स्नेह १.४-२.५, प्रागोदीय ६५ १-७२ १, खनिज १ ५-२ १ और उष्ण प्रति तोला ४१ होती है। गेहू के प्रोभूजिन को आश्लेष (Gluten) कहते हैं। बढिया गेहू में इसका अनुपात १०-१४% और घटिया गेहूँ मे ८-६% तक होता है। गोद की भाँति यह चिप-चिपा पदार्थ है और इसी के कारण रोटी बनाने मे आसानी होती है।

गेहू के पिसान—खाने के लिए गेहूँ पिसवाकर काम मे लिया जाता है। पीसने का काम घरो मे हाथ की चक्कियो से लिया जाता है। बाजार मे जो पिसान मिलता है वह बड़े-बड़े कल-कारखानो मे बड़े बड़े पेषणी या चक्की (Grinding mill) मे पिसा हुआ रहता है। बजारू पिसान घरेलू पिसान से घटिया और स्वास्थ्य की दृष्टि से खराब रहता है। गेहू पीसने की अनेक पद्धतिया हैं और उनके अनुसार पिसान के अनेक प्रकार किये जाते हैं जैसे—

१ गेहू पीसने के बाद जब उसकी भूसी' तक नही निकाली जाती तब उसको 'सतुष सम्पूर्ण पिसान (Whole meal)' कहते हैं। इसमे गेहूँ के सम्पूर्ण उपादान विद्यमान रहते हैं। इसलिए पिसान के अन्य प्रकारो की अपेक्षा यह अधिक पौष्टिक होता है इसमे सन्देह नही होता। परन्तु इसमे भूसी (जिसमे कोशाधु या घास के समान रेशायें होती हैं) होने के कारण पचन मे यह पिसन भारी होता है जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनुकूल नही हो सकता। परतु कोशाधु या भुसी मे विरेचन का कुछ गुण होने के कारण जिनका पाचन अच्छा है परन्तु जो मलावरोध से सदैव पीडित रहते हैं उनके लिए इस प्रकार के पिसान की रोटी लाभकर होती है।

२ दूसरे प्रकार के पिसान मे भूसी के ऊपर के तीन स्तर (मोटी मोटी भूसी) निकाल दिये जाते हैं। इस प्रकार के पिसान को निस्तुप सम्पूर्ण पिसान (Decorticated whole wheat meal)' कहते हैं। गेहू के ऊपर तुष निकाल देने से गेहू के भूयात्य द्रव्यो का १५%, स्नेह का ३ ५% और लवणो का ५ ७% भाग नष्ट होता है। अर्थात् इसने अनुपात मे गेहू की उपयोगिता कम होती है। इसके अतिरिक्त पिसान का मोटा दानेदार भाग अलग किया जाता है जिसको 'सूजी' कहते हैं। इसमे गेहू के भूसी के अन्त स्तर का अधिक भाग रहता है। पिसान का जो अत्यन्त महीन भाग होता है। उसको मैदा (white flour) कहते हैं। इसमे गेहूँ के अकुरों का अधिक भाग रहता है। इन दोनो को अलग करके जो रहता है उसे मामूली आटा कहते हैं। इसमे गेहू के गूदे का अधिकाश होता है।

साधारणतया गेहूँ पिसने के पश्चात् चलनी से उसकी भूसी निकाल दी जाती है। इसमे आटे मे खनिज और स्नेह की कमी हो जाती है। इसलिए रोटी बनाते समय आटे में नमक और घी या तेल मिलाने का रिवाज होता है जो कुछ अश मे भूसी की कमी को पूरा करता है। गेहू के विविध पिसानो का सघटन इस प्रकार होता है—

गेहू के विविध पिसानो का संघटन—

पिसान	प्रोभूजिन	प्रागोदीय	स्नेह	खनिज
१ भूसो	१५ १५	२८ ५३	८ ४२	४ ८८
२ सूजी	१४ २६	४३ ३२	१ ५०	० ५०
३. आटा	१२ ०३	६४ ६६	२.२५	६ ६६
४ मैदा	६ ७३	८० ७३	५ २२	० ५८

गेहूँ के खाद्य पदार्थ—पावरोटी, बिस्कीट, रस्क, केक, बीमास्क, मकटोनी, वर्मीसीली इत्यादि विलायती तथा चपाती, रोटी, फुलके, पूरी, शकरपारा, सेवई, हलवा, माण्डा पराठा इत्यादि देशी खाद्य पदार्थ गेहू के पिसान से बनाये जाते है। खाद्य द्रव्यो की इतनी विविधता दूध को छोडकर दूसरे किसी अन्न पदार्थ से नही बन सकती। नीचे कुछ खाद्य द्रव्यो का विवरण दिया जाता है—

पावरोटी (Bread)—पाश्चात्य देशो म पावरोटी डबल रोटी एक प्रधान खाद्य है। भारतवर्ष मे भी इसका आजकल बहुत प्रचार हो गया है। इसकी विशेषता यह है कि यह दृढ़ होने पर भी छिदरी और जलयुक्त होने पर भी रूखी होती है। इससे चर्बण में बहुत आसानी आ जाती है। इसकी यह विशेषता तद्वत प्रा० द्वि० के कारण हुआ करती है। रोटी मे प्रा० द्वि० निम्न तीन पद्धतियो से स्थापित किया जाता है—

१. अभिषणव (Fermentation)—इसमे आटा सानने के पश्चात् उसमे किण्व[1] या खमीर (yeast) मिला देते है जिससे उसमे प्रा० द्वि० बनता है जो उसको छिदरा और हल्का बना देता है। इसके बाद उसको भूनते हैं जिससे भीतरी अभिषणव का कार्य बन्द हो जाता है। इस प्रकार से बनायी गई रोटी को अभिपुत (Fermented) रोटी कहते हैं।

२. इसमे किण्ड के स्थान मे आटे मे सज्जी या अन्य क्षार (Baking Power) मिलाते है जिससे प्रा० द्वि० उत्पन्न होता है। इसको अनभियुत (unfermented) रोटी कहते है।

३. वातेरण (Aeration)—इसमे न किण्व मिलाया जाता है न कोई क्षार। रोटी के भीतर अभिषणव या रासायनिक क्रिया से प्रा० द्वि० उत्पन्न करने के बदले उत्पन्न किया हुआ प्रा० द्वि० साने हुए आटे मे मिलाया जाता है। इस प्रकार से बनी रोटी को वातेरित (Aerated) रोटी कहते है।

भूनने से पावरोटी की पचनीयता बढती है। भूनने पर रोटी को तुरन्त खाना चाहिए। भूनने पर अच्छी रोटी के ऊपर का भाग पतला, कडा चमकीला और कुछ लाल रग का हो जाता है। अच्छी भुनी हुई रोटी (Toast) एक बहुत हल्का पौष्टिक खाद्य है। इसके साथ मक्खन लगाकर सेवन करने से स्नेह की कमी दूर हो जाती है। इसका अधिक प्रयोग न करना ही अच्छा है क्योकि इससे अम्लपित्त रोग होने का भय रहता है।

बिस्कीट (Biscuits)—ये गेहू के आटे मे दूध, चीनी, मक्खन, अण्डा तथा अन्य सुगन्धी द्रव्य डालकर विशिष्ट पद्धति से बनाये जाते है। इसलिए रोटी की अपेक्षा ये अधिक पौष्टिक परन्तु अधिक महगे होते हैं।

रस्क (Rusks)—ये भी रोटी के समान बनाये जाते है तथा उसके समान भूनकर खाये जाते हैं। परन्तु इनमे दूध, मक्खन, चीनी होने के कारण ये अधिक रुचिकर और पौष्टिक होते हैं।

बीमाक्स (Bemax)—यह खाद्य गेहू के अकुरो के अश से बनाया जाता है और उसमे जीवतिक्ति 'B' अधिक होती है।

चपाती या देशी रोटी—भारतवर्ष मे गेहू सेवन करने का यही मुख्य खाद्य है। भिन्न-भिन्न प्रातो मे रोटी बनाने की पद्धति भिन्न-भिन्न होती है। गेहू मे स्नेह की कमी होती है। इसकी पूर्ति के लिए आटे मे तेल या घी मिलाया जाता है। कही-कही उसमे थोडा-सा नमक भी छोडते हैं। आटे मे घी और नमक मिलाने के पश्चात् उसको पानी मे सानकर खूब अच्छी तरह हाथो से मलते हैं। इसके पश्चात् कुछ समय तक उसको वैसे ही रख देते हैं। उसके पश्चात् बेलन से या हाथो से सील पर चपाती बना करके तवे पर उसको गरम करते है और अन्त मे आँच पर भूनते है। भूनने के बाद उस पर घी भी लगाया जाता है। यदि रोटी गरम-गरम सेवन की जाय तो वह बहुत उत्तम पौष्टिक अग्निदीयक खाद्य होता है।

[1] तेषामेभिरातङ्कविशेषै. प्रकुपिता पर्युषितकिण्वोदकपिष्ट समवायद्वोद्विग्ना प्रसरोभवति —सुश्रुत ॥

हलवा - सूजी मे घी दूध, चीनी डालकर यह बनाया जाता है। यह बहुत पौष्टिक खाद्य है। परन्तु पचने मे जरा कठिन होता है और अधिक काल तक सेवन करने से अम्लपित्त होने का डर रहता है।

२. चावल

भारतवर्ष मे बगाल तथा मद्रास प्रान्त मे चावल का उपयोग प्रधान खाद्य के रूप मे किया जाता है। हाथ कुटा यन्त्र से साफ किया हुआ, प्रमृष्ट (polished) भुजिया (Parboiled) इत्यादि चावल के अनेक प्रकार होते है। चावल मे प्रोभूजिन, स्नेह और खनिज बहुत कम होते हैं। और केवल 'ख' जीवतिक्ति रहती है और ये सब द्रव्य उसके कना (Bran) मे रहते हैं। यन्त्र द्वारा प्रमृष्ट चावलो के ऊपर का लगभग सब कना नष्ट होता है। इसलिए उन चावलो मे मुख्यतया प्रागोदीय रह जाता है और उनके सेवन से 'बात बलासक रोग' उत्पन्न होता है। चावलो का प्रोभूजिन बहुत ही सुपाच्य होता है और करीब करीब सबका सब आंतो से प्रभूपित होता है। चावल के विभिन्न भेदो का सघटन इस तरह होता है—

चावलो का संघटन

सघटक	हाथकुटे	भुजिया	प्रमृष्ट	कना
जीवतिक्ति ख	+	+	०	+ + +
प्रोभूजिन	९%	७ ६८%	६%	अधिक
स्नेह	१ ६५%	२-२५%	२५- ५%	२२ २४%
भास्वर	० ५४%	० ५८%	० २६-० ३८%	३ २%

चावलो का परिरक्षण -चावलो के बोरे सदैव सूखे और सुप्रकाशित स्थानो मे रखने चाहिए। गरम और तर स्थानो मे रखने से उनमे विघटन प्रारम्भ होता है तथा बहुत जीवाणु बनते है जो चावलो पर कार्य करके उनको विषैले बनाते हैं। और जिनके सेवन से मरकशोफ (Epidemic dropsy) उत्पन्न होने मे सहायता होती है।

चावलो का सेवन– चावल उबालकर भात के रूप मे सेवन किया जाता है। भात बनने से पहले चावलो को ठण्डे पानी से धोना चाहिए। धोने के पश्चात या तो उनको भाप से पकाना चाहिए या जितना पानी आवश्यक होता है उतना ही पानी डालकर पकाना चाहिये। बहुतेरे लोग चावलो मे बहुत अधिक पानी डालकर उनको पकाते हैं और उसके पश्चात् अधिक पानी (माड) फेक देते है। इससे चावलो के खनिज, जीवतिक्ति, स्नेह आदि सब नष्ट हो जाते है। इसलिए भात इस प्रकार से कदापि न बनाना चाहिये। चावल वैसे रुचिहीन और प्रोभूजिन, स्नेह, खनिज, इनसे भी विहीन होने के कारण उनके साथ दूध, दही, दाल, घी, मसाले इत्यादि द्रव्य मिलाने की आवश्यकता होती है।

खिचडी—यह बहुत पौष्टिक खाद्य है जो चावल दाल, घी और मसाला इनसे बनाया जाता है। पौष्टिकता के अतिरिक्त खिचडी रुचिकर और अग्निदीपक भी होती है। इसलिए रोगियो के लिए इसका उपयोग किया जाता है।

चूडा मुरी और खोई ये चावल के अन्य प्रकार खाद्य द्रव्य है। चिउडा पचने मे कठिन होता है परन्तु मुरमुरा और खोई (खील) सुपाच्य होते है। धान की खील रोगियो के लिए उत्तम खाद्य है।

३ यव (Barley)

जौ बहुत पौष्टिक अन्न है। इसमे खनिज की मात्रा अधिक होती है तथा प्रोभूजिन भी करीब करीब गेहूँ के बराबर रहते हैं। परन्तु गेहू का आश्लेष इसमे बहुत कम होने के कारण रोटी बनाने मे जरा कठिनाई होती है। इसमे किलारि (Casein) और शुक्लि होती है। यवयूष (Barley water) आजकल रोगियो को देने का प्रचार बहुत बढ गया है। इसलिये शुद्ध साफ किये हुए जौ के अनेक प्रकार बाजार मे मिलते हैं। जब ऊपर की भूसी निकाल कर जौ साफ किया जाता है तब उसको स्काच (Scotch barley) कहते है। जब ऊपर की भूसी के साथ दानो का भी कुछ आवरण निकाल करके दाने गोल और मुलायम बनाये जाते हैं तब उसको मुक्तायन (Pearl barley) कहते है। जब जौ पीसकर पिसान के रूप मे रहता है तब उसको पेटेन्ट बार्ली कहते है। रोगियो के लिये मोतिया या पेटेन्ट जौ का उपयोग प्राय किया जाता है।

जौ जब पानी मे भिगाकर थोडा सा अकुरित होने दिया जाता है तब उसकी पौष्टिकता तथा पचनीयता और भी बढ जाती है। इस प्रकार के अल्पाकुरित जौ को यव्य (malt) कहते है। अनेक विलायती बल्य (Tonics) औषधियो रसौषधियो के साथ यव्य मिलाया जाता है। यव्य-

चूर्ण मिला करके भी दूध सुखाया जाता है। इसको यव्यित दूध (malted milk) कहते हैं।

४. ज्वार, बाजरा

इनका उपयोग गुजरात, महाराष्ट्र, हैदराबाद, विदर्भ इत्यादि प्रान्तो मे गेहू के स्थान मे किया जाता है। पौष्टिकता की दृष्टि से ये गेहू और चावल के बीच में आते है। इनका भी उपयोग पीसकर रोटी बनाने के लिये किया जाता है। परन्तु इनमे गेहूँ का आश्लेष न होने से रोटी बनाने मे कुछ कठिनाई होती है। यदि इनके साथ गेहूँ मिलाया जाय तो इनकी पौष्टिकता बढकर रोटी बनाने मे भी आसानी होगी।

५ मकई का भुट्टा (Maize)

इसका भी उपयोग कहीं-कहीं गेहूँ के समान पीसकर रोटी बनाने के लिये किया जाता है। यह भी बहुत पौष्टिक खाद्य है। इसमे और धान्यो की अपेक्षा स्नेह का भाग अधिक होता है। इसलिए पचने मे यह जरा कठिन होती है परन्तु शारीरिक श्रम करने वालो और प्रखर अग्नि के लोगो के लिये उत्तम खाद्य है। इनके लिए आँच पर भुने हुए मकई के भुट्टे एक बहुत अच्छा रुचिकर खाद्य है। जिनकी अग्नि मन्द है उनको भुट्टे का सेवन न करना ही अच्छा है।

[२] वैदल वर्ग (Pulses)

इस वर्ग के धान्य शिम्मीमत् गोत्र (Leguminous order) के होते हैं और फली या छीमी (शिम्बी, Legume) मे बनते है। इसलिए शिम्बी धान्य और स्वभाव से ही दो दलो मे विभक्त रहते है जो कुचलने पर विभक्त होते है, इसलिए वैदल (Puls:s) कहलाते हैं। ये छिलका उतार कर प्राय दाल के रूप मे, क्वचित् पिसान के रूप मे पकाकर प्राय. सेवन किये जाते है। हरे (Green) वैदल तथा सूखे अकुरित किए हुए या भिगोये हुए कच्चे खाये जाते है। स्वास्थ्य के लिए ये अधिक हितकर होते है। वैदल वर्ग मे तुअर (अरहर), उडद, मूग, मसूर, चना, मटर, मोथी, कुलथी, खेसारी इत्यादि का समावेश होता है। इनमे से कुछ दालो का परिचय तथा उनके लाभ हानि का वर्णन किया गया है।

सगठन— वैदलो मे प्रोभूजिन की अधिक राशि होती है। इनमे मास से भी अधिक प्रोभूजिन होता है। इसलिए पाश्चात्य लोग वैदल धान्यो को गरीबो का गोमास (Poorman's beaf) कहते है। अपने यहाँ भी धर्मशास्त्र मे माप (उडद) मास का प्रतिनिधि माने गए है। इनमे जो प्रोभूजिन होता है उसको शिम्बिकी (Legumine) या वनस्पतिज किलारी (Vagetable casein) कहते हैं। इनमे शूक धान्यो की अपेक्षा खनिज भी अधिक होते है जिनमे चूना, दहातु (Potassinm) और शुल्बारी (Sulphur) महत्व के है। इनमे जीवतिक्ति 'ख' विशेष 'क' बहुत कम तथा 'ग' नही के बराबर होती है। परन्तु ये अन्य अकुरित किए जाँय तो उनमे 'ग' जीवितिक्ति भी बहुत बनती हैं। नीचे प्रधान वैदलो का सघटन दिया गया है—

प्रधान वैदलो का सघटन

नाम वैदल	प्रोभूजिन	स्नेह	प्रागोदीय	खनिज
उडद	१९ ८१ से २७ ५०	१ २५ से २ ६	५० ०५ से ६० ६९	३ ४५ से ५ ४५
चना	१९ ४४ से २० ६९	४ ११ से ६ '०	५२ २६ मे ५९ ११	२ ७० से ३ २५
अरहर	२० ० से २२ ९	१४ से १६	६५ ८ से ६७ ४	२ ९ से ३ ३
कुलथी	२० ७५ से २२ २५	० ६५ से १ ८४	५६ ०४ से ६३ २०	४ ०० से ७ ४५
मेथी	२२ ५६ मे २५ ५०	० ६५ से १ ७५	४७ ६७ से ५८ ४९	३ ७० से ६ ३०
मसूर	२५ ४७ से २५ ५०	१ ७५ से ३ ०	५५ ०३ से ६. २	३ ३३ से ६ ३०
मटर	२१ १ से २४ ६	१ ० से १ ८	५६ ४ से ६२ ००	२ ६ से ३ ३
सोयाबीन	२२ ९ से ३७ ०	१६ ८ से १८ १	३१ ० से ३३ १	४ ८ से ४ ९

वैदलो मे प्रोभूजिन से मिहकी (Purine) और मिहिक (Uric) अम्ल उत्पन्न होता है। इसलिए वातरक्त (Gout) प्रकृति के वातरक्ती रोगियो को इनका सेवन नही करना चाहिये।

खेसारी (Lathyrus sativus) दाल के निरन्तर सेवन से कलाय खजता (Lathyriasis) नामक रोग होता है। यह रोग उस दाल की अपेक्षा इसमे मिलने वाली अक्ता दाल (Vicia sativa) के कारण हुआ करता है। इस रोग का मुख्य लक्षण उरुस्तम्भ (Spastic paraplegia) है।

मसूर की दाल मे 'ख' जीवनिक्ति अधिक होती है, प्रोभूजिन भी बहुत होता है, खनिजो मे अयस और तुर्णानु मास्त्वीय होता है तथापि इसमें आध्मानकर गुणकारी नही होता है।

चीनमाप (सोयाबीन-Soya bean) एक वैदल है जो चीन, जापान में बहुत खाया जाता है। आजकल भारत वर्ष मे भी इसका उत्पादन प्रारम्भ हुआ है। यह वैदल अनेक दृष्टि से अद्वितीय है। इसका उपयोग गेहू के समान पीसने के पश्चात् रोटी बिस्कुट इत्यादि अनेक प्रकारो से किया जाता है। गेहू के साथ तीसरे हिस्से मे इसकी मिलावट करने से गेहू की पचनीयता और पौष्टिकता बढ जाती है। सोयाबीन का दूध बनाकर भी उपयोग किया जाता है।

[३] कन्द-मूल-वर्ग (Roots and tubers)

कन्द और मूल वनस्पतियो का सचित खाद्य होता है। यह खाद्य मण्ड या पिट्ठी (Starch) के रूप मे होता है। इनमे प्रोभूजिन और स्नेह नही के बराबर होते है। इसलिये पौष्टिकता की दृष्टि से ये शूक और शिम्बी धान्यो से बहुत घटिया होते हैं। इसी कारण ये भोजन का मुख्य उपादान नही हो सकते हैं। अधिक मात्रा मे सेवन करने पर इनसे पचन सस्थान में खराबी उत्पन्न होती है। इनमे खनिज द्रव्य, विशेष करके दहातु (Potash) के लवण पर्याप्त होते हैं इसलिए भोजन मे इनका होना आवश्यक है।

कन्द-मूल मे आलू, शकरकन्द, प्याज, गाजर, मूली, साबूदाना, आदि आते हैं। आलू, प्याज और सब्जी बनाने मे तथा शकरकन्द,गाजर आदि खाने में और साबूदाना आदि रोगियो के पथ्य रूप में विशेष प्रयुक्त किए जाते हैं। कन्दमूलों का संगठन इस प्रकार होता है—

प्रधान कन्द मूलों का संघटन

नाम	जल	प्रोभूजिन	स्नेह	प्रांगोदीय	खनिज
आलू	७६.७	१.२	०.१	१९.७	०.९
शकरकन्द	७२.९	१.६	०.५	२[illegible]३	०.७
प्याज	८९.१	१.६	०.३	८.३	०.६
गाजर	८५.७	०.५	०.३	१०.१	०.९
मूली	९०.८	१.४	०.१	४.६	०.७
साबूदाना	१८.०	०.०	०.०	८२.०	०.०

[४] शाक-वर्ग (Vegetables)

शाकपत्र भोजन मे विविधता तथा रुचि उत्पन्न करने के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। इनमे फूल, फल, पत्तियाँ, डण्ठल इत्यादि सब तरकारी बनाने के लिए प्रयुक्त होते है। इनमे प्रोभूजिन, प्रांगोदीय, स्नेह नही के बराबर होते हैं। पौष्टिकता की दृष्टि से इनका मूल्य कुछ भी नहीं होता। परन्तु निम्न कारण से इन्हें सेवन किया जाता है—

१—इनमें 'क, ख, ग' जीवतिक्तियाँ प्रचुरता से पायी जाती है। इसलिये भोजन मे इनका होना आवश्यक है। पकाने पर या सुखाने पर जीवनिक्तियाँ नष्ट होती हैं, इसलिए इनका सेवन ताजी और कच्ची अवस्था में करना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुछ सागों का उपयोग मिर्च, धनियाँ,नमक नींबू का रस आदि के साथ चटनी या वनूमर के रूप में भी करना हितकर होता है।

२—भोजन का मुख्य उपादान चावल या गेहू प्रतिदिन एक ही रहता है। भोजन के द्रव्यो मे विविधता और उसके साथ रुचिवैचित्र्य साग सब्जियो के हेरफेर से आता है। यह वैविध्य और वैचित्र्य अग्निदीपन करके गेहू या चावल के पाचन मे सहायता करता है।

३. इनमे कोषाधु (Cellulose) करके रेशादार दुष्पाच्य भाग बहुत अधिक होता है। इसके कारण अन्न का पाचन होने के पश्चात् आँतडियो मे जो मल बचता है उसको निकालने मे आसानी होती है। सक्षेप में इनके कारण मलोत्सर्जन मे सहायता[१] होती है। जो लोग जीर्ण मलावरोध से पीडित होते हैं उनको अपने भोजन मे इसलिए शाक पत्तियो का अधिक सेवन करना उचित है।

[१] सृष्टमूत्रपुरीषाणि स्वादुपाकरसानि च —सुश्रुत।

४. इनमें चूना, क्षारातु तथा अन्य क्षारतत्व उचित मात्रा मे विद्यमान रहते हैं। ये तत्व शरीर में अन्न के समवंत में उत्पन्न होने वाले विविध अम्ल द्रव्यो को निवीर्य करके रक्त की क्षारीयता को बनाये रखते है। स्वास्थ्य रक्षा के लिए रक्त का क्षारीय होना आवश्यक होता है। यदि उसकी क्षारीयता घटकर अम्लोत्कर्ष (Acidosis) हो जाय तो मृत्यु हो जाती है। अपने क्षारीय गुण के कारण शाक पत्तिया मूत्रल होती हैं तथा पथरी के रोगियो के लिये हितकर रहती हैं। शाको मे प्रांगोदीय बहुत ही कम मात्रा मे होने के कारण मधुमेहियो के लिये इनका सेवन (विशेषकर-खीरा, ककड़ी) हितकर होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होगा कि रुचिवैचित्र्य के अतिरिक्त उपयोगिता की दृष्टि से देखा जाय तो भी खनिजो और जीवतिक्तियो की विपुलता के कारण भोजन मे साग सब्जियो का होना अत्यन्त आवश्यक है। कुछ अन्नतज्ञो का कहना है कि यद्यपि शाको मे प्रोभूजिन बहुत अल्प मात्रा मे होता है तथापि जो होता है वह ऐसे विशिष्ट स्वरूप का होता है कि शरीर के लिए बहुत उपकारक रहता है। इस दृष्टि से भी इनका भोजन में होना आवश्यक होता है।

प्रधान शाक पत्तियो का सघटन

नाम	पानी	प्रोभू०	स्नेह	प्राँगो०	खनिज	जी० क	ख	ग
पालक	८४ ०	१ २	१ ०	११ ६८	३ २	३+	३+	३+
पात गोभी	९४ ४	१ ८	० ४	६ ९	१ ३	३+	२+	३+
फूल गोभी	९० ७	२ २	०.४	५ ९	० ८	+	+	२+
टोमाटो	९४ ३	० ९	० ४	३ ९	० ५	२+	३+	३+
भिण्डी	९० ४	१ ९६	१ ४	५ ७२	० ८	—	+	+
बैंगन	९३ ९८	० ८९	०.९४	३.४८	० २६	—	+	+
मूली	९९ ०	१ ६२	०.३६	५ ६	१.४४	—	+	२+
मूली पत्ती				-		—	+	३+
गाठ गोभी	९२.८	० २२	२२.०	४ ०	० ९	—	+	+
सेम	७७ ०	९ ०५	० २३	१५ ४	१ २८	२+	३+	३+
शलगम	९० ३	० ९	० १५	६ ८	० ८	—	२+	२+

शाक पत्तियों के सेवन मे रखने योग्य सावधानी

तरकारी कचूमर, चटनी इत्यादि बनाने के लिये साग सदैव नयी और ताजी खरीदनी चाहिए। बासी या सड़ी गली शाक ग्रहण न करे। अनेक स्थानो मे तथा मकानो के पास शाक, भाजी मोरी-परनाले के पानी पर बोयी जाती है। इसलिए कच्ची शाक अच्छी तरह धोये बिना खाने या तरकारी बनाने के काम मे न लानी चाहिये। विसूचिका, आन्त्रिक अतिसार आदि रोग यदि जारी हो तो कच्ची शाक खाने से पहले उसको 'लाल दवा' (Pot Permangnet) के घोल मे भिगोकर पश्चात् साफ पानी से धोकर खाना चाहिए। यदि शाक पकाकर खाना हो तो साफ पानी से धोकर काम चल जाता है। साग-सब्जियो मे कीड़े-मकोड़े और उनके अण्डे हमेशा रहते हैं। इसलिए उनको अच्छी तरह देख भाल कर लेना चाहिए। शाको का सब भाग हमारे काम का नही होता। मोटे-मोटे डठल तना, जड़ें इत्यादि भाग को निकाल कर शेष भाग काम में लेना चाहिए। शाको मे स्नेह कम उन्हे घृत या तैल में पकाना चाहिये तथा इनमें अधिक पानी न डालना चाहिये।

[५] फल वर्ग (FRUITS)

खाद्य द्रव्यो मे फल भी अपनी विशेषता के कारण बहुत महत्व रखते है। इसलिए यद्यपि दैनिक भोजन मे नही तथापि दैनिक आहार्य द्रव्यो मे जिन ऋतुओ मे जो उत्पन्न होते है उन उन फलो का समावेश जरूर होना चाहिए। फल सदैव ताजे और पके खाने चाहिए और खाने से पहले अच्छी तरह धो लेने चाहिये। फलो की निम्न विशेषताये होती हैं—

१ फलो को कच्ची अवस्था मे सेवन किया जाता है इसलिए उनके सब रासायनिक हमको नैसर्गिक अवस्था

मे ज्यो के त्यो मिल जाते हैं। दूध और कुछ कन्द-मूलों को छोडकर सब खाद्य द्रव्यो को हम पका कर खाया करते हैं। जिससे उनमे अनेक परिवर्तन होकर पौष्टिकता की दृष्टि से वे घटिया हो जाते है। दूध और तरकारियो को कच्ची अवस्था मे खाने मे बहुत सावधानी से काम करना पडता है क्योकि वे जल्दी दूषित हो जा सकते हैं या रहते हैं। फलो मे इस प्रकार का डर बहुत कम होता है। बहुतेरे फलो पर मोटा छिलका रहता है जो निकाल कर फेक दिया जाता है। इसलिए अण्डे की तरह फल मुहर लगे हुए वस्तु के समान सुरक्षित होते हैं। केवल खरीदते समय उनको ठीक देखभाल करके लेना चाहिए।

२ फलो मे पौष्टिकता बहुत होती है और उनके साथ रुचि भी। इसके अनुसार फलो के दो विभाग किए जाते हैं—अन्न फल (food fruity) और स्वाद फल (flavour fruits) आम, खजूर, द्राक्षा, अजीर, केला, पपीता ये अन्न फल के और नीबू, सतरा, मौसमी, ये स्वाद फल के उदाहरण है। फलो की पौष्टिकता उनके प्रागोदीयो पर निर्भर होती है इनको 'फलशर्करा' (fruits Sugon) या 'वावधु' (Laurulose) कहते है। कच्चे फल की अपेक्षा पके फल मे यह अधिक होती है क्योंकि पक्वावस्था मे फलो मे विशेष रासायनिक परिवर्तन होकर तद्वत खट्टे और कसैले द्रव्य कम होकर मीठे द्रव्य बढते हैं। फलो की शर्करा एकशर्करेय (Monosaccharide) वर्ग की है। सम्पूर्ण प्रागोदीयो का तथा अन्य पिष्टमय पदार्थों का पाचन होने पर उनका परिवर्तन एकशर्करेय मे होता है। इसका अर्थ यह है कि फलो के प्रागोदीयो का आतो में पाचन होने की आवश्यकता ही नही होती, सेवन करने पर उनका केवल प्रचूषण होता है। इसलिए पक्व फल पचन सुलभ तथा पौष्टिक होते है। फल मधुमेहियो को दिये जा सकते हैं।

३ फलो मे अनेक शाकाम्ल और उनके क्षारातु, दहातु, चूर्णातु इत्यादि के लवण बहुतायत मे पाये जाते हैं। रक्त की क्षारीयता बनाये रखने के लिए ये अत्यन्त आवश्यक है। इसके सेवन से मूत्र क्षारीय होता है। इस लिए मूत्र के रोगो मे जहा पर मूत्र क्षारीय बनाने की आवश्यकता होती हैं, इनका सेवन हितकर होता है।

४ फलो में 'ग' जीवतिक्ति की भरमार होती है। उनमें नीबू, संतरा, मोसमी, आम, टोमाटो, आंवला प्रधान है। यह जीवतिक्ति उष्णता से नष्ट हो जाती है। इस लिए शाक सब्जियों में जो इसका अंश होता है वह हमको उनके पकाने से पूर्णतया नहीं मिल सकता। फलों के खाने और फलों के सेवन करने पर इसकी आवश्यक मात्रा मिल जाती है। शीताद (Scurvy) तथा शैशवीय शीताद में तथा उनके प्रतिषेध की दृष्टि से फलों का सेवन बहुत आवश्यक है।

नीचे कुछ फलों के गुण धर्मों का वर्णन संक्षिप्त रूप से किया जा रहा है। फलों के बारे में विस्तृत और सचित्र जानकारी के लिए धन्वन्तरि का 'फल गुणांक' (दिसम्बर १९७५) देखना चाहिए—

१ केला—अन्न फल है। चार पांच पके केले और सेर भर दूध एक समय का पूरा भोजन बनाते हैं। केले की असंख्य जातियाँ हैं। पके केले में १.२५% प्रोभूजिन, १% स्नेह और २०% के लगभग शर्करा होती है। केले को सुखाकर उसका पिसान भी बनाकर रख सकते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उसको दूध या पानी के साथ सेवन कर सकते हैं। केले के आटे में ४% प्रोभूजिन, ०.५% स्नेह, १०% प्रागोदीय २.५% खनिज होते हैं। दूध और चीनी या गुड से बनायी हुई पके केले की 'शिखरन' बहुत पौष्टिक खाद्य है जिसका उपयोग दाल के समान रोटी के साथ कर सकते है। कच्चा केला कसैला होता है और उसकी तरकारी भी की जाती है जो अति-

केला

मार, प्रवाहिका इत्यादि पतले दस्त वाले आन्त्रविकारो मे हितकर होती है।

२ अनन्नास (Pineapple) यह एक बहुत स्वादिष्ट और रसीला फल है। और फलो के समान इसके भी गुण
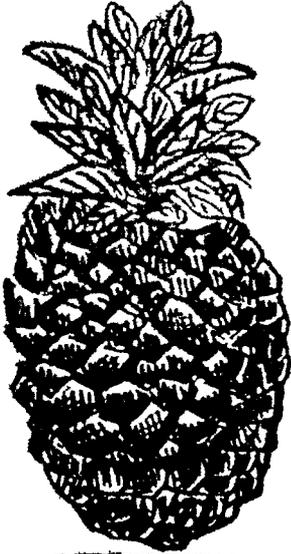
अनन्नास

होते हैं परन्तु विशेषता यह है कि इसके रस में प्रोभूजिनो का पाचन करने वाला अन्त किण्व रहता है जो आमाशय की अम्ल प्रतिक्रिया मे तथा आन्त्र की क्षारीय प्रतिक्रिया मे पाचन का काम कर सकता है।

३ सन्तरा, नारगी—यह मधुर, रुचिकर, शीतल, अग्निदीपक, अरुचि, वमन इत्यादि व्याधियो के लिए हितकर होता है। इसमे जीवतिक्ति 'ग' विशेप रूप से होती है। इसलिये प्रशीताद की चिकित्सा मे इनका रस बहुत उपयोगी होता है। इनका छिलका सुगन्धित और अग्निदीपक होता है। इनके रस मे १० ९% ठोस भाग होता है जिसमे १ ७% निम्बविक (Citric) अम्ल ७ ६% शर्करा, ० ५२% लवण और० ०२७% भास्विक(Phosphoric)अम्ल होता है।

४. नींबू—इसके रस मे अनेक वानस्पतिक अम्ल तथा दहातु, क्षारातु के लवण विद्यमान रहते है। यह शीतल, तृषाशामक, अग्निदीपक है। गर्मियो में तथा थकावट मे चीनी के साथ बनाया हुआ इसका शर्बत बहुत ही तृषाशामक और श्रमहारक होता है। प्रशीताद तथा आमवात मे इसका रस विशेष उपयोगी होता है। नीबू के रस के प्रभाव से विसूचिका तथा आन्त्रिक ज्वर के जीवाणु शीघ्र नष्ट होते है।

नीबू का रस अग्निदीपक है। इसलिये जिनकी पाचन शक्ति दुर्बल है उनके लिये भोजन करने पर नीबू का सेवन पथ्यकर है। नीबू का रस आन्त्रिक रस को भी उत्तेजित करता है। इसलिये माँस, मछली तथा अन्य खाद्य द्रव्यो मे डालने से उनके पाचन मे सहायता करता है।

५ आवला—आवले मे जल १७ २% प्रोभूजिन ० ५%, स्नेह ० १%, प्रागोदीय १४ १%, चूना ० ०५% भास्वर ० ०२% और अयस् ० ०२% होता है। गुण की दृष्टि से आवले के सम्बन्ध की निम्न कहावत ध्यान देने योग्य है—'गुरुजनो की बात का और आवले के स्वाद

आंवला

का पता बाद मे लगता है।' आवला बहुत गुणकारी फल है। यह दीपक पाचक है। आवले का अचार भी स्वाद को बढाकर अन्न का पाचन कराता है।

६ आम—महगे होने के कारण सामान्यत फलो का सेवन गरीबो से नहीं हो सकता, परन्तु आम एक ऐसा फल है कि जिसका सेवन सभी करते है। इसकी बराबरी वाला फल ससार मे दूसरा नही है।

कच्चे आम मे जल ९० ९९%, प्रोभूजिन ० ५०% प्रागोदीय ३ ३८%, खनिज ० २७% और अम्ल भाग १ १३% होता है। कच्चे आम के इन सब उपादानो मे खट्टापन ही आम की विशेषता है। कच्चा आम चटनी, खटाई, लोजी आदि के काम मे आता है और यदि ताजा हो तो नमक के साथ भी खाया जाता है। आम को भूनकर उसमे पानी और चीनी डालकर 'पन्ना' या 'झोल' बनाया जाता है जो बहुत रुचिकर होता है। गर्मी के मौसम मे गर्म हवा (Hot winds) के सन्ताप को मिटाने

के लिए उसका नमकीन और मीठा पन्ना बड़ा लाभदायक है। कच्चे आम का 'अमचूर' बनाया जाता है जो प्रशीतादनाशक है।

पक्के आम मे प्रोभूजिन १.२० प्रतिशत, स्नेह ०.७५ प्रतिशत, प्रागोदीय १७ ५८ प्रतिशत, खनिज १ २३ प्रतिशत, जल ७५ ५० और रेशा ३ ७३ प्रतिशत होता है। पक्व आम बड़ा पौष्टिक और बलवर्धक है और दूध के साथ खाने से उसके ये गुण और भी बढते है। जिनको कब्ज रहता है, कठिनाई से शौच होता है उनके लिए आम पथ्यकर है।

७. अनार इसके रस मे शाल्किक (टैनिक) अम्ल का शल्कीय (टैनिन) और शर्करा होती है, इसलिए इसका रस कषाय मधुर होता है। इसके छिलके मे भी ये द्रव्य और पेलेट्राईन (pelletiriene) नामक एक क्षाराम (अजकन्द्रिक) विद्यमान रहता है जिसके कारण अतिसार, प्रवाहिका, तथा स्फीत कृमियो के लिए यह फल बहुत उपकारक होता है। अनारदाने से बनाया 'अनार दाना चूर्ण' आप सभी ने सेवन किया ही होगा। यह बड़ा स्वादिष्ट, रुचिकर और अग्निप्रदीपक होता है।

८ द्राक्षा और मुनक्का —द्राक्षारस मे द्राक्षा शर्करा, दहातु द्विन्यासनिय (बायटार्टरेट) चूने का न्यासाविय, इक्कोनिक अम्ल और जल होते है। द्राक्षा बहुत पथ्यकारक, शीतल, दस्तावर और तृषा शामक है। द्राक्षा के सेवन मे उसकी छाल तथा बीज न खाने चाहिये। सूखी द्राक्षा को मुनक्का (Resins) कहते है। इसमे शर्करा ज्यादा और अम्ल कम होता है।

९ पपीता (Papaya) यह बहुत रुचिकर गुणवृदार और स्वादिष्ट फल है और इसके गुण भी अधिक है। पपीते मे पपायिन (Papain) नामक एक द्रव्य होता है जो प्रोभूजिन, प्रागोदीय और स्नेह को पचा करने मे सहायभूत होता है। इसलिए अग्निमान्द्य, मलावरोध, अम्लपित्त इत्यादि रोगो मे पपीता बहुत फायदेमन्द होता है। कच्चे पपीते की तरकारी होती है और मास के साथ यदि पका दिया जाय तो मास जल्दी हजम हो जाता है। स्त्रियों को गर्भावस्था मे इसका सेवन नही करना चाहिए।
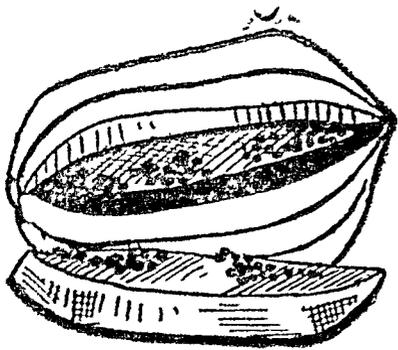
पपीता

१०. बिल्व फल —कच्चा फल ग्राही होने के कारण अतिसार प्रवाहिका मे अत्यन्त उपयोगी है। इसका मुरब्बा भी करके खाते है। पक्व बेल का शर्बत बनाकर गर्मियो मे प्रयुक्त होता है। इसमे थोडा सा सारक (Laxative) गुण है और गर्मियो मे अधिक पानी पीने से आन्त्र मे गडबडी होती है उसको दूर करने में सक्षम है।

मेवे या सूखे फल (Nuts and dry fruits)

सूखे फलो या मेवो मे पौष्टिकाश बहुत रहता है। इसमे सामान्यतया प्रोभूजिन १५.२० प्रतिशत, प्रागोदीय ५०-६० प्रतिशत, स्नेह ६-१२ प्रतिशत, रेशा ३-५ प्रतिशत, खनिज १ प्रतिशत और जल ४-५ प्रतिशत तक होता है। प्रोभूजिन और स्नेह ज्यादा होने के कारण इनकी पौष्टिकता मास के बराबर होती है। इनमें शर्कराजातीय द्रव्य कम होने के कारण मधुमेहियो के लिए ये पथ्यकर है। कुछ फल इस प्रकार है —

११ नारियल —नारियल पौष्टिक खाद्य है। पौष्टिकता की दृष्टि से यह मछली के तेल (काडलिण्हर आयल) के समान क्षय मे उपयुक्त होता है।

नारिकेल का जल[1] गरम देशो के लिए बडा ही उपकारी है। तृषितो की प्यास और थके मांदे की थकावट दूर करने के लिए यह अत्युत्तम है। इसमे जल ९२ ३२, प्रोभूजिन ० ९०, प्रागोदीय ६ २० और खनिज ० २६ होता है। नारिकेल जल मे स्नेहजातीय कोई द्रव्य नही होता। अम्लपित्त मे यह बडा पथ्यकर है। ज्वर मे तथा विसूचिका मे रोगी की प्यास शान्त करने मे इसका उप-

---

[1] नारिकेलोदक स्निग्ध स्वादु वृष्य हिम लघु।
तृष्णापित्तानिलहर दीपन बस्तिशोधनम्॥—वाग्भट

विशेष कार्य यह है कि यह क्षार शरीर की धमनियो को मृदु रखता है। इसकी कमी होने से धमनी की दीवाल मे चूने का सचय (Calcification) होकर धमनी-जठरता (Arteriosclerosis) नामक रोग पैदा होता है।

(३) चूर्णातु (Calcium)—चूना यद्यपि शरीर के सब अवयवो मे होता है, तथापि अस्थियो मे सबसे ज्यादा होता है। शरीर मे जितना चूना पाया जाता है उसमे से ९९.५ % केवल अस्थियो मे मिलता है। शैशवावस्था मे, जो कि शरीर की वृद्धि और विकास का समय होता है, चूने की कमी से अस्थिवक्रता (Rickets) और गर्भिणी और प्रसूत स्त्रियो मे इसकी कमी से अस्थिमृदुता ((Osteomalacia) हो जाती है। रक्त जब शरीर के बाहर आता है तो हवा के ससर्ग से वह एकदम जम जाता है। इस क्रिया चूना ही सहायभूत होता है। शरीर के बाहर या भीतर रक्त का स्राव करना, दाँतो का विकास, हृत्पेशी तथा अन्य पेशियो की सकोचशीलता, मस्तिष्क तथा नाडियो का प्रक्षोभ निवारण, केशिका प्राचीर की प्रवेश्यता इत्यादि अनेक कामो के लिये चूना आवश्यक होता है। चूना दूध, अण्डा, छेना, साग-सब्जियो और दालो से प्राप्त होता है। शरीरगत चूने का समवर्त (Metabolism) जीवतिक्ति 'घ' अपर अवटुका (Parathyroid) ग्रन्थि और रक्तप्रतिक्रिया से बहुत सम्बन्धित है।

(४) भास्वर (Phosphorus)—भास्वर तथा उसके सयोग नाडीसस्थान तथा धातु-कोशान्यष्टियो (Cell nuclei) के महत्व के सघटन होते है। इनके सिवा ये अस्थियो, गलग्रन्थियो और जननग्रन्थियो मे भी पाये जाते हैं। प्रतिदिन मनुष्य को १.२ मिलीग्राम भास्वर की आवश्यकता होती है। गर्भिणी स्त्रियो और बालको को इसकी अधिक आवश्यकता होती है। भास्वर दूध, अण्डा, मांस, सेम, मछली, बादाम, मटर, यकृत, पालक, ताजा पनीर, गेहू आदि मे पाया जाता है। इसके अभाव से कृमिदन्त (Carise) अस्थियो की मृदुता, अस्थियो का ठीक न बनना, अस्थिवक्रता, रुद्ध विकास (Stunted growth) इत्यादि विकार हो जाते है।

(५) अयस (Iron)—अयस रुधिरकोषाणुओ (R B C.) के शोणवर्तुलि (Hemoglobin) नामक रागक का महत्व का सघटक है। अयस के बिना शोणवर्तुलि नही बन सकती तथा शोणवर्तुलि के बिना स्वास्थ्य बना नहीं रह सकता। प्रतिदिन मनुष्य को १०-२० मिलिग्राम अयस की आवश्यकता होती है। आलू, मटर, टोमाटो, सेम, पालक, प्याज, अजीर, खजूर, अखरोट, बादामगिरी, पिस्ता, गुड, अण्डा, मछली, यकृत्, वृक्क, दूध, सम्पूर्ण शूकधान्य, दालें आदि अयस प्राप्ति के खाद्य द्रव्य हैं।

(६) तरस्विनी (Fluorine)—दन्त कवच, पृष्ठवंश की हड्डियां, कनीनिका (Iris) इनमे यह पायी जाती है। खाद्य द्रव्यो मे शूक धान्यो से शरीर को इसकी प्राप्ति होती है।

कभी-कभी गहरे कूपो के पानी मे इसकी मात्रा होती है। उससे बच्चो के दातो का दुष्पोषण (Dystrophy) होकर उनके कवच पर दागी पड जाती हैं।

(७) नीरजी (Chlorine)—जठर रस के लिए, पाचक रसो को उत्तेजित करने के लिए तथा आसृतीय पीडन (Osmosis) का नियमन करने के लिए इसकी आवश्यकता होती है। यह द्रव्य अण्डा, मछली, पालक, अनानास, नमक, टोमाटो, नारियल, केला, रोटी, पनीर, मठ्ठा, गोभी, शाक पत्ती, अजवायन (Celery) इत्यादि पदार्थों से शरीर को मिलता है।

(८) जम्बुकी (Iodine)—अवटुका नामक गलग्रंथि के अन्त स्राव (Thyroxine of the Thyroid) के लिये यह आवश्यक है। यह द्रव्य मछली तेल, अण्डा, समुद्र मछली, सेम, माखन, गाजर, प्याज, पालक, बकरी का दूध आदि पदार्थो से मिलता है। इसकी कमी से गलगण्ड (Goitre) रोग उत्पन्न होता है।

पार्थिव द्रव्यो के शरीरगत कार्य—१ शरीर मे विशेष धातुओ की उत्पत्ति और वृद्धि मे भाग लेना, यथा अस्थि, दन्त, रक्त के लाल कण आदि। २. शरीर के रसो की उत्पत्ति मे भाग लेना, यथा-जठररस आदि। ३. शरीर के पाचक रसो को (Enzymes) उत्तेजित करना और उनका क्रम कायम रखना। जैसे आमाशय रस से अग्न्याशय रस का उत्तेजित होना और उसी के सहयोग में काम करना। ४. रक्त के जमने मे सहायता करना। ५ धातुओ का सडने से रक्षण करना। ६. रक्त की प्रतिक्रिया और गुरुता को एक सा रखना। ७. प्राणवायु को आकर्षण मे पर्याय से रक्तशुद्धि मे सहायता करना। ८. धातु कोशाओ के भीतरी जलाश का आवश्यकता के अनुसार स्थानान्तर करके (Osmosis) जलाश की क्षमता रखना।

स्वास्थ्यका चतुर्थ साधन निद्रा

श्री डा॰ अयोध्या प्रसाद अचल एम॰ ए॰, पी॰ एच॰ डी॰, आयु॰ वृह॰

श्री अचल जी एक योग्य पत्रकार, लेखक एवं चिकित्सक है। अनेक पत्रो के सम्पादक लेखक रह चुके है। आपने अनेक ग्रन्थो का अनुवाद, सम्पादन किया है। वर्तमान मे जे॰ जे॰ डिग्री कालेज, गया के प्रिंसीपल एव आयुर्वेद शोध संस्थान, गया के सस्थापक निर्देशक है। अ॰ भा॰ आयुर्वेद महासम्मेलन की स्थाई समिति के तथा नि॰ भा॰ विद्यापीठ प्रबन्ध समिति के सदस्य हैं। लगभग २२ वर्षों से चिकित्सा कार्य भी करते है। योनि एवं मानसिक रोगो का विशेष अनुभव है।

'आयुर्वेद मे निद्रा का स्वरूप' शीर्षक आपका लेख आपके ज्ञान का वोध कराता है। निद्रा के बारे मे समस्त आवश्यक पहलुओ का शास्त्रीय विषय सयोजन प्रस्तुत लेख की विशेषता है।

—विशेष सम्पादक

वाग्भट के अनुसार ससार अथवा प्राणिमात्र की सृष्टि के साथ आदिकाल से ही निद्रा की परम्परा चली आ रही है। जाग्रतावस्था मे कार्यभार से प्राणी मे जो भी थकान उत्पन्न होती है अथवा उसके शरीर के जो भी तन्तु क्षतग्रस्त हो जाते हैं निद्रावस्था मे उन सभी की पूर्ति हो जाती है और प्राणी अपने आप को पुन शक्ति सम्पन्न अनुभव करने लगता है।

मानसिक स्वास्थ्य के विश्वकोष मे निद्रा की परिभाषा निम्न शब्दो में दी गई है-निद्रा प्राणी के शरीर एव मन के विश्राम के लिए स्वभावत घटित होने वाली वह नियत-कालिक अवस्था है जिसके अन्तर्गत उसकी चेतना तथा क्रियावाही समर्थतायें बहुत हद तक अपना कार्य स्थगित कर देती है।

निद्रा की विशेषतायें

उक्त परिभाषा मे निद्रा की निम्न विशेषताओ की ओर सकेत किया गया है—

१—निद्रा प्राणी के शरीर एव मन को विश्राम देती है।
२—निद्रा स्वभावत घटित होने वाली क्रिया है।
३—निद्रा नियतकालिक होती है। तथा
४—निद्रा के अन्तर्गत प्राणी की ज्ञानवाही, क्रियावाही एव अन्य समर्थतायें अपना कार्य स्थगित कर देती हैं।

अब इनमे से प्रत्येक पर सक्षेप मे प्रकाश डाला जायेगा

निद्रा द्वारा विश्राम—कार्य के भार से प्राणी का मन इन्द्रिया एव शरीर थकान का अनुभव करने लगते हैं। इस थकान को दूर करने के लिए उसे निद्रा अथवा विश्राम की आवश्यकता होती है। चरक के शब्दो मे—"जब कार्य करते-करते मन थक जाता है और इन्द्रिया भी थकने के कारण अपने अपने विषयो से उपरत हो जाती है तब मनुष्य शयन करता है।" शयन से प्राणी की थकान दूर होती है और वह अपनी खोई हुई शक्ति को पुन प्राप्त कर लेता है। इसीलिए आयुर्वेद मे सुख-दुख, पुष्टता-कृशता, सबलता-निर्बलता, वृषता-क्लीवता, ज्ञान-अज्ञान

एव जीवन-मरण को निद्रा के ही आधीन माना गया है। उचित एव उपयुक्त निद्रा सेवन से प्राणी मे सुख, पुष्टि, बल एव वृषता की वृद्धि होती है। उसकी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ एव कर्मेन्द्रियाँ सतत क्रियाशील एव स्वस्थ रहती है और प्राणी सौ वर्ष तक जीता है। ठीक इसके विपरीत निद्रा के अपर्याप्त एव विकृत योग यथा रात मे जागना एव दिन मे सोना आदि दुख, कृशता, निर्बलता एवं क्लीवता को उत्पन्न करते हैं। अल्पनिद्रा से इन्द्रियो की कार्यक्षमता घटती है और उनमे अज्ञान की वृद्धि होती है। निद्रा का दीर्घकालिक अभाव सद्य प्राणहर तक सिद्ध हो सकता है।

निद्रा स्वाभावतः घटित होती है—निद्रा की यही विशेषता वस्तुत उसे मद, मूर्छा, सन्यास तथा सम्मोहन आदि की स्थितियो से अलग करती है। मद, मूर्छा एव सन्यास आदि की स्थितियो में भी प्राणी की चेतना का अशत अथवा पूर्णत. लोप हो जाता है और उसकी समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ एव कर्मेन्द्रियाँ अपना अपना कार्य स्थगित कर देती हैं। पर ये स्थितियाँ वातपित्त एव कफ की विकृति, मनोभिघात, विष अथवा रक्त के प्रभाव से उत्पन्न होती हैं और तब तक बनी रहती हैं जब तक कि प्राणी के मनोदैहिक तन्त्र से इन दोषो का निराकरण अथवा शमन नहीं हो जाता है। सम्मोहन भी एक प्रकार की कृत्रिम निद्रा ही कही जाती है जो अनेकानेक प्रकार के मनोवैज्ञानिक उपायो एव औषधियो के द्वारा उत्पन्न की जाती है। यह भी प्राय तब तक बनी रहती है जब तक कि सम्मोहनकर्ता चाहता है अथवा जब तक प्राणी पर औषधि द्रव्यो का प्रभाव बना रहता है। चेतनाहर द्रव्यो का प्रभाव भी प्राणी में निद्रा की सी ही स्थिति उत्पन्न करता है। ठीक इसके विपरीत निद्रा स्वभावतः उत्पन्न होती है और स्वाभावत ही समाप्त भी हो जाती है। उसके लिए साधारणत किसी कृत्रिम उपकरण की आवश्यकता नहीं होती है।

निद्रा नियतकालिक होती है—नियतकालिक का अर्थ है नियत समय पर उत्पन्न होने वाली और नियत समय पर ही समाप्त होने वाली। प्राणी परिस्थितियो के अनुरूप अपनी जैसी आदत डाल लेता है उसी के अनुरूप उसे नींद आती-जाती है।

नींद के काल को लेकर प्राणियो मे काफी व्यक्तिगत भिन्नताये पाई जाती है। कोई कम सोते हैं कोई अधिक। आयुर्वेद के अनुसार कफज अथवा तामसी प्रकृति के लोग अधिक सोने वाले, पित्तज अथवा राजस प्रकृति के लोग मध्यम तथा नियमविरहित सोने वाले तथा वातज अथवा सात्विक प्रकृति के लोग कम सोने वाले होते हैं। इनके स्वास्थ्य के लिए इनकी प्रकृति के अनुरूप निद्रा ही पर्याप्त होती है।

नींद के काल के सम्बन्ध मे एक प्रकार का भेद और भी पाया जाता है। प्राय लोग रात को सोते हैं पर कुछ लोग जिन्हे रात मे काम करना पडता है दिन मे सोने के आदी हो जाते हैं। यूं तो रात मे जागना और दिन मे सोना आयुर्वेद दोनो को स्वास्थ्य के लिए घातक मानता है और उसके अनुसार इससे अनेकानेक प्रकार के रोगो की उत्पत्ति होती है, पर जो लोग बराबर ऐसा कर अपने लिए रात्रि-जागरण और दिवानिद्रा को सात्म्य कर लेते है उन्हे ये हानि नही पहुचाते। निद्रा का कोई भी समय हो उसे नियत होना चाहिए। नियतकाल का उल्लघन ही वस्तुत स्वास्थ्य के लिए घातक है। वाग्भट के अनुसार यदि निद्रा का अकाल मे सेवन किया जाए अथवा अधिक सेवन किया जाए तो सुख और आयु दोनो का क्षय होता है।

चेतना एवं चेष्टाओं पर स्थगन—निद्रा के अन्तर्गत प्राणी की ज्ञानवाही एव क्रियावाही समर्थतायें अपना काम स्थगित कर देती हैं। अब उसके ज्ञानवाही अङ्ग वाह्य उत्तेजना के प्रभावो को ग्रहण नही करते अत प्रतिक्रियाओ की भी समावना नही रहती। प्राणी पूर्ण निश्चेष्ट पड़ा रहता है।

निद्रा के भेद

साधारणतः निद्रा के दो भेद माने जाते हैं-स्वाभाविक एव कृत्रिम। स्वाभाविक निद्रा स्वत उत्पन्न होती है और कृत्रिम निद्रा कृत्रिम उपायो के द्वारा उत्पन्न की जाती है। आयुर्वेद मे निद्रा के निम्नलिखित सात भेद माने गये हैं—

१. तमोभवा निद्रा—यूं निद्रा मात्र को आयुर्वेद तम के प्रभाव से उत्पन्न मानता है पर तमोभवा निद्रा विशेष रूप से तम के अत्यधिक बढ़ जाने के कारण उत्पन्न होती

है। उसका कोई अन्य सय प्रवर्तक कारण नही होता। सत्व एव रज के अत्यधिक क्षीण हो जाने के कारण प्राणी में किसी प्रकार की कोई इच्छा उत्पन्न नहीं होती। वह आलसियो की तरह निश्चेष्ट पडा रहता है। कुछ विद्वानो के अनुसार तमोभवा निद्रा की स्थिति चरकोपत सन्यास अथवा "कामा" से मिलती जुलती है और यह प्राय: मृत्यु के समय ही उत्पन्न होती है।

चू कि आलसी एवं निश्चेष्ट रहने से तथा कर्तव्या-कर्तव्य के प्रति उदासीनता से तमोगुण की वृद्धि होती है और तमोभवा निद्रा की उत्पत्ति होती है; इसीलिये कुछ विद्वानो ने इसे "पाप्मा" भी कहा है।

२. श्लेष्मसमुद्भवा—एक प्रकार के तम का ही स्थूल भाव श्लेष्मा है। शरीर मे श्लेष्मा अथवा कफ बढ़ने से जो निद्रा उत्पन्न होती है उसी को श्लेष्मसमुद्भवा कहा गया है।

३ मन श्रमसंभवा—अत्यधिक मानसिक श्रम करते करते जब प्राणी का मन थक जाता है और उसका मनोदैहिक तन्त्र काम करने से इनकार करने लगता है तब भी उसे निद्रा आने लगती है। इसी निद्रा को मन.श्रमसभवा कहा गया है।

४. शरीरश्रमसंभवा अत्यधिक शारीरिक श्रम करते करते भी प्राणी अपने आप मे थकान का अनुभव करने लगता है और उसका मनोदैहिक तन्त्र काम करने से उपरत होने लगता है। ऐसी स्थिति मे जिस निद्रा की उत्पत्ति होती है। उसी को शरीरश्रमसभवा कहा गया है।

५. आगन्तुकी—बिना किसी ज्ञात कारण के आने वाली आगन्तुकी कहलाती है। इसे चक्रपाणि ने 'रिष्ट-भूता" कहा है।

६ व्याध्यानुवर्तिनी—किसी रोग विशेष के कारण उत्पन्न निद्रा व्याध्यानुवर्तिनी कहलाती है।

७. रात्रिस्वभावसभवा—स्वभावत उत्पन्न होनेवाली निद्रा को रात्रिस्वभावसभवा कहा गया है'।

उक्त निद्राओ मे से रात्रिस्वभासभवा अथवा काल-स्वभाव से उत्पन्न होने वाली निद्रा को "वैष्णवी निद्रा" भी कहा गया है। यह भगवान विष्णु के समान ही शरीर का धारण एव पोषण करती है। चरक ने इसकी उपमा दूध पिलाने वाली गाय से दी है। नवजात शिशु को पोषण की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। अत उसे नीद भी अधिक आती है। वह अपना अधिक समय सोकर ही बिताता है और जितना ही अधिक सोता है उतना ही पुष्ट होता है। तमोभवा अथवा तामसी निद्रा को पाप का मूल कहा गया है। इसके फलस्वरूप कर्तव्य-कर्म का अनुष्टान नही हो पाता और प्राणी के जीवन का बहुमूल्य समय व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। शेष पाचो निद्राये किसी न किसी रोग का परिणाम है अत "वैकारिकी" कहलाती है।

इस सदर्भ मे इस बात का उल्लेख कर देना भी अनुचित न होगा कि यद्यपि चरक एव वाग्भट ने निद्रा के उक्त सात भेद माने हे पर सुश्रुत ने केवल तीन वैष्णवी, तामसी एव वैकारिकी। सुश्रुत ने शेष चरकोक्त श्लेष्म समुद्भवा, मन शरीरश्रमसभवा, आगन्तुकी तथा व्याध्या-नुवर्तिनी निद्राओ का वैकारिकी निद्रा मे ही समावेश कर दिया है।

निद्रा के हेतु

आयुर्वेद के अनुसार मनोदैहिक तन्त्र मे बढे हुए तम कफ के समान आहार-रस जब सज्ञावाही अथवा मनोवाही स्रोतसो में प्रवेश कर उनके मार्ग को अवरुद्ध कर देते है और चेतना के स्थान हृदय को अभिभूत कर लेते है तभी निद्रा की उत्पत्ति होती है। इनके अतिरिक्त शारीरिक अथवा मानसिक श्रम करते-करते जब प्राणी की ज्ञाने-न्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियां, मन एव बुद्धि थककर अपने अपने कर्मो से उपरत हो जाते हैं और उन्हे अपनी स्वाभाविक स्थितिमे आने के लिए आराम की जरूरत होती है तब भी निद्रा की उत्पत्ति होती है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि निद्रा का प्रमुख कारण मनोवह स्रोतसो, इन्द्रियो, मन एव बुद्धि की जडता एव निष्क्रियता अथवा उनकी क्रियाओ का अन्तर्लयन (Inhibition) है। अब यह जडता चाहे इन इन्द्रिय-स्रोतसो के विकार से अवरुद्ध हो जाने के कारण उत्पन्न हो, नियतकालिक सम्बध-प्रत्या-वर्तन (Conditionaly) के कारण उत्पन्न हो अथवा थकान के कारण उत्पन्न हो।

आधुनिक आयुर्विज्ञान मे भी निद्रा की उत्पत्ति के सम्बध म चार प्रमुख सिद्धात प्रचलित है। अति सक्षेप मे नीचे दिया जा रहा है—
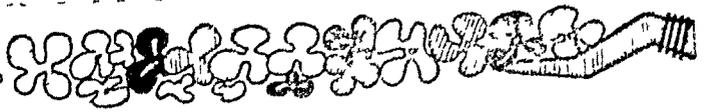
१. रक्तधरवाहिका सिद्धान्त (Vascular theory)—इस सिद्धात के अनुसार निद्रा का प्रमुख कारण वृहद् मस्तिष्क मे रक्त-सचालन की गति में परिवर्तन है। मस्तिष्क मे रक्त का सवहन कम होने से निद्रा की उत्पत्ति होती है। ठीक इसके विपरीत कुछ विद्वानो का यह भी मत है कि मस्तिष्क में सवहन के बढ़ जाने से निद्रा की उत्पत्ति होती है।

२. रासायनिक सिद्धान्त (Chemical theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य तथा पशुओ दोनो में निद्रा का प्रमुख कारण मस्तिष्क की विषमयता है। जाग्रतावस्था मे चयापचय के फलस्वरूप प्राणी में अनेक प्रकार के विषैले पदार्थ, जिन्हे निद्रा–विषाणु (Sleep Toxins) की सज्ञा दी जाती है, उत्पन्न हो जाते हैं जो मस्तिष्क को विषमय बना देते हैं। यही विषमयता नीद को उत्पन्न करती है।

३. उपवल्कीय केन्द्र का सिद्धान्त (Sub--cortical Centre)—इस सिद्धान्त के अनुसार केन्द्रीय नाड़ी-मण्डल मे निद्रा का एक विशेष केन्द्र होता है जो निद्रा को नियन्त्रित करता है।

४. विसारित अन्तर्लेयन का सिद्धान्त (Diffused Inhibition)—इस सिद्धान्त के अनुसार निद्रा एक प्रकार का विसारित अन्तर्लेयन है जो मस्तिष्क के उच्चतम कक्षो में फैलता है। इसका उद्देश्य रक्षात्मक और मस्तिष्कीय–प्रक्रियाओ को पुन आरोग्य प्रदान करना है।

उक्त सिद्धान्तो मे से दूसरा और चौथा सिद्धान्त निद्रा की व्याख्या में अधिक सफल माने जाते हैं। गहराई से देखने पर मालूम होगा कि निद्रा के आयुर्वेदीय सिद्धान्त में इन दोनो के ही तत्व पाये जाते हैं। निद्रा की उत्पत्ति में जहाँ एक ओर वह मनोदैहिक तन्त्र में मनोदोष तम और शरीर–दोष कफ की उपस्थिति को सहायक मानता है वहीं दूसरी ओर चेतना एव चेष्टा के स्थगन को भी।

निद्रा जनित विकार

निद्राजनित विकारो को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—प्रमुख एव गौड। प्रमुख विकार दो हैं—अनिद्रा एवं अतिनिद्रा। गौड विकारो मे से प्रमुख निम्न हैं—तन्द्रा, जृम्भा, क्लम, आलस्य, उत्क्लेप, ग्लानि तथा गौरव। ये सभी विकार किसी न किसी रूप मे निद्रा की गड़बड़ी के कारण ही उत्पन्न होते है और प्राय. ऐसे रोगों में लक्षण के रूप मे पाये जाते हैं जिनमे नीद की गड़बडी भी पाई जाती है। आगे सक्षेप मे इन विकारो को प्रस्तुत किया जा रहा है।

अनिद्रा

निद्रा का हीनयोग या विकृत योग ही अनिद्रा (Insomnia) कहलाता है। अनिद्रा का रोगी एक अजीब तरह की बेचैनी अनुभव करता रहता है और प्रायः कोशिश करने पर भी उसे नीद नही आती। जितना ही वह नींद के नजदीक आना चाहता है नीद उससे दूर भागती जाती है।

अनिद्रा का कारण—आयुर्वेद के अनुसार निद्रानाश का प्रमुख कारण वात अथवा पित्त की वृद्धि, मन का ताप (मानसिक तनाव, संघर्ष, अन्तर्द्वन्द आदि), क्षय अथवा/अभिघात है। इस सन्दर्भ मे यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि वातवृद्धि की सभी स्थितियो मे निद्रा का नाश नही होता। निद्रानाश का कारण प्रायः वे ही वात रोग होते हैं जिनमे वेदना अथवा शूल की प्रधानता पाई जाती है—यथा पाद शूल, पिण्डिकोद्वेष्टन (Cramps) गृध्रसी (Sciatica), उदावर्त, वक्षतोद, कर्णशूल, अक्षिशूल, ललाटभेद, शिरोरुक, आक्षेपक, तूनी, प्रतितूनी, मूत्रकृच्छ्र, श्वासकृच्छ्र, पुरीषकृच्छ्र इत्यादि। इसी प्रकार पैत्तिक रोगो मे प्रायः ज्वर, शोष, प्लोष, दाह, अन्तर्दाह आदि के साथ ही निद्रानाश पाया जाता है। मनस्ताप भी इस सन्दर्भ में मानसिक तनाव, द्वन्द, अन्तर्द्वन्द या सवेगात्मक सकट की स्थितियो का बोधक है। भय, क्रोध, चिन्ता, द्वेष आदि सभी का इसमे समावेश हो जाता है। क्षय यहा पर ओजक्षय अथवा राजयक्ष्मा दोनो का ही बोधक है। अभिघात शरीर पर, विशेष कर सर पर लगी चोट अथवा घाव का बोधक है। अभिघात मे नीद न आने का खास कारण भी वेदना अथवा पीडा ही है।

अनिद्रा की चिकित्सा—अनिद्रा की चिकित्सा मे आचार्यों ने दैहिक एव मनोवैज्ञानिक दोनो ही प्रकार की चिकित्सा का उल्लेख किया है।

दैहिक चिकित्सा के अन्तर्गत भैंस के दूध, भैंस के दूध के दही, खोवा, रबडी आदि, ईख का रस, ईख रस के बने पदार्थ, आनूपदेशी अथवा मछली आदि औदक प्राणियो

के मासरस, शालि के चावल, पिट्ठी अथवा उड़द के बने पदार्थ, नाना प्रकार के मद्यो, मादक द्रव्यो आदि के सेवन का विधान किया है। बाह्य उपकरणों की मालिश (विशेषकर सर तथा पैर के तलवो की मालिश) उबटन, स्नान, कान मे गुनगुना तैल डालना, नेत्रों का तर्पण, सिर एव मुख पर विविध प्रकार के स्निग्ध एव सुगन्धित पदार्थों के लेप, अनुकूल वातावरण एवं सुखदायक शैया आदि का प्रबन्ध प्रमुख हैं। सवाहन (चापी, मुठ्ठी, शरीर दबवाना आदि) नीद लाने में सहायक होता है। अष्टवर्ग एव मुलेठी आदि जीवनीयगण के द्रव्यों से सिद्ध घृत का पान तथा ऊपर से दूध पीना भी नीद लाने मे सहायक सिद्ध होता है।

इनके अतिरिक्त जिन रोगो में अनिद्रा एक लक्षण के रूप में पाई जाती है उनमें प्रमुख रोगो का यथोचित उपचार होने पर जैसे रोग शान्त होता जाता है अनिद्रा में भी कमी आती जाती है।

निद्रालाने वाले मनोवैज्ञानिक उपकरणो में प्रमुख निम्न हैं—स्पर्श में सुखदायक व्यक्ति यथा पुत्रादि को लेकर लेटना, चित्तवृत्ति को समझने वाले प्रियजन एव अनुजीवीजनो द्वारा समयामनुकूल सुखद वार्तालाप, कान्ता की बाहुरूपी लताओ का सपर्क या आलिगन, निश्चिन्तता, सफलता, कृतकृत्यता (काम का पूरा हो जाना) तथा मन के अनुकूल शब्द गीत आदि विषयो की उपस्थिति।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक उपकरणो मे सझुचन-विधि (Suggession) का अनिद्रा की चिकित्सा मे बहुतायत से प्रयोग किया जाता है। इस क्षेत्र में इमाइल कूवे तथा उसके अनुयायियो ने प्रशसनीय काम किया है। पुन. प्रत्यावर्तन (Reconditioning) की विधि भी इस सम्बन्ध में उपयोगी सिद्ध हुई है।

अतिनिद्रा

निद्रा का अतियोग अर्थात् नीद का अत्यधिक आना ही अतिनिद्रा कहलाता है। अनिद्रा के समान ही अनावश्यक अतिनिद्रा भी स्वास्थ्य के लिए घातक सिद्ध हो सकती है।

अतिनिद्रा के कारण—अतिनिद्रा का प्रमुख कारण शरीर मे कफ की वृद्धि है। कफ की वृद्धि से पाचकाग्नि मद पड़ जाती है। आहार रस का ठीक से परिपाक नहीं होता। यही आहार रस रसवह स्रोतो को अवरुद्ध कर देता है। स्रोतो के अवरोध से शरीर में शिथिलता आती है। शिथिलता से आलस्य और आलस्य से निद्रा आने लगती है।

अतिनिद्रा की चिकित्सा—अतिनिद्रा की चिकित्सा मे भी दैहिक और मनोवैज्ञानिक दोनो ही प्रकार की चिकित्सा का उल्लेख है।

शारीरिक उपकरण—कायविरेचन, शिरोविरेचन, वमन, शिराभेद या रक्तमोक्षण, धूम्रपान, उपवास, व्यायाम, तृषाशान्ति के लिए अत्यन्त स्वल्प जलपान, शारीरिक व्यथा अथवा वेदना, कष्टकर शैया, रूक्षगुण प्रधान वात कारक आहार आदि।

मनोवैज्ञानिक उपकरण—मानसिक व्यथा, हर्ष, शोक, अतिमैथुन, मन मे भय का सचार, क्रोध, चिन्ता, उत्कण्ठा, मन की उदारता, सत्व गुण की प्रबलता, उच्च स्तरीय विचार, चिन्तन आदि तथा तमोगुण पर विजय आदि।

गौड विकार

भ्रम—

आयुर्वेदोक्त भ्रम रोग के प्रधान लक्षण हैं सिर का चकराना, आसपास की सभी चीजो का घूमता हुआ सा प्रतीत होना तथा रोगी का चक्कर खाकर गिर पड़ना। इसमें रोगी की सज्ञा आशिक रूप से ही नष्ट होती है। भ्रम रोग मनोदोष रज और शारीरिक दोष वात और पित्त के बढने से उत्पन्न होता है।

पाश्चात्य मनोवैकारिकी मे इस रोग को वर्टिगो (Vertigo) कहते है। यह एक प्रकार की घूमने या चकराने की सवेदना है जो प्राय अर्धवृत्ताकार नलिका (Semicircular canal) के ग्राहको के अति उत्तेजित हो जाने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। यह स्थिति प्रधाण तंत्रिका (Vestibular Nerve) भी उत्पन्न लघु मस्तिष्क, एव लघुमस्तिष्कीय धमनी की विकृतियो तथा मस्तिष्कार्बुद के कारण होती है।

तन्द्रा—

तन्द्रा के लक्षणो का वर्णन करते हुए चरक ने कहा है—"जिस रोग मे इन्द्रियां अपने अर्थों को ठीक से ग्रहण नहीं करती, शरीर मे भारीपन मालूम होता है, जम्भाइयां आती है, रोगी थकावट तथा नीद से पीडित

हुए के समान चेष्टा करता है, उसे तन्द्रा कहते हैं।" उक्त लक्षणो से स्पष्ट है कि तन्द्रा वस्तुत. सन्यास अथवा तामसिक निद्रा का ही लघु रूप है। वह प्राय उन्हीं रोगो मे लक्षणो के रूप मे पाई जाती है जिसमे सन्यास पाया जाता है। कभी कभी यह बढकर स्वतन्त्र रोग का रूप भी धारण कर लेती है। इसकी गम्भीरता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि वाग्भट ने इसे तीन दिन तक तो साध्य माना है और उसके बाद असाध्य।

तन्द्रा के कारण—तन्द्रा तमोगुण युक्त वात और कफ की विकृति से उत्पन्न होती है। चरक ने तन्द्रा के निदान और सम्प्राप्ति का वर्णन करते हुए कहा है—मधुर, स्निग्ध एव गुरु अन्न के सेवन से, चिन्ता, श्रम, शोक और बहुत दिनो से किसी एक ही रोग से पीडित रहने से कुपित हुई वायु कफ को बढाकर जब हृदय-प्रदेश मे प्रवेश कर जाती है तो हृदय मे आश्रित ज्ञानवह स्रोतो को आच्छादित कर तन्द्रा रोग को उत्पन्न करती है।

पाश्चात्य मनोवैकारिकी में इसे लिथार्जी या स्टुपर के समकक्ष माना जाता है। स्टुपर भी मानसिक रोगो का एक प्रमुख लक्षण है। यह प्राय. अवसाद, सविषाद स्कीजोफ्रीनिया और हिस्टीरिया के रोगियो मे पाया जाता है। जिस प्रकार तन्द्रा सन्यास का लघु रूप है उस प्रकार स्टुपर कॉमा (coma) का लघु रूप है। स्टुपर मे सज्ञा अथवा चेतना का आंशिक लोप होता है और कॉमा मे पूर्ण। स्टुपर के रोगी मे इन्द्रियो की कार्यक्षमता आंशिक रूप मे बनी रहती है या कॉमा के रोगी की इन्द्रिया पूर्णत निष्क्रिय हो जाती है। स्टुपर के रोगी को प्रयास करके होश मे लाया जा सकता है पर कामा के रोगी को नही।

क्लम—

क्लम के लक्षण—क्लम का शाब्दिक अर्थ है "थकावट, शिथिलता, क्लान्ति, श्रान्ति आदि। सुश्रुत में इस शब्द का प्रयोग मनोदैहिक तन्त्र की एक विकृत अवस्था विशेष के लिए किया गया है।

सुश्रुत के ही शब्दो मे—साँस की कठिनाई न होकर बिना परिश्रम के ही शरीर मे जो थकावट बढती है और इन्द्रियो को स्व अर्थ ग्रहण मे बाधा पहुँचती है उसी अवस्था को क्लम समझना चाहिए।

उक्त परिभाषा के अनुसार क्लम रोग पाश्चात्य मनोवैकारिकी मे बहुचर्चित न्यूरेस्थीनिया (Neurest-henea) के समकक्ष मालूम होता है। गहराई से विचार करने पर दोनो के लक्षणो मे बहुत कुछ साम्य दृष्टिगोचर होगा।

आयुर्वेद के सहिताकारो मे से अधिकाश ने क्लम को पृथक रोग विशेष नही माना है। इसीलिए उन्होंने इसकी विस्तृत चर्चा भी नही की है। केवल सुश्रुत और आगे चलकर भावप्रकाश मे इसका उल्लेख मिलता है। सुश्रुत मे गर्भव्याकरण नामक अध्याय मे निद्रा और तज्जन्य अवस्थाओ के अन्तर्गत और भावप्रकाश में मूर्च्छाधिकार के अन्तर्गत इसका अति सक्षिप्त विवरण उपलब्ध होता है। इससे यह अनुमान लगाना अनुचित न होगा कि इन सहिताकारो के अनुसार क्लम का प्रमुख कारण नीद अथवा आराम का अभाव तथा अन्य ऐसे तत्व है जो नीद तथा आराम मे बाधक सिद्ध होते है। मोरोजीव आदि ने भी न्यूरेस्थीनीया के कारणो का उल्लेख करते हुए कहा है—न्यूरेस्थीनिया प्राय अत्यधिक थकाने वाले काम, आराम का अभाव, लम्बे समय तक बने रहने वाले दुखद सवेगात्मक तनाव तथा अपर्याप्त निद्रा के कारण होता है। न्यूरेस्थीनिया के रोगी मे नीद की विकृति एक प्रमुख गडबडी है। मोरोजीव के ही शब्दो मे—इस रोग के सभी रोगियो मे निद्रा की विकृति सबसे अधिक और लगातार देखी जाती है। इसके रोगी कुत्ते की नीद सोते है। देर तक सो नही सकते। प्रात बहुत ही जल्द जाग जाते है और फिर सो नही सकते। उनकी नीद इतनी हल्की होती है कि वे आस पास होने वाली सभी बातो को सुन सकते है। प्राय दुखद स्वप्न देखते हैं। प्रात: अपने आप मे उस ताजगी का अनुभव नही कर पाते जो स्वस्थ प्राणियो मे पाई जाती है। दिन मे भी वे उनीदे और किसी हद तक अनिच्छु रहते हैं।

शेष जृम्भा, जमुहाई, आलस्य, उत्क्लेश, ग्लानि तथा गौरव (शरीर का गीले कपडे अथवा चमडे से लपेटा हुआ जैसा मालूम होना) अति प्रचलित एव साधारण अवस्थायें है। इनसे प्राय सभी परिचित हैं।

—श्री डा० अयोध्या प्रसाद अचल
प्रिंसिपल-जे०जे० डिग्री कालेज, बुनियादगज (गया) बिहार

कविराज श्री यशपाल शास्त्री, A, M B S साहित्याचार्य, साहित्य शास्त्री,
वशिष्ठ आरोग्य मन्दिर, घाटेड़ा, सहारनपुर (उ० प्र०)

श्री शास्त्री का जन्म चैत्र शुक्ला षष्ठी स० १९९० विक्रमी मे ग्राम घाटेड़ा मे वैद्य श्री प० हरीराम जी शर्मा के यहाँ हुआ। श्री सनातन सस्कृत विद्यालय सहारनपुर से सस्कृत मध्यमा प्रथम श्रेणी मे आपने उत्तीर्ण की। सन् १९५८ मे **ऋषिकुल आयुर्वेदिक** कालेज हरिद्वार से A, M B S परीक्षा **प्रथम श्रेणी** मे उत्तीर्ण की। ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरिद्वार से आपने साहित्यशास्त्री एव साहित्याचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। वर्तमान मे आप अपने ही गाव मे सन् १९५८ से निजी चिकित्सालय का सचालन कर रहे है।

'निद्रा विवेचन' आपका लेख पठनीय एव मननीय बन पडा है। आशा है पाठक बन्धु शास्त्री जी के लेख से लाभान्वित होगे। —विशेष सम्पादक

यदि कोई पूछे कि दीर्घ एव स्वस्थ जीवनदात्री थकान एव उत्तेजनाओ को तत्काल शमन करने वाली बिना मूल्य की कोई प्राकृतिक औषधि बताइये, ऐसी औषधि जिसे न कूटना पडे न पीसना न उबालना पड़े, तथा जिसे न खाने की आवश्यकता हो न लगाने की, तो मैं कहूगा कि ऐसी निर्विष विष प्रशमनी औषधि निद्रा है। सचमुच प्रकृति माँ की गोद मे पलने वाले प्राणी ब्रह्मानन्द सहोदरी निद्रा के अक मे जो सुख पाते है वह अकथनीय है।

प्राचीन शास्त्रो मे कहा है "अर्ध रोग हरी निद्रा" अर्थात नीद का आ जाना रोग का शमन होने की शुभ सूचना है। काव्य मीमासा मे भी कहा है "सम्यक् स्वापो वपुष परमारोग्याय" अर्थात् अच्छी निद्रा शरीर को स्वस्थ बनाती है। प्रत्यक्ष मे भी देखा जाता है कि खेत खलिहानो मे परिश्रम करने वाले कृषक श्रमिको को ऐसी गाढी नीद आती है कि सभ्रात और बुद्धिजीवी लोगो को वैसी नीद जीवन भर भी नही आती।

अच्छी नीद आने से भूख बढती है, मात्रा मे खाया गया भोजन अच्छी प्रकार पचता है तथा शरीर सुदृढ होता है। स्कन्द पुराण मे वेद व्यास जी कहते है—

ये स्वपन्ति सुख रात्रौ तेषा कायाग्निरिध्यते।
आहार प्रतिगृह्णाति तत पुष्टि करं परम्॥

जो रात्रि मे सुख से सोते है, उनकी कामाग्नि प्रदीप्त

होती है। उनके आहार का पाचन ठीक से होता है तथा शरीर पुष्ट होता है।

यही कारण है कि चरक में निद्रा को जीवन का उपतम उपस्तम्भ कहा गया है "त्रयो उपस्तम्भा इत्याहार स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति" (च. सू. अ. ११) अर्थात् हमारा यह शरीर तीन स्तम्भों पर टिका है। वे स्तम्भ हैं आहार, निद्रा तथा ब्रह्मचर्य। हम सभी जानते हैं कि तिपाई का एक पाया टूटते ही तिपाई स्थिर नहीं रह सकती। शरीर रूपी तिपाई भी निद्रा के अभाव में नष्ट हो सकती है।

आयुर्वेद ग्रन्थों में निद्रा को आहार के समकक्ष ही माना गया है। आयुर्वेद तो बहुत आगे बढ़कर यहाँ तक कहता है—

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च॥
(च. सू. अ. २१ श्लो. ३६)

अर्थात् व्यक्ति का सुख दुःख, पुष्टि, कृशता, सबलता, निर्बलता, पुंस्त्व, नपुंसकता, ज्ञान, अज्ञान यहाँ तक कि जीवन और मृत्यु निद्रा के आधीन हैं।

निद्रा शक्ति प्राप्ति का स्रोत है—

जाग्रदवस्था में अनेक प्रकार की ऐच्छिक अनैच्छिक क्रिया प्रतिक्रिया करते रहने के कारण प्रत्येक मानव बहुत सारी शक्ति का व्यय करता है। यदि इस खोई शक्ति की पूर्ति न करली जाय तो यह भौतिक शरीर कितने दिन चल सकेगा ? क्या कोई ऐसा यन्त्र बनाया जा सकता है जिसे बिना विश्राम दिए अनन्तकाल तक चलाया जा सके ?

शरीर यन्त्र की क्षति पूर्ति के लिए निद्रा ही ऐसी माता है जिसकी कोमल अङ्क में व्यक्ति अपनी खोई शक्ति प्राप्त करता है, जीर्ण शीर्ण तन्तुओं का पुनर्निर्माण करता है तथा कल के लिए शक्ति का सचय करता है।

वैसे तो हमारा शरीर प्रतिक्षण ही शक्ति का उत्पादन एवं सचय करता रहता है परन्तु निद्रा के समय शक्ति का सचय अपनी चरम सीमा पर होता है। निद्रा के समय क्रियाशीलता न्यूनतम बिन्दु पर होती है अतः हम कह सकते हैं कि निद्रा के समय शरीर उस बैटरी के समान होता है जिसे विद्युज्जनक (जेनरेटर) से जोड़ दिया गया हो और जो न्यूनतम व्यय करके अधिकतम सचय करती है। ज्यों ही हम जागते हैं [illegible] अधिकतम व्यय आरम्भ हो जाता है।

निद्रा के [illegible] दुर्बलता [illegible] जो लोग केवल उत्तम पौष्टिक आहार अथवा उत्तेजक मादक पदार्थों के सहारे शक्ति [illegible], एवं [illegible] पाने का प्रयत्न करते हैं वे सदा असफल ही रहते हैं। क्योंकि निद्रा के अभाव की पूर्ति संसार का कोई भी पदार्थ नहीं कर सकता। इसलिये निद्रा को शरीर का उपस्तम्भ कहना उचित ही है।

आहार-परिपाक और निद्रा

निद्रा के समय भोजन का परिपाक उत्तम होता है। इसका कारण यह है कि निद्रावस्था में हमारा मस्तिष्क लगभग निष्क्रिय होता है। शरीर में मस्तिष्क ही एक ऐसा अंग है जो जाग्रतावस्था में सक्रिय होने पर सर्वाधिक शक्ति तथा ईन्धन व्यय करता है। जब हम सक्रिय होते हैं तो शक्ति का प्रवाह (रक्तप्रवाह) मस्तिष्क की ओर होता है। जब हम सोये होते हैं तो शक्ति का प्रवाह भीतरी अंगों की ओर होता है। यही कारण है कि निद्रा के समय पाचन क्रिया अच्छी होती है। यही वह रहस्य है जिसके कारण रूखा सूखा अपौष्टिक आहार-खाकर भी कृषक श्रमिक बलिष्ठ एवं दीर्घायु होते हैं जबकि सुपाच्य, पौष्टिक एवं उत्तम भोजन खाकर भी धनिक एवं बुद्धिजीवी वर्ग अपच, मन्दाग्नि आदि रोगों में फंसा रहता है, घुल-घुल तोद और शक्तिहीन होता है तथा अल्पायु में ही यमलोक सिधार जाता है।

शरीर पुष्टि और निद्रा

निद्रा का स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध है। हम सभी जानते हैं कि सद्योजात शिशु निद्रा के अङ्क में तीव्रता से बढ़ते हैं। सद्योजात शिशु अहोरात्र में २३ घण्टे सोता है। ज्यों-ज्यों समय बीतता है निद्रा घटती जाती है। शैशव से कुमारावस्था तक दस बारह घण्टे, युवावस्था में आठ दस घण्टे तथा प्रौढावस्था में ६ से ८ घण्टे तक वृद्धावस्था में ४ से ५ घण्टे नींद रह जाती है। अनुभव यही बताता है कि निद्रा का स्वास्थ्य से गणित जैसा सम्बन्ध है।

मातायें जानती हैं कि जब उनका बच्चा स्वस्थ होता है तो वह शांत निद्रा लेता है। अस्वस्थ बच्चा चिड़चिड़ा

हो जाता है तथा व्याकुल रहता है। बहुत से वृद्ध अच्छी गाढ़ी नींद सोते हैं। परन्तु जिनको अनिद्रा का रोग है वे असमय में ही कुछ दीनहीन तथा वृद्ध जैसे दीखने लगते हैं।

आधिभौतिक, आध्यात्मिक सिद्धिदात्री-निद्रा

शरीर को नीरोग तथा दीर्घायुष्यप्रदान करके निद्रा जैसा उपकार उससे भी बढ़कर मन एवं आत्मा को निर्विकार रखने के लिए निद्रा बहुत आवश्यक है। यदि हम मोक्ष पर बढ़ना चाहते हैं तो हमें उचित निद्रा का सेवन करना ही होगा। पातञ्जलि योग दर्शन में तमोगुण निद्रा का निग्रह करके आत्मविकास की ओर बढ़ने का निर्देश है। स्वाभाविक भूतधात्री निद्रा (नेचुरल स्लीप) का सेवन योग शास्त्र में परमावश्यक बताया है और कहा है कि उचित समय पर जागने तथा सोने वाला ही योगी हो सकता है (युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा-गीता अ. ६ श्लोक १७)

इसी ओर चरकाचार्य भी कुछ ऐसा ही संकेत करते है—

अकालेऽतिप्रसंगाच्च न च निद्रानिषेविता।
सुखायुषीपरा कुर्यात् कालरात्रिरिवापरा॥

च. सू. अ. २१

अर्थात् असमय की निद्रा, अतिनिद्रा तथा अनिद्रा यह तीनों ही व्यक्ति का विनाश करने वाली है तथा उचित स्वाभाविकी निद्रा परम कल्याण करती है। आयुर्वेद के इस मत को और भी स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें ऐसे व्यक्ति की कल्पना करनी होगी जो रात के एक-दो बजे तक सिनेमा, वेश्या अथवा नाचरङ्ग में डूबा रहता है तथा प्रातः ९-१० बजे तक खाट में पड़ा रहकर जब उठता है तो ऐसा मानो इसके जीवन का रस निकल गया है। पर्याप्त पौष्टिक भोजन खाकर भी व्यक्ति के मुख पर उत्साह और स्फूर्ति नहीं दीख पड़ती। ऐसा इसीलिए होता है क्योंकि वह अकाल निद्रा, अतिनिद्रा तथा अनिद्रा का सेवन करता है।

निद्रा का उचित समय

सोने का सबसे उत्तम समय अर्ध रात्रि से दो घण्टे पूर्व है। अनुभवों एवं प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि अर्ध रात्रि पूर्व एक घण्टे की निद्रा अर्ध रात्रि पश्चात् की दो घण्टे की निद्रा के समान है। रात्रि १० बजे से रात्रि दो बजे के मध्य चार घण्टों का समय सर्वोत्तम है। यही वह समय है जब हमारी शारीरिक, मानसिक सक्रियता न्यूनतम बिन्दु पर होती है। सम्भवतः भूभ्रमण के कारण पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति इस समय हमारे मस्तिष्क को सबसे कम प्रभावित करती है।

शक्ति संचय की इस अमृतवेला को जो अभागे जागकर बिताते हैं उनके दुर्भाग्य की कहानी उनका शक्ति स्फूर्ति हीन स्वास्थ्य स्वयं ही कहता रहता है। हृदयावरोध से मरने वाले राज नेता, अभिनेता, व्यापारी, चलचित्र रसिक आदि इसी श्रेणी के लोग है।

भारतीय ऋषियों तथा आयुर्वेद प्रणेताओं ने प्रकृति के इस रहस्य को समझते हुये ही प्रातरुत्थान को दिनचर्या में समाविष्ट किया है। ब्राह्म मुहूर्त में उठना सभी प्रकार से मानव का कल्याण करता है।

ब्राह्ममुहूर्तोत्थान के पीछे एक वैज्ञानिक रहस्य है जिसे बहुत कम लोग जानते है। पृथ्वी के दैनिक धुरी भ्रमण के अनुसार अहोरात्र को दो भागों में बांटा गया है। अर्ध रात्रि से मध्याह्न तक का समय उत्तेजना देने वाला समय है। इस समय से पृथ्वी वासी उर्ध्वगतिक होते हैं। मध्याह्न के समय उत्कर्ष का चरम बिन्दु होता है। मध्याह्न से लेकर मध्य रात्रि तक शिथिलता देने वाला समय है। इस प्रकार मध्य रात्रि को प्राणी शिथिलता के चरम बिन्दु पर होते है।

उत्तेजनादायक समय में पड़कर सोते रहना तथा शिथिलतादायक समय में सक्रिय होना प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है। जो ऐसा करते हैं उनका जीवन आध्यात्मिक दृष्टि से अविकसित तथा सच्चे सुख से वञ्चित रहता है। भारतीय संस्कृति में ऐसे जीवन को निशाचर-रात्रिचर अथवा राक्षसी जीवन कहा है।

उत्तेजना तथा शिथिलता देने वाले इस भूभ्रमणजन्य समय विभाग की अनुभूति प्रत्येक चिकित्सक को होती है। भयानक से भयानक रोगी को भी प्रातःकाल कुछ शान्ति देखी जाती है तथा सायंकाल के पश्चात् रोग के लक्षण विकराल रूप धारण करने लगते है। अर्ध रात्रि के

से) यह नही जान पाया कि नीद क्यों आती है। हम नही जानते कि शरीर मे वह कौनसी यान्त्रिक क्रिया होती है कि नीद आ जाती है। हम केवल इतना जानते हैं कि यदि व्यक्ति को नीद से वञ्चित कर दिया जाय तो वह रोगी जैसा लगने लगता है। उसकी स्फूर्ति तथा उत्साह सिमट सा जायेगा।

वाशिंगटन स्थित वाल्टररीड आर्मी इन्स्टीट्यूट आफ रिसर्च मे नीद के विषय मे जो विस्तृत शोध कार्य हुआ है कि व्यक्ति अधिक मे अधिक २४० दो-सौ चालीस घण्टो तक नीद रोक सकता है। उसके पश्चात् वह नही रोकी जा सकती। २४० घण्टो तक जागे हुए व्यक्तियो का शारीरिक परीक्षण करने पर अनेक दोष पाये गये। सबसे अधिक क्षति मस्तिष्क मे पाई गई।

इससे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि निद्रा की योजना प्रकृति की ओर से इसलिये की जाती है ताकि दिन भर की सक्रियता के कारण शरीर मे जो कूडा-कचरा इकट्ठा हो जाता है उसे शरीर से बाहर किया जा सके। अनुभव भी यही बताता है कि सोकर उठने पर शरीर स्फूर्ति युक्त हल्का-फुल्का लगता है, सभी इद्रियाँ प्रसन्न तथा उत्साहपूर्ण होती है।

आयुर्वेद के आचार्यों ने यह बात आज से सहस्रो वर्ष पहले कही थी। भगवान चरक कहते है—

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानव.॥ च सू २१

अर्थात् जब मन के थक जाने पर थकी हुई इद्रिया विषय ग्रहण करने मे असमर्थ हो जाती है तब मनुष्य को नीद आ जाती है।

मनोवैज्ञानिको तथा शरीर क्रिया वैज्ञानिको का कहना है कि जब हमारे मस्तिष्क का उच्च विचार केन्द्र (हायर साइकिक एरिया) रक्त शून्य हो जाता है तो वहाँ का क्रिया कलाप रुक जाता है। यह अवस्था ही नीद है।

वास्तव मे निद्रा नाडी मण्डल के थकान की अवस्था है। जब नाडी मण्डल थक जाता है तो पूरी शरीर की मास-पेशियाँ शिथिल हो जाती है। तनाव की स्थिति बदल कर शिथिलता की स्थिति आने पर मासपेशियो तथा त्वचा की रक्त वाहिनियाँ फैल जाती है। इस फैलाव के कारण रक्त के लिये अधिक स्थान बन जाता है तथा बहुत सारा रक्त हाथ पैरो, आतो तथा भीतरी आतो मे चला जाता है जिससे मस्तिष्क मे रक्त की न्यूनता हो जाती है। भोजन के पश्चात् झपकी लग जाने का मुख्य कारण भी यही होता है क्योकि आमाशय के फैल जाने से बहुत सारा रक्त उसकी रक्तवाहिनियो मे भर जाता है तथा मस्तिष्क मे रक्त की न्यूनता हो जाती है।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि दिन भर की सक्रियता के कारण होने वाली टूटफूट तथा दहन-प्रक्रिया (Oxidisation) के अन्तिमोत्पादो (End products) के रूप मे जो विष (कार्बन डाइ आक्साइड, यूरिक, एसिड, यूरिया आदि) हमारे जीवद्रव्य (प्लाज्मा) मे भ्रमण करते रहते है तथा शरीर कोशिकाओं को हानि पहुँचा सकते है उन विषो से मस्तिष्क कोषिकाओ को बचाने के लिये ही प्रकृति नीद की योजना करती है ताकि विषैला रक्त मस्तिष्क से नीचे उतर जाये और वहा से शोधक अङ्गो (एक्सक्रियेटरी आर्गन्स Exacreatary organs) के द्वारा शरीर से बाहर विषैले पदार्थ मल, मूत्र प्रस्वेद एव श्वास के द्वारा फेंक दिये जाये।

प्रकृति यह कार्य यदि इस रूप मे न करे तो हम सब जीवित नही रह सकते। भयानक रोग हमे घेर सकते है। उन्माद रोग का एक मुख्य कारण नीद का न आना भी है। नीद न आसकने के कारण उन्मादी का मस्तिष्क उत्तप्त रहता है। उत्तप्तता की यह निरन्तर स्थिति मस्तिष्क की कोशिकाओ को जला डालती है। क्योकि शरीर मे मस्तिष्क ही एक ऐसा अङ्ग है जो रक्त मे तनिक भी प्राणवायु की न्यूनता को सहन नही कर सकता।

जब हम थके होते है तो हमारे रक्त मे चयापचय जन्य विषो (मैटाबलिक टाक्सिन्स) की भरमार होती है तथा प्राणवायु की न्यूनता हो जाती है। ऐसे विषो से भरापूरा रक्त मस्तिष्क के लिए घातक है। अत प्रकृति निद्रा की योजना करती है। जब रक्त शुद्ध हो जाता है तथा उसमे प्राण वायु की मात्रा बढ जाती है तो माँ प्राकृति हमे जगा देती है। एक नई चेतना पाकर हम अपनी दिनचर्या मे जुट जाते है।

इस प्रकार नीद स्वास्थ्य एव दीर्घायु के लिये एक वरदान है। नीद के अमूल्य समय को सिनेमा, नाच रङ्ग,

अथवा अन्य व्यसनों में रोगना एक प्राकृतिक अपराध है आत्महत्या का स्वयं स्वीकृत मार्ग है।

नींद क्यों नहीं आती ?

अनिद्रा एक रोग है। अनिद्रा सर्वदा उत्तप्त रहने वाले नाडी मण्डल का प्रतिफल है। कठोर शब्दों में कहें तो हमारे अप्राकृतिक राजसी, तामसी, राक्षसी जीवन के लिए दिया गया एक दण्ड है।

हमारी तथाकथित प्रगतिशील सभ्यता ने हमें यह रोग दिया है। हमारी श्रमहीन दाम्भिक जीवन प्रणाली ने हमें अनेक अभिशाप दिए हैं जिनमें अनिद्रा भी एक है। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं कि श्रमिक जीवन बिताने वालों में किसी एक को भी अनिद्रा का रोगी नहीं पाया जा सका। श्रमिकों तथा कृषकों पर तो माँ निद्रा की ऐसी कृपा होती है कि मिट्टी के ढेलों पर पुआल के ढेरों पर वे खुर्राटे भरते हैं।

नींद न आने के कई कारण हो सकते हैं। श्रमहीन जीवन बिताने वाला वर्ग अनिद्रा का रोगी होता है। व्यर्थ की चिन्ता करना, रति के काल्पनिक चित्र खींचते रहना, सिगरेट पान तम्बाकू आदि का सेवन करना, रात्रि में देर से भोजन करना, उत्तेजक साहित्य पढ़ना, ताश, शतरंज, नाच-गाना, सिनेमा आदि में फंसे रहना, आय-व्यय के चक्कर में फंसे रहना, निर्वात कमरे में सोना, मादक पदार्थों का सेवन आदि अनेक कारण अनिद्रा को जन्म दे सकते हैं।

कभी-कभी जीवन में किए गए दुष्कर्मों की स्मृति भी निद्रा में बाधक हो जाती है। कल किए जाने वाले भारी कार्य का भय भी कभी-कभी अनिद्रा को जन्म देता है।

परन्तु इन सबसे बढ़कर अनिद्रा का एक कारण हमारा अप्राकृतिक विषैला आहार है—तेज मिर्च-मसाले, तला-भुना श्लेष्मावर्धक आहार हमारे रक्त में ऐसी उत्तेजना तथा उत्तप्तता उत्पन्न करता है कि नाड़ी मण्डल शान्त नहीं हो पाता।

अनिद्रा के दुष्परिणाम

अनिद्रा से कौन-कौन से घातक परिणाम हो सकते हैं उनका ज्ञान तो सर्व साधारण को भी है। अनिद्रा के रोगी चिड़चिड़े, क्रोधी, व्याकुल, झगड़ालू तथा सन्तुष्ट नहीं होते हैं। ऐसे व्यक्ति शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से अविकसित, अग्निमन्दबुद्धि, अल्प सत्व, अल्पायु तथा वात-पित्त के होते हैं।

जिस प्रकार उचित प्राकृतिक आहार न मिलने पर शरीर का प्रत्येक अङ्ग तथा प्रत्येक कोशिका निर्जीव तथा रुग्ण होने लगती है। उसी प्रकार उचित निद्रा के अभाव में शरीर की प्रत्येक कोशिका तथा प्रत्येक अङ्ग में विकृति आने लगती है। वाग्भट्ट कहते हैं -

निद्राया मोह मूर्धाक्षी गौरवालस्य जृम्भिका।
अंग मर्दश्च···· ·········· ·· ·· ··॥

अर्थात् अनिद्रा में मोह, मस्तक, तथा आंखों में भारी-पन, पूरे शरीर में आलस्य, जमाई तथा शरीर के टूटने जैसी विकृतियाँ होती हैं। आगे वाग्भट्ट जी कहते हैं—

जाड्य ग्लानि भ्रमापक्ति तन्द्रा रोगाश्च वातजा।

अर्थात् अनिद्रा से जाड्य (जकड़ाहट), ग्लानि, भ्रम, आपक्ति, अपचन, तन्द्रा एवं वातिक रोगों की भूमिका तैयार होती है।

प्रत्यक्ष अनुभव में भी हम सब जानते हैं कि एक दिन रात नींद न आपाने पर ही जीवन में उत्साह नहीं रह जाता। बुद्धि जीवी, धनी, व्यापारी, राजनेता, अभिनेता एवं अन्य श्रमहीन जीवन बिताने वालों में पाई जाने वाली कोष्ठबद्धता, प्रमेह, प्रदर, अरुचि, निरुत्साह, रक्ताल्पता, रक्तविकार, शिर शूल आदि अनिद्रा के ही परिणाम हैं।

नींद लाने के कुछ सरल उपाय

१—ऐसे कमरे में सोइए जो बहुत उत्तप्त न हो। साथ ही उसमें शुद्ध वायु का प्रवेश अबाध गति से होता हो। (क्रास वेन्टिलेशन)

२—दिन के कामकाज की भारी तथा कसी हुई वेश-भूषा में ज्यों का त्यों न सोइए सबसे अच्छा तो केवल कच्छा पहन कर सोना है। ऐसा सम्भव न हो तो कम से कम वस्त्र पहन कर सोना अच्छा है। इससे सबसे बड़ा लाभ यह है कि रात्रि में हमारी त्वचा जिन विषों को बाहर निकालती है उनका शोषण होने का भय नहीं रहता।

३—ओढ़ने का वस्त्र बहुत भारी तथा उष्ण नहीं होना चाहिए

४—असाधारण मानसिक तनाव तथा उत्तेजनायें सोने के पूर्व ही मस्तिष्क में से निकाल दी जायें तो नींद में बाधा नहीं पड़ेगी।

(शेषांश पृष्ठ १९७ पर देखें)

● स्वास्थ्य का चतुर्थ साधन—

निद्रा का विशद विवेचन

श्री वैद्यराज डा० रणवीर सिंह शास्त्री, एम ए., पी-एच डी
वेद-आयुर्वेद-व्याकरण-साहित्याचार्य, आगरा ।
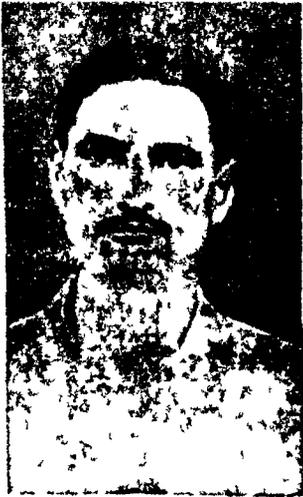
पर्वतराज हिमालय की उपत्यका मे बसे पोडीगढवाल मण्डलान्तर्गत ऊंचाकोट नामक प्राचीन ग्राम मे राजपूत कुल मे शास्त्री जी ने जन्म लिया, पिता श्री ठा० इन्द्र सिंह जी रावत, माता श्रीमती देवी जी के वात्सल्य स्नेह से लालित पालित पुत्र को गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) मे विधिवत् अध्ययन करने पर स्नातकोपाधि "विद्याभास्कर" से विभूषित किया गया। साथ ही "वाराणसेय संस्कृत विश्व विद्यालय" काशी से शास्त्री व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य तथा "हिन्दू यूनीवर्सिटी" से "उत्तमा" नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ से आयुर्वेदाचार्य एव भा. वि. बम्बई से 'वेदाचार्य" की उपाधि प्राप्त की हैं। अन्य विभिन्न सस्थाओ द्वारा शास्त्री जी को अनेक सम्मानित उपाधियां अर्पित की गई।

आपने विधिवत् अध्ययन करके आगरा यूनीवर्सिटी से एम० ए० तथा "वैदिक साहित्यिक में आयुर्वेद" विषय लेकर 'पीएच० डी०' की उपाधि भी प्राप्त की है। सन् १९३७ से अब तक आगरा नगर मे "इन्द्र औषधालय" नामक औषधालय मे स्वतन्त्र चिकित्सा व्यवसाय चला रहे हैं। आजकल तीन वर्ष से आप "जिला वैद्य सभा आगरा" के अध्यक्ष पद पर आसीन है। आपने अपना अमूल्य समय देकर 'निद्रा का विशद विवेचन' शीर्षक लेख भेजा है। लेख निद्रा के बारे मे आवश्यक जानकारी का बोध कराता है। आशा है भविष्य मे भी आपका सहयोग मिलता रहेगा। —विशेष सम्पादक

जगन्नियन्ता परमेश के सृष्टि नियमानुसार समस्त लोक लोकान्तरो के अनन्त प्राणी तथा भूमण्डल के असख्य जीवधारी अपनी अपनी योनि के अनुरूप विभिन्न आकृति वाले प्राणी अपने अपने जीव शरीर के अनुसार परिश्रम करते हुए आयासित हो जाते है। उनके पाञ्चभौतिक शरीर की शक्ति का अपचय हो जाता है। उनको व्ययित शक्ति के उपचय की आवश्यकता होती है। तभी पाञ्चभौतिक विश्व से अभिनव शक्ति सग्रहणार्थ जीवधारी पूर्ण विश्राम करते है। इसी को निद्रा कहते हैं।

निद्रा सर्व प्राणि साधारण होने पर भी मानव समाज की विशिष्टता, ज्ञानवत्ता एव विशेष उपयोगिता के लिए इस प्रस्तुत लेख मे मानवी निद्रा का ही विशद विवेचन किया जा रहा है—

शास्त्रो की दृष्टि में निद्रा

आयुर्वेद शास्त्रीय विवेचन मे ऋषियो ने (१) तामसी

(२) स्वाभाविकी एव (३) वैकारिकी तीन[1] प्रकार की निद्रा का निर्देश किया है। यद्यपि अन्य तन्त्रो मे सात[2] प्रकार की निद्रा का उल्लेख है पर उनका समावेश इन्ही तीन मे हो जाता है।

चेतना का स्थान "मस्तिष्क[3] हृदय" जब तमोगुण से अभिभूत हो जाता है तब माया स्वरूपिणी निद्रा देह धारियो मे आविष्ट हो जाती है। मज्जावह स्रोतो मे तमोगुण प्रधान श्लेष्मा की प्राप्ति से रात्रि व दिन मे आने वाली निद्रा तामसी होती है। रजोगुण प्रधान श्लेष्मा के अवरोध से अकारण व असमय निद्रा का आना, सतोगुण प्रधान श्लेष्मा की प्राप्ति से आधी रात में नीद आती है, यह स्वाभाविकी होती है। क्षीण श्लेष्मा वात-प्रधान, शरीर और मानसिक सन्ताप के कारण जीव-धारियो को निद्रा नही आती। यदि कदाचित् आती है तो यह निद्रा वैकारिकी होती है। सक्षेप से व्यावहारिक रूप मे—जब प्राणियो की ज्ञानेन्द्रियाँ कर्मेन्द्रियाँ और मन परिश्रान्त होकर विषयो से विनिवृत्त हो जाते है तभी मानव को निद्रा[4] अभिभूत करती है।

चाहे सतोगुणी तमोगुणी या रजोगुणी निद्रा हो, सभी प्रकार की निद्राओं मे तमोगुण[5] के विशिष्ट प्रभाव ही कारण है।

निद्रा की उपयोगिता

निद्रा के विधिवत् सेवन से देह की पुष्टि, रोगनिवृत्ति, देहमनोबलोपचय, सामर्थ्य ज्ञानदीप्ति, मस्तिष्क शांति, स्फूर्ति, प्रसन्नता तथा शारीरिक एव मानसिक परिश्रम करने मे उत्साह उमङ्ग उत्पन्न[6] हो जाती है। परिश्रम से शान्त व्यक्ति को रात्रि मे स्वाभाविक भी निद्रा आती है, इस निद्रा को महर्षि अग्निवेश ने "भूतधात्री"[7] कहा है वे समस्त प्राणियो का मातृवत् पालन करने के कारण (निद्रा को भूतधात्री कहते है। सही निद्रा लेने से मनुष्य शूकर[8] के समान पीन और पुष्ट हो जाता है।

निद्रा का समय और मात्रा

उलूक चर्मचटका आदि अनेक पक्षियो, सिह व्याघ्र-वृकशल्यक आदि पशुओ एव अनेक बिलेशयों रात्रिचरो जीवो को छोडकर अधिक जीवधारियो के लिए दिन मे जागरण और रात्रि मे विश्राम शयन आदि ही प्रकृति प्रदत्त है। ईश्वरीय सृष्टि मे अनन्तप्राणी अज्ञात हैं। परिचित जीवो का नियम मुख्यत इसी प्रकार दृष्टिगोचर होता है।

मानवी सृष्टि मे भी ऋषियों ने निद्रा का समय बाध दिया है। सबसे प्रबुद्ध प्राणी के लिए यह आवश्यक भी है। दिन मे जागरण एव रात्रि मे शयन। भूमण्डल के भिन्न भिन्न प्रदेशो मे दिन और रात्रि का समय भी भिन्न भिन्न है। सूर्य और पृथ्वी की गति से दिन रात का उद्भव होता है। जहा जो निवास करता है वही देश काल के नियमो मे बध जाता है। कुछ स्थान ऐसे भी है जहाँ ६-६ मास का दिन एव रात्रि होती है जैसे उत्तरी ध्रुव एव दक्षिणी ध्रुव के परिसर। इन विशिष्ट प्रदेशो मे निवास करने वाले वही की परिस्थिति व देश काल के अनुसार जागरण व निद्रा का समय निश्चित करते है। सभी शीतोष्ण एव समशीतोष्ण कटिबन्धो के नियम भी वहाँ की विषम परिस्थितियो के अनुकूल बनाने पड़ते है।

सर्व साधारण नियम—

शारीरिक एव बौद्धिक थकान (श्रान्ति) की निवृत्ति पर्यन्त ही नीद आती है उस समय चेतना हो जाती है आँखें खुल जाती है। प्रमाद आलस्य रोग आदि से अभि-

---

[1] निद्रां तु वैष्णवीं पाप्मानमुपदिशन्ति ... सा वैकारिकी भवति। —सुश्रुत शा अ ४-३३

[2] यद्यपि तन्त्रान्तरीयैः सप्तविधा निद्रा पठिता तथापि त्रिविधैव, तामसी स्वाभाविकी वैकारिकी चेति। —(सुश्रुत. शा अ ४-३३ टीकाया डल्हणाचार्यैः)

[3] हृदय चेतनास्थानमुक्त सुश्रुत देहिनाम्।
तमोऽभिभूते तस्मिस्तु निद्रा विशति देहिनाम्॥
—सुश्रुत. शा. ४-३४

[4] यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो विनिवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥
—चरक सू २१-३६

[5] निद्राहेतुस्तम. —सुश्रुत-शारी. ४-३५

[6] निद्रायत्त सुख दुख पुष्टि कार्श्य बलाबलम्।
वृषता क्लीवता ज्ञानमज्ञान जीवित न च॥
—चरक-सूत्र २१-३६

[7] रात्रि स्वभाव प्रभवा मता या ता भूतधात्रीं प्रवदन्ति निद्राम्। —चरक-सूत्र २१-५९

[8] स्वप्न प्रसङ्गाच्च नरो वराह इव पुष्यति। —चरक-सूत्र २१-३४

भूत व्यक्ति इस चेतना की चिन्ता न करके सोता ही रहता है।

ब्राह्म[1] मुहूर्त मे उठना स्वास्थ्य एव जीवन की रक्षा के लिए सर्वोत्तम साधन है, यह ब्राह्म मुहूर्त प्रात काल ४ बजे प्रारम्भ होता है। विज्ञान युग मे घड़ियो के बाहुल्य से इस समय का पता लगाना कोई कठिन नही, सर्वसुलभ यान्त्रिक घडी के आविष्कार से पूर्व आकाशीय नक्षत्रो से या कुक्कुट[2] की बाग से ब्राह्म मुहूर्त का ज्ञान होता था। शीतकाल मे दीर्घयामा रात्रियो के होने से रात्रि मे १० बजे, प्रात. ४॥ बजे तक स्वस्थ पुरुष के लिये शयनकाल है। गुरुकुलो की रात्रि चर्या मे भी यही काल निर्दिष्ट है। ग्रीष्म ऋतु मे रात्रि मे १० बजे से प्रात ४ बजे तक स्वाभाविक की निद्रा का काल है।

रात्रि मे जागरण[3] और दिन मे शयन ये दोनो ही सम्पूर्ण दोषो को प्रकुपित कर देते है जिससे अनेक रोग उत्पन्न होकर देह व जीवन का ह्रास कर देते हैं। नियमानुकूल निद्रा सेवन करने से नीरोग बलवान् कान्तिमान्, मध्यम शरीर, लक्ष्मी शोभा सम्पन्न बुद्धिमान्, अप्रमादी, पुरुषार्थी होता हुआ सौ वर्ष तक आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करता है।

अधिक सोने से हानि—

जो व्यक्ति मद्य सेवन, आलस्य प्रमादवश अधिक सोते हैं उनको आमसञ्चय, मन्दाग्नि, अजीर्ण, प्रमेह सुस्ती, कास-श्वास, अरुचि, कफ, रोग, बुद्धिमान्द्य, जीवनक्षय आदि नाना प्रकार की व्याधियाँ आक्रान्त कर लेती हैं।

दिन मे सोने से हानि—

दिवाशयन अस्वाभाविक है, विकारकारी है। सभी ऋतुओ मे दिन मे सोना हानिप्रद है शास्त्रकारो ने इसे अधर्म[4] कहा है क्योकि इससे कफ की वृद्धि, सञ्चय और प्रकोप होता है जिससे अग्निमान्द्य होकर सर्वदोष प्रकोप होता है। कास, श्वास, प्रतिश्याय, शिर शूल, गौरव अङ्गमर्द, अरुचि, ज्वर, अजीर्ण, विष्टम्भ आदि नाना रोग उत्पन्न हो जाते हैं, अतएव बिना किसी विशेष कारण के दिन मे निद्रा नही लेनी चाहिए। मेदस्वी, स्निग्धसेवी, श्लेष्मरोगी और दूषीविष[5] से पीड़ित रोगी को दिन मे नहीं सोना चाहिये।

दिवास्वाप के योग्य व्यक्ति—

ग्रीष्मकाल (निदाघ) मे उष्णता और उत्ताप के कारण पित्त और वायु की वृद्धि होती है। इसकी शान्ति के लिये ग्रीष्मऋतु[6] में दिन में एक या दो घण्टे सोने से वात पित्त शान्ति होती है। बालक, वृद्ध, व्यवायकर्षित, उर क्षत, क्षीण, यान वाहन से परिश्रान्त, यात्राक्लान्त, भारवहन से थके हुये तथा रात्रि मे जागरण करने वाले वात पित्त क्लेशित एव भूखे, प्यासे, क्षीण मेद स्वेद कफ रक्त रस वाले रोगियो व शूल हिक्का अतिसारी अजीर्णी व्यक्तियो को दिन में मात्रा से सोना[7] चाहिये। यह मात्रा भी रात्रि के जागरण से आधी[8] होनी चाहिये। अजीर्णी को भोजन से पूर्व सोना चाहिये। इस प्रकार बढे हुये दोष शान्त होकर स्वास्थ्य आप्यायित होता है।

रात्रि मे श्रम करने वाले रेलवे, टेलीफून, टेलीग्राम, अनिवार्य जलपोतो और वायुयानो का सञ्चालन करने वाले, रात्रि पहरेदारो, तथा निशा श्रमिको को दिवास्वाप निषिद्ध नही है।

निद्रा को वश मे रखने वाले व्यक्ति—

जिन व्यक्तियो ने निद्रा को स्वय अभ्यास करके

---

१ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठे स्वस्थो रक्षार्थमायुष।
—अष्टाङ्गहृदय-सूत्र —२-१

२ अकोलाऽज्भस्वदीर्घप्लुत —इतसूत्रस्थ पातञ्जल महाभाष्ये स्पष्टम्॥ १-२-२७ अष्टाध्यायी

३ तस्मान्न जागृयाद् रात्रौ दिवा स्वप्न च वर्जयेत्।···· धीमान् नरोजीवेत् समा.शतम् सुश्रुत शा० ४-३६, ४०

४ विकृतिर्हि दिवा स्वापोनाम, तत्र स्वपतामधर्मः सर्वदोष प्रकोपश्च ··· ···भवन्ति। —सुश्रुत शा. ४

५ मेदस्विन· स्नेहनित्या श्लेष्मला श्लेष्मरोगिण.।
दूषी विषातीश्च दिवा न शयीरन् कदाचन॥
—चरक सू० अ० २१—४५
बहु मेद कफा स्वप्यु. स्नेह नित्याश्च नाहनि॥
—वाग्भट सू० ७—६०

६ सर्वर्तुषु दिवास्वाप प्रतिषिद्धोऽन्यत्र ग्रीष्मात् ··
दिवास्वपनम्। सुश्रुत शारी. ४

७ रात्रावपि जागरितवता जागरित कालादधमिष्यते
दिवास्वपनम्। —सुश्रुत. शा. ४—३८

८ गीताध्ययन दिवास्वाप सेवेरन् सार्वकालिकम्।
—चरक सू. २१—३६ से ४१

अथवा विवश होकर अपने वश में कर लिया है उनके लिये दिवाशयन व रात्रि जागरण इच्छानुकूल है उनको दिन में सोना या रात्रि जागरण कोई हानि[1] नही करता। यथार्थ मे यह अभ्यास भी अस्वाभाविक है, इससे प्रकृति विरुद्ध आचरण करने पर स्वान्त सुखाय प्रवृत्ति नही होती। ऋषियो ने विवश लोगो के लिये आपत्कालीन नियम बनाये है।

रात्रि मे जागरण के योग्य रोगी—

जिस व्यक्ति को सर्प आदि विषैले जन्तु ने काटा हो या स्थावर विषार्त हो, कण्ठ रोगी, कफ व मेदोरोगी को रात्रि[2] मे भी नही सोना चाहिये, इससे अनिष्टकी आशङ्का बनी रहती है।

शयन न करने से हानियां[3]—

शारीरिक व बौद्धिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियो की ज्ञानेन्द्रियाँ एव कर्मेन्द्रियाँ और मन बुद्धि सभी थक जाते हैं, देह और मन क्लान्त हो जाते हैं। श्रम क्लम की निवृत्ति एव शक्तिक्षय की पूर्ति के लिये स्वाभाविकी निद्रा आती है परन्तु अपने दुराग्रह या हठ से या प्रतिस्पर्धा शोक चिन्ता भय आदि से यदि निद्रा नही आती, तो उस विषम स्थिति में अनेक रोगो की उत्पत्ति हो जाती है। आलस्य, तन्द्रा, उन्निद्रता, उन्माद, भ्रम, विक्षेप, मति विभ्रम, विस्मृति, नेत्ररोग, शिरोर्ति, अजीर्ण, मन्दाग्नि, वमन, हिक्का, श्वास, अतिसार, ज्वर, रुक्षता, उष्णता, रक्तपित्त, तृषा, उदरशूल, हृद्रोग, कृशता, बलमास क्षय आदि शारीरिक एव बौद्धिक रोग हो जाते है। कभी-कभी मृत्यु[4] भी हो जाती है। सर्व साधारण व्यक्तियो को चाहिए कि घोर उपद्रवो से देह व जीवन की रक्षा के लिए निद्रा को अवश्य स्वीकार करें।

---

[1] निद्रा सात्म्यीकृता यैस्तु रात्रौ वाय दिवा दिवा।
न तेषा स्वपता दोषो जाग्रता वापि जायते॥
सुश्रुत–शा ४–४१

[2] कफ मेदो विषार्ताना रात्री जागरण हितम्।
—सुश्रुत शा ४–४८
विषार्त कण्ठरोगी च नैव जातु निशास्वपि॥
—वाग्भट सू ७–६०

[3] जृम्भाङ्ग मर्दस्तन्द्रा च शिरोरोगाक्षि गौरवम्।
निद्राविधारणात्॥ चरक सू ७-२२, २३

[4] सुखासुखा पराकुर्यात्कालरात्रिरिवापरा।
—चरक सू २१–७१

उपद्रवों का उपचार

(१) स्वाभाविकी (भूतधात्री) निद्रा का सेवन काल और मात्रा के अनुसार करें।

(२) प्रमादवश दिवास्वाप नही करें। ग्रीष्मर्तु तथा निर्दिष्ट आकस्मिक कारणो मे दिवाशयन हितावह है लेकिन वह भी उचित एव मात्रा से करें।

(३) निद्रा न लेने से होने वाले नाना रोगों की चिकित्सा सर्वप्रथम शयन (गाढ निद्रा) लेकर प्रारम्भ करें, औषध तैलो का अभ्यङ्ग[5], शिर मे तैल मर्दन, कान मे तैल डालना, उष्ण जल मे स्नान, मधुर स्निग्ध दधि और रुचिकर भोजन कराना हितावह है। पैरो मे तेल मलने से गाढ निद्रा आती है। ऋतु के अनुकूल बादाम रोगन, गुल रोगन, गुलाब, चमेली, चन्दन, कदम्ब, खश आदि का तेल मलना चाहिये। निद्रानाश मे मनोज्ञ मृदु शयन, क्षीरान्न भोजन वतृप्तिकारक पानको का प्रयोग करें।

(४) अधिक निद्रालु व्यक्तियो को वमन, विरेचन, लघन, रक्तमोक्षण, नस्य एव मन को व्याकुल करने वाले वार्तालाप और श्लेष्मशामक उपाय करने चाहिये।

(५) विद्यार्थियो और ब्रह्मचारियो को कम से कम ५ घण्टे और अधिक से अधिक ६ घण्टे सोना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्त मे कभी न सोवें। दिन मे शयन भी न करें।

(६) आलस्य व प्रमाद से आने वाली निद्रा के प्रतिकार के लिये छोटी हर्रे, सौंफ, मुनक्का, गुलकन्द, ईशबगोल भुसी आदि किसी मृदुरेचक से पेट साफ करे और प्रतिदिन प्रात शीतलजल मे स्नान करे, प्राणायाम और भ्रमण भी करे।

(७) मनोऽनुकूल शयनासन, भोजन, पान, आस्तरण, गन्ध माल्यानुलेपन, अभ्यङ्ग आदि निद्रानाश को दूरकर गाढनिद्रा[6] लाता है।

—श्री वैद्य रणवीर सिंह शास्त्री M A, Ph D
वेदायुर्वेद व्याकरण साहित्याचार्य, विद्याभास्कर
अध्यक्ष जिला वैद्य सभा, आगरा।

---

[5] निद्रानाशेऽभ्यङ्ग योगो मूर्ध्नि तैल निषेवनम्।
भोजन...... शयनानि मनोज्ञानि मृदुनिः॥
– सुश्रुत शा ४–४३ से ४६

[6] अभ्यङ्गोत्सादन स्नान मनसोऽनुगुणागन्धा शब्दा।
आनयन्त्यचिरान्निद्रा प्रणष्टा या निमित्तत॥
—चरक सूत्र २१–५२ से ५४

डा० प्रकाशचन्द्र गगराडे का जन्म २५ नवम्बर १९५१ मे श्री सी० आर० गगराडे के यहाँ हुआ। भोपाल विश्वविद्यालय से B Sc उत्तीर्ण कर आपने होम्योपैथिक विज्ञान का विधिवत् अध्ययन किया है तथा D H. B की उपाधि प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त डी० फार्म०, एम० आई० एम० एस०, वैद्यरत्न इत्यादि उपाधियो से भी आप विभूषित है। आप एक सुयोग्य लेखक, विचारक तथा चिकित्सक है। पत्र-पत्रिकाओ मे अपने अनुभवयुक्त लेख लिखना आपकी विशेष रुचि है।

२३ वर्षीय प्रतिभावान श्री गगराडे का 'निद्रा और स्वास्थ्य' लेख आपके ज्ञान एव विषय विवेचन को क्षमता का बोध कराता है। लेख पठनीय मननीय है— **विशेष सम्पादक।**

मानसिक और स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए निन्द्रा का महत्वपूर्ण स्थान है। पूर्ण निद्रा न लेना स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध होता है। जिस प्रकार दिन भर हम कार्य करते हैं तो रात्रि को निश्चित समय पर निद्रा आती है। निद्रा लेने से दिन भर किये कार्यो की थकावट दूर हो जाती है और दूसरे दिन के कार्यों को सम्पादित करने की स्फूर्ति मिलती है। विश्राम और निद्रा लेना दोनो मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये दोनो शरीर तथा मस्तिष्क के लिये महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है।

दिन मे कार्य करना तथा रात्रि को निद्रा लेना एक प्राकृतिक नियम है। जो जितनी जल्दी सोता है और जितनी जल्दी प्रात जागता है वह हमेशा स्वस्थ व दीर्घायु होता है। इसके विपरीत आचरण करते हुए कई व्यक्तियो को आपने देखा होगा अर्थात् वे दिन भर तो सोते हैं और जब दुनिया सोती है, तब वे रात भर जागकर कार्य करते है। ऐसे व्यक्तियो का मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य ठीक नही रहता तथा वे शीघ्र ही अल्पायु मे मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

शिकागो यूनिवर्सिटी अमरीका के प्रोफैसर डा० नेथेनियल क्लीटमैन पिछले कई वर्षों से निद्रा पर अनुसन्धान कर रहे है। उन्होंने नौ दिन तथा नौ रात तक लगातार जाग कर ज्ञात किया कि मानव शरीर को न केवल आराम की जरूरत होती है बल्कि दिमाग के लिए गहरी नींद लेना अत्यन्त आवश्यक है। उन्होने यह भी निष्कर्ष निकाला कि न सोने से शरीर को किसी प्रकार की हानि नही होती। उनके नौ दिन व नौ रात लगातार जागने से

सभी कुछ शारीरिक रूप से नार्मल था परन्तु उनके दिमाग के स्नायु सस्थान पर बहुत बुरा-असर पडा। निरन्तर जाग्रत अवस्था मे रहने के कारण उन्हें एक की दो चीजें दिखाई देने लग गई। नर्वस सिस्टम के थक जाने के कारण उनके हाथ पाँव लडखडाने लग गये। उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन पैदा हो गया और अन्त में दिमाग और स्नायु काम करने के अयोग्य हो गये। अत यह कहना गलत न होगा कि मानसिक स्वास्थ्य के लिए निद्रा आवश्यक है।

अब प्रश्न यह उठता है कि किसके लिए कितनी निद्रा लेना स्वास्थ्यकर है? आवश्यकतानुसार निद्रा ६ से ८ घण्टे तक की ली जा सकती है। आयु के अनुसार इसमें कुछ परिवर्तन किया जा सकता है।

दिन भर के शारीरिक और मानसिक कार्यों के कारण आयी थकान को दूर करने के लिये ६-७ घटे की गहरी निद्रा का आना आवश्यक होता है। बाधारहित गाढी निद्रा मन, मस्तिष्क को और शरीर मे ताजगी, स्फूर्ति और नयी प्रेरणा उत्पन्न करती है। इसी प्रकार की निद्रा थकावट दूर करने के अतिरिक्त प्रसन्नता, स्वास्थ्य और बल प्राप्ति के लिए भी आवश्यक है। परन्तु हम यह देखते हैं कि कई लोगो को गहरी निद्रा नही आती। इसका कारण होता है, उनकी मानसिक विकृतियाँ। शोक, भय चिन्ता, क्रोध अथवा गरिष्ठ भोजन कर तुरन्त सो जाने से भी गहरी निद्रा नही आती। इन कारणो को दूर करने के बाद ही स्वस्थ निद्रा की उम्मीद की जा सकती है।

कई लोग दोपहर के समय अधिक समय तक सोते हैं जिनके कारण उन्हे रात्रि को नींद नही आती। दिन में सोना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, विशेषकर सर्दी और बरसात के मौसम में। गर्मी के मौसम में खाना खाने के पश्चात् कुछ समय के लिए सोना लाभप्रद है। दिन में सोने से तथा प्रात काल देर तक सोने से आयु में कमी होती है, ऐसा आयुर्वेद ग्रन्थो में कहा गया है। प्रायः रात्रि को ९ से १० बजे तक सभी को सो जाना चाहिए। बिस्तर पर लेटे-लेटे किसी प्रकार की चिन्ता न करें।

रोगी, बच्चे, वृद्ध और प्रसूता को स्वास्थ्य रक्षा के लिए अधिक निद्रा का सेवन अत्यन्त आवश्यक होता है। शारीरिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियों के लिये अधिक निद्रा लेना आवश्यक है। इसके विपरीत मानसिक कार्य करने वालो को कम नींद की आवश्यकता होती है। शारीरिक परिश्रम वाले व्यक्तियो को कम से कम आठ घण्टे और अधिक से अधिक दस घण्टे नींद लेनी चाहिए जबकि मानसिक या साधारण कार्य करने वालो को कम से कम छ घण्टे और अधिक से अधिक आठ घण्टे विश्राम करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह शारीरिक कार्य करे या मानसिक ६ घण्टे की नींद लेना आवश्यक होता है।

परिस्थितियोवश यदि अधिक जागना पड जाये, तो दूसरे दिन जल्दी सोकर अधिक घण्टे सामान्य से सोना चाहिए।

आजकल के सभ्य जगत मे किसी को नींद कम आती है अथवा आती ही नही। इससे निपटने के लिए जो मनुष्य प्राकृतिक नियमो को ताक पर रख पाश्चात्य देशो की तरह नींद की गोलियाँ खाकर निद्रा लेते हैं, उन्हे नियमित रूप से गोलिया लेनी पडती है। एक समय ऐसा आता है कि बिना गोलियां खाये नींद ही नही आती, यह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

समय पर सोने से क्या लाभ होता है, उस पर आयुर्वेद विज्ञान के विचार इस प्रकार है—

निद्रा तु सेविता काले धातु साम्यमतन्द्रिताम्।
पुष्टि वर्ण बलोत्साहं वह्निदीप्तिकरोति हि॥
भ० प्र०॥

अर्थात्–ठीक समय पर और नियमानुसार सोने से मानव के शरीर की सब धातुयें समान रहती है तथा शरीर पुष्ट होकर उसमे किसी प्रकार का आलस्य दिन भर नही रहता। शरीर मे निखार आता है, उत्साह वृद्धि होती है, भूख खुलकर लगती है।

यदि आपको बिस्तर पर लेटे लेटे घण्टो करवटे बदलनी पडती हैं किन्तु बहुत देर बाद नींद आती है, तो इससे जाहिर होता है कि आपका स्वास्थ्य ठीक नही है। स्वस्थ व्यक्तियो को बिस्तर पर लेटते ही निद्रा आ जाती है कुछ मिनटो का समय नींद आने के लिए काफी होता है।

स्वास्थ्यप्रद निद्रा लाने के लिए निम्नलिखित उपायो की ओर ध्यान देना चाहिए—

१ बिस्तर पर लेटने से पूर्व मन मे किसी प्रकार की चिंता को स्थान न दें। लेटने के पश्चात् अपने इष्ट-देव का स्मरण करत हुए दिमाग की सारी परेशानियो को भूलते हुए आँखे वद कर निश्चिन्त होकर सोये।

२. रात्रि का समय निंद्रा के लिए है, अत रात्रि को निद्रा अवश्य ले। कम से कम ६ घण्टे बूढो को, ८ घण्टे युवको को, और १० घण्टे बच्चो को सोना चाहिए।

३ सोते समय की पोशाक बाधा रहित होनी चाहिए। तग लिबास सदा त्यागें क्योकि इससे शारीरिक अगो की मुक्त क्रिया मे असर पड़ता है। शरीर को पूर्णतया आराम नही मिलता।

४. सोने का कमरा स्वच्छ, बिस्तरा भी साफ़ हो। साथ ही ताजी हवा आने के लिए खिडकिया खुली हुई हो।

५ कभी भी मुँह ढक कर नही सोना चाहिए। इससे स्वास्थ पर खराब असर पडता है क्योकि श्वसन के लिए स्वस्थ वायु नही मिलती।

६. सोते समय सब तरफ शोर गुल वद कर देना चाहिए, रोशनी भी बद करनी चाहिए।

७ सोने से पूर्व हाथ-पैर धोकर सोने से अच्छी नीद आती है।

८. अनिद्रा के कारण स्वास्थ्य खराब होकर स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है तथा मानसिक बीमारियो के होने का डर रहता है।

९. शाम को भोजन करने के तुरन्त वाद कभी नही सोना चाहिए। इससे अपच आदि की शिकायत हो जाती है तथा नीद भी ठीक से नही आती।

१०. प्रात काल आख खुलते ही बिस्तर छोड देना चाहिए, विशेषकर नौजवानो को क्योकि स्वप्नदोष प्राय अर्ध निद्रावस्था मे प्रात काल ही होता है।

११ सारी रात एक ही करवट या पीठ के बल अथवा पेट बल नही सोना चाहिए। सोते समय बाये करवट सोना अधिक उपयुक्त है। रात्रि मे करवटे भी बदली जानी चाहिए जो अभ्यास से आ जाती हैं।

१२ सोने का समय निश्चित कर लेना ही उचित है, उस समय अपने आप नीद आने लगती है। चाहे जब सोने से नीद ठीक से नही आती।

१३ रात्रि मे जल्द से जल्द सोने की कोशिश करनी चाहिए और प्रात ब्रह्म मूहर्त मे उठना स्वास्थ्यप्रद है।

१४ जिन व्यक्तियो को ठीक से नीद नही आती वे अपना आत्म निरीक्षण करे और देखे कि वे उपरोक्त नियमो का पालन करते है या नही ? या उसके मूल मे कब्ज, अपच मानसिक बीमारी तो नही है ?

श्री डा० प्रकाश चन्द्र गगराडे
१०/३३ नार्थ टी टी नगर, भोपाल-३ (म०प्र०)

(पृष्ठ १९० का शेषाश)

५—शयन से पूर्व अपने इष्टदेव का चिन्तन कीजिए। मन को पवित्र तथा रचनात्मक भावो से भरिए। कलुषित कल्पनायें निद्रा में बाधक है।

६—तलुओ मे तेल की मालिश करा लेवें।

७—अनिद्रा के रोगी को रात्रि में भारी भोजन न लेकर केवल थोडा सा गर्म दूध ले।

८—बिस्तर मे चित्त लेटकर (शवासन की मुद्रा मे) शिथिलीकरण का अभ्यास करे।

९—जीवन को नियमित कीजिए। समय पर सोइए, समय पर जागिए। समय हित मित ऋत आहार लीजिए। समय पर कर्तव्य भावना से प्रसन्नतापूर्वक कार्य कीजिए। यदि आप बुद्धिजीवी है तो कार्य काल (ड्यूटी) के पश्चात् कोई शारीरिक व्यायाम कीजिए। तेजी से घूमना, दौडना, तैरना, फुटवाल, वालीवाल, कवड्डी आदि अच्छे व्यायाम है।

१०—मन को सदा प्रसन्न रखिए। ससार एव अपने सम्बन्ध को ठीक से न समझ पाने के कारण ही ईर्ष्या, द्वेष, मोह, मद, मत्सर घृणाभय, लोभ, क्रोध आदि विघातक मनोविकार जन्म लेते हैं। अज्ञान की यह अवस्था ही हमें चिन्ताओ मे फसा कर अनिद्रा को जन्म देती है।

स्वास्थ्य का पञ्चम साधन
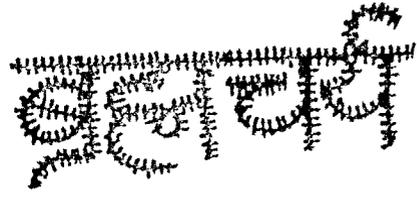
मान्य वैद्य जी योग्य अनुभवी चिकित्सक है। धन्वन्तरि के प्राय प्रत्येक विशेषाक मे आपके अनुभवपूर्ण सारगर्भित लेख प्रकाशित होते रहते है। नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ से आयुर्वेद विशारद तथा वगीय सस्कृत परिषद कलकत्ता से साहित्य मध्यमा की उपाधियो से आप विभूषित है। सग्रहणी एव मधुमेह जैसे भयकर एव कष्टसाध्य रोगो के आप सफल चिकित्सक है।

आप द्वारा प्रेषित 'ब्रह्मचर्य' शीर्षक लेख मे आपका अनुभव झलकता है। आशा है पाठकगण लाभान्वित होगे।

—विशेष सम्पादक
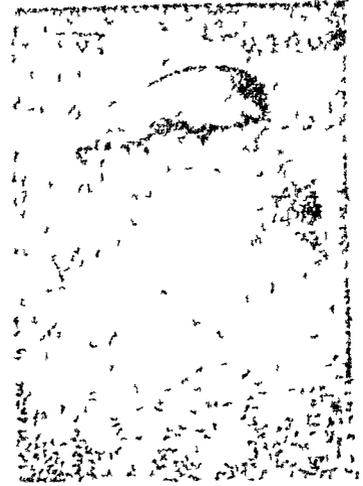
ब्रह्मचर्य हिन्दू संस्कृति के वाङमय मे अति प्राचीन काल से ही बहुचर्चित विषय रहा है। वेद स्मृति पुराण चिकित्सा शास्त्र आदि सभी आर्य ग्रन्थो मे ब्रह्मचर्य के विषय मे लिखा हुआ है। देवताओ के अमरत्व का रहस्य समयोत्पन्न अमृत नही अपितु ब्रह्मचर्यरूपी अमृत का पान अर्थात् पालन है। ब्रह्मचर्य एक तपस्या है अमरत्व इस तपस्या का वरदान है। जैसाकि कहा गया है 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपानत' अर्थात् ब्रह्मचर्य रूपी तपस्या के द्वारा ही देवताओ ने मृत्यु पर विजय प्राप्त की है।

ब्रह्मचर्य—ब्रह्म का अर्थ ईश्वर और चर्य अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति के लिये किया गया आचरण, मोक्ष प्राप्ति के लिये किया गया प्रयास ही ब्रह्मचर्य है। मानव देह प्राप्ति का चरम लक्ष्य ब्रह्म एकाकार ही शास्त्रकारो ने बतलाया है। कहा है—

समुद्र तरणे यद्वत् उपायो नौ प्रकीर्तित ।
ससार तरणे तद्वत् ब्रह्मचर्य प्रकीर्तित. ॥

जिस प्रकार समुद्र को पार करने के लिये नौका की आवश्यकता होती है उसी प्रकार ससार रूपी समुद्र को पार करने के लिये ब्रह्मचर्य नौका रूप है।

कुछ विद्वान् वासनाओ से मुक्ति को ही मुक्ति कहते है। मेरे विचार से वासनाओ से मुक्ति प्रथम आवश्यकता हो सकती है। वासनारहित मन मे ही साधना करके मानव ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है।

ब्रह्म का अर्थ लक्ष्य भी लिया जा सकता है। ब्रह्म अर्थात् लक्ष्य की प्राप्ति के लिये किया गया प्रयास। ब्रह्मचर्य का प्रचलित अर्थ वीर्य रक्षा माना जाता है। ऐसा क्यो ? विचार करे तो यह अर्थ भी युक्तिसगत प्रतीत होता है। ब्रह्म की प्राप्ति के लिए स्वस्थ तन और मन की आवश्यकता है। इस प्रकार का व्यक्ति दृढ निश्चयी स्थितप्रज्ञ होता है और ऐसे व्यक्ति ही लक्ष्य को प्राप्त करते है। स्पष्ट है लक्ष्य प्राप्ति मे किंवा ब्रह्मचर्य के लिए नीरोग देह की आवश्यकता है। जैसा कि कहा है—

'धर्मार्थ काम मोक्षाणाम् आरोग्यमूल मुत्तमम्'

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का मूल आरोग्य

ही है। यह आरोग्य शब्द व्यापक अर्थ रखता है। केवल शरीर ही नहीं मन भी आरोग्यता का द्योतक है।

आरोग्य किस प्रकार प्राप्त हो स्वास्थ्य विज्ञान के आचार्यो ने इसलिए लिखा है।

त्रयस्तंभाः स्वास्थ्य आहार निन्द्रा ब्रह्मचर्यश्चेति।

आहार निद्रा और ब्रह्मचर्य ये आरोग्य रूपी भवन के तीन स्तम्भ है। आचार्य सुश्रुत सूत्र स्थान मे लिखते हैं—

आहार शयन ब्रह्मचर्य. युक्त्या प्रयोजितै।
शरीर धायते नित्य आगारमिव धारणे॥

जिस प्रकार आधार (स्तम्भादि) पर भवन टिका रहता है उसी प्रकार आहार, शयन और ब्रह्मचर्य को युक्ति-पूर्वक आचरण करने से शरीर टिका रहा है अर्थात् स्वस्थ रहता है। यहाँ भी ब्रह्मचर्य का अर्थ वीर्य रक्षा ही अभिप्रेत है। आगे सूत्र स्थान मे लिखा है—

आहारस्य परधाम शुक्रं तद्रक्ष्य प्रयतात्मन।
क्षयो यस्य बहुन रोगान्; मरण वा नियच्छति॥
देहस्याव य वस्तेन व्याप्तो भवति देहीनाम्।
तद्भावाच्च शीर्यते शरीराणि शरीरीणाम्॥

वीर्य अहार का अतिम रूप है। इसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा की जानी चाहिए। वीर्य के नाश से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, मृत्यु भी सम्भव है क्योकि वीर्य शरीर के अवयव मे व्याप्त है उसके अभाव से शरीर का क्रमश नाश हो जाता है। स्पष्ट है कि व्यक्ति मे आरोग्य ओज स्फूर्ति बुद्धि दीर्घजीवन एव दृढना कर्मठता आदि जितने भी सदगुण हैं उनका एकमात्र कारण वीर्य रक्षा या ब्रह्मचर्य ही है। मूर्खतापूर्वक वीर्य का भण्डार खाली करने वालो का शरीर क्रमश खोखला हो जाता है। आचार्य चरक लिखते हैं—

दौर्बल्यं मुख शोषश्च पाण्डत्वं सदन श्रम।
क्लैव्य शुक्राविसर्गश्च क्षीण शुक्रस्य लक्षणम्॥
शुक्रक्षये मेढ् वृषण वेदना अशक्ति मैथुने।
चिरात् प्रसेक. चाल्प रक्त शुक्र दर्शनम्॥

शरीर का दुबलापन, मुख सूखना, अङ्गो मे शिथिलता, बिना परिश्रम थकावट, नपुन्सकता, मैथुन मे असमर्थता, शुक्र का अभाव, लिंग तथा अण्डकोष मे दर्द, मैथुन करने पर विलम्ब से अल्प व रक्त मिश्रित वीर्य निकलना आदि लक्षण वीर्यहीन किंवा अल्पवीर्य पुरुषो मे पाये जाते है।

इसके विपरीत जो वीर्य की रक्षा करते हे वाग्भट्ट उनके विषय मे लिखते है—

इत्याचार समासेन ये प्राप्नोति समाचरन्।
आयु आरोग्य ऐश्वर्यः यश लोकाश्च शाश्वतान्॥

जो मनुष्य युक्तिपूर्वक वीर्य की रक्षा करता है उसे आयु, आरोग्य, एश्वर्य, यश तथा शाश्वत् लोक की प्राप्ति होती है।

उक्त उद्धरणो तथा चिकित्सा शास्त्रो व अन्य ग्रंथो मे लिखे आर्य वाक्यो से हम यह निष्कर्ष निकालें कि ब्रह्मचर्य का प्रचलित अर्थ वीर्य रक्षा भी उचित है तो कोई अनर्थ नही होगा।

जिस ब्रह्मचर्य किंवा वीर्य रक्षा का इतना महत्व बतलाया गया है दुर्भाग्य की बात है कि आधुनिक शिक्षित समाज उसकी उपेक्षा करता है। विज्ञान के आलोक मे (सैक्स) यौन विज्ञान के नये आयामो की स्थापना की गई है और यह सिद्ध किया गया है कि वीर्य रक्षा सम्बधी पुरानी मान्यतायें मात्र भ्रम है। वीर्य के शरीर मे रोकने से अनेक मानसिक किंवा यौन सम्बन्धी व्याधिया उत्पन्न होती हैं। विज्ञान ने सिद्ध किया है मात्र इतना ही आज के शिक्षितो के लिए विषय की श्रेष्ठता, असदिग्धता के लिए पर्याप्त है। हजारो वर्षो के हमारे आचार्यो तथा पूर्वजो के अनुभव का कोई महत्व नही, ऐसा प्रत्येक क्षेत्र मे देखा जाता है। यह लम्बे समय से चली आ रही दासता के कारण उत्पन्न हुई हीन भावना ही है जिसके कारण अपनी प्रत्येक परम्परागत वस्तु हीन अनावश्यक प्रतीत होती है और दूसरो के द्वारा कही गई वार्ता पर सहज विश्वास कर लिया जाता है। यद्यपि ऐसे लोग स्वय परीक्षण नही करते हैं। ये लोग यहाँ तक कहते देखे गये हैं कि वीर्यनाश करने से कोई हानि नही होती। हानि अनाडी वैद्यो और हकीमो के द्वारा भयानक रूप से किए गये वीर्य नाश सम्बन्धी हानियो के प्रचार से होती है। कितना हास्यास्पद कथन है इन लोगो का, मानो समस्त भारतीय जनता इतनी शिक्षित है कि वह इस प्रकार के प्रचार की ओर लक्ष्य देती ही ह। सत्य तो यह है कि भारत के अधिकतम लोग परम्परागत यौन विज्ञान से भी

अनभिज्ञ हैं और यही कारण है कि वे अपना सर्वनाश कर के चिकित्सको की शरण मे जाते हैं। ये लोग इतने जल्दबाज होते हैं कि अपने रोग की विधिवत् चिकित्सा नही करवाने और चमत्कार दिखाने वाले चिकित्सको के चक्कर मे पड जाते हैं। उनका जीवन इसी प्रकार बीत जाता है।

हमे लोग दकियानूसी पिछडे विचारो वाला कुछ भी कहे किन्तु यह निर्विवाद एव अनुभवजन्य सत्य है कि सहशिक्षा, अश्लील उपन्यासो का अध्ययन, सिनेमा क्लब आदि मे रात्रि को बडी रात तक जागना और प्रात दिन चढे तक सोते रहना, सायकाल की सवारी, अनियमित तथा असयमित जैसे—गरिष्ठ तेज मिर्च मसाले खटाई युक्त वस्तुओ का भोजन, सैर व्यायाम ईश्वर भजन प्राणायाम आदि योगिक क्रियाओ की उपेक्षा आदि ऐसे आचरण हैं जो मन को दूषित करते तथा इन्द्रियो को उत्तेजित करते है। परिणामस्वरूप व्यक्ति स्वप्नदोष का शिकार हो जाता है और क्रमश वीर्य सम्बन्धी अनेक व्याधियो से ग्रस्त होकर अपने शरीर का नाशकर बैठता है। प्रश्न उठता है कि वीर्य रक्षा इतना महत्वपूर्ण विषय है तो इसके लिए क्या प्रयास किए जाने चाहिए।

हमारे आचार्य इस विषय मे पूर्ण जागरूक थे उन्होने एक ही श्लोक मे समस्याओ का निराकरण दिया है। श्लोक निम्न है —

स्मरण कीर्तन केलि प्रेक्षण गुह्य भाषण।
सकल्पो अध्यवसायश्च क्रिया निर्वृत्तिरेवच ॥

मार्मिक दृष्टि से देखें तो सामान्य से इस श्लोक में आचार्यो ने स्मरण आदि ७ क्रियाओ को भी मैथुन के समकक्ष मानकर तनिक भी अवसर वीर्य नाश के लिए नही छोडा है। स्मरण कीर्तन आदि कार्यकलापो द्वारा वीर्य उत्तेजित होकर अपना स्थान छोड देता है। स्थानच्युत वीर्य शरीर मे नही टिकता किसी न किसी प्रकार निकल ही जाता है। मन, मस्तिष्क तथा यौन इन्द्रियो का परस्पर गहरा गहरा सम्बन्ध है। एक के उत्तेजित होने से अन्य दो भी उत्तेजित हो जाती है। उक्त श्लोक में बताये गए आचरणो से विमुख रहकर व्यक्ति अपने को सामान्य स्थिति मे रख सकता है। आओ हम इसके अर्थ पर विचार करें-

स्मरणम्—किसी स्त्री के हाव भाव सौंदर्य आदि को याद करना। स्त्री पुरुषो किंवा के रति कर्म का ध्यान करना।

कीर्तन – रति क्रिया सम्बन्धी चर्चा करना किंवा गन्दे गीत गजल कहानिया आदि सुनना या सुनाना।

केलि – स्त्री पुरुषो का आपस मे एक दूसरे के अङ्गो को स्पर्श करना जिससे कामुकता मे वृद्धि हो।

प्रेक्षण—आपस मे कामुकता की भावना से देखना। नगे चित्र, ब्लू फिल्म देखना।

गुह्यभाषण -स्त्री पुरुषो का एकात मे काम सम्बन्धी वार्तालाप।

सकल्प—अमुक स्त्री या पुरुष से यौन सम्बन्ध करूगा ही ऐसा निश्चय करना।

अध्यवसाय—सकल्प की पूर्ति के लिए प्रयत्न करना।

क्रिया निवृत्ति—रति क्रिया करना।

स्पष्ट है कि उक्त श्लोक में कहे गए कारण ब्रह्मचर्य मे बाधक हैं। निष्ट पेशग न किया जावे तो वीर्यनाश का प्रत्येक कारण उक्त श्लोक के किसी न किसी शब्द के अन्तर्गत आ जाता है। ब्रह्मचर्य पालन के इच्छुक व्यक्तियो को इनसे बचना चाहिए। एक बार पुन याद दिला दू कि किसी भी कारण से उत्तेजित वीर्य शरीर में रुकेगा नही। रोकने के लिये किये गये प्रयत्न शिरोवेदना आदि विकारो को जन्म देगे। अत वीर्य रक्षा करनी है तो उत्तेजना से बचना होगा।

आजकल प्राय यह चर्चा होती रहती है कि यौन सम्बन्धी रोगो से बचने के लिए किशोर-किशोरियो को यौन शिक्षा दी जानी चाहिये। निश्चय ही यह चर्चा अपना महत्व रखती है। किन्तु इस सुझाव पर अमल करने के पूर्व हमे कुछ मुद्दो पर विचार करना होगा। शिक्षा देने योग्य वय क्या हो? शिक्षा के विषय का आधार क्या हो? किन पुस्तको के आधार पर शिक्षा दी जावे? शिक्षा के उपयुक्त वातावरण तैयार करना होगा। इस बात का ध्यान रखना होगा कि यौन शिक्षा का कही विपरीत परिणाम न निकले। यदि सावधानीपूर्वक यौन शिक्षा का प्रचार हो तो किशोर वर्ग का हित ही होगा।

—श्री वैद्य उमाशंकर दाधीच
१०८, लोधीपुरा, इन्दौर –२

ब्रह्मचर्य का महत्व

राजवैद्य श्री लक्ष्मणदत्त कौशिक
श्रीकृष्ण आयुर्वेदीय औषधालय
जहाँगीराबाद (बुलन्दशहर) उ०प्र०

संसार के सभी मनुष्य सुख, स्वास्थ्य और दीर्घ-जीवन चाहते हैं। इनकी प्राप्ति ब्रह्मचर्य से ही होती है। यदि स्वास्थ्य को इमारत का रूप दें, तो ब्रह्मचर्य को उसकी नींव मानना पड़ेगा। जैसे नींव को पुख्ता किए बिना कोई बड़ी इमारत खड़ी नहीं रह सकती, वैसे ही ब्रह्मचर्य के बिना स्वास्थ्य नहीं रह सकता।

यह तो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि पढ़ने की उम्र मे ब्रह्मचर्य का पालन न होने के कारण ही आजकल के विद्यार्थी दुबले-पतले, निर्बल, निस्तेज, उत्साहहीन और भुलक्कड़ अधिक होते जा रहे है। जिधर देखो, समाज मे स्त्री-पुरुष रोगों का खजाना बने हुए नजर आते है। समाज को स्वस्थ, और दीर्घजीवी बनाने के लिए ब्रह्मचर्य के सिवाय दूसरा उपाय नहीं है।

'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।' उसीका यह फल था कि हनूमान, लक्ष्मण, मेघनाथ, भीष्म, शकराचार्य, श्री गुरु नानकदेव, राम-कृष्ण परमहस, स्वामी दयानन्द, महात्मा गाधी और विनोबा भावे जैसेविख्यात महापुरुषो की परम्परा ने ब्रह्मचर्य के प्रभाव से शारीरिक और मानसिक शक्ति बढाकर समाज का कल्याण और देश की रक्षा की। इसके विरुद्ध विलासी जीवन व्यतीत करने वालो मे से भी एक दो बार इतिहास देख लीजिए। इनमे सर्व प्रधान स्थान चन्द्रमा का है। विलासी जीवन के कारण उनको क्षय हुआ। रघुवश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण भी बहुत स्त्री-लम्पट थे, उनको भी यही रोग हुआ, इसी को ब्रह्मचर्य का अभाव कहते हैं। सिक्खो के गुरुओ ने सिक्खो मे ब्रह्मचर्य अर्थात् सयमी जीवन का प्रचार किया, जिससे सिक्ख जाति बहादुरी मे प्रसिद्ध हो गई।

गरम देश मे अनियमित सम्भोग प्रकरण के एक वचन से इस बात की पुष्टि होती है —

सेवेत कामत काम तृप्तो वाजीकृतैर्हिमे।
त्र्यहाद्वसन्तशरदो पक्षाद्वर्षानिदाघयो ॥

श्री वाग्भटाचार्य ने ऋतुओ के अनुसार स्त्री-सम्भोग का यह नियम बताया है। हेमन्त और शिशिर ऋतु मे (यह कड़ाके की सर्दियो के दिन है) स्त्री-सम्भोग के लिए छूट है, अर्थात् अमुक दिन छोड़कर ऐसी शर्त नहीं है। किन्तु नित्य वीर्यवर्द्धक पदार्थो के सेवन की शर्त

राजवैद्य श्री शर्मा जी के परिवार मे गत १७-१८ पीढियो से चिकित्सा व्यवसाय होता रहा है। उसी परम्परा मे आपको भी राजस्थान के राजसी परिवारो मे चिकित्सा करने का अवसर प्राप्त हुआ है। आप एक सफल चिकित्सक है और सन्निपात ज्वर, स्त्री-पुरुषो के गुप्त रोग, राजयक्ष्मा, बालको के सूखा रोग आदि के विशेष ज्ञाता है। आपके अनुभव पूर्ण लेख विविध पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते है।

प्रस्तुत लेख मे 'ब्रह्मचर्य के महत्व' को आपने जिस विधि से अपनी लेखनी से प्रतिपादित किया है, निश्चय ही पाठको को पसन्द आयेगा।

—विशेष सम्पादक

जरूर है। तात्पर्य यह है कि यदि वीर्यवर्द्धक पदार्थों का पुष्कल सेवन करता है, तो गहरी सर्दी के दिन मे प्रतिदिन स्त्री-सम्भोग करके भी मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। वसन्त और शरद ऋतु मे—तीन-तीन दिन छोडकर एव वर्षा तथा ग्रीष्म ऋतु मे पन्द्रह-पन्द्रह दिन के वाद स्वस्थ पुरुष स्त्री-सम्भोग कर सकता है । वीर्यवर्द्धक पदार्थो के सेवन की शर्त सबके साथ है। इस वचन से यह व्यक्त होता है कि जैसे अधिक सर्दी के दिनो मे वैसे ही अधिक ठडे देश मे भी स्त्री—सम्भोग के लिए छुट्टी है। तव यूरोप के ठडे देशो ने यदि इन्द्रिय--सयम को महत्व नही दिया तो क्या हानि है। हानि तो यहाँ है, जहाँ वर्ष मे दस महीने गरमी पडती है। फिर पाश्चात्य लोग अच्छे वीर्यवर्द्धक पदार्थो का सेवन भी खूब करते है। ऐसी स्थिति मे रहन-सहन और आचार विचार मे हमारी उनकी क्या तुलना। हमे तो अपने देश के जलवायु के अनुसार रहकर अपने स्वास्थ्य की रक्षा करनी है।

ब्रह्मचर्य एक दिव्य-शक्ति है

ब्रह्मचर्य से सचमुच ही मनुष्य में दिव्य-शक्तियो का सचार होता है। जब कभी हम विनोबा भावे को देखते हैं तो हमे ब्रह्मचर्य की दिव्य-शक्तियो का दर्शन होता है, क्योकि उनमे ब्रह्मचर्य के सिवा किसी अन्य ताकत का प्रवेश ही नही। बादाम-पिस्ता, दूध-घी, मास मछली आदि शक्तिप्रद चीजो का सेवन उन्होने आज तक नही किया। बहुत सस्ता और सादा भोजन वे करते है। कभी पहलवानो जैसी कसरत नही की है और शरीर भी बहुत हल्का है। किन्तु ताकत मे वे किसी अच्छे तगडे शरीर वाले से कम नही है। जब वह अपनी नित्य की चाल से चलने लगते है तो एक तगडे आदमी की क्या मजाल, जो उनके साथ चल ले। गांधी जी के बारे मे भी ऐसा ही सुना जाता है। मनोवल भी दोनो का आश्चर्यजनक है ही। बड़े-बडे अग्रेज उनके मनोवल से प्रभावित थे। सत विनोबा ने अपने मनोवल के आधार पर ही भूदान यज्ञ मे कल्पनातीत सफलता प्राप्त की है। यह सब ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव है।

ब्रह्मचर्य के बाधक कारण

१—अष्टविध मैथुन—

स्मरण कीर्तनं केलि प्रेक्षण गुह्यभाषणम् ।
सकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्ग प्रवदन्ति विचक्षणा. ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्ट लक्षणम् ॥

(१) स्मरण – पूर्व देखे-सुने मैथुन का ध्यान आना, सम्भोग योग्य व्यक्ति का ध्यान आना।

(२) कीर्तन - मैथुन की वातें करना अश्लील कहानी, नाटक, उपन्यास अथवा अन्य कोई पुस्तक, जिसमे मैथुन करने की इच्छा को प्रोत्साहन मिले, पढना। अश्लील गाने—जैसे आजकल सिनेमा, रेडियो और होली जैसे त्योहारो पर गाये जाते हैं—गाना, अश्लील गालियाँ वकना आदि यह सब मैथुन हैं।

(३) केलि — काम-क्रीड़ा, अश्लील-मजाक मे हाथापाई करना, चिकोटी-काटना ऐसी अन्य प्रकार की छेड-छाड करना और हाथ, पाँव,भौं, आँख-मुंह से गन्दे इशारे करना भी केलि मे शामिल हैं। यह सब मैथुन मे सहायक होने से मैथुन हैं।

(४) प्रेक्षण — जिससे विषय-भोग की इच्छा उत्पन्न हो अथवा बढे, इस प्रकार किसी को छिपकर अथवा सामने आकर देखना, यह भी मैथुन मे सहायक होने के कारण मैथुन है।

(५) गुह्यभाषण — मैथुन सम्बन्धी गुप्त वातें करना अथवा स्त्री पुरुषो का कही छिपकर वातचीत करना, कीर्तन से इसमे छिपने मात्र का भेद है।

(६) सकल्प—मैथुन करूँ, ऐसी तरग मन मे उठना।

(७) अध्यवसाय — मैथुन करने का उपाय करना—जैसे मैथुन करने के लिए पैसे देकर राजी करना अथवा नौकरी देना, अपराध मुक्त करना या अन्य कोई सहायता देना, गलियो में चक्कर लगाना या इस प्रकार के अन्य उद्योग करना।

(८) क्रिया-निवृत्ति — जान बूझकर लिंगेन्द्रिय से वीर्य-पात क्रिया करना। यह तो साक्षात् मैथुन ही है।

यह आठ प्रकार का मैथुन ब्रह्मचर्य का नाशक है। इससे वचना ही ब्रह्मचर्य है।

२—सिनेमा—चरित्र के पतन और ब्रह्मचर्य के विनाश का खुला द्वार है। हमे सिनेमाओ से इसलिये वचना है कि इनके जरिये वहुत दिनो से जो सामग्री हमे

दी जा रही है, वह हमारे स्वास्थ्य और सामयिक आवश्यकता, दोनो के विपरीत है। मनोरजन के नाम पर स्त्रियो के सुन्दर मृदु और अर्धनग्न अङ्गो को दिखाकर, विद्यार्थियो और नवयुवक-नवयुवतियो के मन मे जिन इच्छाओ को जन्म दिया जाता है अथवा बढाया जाता है, वह उन्हे कामोपभोग-लम्पट बनाकर उनके स्वास्थ्य का सर्वथा नाश करता है।

३—अश्लील साहित्य—अश्लील साहित्य, जिसमें काम वासनाओ को जगाने की सामग्री का अधिक वर्णन होता है, विद्यार्थियो को किसी समय भी पढ़ना अच्छा नही है। गृहस्थो की देखा-देखी विद्यार्थी भी रेल मे या मोटर मे, या छुट्टियो मे समय बिताने के लिये अश्लील कहानी, उपन्यास, नाटक आदि पढने लगते है। ऐसे साहित्य के पढने से मन मे सम्भोग की इच्छा पैदा होती है। कामदेव जागता है। उसका नाम मनोभव' और 'मनमथ' है। वह मन मे पैदा होता है और मन को मथ (बिलो) डालता है। गन्दे साहित्य के पढने से मन मे गन्दापन अवश्य आता है। कोई प्रच्छन्न पाप की प्रवृत्ति पैदा होती है, जिससे विद्यार्थी 'हस्तमैथुन' जैसी बुरी आदतो के शिकार बन जाते हैं। उससे स्नायु-जाल ढीला हो जाता है। धातु-स्राव, स्वप्न-दोष, इन्द्रिय-दौर्बल्य, सिर में चक्कर, कमर दर्द, भूख की कमी, पेचिश, सग्रहणी तथा वीर्य-विकार से पैदा होने वाली व्याधियो के सिलसिले बँध जाते हैं। इन बुरे परिणामो की जड है मन मे बुरे भावो की उत्पत्ति होना। इनसे बचने के लिये अश्लील साहित्य और गन्दे सिनेमाओ से परहेज करना हमारा प्रधान कर्त्तव्य है।

ब्रह्मचर्य–रक्षा के सरल उपाय

ईश्वर–परायणता से हम ब्रह्मचर्य का पालन बहुत आसानी से कर सकते हैं। ईश्वर सर्व-व्यापक है। मन से इसका चिन्तन करें। वाणी से इसका वर्णन करें। शरीर से भी इसीके लिये कर्म करें तो, विषय वासनाओ के लिए सोचने का, बात करने का और प्रयत्न करने का अवसर ही नही मिलता। हर समय ईश्वर की व्यापकता सामने रहती है 'उससे हम भला या बुरा कोई कर्म छिपा नही सकते' यह भावना दृढ होती है। ईश्वर की व्यापकता मे पूर्ण विश्वास होने के बाद हम स्वय ही सब पापो से निवृत हो जाते है। इस प्रकार ईश्वर परायणता से, हम बडी आसानी से, सयमी-सुखी और स्वस्थ हो जाते हैं। जिस प्रकार ईश्वर-परायणता है, उसी प्रकार ईश्वर-भक्ति, मोक्ष प्राप्ति, आत्म-ज्ञान आदि महान ध्येय है, जिनकी सिद्धि मे लगकर आसानी से ब्रह्मचर्य का पालन और स्वास्थ्य-लाभ कर सकते है। पारलौकिक कार्यो मे लगने की अभिरुचि जिनमे नही, ऐसे लोग विद्या-प्राप्ति, देश सेवा, परोपकार, महत्वपूर्ण नई खोज आदि विषयो को ब्रह्मचर्य-व्रत का लक्ष्य बना सकते हैं। उससे आसानी से इन्द्रिय-सयम करके वे स्वस्थ बन सकते हैं।

ब्रह्मचर्य के लिए सात्विक भोजन चाहिये

शारीरिक और मानसिक उत्तेजना तथा तज्जन्य विकारो को नष्ट करने के लिए सात्विक भोजन का अति महत्व है। मन आहार से बनता है। आहार की शुद्धि से मन की शुद्धि होती है। दूध, फल, जौ, गेहू, मूग, चावल सावक आदि हल्के और सौम्य अन्न शुद्ध और सात्विक गिने जाते हैं। इनका अधिगम-प्राप्ति का मार्ग अर्थात्—कमाई का रास्ता भी शुद्ध और सात्विक होना चाहिए। अन्यथा यही अन्न अशुद्ध-तामस हो जायेगा क्योकि अन्न से ही मन बनता है। जैसा अन्न होगा वैसा ही मन बनेगा। सात्विक कमाई से पैदा किया हुआ सात्विक अन्न खाना चाहिए। उससे सयम मे सरलता हो जाती है। सयम से शरीर स्वस्थ होता है।

कुछ लोग ब्रह्मचर्य का यह अर्थ लगाते है कि हम सबके हाथ मे दण्ड-कमण्डल देकर सबको बाबाजी ही बनाना चाहते है। गृहस्थ-आश्रम के सुख को नष्ट ही कर देना चाहते हैं। यह सर्वथा भ्रान्त धारणा होगी। हमारा वैस अभिप्राय कदापि नही। हम तो गृहस्थाश्रम रूपी सुन्दर महल की नीव को पुख्ता रखना चाहते है। जिससे उस सुन्दर महल को कोई शत्रु क्षति न पहुचा सके। किसी महल की नीव को पुख्ता करने वाले पर उस मकान को उखाड फेकने का मिथ्या आरोप कितना असत्यपूर्ण होगा, यह आरोप करने वाले स्वय सोचें। विद्यार्थी अवस्था के कठोर ब्रह्मचर्य से गृहस्थाश्रम की सुख-समृद्धि बढती ही है।

ब्रह्मचर्य रक्षा का महत्व

—श्री वैद्यराज प० मदनमोहन जी मिश्रा
आयुर्वेदाचार्य (दिल्ली)
प्रकाशभुवन, बालाजी प्लॉट, अमरावती (महाराष्ट्र)
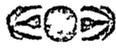
आयुर्वेदाचार्य वैद्यराज श्री मिश्रा जी को छात्रावस्था से ही आयुर्वेद तथा एलोपैथिक चिकित्सा के मर्मज्ञ विद्वानो के साथ चिकित्सा करने का सुअवसर मिलता रहा है। आप आयुर्वेद रसशाला जिला परिषद अमरावती के औषधि निर्माण विभाग मे प्रमुख वैद्य, श्री तखतमल श्री वल्लभ आयुर्वेद महाविद्यालय अमरावती मे अवैतनिक प्राध्यापक एव अन्तर्राष्ट्रीय सस्था लाइन्स क्लब अमरावती शाखा द्वारा सम्पन्न नेत्र शिविरो के अवैतनिक चिकित्सक के रूप मे कई वर्षों से अपनी सेवाये प्रदान करते रहे है।

विभिन्न पत्रिकाओ मे आपके ज्ञानवर्धक लेख प्रकाशित हुए है। आशा है आपके प्रस्तुत लेख 'धन्वन्तरि' एव अन्य को भी पाठक वन्धु पसन्द कर स्वास्थ्य लाभ उठावेगे।

—विशेष सम्पादक

ब्रह्मचर्य पालन का अर्थ यह नही कि आजन्म विवाह ही न करना या स्त्री समागम न करना, अथवा साधु-महात्मा सन्यासी बनकर ही सारा जीवन व्यतीत करना है। नही! इसका सरल शब्दो मे यही अर्थ है कि वीर्य को समयानुकूल और सिर्फ सन्तति उत्पन्न करने के लिए ही खर्च किया जावे उसकी रक्षा की जावे, मानसिकरूप से भी उस वीर्य का क्षरण न होने पावे। इसके तरफ विशेषतया सावधानी रखी जावे। शास्त्रो मे अष्टविध मैथुन के प्रकार बतलाये गये है उनकी तरफ भी विशेष ध्यान देना चाहिये।

मरणबिन्दुपातेन जीवनं विन्दु धारणात्।
तस्मादति प्रयत्नेन कुरुण विन्दु धारणम्॥

इस शिव सहिता की उक्ति के अनुसार अपने वीर्य के एक बिन्दु तक की रक्षा का ध्यान रखे। उसे भी व्यर्थ मे व प्रमाण से अधिक अपने शरीर से न जाने देवें क्योकि वही जीवन है। वीर्य ही जीवन शक्ति का अमूल्य रत्न है और उसकी रक्षा करते रहना ही ब्रह्मचर्य है। शरीर को धारण करने वाली जो सात धातुयें है यथा रस-रक्त, मांस मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र। (वीर्य) शुक्र यह हमारी अन्तिम और सबसे प्रमुख धातु है, जरासा भी यदि इसका प्रमाण हमारे शरीर मे कम हो जावे तो शरीर निस्तेज सा हो जाता है और मन भी खिन्न तथा व्यग्र सा होने लगता है। यह हम प्रत्यक्ष रूप में भी देखते हैं हमारा इस प्रत्यक्ष प्रमाण के तरफ ध्यान न देना बडी भारी भूल है।

आयुर्वेदिक ग्रन्थरत्नो मे दीर्घायु-प्राप्ति के लिए जो तीन उपस्तम्भो का वर्णन किया है उसमे भी ब्रह्मचर्य रक्षण को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। कहा है—

आहार-शयनाब्रह्मचर्यैर्युक्त्याप्रयोजितै।
शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणै॥

—अष्टा. हृ सू अ. ७ ५२

अर्थात् १. अन्नपान सेवा (आहार), २ निद्रा (शयन) ३ ब्रह्मचर्य (मैथुन) इनका प्रतिदिन युक्तिपूर्वक प्रयोग करने से जिस प्रकार स्तम्भो से मकान धारण किया जाता है उसी प्रकार इन तीन उपस्तम्भो (आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य) से शरीर धारण किया जाता है।

गृहस्थी मे ऋतुकाल (४थे दिन से १६वे दिन तक) के अन्तर्गत अपनी विवाहिता स्त्री के साथ समागम करने वाला ब्रह्मचारी ही होता है ऐसी मनु की मान्यता है।

—शेषांश पृष्ठ २०६ पर देखें—

ब्रह्मचर्य
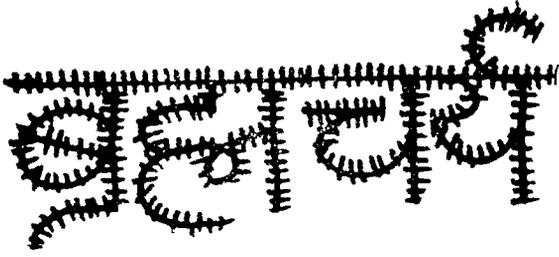
श्री राजकुमार सिह कुशवाहा आयुर्वेद रत्न
हैदराबाद, उन्नाव (उ०प्र०)
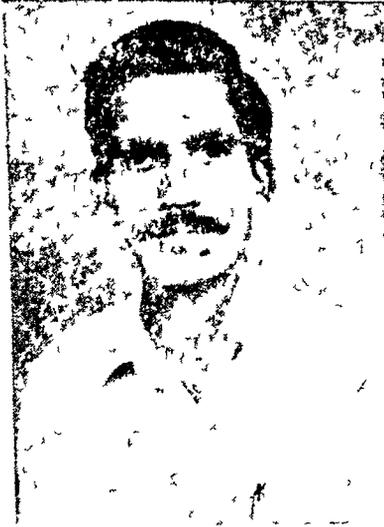
श्री कुशवाहा का जन्म २ अगस्त १९४६ को हैदराबाद ग्राम मे अर्जुन लाल जी कुशवाहा के यहां हुआ। आपने इण्टर बी० टी० सी० उत्तीर्ण करके अध्ययन कार्य के साथ-साथ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से वैद्य विशारद एव आयुर्वेदरत्न की उपाधियाँ प्राप्त की है। चिकित्सा कला विशारद श्री कुशवाहा जी से आयुर्वेद-जगत को कई आशाये है।

—विशेष सम्पादक।

ब्रह्मचर्य = ब्रह्म + चर्य

ब्रह्म का अर्थ—ईश्वर, वेद, वीर्य और ज्ञान आदि।
चर्य का अर्थ—चिन्तन, अध्ययन, उपार्जन, रक्षण आदि।

इस प्रकार कुल मिलाकर ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ ईश्वर चिन्तन, वेदाध्ययन, ज्ञानोपार्जन तथा वीर्य रक्षण।

महत्व—

ब्रह्मचर्य के महत्व के विषय मे छान्दोग्य उपनिषद मे कहा गया है कि—

एकश्चतुरो वेदाः ब्रह्मचर्यं तथैकत।

अर्थात् चारो वेद एक तरफ है और ब्रह्मचर्य एक और है।

अथर्ववेद में इसके सम्बन्ध मे कहा है—

ब्रह्मचर्येण तपसादेवा मृत्युमुपाघ्नत
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्य स्वाराभरत।

अर्थात् ब्रह्मचर्य के तप से ही देवताओ ने मृत्यु को जीता, इन्द्र ने ब्रह्मचर्य के बल से ही देवताओ पर प्रभुत्व कायम किया है।

जिस प्रकार देवता मृत्यु को जीत सकते है और इन्द्र देवताओ पर राज्य कर सकते हैं उसी प्रकार मनुष्य भी ब्रह्मचर्य के द्वारा बडे से बडा कार्य कर सकता है।

ब्रह्मचर्य को दीर्घायु का साधन कहा गया है—

प्रसादस्य विनिर्माणे मूलभित्तिरिपेक्ष्यते।
तथैव जीवनस्यानो ब्रह्मचर्यमपेक्ष्यते॥

जिस प्रकार किसी महल के बनवाने मे नीव की अपेक्षा होती है। उसी प्रकार जीवन के प्रारम्भ मे ब्रह्मचर्य की अपेक्षा होती है। अत ब्रह्मचर्य के बिना स्वास्थ्य का अच्छा रहना असम्भव है।

प्रश्नोपनिषद मे ब्रह्मचर्य को मोक्ष प्राप्ति के लिए भी आवश्यक कहा गया है।

तेषामेवैष स्वर्गलोकोयेषां तपोब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्।

अर्थात् स्वर्ग लोक उन्ही लोगो के लिए है जो तपस्वी ब्रह्मचारी और सत्यनिष्ठ हैं।

तन्त्र शास्त्रो ने इसके महत्व को स्वीकार किया है।

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्॥

अर्थात् तप को तप नही कहा जाता, ब्रह्मचर्य तप ही सर्वोत्तम है। जिसके पालन करने पर बुढापा रोग एव

मृत्यु आदमी को छू तक नहीं सकती। सुश्रुत ने भी कहा है—

मृत्यु व्याधि जरानाशो पीयूष परमौषधम्।
ब्रह्मचर्यं महद्यत्न सत्यमेव वदाम्यहम्॥

अर्थात् मृत्यु व्याधि यथा बुढापा को नाश करने वाली अमृत के समान महौषधि ब्रह्मचर्य है, यह मैंने सत्य कहा है।

मानव जीवन में ब्रह्मचर्यपालन की बहुत आवश्यकता है। महर्षि चक्रपाणि ने भी इस विषय मे लिखा है कि—

"ब्रह्मणे मोक्षायचर्यं ब्रह्मचर्यं उपस्थ निग्रहादि।"

अर्थात् मैथुन का परित्याग कर देना मात्र ही यहा ब्रह्मचर्य नहीं है, परन्तु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के साधनभूत होने पर भी महर्षि ने इङ्गित किया है। महर्षि चरक की उक्ति "ब्रह्मचर्यमायुष्याणाम्" को नही भुलाया जा सकता है।

आजकल के युग मे ब्रह्मचर्य के महत्व को नहीं स्वीकारा गया है जिससे लोगो का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है। अल्पायु मे ही चेहरा कान्तिहीन हो जाता है मानसिक स्थिति बिगड जाती है तथा एक युवक में वृद्धो जैसे लक्षण पाये जाते हैं।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने ब्रह्मचर्य को केवल वीर्य रोक लेना ही नही माना है परन्तु आठो प्रकार के मैथुन को त्याग देना ही ब्रह्मचर्य माना है।

स्मरण कीर्तन केलि प्रेक्षण गुह्यभाषणं।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निवृत्तिरेवच।
एतन्मैथुनमष्टांगम् प्रवदन्ति मनीषिण॥

अर्थात् स्मरण, कीर्तन, क्रीडा, देखना, गुप्तभाषण, सकल्प (मैथुन), अध्यवसाय एव मैथुन की क्रिया की सम्पन्नता ये मैथुन के आठ अग हैं। इनको छोडकर विपरीत मार्ग से चलने से ब्रह्मचर्य की प्राप्ति होती है।

अर्थात् जिन क्रियाओ द्वारा मूत्रेन्द्रिय द्वारा वीर्यस्राव हो उसे मैथुन कहते हैं और इनसे बचना ब्रह्मचर्य है।

प्राचीन महापुरुष ब्रह्मचर्य के महत्व को जानते थे इसीलिये वह इसका पालन करते हुये दीर्घायु को प्राप्त होते थे। भीष्म पितामह ने मृत्यु को अपने वश मे इसी के बल पर किया था और हनुमान जी ने इसी के बल ऐसे-ऐसे कार्य किये जिन्हे सुनकर लोग हँसते है और अनहोनी मानते हैं। परन्तु ऐसा नही है ब्रह्मचर्य पालन से सब कुछ सम्भव है। ब्रह्मचारी सदैव अग्नि की भाँति पवित्र रहता है यहाँ तक उसे मरण का सोच नही लगता जबकि अन्यो को लगता है। गरुण पुराण के अनुसार—

ब्रह्मचारिणो मात्रापित्रोर्मरणे करणे ना शौचम्।

ग्रहस्थो में ब्रह्मचर्य

एक गृहस्थ भी ब्रह्मचारी है यदि वह नियम संयम से चलता है याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—

ऋतावृतौ स्वदारेषु संगतिया विधानत.।
ब्रह्मचर्यं तदेवोक्तं गृहस्थाश्रम वासिनाम्॥

अर्थात् ऋतु काल मे अपनी धर्मपत्नी से शास्त्रादेशानुसार केवल सन्तान के लिये समागम करने वाला पुरुष गृहस्थ मे रहता हुआ भी ब्रह्मचारी ही है।

ब्रह्मचर्य मे बाधक कारण

१ अष्टविधि मैथुन—

(अ) स्मरण— पूर्व देखे सुने मैथुन का ध्यान आना, सम्भोग योग्य व्यक्ति का ध्यान करना स्मरण कहलाता है।

(ब) कीर्तन— मैथुन की बाते करना, अश्लील साहित्य का अध्ययन, अश्लील गाने जैसे सिनेमा, रेडियो, होली जैसे त्योहारो पर गाये जाते है—गाना, गालियां बकना आदि सब मैथुन है।

(स) केलि— काम-क्रीडा, मजाक मे हाथापाई करना, चिकोटी काटना, छेड-छाड करना हाथ, पाँव, भौं, आंख मुँह से गन्दे इशारे करना भी मैथुन है।

(द) प्रेक्षण—जिससे विषय-भोग की इच्छा उत्पन्न हो अथवा बढे, इस प्रकार किसी को छिपकर अथवा सामने आकर देखना, यह भी मैथुन मे सहायक होवे के कारण मैथुन है।

(य) गुह्यभाषण— मैथुन सबधी गुप्त बातें करना अथवा स्त्री पुरुषो का कही छिपकर बातचीत करना।

(र) सकल्प— मैथुन करने का मन मे विचार कर लेना मैथुन में सहायक है।

(ल) अध्यवसाय— मैथुन करने का उपाय करना जैसे किसी को मैथुन के लिए राजी करना तन, मन, धन आदि किसी प्रकार से, गलियो मे चक्कर लगाना या इस प्रकार के अन्य उद्योग करना अध्यवसाय है।

(व) क्रिया-निवृत्ति— जानबूझकर लिंगेन्द्रिय से वीर्य पात क्रिया करना। इसी मे हस्तमैथुन भी आता है।

यह आठ प्रकार का मैथुन ब्रह्मचर्य का बाधक है।

२. घरों का वातावरण—

बच्चों के मन, बुद्धि, शरीर को शुद्ध रखने के लिये घर का वातारण शुद्ध रखना होगा। परन्तु आजकल घर में मानसिक स्वास्थ्य विरोधी अनेक चीजें मिलती हैं।

३. सिनेमा—

मनोरञ्जन के नाम पर स्त्रियो के सुन्दर मृदु और अर्धनग्न अगो को दिखाकर विद्यार्थियो, नवयुवको के मन मे विषय वासना प्रधान भावनाओ को जन्म दिया जाता है जो उनसे स्वास्थ्य को नष्ट होता है।

४. अनियमितता—अपने नित्य कार्यों शौच, स्नान सध्या, भोजन–विश्राम, व्यवहार, खेल-कूद, सोना और जागना मे अनियमितता होने से कई रोग हो जाते हैं।

५ कुसङ्गति—कुसङ्गति अच्छे मनुष्यो को भी बुरे मार्ग पर घसीट ले जाती है। छोटे बच्चो को सिगरेट पीने, जुआ खेलने, चोरी करने, व्यभिचार, हस्तमैथुन व आपस मे व्यभिचार करने की हरकतें बुरे बच्चो की सगति से हो जाती हैं।

६ शृगार—शृगार औरतो का है। वह भी अपने पति को प्रसन्न करने के लिए। दूसरो को आकृष्ट करने की प्रकृति से व्यभिचार का जन्म होता है। शृगार मे विभिन्न प्रकार के चमकदार वस्त्र, सुगन्धित तैल स्नो, पाउडर आदि हैं। इनको प्रयोग करके व्यक्ति दूसरे को अपनी ओर आकृष्ट करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार के शृगार से कामोत्तेजना बढती है व वीर्यपात हस्तमैथुन जैसे विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

७. वीर्य सम्बन्धी ज्ञान का अभाव—आज के युग मे छात्रो को वीर्य के महत्व की जानकारी नही करायी जाती है। फलत बच्चे कुसगति मे पडकर हस्त मैथुन आदि वीर्य क्षरण के कार्य करने लग जाते है।

८ साइकिल की सवारी—इस सवारी का उपयोग अधिक होता है, क्योकि यह कम खर्चीली है। परन्तु इसका उपयोग हानिकारक है। साइकिल की सीट (गद्दी) का दबाव स्त्री, पुरुष दोनो की जननेन्द्रिय पर सीधा पड़ता है जिससे शीघ्रपतन की बीमारी हो जाती है।

९. सह–शिक्षा—विद्यालयो मे सह-शिक्षा अर्थात् नवयुवको और नवयुवतियो को एक साथ शिक्षा देना स्वास्थ्य की दृष्टि से अलाभकर है। अध्ययन काल मे अष्टविध मैथुन का परिहार करना आवश्यक है। सह-शिक्षा मे उससे परहेज होना असम्भव है। शास्त्रो मे लिखा है—

घृतकुम्भ समा नारी तप्तङ्गारसमः पुमान्।
तस्मात् घृतं च वह्निं च नैकत्रस्थापयेद्बुधः॥"

अर्थात् घी भरे बर्तन को प्रज्वलित अग्नि के पास रखकर देखे। जो स्वाभाविक परिणाम होगा वह स्त्री और पुरुष के एक साथ रहने से कैसे रुकेगा? ऐसे दुष्परिणामो से बचने सह-शिक्षा को बन्द करना होगा।

१० अश्लील साहित्य—अश्लील साहित्य मे कामवासना जाग्रत करने के लिए ही सामग्री रहती है अत उसे विद्यार्थियो के लिए पढना हितकर नही है। इस प्रकार के साहित्य के पढने से मन मे सम्भोग की इच्छा जाग्रत होती है। मन दूषित हो जाता है। हस्तमैथुन जैसी गन्दी आदते पड जाती है। इससे धातु स्राव, स्वप्न दोष, इन्द्रिय-दौर्बल्य, सिर मे चक्कर, कमर दर्द, पेचिस, सग्रहणी व अनेको प्रकार के वीर्य विकार पैदा हो जाते है।

११ ब्रह्मचर्य के बिना भावी जीवन दुःखमय—विद्यार्थी जीवन मे ही ब्रह्मचर्य को नष्ट कर देने से भावी जीवन दुःखमय हो जाता है। इसके नष्ट होने से शीघ्र-पतन, स्नायु मण्डल की शिथिलता से नपुन्सकता आदि व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती है जिससे व्यक्ति स्त्री के साथ मैथुन मे असमर्थ रहता है। इससे कुछ लोग तो आत्म-हत्या करने तक की सोचते हैं। कुछ लोग चिकित्सा के चक्कर मे पडकर आजीवन चिन्ताग्रस्त रहते है।

१२ शक्ति के खर्च पर नियन्त्रण—विद्यार्थी जीवन शक्ति-सचय करने की अवस्था है। गृहस्थाश्रम शक्ति के खर्च का आश्रम है। शक्ति का खर्च केवल उपस्थ इन्द्रिय से ही नही, मन, वाणी और कर्म तीनो से होता है। लौकिक पदार्थो के अधिक चिन्तन से, ज्यादा बोलने से, मात्रा से अधिक काम करने से शक्ति नष्ट होती है। विद्यार्थी जीवन मे अधिक बोलना या सासारिक पदार्थो को अधिक सग्रह करने की वृत्ति ग्रहण करना-वीर्यपात करना

जीवन नष्ट करना ही है। गृहस्थ को भी सचय से रहना चाहिए। इससे स्वास्थ्य बढता है।

१३. पूर्णावस्था से पहले सम्भोग—युवावस्था मे पुरुष का मन स्त्री की ओर तथा स्त्री का मन पुरुष की ओर आकृष्ट होता है। यह आकर्षण स्वभाविक है। स्त्री की अवस्था सोलह वर्ष, पुरुष की पच्चीस वर्ष की आयु मिलन योग्य है। इसके पूर्व की आयु कच्ची है। कच्ची आयु मे मिलन से पुरुषो मे प्रमेह, स्वप्नदोष, नपुँसकता, शीघ्रपतन आदि रोग और स्त्रियो मे प्रदर, सोम, योनि व्यापत् मासिक, धर्म की अनियमितता और कृच्छ्रता आदि रोग पैदा होते हैं। अर्थात् विद्यार्थी जीवन मे उपर्युक्त आयु के पूर्व मैथुन मे सलग्न नही होना चाहिए।

उपरोक्त सभी ब्रह्मचर्य के वाधक कारण हैं। अत प्रत्येक व्यक्ति को इनको ध्यान मे रखकर ही चलना चाहिए विशेष कर विद्यार्थी को।

ब्रह्मचर्य के रक्षक उपाय

१. ईश्वर—परायणता—मन को ईश्वर की ओर लगाने से दूषित विचार उत्पन्न नही होते है। इससे हम वडी-आसानी से सयम-सुखी और स्वस्थ हो जाते हैं। इसके द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन बहुत आसानी मे कर सकते हैं। ईश्वर सर्व व्यापक है। मन से चिन्तन करें।

२ राम-नाम का जप—गाधी जी ने लिखा है कि "विषय वासना को जीतने के लिए राम-नाम जप राम-वाण की तरह है।" इसी प्रकार मन शुद्धि के लिए गायत्री मत्र का जप उत्तम है। मत्र जप से मन शुद्ध स्वस्थ रहता है। इससे ब्रह्मचर्य रक्षा की जा सकती है।

३. वाल विवाह का सर्वथा त्याग हो तथा पच्चीस वर्ष के पहले लडके का व सोलह वर्ष मे पहले लडकी का विवाह न होने दें क्योंकि इसी अवस्था मे पुरुष का वीर्य व स्त्री का रज समान होता है।

४ कुसङ्ग से वचें।

५ विचार सात्विक रखें।

६. उत्तेजक पदार्थों का जैसे मिर्च, गर्म मसाले, खटाई, अधिक मीठे आदि का सर्वथा त्याग करें।

७ भाग, गाजा, अफीम व शराव आदि नशीली वस्तुओ का सेवन न करें।

८. मास केसर, कस्तूरी स्वर्ण युक्त वाजीकरण औषधियो का सेवन न करें।

९ वालक को गुरुभक्त व माता-पिता भक्त वनाना चाहिए। सरक्षक को वालको के समक्ष दुर्व्यसन नही करना चाहिए।

१०. वालको को ब्रह्मचर्य का ज्ञान कराते रहना चाहिए तथा इसके लाभ को वताना चाहिये।

११. सादगी से रहना—मनुष्य जितना सरल व सादी वेष भूषा मे रहेगा उतना ही उसका मन सरल व शुद्ध होगा।

१२. मानव जीवन को पाकर किसी महान् ध्येय की ओर अग्रसर होना चाहिए। यह ब्रह्मचर्य पालन का साधन है।

१३ स्वस्थ रहने की दृढ कामना—मन मे स्वस्थ रहने की दृढ कामना रखनी चाहिए। इससे स्वास्थ्य नष्ट नही होता। भोजन, व्यायाम, शक्ति सरक्षण को ध्यान मे रखते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

१४. कार्य व्यस्तता—ब्रह्मचर्य पालन के लिए हमेशा काम मे ही लगा रहना चाहिए। कहा कि 'फालतू दिमाग शैतान का घर है" अगर कभी मन मे कामेच्छा जागृत हो तो उस समय किसी न किसी कार्य मे सलग्न होकर काम प्रवृति को शात करना चाहिए।

१५ शृगार रस के उपन्यास, नाटक, काव्य तथा काम से सबधित साहित्य न पढें।

१६ पूर्वकथित अष्टविध मैथुनो से वचें।

१७ रात को जल्दी समय पर सोकर सवेरे ब्रह्ममुहूर्त मे ही उठ जावें।

१८ महीने मे दो एक उपवास अवश्य करें।

१९ यथा समव लगोट वाँधें।

२० अनावश्यक ही गुह्याङ्गो को हाथ मे न छुऐं।

२१. विश्राम करते समय तथा कार्य करते समय ईश्वराधन करें।

२२. मल-मूत्र त्याग करने के पश्चात इन्द्रियो को शीतल जल मे धोवें।

२३ धार्मिक ग्रन्थो तथा महापुरुषो के चरित्रो का मनन करें।

२४. नित्य ठडे जल से स्नान करें।

२५ नाटक, नृत्य सिनेमा न देखे ।

२६. खुली हवा मे दोनो समय पैदल वायु सेवें ।

२७ पवित्र शय्या पर शयन करें व स्वच्छ श्वेतवस्त्र धारण करे ।

२८ धूम्रपान ब्रह्मचर्य का शत्रु है ।

२९ भोजन की वस्तु रजस्वला व प्रबल कामना वाली स्त्री के द्वारा छुई हुई या बनाई हुई न हो । कुत्ते और गीध की दृष्टि भोजन पर नही पडनी चाहिए । रोती हुई व क्रोधित स्त्री के हाथ का भोजन नही करे।

३० ब्रह्मचारी को बिना मूल्य का तथा बिना परिश्रम का भोजन नही करना चाहिए ।

३१. ब्रह्मचर्य रक्षा के लिए छान्दोग्य उपनिषद मे ६ बातो पर विशेष बल दिया गया है—(१) अग्निहोत्र (२) देवाराधन (३) मौन (४) अरण्यायन (५) सत्रायन (६) अनाशकायन ।

३२. गृहस्थो के लिए ब्रह्मचर्य मे सयम पर ध्यान रखते हुए भोग करना चाहिए ।

३३. स्त्री-पुरुष सयोग के लिए शक्ति, स्थान, समय का ध्यान रखना चाहिए । स्त्री-पुरुष को अलग अलग सोना चाहिए ।

३४ ब्रह्मचर्य रक्षार्थ मायावी चीजो का ध्यान रखना चाहिए । जैसे —मोह, ममता, लोभ, क्रोध, मान-प्रतिष्ठा, मिथ्याभिमान । इनसे हमेशा बचे ।

३५ प्राकृत पदार्थो के सेवन से ब्रह्मचर्य की रक्षा होती है ।

३६ रसनेन्द्रिय तथा जननेन्द्रिय का घनिष्ठ सम्बन्ध है । अत दोनो का ध्यान रखे ।

३७ ब्रह्मचर्य के लिए अन्त करण की निर्मलता आवश्यक है ।

३८ ब्रह्मचारी को समस्थिति मे रहना चाहिए ।

३९ सयम, सादगी, समता, सत्यता, सदाचार से मिलता है ।

४० विद्याप्राप्ति को ही अपना महान् ध्येय रखे ।

४१. जगत की अनित्यता का सदैव मनन करे ।

—श्री वैद्य राजकुमार सिंह कुशवाह आयुर्वेदरत्न
हैदराबाद (उन्नाव) उ० प्र०

(पृष्ठ २०४ का शेषांश)

ब्रह्मचर्य के महत्व को प्रकट करते हुए आचार्य वाग्भट्ट ने अपने अष्टाङ्ग हृदय ग्रन्थ मे लिखा है कि धर्म के अनुकूल, यश देने वाला, दीर्घायु प्रदान करने वाला, यह लोक और परलोक मे सदा उपकार करने वाला (रसायन) और हमेशा निर्मल ब्रह्मचर्य का तो हम सदा अनुमोदन करते हैं । इसी प्रकार महर्षि चरक जी ने भी अपने चरक सहिता ग्रन्थ मे "ब्रह्मचर्यमायुष्यकराणा श्रेष्ठतमम्" कहकर ब्रह्मचर्य को दीर्घायु प्राप्ति निमित्त श्रेष्ठतम माना है ।

ब्रह्मचर्य का नीद (निद्रा) से भी कितना घनिष्ट सम्बन्ध है इसका जिक्र करते हुए आचार्य वाग्भट्ट कहते है कि ब्रह्मचर्य मे लगे हुए सम्भोग सुख से विरक्त मन वाले एव यथा लाभ सन्तुष्ट व्यक्ति मे नीद अपने ठीक समय का उल्लघन नही करती, अर्थात् ब्रह्मचर्य पालन करने वालो को नीद ठीक समय पर स्वय ही आ जाती है ।

ब्रह्मचर्यरतेर्ग्राम्यसुख निस्पृह चेतस. ।
निद्रासन्तोष तृप्तस्य स्वकाल नातिवर्तते ।।

स्त्री प्रसङ्ग के समय का विधान भी आयुर्वेद मे अच्छी तरह बताया है जिसे हमे पालन करना चाहिये, कि स्वस्थ एव निरोगी मनुष्य को शीतकाल (हेमन्त-शिशिर ऋतु) मे वाजीकरण औषधियो से तृप्त होकर इच्छानुसार सम्भोग सुख का अनुभव करे ।

बसन्त ऋतु (चैत्र-वैशाख), शरदऋतु (आश्विन-कार्तिक) मे तीन-तीन दिन के बाद, वर्षा ऋतु (श्रावण-भाद्रपद), ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ट-अषाढ) मे पन्द्रह-पन्द्रह दिनो दिनो बाद सम्भोग करे । यदि उपरोक्त नियम का पालन नही किया जाता हे तो भ्रम (चक्कर आना), अनायास थकावट मालूम पड़ना, नेत्रो मे दुर्बलता, बल का क्षय होना, धातुक्षय, इन्द्रिय का क्षय और तो और यहाँ तक देखा जाता है कि अकाल मृत्यु तक भी हो जाती है । और यदि नियमित रूपेण अपनी सामर्थ्य को देखते हुए स्त्री प्रसङ्ग किया गया तो स्मृति, धारण शक्ति, आयु, आरोग्य, शरीर पुष्टि, इन्द्रियो की शक्ति, शुक्र, यश और बल इन सभी मे वृद्धि होती रहती है और वृद्धावस्था भी देर से आती है ।

—श्री वैद्य मदनमोहन जो मिश्रा
प्रकाश भुवन, बालाजी प्लॉट, अमरावती
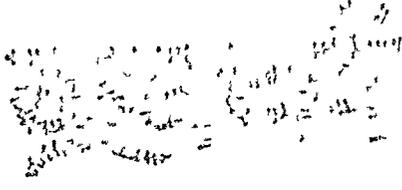
ब्रह्मचर्य शब्द की निरुक्ति—'ब्रह्मणे=वेदार्थं चर्यम् =आचरणीय+व्रतम्=आश्रम विशेष'। अर्थात् जिस आश्रम की आवश्यकता वेदाध्ययन के लिये होती है उसे ब्रह्मचर्य कहते हैं। यह चार आश्रमों में सब प्रथम है। क्योंकि -

प्रासादस्य हि निर्माणे मूलभित्तिरपेक्ष्यते।
तथैव जीवनस्यादौ ब्रह्मचर्यमपेक्ष्यते॥

अर्थात् जिस प्रकार महल के निर्माण के लिये नींव रखना आवश्यक होता है, उसी प्रकार स्थिर एवं सुखी जीवन के लिये ब्रह्मचर्य की नितान्त आवश्यकता है। अथर्ववेद कहता है "ब्रह्मचर्येण तपसा देवामृत्युमुपाघ्नत।" अथर्ववेद का० ११ अ० ३ सू० ५ मं० १८॥ ब्रह्मचर्य और तप के प्रभाव से देवताओं की मृत्यु नहीं हुई। न केवल देवता ही अपितु भीष्म पितामह भी ब्रह्मचर्य के कारण इच्छा मृत्यु हुए। ब्रह्मचर्यव्रत केवल पुरुषों के लिये ही नहीं अपितु स्त्रियों के लिये भी उपादेय है। यथा -

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥
—मनु० १/३०॥

पति के मरने पर जो स्त्री ब्रह्मचर्यव्रत ('अकृत पुरुषान्तर मैथुना' कुल्लूक भट्ट। अपने पति के सिवाय दूसरे पुरुष से मैथुन नहीं किया है।) को धारण करती है। वह यदि पुत्रहीन है तो भी स्वर्ग को प्राप्त करती है, जिस प्रकार ब्रह्मचारी पुरुष। ब्रह्मचर्य शब्द का मूल अर्थ 'शुक्र धारण' अर्थात् उसकी सर्वात्मना सुरक्षा करना। इसका समर्थन भगवान् पतञ्जलि के शब्दों में इस प्रकार है—'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः'। पातञ्जल सू० ३८३। वीर्य का क्षरण केवल स्त्री-पुरुष के सहवास से ही नहीं होता अपितु उसके आठ भेद हैं —

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च॥

डाक्टर त्रिपाठी स्वर्गीय पण्डित लालचन्द्र जी वैद्य के अन्यतम योग्य शिष्य हैं। आप कुशल अध्यापक, सफल चिकित्सक, सुप्रसिद्ध समीक्षक तथा संस्कृत के अद्यतन कवि हैं। आपकी लेखनी आयुर्वेद एवं संस्कृत साहित्य की सेवा में निरन्तर तत्पर रहती है। आपने १९७३ ई. में कविराज लोलिम्बराज के ग्रंथों का मौलिक अध्ययन कर आगरा वि० वि० से पी० एच० डी० की सम्मानित उपाधि प्राप्त की। उक्त शोध-प्रबन्ध आयुर्वेद के क्षेत्र में श्री त्रिपाठी की अनुपम देन है। इसी बीच 'वैद्यावसन्त' तथा 'माधव निदान' का सम्पादन कर अद्यावधि अप्रकाशित 'चमत्कार चिन्तामणि' का सारगर्भित टीकाओं के साथ प्रकाश कराया है। अभी तक उपलब्ध अपूर्ण 'वैद्य जीवन' के यत्र तत्र विकीर्ण पाठों का प्रामाणिक संकलन कर सम्प्रति उसके सम्पादन में आप संलग्न हैं।

ब्रह्मचर्य हमारे जीवन का सारभूत रहस्य है जो इस लोक तथा परलोक दोनों को सुखी बनाने में अत्यन्त सहायक है। आशा है श्री त्रिपाठी जी का यह लेख उपरोक्त महत्व को प्रतिपादित कर सकेगा। —विशेष सम्पादक

एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥

स्त्री-पुरुष का परस्पर स्मरण, कीर्तन, क्रीडा, देखना, गुप्त बातचीत, सकल्प, अध्यवसाय, क्रियानिर्वृत्ति ये मैथुन के आठ भेद हैं। इनको न करना ही ब्रह्मचर्य है। किन्तु महर्षि याज्ञवल्क्य का मत इसमे कुछ भिन्न है। यथा—

चतुर्थमायुषोभागमुषित्वाद्यं गुरौद्विजः ।
द्वितीयमायुषो भाग कृतदारो गृहे वसेद् ॥
—या० अ० ४।१ ॥

अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत् ।
अनन्यपूर्विका कान्तामसपिण्डा यवीयसीम् ॥
षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणा तासा युग्मासु संविशेत् ।
ब्रह्मचार्येव पर्वाण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् ॥
—विवाह प्रकरण ३।२-३ ॥

मनुष्य की आयु का प्रथम भाग ब्रह्मचर्य का समय है, उस अवस्था को गुरु के पास अध्ययन आदि कार्यों मे बिताकर तदनन्तर गृहस्थाश्रम में पदार्पण करे। पूर्ण ब्रह्मचारी पुरुष उत्तम लक्षणो वाली स्त्री के साथ विवाह करे। स्त्रियो के मासिक धर्म प्रारम्भ होने से सोलह रात्रि पर्यन्त पुत्र प्राप्ति की इच्छा से प्रथम चार रात्रियो को छोडकर शेष सम रात्रियो मे सहवास करे। इस प्रकार केवल ऋतुकाल मे सहवास करने वाला पुरुष ब्रह्मचारी ही कहा जाता है। प्राचीन काल मे पुरुषो की भाति स्त्रियो का भी उपनयन होता था। उपनयन का मुख्य उद्देश्य विद्याभ्यास, वेदाभ्यास, वेदो का अध्ययन और ब्रह्मचर्य धारण है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन विष्णु पुराण ३/९।१-७ गरुड पुराण अध्याय ४९ तथा कूर्म पुराण अध्याय ९ मे द्रष्टव्य है। यहा तक ब्रह्मचर्य को धार्मिक दृष्टिकोण से देखा गया है। इसके आगे इसका आयुर्वेद मे क्या स्थान है, इसकी चर्चा की जा रही है।

आयु को बढाने वाली क्रियाओ मे ब्रह्मचर्य सर्व प्रथम है। यथा-- 'ब्रह्मचर्यमायुष्याणाम्।' —च सू २५-३८ ॥ इसका समर्थन सुश्रुत के शब्दो मे निम्नांकित है—

आयुष्यं भोजन जीर्णे वेगाना चाविधारणम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च साहसाना च वर्जनम् ॥
—सु चि २८|२८ ॥

पहला भोजन जब पच जाए उसके बाद भोजन करना, मल मूत्रादि के वेगो को न रोकना ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, अहिंसा और साहसिक कार्यों का न करना आयु को बढाता है। प्राचीन परम्परा के अनुसार किस प्रकार के छात्र का गुरु के पास अध्ययन के लिये प्रवेश होता था, जरा इस ओर दृष्टिपात करे—'अव्यापन्नेन्द्रियम्' ॥ —च सू अ ८। जिसकी इन्द्रियाँ दोष रहित हो अर्थात् अपने वश मे हो। इसी प्रसङ्ग मे आगे देखे—"अथैनम् अग्निसकाशे ब्राह्मणसकाशे, भिषक्सकाशे चानुशिष्यात्—ब्रह्मचारिणा . भवितव्यम्" ॥ च सू. ८ ॥ अर्थात् आयुर्वेद अध्ययन के इच्छुक छात्र को अग्निहोत्र करने की शिक्षा दे, ब्राह्मण वेदाध्ययन करावे और वैद्य चिकित्सा शास्त्र का उपदेश देते हुए छात्र से कहे—तुम्हे ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना होगा। इस ब्रह्मचर्य की अवस्था मे उस छात्र को सद्वृत्त का उपदेश दे—'वश्यात्मा"। —च सू अ ८। तुम्हे जितेन्द्रिय रहना चाहिये। क्योकि सम्पूर्ण सद्वृत्त का फल है इन्द्रियो को अपने वश मे रखना, इससे मन प्रसन्न और चित्त स्थिर होता है।

अध्ययन आदि समाप्ति के पश्चात जब ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करे तब भी ब्रह्मचर्य का महत्त्व है। शरीर के तीन आधार है आहार निद्रा और ब्रह्मचर्य, इन तीनो का ध्यान रखता हुआ पुरुष सुखी रहता है। गृहस्थाश्रम आकर सन्तानोत्पत्ति के लिए सहवास का विधान है। इसमे स्त्री पुरुष दोनो को कैसे रहना चाहिये इस सम्बन्ध मे आयुर्वेद का मत द्रष्टव्य है—"तत पुष्पात् प्रभृति त्रिरात्रमासीत ब्रह्मचारिणी . पुरुष च" ॥च० सू० ८॥ ऋतुकाल के तीन दिनो मे स्त्री पुरुष दोनो ब्रह्मचर्य का पालन करें, इसी विषय को सुश्रुत के शब्दो मे देखे - ऋतौ प्रथमदिवसाद् प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवा स्वप्नादीन् परिहरेत्" ॥- सु० शा० २/२५॥ शुद्धस्नान के बाद 'ततोऽपराह्णे पुमान् मास ब्रह्मचारी सर्पि स्निग्ध सर्पि क्षीराभ्या शाल्योदन भुक्त्वा मास ब्रह्मचारिणी तैलस्निग्धा तैलमाषोत्तराहारा नारी मुपेयाद् रात्रौ' ॥सु० शा० २/२८॥ पुरुष एक मास तक ब्रह्मचारी रहकर सायकाल घृत पानकर दूध घी मिला हुआ शालिचावल का भात खाकर, तेल मे पके उडद के पदार्थो का भोजन की हुई

(शेषांश पृष्ठ २१७ पर देखे)

आयुर्वेदोक्त दिनचर्या

कविराज श्री एस० एन० बोस आयु० वृह०
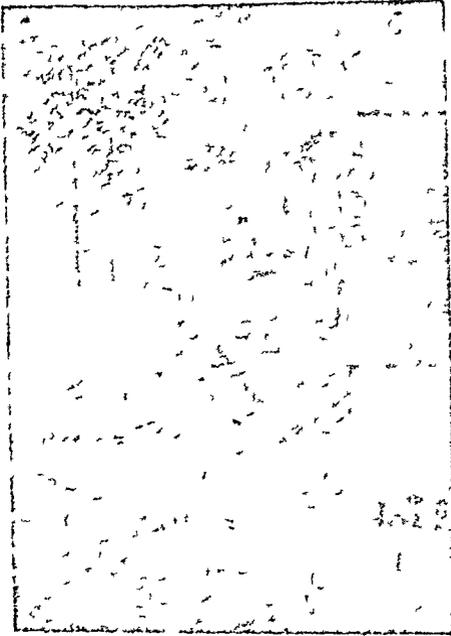
आपका जन्म बगला देश के एक ग्राम मे सामान्य मध्यवित्त परिवार में हुआ। स्व० कवि० गणनाथ सेन सरस्वती महामहोपाध्याय से अध्ययन एव प्रत्यक्ष-ज्ञान प्राप्त कर स्वदेश-इलाहाबाद, हिगनघाट में चिकित्सा करने के बाद १९५१ मे प्रिंस यशवन्तराय आयुर्वेदिक अस्पताल इन्दौर के सुपरिन्टेंडेंट तथा बाद मे महात्मा गाधी स्मृति चिकित्सा महाविद्यालय इन्दौर मे आयुर्वेदीय रिसर्च आफीसर बने। आपने ४ शोधपत्रो का प्रकाशन करवाया। तत्पश्चात् आयुर्वेद महाविद्यालय ग्वालियर के प्रिंसिपल रहे। शासन के विधि विरुद्ध आचरण के कारण त्यागपत्र देकर १९५८ मे दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज जालधर के प्रिंसिपल बने। १९६२ मे आयु० विश्वभारती सरदारशहर के प्रिंसिपल एव तत्पश्चात् इण्डियन मैडीकल काउंसिल द्वारा परिचालित आयुर्वेद अनुसधान इकाई आयुर्वेद महाविद्यालय ग्वालियर मे रिसर्च आफीसर रह कर सन् १९६९ मे सेवा निवृत हुए तथा अब स्वतन्त्र रहकर अपने अगाध ज्ञान को विविध आयुर्वेद पत्रो के माध्यम से वैद्य समाज के समक्ष निरन्तर प्रकट करते रहते है। आपका प्रस्तुत 'आयुर्वेदोक्त दिनचर्या' लेख गागर मे सागर भरने की कहावत को चरितार्थ करता है।

—विशेष सम्पादक

आयुर्वेद के प्रणेता हमारे प्राचीन ऋषियो ने रोग होने से उसकी चिकित्सा कराने की बजाय रोग न होने पावे—इसके ऊपर ज्यादा ध्यान दिया करते थे। वह एक पृथक विज्ञान है और उसे स्वस्थवृत्त कहते हैं। इस विज्ञान से हमें पता लगता है कि किस तरह से रहन-सहन से हम स्वस्थ रहकर नीरोग जीवन यात्रा का निर्वाह कर सकते है। हमारे पूर्वज स्वस्थवृत्त को इतना महत्व दिया करते थे कि धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष जिनको मानव के परम उद्देश्य कहे जाते हैं—उसकी प्राप्ति के लिये श्रेष्ठ साधन माना था।

"धर्मार्थकाममोक्षणां आरोग्यम् मूलमुत्तमम्। रोगास्तस्यापहर्तार श्रेयसो जीवितस्य च ।। एव विज्ञाय मतिमान् स्वस्थवृत्तपरोभवेत्। आयुरारोग्य धर्मादि स्वास्थ्यादेव हि जायते ।।" (च० सू०)। और इस नीति के अनुसार हमारे पूर्वजो ने आयुर्वेद शास्त्र को बनाते हुए स्वस्थवृत्त अर्थात् स्वास्थ्य जीवन यापन प्रणाली का वर्णन किया था जिससे जनता कम से कम रोग से आक्रान्त होती थी और अधिक से अधिक स्वस्थ, सुखी तथा दीर्घजीवन को भोग करती थी। आयुर्वेद के अन्यतम परम पंडित शार्गधर ने कहा था कि "न जन्तु कश्चिदमर पृथिव्या जायते क्वचित्। अत

मृत्युरवार्य स्यात् किं न रोगान्निवारयेत् ।" पाश्चात्य जगत के चिन्ताशील मनीषियो ने भी आयुर्वेदोक्त स्वस्थवृत्त के अनुशीलन से इतना प्रभावित हुए थे कि उन्होने स्पष्ट भाषा मे कहा था कि—If the hygienic instructions found in Charak Samhita are strictly adhered to, the humanity will suffer ees from modern diseases and the Doctors will from loss work for themselves

परन्तु आज की परिस्थिति कुछ अलग ही है। आज चरकोक्त स्वस्थवृत्त भारतीय जनता भूल चुकी है और पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण से जनता रोगजर्जरित होकर दुःखी जीवन बिता रही है। सरकार भी एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, इस तरह से सैकडो मेडिकल कालेज खोलकर, हजारो की सख्या मे डाक्टर पैदा करके भी जनता की स्वास्थ्यहीनता को रोक नही पा रही है। आज के स्वस्थवृत्त-विमुख अथवा यो कहिये-स्वस्थ वृत्त मे अज्ञ जनता को स्वस्थ बनाना असम्भव है। पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण भारत की जनता तथा उनकी सस्कृति के लिये हानिकर है इसमे सन्देह नही है। अत आयुर्वेदोक्त स्वस्थवृत्त का ज्ञान हमारे अन्दर जितनी जल्दी विकसित हो जाय उतनी ही जल्दी हम अपने स्वास्थ्य रक्षण मे सफल हो सकेंगे। यह अविसवादित सत्य है।

आयुर्वेद शास्त्रानुसार स्वस्थ पुरुष का लक्षण निम्न प्रकार है। "समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रिय,। प्रसन्नात्मेन्द्रियमना स्वस्थ इत्यभिधीयते।" (सु. स) अगर इस दृष्टि से देखा जाय तो आज की जनता मे एक भी स्त्री अथवा पुरुष स्वस्थ कहा नही जा सकता है। इसका एकमात्र कारण आज की आधुनिक सभ्यता है। शारीरिक रूप से पूर्ण स्वस्थ रहते हुए भी मानसिक स्वास्थ्य के अभाव के कारण किसी भी पुरुष अथवा स्त्री को आज स्वस्थ नही कहा जा सकता है। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। एक के अस्वस्थ होने से दूसरे को अस्वस्थ होना ही पडता है—अत आज के युग मे शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य ठीक है ऐसा तक भी स्त्री अथवा पुरुष हमारे नजर मे नही पडते है। किसी का शारीरिक स्वास्थ्य ठीक है तो मानसिक स्वास्थ्य ठीक नही है अथवा किसी का मानसिक स्वास्थ्य ठीक है तो शारीरिक स्वास्थ्य ठीक नही है, अत हम कैसे उन्हे स्वस्थ कह सकते हैं। हम देख रहे हैं कि आज एक सार्वजनिक रोग के आक्रमण से हम गुजर रहे हैं और उस रोग से मुक्ति कैसे और कब मिलेगी। इसका कोई भी भरोसा हमे सोच में भी नही आ रहा है।

आयुर्वेद में जो स्वस्थवृत्त का वर्णन हमें मिलता है। यह प्रात शय्या त्याग से प्रारम्भ होकर रात्रि को शैय्या ग्रहण अथवा यो कहा जाय कि दूसरे दिन शैय्या त्याग तक कौन समय किस तरह से हमे बिताना चाहिये—उसका विषद विचारण है—जोकि दिनचर्या के रूप मे हमारे सामने है। शैय्या त्याग का समय, प्रात काल व्यायाम, अभ्यग, स्नान, वस्त्र परिधान, शरीर विन्यास, ईश्वर आराधना, भोजन, अपने जीविकोपार्जन का उपाय, निद्रा, विवाहितो के लिए मैथुन तक का नियम आयुर्वेद शास्त्र मे वर्णित है। इसके अलावा विभिन्न ऋतुओ मे हमारा रहन-सहन किस प्रकार का होना चाहिये जिससे ऋतुओ के परिवर्तन के कारण स्वाभाविक रूप से भी हम रोग के शिकार न बनें, इसका विस्तृत वर्णनात्मक उपदेश हमे ऋतुचर्या के रूप में आयुर्वेदशास्त्र मे मिलता है। यह तो हुआ व्यक्तिगत स्वस्थवृत्त। इसके अतिरिक्त सामाजिक स्वस्थवृत्त के रूप में महामारियो से बचने का उपाय भी हमारे पूर्वजो ने आयुर्वेद मे समाविष्ट किया है। केवल इतना ही नही, हमारे प्राचीन ऋषियो ने स्वस्थवृत्त के एक अविच्छेद अग के रूप मे सद्वृत्त का भी वर्णन किया है। जोकि हमारी प्राचीन सस्कृति की एक विशेषता है। प्रारम्भ से ही आयुर्वेद ने वैज्ञानिक विवेचन के रूप मे शरीर व मन का अविच्छेद सम्बन्ध माना है क्योकि मानसिक स्वास्थ्य विशेष रूप से नैतिक अवस्था के ऊपर निर्भर रहता है। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य लाभ के उपाय के रूप में सद्वृत्त का वर्णन हमे मिलता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर्य, मिथ्याभाषण, ईर्ष्या, द्वेष, मानसिक क्षुद्रता आदि से प्रभावित व्यक्ति कभी भी मानसिक स्वास्थ्य सुख का अनुभव नही कर सकते हैं। इसके अलावा सच्चरित्रता सत्यवादिता, उच्चादर्श प्रियता, सभ्य व भद्र आचरण,

कर्त्तव्य परायणता तथा समाज के प्रति अपना-अपना उत्तर-दायित्व निभाना भी सद्वृत्त के अन्दर परिगणित होता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिये उपरोक्त दुर्गुणो का त्याग तथा सद्गुणो का अवलम्बन परमावश्यक है—जिसका हमारे पूर्वजो ने सद्वृत्त के नाम से वर्णन किया है। अगर हम थोडा सा इस विषय पर विचार करें तो हमे प्रतीत होगा कि वस्तुत सद्वृत्त के आचरण के विना हमे मानसिक शाति नही मिल सकती है और मानसिक स्वास्थ्य के अभाव मे शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी दिनचर्या भी विफल होगी।

आयुर्वेद मे कहा गया है—"ब्राह्ममुहुर्त उत्तिष्ठेत्" अर्थात् ब्राह्म मुहूर्त मे शय्या त्याग करना चाहिये। ब्राह्म मुहूर्त का माने सुवह को साढे चार वजे के लगभग है। आज के युग के मनुष्यो के लिये इसकी कल्पना भी असम्भव प्रतीत होती है। कम से कम ९९ प्रतिशत जनता के लिये यह कार्य दुरूह है। ब्राह्म मुहुर्त में उठकर शौचादि प्रात. कृत्यो के वाद स्नान, सन्ध्या पूजन आदि से निवृत्त होकर प्रात कालीन प्राकृतिक सौंदर्य के उपभोग से शरीर व मन मे जो प्रफुल्लता आती है—उसकी तुलना किसी भी अन्य परिस्थिति से नही हो सकती है। आज के युग मे सूर्योदय देखना ही पाप है। शय्यापार्श्व में जव तक चाय की प्याली नही आती है—तव तक शय्यासुख को कैसे विसर्जित किया जा सकता है। विना मुँह हाथ धोये चाय पीना आज का फैशन वन गया है। उसके वाद ही दफ्तर की या व्यापार धन्धे की फिक्र पड जाती है। अपना प्रात कृत्य ठीक तरह के सम्भव ही कहाँ है। किसी तरह से मलोत्सर्ग व स्नान के वाद ही उपाहार की व्यवस्था होती है। सन्ध्या पूजन से निवृत्त होना या तो वाद के लिये अथवा वृद्धावस्था के लिए रिजर्व रखा जाता है। और दिन के कामकाज से अवसर मिलने के वाद ही पुन. घर लौटने का सवाल आता है। इसके ऊपर क्लव, सिनेमा, विशेषकर सिनेमा का सेकेण्ड शो आदि से अवसर मिलने के वाद ही निद्रा का सवाल आता है। अत Early to bed and early to rise, makes a man happy, healthy and wise इस पाश्चात्य सदुक्ति का आज के युग मे कोई भी उपयोग नही है। अत सुवह ८–९ वजे के पहिले शय्या त्याग का प्रश्न ही नही उठता है। आखिर शरीर की थकान को मिटाने लिये उपयुक्त निद्रा का उपयोग तो होना ही चाहिये। चाहे वह स्वाभाविक रूप से हो या अस्वाभाविक रूप से अर्थात् औषधियो के सहयोग से हो। जहाँ ऐसी परिस्थिति है—वहाँ "ब्राह्म मुहर्त उत्तिष्ठेत्" इस आर्षोपदेश का महत्व ही कहा रह सकता है।

अव लीजिये दाँत का सवाल! आज गली-गली मे दाँत के डाक्टर, दाँत की चिकित्सा सिखाने के जहाँ-तहाँ डेन्टल कालेज हैं—जहाँ दाँत के विशेषज्ञ तैयार किये जाते हैं। वचपन से ही दाँत की खरावी, मध्यायु तक सब ही दाँत नकली। आवश्यकता न रहने से वे दाँत आलमारी मे और आवश्यकता पडने पर वे दात मुँह मे, न दात का दर्द और न दाँत की वीमारी। इससे अच्छा और क्या हो सकता है। परन्तु इसी भारतवर्ष मे एक समय ऐसा था जवकि चीन के परिव्राजको ने भारतवासियो के दाँत देखकर आश्चर्यचकित और मोहित होकर अपने भ्रमण वृत्तान्तो मे इसकी प्रशसा की थी। प्राचीनकाल मे न तो टुथ ब्रुश थे और न टुथ पेस्ट ही। हमारे पूर्वज नीम, खदिर, मुलेठी, करज, वव्वुल आदि की डालियो से दातुन किया करते थे। कुछ डालियाँ थी कड़वी कुछ थी मीठी और कुछ रहती थी कसैली। इसका भी निश्चित उद्देश्य मुँह के स्वाद के ऊपर ध्यान रखकर दोषो के विचार कर डालियो का निर्णय किया जाता था। ताजी डालियो को चवा-चवाकर मुलायम वना लिया जाता था, जिससे दात को मेहनत करनी पडती थी। उसके साथ-साथ विभिन्न रसो को मसूढो के अन्दर तक प्रवेश कराते हुये मुलायम टुथ ब्रुश रूपी डालिया दात तथा मसूढो को साफ किया करती थी। इससे मसूढो मे मजवूती, किसी भी प्रकार के विपाक्त जीवाणुओ का नाश के साथ मुख शुद्धि हुआ करती थी। उसके वाद जिह्वा साफ की जाती थी। इस तरह से मुह धोने के वाद खाने की वस्तु स्वादिष्ट लगती थी। मसूढ़े मजवूत होने के कारण खाद्य-वस्तु चवाकर खाने मे दातो को थकावट महसूस नही होती थी और वृद्धावस्था तक दाँत साथ देते थे। कभी भी आलमारी मे उठाकर रखने की जरूरत नही पडती थी। आज नकली दात तो एक फैशन सा वन गया है। सुतरा आयुर्वेदीय पद्धति से दन्त धावन, जिह्वा आलेखन का उपदेश देना व्यर्थ ही प्रतीत होता है।

अब आइये—थोड़ा सा व्यायाम के सम्बन्ध मे विचार करे। प्राचीनकाल मे व्यायाम करना एक नित्य कर्म माना जाता था। इसके गुण वर्णन प्रसग मे चरक ने बताया है—"शरीर चेष्टा या चेष्टा स्थ्यैर्यार्था बलवर्धिनी, देह व्यायाम सख्याता मात्रया त समाचरेत्। शरीरोपचय कान्तिर्गात्राणा सुविभक्तता, दोपाग्नित्वमनालस्य स्थिरत्व लाघव मृजा। श्रम क्लमपिपासोष्ण शीता दीना सहिष्णुता, आरोग्य चापि परमम् व्यायामादुपजायते ॥ (च.सू. ५)। इस तरह से व्यायाम के द्वारा हमारे पूर्वज स्वस्थ, बलवान शरीर के अधिकारी बनकर रोगो से दूर रहा करते थे और सुखी दीर्घ जावन यापन किया करते थे। आज के युग मे व्यायाम व्यवसाय करना एक हीन व्यवसाय समझा जाता है। यह तो मजदूरो का काम है यापहल वानो का ही काम माना जाता है। साधारण मनुष्य के लिये विशेपत. सभ्य समाज के लिये व्यायाम एक अपमानजनक तथा अनावश्यक कार्य माना जाता है। उसका फल भी हमारे सामने मौजूद है। बालक-बालिकाओ से लेकर तरुण युवक-युवतियो, अधेड़ स्त्री-पुरुष और वृद्ध-वृद्धाओ का भग्नस्वास्थ्य हमे सदा सशकित रखता है। शारीरिक गठन की न्यूनता, परिश्रम करने मे असमर्थता, विभिन्न प्रकार के रोग और असामयिक वार्द्धक्य न केवल हमारे व्यक्तिगत जीवन को दुःखी बना रहा है—बल्कि हमारे सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन को भी हानि पहुँचा रहा है। रक्तचाप वृद्धि, मधुमेह, हृदयरोग आदि व्याधि जो पहिले कदाचित् सुनाई पडती थी वे आज प्राय सुनाई पडने लगी और हम इन रोगो की चिकित्सा की खोज मे लगे हुये रहते है। रोग के निदान के ऊपर ध्यान देकर उससे बचने के लिये प्राकृतिक उपायो के ऊपर हमारा ध्यान अभी तक आकृष्ट नही हो पा रहा है—यह दुर्भाग्य का विषय है।

भारतीय सस्कृति के अनुसार नित्य स्नान एक नैमित्तिक कार्य ही माना गया है। शारीरिक व मानसिक शुद्धि के लिये नित्य स्नान एक परमावश्यक कर्तव्य है। स्नान के पूर्व शरीर मे तैल मर्दन की व्यवस्था आयुर्वेद मे वर्णित है और उसी के अनुसार हमारे देश मे प्राचीनकाल से ही यह प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा का गुण वर्णन अनावश्यक है। शरीर मे स्निग्धता व कान्ति प्रदान करने मे, मर्दन के कारण चर्माभ्यन्तर मे अधिक रक्त सचार से तैल मर्दन की विशिष्ट उपयोगिता है। स्नान के समय अगोछे या तौलिये से अतिरिक्त तेल को निकाल दिया जाता था, जिससे रोमकूप साफ हो जाता है—जिससे शारीरिक मलोत्सर्ग की क्रिया सरलता से होती है। साथ ही साथ चर्म को आवश्यक पोषण पदार्थ भी मिल जाता है। जिससे उसकी स्वस्थता मौजूद रहती है—कान्ति मे वृद्धि होती है। परन्तु आधुनिक चर्या मे स्नान को नित्य नैमित्तिक एक आवश्यक कर्म नही माना जाता है। आज की सभ्यता मे ऊपर की शोभा ही प्रधानत है भीतर मे चाहे कुछ भी हो। इसलिये स्नान तो—अवसर का विनोद मात्र ही रहा है, अवसर जिस दिन और जिस समय मिला तब ही स्नान कर लिया जाता है, न अवसर मिला तो दो-दो, तीन-तीन दिन तक स्नान नही होता है—इसकी क्या परवाह है? हाथ पैर व मुंह मे साबुन लगा लिया और शिर में तैल लगाकर अच्छी तरह से केश विन्यास कर लिया गया तो बस, स्नान की आवश्यकता ही क्या है? आज तो साबुन, स्नो और पाउडर का ही युग है। तेल मालिश करना गवाँरो की प्रथा कहलाती है। नित्य साबुन के प्रयोग से मैल के साथ साथ चमडी से जो स्निग्ध पदार्थ निकल जाता है—जिसका फल यह होता है कि शरीरिक चर्म रूक्ष व लावण्य विहीन हो जाता है। दीर्घकाल तक अपनी पोपक वस्तु के न मिलने पर उसकी स्वस्थता नष्ट हो जाती है और धीरे धीरे नाना प्रकार के चर्म रोगो की उत्पत्ति होती है। फलस्वरूप आज 'स्पेशलिष्टो' की सख्या दिन प्रतिदिन बढ रही है। दाँतो के "स्पेशलिष्ट' चर्मरोगो के लिये स्पेशलिष्ट, नाक, कान, गले के लिये स्पेशलिष्ट, हड्डियो के स्पेशलिष्ट, हृदय रोग के लिये स्पेशलिष्ट, फेफडो के लिये स्पेशलिष्ट, आमाशय तथा आँतडियो के लिये स्पेशलिष्ट, मूत्र रोगो के स्पेशलिष्ट, नसो के लिये स्पेशलिष्ट इस तरह से धीरे धीरे हमारे सारे शरीर स्पेशलिष्टो के लिये ही विभाजित हो गया और आगे और भी विभाजन हो जावेगा—हमारे शरीर मे अपने लिये कुछ भी नही रह जावेगा। उनके भरोसे पर ही हमारी जिन्दगी बीतेगी कितनी सुविधा की बात है।

शिर मे तेल मालिश कर नहाना आज के फैशन मे उपयोगी नही है। आज तो 'शैम्पू' का युग है। उसके

बाद शिर मे "सेन्टेड आयल" को लगाकर केश विन्यास किया जाता है। नतीजा हम यही देख रहे है कि तरुणावस्था मे शिर के बाल सफेद हो रहे हैं, लडकियो मे अधिकाशत सूती या रेशमी चोटी के इस्तेमाल से अपनी केशहीनता को ढककर केशो की शोभा प्रकट करना चाहती है। आधुनिक चर्या के बदौलत आज कवियो का नारी-केश शोभा का वर्णन स्वप्न की वस्तु बन गई है—परन्तु हमे सोचने का अवसर कहाँ है ?

आधुनिक चर्या मे हमारे देश मे भोजन की नियमितता नही रह गई है। यहाँ हम पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण नही कर पाते है। जब सुविधा या अवसर मिला तब ही भोजन कर लिया—और अवसर या सुविधा नही मिला तो चाय के ऊपर ही दिन गुजर जाते है। इस अनियमितता का असर शरीर पर कितना बुरा होता है—इस तरफ हमारा ख्याल नही है। भोजन मे जिह्वा की तृप्ति पर ही ज्यादा ध्यान दिया जाता है। एतदर्थ अच्छा चरपरा भोजन और अधिकाधिक मिर्च मसाला का उपयोग आज नित्य नियम बन गया है। शरीर रक्षार्थ भोजन की आवश्यकता का ख्याल कम हो गया है—अब तो भोजन के लिये ही शरीर की आवश्यकता मानी जाती है। गरीबो की बात तो छोड ही दो, रईसो के घर मे भी "विटामिन की कमी"—एक नित्य नैमित्तिक व्याधि बन गई है। सन्तुलित भोजन किसे कहते है—इसका ज्ञान तो नही है, अपने मन पसन्द भोजन ही मिलना चाहिए—चाहे उससे शरीर मे हानि क्यो न हो—इसका ख्याल नही है। इसके ऊपर होटलो तथा रेस्टोरेन्ट की सख्या प्रति शहर मे दिन प्रतिदिन बढती ही जा रही है। घर का बना हुआ गोया जैसे पसन्द ही नही आता है। होटलो मे खाना एक शौक सा बन गया है। होटलो मे ताजा—बासी, उत्कृष्ट—अपकृष्ट, कुछ भी मिले जिह्वा की तृप्ति होना ही एकमात्र लक्ष्य है। अपवित्र, उत्सृष्ट बर्तनो मे भोजन कर, कप-तश्तरी मे चाय पीकर हम अपने स्वास्थ्य को किस तरह से खो रहे हैं—इस ओर हमारा ध्यान ही नही है। रेडियो से प्रसारित फिल्मी सगीतो के दिल बहलाने वाले सुरो मे डूबकर होटल के भोजन से स्वर्ग सुख का उपभोग होता है—साथ ही साथ शीघ्र ही स्वर्ग का रास्ता भी साफ हो जाता है। भोजन के नियमो को हम भूल ही गये हैं—जल्दी से जल्दी थोडा बहुत उदर मे डालकर कालेज या आफिस मे दौडना आज का नित्य नियम बन गया है। आज के व्यस्त युग मे धीरे धीरे भोजन या भोजन के उपरान्त थोडा सा विश्राम करने के लिये अवसर ही नही है। रोग अगर हुआ तो डाक्टर तो है ही है।

आज के युग मे आधुनिक चर्या का एक बहुमूल्य वरदान—धूम्रपान है। मुँह मे सदा ही सिगरेट रहना आज आधुनिकत्व का एक लक्षण माना जाता है। सौ रुपया कमाने वाले भी महीने मे दश रुपया का सिगरेट पीते है, दिन मे चार बडल बीडियो वाले भी मिलते हैं। इधर बडे-बडे अनुसन्धानकर्त्ता इस बात का प्रचार कर रहे है कि केन्सर रोग की वृद्धि का एकमात्र कारण अतिरिक्त धूम्रपान है। परन्तु आज के युग मे बिना सिगरेट पिये असभ्य कैसे बन सकते है। पुराने जमाने में हुक्का या गुडगुडी पीते थे, और वह भी वयोवृद्धि के साथ ही साथ पानी के अन्दर से तम्बाकू का धुआँ आता था—इससे तम्बाकू का असर काफी कम हो जाता है, परन्तु आज के युग मे यह प्रथा अचल, युगधर्म के खिलाफ है।

आधुनिक युग मे वस्त्र धारण का परिवर्तन भी विशेष रूप से लक्षणीय है। आफिस या स्कूल के कपडो मे ही भोजन कार्य सम्पन्न किया जाता है—जूता उतारने तक की जरूरत नही पडती है। पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान नित्य नवीन जीवाणुनाशक औषधियो के आविष्कार मे मत्त है—सुतरा रोग जीवाणुओ से क्या डर है। शीतकाल मे गरम कपडे खरीदना मुश्किल पडता है—परन्तु फैशन के लिये मलमल या टेरीलीन का उपयोग आधुनिक युग मे अशोभनीय नही है। आज हम बीसवी शताब्दी मे वास कर रहे है—यह कैसे भुलाया जा सकता है।

आधुनिक चर्या मे सिनेमा का दान अतुलनीय है। सिनेमा अकेली नही आती है साथ ही साथ दो चार उपसर्गों को लेकर ही आती है। सिनेमा से लाभ नही होता है। परन्तु "शकराचार्य" "दो बीघा जमीन", 'जागृति' जैसी फिल्म उस प्रकार जनता को विशेषरूप से युवक युवतियो को आकर्षित करने मे समर्थ नही होते हैं—जैसे

'बीवी, "अनारकली, "नागिन या 'जूली" आदि फिल्म कर सकते हैं। उसमे गाने तो दिन भर मे कण्ठ से स्वत गुंजरित होते रहते हैं। आधुनिक सज्जा मे सुसज्जिता नारी आम सड़क पर अपने नग्न सौन्दर्य का प्रचार करते रहते हैं। सहशिक्षा के बदौलत युवक युवतियों मे और भी विकृति आ गई है। प्राचीन शास्त्र काल के अनुसार ब्रह्मचर्य की बात आज के युग में स्वर्ग प्राप्ति हो चुकी है। क्योंकि आयुर्वेद शास्त्र मे कहा गया है—

स्मरणं कीर्त्तनं केलि प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निवृत्तिरेवच ॥"
एतन्मैथुनं अष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिण.।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमायुरारोग्य सौख्यदम् ॥"

परन्तु आज के युग के लिये यह शास्त्रोक्ति अचल है—चाहे ब्रह्मचर्य शब्द को शब्द कोष से निकाल ही क्यो न देना पड़े।

आधुनिक चर्या मे भगवान का स्थान ही नही है। सब ही प्रकृति की 'स्वाभाविक देन है। भगवान का महत्व दिन प्रतिदिन घटते-घटते नहीं के बराबर हो चुका है। माता-पिता, गुरु-द्विज मे भक्ति भी अनावश्यक बताई जाती है। पूजा, पाठ, भगवदाराधना आदि हसी मजाक की बात हो गई है। इसे समय का अपचय ही बताया जाता है। शय्या त्याग के साथ ही साथ भगवद्दर्शन या स्मरण प्राचीनचर्या का एक विशिष्ट अग था। आयुर्वेदोक्त सद्वृत्त का यह प्रथम सोपान कहलाता था। परन्तु आज भगवत स्मरण चिन्तन के बजाय सिनेमा अभिनेत्रियो का स्मरण-चिन्तन आधुनिक सभ्यता विशेषकर युवक-युवतियो के लिये आधुनिक चर्या का एक अग बन गया है। अधिकतर वयस्कों के लिये अन्यान्य खल वैषयिक चिन्ता भगवत् स्मरण की जगह अधिकार कर बैठी है। भगवत् स्मरण इनके लिये केवल दुःख कष्ट के अवसर के लिये ही सीमित रह गया है। शय्यात्याग करते ही भगवत् दर्शन-स्मरण करने पर, भगवान के श्रीचरणो मे आत्म निवेदन करने पर जो अभूतपूर्व आनन्द का अनुभव होता है—उससे जो अनुप्रेरणा मिलती है। वह दिनभर की कार्य सूची के सूक्ष्म पालन मे आवश्यक सहायता प्रदान करती है—इसमे सन्देह नहीं है।

अत. हम देखते हैं-आधुनिक चर्या मे हमारे जीवन को सुखी के बदले मे दुखी ही बना डालते हैं। हमारे पूर्वजों ने भारत के प्राचीन आचार व्यवहार से इससे कही अधिकतर शारीरिक तथा मानसिक सुख का उपयोग कर हमसे अधिक दीर्घजीवी, स्वास्थ्यवान रहकर सुख की जिन्दगी बिताते थे और आज हम पाश्चात्य चकाचौध मे फंसकर अनन्त तकलीफे उठा रहे हैं। भारत की परम्परा भारतवासी के लिये शुभदायी तथा शोभादायक है, कौआ को मयूरपुच्छ धारण न कभी शोभा दिया है—और न कभी दे सकेगा। यह अतीव सत्य है और जितनी जल्दी हम यह समझ पायेंगे—उतनी ही जल्दी हमारे लिये मगल-दायी होगा।

—कविराज श्री एस एन. बोस, डी एम सी ए., आयुर्वेद वृहस्पति इत्यादि, भूतपूर्व प्रिन्सिपल, दयानन्द आयुर्वेद कालेज, जालन्धर तथा आयुर्वेद विश्वभारती, सरदार शहर, राजस्थान तथा भूतपूर्व रिसर्च आफिसर, महात्मा गाधी स्मृति चिकित्सा महाविद्यालय, इन्दोर तथा इन्डियन काउन्सिल आफ मेडिकल रिसर्च, नई दिल्ली-१

(पृष्ठ २११ का शेषांश)

स्त्री के साथ रात्रि मे सहवास करे। ऐसा करने से पुत्र सन्तान की प्राप्ति होती है।

हमारे शरीर का सार पदार्थ 'वीर्य' है, जिसके सम्बन्ध में चरक का यह स्पष्ट आदेश है—

आहारस्य परंधाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मन.।
क्षयो ह्यस्य बहून् रोगान् मरणं वा प्रयच्छति ॥
॥ च नि ६/१० ॥

भोजन का मूल तत्व शुक्र है, इसकी रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि इसके क्षय से अनेक रोग तथा मृत्यु तक हो जाती है। यहाँ तक कि ब्रह्मचर्यहीन पुरुष को रसायन सेवन का भी अधिकार नही है, यथा—"अथ खलु सप्त-पुरुषा रसायन नोपयुञ्जीरन्, तद्यथा-अनात्मवलवान्।"
—सु. चि ३०/४।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्मचर्य हमारे जीवन का सारभूत रहस्य है, जो इस लोक और परलोक दोनों को सुखी बनाने मे अत्यन्त सहायक है। इसके अभाव से ही हमको अनेक प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। अत. सुखी जीवन के लिये इसका व्यवहार अत्यावश्यक है।

—श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
एम. ए पी-एच. डी. आयुर्वेदाचार्य, साहित्याचार्य
अध्यक्ष-संस्कृत विभाग, डी ए वी. कालेज, वाराणसी।

डा० साहव का जन्म १० अगस्त १९०२ मे ग्राम भूपतिपुर, पो० चिरभाकोट जि० आजमगढ़ (उ०प्र०) मे हुआ। उर्दू, हिन्दी, अग्रेजी, वगला आदि भाषाओं के ज्ञाता, स्वास्थ्य सम्वन्धी अनेक पत्रिकाओ के अस्थाई एव स्थाई सम्पादक, लगभग ४ दर्जन से अधिक स्वास्थ्य सम्वन्धी तथा अन्य विपयो की पुस्तको के लेखक, धन्वन्तरि के प्राकृतिक चिकित्साक के सफल लेखक—'सम्पादक, डा० साहव वर्तमान मे भारतीय प्राकृतिक विधापीठ एव चिकित्सालय, डायमण्ड हार्वर रोड, पो० २४ परगना, वेस्ट वगाल, वाया कलकत्ता-२७ के प्रधानाचार्य एव प्रधान चिकित्सक हैं। आपका विस्तृत परिचय इसी विशेपाङ्क मे पृष्ठ ५२ पर प्रकाशित हुआ है।

आपने 'उत्तम स्वास्थ्य के लिए आदर्श दिनचर्या' का वर्णन ५९ पृष्ठ मे लिखकर भेजा था जिसे सक्षिप्त कर पाठको के लाभार्थ यहा प्रकाशित किया जा रहा है। विशेपाक की सीमित पृष्ठ सख्या के कारण आपका पूर्ण लेख प्रकाशित न हो सका, इसका हार्दिक खेद है।

—विशेष सम्पादक

उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिये जीने की कला का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके लिये जीवन की पद्धति सीखकर तदनुसार आचरण करना जरूरी है। ऐसे ही जीवन को नियमित जीवन कहा जाता है, और नियमित जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति ही सच्चा आरोग्य प्राप्त करता है। जो वुद्धिमान हैं वे ऐसा ही नियमित जीवन व्यतीत करते हुए ससार मे वडे-वडे कार्य करने मे सफल होते हैं। उदाहरण के लिये, नियम और समय द्वारा १२५ वर्प तक जीवित रहने के दृढ प्रतिज्ञ महात्मा गाधी के मृत्युपर्यन्त उत्तम स्वास्थ्य का रहस्य उनकी विशिष्ट कार्यशैली और समय एव आदर्श दिनचर्या मे ही निहित था। वह अपनी घडी के गुलाम और समय के प्रभु थे। वह प्रकृति के सकेतो को समझते थे और भगवान की इच्छा को वूझते थे। वह जो कुछ करते थे सकारण और विधिवत करते थे। उनके छोटे से छोटे कार्य के सम्पादन मे भी एक कला होती थी। वह सही अर्थो मे जीवन की कला जानते थे, जिसकी वजह से ही वह अतिमानव कहलाये, युग-पुरुष कहलाये, महात्मा कहलाये, और ससार मे ऐसे वड़े-वडे काम कर दिखाये जिसे एक साधारण आदमी सोच भी नही सकता।

जीने की कला एक वहुत वडा विपय है। इसके अनेक अङ्गोपाङ्ग है। हम इसके एक अङ्ग 'दिनचर्या' पर यहाँ थोडा सा प्रकाश डालेंगे।

१. प्रभात जागरण

'ब्राह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत्स्वस्थोरक्षार्थमायुष ।' तथा 'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थ चानुचिन्तयेत ।' शास्त्रो मे आया है । जिसका सक्षेप मे अर्थ यह है कि सवेरे तडके उठने से स्वास्थ्य और आयु की वृद्धि होती है । तथा उस वक्त अपने धर्म (मानव-धर्म) एव अर्थ (जीवकोपार्जन) के सम्बन्ध मे विचार करना उपयोगी होता है ।

ब्राह्ममुहूर्त सूर्योदय के तीन-साढे तीन घन्टा पूर्व होता है या ४ वजे के लगभग । यही समय शय्या त्यागने का होता है । सायकाल जल्दी सो जाना और प्रात. काल ४ बजे ही उठ जाना न केवल उत्तम स्वास्थ्य के लिए ही उपयोगी है, अपितु ऐसा करने से मनुष्य की बुद्धि भी प्रखर होती है और धन-धान्य एव ऐश्वर्य की भी उपलब्धि होती है । इस सम्बन्ध मे अंग्रेजी की एक बहुत पुरानी कहावत भी मशहूर है—

Early to bed and early to rise,
Makes a man healthy, wealthy and wise

ब्राह्ममुहूर्त को स्वर्ग बेला या अमृत वेला भी कहते हैं । इस समय शरीर, उसकी इन्द्रिया तथा बुद्धि आदि सब स्वच्छ एव निर्मल रहती है और सवेरे का उठना उन्हे और भी स्वच्छ बना देता है । इस समय की वायु इतनी शुद्ध और स्वास्थ्यवर्द्धक होती है, इस वक्त मन की प्रसन्नता एव बुद्धि की तीव्रता इतनी अधिक होती है कि जो भी काम शरीर या मस्तिष्क से लिया जाता है, वह बहुत ही सुखसाध्य एव सुसम्पन्न और फल दायक होता है । जटिल से जटिल सासारिक समस्यायें इस समय सामान्य प्रयास से ही आसानी से सुलझ जाती हैं । इस समय शय्या त्याग देने से मनुष्य के शरीर मे स्फूर्ति तो दिन भर बनी ही रहती है, साथ ही साथ उसमे तेज और ओज की भी वृद्धि होती है । क्योकि प्रात जागरण से वीर्य की पुष्टि और रक्षा होती है ।

२. प्रात. दर्शन एवं ईश-प्रार्थना

प्रात काल आंख खुलते ही किस वस्तु विशेष का सर्वप्रथम दर्शन लाभ करना चाहिये, हमारे शास्त्रो मे इसका भी बडा महत्व है ।

प्रात.काल जागकर परन्तु पलको को खोलने के पहले सर्वप्रथम अपने इष्टदेव या ईश्वर का ध्यान और चिन्तन करना चाहिये । उसके बाद यदि आप माला रखते हो तो उसका स्पर्श करना चाहिये और भगवन्नाम लेना चाहिये । यदि आपके कमरे मे दर्पण हो तो उसमें अपने मुखारविन्द का दर्शन भी शुभ है । शास्त्रकारो ने प्रात काल सर्वप्रथम दही, घी, सफ़ेद सरसो, बेल तथा गोरोचन आदि वस्तुओ का दर्शन भी कल्याणकारी और शुभ माना है । चिरजीव रहने की इच्छा करने वालो को घी में अपने मुखमण्डल के प्रतिबिम्ब का दर्शन करना चाहिये । यदि ऊपर लिखी हुई वस्तुओ मे से सयोगवश कोई भी वस्तु प्राप्त न हो सके तो अपने दोनो हाथो की हथेलियो का ही दर्शन कर लेना चाहिये । यथा—

कराग्रे वसते लक्ष्मी कर मध्ये सरस्वती ।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते कर दर्शनम् ॥

पापी, अधा, नकटा, काना, कौआ, बिल्ली, गधा, तेल तथा तेली आदि का सर्वप्रथम प्रातः दर्शन करना अशुभ माना गया है । अत इनसे बचना चाहिये । प्रात. काल सोना या मैथुन करना शास्त्रो मे प्राण नाशक बताया गया है । ऐसा करने से शरीर मे सुस्ती और उत्साह-हीनता का प्रावल्य हो जाता है, हृदय दुर्वल हो जाता है और सारे दिन तबियत गिरी-गिरी और खिन्न रहती है ।

पूतिमासं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणदधि ।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्य प्राण हराणिषट् ॥

अर्थात् सड़ा मास खाना, वृद्धा स्त्री से सम्भोग, आश्विन का सूर्य, तत्काल का जमाया हुआ दही, प्रभात समय का मैथुन एव निद्रा—ये छ प्राण को तत्काल नाश करने वाले होते हैं ।

प्रात दर्शन के बाद ही हमे ईश—प्रार्थना में सलग्न हो जाना चाहिये । यह प्रार्थना घर के सभी सदस्यो के साथ सामूहिक हो तो अति श्रेष्ठ है, अन्यथा अकेले ही करनी चाहिये ।

ईश-प्रार्थना को सफल बनाने के लिये ये दस बातें अत्यन्त आवश्यक हैं, जिनके अभाव मे प्रार्थना खरी नही उतर सकती— १—प्रभु प्रेम, २—प्रभु गुण-गान ३—[illegible]नाम चिन्तन, ४—आत्म समर्पण, ५—[illegible]पनापन, ६—त्याग, ७—निष्कपट हृदय, ८—[illegible], ९—[illegible] तथा १०—अनासक्ति ।

३. उष पान

प्रतिदिन प्रात काल ईश-प्रार्थना के वाद पावभर से लेकर तीन पाव या इससे भी ज्यादा स्वच्छ सायकाल का रखा जल नासिका द्वारा या मुंह से ही चूस-चूस कर पीना उपःपान कहलाता है। ऐसा करने से शरीर सम्पूर्ण रूप से विकार रहित हो जाता है। सूर्यास्त के वाद, भीतर वाहर साफ किये हुये विशुद्ध तावे के पात्र मे (पात्र इतना वडा होना चाहिये जिसमे कम से कम एक सेर पानी आ जावे। तावे का ही पात्र इसलिये कि रात भर तावे के पात्र मे जल रहने से उसमे तावे के कुछ स्वास्थ्य वर्द्धक गुण आ जाते है। तावे के वर्तन मे रखा हुआ जल १२ घन्टो मे शुद्ध हो जाता है। चांदी के पात्र मे रखा हुआ जल और भी विशुद्ध होता है। पर उप·पान के लिये तावे का ही पात्र उत्तम माना गया है।)शुद्ध छना हुआ कूपोदक गगोदक या हसोदक जल भरकर और तावे के ही ढक्कन से ढक कर किसी साफ ऊँची और खुली हुई जगह पर रख दे जहाँ कीडे-मकोडो का वास न हो,और जहाँ केवल आकाश का ही साया हो। ऐसी हालत मे यदि जलपान विल्कुल ही ढका न जाय तो और अच्छा है। क्योकि जल खुला रहने से उस पर रात मे आकाश स्थित विभिन्न नक्षत्रो का प्राकृतिक तथा रासायनिक प्रभाव पडता है जिससे पात्र का जल गुण मे अमृत तुल्य हो जाता है। सुवह इस जल को पीने के पहले अपनी नाक के दाहिने स्वर को देखें, वह चलता है या नही। यदि वह चलता हो तो उस तरफ की नाक के छिद्र को अच्छी तरह से साफ करके उस छिद्र से वह जल धीरे-धीरे पीना चाहिये। और यदि उस समय दाहिना स्वर न चलता हो तो उस समय थोडी देर के लिये वाये करवट लेट जाना चाहिये। ऐसा करने से दाया स्वर चालू हो जायेगा। तव उसी दाहिने नथुने से उस जल को पीना चाहिये। अगर नासिका द्वारा जल पीने का अभ्यास न हो तो जल को मुख द्वारा ही धीरे-धीरे चूस चूस कर पीना चाहिये। किन्तु दोनो दशाओ मे दाहिने स्वर का चलते रहना जरूरी है। मुख की अपेक्षा नासिका द्वारा उष पान करना विशेष लाभ-दायक होता है। नासिका द्वारा उष पान पहले एक तोला जल से आरम्भ करना चाहिये, वाद मे धीरे-धीरे वढाना चाहिये। और जव तक नाक द्वारा जल पीने का अभ्यास न हो जाय तव तक मुख द्वारा ही जल पीकर लाभ उठाना चाहिये। कांच या चांदी के गिलास में जिसके किनारे पतले हो उष जल लेकर नाक या मुख द्वारा धीरे-धीरे पीना चाहिये। नाक से उष पान करते समय मुंह को जरा ऊँचा कर ले, फिर जल भरे गिलास के किनारे को दाहिने नथुने मे लगावें। अव पानी को शनैः शनैः नाक की राह भीतर जाने दे। पहली वार गये पानी को पेट में न जाने दें, अपितु मुंह की राह मे उसे वाहर निकाल दें। इससे मुंह और नाक की भीतरी सफाई हो जायगी। फिर सिर को जरा पीछे की ओर झुका कर दाहिने नथुने से पानी धीरे धीरे गले मे जाने दें और वहाँ से घूट-खींच कर पेट मे उतारते जाय। इस प्रकार कुछ दिनो के अभ्यास से ही पानी अपने आप पेट मे जाने लगेगा। नाक द्वारा पानी पीने मे जवर्दस्ती नही करनी चाहिये, और न पानी को श्वास की सहायता से ही भीतर खीचना चाहिये या सुढकना चाहिये। हल्का जुकाम होने पर भीतर गले के आस पास जैसा लगता है,वैसीही बेचैनी पहले पहले नाक द्वारा पानी पीने पर कुछ घन्टो तक वनी रहती है। नाक से पानी पीते समय कभी-कभी आँखो मे आंसू भर आते है। भीतर कुछ भनभनाहट सी भी होती है। किन्तु इससे घवराना नही चाहिये। अभ्यास सिद्ध हो जाने पर ये सव असुविधायें आप से आप दूर हो जाती हैं।

उष पान करने के वाद फिर सोना ठीक नही। उष. पान करने के थोडी देर वाद शौच जाना चाहिये।

भारत जैसे गरम मुल्क मे रहने वालो को उष पान करना बहुत लाभदायक है। ग्रीष्म काल मे किया गया उष पान अमृत का काम करता है। इस क्रिया को आरम्भ करने वाले यदि इसे फाल्गुन मास से आरम्भ करे तो अच्छा रहता है।

उषः पान से लाभ—

वैद्यक ग्रन्थो मे उष.पान को अमृतपान कहा गया है। इससे पेट साफ होता है, पित्त जनित रोग नही सताते और रक्त शुद्ध होकर उसके द्वारा हृदय, मस्तिष्क एव समस्त स्नायु मण्डल को वल प्राप्त होता है। वैद्यक ग्रथो मे लिखा है—

सवितुरुदय काले प्रसृती. सलिलस्य पिवेदष्टो।
रोग जरा परियुक्तो जीवेद्वत्सर शत साग्रम्॥

अर्थात् सूर्योदय के समय आठ अन्जुली जल पीने से मनुष्य कभी बीमार नही पड़ता, बुढापा नही सताता और १०० वर्ष से पहले मरता नही तथा—

अर्श शोथग्रहण्यो ज्वर जठर जरा कोष्ठमेदो विकारा.,
मूत्राघाता सपित्ता श्रवण गल शिर श्रोणि शूलाक्षिरोगा ।
ये चान्ये वात - पित्तज कफ कृता व्याधय सति जन्तो-
स्तांस्तान व्याप्त योगादय हरतिपय पीतमन्ते निशाया ।

अर्थात् बवासीर, सूजन, सग्रहणी, ज्वर, पेट की बीमारियाँ, कोष्ठवद्धता, चर्वी का बढ़ जाना, मूत्र सम्बन्धी रोग रक्तपित्त के विकार, नासिकादि से रक्तस्राव, कान, शिर व कमर के रोग, तथा नेत्रदोष आदि अनेक व्याधियाँ निशा के अन्त मे अभ्यास पूर्वक जलपान करने से अच्छी हो जाती हैं और भी—

विगत घनं निशीये प्रातरुत्थाय नित्यं,
पिबति खलु नरोयो घ्राण रन्ध्रेण वारि ।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्य तुल्यो
वलि पलित विहीन सर्व रोगैर्विमुक्त ॥

अर्थात् गत बीत जाने के वाद, तड़के उठते ही जो व्यक्ति नासिका द्वारा जल पीता है । उसकी बुद्धि निर्मल होती है, आखो की ज्योति वढती है, सिर के बाल अकाल मे श्वेत नही होते तथा वह सब रोगो से बचा रहता है । उष.पान का जल गुर्दों मे जाकर उन्हे शुक्तिशाली बनाता है, और आतो को पुष्ट करता हुआ उनमे सचित मल को बाहर निकालने मे सहायक होता है । मूत्र-पिण्डो द्वारा शोषित होकर तथा वहाँ पर रहने वाले दूषित तरल पदार्थों में मिलकर यह जल मूत्र रूप मे बाहर निकल जाता है । इसका कुछ अ श प्रस्वेद और प्रश्वास के रूप मे भी निकलता है और जो बच रहता है वह शरीर के पाचक रसो से मिलकर शरीर के विभिन्न अङ्गो मे प्रवाहित होता है, जिसके परिणामस्वरूप पाचक रस परिपुष्ट एव परिपक्व होकर खाये हुए अन्न को सफलता पूर्वक पचाने मे समर्थ होता है । यह जल रक्त की बढी हुई उष्णता को शमन करके शरीर की आन्तरिक गर्मी को कम करता है और उसे पसीने के रूप मे बाहर निकाल देता है, तथा उदर या आमाशय मे सचित लार आदि पदार्थो को धोकर पाकाशय या अतडियो मे पहूचा देता है । इस जल से अधपचे अन्न तथा मल के टुकडे आदि बनकर गुदा मार्ग द्वारा बाहर निकल जाते हे ।

उष पान नियमित रूप से नित्त करने से आँख आना तथा रतौंधी आदि सभी नेत्र दोष दूर होकर दिव्य दृष्टि की प्राप्ति होती है । बुद्धि तीव्र होती है तथा शरीर सब प्रकार से निर्मल और निर्विकार हो जाता है ।

जिनकी प्रकृति गरम है, जिन्हे नाक से खून गिरने की बीमारी है, जिन्हे लू जल्दी असर कर जाती है तथा जिनका मस्तिष्क थोडा-सा भी दिमागी कार्य करने से थक जाता है - गरम हो जाता है, ऐसे लोगो के लिए उष पान ही एक ऐसी दैनिक क्रिया है जो स्थाई लाभ पहूँचाती है ।

उष जल देर मे पहुच कर समीकृत नही होता, अर्थात पचता नही । उसका काम अन्तडियो आदि भीतरी अवयव समूह को धो-धाकर साफ कर देना एव उन्हे शक्ति और उत्तेजना प्रदान करके स्वय उन धोये हुए मलो के साथ पेशाव, पसीना और अन्य मलो के रास्ते शरीर से बाहर निकल जाना है । उष पान का सबसे अधिक लाभ यही होता है कि मलाशय और मूत्राशय पर उसका प्रभाव वहुत अच्छा और शीघ्र पडता है, जिससे पेट के प्राय: सभी विकार धीरे-धीरे शान्त हो जाते है और उनकी पुनरावृत्ति नही होने पाती ।

गिन्ने पानी जो पिये, हर भूंजि जो खाय ।
दूध बिमारी जो करै, तेहि घर वैद्य न जाय ॥

यहाँ गिन्ने पानी से मतलव उष पान से ही है । और भी—

अजीर्णो भेषजं वारि जीर्णे वारि वलप्रदम् ।

अर्थात् उष जल-पान से ही जीर्ण और अजीर्ण दोनो अवस्थाओ मे समान लाभ होता है । मतलव यह कि उष पान करने वाले को यदि अजीर्ण की बीमारी है तो उसकी दवा उष पान तो है ही, पर यदि किसी को अजीर्ण नही है और भोजन खूब हजम हो जाता है, फिर भी वह उष पान करता है तो उस दशा मे उष जल से उसके कोष्ठ की खुश्की दूर होकर उसमे तरावट आयेगी, जिसकी वजह से उसके आमाशय और सारे शरीर मे अधिकाधिक वल की वृद्धि होगी । घाघ ने भी कहा है--

प्रात काल खटियाते उठिके पीवै तुरतै पानी ।
कबहू घर मे वैद्य न अइहे, बात घाघ की जानी ॥

आयुर्वेद मे इसीलिए आदेश है—
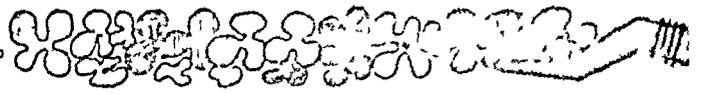
दिवस्यान्ते पिबेतदुग्धं निशान्ते शीतल जलम् ।

अर्थात् दिवस के अन्त मे, यानी सोते समय दूध और रात्रि के अन्त मे यानी सोकर उठते समय शीतल जल पीना चाहिये ।

४ शौच–कर्म

शब्द कोप में शौच का अर्थ पवित्रता है, परन्तु व्यवहार मे यह शब्द मल-विसर्जन के अर्थ मे ही अधिक प्रयुक्त होता है ।

हमारे शरीर से मल या क्लेद, जिसको विजातीय द्रव्य भी कहते हैं, शरीर के उत्सर्ग मार्गों गुदा, मूत्रेन्द्रिय, त्वचा, नाक, कान, नख तथा आँख द्वारा चार रूपो मे वहिर्गत होता है—

(१) वायव्यावस्था मे, जैसे अधोवायु और श्वास ।

(२) तरलावस्था मे जैसे मूत्र, पसीना, आँसू ।

(३) गीली अवस्था मे, जैसे पाखाना, श्लेष्मा और त्वचा-मल ।

(४) ठोस अवस्था मे, जैसे वाल और नख ।

पर शौच से मुराद केवल गीली अवस्था वाले विष्ठा से ही होता है । नीचे इसी विपय पर लिखा जा रहा है ।

हमारे पेट के निचले भाग मे दो आते होती हैं—छोटी आँत व वडी आँत । छोटी आत की लम्बाई साधारणत २२ फीट के लगभग होती है और व्यास डेढ इच होता है । इस आत मे स्थित असख्य छोटे-छोटे मुहो द्वारा हमारे खाये भोजन का शरीर के लिये उपयोगी अश चूस लिया जाता है और वचा हुआ अनुपयोगी मल धीरे-धीरे खिसक कर वडी आत मे चला जाता है । इस वड़ी आत द्वारा भी उस मल का वचा खुचा शरीरोपयोगी सार अश विशेपतया जल का अश सोख लिया जाता है और तव गीली मिट्टी के समान केवल निस्सार मल ही वच रहता है जो शौच के समय गुदा मार्ग द्वारा वाहर निकल जाता है । यही शौच कर्म है । उत्तम स्वास्थ्य के लिये प्रतिदिन इस कर्म को प्रात साय दो वार जरूर करना चाहिये । ऐसा करने से या ऐसी आदत डालने से आदमी न केवल नीरोग और स्वस्थ रहता है, अपितु उसकी आयु भी लम्बी होती है ।

एक पाश्चात्य डाक्टर ने एक्सरे द्वारा परीक्षण करके पता लगाया है कि २४ घण्टो मे केवल एक वार शौच जाने वालो की आतो को मल से खाली होने मे ५० से ५३ घण्टे लगते हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि उनकी आंतो मे वह मल ५०–५३ घण्टो तक पडा-पडा सडा करता है । ऐसा मल आत के अपने जोर मे कम और ऊपर से आने वाले मल के वोझ से ही अधिकतर नीचे सरककर वाहर होता है । मल का इतनी अधिक देर तक अनावश्यक रूप से आत मे पडा रहकर सडते रहना ही उसमे असह्य दुर्गन्ध का भी कारण होता है । वरना छोटी आत से वडी आत तक पहुँचने मे उसमे किसी प्रकार की वदवू नही होती और न सडन ही । अत जिस व्यक्ति के मल मे वदवू हो उसे समझ लेना चाहिये कि उसकी वडी आत में मल आवश्यकता से अधिक देर तक ठहरा रहा । गाय, वकरी आदि पशुओ के मल मे जो नाममात्र की गध होती है, उसका रहस्य यही है कि उनकी आतो मे मल देर तक ठहर कर सडने नही पाता । अपितु कुल का कुल प्रत्येक वार शौच करते वक्त निकल जाकर मेदा साफ हो जाता है और आत मे एकत्र होकर मल पुराना नही पड़ने पाता ।

'साय प्रातर्मनुष्याणामशन वेद निर्मितम् ।' अर्थात् वेद मे मनुष्यो को प्रात साय केवल दो वार ही भोजन करने की आज्ञा है । इससे प्रगट होता है कि हमे प्रात और साय दो वार ही शौच भी जाना चाहिये । और इससे कम या अधिक वार जाने को रोग की निशानी समझनी चाहिये ।

शौच करने का स्थान—

शौच करने का स्थान जो भी हो और जहाँ भी हो, साफ- सुथरा और जनशून्य होना चाहिये, तभी शौच भली प्रकार हो सकेगा, अन्यथा नही । गाधी जी कहा करते थे कि उनका शौचालय उतना ही साफ-सुथरा रहना चाहिये जितना कि उनका भोजनालय व पुस्तकालय । गन्दे, वदवूदार तथा नर्क तुल्य शौचगृह मे नाक मे कपडा ठूँस कर वैठने से तो वहुतो को पाखाना उतरता ही नहीं, और वहाँ का गन्दा वातावरण उनके आते हुये पाखाने को भी रोक देता है । अत खुलकर पाखाना लाने के लिये हमारे शौचगृह का अत्यन्त साफ-सुथरा और दुर्गंधहीन होना परमावश्यक है । शहरो की म्युनिस्पलिटी वाले पाखानो, स्कूलो-कालेजो, आफिसो तथा अन्य सार्वजनिक शौचालयो

मे जहाँ शौच करने के लिये लाइन लगानी पडती है, शौच-निवृत्ति के लिये कदम रखना तो एक मुसीवत मोल लेना है। क्योंकि वे शौचालय इतने गन्दे होते हैं कि जिनको देखकर नर्क भी नाक सिकोडती है। ऐसे शौचालयो मे बैठकर शौच करना बडे हिम्मत का काम होता है। शहर के मकानो के शौचगृह कम गन्दे नही होते। इन शौचगृहो मे से किसी मे यदि किसी गाव वाले व्यक्ति को, जो हमेशा खुले मैदान या खेत मे शौच करने का आदी होता है, कभी शौच करने जाना पडे तो निश्चित रूप से उसका पाखाना सटक जायगा और वह बिना पाखाना किये ही उसमे से भाग आवेगा। इसलिये घर के अन्दर के शौचालयो को खूब साफ रखना चाहिये और ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि उसमे किया हुआ पाखाना २८ घण्टो मे कम से कम दो तीन बार तो जरूर ही साफ करवा दिया जाया करे। ऐसा करने से उसमें बदबू न रहेगी और वह सदैव साफ सुथरा बना रहेगा। घर मे घर के प्रत्येक ४ व्यक्ति पीछे एक स्वच्छ शौचालय होना स्वास्थ्य और सफाई की दृष्टि से अच्छा रहता है। शौचालय मे फ्लैश लैट्रिन होना सर्वोत्तम है।

जिसको सुविधा हो उसे शौच के लिये सदैव घर से दूर जनशून्य मैदानो, खेतो या जगलो मे जाना चाहिये। साथ मे एक छोटी सी लोहे की खुर्पी रखनी चाहिये। एकान्त देखकर शौच के लिये बैठने के पहले खुर्पी से थोडी जमीन खोदकर गड्ढा कर लेना चाहिये, और उसी गड्ढे में शौच करना चाहिये। बाद को खोदी हुई मिट्टी को किये हुए पाखाने पर डालकर उसे ढक देना चाहिये। यह शौच करने की उत्तम विधि है।

शौच करने का ढंग—

जिस प्रकार ससार मे सभी कामो के करने का एक प्राकृत ढग होता है, उसी प्रकार शौच करने का भी ढग होता है। शौच करने जाते समय सर्व प्रथम अपने पैर की अगुलियो पर खडे हो जाइये। अपने शरीर को जितना ऊपर तान सके ताने। ऐसाकि पिण्डलियो और जाँघो मे खूब खिंचाव जान पडे। अब इसी अवस्था मे बीस कदम आगे और बीस कदम पीछे को धीरे धीरे चलें। इस क्रिया के बाद पाखाना करने बैठने से पाखाना आसानी से खुलासा होता है।

दूसरी क्रिया यह है कि जब आप पाखाना करने बैठे तो अपने ऊपर और नीचे की दत-पक्तियो को एक के ऊपर दूसरी रखकर उस वक्त तक दवाए रहे जब तक कि आप पाखाने से निवृत्त न हो जाये। इससे शौच तो खुल कर होगा ही, साथ ही साथ दाँतो के सारे रोग दूर होकर वे बज्र के समान सुदृढ हो जायेगे और मृत्यु-पर्यन्त सुदृढ बने रहेगे।

तीसरी क्रिया यह है कि खुले सिर पाखाना कभी न करे। सिर पर कोई तौलिया या अगोछा जरूर लपेटे रखे। इस क्रिया के अनेक लाभ हैं। पाखाना करते वक्त शरीर नङ्गा रहे तो अति उत्तम, अन्यथा अधोवस्त्र के अलावा कोई हल्का सा ही वस्त्र शरीर पर होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि शौच करते समय समस्त शरीर ठडा और सिर गरम रहना चाहिये। इससे भी वड़े लाभ हे।

निकलते सूर्य की तरफ पीठ करके, जलाशय के निकट, पेड़ के ऊपर से, बहते जल मे, हरे भरे खेतो मे, तथा सार्वजनिक स्थानो के समीप शौच करना वर्जित है।

शौच करते समय बोलना, खाँसना, छींकना, आदि भी वर्जित है। इससे शरीर के भीतरी अङ्गो पर जोर पडता है और वे रुग्ण हो जाते है। शौच करते वक्त पेट के बायें भाग को हाथ से दबाए रहने से शौच साफ होता है।

यो तो शौच करना स्वस्थ व्यक्तियो के लिये कुछ मिनटो का काम है, मगर इस काम मे उतावलापन और जल्दीबाजी नही होनी चाहिये। आँत से सबका सब मल निकल जाय तभी शौच-कर्म को पूर्ण समझना चाहिये। इसका मतलब यह हरगिज नही है कि उस वक्त कुल का कुल मल निकालने के लिये जोर लगाया जाय या काँखा-कूँखा जाय जैसीकि बहुत लोगो की आदत होती है। ये सब बुरी आदते है। इनसे रोग पैदा होते हैं। काँखने से तो कभी कभी काच तक निकल पडती है जो बड़ी मुश्किल से पुन. अन्दर अपनी जगह पर जाती है।

शौच करते समय मन चिन्तित न रहना चाहिये। शौच करते समय किसी उधेड बुन में रहने या दुनिया भर की बातें सोचते रहने की आदत बुरी है। ऐसा

करने से पाखाना करने मे समय भी अधिक लगता है और वह साफ भी नही होता।

शौच निवृत्ति हो जाने पर गुदा को साफ मिट्टी व जल से मल मल कर धो डालना चाहिये। साथ ही मूत्रेन्द्रिय को भी साफ जल से खूब अच्छी तरह धो देना चाहिये। इन मलोत्सर्ग–मार्गो को साफ न रखने से गुदा भ्रंश, अर्श, क्षत, सुजाक, दाद, खुजली फोडा-फुन्सी, तथा प्रदरादि रोग हो जाते है। शौच निवृत्ति के बाद आम दस्त लेते समय मूत्रेन्द्रिय पर कुछ मिनटो तक ठडे पानी का तरेरा देने से लगभग सभी वीर्य सम्बन्धी रोग आसानी से दूर हो जाते हैं और शरीर के समस्त स्नायु मण्डल को शक्ति मिलती है। मल मार्गो को साफ कर लेने के बाद हाथो और पैरो का भी तीन से सात बार शुद्ध मिट्टी और स्वच्छ जल से धो डालना चाहिये।

५. दातून कुल्ला

दातून करने की जरूरत ही क्यो ? —

गुदा की भाँति ही मुख तो मल निष्कासक अङ्ग नही है, फिर गुदा की भाँति ही मुख को भी क्यो प्रतिदिन जरूर साफ किया जाय ? इस प्रश्न पर पहले थोडा विचार कर लेना अप्रासगिक न होगा।

यदि हमारे दाँत, जीभ व मुँह प्रकृतित स्वच्छ व साफ नही रहते और हमे उन्हे रोज रोज साफ करने की जरूरत पडती है तो इसके यह मानी हुये कि या तो हम गलत भोजन करते हैं। यह निश्चित है कि जो लोग असयमी हैं तथा जिनका रहन सहन और खान-पान प्रकृति विरुद्ध है उनको दात, जीभ और मुँह की, ही रक्षा के निमित्त नही, वरन् अपने अस्तित्व तक की रक्षा के लिये चिन्तित होना पडता है।

दन्तधावन की निकृष्ट विधि—

बाजारू टूथपेस्टो और उत्तेजक दन्त मजनो का व्यवहार, दन्तधावन की निकृष्ट विधि है। इन पेस्टो और पाउडरो में तेजाबी अश अधिक होने के कारण दात बहुत जल्दी धवल तो प्रतीत होने लगते हैं, पर वास्तव मे वह तत्कालिक धवलता ही उनके विनाश का कारण होती है। क्योंकि पेस्टो और पाउडरो मे स्थित तेजाबी अश से एक तरफ दांत धवल होते हैं तो दूसरी तरफ उसकी रासायनिक प्रक्रिया से दाँतो की जडें खोखली होती रहती हैं जो कालान्तर मे दातों को उखाड कर ही दम लेती हैं। डाक्टरो का कहना है कि यह समझना भी भूल है कि दातो पर ब्रुश आदि करने से वे कीटाणुओ से बचे रहेगे, बल्कि उल्टे ब्रश करने से दातो की जडें खुल जाती हैं जिनमे घुसकर कीटाणु सदैव पनपते और पलते हैं।

दन्त धावन की उत्तम विधि—

दत धावन की उत्तम विधि—दातो के लिए सर्वोत्तम ब्रुश और पेस्ट नीम या बबूल आदि की ताजी दातुन एव सर्वोत्तम मजन पिसा नमक और सरसो के तैल का मिश्रण है। दातुन कैसी हो, इसके लिए भावप्रकाश मे लिखा है—

> **भक्षयेद्दन्त घवन द्वादशांगुलमायतम् ।**
> **कनिष्ठिकाग्रवा स्थूलमृज्वग्रन्थि तथा व्रणम् ।।**
> **एकैकं घर्षयेद्दन्त मृदुनाकूर्च फेन तु ।**
> **दत शोधन चूर्णेन दन्तमासान्य बाधयन ।।**
> **क्षौद्र त्रिकटु कावतेन तैल सिन्धु भवेनवा ।।**

अर्थात्, कानिष्ठा अगुली जितनी मोटी, बिना गाँठ की, ठोस व सीधा दातून ले। उसकी मुलायम कूँची से एक-एक दात को घिसे। फिर शहद, सोठ, मिर्च और पीपल के चूर्ण अथवा तेल मिलाये हुए सेंधा नमक से दाँतो को मांजे। दातून की लम्बाई १२ अगुल होनी चाहिये।

मोटी दातून करने के पक्ष मे एक कहावत भी प्रसिद्ध है। यथा—

> **मोट मुखारी जो करै, दूध बियारी खाय।**
> **बासी पानी जो पियै, ता घर बैद न जाय ।।**

मुखारी का तात्पर्य यहा दातून से ही है।

कडुये वृक्षो में नीम का दातून श्रेष्ठ है, कषैले वृक्षो मे बबूल का, मीठे वृक्षो मे महुआ का तथा चरपरे वृक्षो मे करज वृक्ष की दातून श्रेष्ठ है। हिलते दाँतो के लिये मौलसिरी की दातून सबसे अच्छी होती है।

नीम की दातून दातो के लिये अमृत तुल्य है। नीम मे गन्धक का अश अधिक होने से उसकी दातून कीटाणु नाशक होती है। उसका ताजा रस दाँतो को पुष्ट करता है। उन्हे साफ करता है, मुँह की दुर्गन्ध दूर करता है, तथा दातो को अनेक रोगो से बचाता है। बबूल की दातून से मसूढे मजबूत होते हैं।

दातून के स्थान पर मजन भी प्रयोग किया जा

सकता है, लेकिन ध्यान इस बात का रखना चाहिये मजन जिससे दात माजा जाय वह बढिया किस्म का हो जो दातो को साफ और स्वच्छ तो करे पर उनमे कोई दोष न पैदा करे।

यदि समय पर दातून मजन कुछ भी न मिले तो बालू मिली हुई साफ मिट्टी दातो के लिये सर्वोत्कृष्ट मजन साबित होगी। मिट्टी से दातो को मलने के बाद ठण्डे पानी से कुल्ली करने से मसूढो को कोई रोग नही होता, दातो की जडे मजबूत होती हैं और वे मोती की तरह चमकने लगते है।

दातून से दातो को माज चुकने के बाद दातून को लम्बाई से दो टुकडो मे फाड कर बारी-बारी से दोनो से जीभ पर जमी मैल को उतारना चाहिए। इस क्रिया को चीरी करना कहते है। जीभ खुरचने की इस क्रिया के लिए कुछ लोग चाँदी, सोने या ताम्बा की बनी बनाई चीरी भी काम मे लाते है।

६. क्षौर-कर्म

क्षौर-कर्म करने-कराने के सम्बन्ध मे दो राये है। एक पक्ष का कहना है कि शरीर पर उगे हुये बालो को कटवाना प्रकृति विरुद्ध है। कारण, वे शरीर के लिये उपयोगी एव उसकी रक्षा के निमित्त होते हैं। प्रमाण मे वे कहते हैं कि मनुष्येतर सभी जीव-जन्तु अपने शरीर के बालो को बडी सम्हालकर रखते हैं, और उनके काट लिये जाने पर व अस्वस्थ हो जाते है, फिर मनुष्य ही क्यो अपने बालो को तरशवाय और इस तरह अपने स्वास्थ्य की हानि आप करे। दूसरे पक्ष का कहना है कि शरीर के बाल और नख, शरीर के विजातीय द्रव्य है। इन्हे शरीर से अलग करते रहना ही ठीक है। यहाँ पर इन दोनो रायो पर थोडा-थोडा विचार किया जाता है।

पहले, पहली राय को लीजिये। प्रकृति ने हमारे समग्र शरीर पर असख्य छोटे छोटे बाल परन्तु सिर, दाढी, नाक के नथुनो, बरौनियो, पलको, मूँछो के स्थान, बगलो, एव गुह्य भागो पर काफी बड़े-बडे बाल पैदा किये हैं। जिनमे से क्षौर कर्म करते या कराते समय हम केवल सर के बाल, दाढी के बाल, मूँछो और बगलो के बाल, तथा कुछ लोग गुह्य भागो और नाक के बाल साफ करते या करवाते है, और शेष समस्त शरीर पर फैले छोटे छोटे अनगिनित बालो, बरौनियो और भौहो को बिना साफ किये ही मरते दम तक छोडे रहते है। स्पष्ट है कि हम शरीर के जिन स्थलो के बाल बनवाना पसन्द करते है, वह केवल इसलिये कि वे स्थल साफ-सुथरे होकर थोडा सुन्दर दिखने लगे। नही तो यदि क्षौर-कर्म का कोई अन्य मन्तव्य होता तो शरीर पर के सभी स्थलो के बाल अनावश्यक समझकर दाढी, मूँछ आदि के बालो के साथ ही कटवाये जाते। पर ऐसा होता नही है अत. यह सिद्ध हुआ कि शरीर पर के किसी स्थल का बाल कटवाना प्रकृति सम्मत नही है और हम जो ऐसा करते है वह केवल अपनी सौन्दर्य वृद्धि के लिये ही करते है। इतना ही नही, शरीर के किसी स्थल का बाल कटवाना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक भी होता है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने से पता चलेगा कि हमारे शरीर के जो-जो स्थल महत्वपूर्ण एव कोमल हैं वे ही हड्डियो के ढाँचो तथा लम्बे-लम्बे बालो से रक्षणार्थ ढके होते है। वे महत्वपूर्ण और कोमल स्थल है—मस्तिष्क, नेत्र, नासिका-रन्ध्र, बगले, मर्दो की छाती, एव गुह्य भाग। शरीर के ये सभी स्थल अस्थियो और लम्बे लम्बे बालो से सुरक्षित रहते हैं, अत इन स्थलो के बालो को काट-कर इन्हे निरावरण कर देना किसी वस्त्रधारी व्यक्ति को निवस्त्र करने के समान ही होगा।

सर के बाल हमारे ताज है। उनसे हमारे सर की रक्षा होती है। वे गर्मी मे हमारे मस्तिष्क को ठडा एव सर्दी मे गरम रखते है।

दाढी के बाल भी मुडवाना ठीक नही। कारण, मर्दो के कण्ठ के एक कोमल भाग को सर्दी गर्मी से रक्षा करने के लिये प्रकृति ने पुरुषो की ठोडी पर बाल उगाये है। अनुभव से जाना गया है कि जिनको जरासी ही सर्दी लगने से जुकाम हो जाता है, उनके लिये दाढी रखना हितकर है। कहते है, दमा के रोगी यदि सर और दाढी के बाल बनाना त्याग दे तो उनका रोग धीरे-धीरे चला जाता है।

आजकल मूँछ मुडवाते या कटवाते है। किन्तु यह स्वास्थ्य के लिये अहितकर है। जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टर

रिटर एम० टी० ने अनेक वर्षो के अनुभव के पश्चात् सिद्ध किया है कि मूँछ मुड़वाने से आँखो की ज्योति कम हो जाती है।

नाक के अन्दर के बाल भी कभी नहीं कटवाने चाहिये। ऐसा करने से आंखों की रोशनी कम हो जाती है। प्रकृति ने बालों को भी सकारण उत्पन्न किया है। अन्त सास द्वारा जाने वाला प्राण-वायु इनसे छनता हुआ फेफड़ों में प्रवेश करता है जिससे हानिकारक कीटाणु परमाणु, तथा धूलादि इनमें उलझकर रह जाते हैं और केवल विशुद्ध वायु ही भीतर जा पाती है। इसी प्रकार शरीर के बालों को भी शरीरोपयोगी समझकर उनका कटवाना प्रकृति के नियमों के विरुद्ध समझना चाहिये।

दूसरे पक्ष की राय से सर, दाढी आदि के बाल अनावश्यक होते हैं, इसलिये उन्हें कटवाते रहना चाहिये। अत. यहाँ पर हम अपनी तरफ से कुछ न कहकर इस बात का भार हम अपने बुद्धिमान पाठकों पर ही छोड़ना चाहते हैं कि वे किस पक्ष का समर्थन करते हैं। फिर भी क्षौर-कर्म के इतिहास तथा विधि-विधानादि पर थोड़ा प्रकाश डाले बिना इस प्रकरण को समाप्त करना ठीक नहीं प्रतीत होता।

क्षौर-कर्म के सम्बन्ध में वेदों में उल्लेख है। उनमें क्षौर-कर्म करने के लिये उस्तरा कैसा हो? नाई कैसा हो? आदि पर सूक्ष्म विवेचन हुआ है। इससे स्पष्ट है कि क्षौर-कर्म की क्रिया संसार में लाखों वर्षों से प्रचलित है। मालूम होता है आदि काल में कुछ लोग क्षौर-कर्म करवाते थे और कुछ लोग नहीं। आज भी पंचकेशी साधू बाल आजन्म नहीं बनवाते, जबकि सन्यासियों का मूँड़ मुड़वाना शास्त्रों के अनुसार जरूरी होता है। वैदिक युग में ब्रह्मचारीगण गुरुकुलों में एक खास ढंग से मूँड़ मुड़वाते थे। और गाय के खुर के बराबर सर के बीचों बीच चोटी छोड़ते थे। उस जमाने के गृहस्थों के बाल बनवाने के ढंग भी कुछ अवश्य ही रहे होंगे। शायद मुसलमानों के जमाने से भारत में पट्टा रखने का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। और अंग्रेजों के आ जाने के बाद लोग अंग्रेजी ढंग और काट के बाल बनवाने लगे, जो आधुनिक काल में भी प्रचलित है। आजकल बाल बनवाने और मूँछ कटवाने के भाँति-भाँति के काट लोग पसन्द करने लगे हैं। स्त्रियां भी बाल बनवाने लगी हैं। अत. बाल बनाने या बनवाने के सम्बन्ध में कुछ नियम यहाँ दिये जाते हैं जिनको कड़ाई के साथ पालन करना आवश्यक है—

१. चेहरे की खूबसूरती बढ़ाने के लिये कुछ लोग रोज बाल बनाते या बनवाते हैं, पर तीसरे चौथे दिन या अधिक से अधिक प्रति सप्ताह हजामत बनवाना काफी हो सकता है। जिनके दाढ़ी न हो, वे १५–२० दिन में एक बार बनवा सकते हैं।

२. बाजारू नाइयों की क्षौर-सामग्री से सतर्क रहना चाहिये। उनके उस्तरे, ब्रुश, कैंची आदि गन्दे और रोगाणुओं से भरे हो सकते हैं। अत. उन्हें साफ करवाकर और गरम पानी में उबलवाकर ही काम में लेना चाहिये, नहीं तो भयानक चर्म-रोग और रक्त विकार होने की बड़ी सम्भावना रहती है।

३. क्षौर सामग्री जैसे ही रेजर, ब्रुश आदि को भी उत्तम रीति से साफ करके ही काम में लाना चाहिये।

४. अच्छा हो यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी सामग्री अलग रखे, और दूसरे का उस्तरा साबुन आदि कभी न इस्तेमाल करे। दूसरे व्यक्ति की कघी भी इस्तेमाल करना खतरे से खाली नहीं है।

५. बाल बनाने वाला उस्तरा काफी तेज होना चाहिये। उस्तरा मोथरा होने से तकलीफ भी होती है और बार बार घिसने से चेहरे की चमडी काली सी पड़ जाती है।

६ बाल गलाने के लिये सस्ते साबुन का इस्तेमाल भूल से भी न करना चाहिये।

७. यदि नाई के हाथों हजामत बनवाना हो तो उसके हाथों को जल और मिट्टी से खूब धुलवा लेना चाहिये। उसके मुख और दांत भी यदि गन्दे हो, और उनसे बदबू आती हो तो उन्हें भी साफ करा लेना जरूरी है। नाई को किसी छूत के रोग से पीडित भी नहीं होना चाहिये।

८. हजामत के लिये सदैव गरम पानी का इस्तेमाल करना चाहिये।

९ बालो को जड से निकलवाने के लिये उल्टे उस्तरे से मुँडवाना, जिसे खूँटी निकलवाना कहते हैं, ठीक नही। इससे भी चेहरे की चमडी सख्त हो जाती है।

१०. बाल बनवाने के बाद शुद्ध सरसो का तेल ही इस्तेमाल करना चाहिये। ह्वाइट ऑयल पर बने विविध प्रकार के सुगन्धित तेलो के बाल समय से पहले ही सफेद हो जाते हैं और उनकी जडें कमजोर हो जाती है, जिससे वे जल्दी ही गिरने लगते हैं।

११. हजामत के बाद किसी प्रकार का पाउडर आदि लगाना अनावश्यक है। हा, फिटकिरी का चूर्ण मुलतानी मिट्टी मे मिलाकर पाउडर की जगह काम मे लाया जा सकता है। इससे गन्दे छुरे आदि के दोष दूर हो जाते है।

१२. हजामत बनाते वक्त नाई अक्सर छुरे को अपने पैर की पिंडली पर पैनाते हैं। ऐसा उन्हे हरगिज नही करने देना चाहिये।

१३. हजामत बनाने के लिए बाल उडाने का साबुन हरगिज काम मे नही लाना चाहिये। इससे त्वचा को बडी हानि पहुचती है।

१४ हजामत के बाद पानी और तेल मिलाकर बालो में लगाना, जैसे कुछ लोग करते हैं, हानिकारक है। इससे भी बाल जल्द सफेद हो जाते हैं।

१५ हजामत बन जाने के बाद स्नान जरूर करना चाहिये।

७. प्रातः भ्रमण

प्रात भ्रमण को घूमना, पवन-स्नान, वायु-सेवन, टहलना, वा हवा खाना भी कहा जाता है। इससे शरीर की बाहरी और भीतरी सफाई साथ-साथ होती है। इसी प्रकार टहलना आराम भी है और कसरत भी। क्योकि तेज और विधिवत् टहलने से शरीर की कसरत हो जाती है, और प्रात कालीन अमृतमयी वायु-सिन्धु मे हिलोरें लेते वक्त जब मन ससार की तमाम चिन्ताओं-परेशानियों से ऊपर उठकर आशा, शान्ति और उत्साहपूर्ण स्वर्गीय लोक मे जा पहुचता है, उस वक्त उसे अनिर्वचनीय सुख और शान्ति का अनुभव भी होता है।

टहलना सर्वश्रेष्ठ और सरल व्यायाम है, जिससे आध्यात्मिक, मानसिक तथा शारीरिक—तीनो लाभ प्राप्त होते है। वृद्धो, रोगियो तथा कमजोरी के लिये तो इससे बढकर लाभदायक कसरत कोई है ही नही।

जिस प्रकार हम नाक से प्रतिक्षण सास लिया करते है, सद्स्वास्थ्य के लिए उसी प्रकार हमारा अपनी त्वचा के असख्य छिद्रो द्वारा सास लेना भी अनिवार्य होता है, जो केवल नगे बदन या शरीर पर कम वस्त्र धारण करके टहलने से ही सम्भव होता है। कपडो से शरीर को सदैव लपेटे रहने से शरीर पीला पड जाता है और रोम कूप अकर्मण्य होकर शिथिल पड जाते है और बहुत से तो एकदम बन्द हो जाते है, जिसका फल यह होता है कि आये दिन कब्जियत, हृदय रोग तथा मधुमेहादि रोग सताया करते है।

प्रात भ्रमण का सही ढङ्ग—

प्रतिदिन प्रात काल सूर्योदय से प्रथम और साय काल सूर्यास्त के बाद, नगे शिर और नगे पैर, शरीर पर नाम-मात्र को वस्त्र धारण कर अथवा केवल एक लुङ्गी, कोपीन वा लगोट पहनकर, किसी खुली साफ और समतल जगह, जैसे घास का विस्तृत मैदान आदि मे, शरीर को बिल्कुल सीधा रखकर मौज और तेजी मे चलना, प्रात भ्रमण का सही ढग है। स्त्रिया प्रात भ्रमण करते समय एक साफ हल्की साडी धारण कर सकती है। गर्मियों मे चार से छ बजे तक का और सर्दियो मे पाच से सात बजे तक का समय भ्रमण के लिये बहुत उत्तम है। बर-सात मे बिना छाते के टहलना ठीक रहता है। टहलते वक्त दो बातो का विशेष रूप से ख्याल रखना चाहिये। एक तो टहलते हुए गहरी सास का लेना, दूसरे मेरुदण्ड अर्थात् पीठ की रीढ को एकदम सीधी हालत मे रखना। चलते वक्त सिर ऊपर की ओर उठा हुआ रहे, आँखे सामने अपनी ऊंचाई तक देखती रहे। घुटने बहुत न मुडे। दोनो हाथ अपने आगे और पीछे की पूरी पहुँच तक आसानी के साथ बिना तने हुए जाय। मुह बन्द रहे और नथुने बिना सिकुडे हुए हवा तेजी के साथ भीतर खीचे और बाहर निकाले। पेट के मुकाबिले मे सीना कुछ उभरा हुआ और कधे पीछे की तरफ होने चाहिये। टहलना जरा तेज चाल से होना चाहिए। जब थोडी थकावट मालूम होने लगे और बदन पर पसीना चुच चुका जाय तो टहलना बन्द कर देना चाहिये।
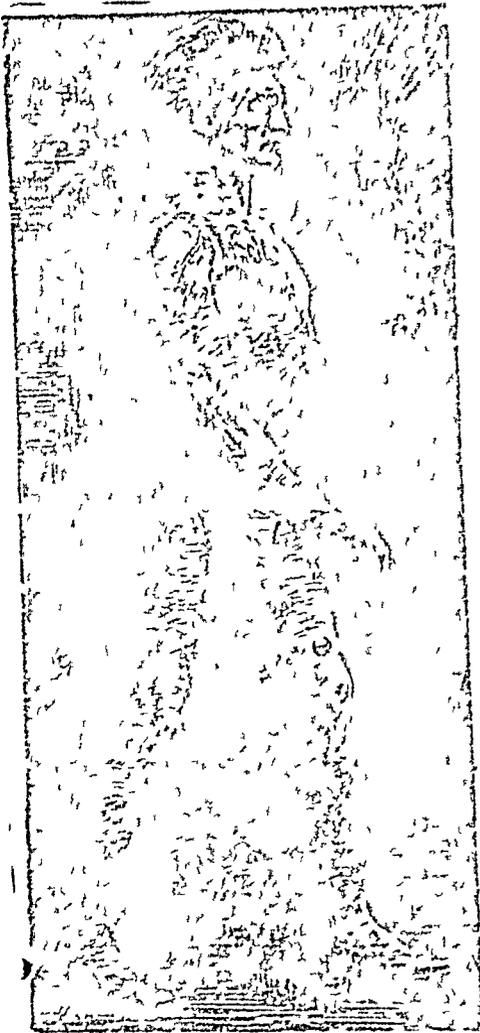
केवल शुद्ध वायु मे ही टहलना लाभकारी सिद्ध होता है। अशुद्ध स्थान के वायु का सेवन करने से पाचन-दोष, खाँसी, फुफ्फुस-प्रदाह तथा दौर्बल्य आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं। वायु पर दिशाओ का भी बहुत कुछ प्रभाव पडता है। पर स्वर्ग वेला, अर्थात् सूर्योदय के कुछ पहले, सभी दिशाओ का वायु सब प्रकार के दोषो से मुक्त होता है। इसीलिए स्वर्ग वेला मे वायु-सेवन हितकर होता है।

टहलने के लिये बस्ती से दूर कोई ऐसा साफ-सुथरा पथ चुनना चाहिए जिसके दोनो ओर हरे-भरे खेत लह-लहाते हो अथवा पथ किसी लम्बे-चौडे घास के मैदान से होकर गुजरता हो। ऐसे ही पथ पर टहल कर टहलने वाला नूतन जीवन, नूतन उत्साह एव नूतन स्वास्थ्य लेकर घर वापस आता है।

टहलते वक्त किसी प्रकार की बिलकुल आतुरता नही होनी चाहिए। टहलना तो बस धीरे से ही ठीक रहता है।

साधारणत एक स्वस्थ मनुष्य को रोज कम से कम ४-५ मील तक टहलना चाहिए। अधिक स्वस्थ मनुष्य ८-९ मील तक आसानी से टहल सकते हैं। ५-६ मील तक प्रतिदिन टहलना औसत स्वास्थ्य वाले व्यक्तियों के लिए ठीक होता है। मगर नौसिखिये पहले दिन ही दूर तक टहलने न चले जाय, बल्कि टहल तेजी और दूरी दोनो धीरे-धीरे बढानी चाहिए। टहलने की चाल १५ मिनट मे एक मील काफी है। कमजोर और रोगी व्यक्तियो को आरम्भ मे आधा या एक मील से अधिक कभी नही टहलना चाहिए। परन्तु जैसे-जैसे जीवनीशक्ति बढती जाय और ताकत आती जाय, यह दूरी धीरे-धीरे बढाते जाना चाहिए।

टहलते समय कैसे गहरी सास लेनी चाहिए, इसकी भी विधि है। एक सास मे सात कदम चलना चाहिए। उसके बाद चार कदम तक सास रोक रखनी चाहिए। फिर सात कदम तक सास बाहर निकालनी चाहिए। यही टहलते समय गहरी सास लेने की विधि है। मगर आरम्भ मे सास की इस कसरत के सम्बन्ध मे बडी साव-धानी बरतनी चाहिए। गहरी सास लेने का यह अभ्यास थका देने वाला कभी नही होना चाहिए।

टहलने की क्रिया पर टहलने वाले की मानसिक अवस्था का भी बहुत अधिक प्रभाव पडता है। इसलिए यदि टहलने का पूरा-पूरा लाभ उठाना है तो टहलते समय अपनी मानसिक अवस्था ठीक रखनी चाहिए। टहलना एक ड्यूटी न होकर आनन्द का साधन होना चाहिए। टहलते वक्त सिवा आनन्द मौज के मस्तिष्क मे और कुछ होना ही नही चाहिये।

यदि प्रात काल खुली जगह पर नगे बदन दौडा जाय या कोई हल्का व्यायाम भी नित्य किया जाय तो परम आरोग्य प्राप्त होगा।

टहलने का लाभ और भी अधिक उस वक्त होता है जब नगे पैर ओस से भीगी घास पर टहला जाय, कारण-घास मे औषधिया होती हैं और ओस-कणो से अगणित लाभ होते हैं। गीता कहती है—

पुष्णामि चौषधी सर्वा सोमोभूत्वा रसात्मक ।

अर्थात् भगवान कहते है, चन्द्रमा होकर मै सब औषधियो का पोषण करता हू । वनस्पतियो को यदि ओस न मिले तो वे बढ-पनप नही सकतीं ।

प्रात भ्रमण करने वाला यदि सतुलित प्राकृतिक भोजन पर रहकर, नियमित जीवन व्यतीत करते हुए, उचित विश्राम और मनोरजन के साथ नित्यप्रति टहलने की आदत डालता है तो एसा टहलना सोने मे सुगध का काम करता है ।

टहल कर लौटने पर यदि पसीना निकला हो तो सारे बदन को गीले कपडे से पोछ डालना चाहिये या इच्छा हो तो नहा भी सकते है । पर कमजोर और रोगी यदि टहलने के बाद तुरन्त स्नान न करे तो अच्छा है ।

टहलने वाले को टहलने से उचित लाभ के लिये अपने आतो की सफाई पर विशेष ध्यान रखना चाहिये । प्रातकाल शौचादि से निपटकर ही टहलने निकलना चाहिए और लौटने पर यदि पुन आवश्यकता जान पड़े तो शौच जरूर जाय ।

प्रात भ्रमण से लाभ—

हमारा जीवन मात्र सास पर टिका हुआ है। यदि सास नही तो हम नही । सास द्वारा जो वायु हम भीतर खीचते हे, उससे ओषजन (प्राण-वायु) का अश फेफड़ो द्वारा खिचकर रक्त मे प्रवेश कर जाता है और कार्वनद्वयोषद् का अंश बाहर निकल जाता है। इस तरह शरीर का रक्त, जिस पर हमारा उत्तम स्वास्थ्य निर्भर है, अनवरत शुद्ध होता रहता है । फेफड़ो मे रक्त-शुद्धि के लिए सदैव १६० क्यूबिक इञ्च वायु भरा रहता है, जिसको बाहरी विशुद्ध वायु से सदा बदलते रहना नितान्त आवश्यक है, जो प्रात. भ्रमण के बिना होना मुश्किल है । इसके अतिरिक्त हमारे शरीर के भीतर जगह-जगह पर स्थित पाच प्रकार के वायु—प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान के नैसर्गिक कर्म सुचारु रूप से सम्पन्न नही हो सकते, जब तक वे विशुद्ध न हो, और वे विशुद्ध होते है शुद्ध वातावरण मे गहरी सास लेने से जो मात्र प्रात भ्रमण से सम्भव हो सकता है । शरीर मे जीवन-शक्ति को कायम रखने वाला प्राण-वायु है । खुले ऊँचे एव पर्वतादि स्थानो का मुक्त वातावरण प्राण-वायु को बल देता है। यही कारण है जो असाध्य रोगो मे पीडित एव मरणोन्मुख रोगियो को डाक्टर लोग पहाडो पर रहकर वहाँ के मुक्त और स्वच्छ वायु मे सास लेने की सलाह देते हैं । प्राण-वायु को शुद्ध वायु-सेवन से बडा बल मिलता है । हृदय और फेफडो की शक्ति, जो कि जीवन का मूल है, प्रात भ्रमण से आसानी से प्राप्त की जा सकती है । यदि किसी के मन और शरीर दोनो निर्बल पड गये है तो उसके मानसिक और शारीरिक सगठन को सम स्थिति पर लाने के लिये शुद्ध वायु मे भ्रमण करने से बढकर कोई अन्य उपाय नही हो सकता । प्रात भ्रमण से दिमागी ताकत बडी शीघ्रता से बढती है। इससे मनुष्य की मानसिक दृष्टि निर्मल और तीव्र हो जाती है और वह कही अधिक निश्चयात्मक और सन्तोषप्रद तरीके से गूढ से गूढ प्रश्नो को हल करने मे सफलीभूत हो सकता है ।

८ व्यायाम

बहुतो का ख्याल है कि कसरत सिर्फ जवानो के लिये ही है, बूढो के लिए नही । ऐसे लोगो को जानना चाहिए कि उम्र की बाढ के साथ-साथ शरीर के लिए कसरत की जरूरत भी बढती जाती है, अन्यथा अकाल मृत्यु निश्चित है । ससार मे पशु-पक्षी मरते दम तक अथक श्रम करते रहते है, फिर मनुष्य के लिये वह क्यो आवश्यक नही ? हाँ, यह सही है कि बूढो की कसरत और जवानो की कसरत मे थोडा फर्क होता है। पर बूढो के शरीर के भी हर हिस्से मे रक्त का सचालन स्वाभाविक रीति से होते रहने के लिए उन्हे नि सन्देह कुछ ऐसी कसरते रोज जरूर ही करनी चाहिए जिससे शरीर समय से पहले ही शिथिल न पडने पाये । बूढो के लिए सबसे अच्छा व्यायाम रोज ४–५ मील टहलना माना गया है, जिसका अभ्यास करके उन्हे लाभ उठाना चाहिये । स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने, बुढापे को रोकने तथा भोजन को पचाने के लिए व्यायाम बूढा, जवान, बालक सबके लिए अत्यावश्यक है ।

स्वाथ्य सरक्षण मे व्यायाम का महत्वपूर्ण स्थान तो हे ही, साथ ही साथ प्रत्येक व्यक्ति के दैनिक कार्यो के सुचारू रूप से करने मे स्फूर्ति एव उत्साह लाने के लिए भी नित्य व्यायाम करना कम आवश्यक नही है । यदि व्यायाम करने के लिए समय नही निकाला जायगा

तो उसके अभाव मे रोगग्रस्त हो जाने पर उससे कही अधिक समय और धन व्यय करना पडेगा तब कही दैनिक कार्यों के करने की क्षमता पुन आ सकेगी। अत. प्रत्येक व्यक्ति को अपनी दिनचर्या मे कम से कम १०–१५ मिनट का वक्त व्यायाम के निमित्त जरूर रखना चाहिए चाहे उसका जीवन कितना ही संघर्षमय क्यो न हो। बिल्कुल कसरत न करने से थोडी सी भी कसरत कर लेना निश्चय ही अच्छा है, इसीलिए यहा पर कम से कम १०–१५ मिनट तक प्रतिदिन कसरत करने की शिफारिश की गयी है। अधिक समय देने वाले व्यायाम के लिए अधिक समय देकर अधिक लाभ उठा सकते हैं।

व्यायाम से होता यह है कि शरीर के भीतर हलचल मच कर गति उत्पन्न हो जाती है, जो उत्ताप को जन्म देती है और उत्ताप से शरीर के समस्त कोषाणु चैतन्य होकर अपना अपना स्वाभाविक कार्य करने लग जाते है। अर्थात् फेफडे अधिकाधिक आक्सीजन बाहर से खीच खीच कर शरीर के अशुद्ध रक्त को शुद्ध करने लगते हैं, रक्त मे तीव्र बहाव के कारण शरीर की नाडिया भी तेजी के साथ सक्रिय हो जाती हैं, तथा शरीर की मासपेशियां आदि भी पुष्ट होकर अपना-अपना कार्य भलीभांति समालने लगती हैं। हमारा भोजन हमारे शरीर रूपी इञ्जन को ईंधन पहुचाता है और व्यायाम उसके कल-पुर्जों को ठीक हालत मे रखता है और उनकी देख-भाल करता है। यही भोजन और व्यायाम मे परस्पर सम्बन्ध है।

व्यायाम मनुष्य का ही नही, प्राणिमात्र का एक प्राकृतिक गुण है—आवश्यकता है।' बिल्ली, कुत्ते तक अपने अपने तरीके से व्यायाम करते देखे जा सकते हैं। दूध पीता बच्चा जब पालने मे पडा-पडा अपने हाथ-पाँव फेंकता है तो व्यायाम करने का वह उसका अपना तरीका होता है, जिससे वह व्यायाम का पूरा-पूरा लाभ भी उठाता है। वाग्भट मे लिखा है—

> लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदस· क्षयः।
> विभक्तघनगात्रत्व व्यायामादुपजायते ॥

अर्थात्, व्यायाम करने से मनुष्य का शरीर हल्का हो जाता है, काम करने की शक्ति तथा अग्नि दीप्त होती है, तथा चर्बी क्षीण होकर शरीर सुन्दर और घन (सुडौल) हो जाता है।

व्यायाम का चुनाव—

यह तो स्पष्ट ही है कि जो व्यायाम बच्चो के लिये लाभदायक होता है, वह युवको के लिये नही, और जो युवको के लिये ठीक होता है, वह वृद्धो और स्त्रियो के लिये नही। इसी तरह जो व्यायाम युवको या वृद्धो के लिये उपयुक्त होता है, वह बच्चो या स्त्रियो के लिये उपयोगी नही हो सकता।

बच्चो और छोटे लडको के लिये खेल कूद वाले और हल्के किस्म के व्यायाम निश्चय ही लाभप्रद है। बडे लडको के लिए जरा उनसे कठिन व्यायाम उपयोगी होंगे। युवक सभी प्रकार के व्यायाम अपनी रुचि के अनुसार चुनकर कर सकते हैं। बूढो के लिये सबसे अच्छी कसरत टहलना ऊपर बताया ही जा चुका है। इसके अतिरिक्त नाव खेना तथा बागबानी आदि भी वे लाभ के साथ कर सकते हैं। जो बूढे शुरू से कसरती रहे हो, वे कसरतो को अल्प मात्रा मे आगे भी जारी रख सकते है। स्त्रियो को भी अपने लिए कुछ आसान व्यायाम चुनकर उन्हे करते रहना चाहिये। वैसे उनके लिए सर्वोत्तम व्यायाम तो अपने घर का सारा काम-धधा करना, चक्की चलाना, ओखल में धान कूटना, दही मथना, चर्खा कातना आदि ही हैं।

व्यक्ति विशेष के लिए उसके व्यवसाय और पेशा आदि को दृष्टि मे रखकर भी व्यायाम का चुनाव करना पडता है। कृषक वर्ग, मजदूर वर्ग, दूकानदार वर्ग, तथा आफिस मे बैठकर काम करने वालो के लिए अलग-अलग एवं विभिन्न प्रकार के व्यायाम लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। मजदूरो और किसानो को तो ऐसी कसरतें करनी चाहिये, जिनसे शरीर का शिथिलीकरण अधिक हो, और परिश्रम के कारण शरीर मे उत्पन्न हुये विष को बाहर निकाल फेंका जा सके। इस तरह से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एक मजदूर, एक दूकानदार, एक किसान, एक आफिस का बाबू, एक बेकाम का मनुष्य सभी एक ही तरह की कसरत करके कसरत का पूरा-पूरा लाभ तो नही ही उठा सकते, उल्टे हानि भी उठा सकते है।

अपने लिये कसरत चुनते वक्त मनुष्य को यह भी देखना चाहिये कि वह जो कसरत चुनता है उससे शरीर के सभी भागो पर जोर पडता है या नही। कारण, प्रकृति

का यह नियम है कि जिस अङ्ग से हम अधिक काम लेते हैं वह अधिक विकसित और पुष्ट हो जाता है। अतः यदि हम ऐसी कसरत चुनेंगे जिससे कुछ खास अङ्गो पर ही जोर पडता है तो हमारे बाकी अङ्ग कमजोर ही रह जायगे और तब हमारा शरीर उस कसरत से सुडौल बनने के बजाय बेडौल हो जायगा।

व्यायाम के प्रकार —

व्यायाम की अनेक पद्धतिया है, वैसे ही उनके अलग अलग नाम भी है। भारतीय व्यायाम, विदेशी व्यायामो से भिन्न होते है। भारतीय व्यायामो मे टहलना, तैरना, सूर्य नमस्कार, दण्ड-बैठक, कुश्ती, मुग्दर हिलाना, मलखम्भ की कसरत, लेजिम, गदा भाजना, साँग, करेला, पत्थर की नाल उठाना, गोला उठाना, चरस खीचना, लाठी भाँजना, बन्देश, फिरग, लकडी, फरी-गतका, बिनौट, लकड़ी चीरना, पेड पर चढ़ना, जमीन खोदना, कपड़े धोना, घोड़े की सवारी, दौडना, खेलना, बगीचे मे काम करना, नाचना, तथा गाना आदि शामिल है। इसी प्रकार जिजित्सू, पैरेलल बास, हॉरिजेंटल बार, चेस्ट इक्सपेंण्डर, बारबल, डम्बल, बाक्सिग, साइक्लिग, स्केटिंग, सैंडो व्यायाम, मूलर-व्यायाम, स्वीडिशलिङ्ग व्यायाम, जर्मनी एलिस ब्लोच व्यायाम, स्वीटजर लैण्ड का आर्थर एवब्लेनेल्प व्यायाम तथा रिंग-व्यायाम आदि विदेशी व्यायाम है।

भिन्न-भिन्न देशो की जल वायु और सहूलियत के अनुसार ससार मे भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यायाम प्रचलित है। भारतीय जल वायु, आहार-बिहार, तथा आर्थिक परिस्थिति आदि कुछ ऐसी है कि हम भारतवासियो के लिये हमारे देशी व्यायाम ही अनुकूल पड सकते है, विदेशी व्यायाम नही।

व्यायाम की सफलता मे सहायक—

(१) व्यायाम के लिये जो स्थान चुना जाय वह ऐसी खुली जगह हो जहाँ स्वच्छ और शुद्ध वायु काफी मात्रा मे आता जाता हो।

(२) स्त्रियो के आने-जाने के स्थान पर कसरत करना वर्जित है।

(३) व्यायामी को ठूस-ठूस कर, बिना भूख लगे, तथा अप्राकृतिक भोजन नही करना चाहिये।

(४) कसरत से पसीना आना स्वाभाविक ही नही आवश्यक भी है और कसरत के बाद किसी बन्द कमरे मे शरीर के पसीने को गीले कपडे से रगड कर पोंछ डालना या ताकत रहने पर ठण्डे पानी से स्नान कर डालना, उससे कम आवश्यक नही है। कसरत के बाद तुरन्त स्नान करने से किसी प्रकार की हानि पहुचने का कोई डर नही है। हाँ, कसरत करने से यदि दम फूल रहा हो तो उतनी देर अवश्य रुकना चाहिये जितनी देर मे श्वास सम हो जाय। जो दुर्बल है और बहुत थोड़ी कसरत करते है, उन्हे स्नान करके ही कसरत करनी चाहिये। जाड़े के दिनो मे तो उनके लिये यह आवश्यक सा है। स्नान से आई ठडक इससे जायगी और शरीर की ताजगी बढ़ेगी।

(५) व्यायाम का ठीक ढग से और नित्य नियमित रूप से किया जाना भी जरूरी है। प्राय लोग जोश मे आकर व्यायम करना तो आरम्भ कर देते है, परन्तु उत्साह कम हो जाने पर उसे कुछ दिनो करके छोड़ देते है। ऐसा करने से लाभ तो क्या होगा, उल्टे हानि ही होती है। अत. व्यायाम को दैनिक कार्य-क्रम का एक अग मानकर उसे प्रतिदिन बिला नागा करते रहना चाहिये तभी लाभ हो सकता है। महीनो और वर्षों जब एक ही तरह का व्यायाम करते-करते जी ऊबता जाय तो रुचि अनुसार पहले की जगह पर कोई दूसरा व्यायाम करना आरम्भ किया जा सकता है।

(६) पूर्ण लाभ के लिए यह भी आवश्यक है कि शरीर को धीरे-धीरे व्यायाम का अभ्यासी बनाया जाय। एकाएक अधिक व्यायाम नही करने लगना चाहिए। गर्मी के दिनो मे व्यायाम की मात्रा कम कर देना और जाड़े के दिनो मे क्रमश बढ़ा देना उत्तम है। कसरत हर हालत मे उतनी ही करनी चाहिये जिससे शरीर को थकावट न महसूस हो, अपितु उससे आनन्द और ताजगी प्रतीत होनी चाहिए।

कसरत के सम्बन्ध मे 'Exercise in education and medicine' नामक पुस्तक मे मि० ट्रेट मेकेन्जी लिखते हैं कि शरीर के किसी एक अङ्ग की कसरत अगर ५ मिनट से अधिक समय तक की जाय तो उससे लाभ

पहुँचता है, लेकिन अगर ५ मिनट से अधिक समय तक की जाय तो उससे शरीर के उस अङ्ग मे थकान पैदा होती है जिस अङ्ग का वह व्यायाम होता है। उस वक्त शरीर के उस भाग मे एक प्रकार का अम्ल (Sciolactic acid) उत्पन्न होकर थकावट पैदा हो जाती है। इस अम्ल को यदि बाहर न निकाल दिया जाय तो वह मनुष्य की देह मे विष का काम करता है। शरीर मे इसी विष की अधिकता होने पर कभी-कभी अधिक कसरत करने वाले व्यक्तियो की हृदयगति बन्द हो जाने की वजह से मृत्यु हो जाने के भी उदाहरण मिले हैं। पहलवानो के आमतौर पर अल्पायु होने मे यही विष कारण होता है।

(७) व्यायाम समाप्त करते ही या व्यायाम करते वक्त भोजन नही करना चाहिये। व्यायाम करने के आध या पौन घटे बाद भोजन कर सकते है। भोजन करने के कम से कम ३ घण्टे बाद व्यायाम करना उचित है। क्योंकि व्यायाम क समय पेट न तो भरा ही होना चाहिए और न एकदम खाली ही।

(८) व्यायाम को गाजा, भाग, शराब, ताडी, खैनी, तम्बाकू आदि कोई दुर्व्यसन नही होना चाहिए और उसे ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन अवश्य करना चाहिए।

(९) व्यायाम करते वक्त शरीर पर कोई वस्त्र नही चाहिए। केवल जाघिया या लगोट धारण करना चाहिए। लगोट व्यायाम करलेने के बाद उतार देना चाहिए।

(१०) व्यायाम का सबसे अच्छा समय प्रात काल है। सायकाल को भी व्यायाम किया जा सकता है। कोई-कोई व्यायाम विशारद हल्की धूप मे कसरत करना लाभदायक बताते हैं।

(११) व्यायाम करते समय व्यायामी का मन अत्यन्त शुद्ध, शान्त और प्रसन्न होना चाहिए, साथ ही साथ शरीर के जिस भाग को व्यायाम द्वारा अधिक पुष्ट बनाना हो उसीकी ओर अपने मन की पूरी-पूरी एकाग्रता रखनी चाहिए। मन मे यदि उत्साह नही है तो जबरदस्ती व्यायाम करने से उतना लाभ नही हो सकता। व्यायाम का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए चित की दृढता, धैर्य और सामर्थ्य तीनो दरकार हैं।

(१२) व्यायामी को प्राणायामी भी अवश्य होना चाहिए। उसे २४ घण्टो मे दो बार प्राणायाम का अभ्यास जरूर करना चाहिए। व्यायाम के समय बिना गहरी सास लिए व्यायाम को सफल नही समझना चाहिए। व्यायाम करते समय केवल नाक से ही सास लेना लाभप्रद है।

(१३) व्यायाम करने के बाद यह जरूरी है कि थोडा आराम कर लिया जाय तब कोई काम किया जाय। व्यायाम के बाद फौरन लिखना-पढना या कोई दिमागी काम तो अवश्य ही नही करना चाहिए।

(१४) व्यायाम के बाद बदन की मालिश उसका पूरक है। अत इसके बिना व्यायाम अधूरा ही रह जाता है।

व्यायाम का निषेध—

शरीर की आवश्यकता से अधिक व्यायाम करना प्रत्येक दशा मे वर्जित है। अधिक व्यायाम करने से शरीर मे खुश्की बढ़ती है, तृषा का रोग हो जाता है, क्षय, श्वास, रक्तपित्त, ग्लानि, खाँसी आदि के उपद्रव खड़े हो जाते हैं। इसी प्रकार अत्यन्त कमजोर व्यक्ति, क्षयग्रस्त, हृदय रोग से पीडित, दमा या खासी से पीडित, मिर्गी वाला, दात उतरने वाले रोगी, हड्डा टूटा हुआ रोगी, स्त्री प्रसग करने क तुरन्त बाद तथा जो शोथ रोग से आक्रान्त है, ऐसे व्यक्तियो के लिए व्यायाम वर्जित है। गर्भवती को ऐसा व्यायाम नही करना चाहिए जिससे गर्भाशय को धक्का पहुँचे। बालक-बालिकाओ को कठिन व्यायाम कदापि नही करना चाहिए। कहते है, जो लडके सकस आदि मे अपनी शक्ति से अधिक व्यायाम करतब दिखाया करते है, उनकी आयु बहुत कम होती है।

६ योगासन

यौगिक आसन वस्तुत एक प्रकार के व्यायाम ही है, किन्तु अन्य व्यायामो की अपेक्षा ये पूर्णतया वैज्ञानिक हैं जिनको भारतीय महर्षियो ने मानव जाति की शारीरिक, मानसिक एव आध्यात्मिक—तीनो प्रकार की उन्नति के लिए हजारो वर्षो तक सतत्परिश्रम अन्वेषण और प्रयोग करके निकाला है। इन आसनो का उपयोग अब अधिकतर रोगो को अच्छा करने के लिये ही किया जाता है जो अचूक बैठता है। वैसे योगासन प्रत्येक अवस्था मे लाभ

करते हैं, और कमजोर से-कमजोर तथा ताकतवर से ताकतवर व्यक्ति भी इनसे समान रूप से लाभ उठा सकते हैं, पर नौ वर्ष से कम उम्र वाले बच्चे यदि योगासनो का अभ्यास न करें तो ठीक है। कारण, बच्चो के शारीरिक अवयव उस समय तक पूर्ण रूप से विकसित नही हुए रहते, साथ ही वे अत्यन्त कोमल भी होते हैं। कहा जाता है कि अन्य यौगिक क्रियाओ के साथ योगासनो का विधिवत् करने वाला मनुष्य अमरत्व तक प्राप्त कर सकता है। क्योकि आसनो के प्रभाव से शरीर का मल वा विष जोकि मृत्यु का कारण होता है, दूर हो जाता है और काया निर्मल और दिव्य बन जाती है। वास्तव मे योगासनो की महिमा अवर्णनीय है और उनके गुण भी अगणित हैं।

(१) आसनो का सर्व प्रधान गुण रीढ और रीढ की अस्थिखण्डो (कशेरुकाओ) को जो शरीर के समस्त ज्ञान तन्तुओ के क्रिया-कलाप पर नियन्त्रण रखते है, लचीला बनाना है, और उन्हे स्थानच्युत या टेढा-मेढा नही होने देना है, जिसके फलस्वरूप आदमी जल्द बूढा नही होने पाता और जल्द मरता भी नही। आसनो से मेरुदण्ड स्थित कुण्डलिनी को सजग करने में भी सहायता मिलती है, जिससे मस्तिष्क तरोताज़ा बना रहता है, और धारणा शक्ति को स्फूर्ति मिलती है तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तिया जागृत होती है और आत्मसुधार के साधन आप से आप आ जुटते है।

हमारा चलना, खडा होना, उठना, बैठना, दौडना, जागना, सोना, हमारी सामाजिक और आर्थिक अवस्था, दीनता, भव्यता, स्थिरता, भावुकता, नीचता, धूर्तता, हमारे विचार जैसे भलाई, बुराई, हमारी मन स्थिति जैसे, हर्ष, विषाद, क्रोध, शान्ति एव उत्तेजना आदि सबके सब रीढ की हड्डी (मेरुदण्ड) एव उसकी चौबीस गति शील खण्डो (कशेरुकाओ) के सामान्य गतियो पर निर्भर करते हैं। रीढ की ये कशेरुकाये एक के ऊपर एक रखी होती हैं और आपस मे मिलकर जो एक लम्बी लचकदार रचना बनाती है, उसे ही सुषुम्ना-काण्ड, मेरुदण्ड अथवा रीढ की हड्डी या बासा कहते है। इसी मेरुदण्ड के भीतर कुण्डलिनी की स्थिति बताई जाती है जो आसनो के प्रभाव से सजग होकर अपनी करामाते दिखाती है। कशेरुकाओ के साथ शारीरिक मांसपेशिया उनके बन्धन वात नाड़ियाँ (Nerves) तथा अनेक तन्तु सलग्न होते है जो समस्त शरीर मे शक्ति परिवहन का काम करते है। प्रत्येक दो कशेरुकाओ के बीच मे एक-एक गद्दी सी होती है। कूदने से या किसी प्रकार का धक्का लगने से जब हमारे सुषुम्ना काण्ड पर जोर पडता है तो ये गद्दिया धक्के को सहन करके हड्डियो से निर्मित कठोर कशेरुकाओ को आपस मे टकराकर टूट जाने से रोकती है। इसी प्रकार मासपेशिया और उनके बन्धन कशेरुकाओ को स्थानच्युत होने से बचाती है।

रीढदार सब प्राणियो मे मनुष्य की तरह ही सुषुम्ना-काण्ड होता है। सारा मेरुदण्ड सिर और धड को सहारा देता है और सुषुम्ना-नाडी की रक्षा के लिए एक मज़बूत खोल का काम करता है। यह सामान्यतया व्यक्ति की ऊँचाई का एक तिहाई होता है और दो फीट दो इञ्च के लगभग लम्बा होता है।

हमारी आयु की लम्बाई, हमारा उत्तम मध्यम स्वास्थ्य तथा हमारी जीवनी-शक्ति सभी मुख्यतया सुषुम्ना-नाड़ी की स्वाभाविक स्थिति एव उत्तम स्वास्थ्य पर अवलम्बित है। मेरुदण्ड की अस्वाभाविक स्थिति शरीर के अन्य अवयवो को विचलित एव विकृत करके उनमे मस्तिष्क से प्रवाहित होने वाली जीवनी शक्ति के प्रवाह मे बाधा उपस्थित कर देती है, जिसकी वजह से शरीर अनेक रोगो का घर बन जाता है।

गलत चाल-ढाल, कमर झुकाकर चलना, सीने की सिकुडन, शरीर का बेडौल होना, कुरूपता, टेढे और गलत ढग से बैठना, उठना, सोना, चलना, कूबड निकलना, यकृत, गुर्दो एव बच्चेदानी का स्थानच्युत होना आदि उपद्रव तभी होते है जब मेरुदण्ड की स्वाभाविक स्थिति मे फर्क पड जाता है या वह लचीला होने के बजाय कड़ा पड जाता है। यौगिक आसनो से शनै शनै मेरुदण्ड का वह कडापन दूर करके और उसे स्वाभाविक स्थिति में लाकर उपर्युक्त सारे दोष आसानी से दूर किये जा सकते हैं।

(२) आसनो से शरीर स्थित अन्त स्रावी ग्रन्थिया

विषो से शून्य होकर अपना काम अच्छी तरह करने लगती है, जिससे उनकी रोग-प्रतिरोध-शक्ति बढ जाती है। फलत मनुष्य सदा-सर्वदा नीरोग और युवा बना रहता है।

(३) आसनो से फेफडो की सजीवता का ह्रास नही होने पाता, श्वास-क्रिया का नियमन होता है, रक्त शुद्ध होता और बनता है, मन में स्थिरता और शान्ति आती है तथा सकल्प शक्ति बढती है।

(४) आसनो से शरीर की रक्त वाहक धमनिया कडी नही होने पाती, जिससे हृदय को बल मिलता है और जिसकी वजह से उसका कार्य अबाधगति से चिरकाल तक चलता रहता है।

(५) यौगिक आसन शारीरिक मासपेशियो को बल प्रदान करते हैं और दुबले आदमी को स्वस्थ और मोटा, तथा मोटे आदमी को स्वस्थ एव पतला बनाते हैं।

(६) आसनो से पाचन-सस्थान पुष्ट होते है और पेट की पूरी सफाई होती रहती है।

(७) आसन मन और शरीर—दोनों को सम्पूर्ण तथा स्थाई स्वास्थ्य प्रदान करते है।

(८) आसन, विधि मे सरल, वास्तविक, प्रभावशाली, कम से कम समय मे अधिक से अधिक लाभ देने वाले, तथा बिना किसी बाहरी सहायता एव खर्च आदि के अपने आप किए जाने वाले होते हैं।

(९) आसन, स्त्रियो की शरीर रचना के भी विशेष अनुकूल होते है। ये उनमे सुन्दरता, सम्यक विकास, सुघड़ता, सुडौलपन एव अन्य स्त्रियोपयोगी गुण उत्पन्न करते है।

आसन की सफलता मे सहायक—

कोई भी आसन हो, उसमे सफलता तभी मिल सकती है जब उस आसन की विधि को समझकर किया जाय। अत इसके लिए यह जरूरी है कि आसन पहले-पहले किसी अनुभवी व्यक्ति की निगरानी मे किया जाय और वह जो बताये उसका मनोयोग पूर्वक और लगन के साथ पालन किया जाय। मनमाने ढग से और केवल किताबी ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद आसनो का अभ्यास करने वाले कभी-कभी हानि उठाते देखे गये हैं।

जो मनुष्य आसनो से उनके परम लाभ को प्राप्त करना चाहता है उसके लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना नितान्त आवश्यक है। प्राणायाम करने वाले को आसनो से शीघ्र और अधिक लाभ होता है।

भोजन सुधार भी आसन के लिए बहुत प्रयोजनीय है। जो व्यक्ति भोजन के बिना सुधार किये ही आसन करता है, उसका परिश्रम व्यर्थ ही जाता है। इसलिये आसन करने वाले को सादा, सप्राण, सात्विक एव पुष्टिकर भोजन करना चाहिए। मास, मछली, बीडी-सिगरेट, शराब आदि उत्तेजक पदार्थों को तो हाथ भी नही लगाना चाहिए। जरूरत से अधिक भी भोजन नहीं करना चाहिये और कभी-कभी उपवास अवश्य करना चाहिए। इससे शरीर शुद्ध और मलरहित हो जाता है।

किसी रोग से पीडित होने पर मनमाना आसन ठीक नही। ऐसी अवस्था में किसी अनुभवी से राय लेकर ही आसन करना उचित है। गरमी के दिनो मे अधिक देर तक आसन नही करना चाहिये।

आरम्भ में बहुत कम समय तक आसन करें और फिर उसे क्रमश बढावें। आसन करने मे धैर्य, तत्परता, एवं नियमितता की बडी जरूरत होती है।

कुछ आसन और उनकी विधियां—

यो तो आसनो की सख्या उतनी है जितनी ससार मे योनिया हैं, परन्तु हठयोग मे ८४ योगासनो का उल्लेख है जिनमें से चार आसन—समासन, पद्मासन, सिद्धासन तथा स्वस्तिकासन, ध्यानात्मक आसन कहलाते है तथा शेष—शीर्षासन, सर्वाङ्गासन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तानासन, हलासन, भुजगासन, मयूरासन, शलभासन धनुरासन, चक्रासन, उर्ध्वपद्मासन, शवासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, वज्रासन, त्रिकोणासन और विपरीतकरणासन आदि व्यायामात्मक।

प्रत्येक आसन के करने के अलग-अलग लाभ है, और कई आसन कई प्रकार से किये जाते हैं।

शीर्षासन

किसी दीवार के पास जमीन पर दो फीट लम्बी और दो फीट चौडी कम्मबल आदि की मुलायम गद्दी बिछावें। अब हाथो को कुहनियो तक, अर्थात् बाह का अगला भाग गद्दी पर रखें और घुटने जमीन पर टेककर
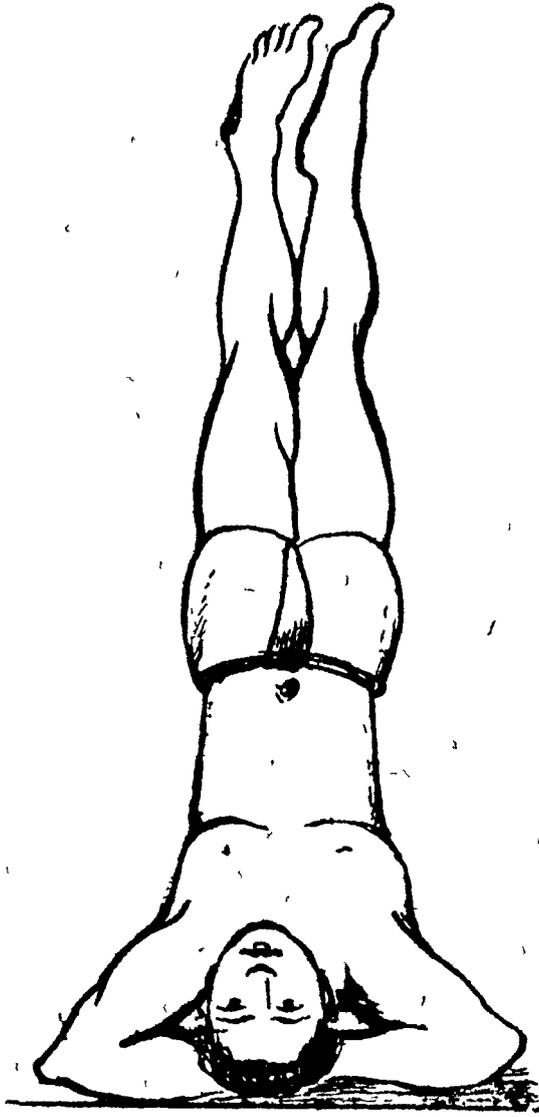
बैठ जाय । सामने दीवार होगी । अब एक हाथ की उंगलिया दूसरे हाथ की उंगलियो मे फंसाकर दोनो हथेलियो को बांधलें ओर आगे को सर झुकाकर उसे गद्दी पर इस तरह ले आयें कि सर का पिछला भाग हथेलियों में आजाय । तत्पश्चात् सर के बल शरीर का बोझ डाल कर धड को ऊपर उठावें । धीरे धीरे टांगो को ऊपर ले जाय, यहा तक कि सीधासन आयें और ऊपर से नीचे तक एक सरल रेखा सी बन जाय । ऐसा करने मे दीवार की सहायता ली जा सकती है । अन्त में धीरे-धीरे टांगो को नीचे ले आकर पहली स्थिति मे आ जायं । फिर थोड़ी देर के लिए एक दम सीधे खडे रहे । तत्पश्चात् जितनी देर तक शीर्षासन किया है उससे कुछ अधिक देर तक (परन्तु आधा घण्टा से अधिक नही) शवासन करें ।

शीर्षासन प्रति सप्ताह एक मिनट के हिसाब से बढा कर धीरे-धीरे १५ मिनट तक किया जा सकता है । सर्वसाधारण के लिए यही काफी है ।

इस आसन के करने मे गलती हो जाने से लाभ के बदले हानि हो जाने की बराबर सम्भावना रहती है । अत इसके करने मे पूरी सावधानी बरतनी चाहिये । मस्तिष्क, नाक, कान, आँख, एव दिल के रोगियो को यह आसन नही करना चाहिये ।

समस्त आसनो का शिरोमणि शीर्षासन यदि विधिवत् किया जाय तो उससे इतने लाभ होगे कि उनको लिपिबद्ध नही किया जा सकता । इस आसन से शरीर का प्रत्येक अवयव शक्ति प्राप्त करता है, बुढापा जल्द नही आता कोई रोग नही सताता, आयु की वृद्धि होती है, तथा मन को एकाग्रता प्राप्त होती है ।

सर्वाङ्गासन

स्वच्छ बिस्तरे पर पीठ के बल लेट जाइए । हाथ बगल मे रहे ओर पैर सीधे । बदन ढीला छोडदें । अब दोनो पैरो को धीरे-धीरे ऊपर उठाइये । जब पैर जमीन से ३०° का कोण बनाने लगें तो वहा पर, पांच सेकेण्ड के लिए रुकिए । अब पैरों को फिर उठाइए और ५०° का कोण बनने लगे तो फिर ५ सेकेण्ड के लिए रुकिए । इसी प्रकार ६०° का कोण पैर बनाने लगे तो फिर ५ सेकण्ड के लिए रुकिए । अब पैरो को बिल्कुल सीधा रखते हुए सिर की ओर पैरो को लाइए, यहाँ तक कि वे १२०° का कोण बनाने लगे । इस अवस्था मे पैरो को ऊपर की ओर ले जाय, जहाँ तक सम्भव हो पैर और धड दोनो को एक सीध मे रखें और धड को दोनो हाथो से सहारा दें । यही सर्वाङ्गासन है । अब आप जिस क्रम से पैरो को बिन मोड़े ऊपर लाये हैं, उसी क्रम से उन जगहो पर रुकते हुए वापस जाय और अपनी पूर्वावस्था मे हो जायं ।

इस आसन के करने के बाद उतनी ही देर तक शवासन करके शरीर को आराम देना चाहिए जितनी देर तक सर्वाङ्गासन किया गया है ।

सर्वाङ्गासन पहले दिन आधा मिनट से आरम्भ करके

और प्रत्येक सप्ताह आधा आधा मिनट बढाते हुए धीरे-धीरे ६ से १२ मिनट तक किया जासकता है।

जिन व्यक्तियो को आख, कान, या हृदय का रोग हो, अथवा जिनका रक्तचाप अधिक रहता हो, उनको यह आसन नही करना चाहिए।

यह आसन वीर्य-दोषो को दूर करता है। गले के ऊपर के अवयवो को नीरोगता और पुष्टता प्रदान करता है। पेट के समस्त रोगो की दवा है। रक्त को शुद्ध करता है। यह आसन चूकि कण्ठमणी (Thyroidglands) को स्वस्थ बनाने का सर्वाधिक शक्तिशाली साधन है, इस लिए इससे शरीर के लगभग सभी अवयव लाभान्वित होते हैं। क्योकि शरीर मे कण्ठमणि के ठीक दशा मे रहने का अर्थ ही है शरीर के समस्त अङ्गो का शक्तिशाली बनना।

पश्चिमोत्तानासन

आसन पर चित्त लेट जाइये। हाथो को सिर के पीछे ले जाइए। अब बिना सहारा लिए या झटका दिए धीरे-धीरे धड को उठाइये, साथ ही हाथो को भी उठाते हुए पैरो पर झुक जाइये। माथा घुटनो से लगा दीजिए। हाथो से पैरो के अगूठे पकड़ लीजिए। ध्यान रहे कि आगे झुकते समय घुटने जमीन से उठने न पायें। इस
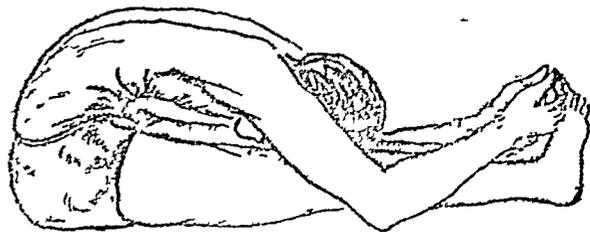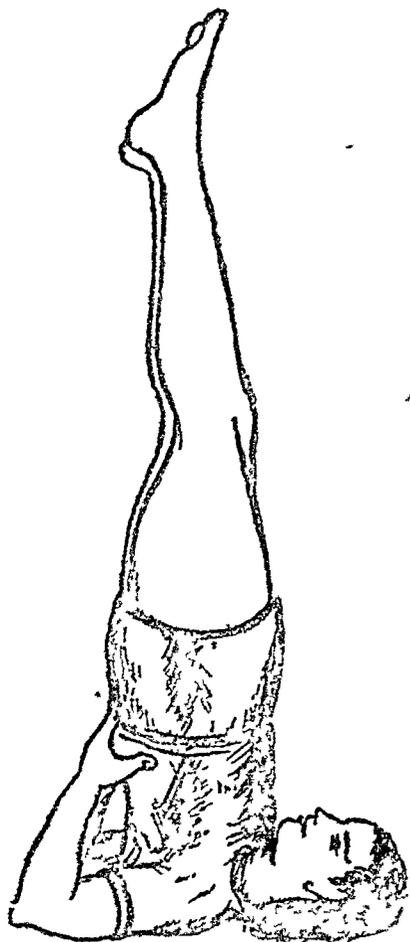
अवस्था मे यथा सम्भव २-४सेकेण्ड रहिये। फिर अगूठे को छोड़कर पूर्ववत् चित लेट जाइए। ऐसा धीरे-धीरे करना चाहिए। आगे झुकते समय सास निकालना, तथा पीछे झुकते समय खीचना, चाहिए। ऐसा तीन चार बार कीजिए। इसी आसन को जब बजाय लेटकर करने के, खड़ा होकर किया जाता है तो उसे "पादहस्तासन" कहते हैं।

इस आसन से कब्ज दूर हो जाता है। हृदय अपना काम ठीक-ठीक करने लगता है। जोडो का दर्द, मधुमेह, तथा स्त्रियो के गर्भाशय सम्बन्धी रोगो मे यह आसन बडा लाभ करता है। पीठ का मेरुदण्ड और सुषुम्ना नाड़ी ठीक रहती है। तिल्ली, यकृत और गुर्दे निर्दोष होते है। शरीर पर अनावश्यक चर्बी नही जमा होने पाती। कृमि विकार दूर हो जाता है, आदि।

हलासन

आसन पर पीठ के बल लेट जाइये। दोनो हाथ बगल मे होंगे। अब सर्वाङ्गासन की तरह दोनो पैरो को साथ-साथ और सीधा रखते हुए धीरे-धीरे ऊपर की ओर ३०° ६०° ९०°, और १२०° के कोणो पर रोकते हुए और उन्हे धीरे-धीरे पीछे सिर की ओर ले जाइए यहा तक कि पैर के पजे जमीन को छूने लगें। तत्पश्चात् पैरो को थोड़ा और आगे बढाइये। ऐसा करने से कमर का भाग ठीक सिर के ऊपर आजायेगा। अन्तिम अवस्था मे दोनो

हाथ सिर के ऊपर होगे और उगलिया मिली होगी, तथा ठुड्डी कण्ठ के गढे में अच्छी तरह जम जायगी । पूर्वावस्था मे आने के लिए पहले हाथो को सिर से हटाकर सीधे जमीन पर लाना चाहिए, और पैरों को जिस प्रकार धीरे-धीरे रोकते हुए लाया गया था उसी प्रकार वापस ले जाना चाहिए ।
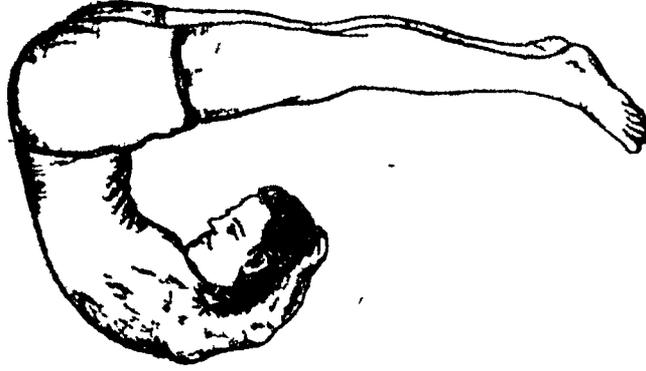
आरम्भ मे इस आसन को उतना ही करना चाहिए जितना कि आसानी से किया जा सके ।

यकृत और प्लीहा की बढी हुई अवस्था मे यह आसन नही करना चाहिये ।

शरीर की सभी नाडियाँ और अङ्ग-प्रयग इस आसन से सबल बनते हैं । पीठ और पेट की पेशिया मजबूत होती हैं । कब्ज दूर होता है । यकृत और प्लीहा के सभी रोग चले जाते हैं ।

शवासन

आसन पर चित लेट जाइए । टागो को एक दूसरे से मिलाकर सीधे फैलाइये । एडिया मिली रहे और पजे खुले रहे । हाथ जमीन पर धड मे सटे रहे । आख बद या अध-खुली रखिये । अब सिर से पैर तक की सारी मांस-पेशियो और स्नायुओ को एकदम ढीला छोडकर शव समान बन जाइए । सांस स्वभावत चलती रहेगी ।
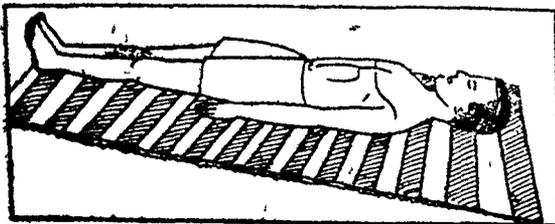
इस आसन को प्रत्येक आसन के करने के बाद किया जाता है । इससे शरीर के प्रत्येक अवयव को आराम एव शक्ति मिलती है । थकावट दूर होती है, और पुन कार्य करने के लिए शरीर को स्फूर्ति और ताजगी प्राप्त होती है ।

१० वस्त्र धारण

मनुष्य, पशु, तथा पक्षी, आदि सभी जीव जिस समय पृथ्वी पर जन्म लेते हैं, निर्वस्त्रवा नगे रहते है । जिनमे से मनुष्य को छोडकर शेष सभी जीव आजन्म नगे रहकर प्रकृति के आदेश का पालन करते हुए सुख और उत्तम स्वास्थ्य का शतप्रतिशत लाभ उठाते है । इस जगती तल पर मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो प्रकृति के आदेशो पर न चलने की ढिठाई कदम-कदम पर किया करता है और फलस्वरूप मुँह की खाता रहता है एव हानि उठाता है । प्रकृति हमे आदेश देती है कि हम नगे रहकर उसकी दी हुई अलम्य वस्तुओ—प्राणदायिनी वायु, शक्तिदायक प्रकाश, तथा अमृत तुल्य जलादि पचतत्वो का पूरा पूरा उपभोग करके उत्तम स्वास्थ्य शाश्वत् सौन्दर्य, तथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त करे । पर हम ऐसा न करके अपने ही पावो आप कुल्हाडी मारते हैं ।

हमारे शरीर की रचना प्रकृति द्वारा इस प्रकार हुई है जिसमे हम आनन्दपूर्वक नगे रह सकें । यदि ऐसा न होता तो वस्त्राविष्कार के बहुत पहले मनुष्य का नामो निशान इस पृथ्वी पर से मिट गया होता पर नही, आज भी ससार मे प्रकृति के आदेशो पर चलकर नगा रहते हुए जीवन यापन करने वालो की कमी नही है । शीतोष्ण कटिबन्ध मे कई ऐसी जातिया अभी भी हैं जो जाडा हो अथवा गर्मी या बरसात, कभी कपडे नही पहनती । पोलीनेशिया द्वीप पुञ्ज, बिस्मार्क, सुलेमान तथा बैंकादि द्वीपो की जातियो मे आज भी नगा रहने का रिवाज हैं । नागा-समुदाय, जैन दिगम्बर सम्प्रदाय आदि के लाखो से अधिक लोग आज भी नगे ही रहते हैं । ये लोग रोग-शोक स रहित होकर, पूरी तन्दुरुस्ती का उपभोग करते हुए भगवद भजन मे तल्लीन रहते है ।

वस्त्र-धारण का त्वचा पर दूषित प्रभाव

शरीर की त्वचा स्वभावत शरीर के गैसीले दूषित

पदार्थ को शरीर से बाहर निकाल फेंकती है। इस जहरीले पदार्थ का एक दूसरा भाग उदराध्मान के रूप मे पेट से बाहर निकल जाता है। इन दोनो साधनो से गदा पदार्थ बाहर निकलता है, उसे शरीर पर खूब कसकर पहनी गयी पोशाक रोक देती है और इस प्रकार प्रकृति की मल-निष्कासन क्रिया मे बाधा पहुँचाती है। फलतः शरीर के रोम कूपो तथा उदर से बाहर निकले विषाक्त पदार्थ का कुछ अंश शरीर में फिर प्रवेश कर जाता है। वह रोम-कूपो को मैल से बंद कर देता है और त्वचा में तथा उसके नीचे के हिस्से मे मैल की तह सी जम जाती है। यह मल या गदगी शरीर की केशिकाओ के कार्य में बाधा पहुँचाती है, जिसकी वजह से त्वचा की सितह तक रक्त सचार ठीक से नही हो पाता। फलतः जोरो की ठंड या कपकपी तभी मालूम होती है जबकि त्वचा निष्क्रिय हो जाती है, या शरीर में खून की कमी वाली अवस्था उत्पन्न हो जाती है। इसके अतिरिक्त त्वचा तक न पहुँचने वाला रक्त केशिकाओ मे आकर जब पड़ा रह जाता है या जम जाता है तो इसका परिणाम बहुत खराब और प्राय. घातक भी होता है।

यह समझना गलत है कि हम केवल नाक से सांस लेते हैं। नहीं, अपितु हम अपनी त्वचा के असख्य छिद्रो से भी बराबर साँस लिया करते हैं, जो उतना ही जरूरी है जितना कि नाक के नथुनो द्वारा सास लेना। हमारी नाक के नथुने यदि दो मिनट के लिए भी बद कर दिये जायें तो हमारी जान पर बन आयेगी। अब इसीसे अन्दाजा लगाया जा सकता है कि यदि हमारे समस्त रोम कूप किसी दिन मैल भर जाने से बन्द हो जाय तो हमारी क्या दशा होगी।

११. काम करना

स्वास्थ्य की दृष्टि से हर समय किसी न किसी काम मे लगे रहना दीर्घ जीवन प्राप्ति का प्रधान साधन है। इस तथ्य को एक रूसी विशेषज्ञ ने रूस मे रहने वाले दस हजार से अधिक दीर्घ जीवी व्यक्तियो की जीवन चर्याओ का अध्ययन करके प्रमाणित किया है। रूस मे आज भी ऐसे व्यक्ति अनगिनत हैं, जिनकी आयु ९० वर्ष से ऊपर है। इनमें सबसे वृद्ध १५५ वर्ष का है। जिस रूसी सेनापति यरमोलफ ने नेपोलियन का सामना किया था यह वृद्ध उस रूसी सेनापति का बावर्ची था। इनमे से एक और वृद्ध १२२ वर्ष का है। ये सभी हर समय किसी न किसी काम में लगे रहने मे विश्वास करते थे।

काम करने का ढंग—अब विचारणीय है कि ढङ्ग से काम कैसे किया जाता है, और बेढङ्गा काम कैसा होता है जिनका प्रभाव-कुप्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता है।

कोई भी काम हो, उसको आरम्भ करने से पहले सर्व प्रथम अपने मे आत्म विश्वास पैदा करना चाहिए, और उस कार्य को करने की शक्ति उत्पन्न करनी चाहिए। यह एक कला है। जो इस कला को जानता है वह कठिन से कठिन काम को भी हसते-खेलते मिनटो मे कर डालता है। इस कला को जानना बहुत कठिन भी नही है। अर्थात् हम यदि कार्य सम्पादन की शक्ति अपने मे उत्पन्न करना चाहे तो वह केवल तल्लीनता, एकाग्रता, मानसिक शान्ति व सतुलन एव विचार स्वातन्त्र्य से प्राप्त हो सकती है। मैं "अमुक काम करता हूँ।" इस वाक्य में बड़ी अदभुत और प्रबल शक्ति भरी हुई है, जो आत्म विश्वास की जड़ है और काम करने के ढङ्ग की सीढ़ी।

काम धीरता, निश्चिन्तता, शान्तिचित्तता एव आत्म विश्वास के साथ करना कलात्मक काम करना कहलाता है। यह एक तथ्य है कि हमारा मस्तिष्क किसी काम के करने मे पूरा-पूरा सहयोग तभी दे पाता है जब हम आत्म विश्वास के साथ शान्ति पूर्वक काम करते हैं।

आत्म विश्वासी के काम करने की शक्ति सीमित नही होती। वह असीम और अपरम्पार हो जाती है। इतना कि वह प्रलय तक उपस्थित कर सकती है। यही कारण है कि एक आत्म विश्वासी व्यक्ति अपने काम मे कभी भी असफल नही होता चाहे वह काम कितना भी कठिन क्यो न हो। और ऐसे व्यक्ति का स्वास्थ्य ? स्वास्थ्य तो ऐसे व्यक्ति का ईर्ष्या की वस्तु होती है। क्योकि शक्ति और स्वास्थ्य का चोली और दामन का साथ होता है। जहा शक्ति है, वहा स्वास्थ्य भी अवश्य होता है। बिना स्वास्थ्य के शक्ति लूली व लगड़ी होती है। इसी प्रकार बिना शक्ति के स्वास्थ्य की कोई सत्ता नही।

काम में नियमितता बरतना, काम करने का दूसरा

ढङ्ग है कार्याधिक्य को देखकर जो घबड़ा जाते हैं—अपना संतुलन खो बैठते हैं, वे किसी काम के करने के सही ढङ्ग से बिल्कुल वाकिफ नहीं होते। काम करने मे नियमितता बर्तने का अर्थ है किसी काम को नियमित रूप से थोड़ा-थोड़ा रोज अवश्य करना। ऐसा करने से कर्ता को उस काम के करने मे कभी कठनाई नही मालूम होगी। और वह काम जल्दी ही समाप्त हो जायगा।

यह बात अनुभव से जानी गई है कि काम करने मे सर्वाधिक सक्षम व्यक्ति वह होता है जो अपने समय का इस प्रकार विभाग करता है कि कुछ घण्टे तो काम मे लगें, कुछ खेल व मनोरंजन में और कुछ विश्राम व सोने मे। इस तरह २४ घण्टे का टाइमटेबल बनाकर उस पर कड़ाई और ईमानदारी से अमल करने से कोई भी व्यक्ति निश्चयपूर्वक अधिक से अधिक काम बिना किसी कठिनाई के कर सकता है। समय का विभाजन करके काम करने से काम बहुत अच्छा होता है। और कर्ता का स्वास्थ्य भी उत्तम बना रहता है। क्योंकि इस ढग से काम करने से स्नायुविक शक्ति का अपव्यय नहीं हो पाता।

कोई भी काम हो उसके करने मे रस लिए बिना वह भार स्वरूप बन जाता है। काम मे रस लेकर उसे करना काम करने का उत्तम ढग है जरूर, पर कुछ लोग ऐसे मिलेंगे जो यह जानते ही नही कि काम मे कैसे रस लिया जाता है। ऐसे लोगो को काम करना आरम्भ करने से पहले उस काम के करने मे रस लेना सीखना चाहिए।

कार्य चाहे छोटा हो या बडा उसे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर करना चाहिए, यह एक शास्त्रीय विधान है। यथा-

प्रभतमल्य कार्यं वायो नर. कर्तुमिच्छति।
सर्वारम्भेण तत्कार्यातिसंहाविकं प्रकीर्तितम्॥

अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर काम में जुट जाना चाहिए सही, पर इसका यह मतलब नही है कि काम को निपटाने की धुन में अपनी शक्ति का अतिक्रमण कर जाया जाय, अथवा उसके लिए इतना कठिन श्रम किया जाय कि वह अतिशयता की सीमा पार कर जाय जो थकान का एक कारण होता है।

यह आवश्यक है कि काम मे थकान आने से पहले अथवा काम से जी ऊब जाने से पहले उस काम को उस वक्त तक स्थगित कर देना चाहिये जब तक थकान मिट न जाय अथवा जब तक काम करने का 'मूड' पुनः न बन जाय।

किसी काम के करने मे एकाग्रता और तल्लीनता का भी बहुत बडा महत्त्व है। समस्त इन्द्रियो को संयत करके बगुले के समान, मन-चित्त लगाकर, देश-काल अनुसार चुपचाप रहकर कार्य को सम्पन्न करना कार्य करने का उत्कृष्ट ढग है।

मस्तिष्क की शक्तियो का सतुलन बनाये रखते हुए काम करना, काम करने का एक अच्छा ढग है। इससे शारीरिक स्नायु-शक्ति का अपव्यय नही होने पाता और काम सुचारु रूप से और शीघ्र सम्पन्न हो जाता है। परेशानी, क्रोध तथा भय आदि मानसिक उद्वेगो की मौजूदगी मे कार्य करना, कार्य को चौपट करना है। उद्विग्न मस्तिष्क से कोई काम ठीक से नही हो सकता। क्योंकि उस दशा मे हमारी किसी विषय पर विचार करने की शक्ति कम हो जाती है। इसलिए यह जरूरी है कि काम करते समय मस्तिष्क को शान्त और विश्रान्त रखा जाय, अन्यथा शरीर की अधिकाश शक्ति परेशानी, असतोष एव कुढन आदि मे नष्ट हो जायेगी और काम ठीक व पूरे तौर से न हो पायेगा।

१२. विश्राम करना

उत्तम स्वास्थ्य के लिये रोज सपरिश्रम काम करने से, ढग से विश्राम भी करना कम जरूरी नही है। परिश्रम के बाद विश्राम करके खोई हुई शक्ति की आपूर्ति करना व्यर्थ समय बर्बाद करना भी नही हैं। इसीलिए काम की तरह विश्राम भी दिनचर्या का एक प्रमुख अङ्ग है।

कुछ लोग अपने पेशे या कारबार के काम मे दिनरात इतना गर्क रहते हैं कि उन्हे विश्राम करने का अवसर ही नही मिलता। जिसका परिणाम यह होता है कि अपेक्षाकृत वे या तो हृदय के रोग से आक्रान्त होकर अपना जीवन ही समाप्त कर देते हैं, या अपने गिरे हुए स्वास्थ्य को सुधारने के लिये अस्पतालो की शरण लेते हैं।

प्रत्येक चार घण्टे के कठोर परिश्रम के बाद आध घण्टे का विश्राम अवश्य करना चाहिए। ६० वर्ष की अवस्था पार करने के बाद अधिक से अधिक मानसिक विश्राम
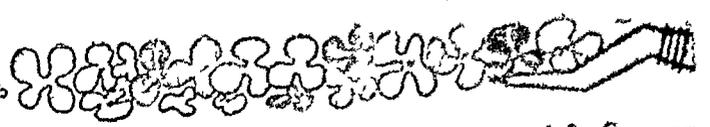
और मानसिक सरसता जीवन मे आ जायँ, ऐसा प्रयास करने से मनुष्य आसानी से १०० वर्ष जी सकता है। विश्राम हजार कायाकल्पो का एक कायाकल्प है जो कुछ ही मिनटो मे विना तप साधन के पूर्ण हो लेता है।

नीद, विश्राम का सही साधन नही है। इसी कारण थकावट आने पर नीद आती भी नही विश्राम और नीद दोनो दो चीजें हैं। नीद लेना मानव-स्वभाव है, अथवा शरीर की प्रकृति प्रदत्त एक अवस्था विशेष, जो प्रत्येक मनुष्य के लिए अनिवार्य है। जबकि विश्राम के लिए उद्योग करना पडता है। और प्रत्येक व्यक्ति के लिए विश्राम अनिवार्य भी नही है। एक अकर्मण्य व्यक्ति के लिए निद्रा उतना ही अनिवार्य है, जितना एक कर्मठ के लिए। पर विश्राम अकर्मण्य व्यक्ति के लिए नितान्त अनावश्यक है और कर्मठ के लिए अत्यन्त आवश्यक। अर्थात् विश्राम की आवश्यकता मनुष्य को तभी होती है जब वह परिश्रम करता है, पर नीद की आवश्यकता उसे दोनो हालतो मे होती है—परिश्रम करने पर भी और न परिश्रम करने पर भी। निद्रा लेना एक तरह का सूक्ष्म स्नान है जिससे मनुष्य का शरीर और मस्तिष्क तरोताजा हो जाता है, जबकि विश्राम, एक प्रकार की शारीरिक शैथिल्यावस्था है जिसमे सक्रिय शरीर निष्क्रिय होकर पूर्णरूपेण आराम करता है, अथवा पुन सक्रिय होने के लिए शक्ति प्राप्त करता है थकान मिटाने के वाद।

-परिश्रम के वाद विश्राम करने के कुछ सरल उपाय निम्नलिखित हैं।

(१) परिश्रम के वाद परिश्रम का काम वन्द करके धीरे धीरे टहलने से शरीर को अच्छा विश्राम मिल जाता है।

(२) शारीरिक या मानसिक परिश्रम करके प्रतिदिन घर लौटने पर विश्राम की नीयत से चटाई पर लम्बे पड जाय। शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को एक दम ढीला कर दें। मस्तिष्क को विचारो से शून्य कर दें। स्नायु मण्डल को एक वारगीही तनावमुक्त कर दे। तथा आँखे वन्द करके १०-१५ मिनट तक निश्चेष्ट पडे रहे, पर नीद न लें। इस प्रयोग के अन्त मे आप अनुभव करेगे कि आपका शरीर पर्याप्त विश्राम पा चुका है। यह प्रयोग एक यौगिक क्रिया है जिसे 'शवासन' कहते है।

(३) परिश्रम के वाद थोडी देर तक कोई दिलचस्प खेल खेलने, मन बहलाव के लिये कोई हल्की चीजें पढने, अथवा अपनी रुचिविशेष के अनुसार चित्रकारी आदि करने से शरीर को काफी विश्राम मिलता है।

(४) वारहो महीने घोर परिश्रम करने वाले व्यक्ति यदि लम्बी छुट्टिया लेकर देश-विदेश की यात्रा करे गा तीर्थ स्थानो मे घूमे तो ऐसा करने से उन्हे पर्याप्त विश्राम मिलेगा।

(५) सप्ताह मे ६ दिन कठिन परिश्रम करने के वाद एकदिन छुट्टी रखकर उसदिन वन-भोजन अथवा सैर-सपाटे का प्रोग्राम वनाना शरीर को विश्राम देने का पुराना तरीका प्रचलित है ही।

(६) परिश्रम के वाद वैज्ञानिक ढङ्ग से शरीर की मालिश करने से भी शरीर विश्राम प्राप्त करता है।

(७) प्रसिद्ध विचारक डेल कार्नेगी तो परिश्रम जन्य तनाव की अवस्था मे केवल एक गिलास ठंडा पानी ही पीकर अपने शरीर की थकावट और तनाव को दूर किया करता था। उसने एक जगह स्वय लिखा है—"जब मैं अत्यधिक तनाव मे रहता हू तो तत्काल पानी का एक गिलास मँगवाता हू और घूट घूट करके १५ मिनट मे उसे पूरा पी जाता हू और ऊपर से एक गिलास पानी पेट मे और उडेल लेता हू। बस, जैसे वारिश से गर्मी जाती है, वैसे ही मेरा तनाव भी मानो पानी मे घुलकर विलीन हो जाता है।

१३. उपवास

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए व्रत-उपवास सर्वोच्च साधन माने गये है। भारतवर्ष मे उपवास करना इसीलिए एक धार्मिक कर्म माना जाता है। भारतवर्ष ही क्यो, प्रत्येक देश और धर्म मे उपवास आत्म-शुद्धि का एक प्रवल उपाय माना जाता है। जैनियो और मुसलमानो मे तो एक-एक मास लम्बे उपवास का धार्मिक विधान है। मिश्र देश के उपलब्ध प्राचीनतम अभिलेखो आदि से पता चलता है कि वहाँ के लोग उपवास को स्वास्थ्य रक्षा और दीर्घ जीवन के लिये अनिवार्य समझते थे। योग और गुप्त विद्या की साधना करने वाले आध्यात्मिक विकास के लिये उपवास को आवश्यक मानते हैं। उपवास शरीर शोधन के साथ-साथ इच्छा-शक्ति एव आत्म-सयम की वृत्ति को सशक्त करता है।

अष्टन सिक्लेयर उपवास को जवानी को कायम रखने की कुञ्जी और पूर्ण एवं स्थाई स्वास्थ्य का दाता मानते हैं। उपवास रोगो को दूर करने और स्वस्थ रखने के लिए प्रकृति की एकमात्र दवा है और विधि है।

प्युरिङ्गटन साहब के मतानुसार यदि हम स्वास्थ्य, जीवन का आनन्द, स्वतन्त्रता या शक्ति चाहते हैं, तो हमे उपवास करना चाहिये। उपवास से ही हमे सौन्दर्य, आत्मविश्वास, सहनशीलता, तथा गौरव-गरिमा आदि अमूल्य निधिया प्राप्त होती हैं। ईसा, मुहम्मद, महावीर, बुद्ध, गाधी आदि सभी युग पुरुष उपवास का ही आश्रय लेकर ससार मे बड़े-बड़े काम करने मे सफल हुये हैं। उपवास करते समय मनुष्य प्रकृति की गोद मे होता है और उसकी आंखे परमात्मा की ओर होती है, जिसकी वजह से वह प्रकृति और परमात्मा दोनो स असाधारण शक्ति ग्रहण करके ससार को चकित कर दे सकता है। उपवास क प्रभाव से ज्ञानेन्द्रिया सजग, सबल और निर्मल बनती है।

उपवास विधि—

सवसाधारण को लम्बे उपवास बिना किसी अनुभवी क सरक्षण के नही करने चाहिए। साधारणत. कोई भी पाँच-सात दिना का पूर्ण उपवास कर सकता है। उत्तम स्वास्थ्य क इच्छुको को, सप्ताह मे एक दिन रविवार को, प्रति मास को दो एकादशियो को, तथा प्रतिवर्ष आठ, दश, या पन्दरह दिनो का पूर्ण उपवास नियमित रूप से करते रहना चाहिए। ऐसा करते से बड़े लाभ होगे। जो मनुष्य अधिक दुर्बल नही है, वह सात दिनो का उपवास बिना बिना किसी भय क कर सकता है और उससे लाभ उठा सकता है। ऐसे मनुष्यो को पहले दो-तीन दिनो के के उपवास का अभ्यास करके तब सात या इससे अधिक दिनो का उपवास आरम्भ करना चाहिये।

छोटा उपवास करन क पहले विशेष तैयारी की जरूरत नही पड़ती, और उसे किसी वक्त भी आरम्भ किया जा सकता है। उपवास-काल मे कुछ खाय नही, किन्तु स्वच्छ ताजा जल खूब पीये। सारे दिन मे कुल मिलाकर आठ सेर दस सेर तक जल पीया जा सकता है जल थोड़ा थोड़ा करके कई वार पीना चाहिए। यदि इच्छा हो तो जल मे खट्टे लेमू का रस, नमक, या सोडा मिलाकर पी सकते है। पाव भर पानी में पाँच ग्रेन नमक और दस ग्रेन सोडा मिलाना काफी होता है। मगर उत्तम यही होना है कि उपवास-काल मे जल सादा ही पीया जाय। उपवास मे पानी न पीये या कम पीने से शरीर के भीतर उष्णता वढ जाने का डर रहता है, जिससे उपवासी को हानि पहुँच सकती है।

उपवास काल मे जितना पानी पीना जरूरी है उससे कम जरूरी एनिमा लेना नही है। उपवास-काल मे आतें अपना काम एक तरह से बद कर देती है, अत उन्हे नित्य प्रति साफ करते रहना नितान्त आवश्यक है। यह सोचना चाहिए कि भोजन जब किया ही नही जाता तो पाखाना कहा से होगा। प्रथम आतें कभी मल से खाली ही नही रहती, दूसरे, भोजन न करने पर भी आतो मे जो स्वाभाविक क्रिया होती रहती है, उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले मल को साफ करने की आवश्यकता तो पडेगी ही। इसलिए उपवास-काल मे मे रोज कम से कम एक एनिमा लेकर आँतो को स्वच्छ रखना परमावश्यक है। एनिमा इस प्रकार लीजिए—

किसी तख्ते या खाट पर लेट जाइए। पैताना, सिरहाने से चार इन्च ऊचा रहे। जमीन पर भी लेट कर एनिमा लिया जा सकता है। एनिमा का पात्र लेटने के स्थान से तीन फीट की ऊचाई पर सेर-डेढ सेर गुनगुना गरम पानी भर कर टाँग दीजिए और चित्त लेटकर पानी मलद्वार से अन्दर जाने दीजिए। पैरो को सीधा न रखकर
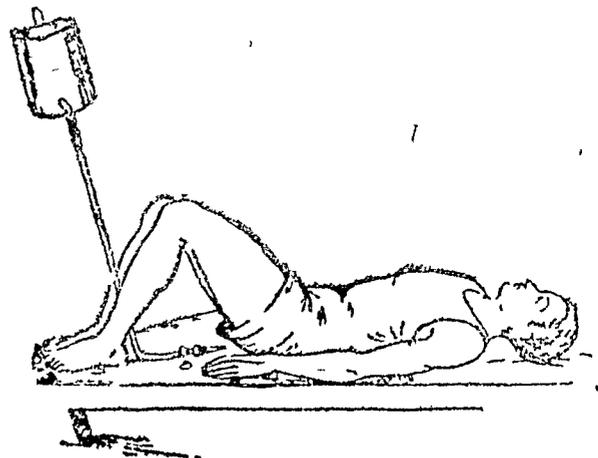
जरा उकड खींच लेने लेने से एनिमा लेने में सहूलियत रहेगी। एनिमा लगाने के पहले थोडा पानी बाहर निकाल दीजिए ताकि ट्यूब में यदि हवा हो तो बाहर निकल जाय और जाना जा सके कि पानी का प्रवाह ठीक है। पानी चढ जाने के बाद तीन चार मिनट रुककर खींच जाना चाहिए। खींच जाते वक्त पानी और मल को अपने आप निकलने दिया जाय। उसे निकालने के लिए जोर न लगाया जाय, अन्यथा पानी का प्रवाह नीचे होने के बजाय ऊपर को हो जायगा और पेट ठीक साफ न हो सकेगा।

उपवास-काल मे प्रतिदिन शीतल जल से स्नान भी करते रहना चाहिए। कारण उस वक्त त्वचा को स्वच्छ स्वस्थ एव सतेज रखना बहुत जरूरी है।

उपवास के दिनो म काम-धाम छोड़कर चारपाई पर बड़े रहना ठीक नही है। उस वक्त भी शक्ति भर काय या परिश्रम करते रहना नितान्त आवश्यक है। हो सके तो थोडा व्यायाम भी करते रहना चाहिये, और उसके उपरान्त थोडा आराम।

उपवास-काल मे मानसिक स्थिति के शान्त और स्थिर रहने की बडी जरूरत है, और यह चीज ईश्वरोपासना के अतिरिक्त अन्य साधनो द्वारा प्राप्त होना दुर्लभ है।

उपवास करने से, उपवास तोडना अधिक कठिन होता है। लम्बे उपवासो के तोडने मे तो बहुत ही सावधानी एव आत्म सयम की आवश्यकता होती है।

उपवास भग करने के लिए सतरे तथा साग-सब्जियो आदि का रस लेना चाहिए। जिससे बहुत दिनो की अनभ्यासी आतें उसे पचाने मे शीघ्र सफल हो जाय। एक दिन का उपवास तोडने के लिए पहलेपहल तरकारियो का रस, फलो का रस, या खूब सीझी हुई सादी तरकारी अल्प मात्रा मे ले सकते हैं। उसके बाद धीरे-धीरे अन्न भोजन पर आना चाहिए। सावधानी इस बात की होनी चाहिए कि एक वार का लिया हुआ भोजन जब पच जाय तभी दूसरा भोजन ग्रहण किया जाय। अनपच कभी न होने देना चाहिए।

दो-तीन दिनो के उपवास के बाद चौथे दिन सिर्फ तीन बार थोडा-थोडा तरकारी का सूप या फलो का रस लें। पाँचवें दिन एक वार रस या सूप और दो वार सादी पकी तरकारी, या रसदार फल लें। छठे दिन तीनो वार साग-भाजी, या रसदार फल। सातवें दिन, एक बार के भोजन मे रोटी-भाजी लें, और उसके बाद धीरे-धीरे स्वाभाविक भोजन पर आजावें।

लम्बे उपवासो की दशा मे तरल खाद्य, जितना लम्बा उपवास हो उसके तिहाई समय तक चलना चाहिए। उस हालत मे भी भोजन की मात्रा, तथा कितनी वार भोजन लिया जाय' इन बातो पर ध्यान देने की अधिक जरूरत है। तत्पश्चात् प्रतिदिन या दूसरे दिन एक बार अत्यन्त हलका एव सादा, फलो या साग-भाजियो का भोजन भी आरम्भ किया जा सकता है, किन्तु इन दिनो भी दूसरा भोजन फलो के रस का या तरकारी के सूप का ही होगा। इस तरह से समझदारी के साथ धीरे-धीरे भोजन म परिवर्तन करते-करते स्वाभाविक भोजन पर आ जाना चाहिए।

उपवास तोड़ने के बाद भूख जोरो से लगती है, लेकिन उस वक्त सयम से काम लेकर उतना खाना नही चाहिए। प्रत्येक ग्रास को धीरे-धीरे और चबा-चबा कर निगलने से, तथा जीभ को वश म रखने से क्षुधा पर विजय प्राप्त की जा सकती है। उपवास के बाद अप्राकृतिक और शरीर को रोगी बनाने वाले भोजन को त्याग कर प्राकृतिक और विशुद्ध सात्विक भोजनों को अपनाना चाहिए, अन्यथा उपवास का मन्तव्य ही न सिद्ध होगा। उपवास के बाद का समय, पुरानी आदतों को छोड़ने, तथा नवीन स्वास्थ्यवर्द्धक गुणो को ग्रहण करने के लिए अच्छा एव उपयुक्त होता है। उस समय यदि मनुष्य चाहे तो अपने को प्रकृति के सहारे चलाकर वास्तविक स्वास्थ्य का एक आदर्श उपस्थित कर सकता है।

सबसे सरल नाश्ते का उपवास —

लम्बा उपवास, लघु उपवास, निराजल उपवास दुग्धोपवास, फलोपवास, रसोपवास, तथा टुट उपवास आदि कितने ही प्रकार के उपवास होते हैं। इनमे सबसे सरल उपवास नाश्ते का उपवास होता है, जिसे हर कोई लाभ के साथ कर सकता है। नाश्ते के उपवास मे किसी प्रकार के विधि विधान की भी जरूरत नही होती। सिर्फ इसके करने वाले को सवेरे एव तीसरे पहर के नाश्ते को त्याग देना पड़ता है। आयुर्वेद मे लिखा है —

याम मध्ये रसोत्पत्ति याम युग्माद बलक्षय ।

अर्थात्, यदि एक पहर दिन के भीतर तीन घंटा दिन चढ़ने के पहले भोजन किया जायगा तो कच्चा रस पेट मे बनेगा, और यदि दोपहर या ६ घण्टा दिन चढने के बाद भोजन न कर लिया जायगा तो बल की हानि होगी, इससे सिद्ध होता हैं कि हमें सवेरे और तीसरे पहर के नाश्ते कदापि नही करने चाहिए । इसके अतिरिक्त प्रातः काल कफ का समय रहता है, जिसकी वजह से तृप्ति बनी रहती है और भूख नही होती, इसलिए प्रात काल सोकर उठते ही भोजन की जरूरत नही होनी चाहिए । वैसे भी यह अनुभवसिद्ध बात है कि यदि सवेरे नाश्ता न किया जाय तो दोपहर को या दस बजे खाने के वक्त खूब कडक डा कर भूख लगती है । उस वक्त भोजन मे जो स्वाद आता है उसको भुक्तभोगी ही जान सकते हैं । परन्तु जो लोग दफ्तरो मे काम करते है या विद्यार्थी हैं, उन्हें दिन का भोजन ६ बजे तक ही कर लेना पड़ता है । ऐसे व्यक्ति यदि सुबह हल्का सा भी नाश्ता कर लेते हैं तो भोजन के समय भूख बिलकुल नही रहती है और बिना भूख के भोजन करने का कुपरिणाम जो होता है उसे सब जानते हैं ।

उपर्युक्त उदाहरणो से यह साफ हो जाता है कि सबेरे नाश्ता करना बेकार ही नही, अपितु हानिकारक भी है । पर जो लोग शारीरिक परिश्रम अधिक करते हैं जैसे किसान, मजदूर, मल्लाह आदि ऐसे लोग यदि आवश्यक समझें तो सुबह को काम पर जाने से पहले हल्का जलपान कर सकते हैं । लेकिन दिन का भोजन उसके पाच-छः घण्टे बाद ही करना उनके लिए जरूरी है । फिर भी, स्वास्थ्य के लिए नाश्ते का उपवास प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान रूप से लाभकारी है, इसमे तनिक भी सन्देह नही है ।

१४. मनोविनोद

इस रोग-शोक, तथा दुख-सताप से भरे ससार में मनुष्य के लिये, गम गलत करने के हेतु एव प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये, विनोद प्रिय होना या मनोविनोद के कुछ साधनो से लाभ उठाना, ईश्वर का एक बहुत बडा बरदान है । क्योंकि मनुष्य का शारीरिक विकास और मानसिक शान्ति बहुत कुछ स्वस्थ मनोविनोद पर ही आधारित है । कारण, मन बहलाव के साधन मनुष्य के जीवन-रस को बनाये रखते हैं जिससे वह ससार से ऊबता नही । मनोरजन वा मनोविनोद का अभाव मनुष्य की शारीरिक और मानसिक शक्तियो को कुण्ठित कर देता है । इसलिए बुद्धिमानी इसी मे है कि हम अपने अवकाश के कुछ क्षण मनोविनोद के कार्यो मे अवश्य लगावे । काम चाहे कितना भी प्रिय क्यो न हो उसे देर तक लगातार करते रहने पर उससे थकान आना स्वाभाविक है । मन बहलाव वाला कोई अन्य काम उस थकान या तनाव को दूर कर देने की पूरी पूरी क्षमता रखता है । वह नया उत्साह लाता है, और नये विचारो के लिये मार्ग प्रस्तुत करता है ।

स्वस्थ व्यक्तियो की अपेक्षा, रोगियो को मनोविनोद या मन बहलाव के साधको की सबसे अधिक जरूरत होती है । यदि ये साधन उन्हें प्राप्त न कराये जायेगे तो सारे दिन वे केवल अपनी बीमारियो के सम्बन्ध मे ही सोच-सोचकर घुलते और घबराते रहेगे, जिससे वे बजाय अच्छा होने के परिस्थिति और भी गम्भीर बना देंगे । अच्छा डाक्टर इस बात की हमेशा कोशिश करता है कि उसका बीमार अपनी बीमारी के सम्बन्ध मे कुछ सोच-विचार न किया करे । लेकिन यह तभी मुमकिन है जब रोगी का मन किसी मन बहलाव के साधन द्वारा बहलता रहे ।

मनोविनोद के साधन--

हमारे जीवन मे मनोविनोद की आवश्यकता है सही परन्तु हमे सस्ते और गिराने वाले मनोविनोद के साधनो से बचने की उससे कम आवश्यकता नही है । क्या मनोविनोद की खातिर शराब पीने या वेश्यालयो की तरफ कदम बढाने की सलाह दी जा सकती है ? हरगिज नही । यह तो घोर पतन है । अत मनोविनोद के साधनो के चुनाव मे विवेक-बुद्धि से काम लेना चाहिए । भारतीयो की एक श्रेणी के लोग आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण सस्ते मनोरञ्जनो, की तलाश मे रहते हैं और इसके लिए सबसे अच्छा साधन वे या तो अपनी गृहणी को समझते हैं, या ताडी खाने वा भट्टी को, या फिर सिनेमा आदि को, जिनसे उनका मनोविनोद तो क्या

होता है, एवं उनके परिवार में अनावश्यक वृद्धि [illegible] होती है और अनाचार और गरीबी खूब फैलती है।

हमें स्वस्थ मनोविनोद के साधनों को अपनाकर लाभ उठाना चाहिए। बहुत से बूढ़े व्यक्ति तथा अन्य लोग भी भगवान का कीर्तन करना, पूजा के गायन गाना, भजनादि को अपने मन बहलाव का साधन बनाते हैं। ये मन बह-लाव के उत्तम, साथ ही साथ लाभप्रद साधन हैं। वे स्त्रियाँ जो पुरुषों के साथ उनके मनोविनोद के तरीकों में भाग नहीं ले सकती, रामायण, महाभारत आदि धार्मिक पोथियाँ, लोकगीत सम्बन्धी साहित्य, हल्के सामाजिक उपन्यास, चुटकले तथा मनोरंजक कहानियाँ पढ़ सकती हैं। ढोलक पर मधुर गीत गाकर अपना तथा दूसरों का दिल खुश कर सकती हैं और रस की गंगा बहा सकती हैं तथा सावन में झूला झूलकर और होली आदि त्योहारों के अवसरों पर नाच-गाकर मनोविनोद के उत्कृष्ट साधनों की सृष्टि कर सकती हैं।

देहातों में बिरहा, कहरवा, आल्हा, विजयमल, विभिन्न प्रकार के खेल जैसे कबड्डी, ओरहापाती, भेड़ों की लड़ाई, दंगल आदि देहातियों के मन बहलाव के सर्वोत्तम साधन माने जाते हैं, जिनसे बेचारों की सूखी नस-नाड़ियों में इस गरीबी की हालत में भी स्वस्थ रक्त दौड़ने लगता है।

रेडियो के प्रचार ने आज देश के हर प्रकार के लोगों के लिये आमोद-प्रमोद का काफी सामान सुलभ कर दिया है, जिसका उपयोग करके देशवासियों को अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिये।

संगीत सम्मेलन, कवि सम्मेलन, नाटक, थियेटर, सरकस, भाँडों की नकल, जादू के खेल तथा बन्दर-भालू के नाच आदि विनोदपूर्ण कलाओं से भी मनुष्य का काफी मनोरंजन होता है।

ताश, शतरंज, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] आदि घर के अन्दर [illegible] मन-बहलाव बहुधा होता है।

इन्हीं के सिवा मनोविनोद के लिए हम, स्त्रियों के साथ और सपरिवार बाहर जाकर उद्यान, [illegible], नदी, पहाड़, झरना आदि रमणीक स्थानों में [illegible] व्यतीत कर सकते हैं या 'पिकनिक' का आयोजन कर सकते हैं, किसी झील या नदिया में नौका विहार कर सकते हैं तथा जंगलों में शिकार करके अपना दिल बहला सकते हैं।

कुछ लोगों को उनकी अपनी अपनी 'हॉबी' से बड़ा प्रेम होता है, जिससे उनका पूरा-पूरा मन बहलाव हो जाता है। 'हॉबी' अर्थात् शौक या रुचि विशेष से प्रत्येक व्यक्ति मनोरंजन का लाभ उठा सकता है क्योंकि कदाचित ही कोई ऐसा व्यक्ति समाज में मिले जिसकी कोई 'हॉबी' नहीं। उदाहरण के लिये कोई तार का, रेलवे का, बस का, ट्राम का, हवाई जहाज का, या सिनेमा का टिकट एकत्र करता है, किसी सिगरेट की, दियासलाई की, बूट पालिश की खाली डिब्बियों को एकत्र करने की धुन समाई होती है। इसी तरह किसी को जानवरों की सींग इकट्ठा करने की, किसी को घोड़े की नाल और किसी किसी को देश-विदेश के सिक्कों को एकत्र करने की 'हॉबी' होती है, जिसके करने में उनको बड़ा सुख मिलता है और अच्छा मनबहलाव हो जाता है। चित्रकारी, कार्टून बनाना, फोटो खींचना, चिड़िया पालना, कनकव्वा उड़ाना तीतर बाजी, बटेर बाजी, मुर्गा लड़ाई, मधुमक्खी पालना, बन्दर, नेउला, बिल्ली, कुत्ता आदि पशु पालना आदि भी बहुतों की 'हॉबियाँ' या शौक होते हैं जिनसे उनका बड़ा मनोविनोद होता है और जिनके बिना उनको अपना जीवन ही नीरस प्रतीत होने लगता है।

—श्री डा० गंगाप्रसाद जी गौड "नाहर" एन डी
भारतीय प्राकृतिक विद्यापीठ एवं चिकित्सालय,
डायमंड हार्बर रोड (२४ परगना) पश्चिम बंगाल

स्नान कैसे करें?

विद्यावाचस्पति श्रीगणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'

विद्यावाचस्पति श्री गणेशदत्त जी शर्मा 'इन्द्र' स्वतन्त्रता संग्राम के सफल सेनानी ग्रन्थकार, पत्रकार, निबन्धकार एवम् कवि है। आप धन्वन्तरि के स्थाई लेखक है तथा प्राय सभी विशेषाको के लिये अपने अगाध ज्ञानयुक्त लेख देते रहते है। आपने स्वास्थ्य विषयक लगभग १२५ पुस्तको की रचना की है। आपकी आस्था प्राकृतिक चिकित्सा एवम् सम्मानित जीवन-यापन मे है जो उत्तम स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

'स्नान कैसे करे' आपका लेख आपके अगाध-ज्ञान एवम् स्व अनुभव का प्रतीक है। आशा है आपका यह लेख पाठको के स्वास्थ्य सवर्धन मे विशेष योगदान दे सकेगा।

— विशेष सम्पादक
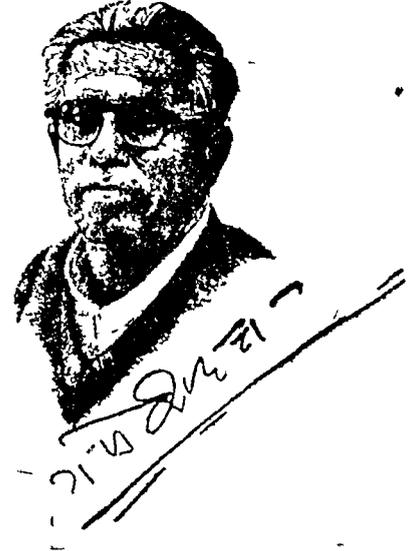
लोगों ने स्नान को धर्म से जोड लिया है। हम भी मानते हैं कि शुचिता धर्म का एक अग है परन्तु यही धर्म है यह नही मानना चाहिये। पूजा या नमाज आदि के पूर्व स्नान किया जाता है और दो चार लोटे या चुल्लु भर पानी से स्नान की गरज पूरी करली जाती है। किसी सीमा तक यह उचित है परन्तु स्नान का सीधा सम्बन्ध स्वास्थ्य से है। हम पाठको को स्नान करने की कुछ ऐसी विधिया बताना चाहते हैं जो रोगो से शरीर को मुक्त रखने में सहायक हो तथा स्वास्थ्य रक्षा सहज ही की जा सके। स्नान कई प्रकार के है जैसे वायु स्नान, धूप स्नान, तेल स्नान, वाष्प स्नान, मृत्तिका स्नान आदि ये सभी स्नान स्वास्थ्य हित में बहुत ही आवश्यक है किन्तु यथासमय और यथावश्यक ही हम यहाँ जल स्नान पर ही लिखना चाहेगे। जो प्रतिदिन भोजन की भाँति शारीरिक प्रक्रिया-को सुधारने तथा समाले रहने से परमापेक्षित है। जल-स्नान में सबसे पहले जल की ओर ध्यान देना चाहिये। जल स्वच्छ निर्मल और पेय जल मे अपेक्षित सभी रासायनिक तथा खनिज वस्तुओ के यथेष्ठ आवश्यक अशो से युक्त हो बहती हुई निर्मल जल वाली नदी, काम मे आते रहने वाले कुओ, बावडियो, विशाल खुले मैदानो के स्वच्छ तालावो का जल स्नान के लिये हितकारी तथा छोटे छोटे पोखरो, पोखरो, कुण्डो, गड्ढो, तालावो, अवरुद्ध नदियो का पानी हानिकारक होता है। स्नान के लिये पानी को कपडे से छानकर काम मे लाया जाय क्योकि रोम कूपो मे पानी शरीर मे प्रविष्ट होता है। इसकी सत्यता के लिये आप स्नान से पूर्व अपने आपको तौल ले और फिर स्नान के बाद तुले तो आपका वजन कुछ अधिक पायेगा। क्योकि पानी रोम छिद्रो द्वारा शरीर मे प्रवेश कर गया है अब आप पानी की शुद्धि का महत्व और कारण समझ ही गये होगे। नदी और तालो मे स्नान करना तथा तैरना स्वास्थ्य के लिये बहुत ही उपयोगी है। ऐसे हौजो मे बावडियो में अथवा टेको मे कभी भूल कर भी न नहाइये

जिनमे बहुत लोग स्नान करते हो उनके शरीर के मैल से कुल्ले करने, थूकने कफ निकालने, वस्त्र धोने आदि से पानी दूषित होकर रोगोत्पादक बन जाता है। अनेक चर्म रोग उत्पन्न हो जाते हैं। चर्म रोगो के अतिरिक्त कई स्पर्शजन्य अनेक बीमारियां भी हो जाती है, कम से कम कटिपर्यन्त जल मे रहकर स्नान करना चाहिये। नदी तालावो के अतिरिक्त घर पर भी एक टब के द्वारा यह आवश्यकता पूरी की जा सकती है।

स्नान का स्थान एकदम एकान्त हो। जलाशयो मे ऐसे स्थान तलाश करने पर मिल जाते हैं। अपने घर के किसी कक्ष को स्नानागार बनाया जा सकता है। स्नान के लिये प्रभात का समय बहुत ही अच्छा और स्वास्थ्यकर है। यदि वह सभव न हो तो कोई सा भी समय दिन का बना लेना चाहिए। नित्य एक ही समय पर स्नान करना चाहिए। ऋतुओ के अनुसार समय मे यथावश्यक परिवर्तन कर लेना चाहिये। गर्मी के दिनो मे दो बार भी स्नान किया जा सकता है यथासभव रात्रि के स्नान को टालना ही उचित होगा।

निर्मल पवित्र जल का तापमान आपके शरीर की ऊष्मा से अधिक न हो। शीतल जल से ही किया स्नान स्वास्थ्यप्रद होता है। रुग्णावस्था में अथवा बीमारी के बाद गुन-गुने जल का प्रयोग करना चाहिए। गर्म जल से किसी भी ऋतु मे स्नान करने की इच्छा नही करनी चाहिए। शीतल जल ही स्नान क्रिया, का सर्वविशयक अङ्ग है। खुले स्थानो मे स्नान करते समय लज्जा निवारण के लिए कम से कम वस्त्र शरीर पर होना चाहिए। एकान्त मे अथवा बन्द कमरे मे शरीर पर वस्त्र रखने की कोई जरूरत नही। दिगम्बरावस्था में स्नान करें।

स्नान के समय सबसे पहले सिर को पानी से भिगोना चाहिए पावो को नही। अर्थात स्नान क्रिया सिर से आरम्भ होना चाहिए न कि पाँव आदि से। यदि हौज या टब हो तो उसमे बैठ कर या इनके अभाव में बाल्टियो मे पानी भरकर स्नान आरम्भ करें। एक खुरदरा टावेल या तौलिया खादी का हो तो बहुत ही उपयोगी रहेगा। इस टावेल को पानी मे डुबा डुबा कर अपने शरीर को घिसिए। धीरे धीरे रगडिए। जिससे शरीर पर का मैल मुर्दार चमडी शरीर से अलग हो जावे और रोमछिद्र खुल जावे। ध्यान रहे यह शुद्धि कार्य मस्तक से लगाकर पैरो की अगुलियों तक चलना चाहिए। शरीर के कुछ अङ्ग ऐसे है जिनकी सफाई पर हमारा ध्यान ही नही जाता बगले रागें, अगुलियो के मध्य का स्थान, कान, मूत्रेन्द्रिय और मलेन्द्रिया। मूत्रेन्द्रिय के आस पास पर के चमडे को सरकाकर लिग मुड तथा आसपास के मल को साफ करना न भूलिए और न ही गुदा के मुख भाग को कपडे से रगडकर साफ करना भूलिए, दोनो नितम्बो के मध्य भाग को तौलिये से रगडकर खूब साफ करें। इस प्रकार स्नान पूर्ण होने पर आप अपने तौलिये को धोता या उल्टा करके अपने उदर पर दाये से बांये २५ बार और बांये से दाहिनी ओर २५ बार धीरे-धीरे गोलाकार आहिस्ता आहिस्ता घुमाइये। बाद में पेड़ पर दाये-बाये धीरे-धीरे २५ बार रगडिये। इसके बाद वक्ष से पेट तक २५ बार और फिर दाहिनी पसलियो और बाई पसलियो को पच्चीस-पच्चीस बार ऊपर से नीचे रगड दीजिए। अपनी पीठ के ऊपर विशेषत रीढ को पानी मे भिगोकर तौलिया से १० बार रगड डालिये। शरीर के संधि स्थानो को भी टबेल को भिगो-भिगोकर कई बार रगड डालिए। स्नान की इसी क्रिया के पूर्ण होने पर अपने टावेल को साफ पानी मे अच्छी तरह धोकर शरीर को पोंछ डालिए। हां यह न भूल जावें कि शरीर पोंछने के पहले शुद्ध जल से अपने शरीर को हाथो की अगुलियो के सहारे अच्छी तरह धो डालें। प्रत्येक अग को अच्छी तरह रगड कर पोंछें।

यदि बहुत ही आवश्यक जान पडे तो कोई बढिया साबुन को उपयोग मे ला सकते हैं। परन्तु अधिक समय तक शरीर पर साबुन लगाये रखना भूल होगी। शरीर का मेल तथा दुर्गन्ध आदि दूर करने के लिये आंवले के चूर्ण का पानी काली या अन्य कोई क्षारयुक्त मिट्टी काम लें। सोडा का उपयोग कभी न करें।

स्नान में बीस से ३० मिनिट तक लग जाना चाहिये स्नान के बाद पवित्र शुद्ध और दुर्गन्ध रहित वस्त्र शरीर पर पहने जाने चाहिये।

अनेक स्नान ऐसे है जिनके द्वारा विविध रोगो तथा असाध्य रोगो तक को दूर किया जा सकता है। जर्मनी के डा० लुईकूने ने इस दिशा में बडे श्रम के साथ आवश्यक स्नान का विधान किया है जो रोगो को समूल नष्ट करने मे सहायक है।

—विद्यावाचस्पति श्री गणेशदत्त शर्मा 'इन्द्र'
शान्ति कुटीर, आगर (मालवा) म. प्र.

वैद्य ज्योतिर्विद श्री श्रीकान्त लक्ष्मण देश पाण्डे एच०पी०ए०

वैद्य श्री श्रीकान्त लक्ष्मग देशपाण्डे सुयोग्य आयुर्वेद निष्णात् एव उत्साही अध्ययनशील नवयुवक है। स्नातकोत्तर प्रशिक्षण के बाद कई एक कालजो मे कार्य किया और जुलाई १९६८ मे आप आल इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ मेडिकल साइसेज दिल्ली मे आसिस्टेन्ट रिसर्च आफीसर नियुक्त हुए। वहा से आप केन्द्रिय अनुसधान विभाग पाटयाला मे रिसर्च आफीसर नियुक्त होकर गए और अब मई १३ से अहमदाबाद मे अनुसंधानाधिकारी है। आपके कई एक निबन्ध 'धन्वन्तरि' मे प्रकाशित हुए है। आपके लेख सारपूर्ण, सक्षिप्त एवं अनुसधानात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने वाले होते है।

सूर्यनमस्कार एक उत्कृष्ट व्यायाम है जो बिना पैसे खर्च किये स्वास्थ्य सवर्धन मे सहायक है।

—विशेष सम्पादक

'शक्तिर्यस्य जने स एव नृपति शेषा पर पार्थिव।' इस पद से स्पष्ट होता है कि जो बलवान है वही वरिष्ट है अन्यो को मृतवत् समझना चाहिए। इस गतिशील युग मे मनुष्य को विविध कष्टो से सामना करना पड रहा है और विविध कष्टो से द्वन्द्व करके वह हतबल होता जा रहा है। अतः ऐसे विविध कष्टो से सामना करने की व्याधि प्रतिकारक शक्ति उसमे होनी चाहिए। अत. रोग प्रतिबधक शक्ति उत्पन्न करने वाला व्यायाम जो अबला, बाल एव वृद्धो से भी किया जा सके तथा साधन विहित परतु बहुत गुण देने वाला हो ऐसा व्यायाम है सूर्यनमस्कार।

सूर्य नमस्कार व्याख्या—प्रात काल मे शीत जल से स्नान करके सूर्योदय होते ही सूर्य के द्वादश नाम लेकर सूर्य देवता को विविध आसनो मे जो प्रणाम किया जाता है उसे सूर्य नमस्कार कहा जाता है।

सूर्य नमस्कार कौन कर सकते है ?

यह अत्युत्कृष्ट व्यायाम ८ वर्ष के ऊपर के बालक, वृद्ध, स्त्री एव पुरुष सभी कर सकते हैं।

सूर्य नमस्कार सख्या—

प्रतिदिन नियमित रूप से कम से कम १२ नमस्कार डालने की आवश्यकता है। इसके अलावा क्रमानुसार निम्न प्रमाण योग्य है—

(१) ८ से १२ वर्ष तक—४० नमस्कार
(२) १२ से १६ वर्ष तक—१०० नमस्कार
(३) १६ से ४० वर्ष तक १००—३०० नमस्कार
(४) वृद्ध एव स्त्रीवर्ग—५०—७५ सूर्य नमस्कार

सूर्य नमस्कार करने से पूर्व की तैयारी एव खबरदारिया

(१) सूर्य नमस्कार करने से पूर्व शीतल जल से स्नान करे।

(२) स्नान के पश्चात् लगोट पहनना चाहिए। यह लगोट ऐसा हो कि जिससे शिश्न एव वृषण ये अवयव फिट हो जाने चाहिए।

(३) लगोट पहनने के वाद ७ फुट लम्बी तथा ३ फुट चौडी ऐसी समतल तथा स्वच्छ भूमि पसद करके, उस पर तोलिया डालकर नमस्कार डाले।

(४) सूर्य नमस्कार के पूर्व प्राणायाम करे।

सूर्य नमस्कार तथा मत्र

सूर्यनमस्कार यह १२ आसनो का समूह है, इस तरह १२ सूर्यनमस्कार डालते समय एक-एक मत्राच्चारण करना पड़ता है मत्राच्चारण के साथ सूर्यनमस्कार करने से विशिष्ट फल प्राप्त होता है। १२ नमस्कारो का एक आवर्तन इस प्रकार अनेक आवर्तन किये जाते हैं। द्वादश मत्र निम्नानुसार है—

१. ॐ ह्रा मित्रायनम.। ७. ॐ ह्रा हिरण्यगर्भाय नम.।
२. ॐ ह्री रवये नम। ८. ॐ ह्री मरीचये नम।
३. ॐ ह्रू सूर्याय नम। ९. ॐ ह्रू आदित्याय नम.।
४. ॐ ह्रै भानवेनम.। १०. ॐ ह्रै सवित्रे नम.।
५. ॐ ह्रौ खगाय नम। ११. ॐ ह्रौ अर्काय नम।
६ ॐ ह्र पूष्णे नम। १२. ॐ ह्र भास्कराय नम।

अन्तिम मत्र के वाद—

आदित्यस्य नमस्कारान् ये कुर्वन्ति दिने-दिने।
जन्मान्तर सहस्त्रेषु दारिद्र्य नोपजायते॥

यह मत्र वोले। इस तरह १२ मत्रो के साथ १२ नमस्कार डालें। मत्र सीवाय भी सूर्य नमस्कार डालते है परन्तु समत्र सूर्य नमस्कार अधिक फलदायी है।

सूर्य नमस्कार से शरीर के विकसित होने वाले १२ भाग

सूर्य नमस्कार से सिर से पाद तक के १२ भाग विकसित होते हैं, वे निम्न चित्र मे स्पष्ट किये हैं।

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट होता है सपूर्ण शरीर के, सम्पूर्ण अवयव सूर्य नमस्कार द्वारा उत्कृष्ट तथा वलवान बनकर शरीर अति कार्यक्षम होकर; रोग प्रतिवन्धक शक्ति उत्पन्न करता है।
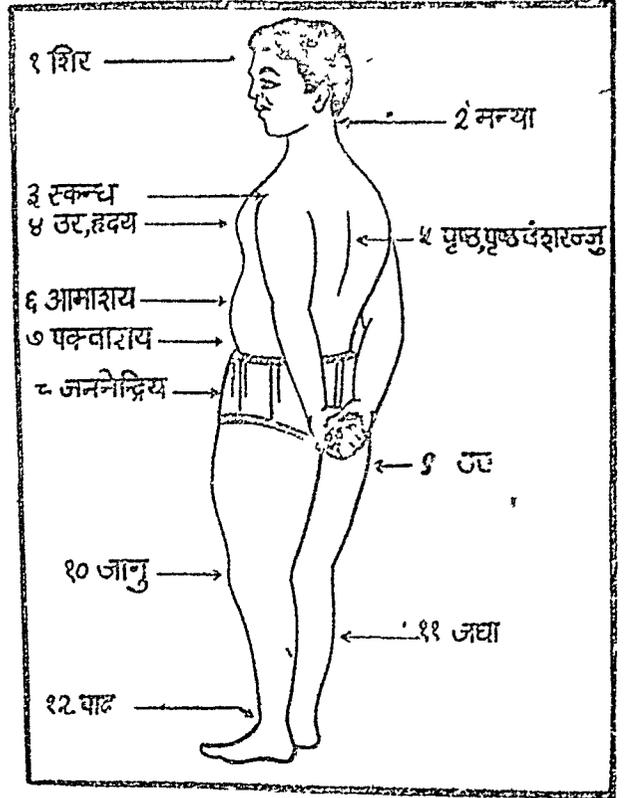
सूर्य नमस्कार विधि—

सूर्य नमस्कार यह १२ आसनो का समूह है। इसमे दक्षासन, नमस्कारासन, पर्वतासन, हस्तपादासन, एकपादप्रसरणासन, भूधरासन, चतुरगप्रणिपातासन, अष्टांगप्रणिपातासन, भुजगासन पुन भूधरासन, एकपादस्थितासन पुन. हस्तपादासन का अन्तर्भाव होता है। इन्ही के आधार पर १२ अवस्थाये हैं।

प्रथम अवस्था—

शिर से पाद तक के अवयवो को टट्टार रखना। दृष्टि सामने रखना, दोनो जानु, पाद एकत्र रखे। यह दक्षासन है।

द्वितीय अवस्था—

सीधा खड़ा रहना। दोनो हाथो को जोडकर सूर्य को नमस्कार करें। श्वास को लेकर रोक कर रखें। यह नमस्कारासन है।

(पृष्ठ २४९ पर चित्र देखें)

द्वितीय अवस्था   चतुर्थ अवस्था

तृतीय अवस्था—

द्वितीय अवस्था मे स्थित हाथो को पीछे की तरफ प्रसारित करना, पर्वत की तरह स्थिति रखना। यह पर्वतासन है।

चतुर्थ अवस्था—

तृतीय अवस्था मे प्रसारित हाथ जमीन को लगावें, श्वास छोडे नाक घुटने को लगावे। पेट को अन्दर खीच ले।

पंचम अवस्था—

चतुर्थ अवस्था स्थित द्विपादो मे से दक्षिणपाद उसी

जगह रखना, वाम पाद को जमीन के समानान्तर पीछे ले जाना। श्वास बाहर निकाला वह अन्दर न ले।

षष्ठावस्था—

यह भूधरासन है इसमे दोनो हाथ तथा दोनो पाव जमीन को मिले रखना, श्वास अन्दर खीचना, सिर अन्दर लेकर दृष्टि नाभि की तरफ रखे।

सप्तमावस्था—

यह चतुरग प्रणिपातासन है। पादागुष्ठ अगुलियो तथा हाथ के पजे पर सम्पूर्ण शरीर जमीन से समानान्तर रखें। श्वास को अन्दर ले ले।

अष्टमावस्था—

यह अष्टाग प्रणिपातासन है। सातवी अवस्था स्थित शरीर को सीधा जमीन पर रख ले। उर, कपाल, जानु तथा अगुली इतना भाग जमीन को लगे। श्वास को छोड दें।

नवमावस्था—
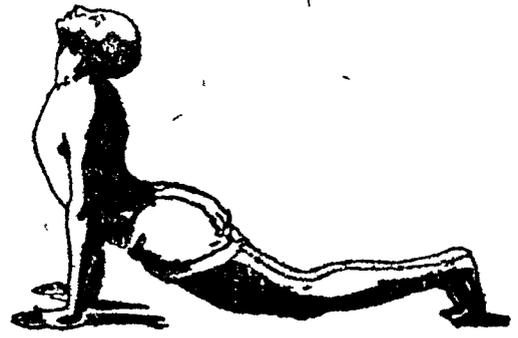
यह भुजगासन है। आठवी अवस्था स्थित पाद वहां ही

रखे हाथ पर दबाव डालकर सिर पीछे की तरफ झुकायें। श्वास ले, श्वास को रोक के रखें।

दशमावस्था—

यह भूधरासन है। यह छठी तरह है सिर्फ इस अवस्था मे नाभि की तरफ न देखकर पाद की तरफ दृष्टि रखें। श्वास बाहर ही रखें।

एकादशावस्था—

यह पाच की तरह है बाये पाद को आगे लेकर, दक्षिण पाद पीछे ही स्थिर रखे। श्वास बाहर ही रखें।

द्वादशावस्था—

यह हस्तपादासन है। चतुर्थावस्था की तरह स्थिति रखें।

इस तरह पूर्ण व्यायाम के बाद शवासन करें। सूर्य नमस्कार से शरीर लघु, अग्निदीप्तता होती है। मन और शरीर सुदृढ होता है। यह व्यायाम करने के बाद प्रतिदिन दुग्धपान करें, सात्विक आहार रखें। इससे अल्प समय मे शरीर सुदृढ होकर मनुष्य चिरंजीवी रहता है। अतः यह उत्कृष्ट व्यायाम प्रत्येक व्यक्ति करे तो समाज अति शक्तिशाली बनेगा।

—वैद्य ज्योतिर्विद् श्री श्रीकांत लक्ष्मण देशपांडे
एच. पी ए ज्योतिषशास्त्र रिसर्च ऑफीसर,
मणिबेन सरकारी आयुर्वेदिक हॉस्पिटल,
अहमदाबाद—३७००१६

—

मालिश अथवा अङ्ग मर्दन

आयुर्वेद वारिधि श्री चाँद प्रकाश मेहरा B.Sc.

आप राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली मे वैज्ञानिक अधिकारी तथा इण्डियन एसोशियेशन फार दी स्टडी आफ कल्याल प्रोपरटो नई दिल्ली के सैक्रेटरी हैं। चिकित्सा कार्य शौकिया करते है। परिचितो, मित्रो तथा सहयोगियो को नि शुल्क चिकित्सा परामर्श एव दवा देना आपका व्यसन है। तन्त्र-मन्त्र यन्त्र एवम् साधना मे विशेष रुचि रखते हैं। एतदर्थ साधु-महात्माओ, सिद्धो के सत्सग सेवा मे व्यस्त रहने वाले सन्तोषी एवम् प्रभुविश्वासी व्यक्ति हैं। 'काम विज्ञान' का भी आपने काफी अध्ययन एवम् मनन किया है। आपने आयुर्वेद एवम् आयुर्वेदेतर पत्रिकाओ के अनेक विशेषाको का लेखन सम्पादन भी किया है। इसी वर्ष आप 'धन्वन्तरि' के "काम विज्ञानाक" (लघु विशेषांक) का सम्पादन कर रहे है।

'मालिश अथवा अङ्गमर्दन' पर आपके विशेष अनुभवो एव क्रियात्मक ज्ञान का सचित्र सयोजन स्वास्थ्य के लिए बडे काम का है। आशा है पाठक अपने ज्ञान की अभिवृद्धि कर स्वास्थ्य को सफल बना सकेगे।

—विशेष सम्पादक

शरीर के स्नायु और जोड़ों का मर्दन करके शरीर की थकान, कठोरता (Stiffners) आदि शारीरिक दोषो को दूर कर कोमल, चिकना और लावण्यमय बनाने की विधि को मालिश या अङ्गमर्दन कहते हैं। कभी-कभी केवल मर्दन (Rubbing) को ही 'मालिश' की सज्ञा दी जाती है और कुशल हाथो से विभिन्न अङ्गो को गति देने (Manipulation) को स्नायुओ के हिलाने, डुलाने व व्यायाम कराने को कहते हैं जोकि प्राय टूटी हड्डी को जोड़ने, स्थानच्युत हड्डी को ठीक से अपनी जगह पर बैठाने का कार्य करने वाले पहलवान लोग किया करते हैं। वस्तुत यह सभी कार्य 'मालिश' के अन्तर्गत ही आते हैं।

यह ससार के सभी देशो मे आदिकाल से चली आ रही है। भारत के प्राचीन सास्कृतिक व धार्मिक ग्रन्थो मे भी 'मालिश' का उल्लेख मिलता है। 'अयोध्या काण्ड' के सर्ग ९१ मे भारद्वाज ऋषि द्वारा 'भरत' की सेना की सेवा के लिए नियुक्त स्त्रियो द्वारा उनकी मालिश करने का उल्लेख मिलता है। यथा—

> उच्छाद्य स्नापयन्ति स्म नदी तीरेषु वल्गुषु।
> अप्येकमेक पुरुषं प्रमदा. सप्त चाष्ट च ॥ ५२॥

सात या आठ युवतिया प्रत्येक सैनिक का अभ्यङ्ग कर उन्हें नदी किनारे स्नान कराती थी।

> संवाहन्त्य समापेतु नार्यो रुचिरलोचनाः।
> परिमृज्य तथान्योन्य पाययन्ति वराङ्गना ॥ ५३॥

सुन्दर नेत्रवाली रूपवती स्त्रिया सैनिकों की चम्पी कर उनके शरीर को पोछकर साफ करके उन्हे सुरापान कराती थीं।

वात्स्यायन ने भी 'कामसूत्र' मे कहा है—

उत्सादने सवाहने केश मर्दने च कौशलम् ।

यशोधर ने भी यही कहा है—

मर्दनं द्विविध पादाभ्या हस्ताभ्या च ।
तत्र पादाभ्या यन्मर्दनं तदुत्सादनं उच्यते ।।
हस्ताभ्या यच्छिरोभ्यङ्ग कर्म तत्केशमर्दनम् ।
केशानां तत्र मृद्यमानत्वात् तैरेव तद् व्यपदेश. ।।
शेषाङ्गेषु मर्दन संवाहनम् .... ।।

भविष्य पुराण मे पन्द्रहवें अध्याय में, ब्रह्मपर्व के अन्तर्गत निर्देश मिलता है कि पत्नी को पति के शरीर की मालिश करने मे निपुण होना चाहिए। उसे मालिश करने का ढङ्ग भी बताया गया है । यथा—

कमर की मालिश कोमलता से धीरे-धीरे करे । चेहरे और गर्दन की जरा जोर से लेकिन आराम से करें । हाथ, सीना, पीठ, कधे, सिर और पैरों की मालिश खूब जोर लगाकर करनी चाहिए । जिन अङ्गो मे मास कम है, नाभि के नीचे के मर्म स्थल (Vital parts close to naval), हृदय, चेहरा और गाल इनकी धीरे-धीरे मालिश करें । यदि पुरुष जाग रहा हो तो खूब जोर से मालिश करें, घुमेरी आ रही हो (निद्रालु हो, ऊघ आ रही हो) तो उसे धीरे धीरे थपथपायें और जब सो जाये तो मालिश बन्द कर दे । जिन अङ्गो पर बाल हो तो उन की मालिश बालो की विपरीत दिशा मे करें ।

पुरुष को कामोत्तेजित करने के लिए स्त्री को चाहिये कि मालिश के साथ साथ अपनी उगलियो के नाखून उसके विभिन्न अङ्गो मे धीरे-धीरे गढाये अथवा उनसे उसके अङ्गो को खुरचे । जब-जब, जिस-जिस स्थान की मालिश करते-करते वह देखे कि पुरुष सुख से आंखें मीच रहा है तो उस-उस अग की मालिश और जोर से करें । यथा—यदि वह जाघो को मले, सहलाये तो वह देखेगी कि पुरुष उसे ऐसा करने से रोकने के लिए उसके हाथ पकड लेता है। यह उसके कामोत्तेजित होने का लक्षण है।

अग्नि पुराण मे रसादिलक्षण कथन मे, मानसोल्लास (Govt Oriental Series Baroda vol II 1939) आदि मे भी मालिश का वर्णन मिलता है ।

चीन मे मालिश और एक्यु पन्क्चर आदि काल से प्रयोग में लाये जाते रहे हैं ।

मालिश या मर्दन हमारे स्वास्थ्य और सौन्दर्य की वृद्धि करता है और अनेक रोगो को दूर करता है। मालिश वास्तव मे स्नायुओ का व्यायाम है । मालिश का उद्देश्य स्नायुओ को गति देना होता है । मालिश से उन्हे स्वतत्र और अबाधगति से अपना कार्य सुचारु रूप से करने की क्षमता और शक्ति मिलती है। मालिश से रक्त प्रवाह मे रगड एव गर्मी पैदा होकर तीव्रता उत्पन्न होती है, जो रोगो को दूर करने मे सहायक होती है। मर्दन-क्रिया (Rubbing) से रक्त मे मिले विषाक्त द्रव्य छँटकर अलग हो जाते हैं और पसीना, पेशाबादि के रास्तो से होकर शरीर के बाहर निकल जाते हैं, जिससे रक्त शुद्ध होकर नवजीवन, स्फूर्ति और ओज से परिपूर्ण हो जाता है।

मालिश से रक्त का दौर बढता है और शरीर पुष्ट होता है । मालिश से थके हुए स्नायुओ की थकान दूर होकर उनकी कार्य क्षमता बढती है । मालिश का प्रभाव स्नायुओ, रक्त की शिराओ व धमनियो और त्वचा पर समान रूप से पडता है, जिसकी वजह से रक्त के सचार मे अति शीघ्र नवीन शक्ति व स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है। मालिश से शरीर के स्नायु बिना थकावट महसूस किये कार्य करने योग्य हो जाते हैं, जोड़ लचीले और सौत्रिक बधन ढीले हो जाते हैं ।

मालिश के विभिन्न रूप—

प्राचीन काल मे कोई कोई लकड़ी की हथेली (गंधव-हत्यक Wooden instrument in the shape of a hand) को चूने से लेप कर फिर उससे शरीर को रगडते थे । कोई कोई लकडी के बने पीठ सहलाने के 'मल्लका' से शरीर रगडते थे । कोई कोई पकी मिट्टी के बने 'झामे' [बज्री, baked brick] से पैर की एड़ियाँ और शरीर के विभिन्न अङ्गो को स्नान करते समय रगड़ते थे, यह प्रथा तो आज भी प्रचलित है । कही कही सूखी तोरी के 'झामें' प्रयोग मे लाये जाते हैं । और अब तो रबर-प्लास्टिक के बने नर्म दांतेदार 'झामे' प्राय मिलते है जिन्हे स्नान करते समय प्राय सभी अङ्ग-मर्दन के लिए प्रयोग मे लाते हैं ।

जैन सन्यासिनिया तो राख को सिर पर मलकर (राख

मे सिर की मालिश कर) वहा के बालो को अपने हाथो से जड से खीच-खीच कर हटा कर अपना सिर गजा कर लेती हैं।

मर्दन-क्रिया (Rubbing) के अनुसार मालिश मुख्यत तीन प्रकार की कही जा सकती है यथा--(1) गुदगुदाना (हल्के हल्के ठोकना Stroking), (11) गूधना (Kneading) (111) थपथपाना (Tapping).

सारे शरीर के स्नायुओ को गूधना और उनकी मालिश करने को चम्पी (Shampoo) की सज्ञा दी जाती है। शरीर सिर व पैरो मे तेल लगाने को अभ्यग कहते हैं। शरीर को पोंछकर (साफ करके) सुगन्धित द्रव्य लगाने को शरीर परिमार्जन कहते हैं। सिर की तेल मालिश (Rubbing oil on the head) को मूर्ध्नि तैल कहते हैं। पुरुष साधन द्वारा स्त्री के मदन-मन्दिर का मर्दन (Coitus, सभोग) को 'सवेषण' कहते हैं।

मालिश (मर्दन, Massage) करने के ढंग दो प्रकार के होते हैं—(1) हाथो से (11) पैरो से। पैरो से मर्दन करने को उत्सादन कहते हैं। बालो मे तैल लगाकर सिर की मालिश करने को केश मर्दन कहते हैं। शरीर के दूसरे अगो की मालिश को 'सवाहन' कहते है।

आजकल भी प्राय 'उत्सादन' देखने में आता है। थका, मादा पुरुष किसी बच्चे को या सेवक को अपने पैरो, पीठ, जांघ आदि पर धीरे-धीरे कूदने या चलने को या पाँव से दबाने को कहता है। [The person whose limbs need massage asks another to tread on his limbs (Thighs, soles of feet, back etc) with gentle pressure]

मालिश करने के ढग के अनुसार 'मर्दन' के और भी बहुत से रूप हैं। यथा—

दीर्घ मर्दन— हाथ घुमाकर किया जाता है जैसे पीठ, हस्त, पादादि की मालिश मे करते है।

ह्रस्व मर्दन—दीर्घ से अल्प विस्तृत और आस पास हाथ घुमाकर करते हैं जैसाकि स्नायुओ पर करते हैं।

मडल मर्दन—मण्डलाकार हाथ घुमाकर होता है जैसा कि पेट पर किया जाता है।

उपलेप मर्दन—हाथ रुमाली घुमाकर जैसे घुटने या मस्तक पर करते हैं।

वलय मर्दन— जैसे पेच की तरह कसते हुए पिण्डलियो पर करते है।

ताड़न मर्दन—मुक्का या हथेलियो के आघात से करते हैं। पीठ तथा नितम्ब जैसे मासल भागो पर की जाती है।

चालन मर्दन--सधि के अन्दर के अवयवो को घुमाने से होती है।

हल्के-हल्के ठोकना, सहलाना, दाबना, कूटना, रगडना, चिकोटी काटना, थपथपाना, गूधना, वेलना, लढकाना, कम्पन देना, चुटकी भरना, जोडो को मसलना तथा खास ढग से मासपेशियो को सूतना आदि मालिश के विविध रूप हैं।

रात को सोते समय पाद तल पर तैल मालिश करवाने से और प्रात. काल सिर मे तेल मालिश कराने से मनुष्य की दृष्टि ठीक रहती है। नजला, जुकाम पास नही फटकता। काहू के तैल की मालिश से निद्रा अच्छी तरह आती है और अनिद्रा दूर हो जाती है। मालिश से शरीर का कफ व चर्बी दूर होती है, शरीर का रग निखरता है और अग पुष्ट होकर दिव्य देह बनती है।

कुश्ती लडने वाले कुश्ती लडने से पहले अपने सारे शरीर की तेल मालिश कराते है और कुश्ती के बाद शुष्क घर्षण मालिश (Dry Friction Massage) कराते हैं। साधारण लोग व्यायाम करने के बाद तेल मालिश करते है और कुछ लोग स्नान करने से पहले तेल मालिश कर फिर स्नान करते है।

तेल या दूसरे स्नेह द्रव्य प्रयोग मे लाये या न भी लाये जा सकते है। सूखी मालिश भी की जाती है।

आधुनिक ब्यूटीकल्चर (Beauty Culture, Beauty Saloon) सुन्दरता बनाये रखने का व्यवसाय चेहरे और गर्दन की मालिश पर ही निर्भर करता है।

चेहरे की मालिश—

ठोडी की मालिश—हाथ के अन्दर के भाग को इस क्रिया के लिए उपयोग मे लायें। इससे चेहरे पर थोडा सा दबाव डालते हुए मासपेशियो को उठा सा लो। पहले गाल के नीचे के भाग से शुरू करके ठोडी की नोक तक ले जाये फिर गले से कान तक और फिर जहाँ से शुरू किया वही बीच वाले भाग पर आ जाइये। इस प्रकार दो तीन बार करें।

जबडो की मालिश—

दोनो मुट्ठियो को दबाकर गले के नीचे के भाग पर रखें। फिर उन्हे थोडा दबाते हुए उठाकर ठोडी की नोक तक ले जायें। फिर गर्दन के स्नायुओ को खीचकर ठोडी से जबडो पर होते हुए मुट्ठियो को कान के पीछे के भाग तक ले जाइये। इस क्रिया मे आप अपनी मुट्ठियों से जबडो के नीचे की तरफ तथा जबडो की हड्डी पर मालिश करें। अब कानो तक आकर हाथ चेहरे से उठा लीजिये और उसे गले के निचले भाग पर ले आइये। इस सपूर्ण क्रिया को दो तीन बार करे।

गालो के नीचे के भाग की मालिश—

पहले दोनो हाथ की तीन-तीन अगुलियो को ठोडी की नोक पर रखिये और उन्हे धीरे-धीरे ऊपर की ओर बाहर की तरफ ले जाते हुए साथ ही साथ उन्हे गोलाकार में घुमाइये और इस तरह कान तक जाइये और उनसे ऊपर आँखो के बाहरी भाग तक जाइये। अब यहाँ गाल की मासपेशियो को दो अगुलियो से उठाकर तीसरी अगुली से आखो के बाहर की लकीरो पर हल्की सी मालिश कीजिये।

भाल की मालिश—

दोनो हाथ की अगुलियो से एक के बाद एक हाथ से माथे को हल्के थपेडो से भौहो से सिर के केश शुरू होने वाली लकीरो तक, भाल को उठा सा लीजिये। इस तरह एक कनपटी से दूसरी तक भी कीजिये, विशेषकर भाल के मध्य भाग मे, इससे भाल पर की आडी लकीरे-सी दूर हो जाती हैं। अब दूसरी क्रिया जो भौहो के बीच वाली सीधी झुर्रियो के लिये अच्छी है, करें। उसमे पहिले हाथो को भाल के ऊपर एक साथ एक के ऊपर एक रखिये (एक दूसरे पर रखकर) छोटी अगुलिया बराबर पलको के ऊपर आयें, इस प्रकार रखें। उसके बाद दोनो हाथ की अगुलियो को अलग करके उनको कनपटियो तक ले जाइये। वहा पहुचकर छोटी अगुलियो पर गोल-गोल घुमाइये। इस क्रम को तीन बार करें।

नाक और गालो के ऊपर के भागो की मालिश—

बीच वाली अगुलियो को नाक के ऊपर से नीचे तक सरकाइये और गालो के ऊपर (जबडो के नीचे) गोल-गोल तथा ऊपर की ओर जाते हुए मालिश कीजिये। कनपटियो पर गोल-गोल घुमाइये और फिर अगुलियो को आँखो के नीचे लेजाइये और आँखो के अन्दर के कोनो तक जाइए।

मुँह तथा होठो के आस-पास की मालिश—

मुँह की मास-पेशियो को व्यायाम देने के लिए मुँह के दोनो कोनो को थोडा ऊपर उठाइए। अब दोनो कोनो से मालिश शुरू करते हुए मुँह के बीच वाले भाग तक आइये। होठो को धनुषाकार बनाकर ऊपर हल्का सा दबाव डालिए। ऊपर के होठ पर बाया अगूठा और पहली अगुली नीचे के होठ पर रखिये, फिर अन्दर से बाहर की तरफ गोलाकार घुमाइये और घुमाते समय जब आप मध्य भाग की तरफ जायें तब होठो को थोडा ऊपर उठाइये। तत्पश्चात् होठो को बहुत ही हल्के हाथ से पहले एक अगुली से उठाइये और फिर दूसरी से।

नाक से लेकर होठो के कोनो तक जो रेखायें पड जाती हैं उनको दूर करने के लिए, मुंह के कोनो से आरम्भ करके अगुलियो से छोटे-छोटे गोलाकार बनाते हुए रेखाओ पर से आखो के नीचे तक जाइए। फिर हल्के स्पर्श से आखो के नीचे अन्दर की तरफ से कानो तक जाइए। इस सपूर्ण क्रिया को दो तीन बार करें।

जब मालिश खत्म हो जाय तो सब तनाव दूर करके आराम कीजिए (Relax)। क्रीम को रुई या टिशू से निकालकर (साफ करके) १५ मिनट आराम करें। हो सके तो पावो को ऊपर रखकर आराम करें। रुई के दो फाहो को बर्फ के ठण्डे पानी मे डुबोकर आखो पर रखिये और एक छोटे-तौलिये को ठण्डे पानी मे भिगोकर निचोड लीजिये और उसे चेहरे पर रखकर लेट जाइये। यह ध्यान रखिये कि इस फेशियल (Facial) से पहले त्वचा बिल्कुल स्वच्छ हो। यह विशेष फेशियल आप हर हफ्ते ले सकते है।

मालिश करने वाले को 'गात्र सवाहक' या सिर्फ 'सवाहक' अथवा 'उच्छादका' (Masseur, Massagist) कहते हैं। मालिश करने वाले मे शारीरिक शक्ति और स्पर्श शक्ति का होना जरूरी है। विभिन्न-विभिन्न स्नायुओ नसो की जानकारी भी होनी ही चाहिये। प्राय बाल काटने

वाले नाई अथवा मोच, चोट व टूटी हड्डी ठीक करने वाले या अपने स्थान से हटी हड्डी को बैठाने वाले 'पहलवान' लोग ही यह पेशा अपनाते हैं। वैसे घरो मे काम करने वाली मैरिया, दाइयाँ (mail servant), नाइनें भी इस कार्य में निपुण होती हैं और स्त्रियो की मालिश, खासतौर पर प्रसूता स्त्री की मालिश वे ही करती हैं। अपने स्थान से हटी नाभि या धरणी को ठिकाने लाने का कार्य भी यह करती हैं। इनका आचरण नर्स की तरह सर्वहितकारी सेवा भाव वाला होना चाहिए।

मालिश करते समय यह बात भी कभी न भूलनी चाहिये कि मालिश इस ढङ्ग से की जाय जिससे रक्त का प्रवाह हृदय की ओर ही होता रहे जिससे अशुद्ध रक्त की शुद्धि का कार्य जारी रहे। उस समय हृदय से नीचे की ओर रक्त की गति को रोकना परमावश्यक है। मालिश प्राय' धूप मे ही बैठकर कराने से पूर्ण लाभ मिलता है। मालिश के उपरान्त स्नान कर लेना या गीले कपड़े से बदन को अच्छी तरह पोंछ लेना जरूरी है। सही मालिश केवल अङ्गो को साधारण रूप से मलना ही नही है। अपितु मलते समय मलने की क्रिया मे विविध ढङ्गो से गतिया उत्पन्न करनी होती है।

पूरे शरीर की मालिश मे मालिश का आरम्भ पैर से होना चाहिए तथा प्रत्येक अङ्ग की मालिश करते समय हाथ की हरकतो को सदैव नीचे से ऊपर की ओर जाना चाहिए जैसाकि भुजाओ की मालिश मे अ गुलियो की मालिश सर्व प्रथम कर धीरे-धीरे कन्धो की ओर बढना चाहिये। सिद्धात यह है कि मालिश की क्रियाये शरीर मे होने वाले रक्त सचालन की विपरीत दशा मे कदापि न की जायें।

तेल सर्व प्रथम पैरो मे मलना चाहिए फिर सिर मे तत्पश्चात् अन्य अङ्ग प्रत्यङ्गो मे। नाभि, हाथ पैर के नखो, दोनो कानो, नासिका एव नेत्रो के पपोटो पर मालिश के समय तेल का प्रयोग करना न भूलना चाहिए। इससे आयु की वृद्धि होती है, अनिद्रा रोग या किसी प्रकार के अन्य रोगो का आक्रमण शीघ्र नही होता, बुढापा विलम्ब से आता है तथा सौंदर्य एव अक्षय स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।
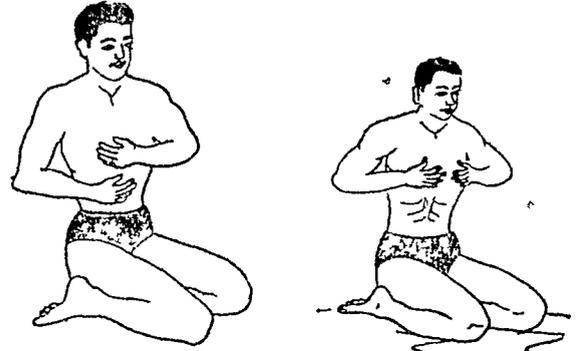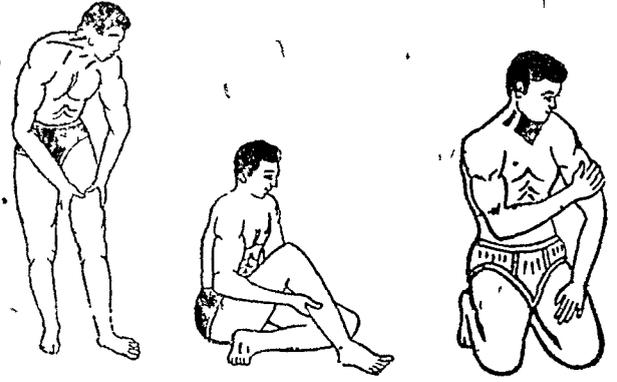
शरीर के विभिन्न अङ्गो की स्वत मालिश

मालिश के लिए प्राय सरसो का कडवा तेल प्रयोग मे लाते है। सरसो के तेल के स्थान पर तिल का तेल, नारियल या जैतून का तेल, गौघृत अथवा औषधियो से पकाया तेल, विविध रोगोपचार के हेतु प्रयोग मे लाया जाता है। कुछ लोग हल्दी–बेसन–तेल का बटना (उबटन) शरीर पर मलते है। इससे शरीर का रग निखरता है, शरीर का रुआ (लोम, बाल) दूर होते है। कुछ लोग चमेली के तेल की मालिश करवाते हैं।

प्रसुता स्त्रियो के अङ्ग प्रत्यङ्गो की मालिश दाइयाँ व माइयाँ ही करती है। नवजात शिशुओ के सर्वांग की मालिश प्राय सभी मातायें बच्चो को धूप मे लिटाकर किया करती हैं, इससे उनके अग प्रत्यग खुलते हे, चैतन्य होते हैं और पुष्ट बनते हैं। उनके शरीर का घना लोम

(रूआँ) दूर करने के हेतु वेसन, तेल, हल्दी का उवटन भी लगाते हैं जिससे बच्चो का रग भी निखर जाता है।

शरीर के जिस भाग की मालिश करनी हो उस पर मालिश का प्रयोग उस समय तक होता रहना चाहिए, जब तक कि उस स्थान की त्वचा हल्की रक्तवर्ण न हो जाय। कोई भी मालिश हो १५-२० मिनट से अधिक देर तक न करे। पूरे शरीर की मालिश मे ४५ मिनट तक लगाये जा सकते हैं।

मर्दन से मालिश करने और करवाने वाले दोनो का ही व्यायाम हो जाता है। हड्डिया बैठाने मे, मोच दूर करने मे और भी बहुत से रोगो को दूर करने मे 'मालिश' रामबाण है। स्वय अपनी मालिश करना और भी उत्तम है। रगडने, दबाने और चम्पी करने से खून दौरा करता है और व्यक्ति अपने को तरोताजा, प्रसन्नचित्त एव स्फूर्तिमय महसूस करता है। सिर व पैर के तलवो की मालिश व्यक्ति को बहुत ही आरामदायक व सुखदायक होती है।

अब हम आपको 'Encyclopaedia of Indian Culture edited by D C Majumdar के आधार पर मालिश के सामान्य ढग का विवरण नीचे देते हैं —

सीने की मालिश करना—

मालिश करवाने वाले के पीछे खडे हो जाओ जैसा चित्र न. १ (पृष्ठ २५६) मे दर्शाया गया है। फिर उसके सीने पर सरसो का तेल लगा कर अपनी हथेलियो से दबाते हुए सीने से नीचे की ओर मालिश करते हुए। गोलाई मे घुमाकर उसकी पसलियो पर थोडे दबाव के साथ मालिश करो इससे हृदय क्रियाशील होता है।

हाथो की मालिश—

मालिश कराने वाले को अपने सामने बैठाओ जैसा कि अगले चित्र में दर्शाया गया है और उसको हाथ फैला कर अपनी लगोटी पकडे रहने को कहो (ताकि उसके फैले हुए हाथ की मालिश कर सको) और बलपूर्वक उसकी कलाई से कधे की ओर मालिश करो लेकिन कधे से कलाई की ओर वापिस आते हुए ज्यादा जोर न लगाओ। इसी प्रकार उसके दूसरे हाथ की मालिश करो।

कधो की मालिश—

अपनी बाहु के मास से (Fleshy side of forearm) बलपूर्वक दबाते हुए (जोर के दबाव से) अपने साथी के कधे की मालिश करो। कधो की मालिश में बहुत जोर लगाना पडता है जो कि हथेलियाँ नही कर पाती।

हाथों और बाहो के पृष्ठ भागो की मालिश—

मालिश करवाने वाले को पेट के बल उल्टा लिटा दो जैसा कि साथ के चित्र में दर्शाया गया है। फिर उसके एक तरफ घुटनो के बल उकडूं बैठ कर उसके हाथो की कलाई से कधो की ओर मालिश करो और वापिस कलाई की ओर आते हुए हथेलियो से खूब जोर लगाकर उसकी बाहो व हाथो के पृष्ठ भाग की मालिश करो।

मालिश से मालिश करवाने वाले को इतना आनन्द मिलता है कि वह ऊँघने लगता है।

पीठ की मालिश —

मालिश करवाने वाले को पेट के बल उल्टा लिटा दो और स्वय उसके एक तरफ अपने पजो के बल उकडू बैठ जाओ जैसा कि अगले चित्र मे दर्शाया गया है और तेल लगी अपनी चिकनी हथेलियो को उसकी

कमर के ऊपर दोनो ओर रखकर पीठ की मालिश दबाव के साथ करते हुए ऊपर गर्दन की ओर बढो और फिर कमर की ओर आराम से बिना जोर लगाये ले आओ। यदि पीठ की मालिश के लिये और अधिक जोर लगाने की जरूरत महसूस हो तो अपने बाये हाथ (Left-forearm) से पीठ को एक तरफ से दबाते हुए दूसरी ओर अपनी दायी हथेली से खूब जोर लगाकर मालिश करो। इसी प्रकार बायी हथेली से दूसरी ओर भी मालिश करो।
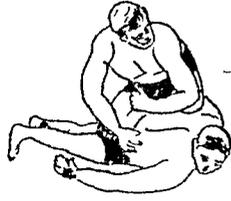
गर्दन की मालिश —

मालिश करवाने वाले को पेट के बल उल्टा लिटा दो और उसकी एक ओर बैठ जाओ जैसा कि साथ के चित्र मे दर्शाया गया है। फिर उसकी ओर काफी झुक कर अपनी हथेलियो से उसकी गर्दन की मालिश करो।
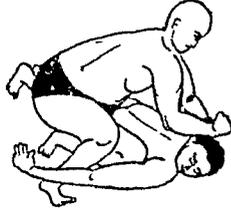
जाघो की मालिश—

मालिश करवाने वाले को पीठ के बल सीधा लिटा कर घुटने मोड लेने को कहो और स्वय उसके पैरो की ओर खडे हो जाओ जैसा कि साथ के चित्र मे दर्शाया गया है। फिर उसकी जाघो की बारी—बारी से मालिश करो। ऐसा करने के लिये अपनी चिकनी हथेलियो (Oily palms) को उसके घुटनो की ओर से कूल्हे की सधि तक खूब जोर से मालिश करते हुए ले जाओ और वापिस घुटनो की ओर आते हुए जोर लगाने की जरूरत नही है।

चित्र मे दर्शाये अनुसार मालिश करवाने वाले की टाग को अपनी बगल मे दाब कर दूसरे हाथ से उसकी जाघ की बलपूर्वक मालिश करो। जाघो के स्नायु बडे और मजबूत होते हैं उनके लिये अधिक जोर लगाना पडता है।

पिडली (Calf, fleshy side of legs) की मालिश —

मालिश करवाने वाले को चित्र के अनुसार लिटा दो फिर उसके पाव को अपने दोनो पावो के बीच करके पिडली की बलपूर्वक ऊपर से नीचे की ओर मालिश करो। बारी बारी, दाई-बाई दोनो ओर की पिडली की मालिश करो।

टखने की मालिश (Ankle joint)—

मालिश करवाने वाले को पीठ के बल लिटा दो जैसा कि चित्र मे दर्शाया गया है। उसके सीधे टखने को अपनी बाई जाघ पर रखकर उसकी मालिश करो। फिर उसका बाया टखना अपनी अपनो दाई जाघ पर रख कर उसकी मालिश करो। इसमे ज्यादा जोर लगाने की जरूरत नही है।

—आयुर्वेद वारिधि श्री चाद प्रकाश मेहरा बी एस्-सी.
५५७, मन्टोला स्ट्रीट, पहाडगज, नई दिल्ली-५५।
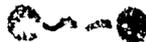
स्वास्थ्य और उपवास

आचार्य श्री विरञ्चि लाल शर्मा आयु० बृह० भिषग्रत्न

भारत धर्मप्रधान देश है, इसलिए यहा के निवासी उपवास से बहुत दिनो से परिचित हैं। कदाचित ही कोई ऐसा महीना खाली जाता होगा कि उन्हें धार्मिक रूप से एक या दो या उससे अधिक दिन का उपवास न रखना पडता हो। और नही तो, महीने मे दो एकादशी ही रख लेते है या और भी व्रत, जिन्हें कहते हैं, वही उपवास का दिन है। यहा के निवासी सबसे अधिक धर्म को मानते आ रहे हैं। यह धर्म इतना विशाल है कि इसके अन्दर जीवन के साधारण दिनचर्या के कर्त्तव्य से लेकर महानतम आदर्श आ जाते हैं। इसलिए लोग अधिकतर जो कुछ भी कार्य करते हैं, सबका आधार धर्म ही होता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत कम लोग उपवास करते हैं अर्थात् नही के बराबर। समय के फेर से समझो, चाहे अज्ञान के अन्धकार से आज भी धर्म के नाम पर रूढिवादिता विद्यमान है। वैसे पुरुषो ने नई सभ्यता की झलक मे आकर उपवास को या अन्य सभी बातो को प्राचीनता के साथ बहुत कुछ भुला दिया है। किन्तु स्त्रियाँ आज भी किसी न किसी रूप मे पालन अवश्य करती है, चाहे वास्तविक महत्व को न समझती हो। आज रूप और उद्देश्य के साथ प्रभाव मे भी परिवर्तन हो गया है। इसी तरह आजकल उपवास बदलते-बदलते रूढि बन गया है—जोकि वास्तव मे हमारी नैतिक, आध्यात्मिक, मानसिक, और शारीरिक उन्नति का एक अनिवार्य साधन है। धर्म के साथ हम इसके रूप को भी बिगाड बैठे हैं। ज्योतिष शास्त्र मे सूर्य चन्द्र आदि ग्रहो का विवेचन है और आयुर्वेद मे मानवी शरीर के स्वास्थ्य का वर्णन है। ग्रह अर्थात् सूर्य चन्द्र आदि का हमारी प्रकृति (वात, पित्त, कफ) के साथ साम्य है। इनमें

शर्मा जी राजस्थान के कतिपय सुप्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञो मे से एक है। आप सुप्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं। आयुर्वेद राजनीति मे भी आप सदैव आगे रहे है। अनेक सम्मेलनो, सभा सोसाइटियो के आप अध्यक्ष एवम् मन्त्री रहे हे। इण्डियन मैडीसन बोर्ड राजस्थान के उपाध्यक्ष रह चुके हे। अनेक परामर्शदातृ-मण्डलो के आप सदस्य रहे है। आयुर्वेद प्रचारार्थ श्री लका की यात्रा भी कर चुके है। वर्तमान मे राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन जयपुर के कार्यवाहक अध्यक्ष है। अ० भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के उपमन्त्री है। आयुर्वेद की अनेक परीक्षाओ के परीक्षक है।

हमेशा भोजन करते रहना मात्र स्वास्थ्य के लिए हितकर नही होता है। अपितु अहर्निशि चलने वाली इस शरीर की मशीन को कभी-कभी विश्राम देकर इसके स्वास्थ्य का ध्यान रखना भी हमारा परम कर्तव्य है। 'उपवास' से हम अपने शरीर को अधिक दीर्घजीवी एवम् स्वस्थ बना सकते है। इस हेतु शास्त्री जी का लेख पठनीय है।

—विशेष सम्पादक

भी स्वास्थ्य और विज्ञान की विशुद्ध दृष्टि से अलग-अलग आहार की व्यवस्था है। जैसे कुछ उपवास (व्रत) ऐसे हैं जिनमे जल तक पीने की आज्ञा नही है जैसे एकादशी निर्जला जो ज्येष्ठ शुक्ल मे आती है। कुछ मे नमक वर्जित है जैसे रविवार और किसी फलाहार की या किसी मे दही खाने की ही आज्ञा दी गयी है। हमे तो विशेषत स्वास्थ्य के विषय को लेकर ही उपवास पर विचार करना है। अत कहते हैं कि—

"सर्वेषामेव रोगाणाम् निदानं कुपिता. मला।"

अर्थात् जितने रोग है प्राय पेट की खराबी से होते है, यही मत आयुर्वेद का है। हमारा शरीर एक मशीन की तरह है। मशीन की खुराक कोयला है और हमारे शरीर का आहार भोजन। मशीन विगडने पर उसकी सफाई करते हैं। वैसे ही मानव शरीर मे नीरोगता होने पर उसकी भी सफाई करनी चाहिए। उचित भोजन यदि उचित रीति से न किया गया हो या आवश्यकता से अधिक भोजन जल्दी जल्दी कर लिया हो, मल त्याग नियमित रूप से न किया गया हो और खाने का सिलसिला बराबर चालू रहा हो तो पेट थक कर परेशान होकर काम करना बन्द कर देगा। फलस्वरूप शौच साफ न आवेगी और मल कुपित होकर रोग पैदा हो जावेगा। यही मत है एलोपैथी का कि मलमूत्र पसीना और विश्वास इन चारो के ही सहयोग से शरीर का मल बाहर निकलता है। पेट के कार्य बन्द कर देने पर इनके निकलने मे अडचन पडती है। अस्तु उस थके हुए उदर को आराम वेकर काम पर फिर लगाने का उपाय है। यही आयुर्वेद का मत है। कि—

"आमाशय समुत्थानाम् रोगाणां पूर्वल घनमौषधमित्युक्तम्।"

अर्थात् आमाशय से उत्पन्न रोगो का पहला (लघन उपवास) ही औषधि है जैसे कि—

"आमाशयस्थोहत्वाग्नि सामोमार्गनिपिधापयन्-विदधाति ज्वर दोषस्तस्माल्लघनमाचरेत्।"

अर्थात् ऐसा ज्वर जो आमाशय मे गये हुए वातादि दोष वहां अग्नि को मन्द कर देने से आम रस के साथ मिलकर रस-रक्तादि सचार के मार्गो को रोक देने से उत्पन्न हुआ हो, उसे ही आरम्भ मे लघन करना चाहिए इसके अतिरिक्त भय, क्रोध, काम, शोक तथा श्रम आदि से उत्पन्न ज्वर मे उपवास का निषेध है, कहने का तात्पर्य यह है कि जिसका पेट ठीक नही उसे ही लघन करवाना चाहिए। उपवास ज्वरनाशक है अग्नि दीपक है, आकांक्षा रुचि को उत्पन्न करता है तथा शरीर मे लघुता (हलकापन) करने वाला हैं। जैसे कहा है।

"ज्वरघ्नं, दीपनं, कांक्षा, रुचि लाघवकारकं।"

सही बात यह है कि प्रकृति ने मनुष्यो को सुधारने के लिए यही सर्वोतम उपाय सोचकर रखा है कैसे? पशु बीमार होते ही चारा खाना छोड देता है। मनुष्य बीमार होते ही आहार से अरुचि करने लग जाते है, इसलिए रोग से बचने व मुक्त होने का यही एक सरल साधन है। दु ख है कि मनुष्य अपनी अज्ञानता से जानवरो से भी गया बीता हो गया है। बीमारी मे अरुचि होने पर भी कुछ न कुछ खाने के लिए प्रयत्न किया ही करता है। उपवास रोग दूर करने मे कितना सहायक है यह तो ऊपरलिखित पक्तियो से भी जाना जा सकता है लेकिन और अधिक स्पष्टीकरण करना भी आवश्यक है। चिकित्सा शास्त्र मे भिन्न भिन्न रोगो के भिन्न भिन्न कारण है किन्तु सबका आधारभूत उदर ही है। डाक्टर लूइयो कहते है कि शरीर मे विजातीय (Foreign matter) की विद्यमानता को ही रोग कहते हैं। ये पदार्थ नाक और मुख द्वारा पेट मे तथा फेफडो मे प्रवेश करते है और इन्हे हम देख नही पाते हैं। इसी तरह अधिक अनुचित और अनुपयोगी पदार्थ हमारे भोजन द्वारा पेट मे पहुँच जाते हैं। ठीक से न पचने के कारण सडकर विष बन जाते हैं यही विजातीय पदार्थ है। दीर्घायु के मूलमन्त्र को अथर्ववेद कहता है—

• • ••• दैव्यदेवीं वर्चस आरमध्न।
शुद्धा भवन्त शुचय पावका. अतिक्रामन्तो।
दुरितापदानि शत हिमा सर्ववीरा मदेम॥

१२ २, २८)

अर्थात् शुद्ध बनना, पवित्र होना, वीर भावो से युक्त होना, दुरित (अर्थात् विजातीय) भाव या पदार्थ अन्दर जाकर जो विकार पैदा करते है, उनको हटाना दीर्घायु

होने का मूल मंत्र है। इससे भी स्पष्ट होता है कि विजातीय पदार्थ रोग का मूल कारण है। इसको नष्ट करना ही आरोग्य है। इसके लिये उपवास की ही महिमा है। यह काम आसानी से उपवास द्वारा हो सकता है। जब हम भोजन ही नही करेंगे तो हमारी शारीरिक शक्ति (Energy) को भी भोजन पचाने के काम से छुट्टी मिल जायेगी और इस विजातीय पदार्थ को बाहर निकालने में लग जायेगी। जितनी जल्दी वे निकल जायेंगे हमे आरोग्यलाभ हो जायेगा। डाक्टर डी. वी. ने जो उपवास चिकित्सा के लेखक हैं लिखा है "रोगी का आहार छुडाकर तुम उसे नही प्रत्युत रोग को भूखा मार सकोगे" बहुत से मनुष्य उपवास को ठीक तरीके से न करने के कारण लाभ के स्थान पर हानि उठाते है। इसका कारण उपवास नही, परन्तु उसका गलत तरीका होता है। अत उपवास के सम्बन्ध मे कुछ आवश्यक नियमो का बतला देना भी आवश्यक है। उपवास के नियम निम्न प्रकार से पालन करें—

(१) उपवास काल मे जल के अतिरिक्त कुछ भी नही खाना पीना चाहिये। पानी भी शुद्ध पवित्र होना चाहिये। उपवास काल मे यदि पानी का स्वाद भी ठीक न लगे, तो पीने के पानी मे नीबू की कुछ बूंदें टपका कर पीना चाहिये। पानी मे नीबू डालने से मल आसानी से बाहर निकल जायेगा तथा पानी का स्वाद भी ठीक हो जायेगा।

(२) आजकल के अनुभव के आधार पर पानी के साथ थोडा थोडा सोडा बाई कार्बोनेट (Soda bicarbonate) भी इस्तेमाल करते हैं। यह भी मल को निकालने मे मदद करता है। ज्यादा दिन के उपवास मे इसका उपयोग हितकर नही है।

(३) यदि उपवास मे मुख का स्वाद खराब हो जाये श्वास दुर्गन्धयुक्त आने लगे, सिर तथा पेट मे दर्द के साथ जी मिचलाना आदि शिकायत हो जायें तो घबरायें नही। ये लक्षण पेट खराब होने से होते ही हैं। यदि ज्यादा होने लगे तो एनिमा ले लें और थोडा पानी मे शहद मिलाकर पीना आरम्भ कर दें।

(४) उपवास के समय शुद्ध हवा मे टहलना बहुत जरूरी है। यदि टहलने मे असुविधा हो तो भी शुद्ध वायु का सेवन करना आवश्यक है।

(५) उपवास से मानसिक उत्तेजना भी बढती है और वजन भी घटता है, कमजोरी बहुत मालूम देती है, ऐसी परिस्थिति मे उत्ताप आदि को साम्यावस्था में रखने के लिए मस्तिष्क को शान्त रखना जरूरी है, अर्थात् मन को स्वस्थ रखना चाहिए। वैसे उपवास से शरीर स्वस्थ होने पर स्वस्थ मन भी शान्त होगा।

उपवास की अवधि कितनी हो, इसके लिए कोई व्यापक नियम नही है फिर भी आयुर्वेद के मतानुसार वह अपनी शारीरिक अवस्था और मानसिक बल पर निर्भर करती है। भूख मे मरा मरा करते रहने वाले से लघन नही करवाना चाहिए। जो कुछ क्रियाक्रम है वह बलाधिष्ठान और आरोग्यता के लिए है। निम्नलिखित व्यक्ति से उपवास नही करवाना चाहिए— वात-पीडित ज्वरी, क्षयज्वरी, भूखा, गर्भिणी स्त्री, बालक, दुर्बल मनुष्य, वृद्ध मनुष्य, डरे हुए, प्यास वाले, उर्ध्ववात वाले को लंघन नही करवाना चाहिए।

यदि लघन करते करते निम्नलिखित लक्षण पैदा हो जावें, तो समझे हमारा लघन ज्यादा हो गया है, जैसे पर्व (सन्धि) पीडा, अङ्ग का टूटना, काम, मुख शोष, भूख का नाश, अरुचि, प्यास, दुर्बलता, सुनने और देखने मे मन का उद्वेग, उर्ध्ववात, डकार आदि।

लघन करने वाले को लघन के बाद पथ्य भी ही सावधानीपूर्वक करना जरूरी है। उपवास की समाप्ति पर फलो का रस, सन्तरा, नीबू, अगूर आदि के रस के बाद सुपाच्य यूष (मूंग का पानी) साबूदाना आदि के बाद अशांश मे भोजन की मात्रा बढाते जाना चाहिए और एक समय सिर्फ दूध पर रहे।

यहूदियों के रहस्यात्मक दर्शन प्राचीन मिश्र के पुरोहितो व हजरत मूस के जीवन-चरित्र में सर्वत्र ही उपवास का महत्व मिलता है। अधिक बोलने से क्षीण हुई शक्ति के लिए आकस्मिक बल पैदा करने मे भी उपवास सहायता प्रदान करता है। अतः अपने स्वास्थ्य को भली-भाति स्थिर रखने के लिए सप्ताह मे एक दिन उपवास अवश्य ही करना चाहिए।

—श्री आचार्य विरञ्चिलाल शर्मा आयु. वृह, भिषग्रत्न
श्री माहेश्वरी आयु०, औप० इस्लामपुर (राज०)

नारी स्वास्थ्य के लिये विशिष्ट विचारणीय पहलू

—कविराज श्री राजेन्द्र प्रकाश भटनागर एम. ए, भिष, सा र.

श्री भटनागर जी ३९ वर्षीय अध्ययनशील, योग्य एव परिश्रमी नवयुवक है। आपने भिषगाचार्य, आयुर्वेदाचार्य, एच० पी०ए०, एम०ए० आदि सभी परीक्षाऐ प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण की है। आपकी अब तक 'अभिनव स्त्री रोग विज्ञान' छात्रोपयोगी, नेत्र रोग विज्ञान तथा मानस रोग विज्ञान नामक पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है। इसके अलावा पाच पत्रिकाओ के सम्पादक, लगभग १०० से अधिक शोधपत्र व लेखो के लेखक है। आपके ७ ग्रन्थ प्रकाशनाधीन है। आयुर्वेद इतिहास में पी० एच०डी० करने की आपकी अग्रिम योजना है।

नारी के उत्तम स्वास्थ्य के लिए आवश्यक नियमो का परिचय आपके लेख की विशेषता है।

—विशेष सम्पादक
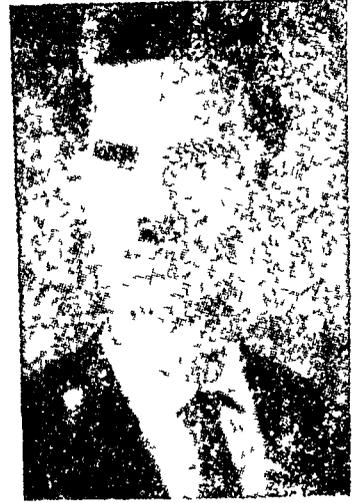
स्त्रियो की विभिन्न अवस्थाओं मे होने वाले विशिष्ट शारीरिक एव मानसिक परिवर्तनो के परिचय के साथ, उस स्थिति मे ध्यान रखने योग्य विशेष पालनीय स्वास्थ्यप्रद नियमो की क्रमश चर्चा करेंगे—

(१) रजोदर्शन और ऋतुकाल—यह स्त्रियो मे होने वाली एक स्वाभाविक और अनिवार्य घटना है। स्त्री मे स्त्रीत्व के लक्षण रजोदर्शन से ही प्राय होते है। यह उनके 'यौवनागम' (onset of puberty) का काल माना जाता है।

भारतवर्ष मे प्राय लडकियो मे १२ से १४ वर्ष की आयु मे 'प्रथम रजोदर्शन' (Menarche) होता है। इस काल में स्त्री शरीर मे क्रान्तिकारी परिवर्तन होवे प्रारम्भ हो जाते हैं। स्तनो मे वृद्धि, विटप एव कक्षा प्रदेशो मे वालो का प्रादुर्भाव आदि बाह्य तथा स्त्री प्रजननेन्द्रियो की विशेष पुष्टि होकर किंचिद् उदर-वृद्धि तथा श्रोणी का विस्तार, मेद का अधिक उपचय होकर ऊरु एव स्फिक् प्रदेशो पर कुछ हल्की सी फटी रेखाये दिखाई देने लगती हैं। साथ ही मानसिक भावो मे भी परिवर्तन आ जाता है, काम-विषयक विचार प्रादुर्भाव होने लगते हैं। स्वर मे भी परिवर्तन दिखाई देने लगता है। मानसिक भावो मे वह लज्जा एवं सकोच का अनुभव करने लगती है। परन्तु काम-भावना के प्रादुर्भाव से उसका चारित्रिक सतुलन बिगडने की सम्भावना रहती है। पाश्चात्य विद्वान डा० हेवलाक एलिस लिखता है—"रजोदर्शन के पूर्व और उसके बाद स्त्रियो की कामवासना अतिशय प्रबल रहती है। यदि उसमे आत्म-नियन्त्रण करने वाली निग्रह शक्ति न हो और आजादी के मौके मिल जाय तो कुमारी-अवस्था मे रहने वाली लडकियो के नैतिक पतन की सम्भावना रहती है।"

एक बार रजोदर्शन प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् पूर्णत स्वस्थ स्त्री में वह प्रतिमाह निश्चित समय के बाद होता रहता है।

रजोदर्शन के बाद जब तक आर्तव या रज की प्रवृत्ति होती रहती है, वह काल 'आर्तव-काल' कहलाता है। यह

: से ७ दिन तक होता है। इसके पश्चात् बारह दिनो तक का काल 'ऋतु-काल' के नाम से जाना जाता है। इस काल में (आर्तव-काल तथा ऋतुकाल मे) शरीर में होने वाले शारीरिक एव मानसिक परिवर्तनो के कारण स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से कतिपय नियमो का पालन अपेक्षित होता है। आयुर्वेद के आचार्यों ने इसकी सुव्यवस्थित विवेचना की है।

(१) ब्रह्मचर्य का पालन—जैसा कि हम पूर्व में लिख आये हैं, इस काल में काम-भावना की विशेष रूप से जागृति होती है। ब्रह्मचर्य के पालन मे मानसिक सयम की आवश्यकता होती है। अविवाहिताओ मे इसकी नितात आवश्यकता है। यह कठिन कार्य नही है। थोडे से प्रयास से ही मनो-निग्रह किया जा सकता है। विवाहिताओ को कम से कम तीन रात्रियो तक पूर्णत सयम से रहना चाहिए। आर्तवस्राव बन्द हो जाने पर वे पुरुष-ससर्ग कर सकती हैं।

(२) अतिशीत और अत्युष्ण वस्तुओ का त्याग, वेगो का अविधारण, भोजन का उचित समय मे करना, पौष्टिक आहार लेना—इनका करना इसलिए अपेक्षित होता है कि रज स्राव मे रक्त-निर्गम के कारण सामान्यतया स्त्री का स्वास्थ्य अपेक्षाकृत क्षीण हो जाता है।

(३) मानसिक शान्ति—मन के अतिचिन्तन, शोक, भय, क्रोध आदि भाव स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव करते हैं। इन्ही कारणो से 'अपतन्त्रक' (हिस्टेरिया) आदि रोग प्रादुर्भाव होते हैं।

(४) श्रम, दिवास्वप्न रात्रि-जागरण आदि करना सर्वथा त्याग देना चाहिए।

(५) ऋतुकाल मे पालनीय कुछ विशेष नियमो का सुश्रुत ने वर्णन किया है। विवाहिताओ को इनका विशेष ध्यान रखना चाहिए। वस्तुत इन भावो का प्रभाव ऋतु काल मे गर्भधारण होकर उत्पन्न होने वाले भावी सन्तति पर पडता है—

ऋतौ प्रथमदिवसात्प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नाश्रुपात–स्नानानुलेपना भ्यंग–नखच्छेदन–प्रधावन–हसन कथनातिशब्द श्रवणावलेखनानिलायासान परिहरेत्।

—सु शा २/२३

आर्तव-काल में स्त्री को ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहना चाहिए, दिन मे सोना, आंसू बहना, स्नान, अनुलेपन (उबटन), मालिश, नख काटना, दौडना, हंसना, जोर से या अधिक बोलना, ऊचे शब्दो को सुनना आदि का त्याग कर देना चाहिये। अप्रत्यक्ष रूप से इन बातो का प्रभाव स्त्री के शारीरिक व मानसिक भावों पर पडता है।

प्राय: यह देखा जाता है कि प्रथम रजोदर्शन के समय लडकियाँ घबरा जाती हैं और इसे बहुत घृणित समझती हुई, मानसिक सन्तुलन खो बैठती हैं। उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि यह परिवर्तन उसके जीवन का अनिवार्य और स्वाभाविक अङ्ग है। अत उन्हे घबराना नहीं चाहिए। सयम से काम लेना चाहिए। नित्य प्रति बाह्य जननेन्द्रियो की स्वच्छता रखने से कामोत्तेजना कम हो जाती है। उनका अतिपीडन, मर्दन आदि कदापि नहीं करना चाहिए। स्त्री स्वास्थ्य के लिए यह सर्वथा हानिकारक है। इनसे उत्तेजना अधिक होकर प्रदर जैसी व्याधिया उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

विवाह और मैथुन—भारतीय धर्म-शास्त्र में विवाह को समाज का अनिवार्य तत्व समझा गया है। भिन्न गोत्र वाले लडके और लडकी का विवाह उन्हे सन्तानोत्पत्ति की ओर प्रेरणा देकर उनके 'पितृऋण' को चुकाया जाता है। आयुर्वेदशास्त्र में यद्यपि प्रथम रजोदर्शन की आयु १२ वर्ष के लगभग मानी है तथापि विवाह का उचित आयु-प्रमाण १६ वर्ष बताया है। वस्तुत यह काल ही समीचीन है। चार वर्ष के काल मे स्त्री जननेन्द्रियाँ पुष्ट, मानसिक भावों की स्थिरता, शारीरिक अङ्गो का सुगठन और गर्भधारण-क्षमता मे अच्छी वृद्धि हो जाती है। १६ वर्ष से कम उम्र में वह 'बाला' ही होती है और उसमें गर्भधारण हो जाने पर सतान पुष्ट और स्वस्थ नही हो सकती। सुश्रुत की यह मान्यता सर्वथा सगत है—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्त पञ्चविंशतिम्।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विनश्यति॥
जातो वा न चिरञ्जीवेत् जीवेद्वादुर्बलेन्द्रिय.।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्॥

—सु शा. १०/५७-५८

वैवाहिक-कर्म ही स्त्री पुरुषो को सन्तानोत्पत्ति के

हेतु एक दूसरे के समीप लाते हैं। अतएव आर्तवकाल के चार दिनो को छोड़कर बारह रात्रियो तक स्त्री पुरुष मैथुन कर सकते है।

कभी-कभी यह देखने मे आता है कि भोली और अनजान स्त्रियाँ प्रथम पुरुष-ससर्ग-काल मे मानसिक-आघात से पीडित हो जाती है। मूर्च्छा और मोह की अवस्था उत्पन्न हो जाती है। अत. इस अवस्था से बचने के लिए युवती और नवविवाहिता स्त्रियो को मन की दृढ़ता और शारीरिक बल की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। हमारे समाज मे प्रचलित तैल लगाना, अधिक पौष्टिक आहार सेवन आदि का विधान विवाह से पूर्व इसी उद्देश्य से प्रचलित किया गया जान पडता है। मैथुन से गर्भधारण होता है। सगर्भावस्था के स्वास्थ्य का पृथक रूप से कभी वर्णन करेगे। इसी प्रकार प्रसूतावस्था का भी वर्णन किया जायेगा।

लज्जा, सकोच आदि का कम हो जाना आदि मानस भाव प्राय देखे जाते हैं। कभी कभी मानसिक आघात होकर विकृत स्थिति भी उत्पन्न होते देखी गई है, इसका प्रधान कारण चिन्ता, शोक और अत्यन्त धातुक्षय होता है। हिस्टेरिया प्राय. इसी वय मे होता है।

प्राय देखा जाता है कि बड़े घर की स्त्रिया या आजकल के फैशन मे रङ्गी स्त्रिया घर की गृहस्थी का कोई कार्य करने मे अपना अपमान समझती हैं। लेकिन उन्हे ध्यान रखना चाहिये कि चक्की चलाना, ओखली मे किसी धान्य को कूटना, कपड़े धोना, खाना पकाना, चरखा कातना आदि ऐसे कार्य हैं जिनसे कार्य सम्पन्न तो होता ही है शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है। इन कार्यों से सभी मासपेशियो को चालित होने का अवसर प्राप्त होता है। यह घरेलू कार्य स्वय करने वाली स्त्रिया सदैव प्रसन्नचित्त, स्वस्थ और सबल रहती है।

रजोनिवृत्ति—वास्तव मे स्त्री-जीवन की यह अन्तिम परिवर्तनकारी घटना होती है। लगभग ५० वर्ष की आयु मे स्त्रियो में रजोदर्शन होना बन्द हो जाता है। यह सहसा या आकस्मिक दोनो ही रूप मे होता है। इसका गर्भ के विभिन्न लक्षणो के आधार पर सगर्भावस्था से तथा अन्य रोगो से उत्पन्न होने वाली दुर्बलता, धातुक्षय आदि के कारण होने वाले आर्तवादर्शन से स्पष्ट भेद किया जा सकता है। इस काल मे भी स्त्री शरीर मे विशेष शारीरिक और मानसिक परिवर्तन प्रादुर्भूत होते हैं। स्तनो का सकोच या उनमे अतिमार्दव, बाह्य जननेन्द्रियो का सकोच और वलीयुक्त हो जाना आदि शारीरिक, तथा

अतएव स्वास्थ्य-पालन के नियमो की दृष्टि से इस वय मे किसी प्रकार की मानसिक चिन्ता, शोक आदि से सर्वथा बचना चाहिये। वस्तुत यह स्थिति भी रजोदर्शन की भाँति स्त्री के जीवन की अनिवार्य और स्वाभाविक घटना है। इसमे धातुक्षयकर अन्य श्रम से निवृत्त रहना चाहिये।

—कवि श्री राजेन्द्र प्रकाश भटनागर एम. ए.
भिषगाचार्य, आयु०, एच० पी० ए०, साहित्य र०
प्राध्यापक राजकीय आयु० कालेज
उदयपुर (राज०)
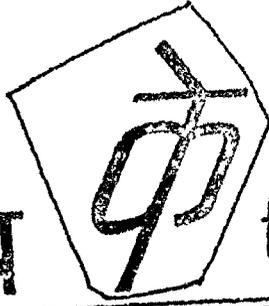
श्री वैद्य नूर मुहम्मद मुल्तानी आयु० रत्न
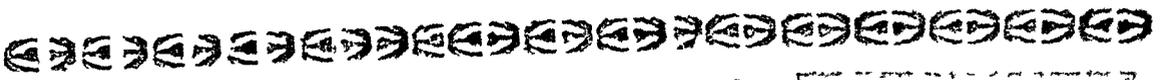
ग्रामीणाचलो मे आज भी कई पुरानी रूढिया माता वहनो के हृदय मे अपनी छाप जमाए हुए है। अज्ञानता के कारण हम बच्चो के विभिन्न रोगो एव उनके स्वास्थ्य की देखभाल करने के प्रति बहुत हो उदासीन रहते है। फलत कई शिशु सही देखभाल एव उचित उपचार न हो पाने के कारण अकाल ही काल कवलित हो जाते है।

आशा है श्री मुलतानी जी का लेख बच्चो के स्वास्थ्य सवर्धन मे योगदान दे सकेगा। —विशेष सम्पादक

वालको को रोग किस प्रकार पैदा हो जाते है इस विषय मे महाज्ञानी रावण का कथन है—

छात्रास्तु गुरुभिर्भोज्यै विषमैर्दोषसैरपि ।
दोषावेह प्रकुप्यन्ति तत स्तन्यं प्रदुष्यति ॥
मिथ्याहार विहारिण्या दुष्य वातादय स्त्रिया ।
दूषयन्ति प्रयत्नेन जायन्ते व्याधय शिशोः ॥

अत्यन्त विषम अन्नो का भोजन करने, असमय पर और विना भूख के भोजन करने तथा दोषो को उत्पन्न करने वाले भोजन करने से वात पित्त कफ दोष कुपित हो जाते हैं जिससे माता का दूध दूषित हो जाता है। सडा गला वासी जला या कच्चा भोजन करने, गन्दे और सीलन युक्त स्थान में रहने, विविध प्रकार के अयोग्य कार्य करने से वालक को दूध पिलाने वाली माता के वात पित्त कफ आदि दोप विषम हो जाते हैं जिससे अनेक प्रकार के वाल रोगो की उत्पत्ति होती है।

बालक को दूध पिलाने वाली माता जितनी तन्दुरुस्त व स्वस्थ रहेगी वालक उतना ही तन्दुरुस्त रहेगा। वालक के स्वास्थ्य पर ध्यान न देने से वालक का स्वास्थ्य विगड जाता है और समय के पूर्व ही मौत की गोद मे सो जाता है।

एक माता को अपने वालक को स्वस्थ रखने के लिये अपने आहार विहार का पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये। सबसे प्रथम तो माता को अपने मन को प्रसन्न रखना चाहिये और वालक पर पूर्ण स्नेह रखना चाहिये। खाने में जौ या गेहूँ का मीठा दलिया दूध के साथ खाना तथा शाली चावल और साठी चावल सिघाड़ा, कमल नाल मूग कुलथी शतावरी आदि मधुर, अम्ल लवणयुक्त पतले आहार जैसे—दलिया खीर दुग्धपान आदि लेना चाहिये। परिश्रम अधिक नही करना चाहिये। तेज मिर्च मसाले, मिठाइयाँ, कब्ज करने वाले पदार्थ नही खाने चाहिये। ज्यादा दस्त लावे वाली व वमन कराने वाली कोई दवा

न लेनी चाहिये अपने चित्त को प्रसन्न रखना चाहिये। ज्यादा क्रोध चिन्ता दु.ख आदि न करना चाहिये ।

प्रकृति का स्वाभाविक धर्म ऐसा है कि जो देह धारी जरायु से उत्पन्न होते हैं उनका आहार प्रकृति ने विशेष करके प्रवाही तरल पदार्थ दुग्ध नियत किया है । प्रसव होने के पीछे २४ घण्टे से ४८ घण्टे पर्यन्त स्त्री के स्तन में से दुग्ध निकलने लगता है । प्रसूता के स्तन में जो प्रथम भाग दूध का आता है वह जरा चिकना होता है। और उसका गुण भी रेचक होता है। यह बालक के पेट मे पहुँचते ही जुलाब का काम करता है । प्रकृति ने यह स्वाभाविक रेचक दवा का गुण प्रथम आने वाले दुग्ध मे ही नियत कर दिया है कि बालक के उदर मे पहुँचे और उसको दस्त आ जावे ।

प्रथम अवस्था मे दो-दो घण्टे के अन्तर से दूध पिलाने का समय नियत करना चाहिये। जैसे जैसे बालक की आयु बढ़ती है वैसे वैसे उसके दूध पिलाने का समय भी बढाते रहना चाहिये। दो घण्टे के बाद तीन घण्टे के अन्तर से, फिर चार घण्टे के अन्तर से समय नियत करना चाहिये। बालक जब तक दुग्धहारी रहे तब तक चार घण्टे के अन्तर से दूध पिलाते रहना चाहिये । किसी कारण से जब माता के दूध का अभाव हो जाता है तो उसे बकरी या गाय का दूध पानी मिलाकर पिलाना चाहिये।

बच्चो के शरीर की सफाई के लिये उसे नहलाना भी जरूरी है। जब तक बच्चा एक साल का नहीं होजाय उसे नीम हले गर्म पानी से नहलाना चाहिये। यह बात हमेशा याद रखनी चाहिये कि बच्चो मे सर्दी सहन करने की शक्ति कम होती है। तनिक सर्दी लगने से वे बीमार पड़ जाते हैं। इसलिये उन्हे अधिक देर तक न नहलाये, अधिक से अधिक ४ मिनिट काफी है। नहलाने के बाद शरीर को पोंछकर सूखे मुलायम कपड़े मे लपेट दें व दो घण्टे तक खुली हवा में न ले जायें। बाद मे स्वच्छ कपड़े पहना दें।

नहलाने से पहले बच्चो के शरीर पर सरसो का तेल, तिल का तेल अथवा नारियल के तेल की मालिश यदि इसके हाथ से की जाय तो उससे बच्चे के शारीरिक विकास पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

जैसे जैसे बच्चा बढ़ता है उसकी भूख भी बढती है । इसलिये जबकि सातवे माह मे कदम रखने को हो उस समय माँ के दूध के अतिरिक्त थोडा साबूदाना दूध मे पकाकर दे और जब बच्चा दस ग्यारह माह का हो जाय तो दूध चावल, चावलो की खीर, मुलायम खिचडी खिला सकते हैं और जब बच्चा एक साल का हो जाय तो उबला हुआ आलू और केला भी दे सकते है।

बालक पर ऋतुओ का काफी प्रभाव पड़ता है और उनका शरीर सुकोमल होने के कारण बच्चो पर बीमारी का असर शीघ्र हो जाता है। इसलिए बच्चो को ऋतुओ के अनुसार ही भोजन देना चाहिये। वैसे तो बच्चो को सबसे ज्यादा प्रोटीन एव विटामिन ए एव डी की अधिक आवश्यकता होती है। इसका विशेष ध्यान रखते हुए उनको भोजन देना चाहिये। साधारणतया बच्चो का भोजन तो दूध ही है किन्तु जब बच्चा अन्न खाने योग्य हो जाता है तो उसके खाने का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। सर्दी के दिनो में बच्चो को भोजन मे ऐसी वस्तुओ का प्रयोग किया जावे जिससे कि उनके शरीर मे गर्मी बनी रहे जैसे दूध मे केशर जायफल डाल देना चाहिए अण्ड देना भी उचित है इस मौसम मे बच्चो को गुड, शक्कर, हलवा अथवा पौष्टिक आहार देना चाहिए क्योकि यह शारीरिक उष्णता बढ़ाते हैं। गर्मी के दिनो मे इन चीजो का इस्तेमाल अधिक मात्रा मे बच्चो को नही कराया जावे। ठण्डी हरी सब्जी, तरकारिया, ताजा फल, दूध, दही, लस्सी, छाछ और पनीर का इस्तेमाल कराना उचित है। बरसात के दिनो मे भी यही चीजें देना अच्छा है। इस मौसम मे निम्बू अचार सिरका इमली और उससे बनाई चटनिया खिलाने से बहुत लाभ होता है।

जैसा हमे मौसम के अनुसार बच्चो के लिये भोजन का ध्यान रखना आवश्यक है उसी प्रकार कपडो का भी हमे ध्यान रखना चाहिए। सर्दी के दिनो मे हमेशा बच्चो को गरम कपड़े पहनाने चाहिए तथा गर्मी मे बारीक मुलायम मलमल वगैरह के कपड़े पहनाने चाहिये। कपड़े तग अथवा बदन से चिपके हुये नही पहनाने चाहिए एव बारिश के दिनो मे इसी प्रकार के साधारण सूती कपडो का इस्तेमाल करना उचित है।

आज के प्रगतिशील युग मे भी पुराने अन्ध विश्वासो पर भरोसा किया जाता है जबकि इस वैज्ञानिक युग मे प्रत्येक बात पूर्णरूपेण खोलकर स्पष्ट करदी है कि प्रत्येक बीमारी का दवाइयो द्वारा इलाज हो सकता है। लेकिन हम आज भी इतने पिछडे हुए हैं कि बीमारियो को अन्ध विश्वास के द्वारा पर्दे में रखना सीधा मृत्यु से दोस्ती करना है। वैसे तो आजकल की ६०% जनसख्या समझ गई है किन्तु अधिकतर औरतो के दिल से अन्ध-विश्वास की भावना अभी निकली नहीं है। यही कारण है कि हमारे यहा बच्चे नाना प्रकार की बीमारियो मे उलझे हुये रहते हैं और इलाज नहीं कराते हैं केवल क़ुदरती तौर पर अथवा देवी-देवताओ की छाया या डाकन चुडैल का प्रकोप मानते हैं। इस कारण बजाय इलाज कराने के तावीज, गण्डा या देवी-देवतार्ओं की पूजा कराते है और बच्चो के अच्छा होने की कामना करते हैं। और अन्त मे मौत के शिकार हो जाते हैं।

यदि बच्चो को बुखार आ जाता है और रोना चिल्लाना लग जाता है तो यह माना जाता है कि बच्चे को नजर लग गई है। यदि मोतीझरा हो जाता है तो मोतीसर महाराज की छाया पड गई है। यदि चेचक निकल आती है तो यह माना जाता है कि शीतला माता का प्रकोप हो गया है। यदि रीकेट्स की बीमारी का शिकार हो जाता है कि इसको डाकन लग गई है। इस प्रकार यह सब बीमारिया देवताओ के सिर मढ दी जाती हैं। और यहा के लोग इलाज नहीं कराते हुए तावीज गण्डे कराते हैं और मन्तर, जादू, टोना करने वाले या ब्राह्मण अथवा फकीर को बुलवाते हैं तथा झडवाते हैं, फुकवाते और देवताओ का उतारा (टोकना) दिलवाते हैं। इसको हम बली देना या भोग देना भी कह सकते हैं।

अन्ध-विश्वासी भावनायें वाली स्त्रिया बच्चो पर फिटकरी, मिर्ची आदि वार कर इलाज करती हैं। कोई देवतावो की या पीर साहब की मजार की चौखट पर लेजाकर पटक देते हैं और बच्चों का इलाज वहा के लोबान गूगल की भभूत तक ही सीमित रखते हुए विश्राम कर लिया जाता है।

इन्हीं अन्ध-विश्वासो के कारण बच्चा कृष होता चला जाता है और अन्त मे वह प्राण छोड देता है। तो कहा जाता है कि किसी डाकन या चुडैल ने खा लिया है। वैसे आजकल इतनी अन्ध-विश्वासी भावनायें देखने को कम मिलती है फिर भी ग्रामो मे अनपढ लोगों में ये गन्दी भावनायें ज्यो की त्यो बनी हुई हैं।

— वैद्य श्री नूरमोहम्मद मुलतानी आयुर्वेदरत्न
प्रतिभा आयुर्वेद औषधालय,
बोल खेडा (नाऊ) तह० महिदपुर (उज्जैन) म०प्र०

स्वास्थ्य — कुछ महत्वपूर्ण लोकोक्तियाँ

श्री वैद्य अम्बा लाल जोशी आयु० केशरी, साहित्यायुर्वेद रत्न

श्री जोशी जी धन्वन्तरि पाठको के लिए सुपरिचित हैं। 'धन्वन्तरि वातरक्त रोगाक' के सम्पादन के अतिरिक्त आपके अनुभव पूर्ण लेख धन्वन्तरि मे प्रकाशित होते रहते हैं। आप सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता एवं नगरपालिका के प्रमुख सदस्य है। महासम्मेलन पत्रिका के सम्पादक रह चुके है। भारतीय लोक साहित्य मे आयुर्वेद' तथा 'बालमीक रामायण मे आयुर्वेद पुस्तके आपने लिखी है।

स्वास्थ्य विषयक आयुर्वेदिक लोकोक्तियो का सकलन आप के द्वारा लिखित पुस्तक 'भारतीय लोक साहित्य में आयुर्वेद,' से किया है। कहावते ज्ञानवर्धक, मनोरजक एव स्वास्थ्य वर्धक सिद्ध होगी, ऐसी आशा है।

—विशेष सम्पादक

हम कुछ लोकोक्तियो को नीचे उद्धरित करते हैं जिनसे यह आभास मिल सके कि लोकोक्तियो ने आयुर्वेद के कितने अश को आवृत किया है—

(१) पहला सुख निरोगी काया (स्वास्थ्य)

ससार मे प्राणियो के लिए सर्व प्रथम सुख देह का निरोग रहना ही है। प्राणी की यदि देह निरोग है तो ससार का प्रथम सुख प्राप्त है।

उपरोक्त कथन में स्वास्थ्य के महत्व को समझाया है। विशेषत मनुष्य के लिए स्वास्थ्य को प्राथमिकता दी है।

सस्कृत वाँगमय मे तथा विशेषत. आयुर्वेद मे भी 'शरीर माद्य खलु धर्म साधनम्' कहकर मानव की स्वस्थ देह को धार्मिक कार्यों का निश्चित साधन माना गया है। यदि देह स्वस्थ है तो धार्मिक कार्य किये जा सकते है यदि देह स्वस्थ नही है तो कर्म करना सभव नही है। एक दूसरे आर्षवाक्य के अनुसार 'धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्य मूल मुत्तमम्' धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का उत्तम मूल आरोग्य है। यदि काया निरोग है तो धर्म सम्पन्न हो सकता है। अर्थ कमाया जा सकता है। काम (क्रिया) सम्पन्न की जा सकती है तथा इन तीनो ही शुभ कर्मों के साधन द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। मोक्ष मानव का चरम लक्ष्य है।

आग्ल भाषा साहित्य मे भी Health, wealth and wisdom कहकर सर्व प्रथम स्वास्थ्य, तदन्तर अर्थ प्राप्ति, अन्त में सुवुद्धि को क्रमश. महत्व दिया है। तथा

Health is wealth देहिक सुन्दर स्वास्थ्य को ही सर्वोत्तम धन माना है।

अतः स्वास्थ्य मानव के लिए सर्वोपरि है वह मानसिक तथा शारीरिक दोनो ही प्रकार का होना आवश्यक है।

सौ दवा एक हवा—(स्वास्थ्य)

यहाँ वायु का महत्व प्रदर्शित किया है। स्वच्छ वायु सेवन सौ औषधियो के सेवन से श्रेष्ठ है निरन्तर औषधि सेवन से भी यदि देहिक रोग मे परिवर्तन न आवें अर्थात् उनमे सुधार न हो तो वायु परिवर्तन (स्थान परिवर्तन) करिये, लाभ होने लगेगा। गिरि की शीतल वायु, समुद्र की आर्द्र वायु। तथा मरुस्थल की रूक्ष वायु अपना-अपना महत्व रखती है और रोगोपचार मे सहायक बनती हैं।

रोग निरोधक औषधियां लेते रहिये परन्तु जब तक वायु वेग अनुकूल न होगा रोग निवारण नही होगा।

स्वच्छ वायु का सेवन सौ औषधियो के सेवन से भी अधिक प्रभावशाली माना गया है। प्रातःकाल का वायु सेवन मानव को स्वस्थ रखने के लिए सौ औषधियो के समान प्रभाव करता है। दूसरी ओर वायु जब विकृत हो जाती है तब सौ औषधियां भी निष्प्रभ (प्रभावहीन) हो जाती हैं। जैसे जनपदोध्वंस व्याधियो के समय मे।

चरक विमान स्थान मे (अध्याय ३. श्लो ६) कुछ विशेष प्रकार के वातवेगो को व्याधि उत्पादक तथा व्याधि प्रसारक माना है वे ये हैं—

(१) ऋतुविषम (२) स्तिमित (३) अतिचल (४) अतिउष्ण (५) अतिशीतल (६) अतिपरुष (७) अतिरूक्ष (८) अति अभिष्यन्दी (९) अतिभैरव, (१०) अति अराव (११) अति प्रतिहर (१२) परस्पर गतिशील (१३) अति कुण्डलिग्दक असात्म्य गन्ध (१४) वाष्पसिकता, पांशु, धूम्र से उपहत।

समभाव उद्धरण—वायु सुख दुःखयोर्विधाता, भूताना भाव अभावकर. (चरक)

दातां सो आतां (आहार शास्त्र)—

दातो से जैसी वस्तु खाओगे आंतो पर वह वैसी ही प्रतिक्रिया करेगी।

मनुष्य को चाहिये कि जो भी वस्तु खावे खूब सोच समझकर खावे। खूब चबा-चबा कर खावे यही आतो (पेट की आत्र) के लिये हितकर है। हितकर खाद्य तथा यथा मात्रा मे खाने से पचने में सुविधा रहती है तथा आतो पर विशेष जोर नही पडता।

दातो द्वारा चबाया गया अन्न आतो मे पहुँचता है अत दाता मे पहुँचते ही उसे सुपिष्ट बनाकर गले के नीचे उतारना चाहिए जिससे वहा जाकर गरिष्ट न बनें या दुस्पच्य न बने। आतो को अधिक कार्य न करना पड़े।

खाधो करै उपाधी (आहार शास्त्र)—

अव्यवस्थित खाद्य रोग पैदा करता है। अव्यवस्थित से तात्पर्य है अहितकर असात्म्य तथा अकाल मे प्राप्त किया हुआ। विषमासन किया गया भोजन। अध्यशन (पूर्व किया गया भोजन) जीर्ण न होने पर भी उसके पूर्व किया गया भोजन-अखाद्य है तथा रोग पैदा करता है।

चरक ने लवण, अम्ल, कटु, क्षारयुक्त, शुष्क, शाक, पिष्ट धान्य, नवधान्य आदि का अति सेवन निषिद्ध बताया है। प्रकृति की दृष्टि से विरुद्ध, असात्म्य, रुक्ष, विलम्न, गुरु (भारी) पूति सडा हुआ, पर्युषित (जूठा) विषमासन तथा अध्यशन आदि के रूप मे किया गया भोजन रोगी बना देता है।

दाता पीसियोडी खाणी, होटां पीसियोडी नहीं खाणी —(आहार शास्त्र)

मनुष्य को दांतो से चबा-चबाकर रोटी खानी चाहिये। केवल होठो की सहायता से खाद्य को गले उतारना हानिकारक है।

दातो से चबा-चबाकर खाना उचित है परन्तु अन्य व्यक्तियो के होठो से पिसी हुई अपनी बुराइयों को नही पचा जाना चाहिए। उन बुराइयो को निस्पक्ष दृष्टि से देखकर उचित परिष्कार करना उचित है। खाद्य को दातों से पूरा चबाना चाहिये।

प्रकारान्तर से—दांतो पीसियोडी खाणी, आता पीसियोडी नहीं खाणी।

ऐसा अन्न नही खावे जो पेट (आतो) पर अधिक बोझ डाले।

तन सुखी तो मन सुखी—(स्वास्थ्य)

यदि मनुष्य का देह स्वस्थ है तो मन भी स्वस्थ है। यहा सुखी शब्द स्वस्थ की ओर सकेत करता है।

शारीरिक तथा मानसिक रोगो का परस्पर सम्बन्ध इस कहावत मे चित्रित किया गया है। यदि शरीर स्वस्थ है तो मन प्रसन्न, यदि मन दुखी है तो शरीर भी रुग्ण है ऐसा स्पष्ट है।

आयुर्वेद शास्त्र मे भी 'देहेन्द्रिय मनस्तापी '।" कहकर ज्वर रोग की देह, इन्द्रिय तथा मन को ताप देने वाला बताया है। मानव देह तथा मानव मन दोनो ही एक दूसरे से सीधा सम्बन्धित हैं।

लूखो भोजन राखसी (राक्षसी) (आहार-शास्त्र)

रूक्ष भोजन वात प्रकृति को बढ़ाता है। इससे मानव प्रकृति अस्थिर रहती है। यानी वह राक्षसी प्रवृत्ति की ओर बढता है। अतः मनुष्य को बिल्कुल रूक्ष भोजन नही करना चाहिए। वात का स्वयं का गुण भी रूक्ष है तथा भोजन को रूक्ष किया जाय तो दोनो ही समान धर्मी होते हैं तथा परस्पर बढाते रहते हैं।

रूक्ष भोजन दु ख शोक और रोग उत्पन्न करने वाले बताये गये हैं। प्रकारान्तर से—

'लूखो भोजन तामसो'

आजकल के खाद्यो में रूक्ष भोजन का महत्व बढता जा रहा है। चाय, डबल रोटी का भोजन भी इसी श्रेणी में आता है। डाक्टर बन्धु भी रूक्ष भोजन की सलाह दिया करते हैं जो उचित नही है। यह निश्चय ही वातवर्धक है।

अग्रेजी भाषा मे भी इस विषय को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है।

A man fed on whisky and dry Bread can not do the finest work of which he is capable

घणी दवा सू बिगड़े तन्न, पर धन दीखे बिगड़े मन्न
बिना भावतो खावे अन्न, ये सब करै सो मूरख जन्न
(आचरण-शास्त्र)

निरन्तर औषधियो का सेवन करते ही रहना स्वास्थ्य को गिराता है। दूसरो के धन को देखकर अपने मन मे विकार उत्पन्न करना, अधिक भोजन (आवश्यकता से अधिक मात्रा तथा समय की दृष्टि से) करना मूर्खता है। अर्थात् उपरोक्त तीनो ही बातो को करने वाला व्यक्ति मूर्ख है। वह अपने ही कृत्यो के द्वारा अपने शरीर तथा अपने मन मे विकार उत्पन्न करता है, अत. वह मूर्ख है।

नाने कवै धाप-धाप खावणो (आहार-शास्त्र)

मनुष्य को छोटे छोटे ग्रास लेकर पेट भर भोजन खाना चाहिये। थोडा-थोडा कर पेट मे रुचि के अनुसार खाना चाहिये। ऐसा करने से आँतो पर जोर नही पडता और मनुष्य स्वस्थ रहता है।

इस कथन मे दो बातों पर विशेष जोर दिया गया है (१) ग्रास छोटा खाना तथा (२) खूब चबा चबाकर रुचि के अनुसार स्वाद लेते हुए तृप्ति प्राप्त कर भोजन करना। इस प्रकार किया गया भोजन रसायन है।

कासे टूट्यो आदमी जापे टूटी लुगाई
(आहार-विहार)

मनुष्य के लिए आहार परम रसायन है। यदि आहार नियम पूर्वक किया जावे तथा आयुर्वेद के उपदेशानुसार किया जावे तो मनुष्य कभी भी जर्जर नही होता। यदि पथ्य का उचित ढङ्ग से सेवन न किया जाय तो मनुष्य रोगी हो जाता है। प्रज्ञापराध के कारण यदि मनुष्य कुपथ्य सेवन कर अपने स्वास्थ्य को बिगाड लेता है तो फिर उसका स्वास्थ्य सुधरना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार प्रसवावस्था मे भी यदि प्रसवा को सम्यग् पथ्य के तथा आहार विहार के अभाव तथा सम्यग् परिचर्या के अभाव मे विकार उत्पन्न हो जावे तो स्त्री का शरीर सदैव के लिए रुग्ण हो जाता है अथवा शिथिल हो जाता है। समान आयुर्वेदीय वाक्य—

पथ्येसति गदार्तस्य किमौषधं निषेवणै।
पथ्येऽसति गदार्तस्य किमौषधं निषेवणैः॥

पथ्य से रहने वाले रोगी को औषधि की आवश्यकता नही है। याने बिना औषधि सेवन किए ही वह स्वस्थ हो जाता है तथा बिना पथ्य रहने वाले रोगी को औषधि सेवन से क्या लाभ? याने वह स्वस्थ नही हो सकता चाहे कितनी औषधि वह खाये (वैद्य जीवन)।

अन्य वाक्य—

पथ्य सेविन मारोग्यं गुणेन भजते नरम् ।
अपथ्यसेविनं क्षिप्रं रोग: समभिमर्दति ॥
(कश्यप संहिता)

पथ्य से रहने वाले मनुष्य को आरोग्य की प्राप्ति होती है तथा कुपथ्य सेवन करने वाले मनुष्य हमेशा रोगी रहते हैं।

आहार मारै या भार मारै (आहार-विहार)

या तो भोजन मारता है या बोझ मारता है। अर्थात् भोजन समय पर न मिलने पर, योंही न मिलने पर विषाक्त भोजन द्वारा, अधिक भोजन खाकर मनुष्य मर जाता है। अपनी शक्ति से अधिक बोझ उठाकर भी मनुष्य मर जाता है।

आहार न मिलने पर मनुष्य धीरे-धीरे अशक्त होकर काल के गाल मे पहुँच जाता है या अपनी शक्ति से अधिक भोजन कर लेने से यह रुग्ण हो जाता है। विषाक्त भोजन कर मनुष्य मर जाता है। ठीक इसी प्रकार अपनी सामर्थ से अधिक बोझ उठाकर यातो उससे दबकर या उसके उठाने से थककर रुग्ण हो जाता है और मर जाता है। अत मनुष्य को अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही भोजन करना चाहिये तथा अपनी शारीरिक शक्ति के संतुलन से ही बोझ उठाना चाहिए। समान कहावत—

गिवार खाय मरै या ऊचाय मरै।

ना-समझ आदमी या तो अव्यवस्थित भोजन करने से मरता है। या अति बोझ उठाने से मरता है। आयुर्वेद मतानुसार—

व्याधिमिन्द्रिय दौर्बल्य मरण चाधि गच्छति।
विरुद्ध रस वीर्याणी भुजानोऽनात्मवान्नर ॥
(सु. सू)

दूध दूध माय का, और दूध गाय का
अन्य दूध काय का। (पथ्य-विवेचन)

माता का दूध सर्वोत्तम पथ्य है।गाय का दूध अन्य-तम श्रेष्ठ है-अन्य दूध अच्छा नही है। उपरोक्त कथन बालको (शिशुओ) के लिए कहा गया है। माता के दूध को सर्वोत्तम पथ्य माना है।

माता के दूध को सभी देशो के विज्ञानवेत्ता सर्वोत्तम मानते है। कहा है—

Breast fed is best fed.

जेड़ो खावे अन्न वेडो होवे मन्न। (आचार रसायन)

मनुष्य जैसा आहार करेगा वैसा ही उसका मन हो जाता है। खाद्य का प्रभाव मनुष्य के मन पर (स्वभाव पर) भी पडता है। सात्विक अन्न खाने वाला व्यक्ति संतुलित मस्तिष्क या सात्विक मनोद्वेगो वाला होगा। तामसी भोजन करने वाला तामसी स्वभाव का होगा।

आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि:।
सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृति: ।
स्मृति लम्भे सर्व ग्रथीनां विप्रमोक्ष:
—छान्दोग्य उपनिषद

आहार की शुद्धि से अन्त करण की शुद्धि होती है। आन्तरिक शुद्धि से निश्चल स्मृति होती है। निश्चल स्मृति से सभी बन्धनों से मुक्ति मिलती है। समान कहावतें—

१ अन्न खावे जिसी डकार आवे।
(जैसा अन्न मनुष्य खाता है वैसे ही उद्गार होते हैं)

२. अन्न खावे जिसी नियत होवे।
(जैसा अन्न खाता है वैसी ही बुद्धि होती है। नियत विचार बुद्धि।)

३. जैड़ो खावे वेड़ो सोचे—
(जैसा मनुष्य खाता है वैसा ही सोचता है याने वैसे ही उसके विचार होते हैं)।

श्रीमद् भगवद्गीता मे भी आहार के सत्व रज तथा तम तीन प्रकार निश्चित कर सत्वाहार की प्रभुसत्ता को प्रतिपादित किया है।

आहार स्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रिया । —गीता

खाटा खारा चरपरा, सुपारी ने तैल
जो सू मणियो चावे (बालका इतरा सागा मेल।
—पथ्यापथ्य

ऐ विद्यार्थी! यदि तू पढना चाहता है तो निम्न रस वाले द्रव्यों का परित्याग कर! अम्ल (खट्टा) कटु (खारा) तिक्त (चरपरा)। उपरोक्त तीनो ही रस बुद्धि तथा स्मृति प्रसादक नहीं नाशक है। ये सभी द्रव्य मेधाशक्ति को क्षीण करते हैं। उपरोक्त तथ्य शास्त्र सम्मत है।

ओले सोवै उन्नो खावै उण घर वैद कदै नहिं जावै।
—आहार-विहार

जो व्यक्ति किसी ओट मे सोता है तथा सदैव ताजा बनाया हुआ उष्ण भोजन करता है उसके घर पर वैद्य

कभी नही जाता। आंले सोवे का तात्पर्य है ओट मे सोना जहाँ वात आतप सीधा उसके शरीर को स्पर्श न करे। ऊपर से गिरने वाला द्रव्य उस पर आघात न करे। उन्नो से तात्पर्य है उष्ण तत्काल बना हुआ, ठण्डा बासी भोजन नहीं। उसके घर कभी वैद्य नही जाता से तात्पर्य है वह कभी रुग्ण नही होता। वैद्य उसकी चिकित्सा के निमित्त कभी उसके घर नही जाता।

ठंडो नावे तातो खावे उण घर वैद कदै नहिं जावै।

—आहार-विहार

जो व्यक्ति ठण्डे जल से स्नान करता है और उष्ण भोजन करता है उसके घर वैद्य नही जाता।

ठण्डे जल से स्नान करना बल-वर्धक है तथा उष्ण व तत्काल पक्व भोजन करना रसायन है। अतः इनका नियमित रूप से सेवन करने वाला मनुष्य सर्वथ स्वस्थ रहता है अर्थात्—वह कभी रुग्णा नहीं होता, वैद्य की उसको आवश्यकता नही रहती। आयुर्वेद मतानुसार शीतल जल से स्नान करना रक्तपित्त हर्ता है।

शीतेन पयसां स्नान रक्तपित्त प्रशान्ति कृत्।

—भाव प्रकाश

आँख में कान में नाक में ऊँगली।
मत कर मत कर मत कर ॥
आँख में अञ्जन दांत पै मंजन।
नित कर नित कर नित कर ॥

—आचार रसायन

आख मे, कान में तथा नाक मे ऊँगली बार-बार नही करनी चाहिये इससे निम्न हानियाँ होती हैं। दृष्टि मान्द्य, नेत्रक्षत, अधिमन्थ, कर्ण बधिरता, रक्तस्राव, नासि का स्राव आदि।

इसके विपरीत आख मे काजल, नित्य डालना चाहिये दांतो पर मंजन या दतून नित्य करना चाहिये। इससे दृष्टि बढ़ेगी तथा दात सुदृढ होगे। स्वास्थ्य उत्तम रहेगा क्योकि शरीर का द्वार स्वच्छ है। मत कर तथा नितकर का तीन बार प्रयोग निश्चयात्मक है।

ओगा सूं दातण करै, नित उठ हरड़ चवाय।
नाथ कहे रे बालका, उण घर वैद न जाय ॥

—सुपथ्य

अपामार्ग सेदतून कर प्रात हरीतकी का चर्वण करे तो आदमी चिर स्वस्थ रहता है। उसके घर वैद्य नहीं जाता। अपामार्ग के दतून से दात साफ होते हैं तथा हरीतकी सदा पथ्य है। यह रसायन भी है अत स्वास्थ्य प्रदाता है। उपरोक्त नियमित सेवन करने वाला व्यक्ति सदा स्वस्थ रहता है।

हरड़ बहेड़ा आँवला, घीरत शकर सूं खाय।
हाथी दाबे खाख में, साठ कोस ले जाय ॥

—रसायन

हरड, बहेडा, आवला (त्रिफला) को यदि व्यक्ति घृत तथा शक्कर मिलाकर खावे तो वह रसायन है। यह प्रयोग इतना बल देता है कि इसके सेवन करने वाला व्यक्ति हाथी को काख (बगल) मे दबाकर ६० कोस (१२० मील) ले जा सकता है। अर्थात् यह प्रयोग अतुल बल प्रदाता है।

त्रिफला तथा हरीतकी को आयुर्वेद मे भी रसायन तथा बलप्रद माना है। यद्यपि उपरोक्त भाषा अलकारिक है, फिर भी त्रिफला के रसायन गुण सर्व मान्य है।

परनारी छानी छुरी, पाँच ठोड़ सूं खाय।
धर्म हरे अरु धन हरै, पत पंचां मे जाय।
जीवत काढे कालजो मुवां नरक ले जाय ॥

(आचार रसायन)

पर स्त्री गमन एक तीक्ष्ण चाकू की तरह है जो छुपकर पुरुष पर वार करती है। सामान्यत यह पाच स्थानो पर से पुरुष को खाती है।

(१) धर्म की हानि करती है। अर्थात् पर-स्त्री-गमन अधर्म है।

(२) धन की हानि करती है। अर्थात् पर-स्त्री गमन करने वाले को अत्यधिक धन व्यय करना पढता है। यह धन का रूपव्यय हैं—अर्थात् व्यर्थ का व्यय है।

(३) प्रतिष्ठित व्यक्तियो मे पर-स्त्री गामी की इज्जत नही रहती। मान सम्मान नही मिलता। सभी लोग उसे हेय दृष्टि से देखने लगते हैं। उसकी प्रतिष्ठा धीरे-धीरे क्षीण होती जाती है।

(४) जीवित व्यक्ति का करोजा निकाल लेती है। अर्थात् जीवित व्यक्ति को मृतक के समान बना देती है। उसकी शक्ति का धीरे-धीरे ह्रास होता जाता है और उसके स्वास्थ्य की निरन्तर हानि होती रहती है।

(५) मरने के बाद नर्क गामी बना देती है। याने परलोक को भी विगाड़ देती है।

स्वास्थ्य का सप्तम साधन

निशा का महत्व

मनुष्य यदि रात-दिन परिश्रम ही करता रहे और बीच मे विश्राम न करे तो आरोग्य स्थिर नही रह सकता। स्वास्थ्य के लिये श्रम जितना आवश्यक है उतना ही श्रम के पश्चात विश्राम करना भी आवश्यक है। परिश्रम करने से शरीर की शक्ति क्षीण होती है और उसकी पूर्ति विश्राम करने से ही हो सकती है। विश्राम की पूर्ति का साधन निद्रा है। यथार्थ में गाढ निद्रा ही पूर्ण और सर्वोत्तम विश्राम है। जीवन धारण के लिए निद्रा की नितान्त आवश्यकता है। भोजन के बिना मनुष्य कुछ दिन जी सकता है। परन्तु बिना विश्राम के स्वास्थ्य बनाए रखना कठिन है। चू कि विश्राम का वास्तविक साधन निद्रा है और निद्रा का वास्तविक काल निशा है, इसीलिए प्रकृति ने निशा की रचना की है। रात्रि मे किया गया विश्राम (निद्रा) ही स्वास्थ्य के लिए उत्तम है। दिन भर शारीरिक वाचिक और मानसिक चेष्टाओ को कार्यरत रखने के लिए निद्रा आवश्यक है। यदि प्रकृति द्वारा रात्रि का निर्माण ही न होता तो हम स्वस्थ ही कैसे रह पाते।

सन्ध्या काल मे क्या न करें

रात्रि का आरम्भ सन्ध्याकाल से होता है। सूर्यास्त समय से ही जिस काम को कर रहे हो, उसे बन्द कर देना चाहिये। सन्ध्या, दिन और रात के बीच का सन्धिकाल है। सन्धिकाल में शारीरिक और मानसिक व्यवसाय निवृत हो जाना चाहिये। विशेषकर सायकाल भोजन, मैथुन, निद्रा, पढना और मार्ग गमन इन पांच कर्मों को सन्ध्या काल मे नही करना चाहिये। जैसा कि भावप्रकाश मे लिखा है—

> एतानि पञ्चकर्माणि सन्ध्यायां वर्जयेन्दुध ।
> आहार मैथुन निद्रां सम्पाठ गतिमध्वनि ॥
> भोजनाज्जायते व्याधिर्मैथुनाव गर्भवैकृतिः ।
> निद्रया निःस्वता पाठादायुर्हानिर्गतेभयम् ॥

मनुष्य दिन भर का थका रहता है, तुरन्त भोजन करने से शारीरिक आशयो मे स्थिरता और शान्ति नही आती। उनकी क्षुब्धावस्था मे भोजन कर लेने से उसका ठीक परिपाक नही होता और उनसे रोगो की उत्पत्ति होती है। इसी तरह मैथुन मे भी स्त्री पुरुष दोनो की शान्ति सुस्थिर अवस्था मे होना चाहिये। व्यग्रावस्था मे मैथुन करने से यदि गर्भ रह गया तो विकृत सन्तान होती है। शाम को ही सो जाने से रात भर निद्रा अच्छी नही आती और आलस्य बना रहता है। शाम को पढने से बिना विश्राम किया मस्तिष्क विषय धारण नही कर सकता तथा इससे ज्ञान तन्तुओ मे क्षोभ और हृदय मे अवसाद बढता है। अतएव आयु की भी हानि होना सम्भव रहती है। मार्ग गमन भी सन्ध्याकाल मे नही करना चाहिये। क्योकि सन्ध्या समय जीवजन्तु, मार्ग का भूल जाना, दिन भर श्रम के कारण और अधिक थकान आदि से स्वास्थ्य को हानि होने का भय रहता है। अत. सन्ध्याकाल मे इन कर्मो से बुद्धिमान मनुष्यो को अपने स्वास्थ्य की रक्षार्थ सदैव बचते रहना चाहिये।

रात्रि भोजन का उचित समय क्या है ?

दिन भर के परिश्रम से जो शारीरिक क्षति होती है उसकी पूर्ति बहुत अशो मे आहार से होती है। दिन में सूर्य की गर्मी रहती है। दिन भर प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी कार्य मे व्यस्त रहना पडता है अत बिना आहार के न तो चित्त मे शान्ति आती है और न ठीक से निद्रा ही आती है, इसलिए सुस्वास्थ के लिए रात्रि का भोजन प्रथम प्रहर मे ही कर लेना चाहिये। जैसा कि लिखा है—

> रात्रौ च भोजन कुर्यात् प्रथमप्रहरान्तरे ।
> किञ्चिदून समश्नीयात् दुर्जरं तत्र वर्जयेत् ॥

भोजन ताजा, और हलका होना चाहिये जिससे वह ठीक पच जाय और पेट भारी न हो। भोजन के विषय

(शेष पृष्ठ २७६ पर)

सुरत स्पृहा और आरोग्य

मनुष्य ही नही जीव-मात्र की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि वह अकेले न रहे। कोई न कोई साथी उसे हर समय चाहिये। पैदा होते ही बालक माता पर प्रेम करना सीखता है, फिर वह प्रेम पिता, भाई-बहिन आदि पर विस्तृत होता है। आगे बढकर साथ खेलने वालो पर उसकी दृष्टि पड़ती है और युवा होने पर उसे एक जीवन सङ्गी या जीवनसङ्गिनी की अभिलाषा होती है, जो उसके सुख-दुःख, लाभ-हानि और प्रत्येक समय मे उसके साथ रह सके। वह एक ससार बाँधना चाहता है। अपना सारा प्रेम बटोर कर पुरुष स्त्री पर और स्त्री पुरुष पर केन्द्रित कर देते है, विवाह बन्धन आवद्ध होते हैं। प्रेम का बन्धन दृढ़ होता है। इसके बाद मनुष्य एक से अनेक होना चाहता है। उसे सन्तान की इच्छा होती है। इसके लिए सुरत-स्पृहा की जागृति होती है। यह एक युवा अवस्था का वेग है और स्वाभाविक है। इसको जबरदस्ती रोकने से आरोग्यता की हानि होती है और जोश मे आकर इसम अधिकता करने से भी स्वास्थ्य बिगड़ता है अत इसके बारे मे यहा आवश्यक विचार किया जा रहा है—

सुरत स्पृहा का महत्व

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट विदित हो गया कि चाहे स्त्री हो या पुरुष, प्रत्येक मे सुरत स्पृहा, (भोगविलास की इच्छा, मैथुन की अभिलाषा) स्वाभाविक है। इसलिए आयुर्वेद मे लिखा है—

> शरीरे जायते नित्य देहिना सुरतस्पृहा।
> अध्यवायान्मेह मेदोवृद्धि. शिथिलता तनो ॥

अर्थात् शरीर धारियो मे सुरतस्पृहा स्वाभाविक है। और वह आवश्यक भी है। उसके बिना मनुष्य को प्रमेह हो जाता है, मेद वृद्धि हो जाती है और शरीर मे शिथिलता आ जाती है। यही नही बल रहते हुए भी यदि मन पर जबरदस्ती प्रभाव डालकर रोका जाय, क्रोध से या ब्रह्मचर्य से अथवा स्त्री से अप्रसन्नता के कारण पुरुष मैथुन से विरत रहे तो उनका वीर्य क्षीण हो जाता है, शरीर दुर्बल हो जाता है, मुँह सूखा करता है, चेहरा फीका पड़ जाता है, शरीर शिथिल हो जाता है और चक्कर आया करते है। उनके अकारण वीर्यपात हो जाया करता है और अन्त मे ऐसे लोग नपुंसक हो जाते है। पुरुषो की ही यह स्थिति नही होती, बल्कि स्त्रियो मे भी इसी प्रकार के विकार हो जाते हैं। जो स्त्री विधवा हो गई हो अथवा आजकल की दूषित प्रवृति के अनुसार विद्याभ्यास मे लगी हुई होने से पति-पत्नी के व्यवहार से उदासीन हो अथवा अपने पुरुष के प्रति तिरस्कार भाव आ जाने से जो स्त्री बलपूर्वक अपने वेगो को रोके रहती है, उनका स्वास्थ्य गिर जाता है. उसके चेहरे पर यौवन सुलभ सौंदर्य का अभाव हो जाता है, कुछ बीमारिया भी उनमे स्थान कर लेती हैं। पुरुषो का वीर्य और स्त्रियो मे गर्भोत्पादन की क्रिया न होने से उन भाग की वृद्धि कठिन हो जाती है और वहाँ से शरीर पोषक रस का निकलना बन्द होने लगता है। चेहरा पाण्डु रोगी के समान हो जाता है। इसलिए नित परिमाण मे इसका उपयोग करें।

सुरतस्पृहा से शरीर की वात वाहिनी-ज्ञानतन्तुओ को बल मिलता है, उत्तेजना मिलती है और शरीर मे एक प्रकार की गति प्राप्त होती है। जैसे स्नान से स्फूर्ति आती है, उसी प्रकार से इससे भी तेजी आती है। मन को सन्तोष होता है, सावधानी और कान्ति की वृद्धि होती है। शरीर पुष्ट और बलवान बनता है। अकाल वृद्धावस्था, स्मरण शक्ति और धारण शक्ति की वृद्धि होती है। सभी इन्द्रियो मे एक प्रकार की ताजगी रहती है। अत. पुरुष स्वस्थ और निरोगी रहता है। लिखा है—

> आयुष्मन्तो मन्दजरा- वपुर्वर्ण बलान्वित ।
> स्थिरोपचिता मासाश्च भवन्ति स्त्रीसुसंयता ॥
> स्मृति मेधायुरारोग्य पुष्टीन्द्रिय यशोबलै ।
> अधिका मन्द जरसो भवन्ति स्त्रीषु सयता ॥

यहाँ सयत शब्द ध्यान मे रखने योग्य है। यह कार्य आवश्यकता से अधिक नही करना चाहिए।

समागम के नियम

तेरह-चौदह वर्ष की उम्र के लडको के अण्ड मे शुक्र कीट बनने आरम्भ हो जाते है। इसी तरह ग्यारह बारह वर्ष के बाद कन्या को मासिक धर्म होना प्रारम्भ हो जाता है। इस उम्र मे भी समागम होने से दोनो मे गर्भ धारण कराने-करने की योग्यता रहती है। परन्तु आरोग्य और पुष्ट सन्तान की उत्पत्ति तथा स्वय अपने स्वास्थ्य के विचार से उचित यह है कि गर्भधारण के समय स्त्री की आयु १६ वर्ष और पुरुष की आयु १८ से कम न हो।

सम्भोग निश्चिन्तता का विषय है,उस समय कोई चिन्ता, भय और किसी प्रकार की शीघ्रता न होनी चाहिए। मैथुन के लिए दिन का समय निषिद्ध है। इसके लिए उचित समय रात्रि ११ बजे से २ तक का है। कुछ लोग रात मे सोने के बाद तीन चार बजे समागम करते हैं। यह समय ठीक नही, क्योकि इसके बाद सोने का अवसर ठीक नही मिलता। ब्राह्ममुहुर्त मे समागम होने से आयुक्षीण होती है। जब किसी प्रकार की शारीरिक या मानसिक थकान हो तब भी नही करना चाहिए। स्नान हुआ हो, शरीर मे चन्दन, कुकुम आदि का लेप किये हुए हो, इत्र आदि सुगन्धित पदार्थ लगाये हो, सुगन्धित फूलो का माला पहने हो, पुष्टिदायक पदार्थ खाये हुए हो, सुन्दर वस्त्र धारण किए हो, अच्छी सुशोभिवेश बनाये हो, अलकार आदि से अलकृत हो, दूध-घी आदि का उपयोग किए हुए हो, निभय हो, किसी रोग से ग्रसित न हो, ऐसे युवा स्त्री पुरुषो का समागम करना चाहिए।

मैथुन का मुख्य उद्देश्य सन्तानोत्पादन है। इस प्रकार सृष्टि सरक्षण का पवित्र उद्देश्य इसके साथ लगा रहता है। भोग विलास की पूर्ति के साथ ही इस उद्देश्य की प्रेरणा भी स्त्री पुरुष का इस काम मे प्रवृत करती है। स्त्रियो का ऋतु काल मासिक धर्म के समय से १६ दिन तक माना गया है। इनमे पहली चार रात समागम के के लिए निषिद्ध है। मासिक धर्म के पाँचवें, सातवें, नवें, ग्यारहवें, तेरहवें, और पन्द्रहवें दिन समागम करने से प्राय. कन्या होती है। आठवें, दसवें, बारहवें, चौदहवें और सोलहवें दिन समागम करने स प्राय पुत्र का उत्पत्ति होती है। पुत्र की उत्पत्ति के लिए पुरुष का वीर्य बलवान होना चाहिये। इस बीच मे अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा जिन दिन पड़े, उस रात भी समागम नही करना चाहिए। पुरुषो मे वीर्य सहज ही नही बनता। रस से रक्त और फिर क्रमश सब धातु बनती हुई एक महीने बाद वीर्य बनता है। इसलिए उसे अनाप शनाप खर्च नही करना चाहिए। अतएव इस सम्बन्ध मे कुछ बन्धन रखे गये है। बाजीकरण औषधियों के सेवन से शरीर को पुष्टकर, वसन्त और शरद ऋतु मे तीन-तीन दिन का अन्तर देकर सम्भोग करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु और वर्षा ऋतु मे १५ दिन का अन्तर देना चाहिये। बीच बीच मे शुक्र का व्यय करते रहने से उसकी उत्पत्ति ठीक से होती रहती है। कुछ वीर्य शुक्राशय मे सदा बना रहता है। जब मैथुन की इच्छा होती है तब जननेन्द्रियो मे रक्त का बहाव एकदम अधिक हो जाता है, जिससे वीर्य बनने लगता है। यदि मनुष्य कामोत्तेजक बातो से बच रहे तो सयम से रहने में सहायता मिलती है। कम मैथुन से कोई हानि नही, परन्तु अधिक मैथुन से हानि अवश्य होती है। स्त्री को मासिक धर्म के बाद सम्भोग की इच्छा होती है। सम्भोग के समय यदि वीर्य स्थान से च्युत हो चुका हो तो उसे किसी कारण से रोकना नही चाहिये। उसे रोकने से अश्मरी, मूत्रकृच्छ, मूत्राघात आदि व्याधियाँ होने का भय रहता है।

यदि ढलती उम्र का पुरुष युवा स्त्री से समागम करे तो वह तरुणो के समान बलशाली हो सकता है इसी तरह यदि युवा पुरुष वृद्धा स्त्री से समागम करे तो युवावस्था मे भी वृद्ध के समान क्षीण हो सकता है। आजकल युवको मे भी वह तेजी नही दिखाई पडती गाल बैठे हुए, मन्दचाल, थोडा भोजन, शारीरिक और मानसिक काम करने मे असमर्थता दिखाई पड़ती है। यदि इस सम्बन्ध मे सावधानी से काम लिया जाय तो बहुत अच्छा सुधार हो सकता है।

समागम का निषेध

सोलह वर्ष की अवस्था तक स्त्री बाला कही जाती है। यह समागम का सर्वोत्तम काल है। ३२ वर्ष की अवस्था तक तरुणी रहती है। पुरुष भी १८ से ३० वर्ष

तक युवा रहता है। ३२ से ५० वर्ष की उम्र तक स्त्री पुरुष प्रौढ़ा या प्रौढ माने जाते हैं। ५० वर्ष के बाद स्त्री का समागम निषिद्ध है। उत्तान आसन के सिवाय अन्य आसन निषिद्ध है। रजस्वला, अप्रिय, दुराचारिणी, दुष्ट योनि (सुजाक-उपदंश आदि रोगो से ग्रसित), सकुचित योनि, अतिस्थूल, अतिकृश, प्रसूतिका, गर्भिणी, पर स्त्री, ब्रह्मचारिणी आदि स्त्रियां समागम के लिए निषिद्ध है। अमानुषयोनि, गुरुगृह, विद्यालय, राजगृह, पूज्य पीपल आदि वृक्ष के स्थान, श्मशान घाट वधस्थान आंगन' चौराहा, पर्वकाल, योनि-भिन्न अन्य स्थान भी समागम के लिए निषिद्ध है। दिन मे समागम, समागम के समय शिर को हृदय मे ताड़न करना निषिद्ध है, अधिक भोजन कर समागम न करें। क्रोध, आवेश में, डरे हुए, भूखे, प्यासे, और विषम भोजन किये हुए सम्भोग न करें क्यो कि वीर्य नाश और वातकोप का भय रहता है। प्लीहा-वृद्धि, मूर्च्छा यहां तक कि मरण का भी भय रहता है। क्रोध, मद, मत्सर विशेकर भय के समय मन स्थिर नही रहता, इसलिए आनन्द और उत्साह नही रहता। १६ वर्ष से कम उमर के बालको को सम्भोग नही करना चाहिये। क्योंकि इससे उनकी शारीरिक विकास की बाढ रुक जाती है। बूढे लोगो को भी सम्भोग निषिद्ध है। पेशाब पाखाने आदि का वेग लगा हो तो भी सम्भोग न करना चाहिये। इन नियमो को भङ्ग करने से भ्रम, थकान, जांघो मे दुर्बलता, क्षय आदि रोग उत्पन्न होते हैं। कहा भी है—

श्रम क्लमोरुदौर्बल्य बलधात्विन्द्रिय क्षय।
अपर्वमाणं च स्यादन्यथा गच्छत' स्त्रियम्॥

इसके विपरीत नियम से जो स्त्री पुरुष समागम करते हैं उनमे स्मृति शक्ति, धारणा शक्ति, आयुष्य, आरोग्य, शारीरिक पुष्टि, शुक्र, यश और बल की वृद्धि होती है। जो नियम विरुद्ध आवश्यकता से अधिक समागम करते है उन्हे आक्षेपक आदि वायु के रोग होते हैं। सन्ध्या, किसी त्योहार या पर्व के दिन, ठीक अर्धरात्रि के समय, अधिक खाए हुए स्त्री पुरुष को समागम नही करना चाहिये। रजस्वला स्त्री से सभोग करना बहुत ही निषेधक है। मनुस्मृति मे लिखा है—' रजसाभिप्लुता नारी नरस्य ह्युपगच्छत। प्रज्ञा तेजोबल चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते॥ तां विवर्जन तस्तस्य रजसा समभिप्लताम। प्रज्ञातेजो बल, चक्षुरायुश्चैव प्रवर्धते॥ अर्थात् रजस्वला स्त्री से सम्भोग करने वाले पुरुष की प्रज्ञा तेज, बल और नेत्र शक्ति का ह्रास हो जाता है और उसे बचा जाने से रही शक्तियां भी बची रहती हैं। रजो धर्म के समय स्त्री के शरीर से रज के रूप मे एक महीने का सचित मल बाहर होता है। रज जारी रहने के कारण पुरुष का वीर्य शोषण करने की शक्ति उसमे नही रहती। इसलिए रज की सब मलिनता पुरुष के शरीर मे प्रविष्ट होती है जिससे उसे चर्मरोग, नेत्र रोग चेहरे मे फीकापन और आयुष्य की क्षीणता होती है।

सम्भोगरत स्त्री पुरुषो का आहार विहार

सम्भोगरत स्त्री पुरुषो के लिये क्या पदार्थ और आहार विहार लाभदायक हैं और क्या हानिकारक है इसका भी ज्ञान स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक है। ताजा मांस या मांसरस, ताजा भोजन और नया अन्न शीघ्रता से पचता है। दूध से समस्त धातुओ का पोषण होता है। भोग विलास वालो के शरीर में रूक्षता बढती है। इसलिए घी खाने से रूक्षता का नाश होता है। उष्ण जल के स्नान से त्वचा की वातवाहिनियो को उत्तेजना मिलती है। और तरुण समागम से स्त्री का धन विद्युत पुरुष को प्राप्त होता है। इसीलिए उसे अधिक स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। मनुष्य की ढलती आयु मे ऋण विद्युत निकलती है। जो स्त्री बच्चे को लेकर सोती है उसे बच्चे का धन विद्युत प्राप्त होता है। इसलिए मा को तो लाभ पहुँचता है। परन्तु बच्चे को हानि पहुचती है। निम्न छः पदार्थ सद्य. प्राण पोषक माने गये है—

सद्योमास यवान्नंचबाला स्त्री क्षीर भोजनम्।
घृतमुष्णोदक स्नान सद्य प्राणकराणि षट॥

इनके अलावा समागमरत पुरुष स्त्रियो के लिये बासी मास रोगोत्पादक होने से हानिकारक है। बिना पूरा जमाया हुआ दही न तो दूध ही होता और न दही ही, इसलिए यह आमाशय की श्लेष्मल त्वचा के लिए अनिष्टकर होता है और कफ की उत्पत्ति करता है। सवेरे दिन चढे तक सोते रहना बल और इन्द्रियो को क्षीण

करता है। पूर्ण निद्रा से शरीर मे जो फुर्ती आनी चाहिये वह देर से उठने मे नही आती। यदि सवेरे सम्भोग किया जाय तो निद्रा का अवसर न मिलने से हानिकर होता है। इसलिए निम्न छ पदार्थ सद्य.प्राणनाशक माने गये हैं—

पूति मांसं स्त्रियोवृद्धा बालार्कस्तरुणंदधि।
प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट्॥

समागम के बाद क्या करें?

सम्भोग के पश्चात् कुछ थकान सी आ जाती है। वीर्यपात होने के कारण शरीर की कुछ शक्ति का ह्रास होता है। उसका पूर्ति का तुरन्त प्रयत्न करने से ह्रास जन्य ग्लानि की सम्भावना नही रहती। इसके सम्बन्ध मे कुछ नियमो का ध्यान रखना चाहिये—

स्नानानुलेपन हिमानिल खण्डखाद्य
शीताम्बु दुग्ध रस यूष सुरा प्रसन्नाः॥
सेवेत चानु शयनं विरतो रतस्य
तस्यैवमाशु वपुषः पुनरेति धाम॥

अर्थात् स्त्री समागम के पश्चात् तुरन्त स्नान करें, जिससे शरीर की मलिनता दूर हो जाय और शरीर मे फुर्ती आ जाय। शरीर मे चन्दन का लेपन करें सुगन्धित फूल आदि लेवें, जिससे चित्त मे प्रसन्नता और उत्साह की वृद्धि हो। ठण्डी हवा में टहलें, खण्ड खाद्य कोई मिठाई या रबडी मलाई खावें, दूध पीवें, ऊख का रस या मासरस पीवें, स्निग्ध जूस पीवें, सुरा अथवा प्रसन्ना श्रेणी की शराब पीवें। गर्मी का दिन हो और अन्य कोई वस्तु न हो तो ठण्डा पानी पीवें। इसके बाद आराम से सो जावें। इससे श्रमगजनित ग्लानि दूर होती है। गयी हुई शक्ति वापस आती है। जो धातु व्यय हुआ है उसकी शीघ्र पूर्ति होती है। फिर शरीर में वैसी ही तेजी आ जाती है।

(पृष्ठ २७२ का शेषाश)

मे अन्य आवश्यक जानकारी पिछले पृष्ठो मे दे चुके हैं।

रात्रिचर्या से सम्बन्धित जानकारी

(१) बहुत आवश्यकता हुए बिना रात मे बाहर नही निकलना चाहिये। यदि बाहर जाना ही पड़े तो पैर मे जूता, सिर पर साफा बांध ले (ताकि खुले सिर पर कोई आक्रमण करे तो रक्षा हो सके तथा हवा आदि से बचा जा सके)। एक डण्डा और एक साथी लेकर बाहर निकले।

(२) रात्रि में सोते समय भी हथियार या डण्डा आदि पास लेकर सोना चाहिये ताकि आवश्यकता पर उपयोग में आ सके।

(३) दिन भर के लिए कामो को रात मे स्मरण करना चाहिये। जैसे महाजन लोग अपने हिसाब की खतौनी करते हैं और मद्वार लिखते है। इसी तरह मनुष्य को रात मे सोचना चाहिये कि मैंने दिन में अपना कर्तव्य कहाँ तक पूर्ण किया, कहाँ तक मैंने अपने कर्तव्य की अवहेलना की। कौन ऐसे काम है जिन्हे अधिकता के साथ जारी रखना चाहिये और कौन ऐसे काम है जिनसे बचना चाहिये।

(४) रात में वृक्षो के नीचे नही रहना चाहिये। क्योकि दिन में वृक्ष मनुष्यो का स्वास्थ्यनाशक कार्बन-डाई आक्साइड गैस स्वय ग्रहण करते हैं और मनुष्य के लिए प्राणवायु छोडते हैं किन्तु जैसे पशु दिन मे खाये हुए आहार की रात मे जुगली करते है, उसी प्रकार वृक्ष भी रात मे आहार का पचन करते हैं और स्वास्थ्य नाशक कार्बन डाई आक्साइड गैस एव नाइट्रोजन गैस छोडते है। इसके अलावा वृक्षो पर बैठे पक्षी बीट करके, या अपने लिए लाये आहार की हड्डियां आदि से गन्दगी कर देते हैं जिससे स्वास्थ्य की हानि होती है।

(५) भोजनोत्तर अन्य कर्मों का पालन कर प्रसन्न मन से पवित्र होकर दुग्धपान करें। तत्पश्चात् पवित्र स्थान मे सुखदायी, जानु के बराबर ऊँचे कोमल, शुभ पालन पर शयन करें। (दुग्धपान एव निद्रा के विषय मे पिछले पृष्ठो पर वर्णन देखिये)

(६) देह धारियो के शरीर मे सर्वदा मैथुन की अभिलाषा उत्पन्न होती है। मैथुन न करने से शरीर मे प्रमेह और चर्बी की वृद्धि और शिथिलता होती है। अतः रात में अपनी पत्नी के साथ मैथुन करें।

श्री मुन्नालाल जी 'धन्वन्तरि' के पाठकों के लिए नवीन नही। कोई भी ऐसा विशेषाक न होगा जिसमें आपने सहयोग न दिया हो। 'धन्वन्तरि' पर आपकी कृपादृष्टि सदैव रही है। 'धन्वन्तरि' के 'ज्वर चिकित्साक' का सफल सम्पादन आप कर चुके है। आगामी वर्ष धन्वन्तरि का विशाल विशेषाक "औषधि गुण धर्म विशेषाङ्क" आपके सम्पादन में ही प्रकाशित होगा जिसके लिए आप अभी से जुट गये है। आप आयुर्वेद मर्मज्ञ विद्वान हैं। प्रस्तुत लेख मे आपने ग्राम्यधर्म के ऊपर अच्छा प्रकाश डाला है। भगवान् आपको चिरायु करे।

—सम्पादक

शास्त्रकारो ने जहाँ ब्रह्मचर्य पालन के सम्बन्ध मे निर्देश किये हैं, वहाँ वे ग्राम्यधर्म के सम्बन्ध मे भी मौन नही हैं। ब्रह्मचर्य के महत्व को लिखते हुए कहते हैं--

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्यु उपाघ्नत"

अर्थात् देवो ने ब्रह्मचर्य से तथा तप से मृ यु (अकाल मृत्यु) पर विजय प्राप्त की थी। भगवान मनु जी लिखते हैं—

आश्रमात् आश्रमं गच्छेत् न तु तिष्ठेत अनाश्रमी ॥

अर्थात् आश्रम से दूसरे, तीसरे तथा चौथे आश्रम को स्वीकार करें। आश्रम ४ होते है—

(१) ब्रह्मचर्याश्रम (२) गृहस्थाश्रम (३) वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम। ब्रह्मचर्याश्रम मे—आयुर्वेद मतानुसार जहा ब्रह्म की उपासना है वहा ब्रह्मचर्य पालन करने वाले के लिए यह भी हिदायत है कि दशो इन्द्रियो का सयम सम्यक रूप से यमद् वशीकरण एव मानसिक सुष्ठुता आदि ब्रह्मज्ञान के अनुकूल गुणो को ग्रहण करना चाहिए।

ग्राम्यधर्म

यह ग्रहस्थ धर्म के अन्तर्गत आता है। चू कि ग्राम्यधर्म मैथुन-जन्म से मृत्यु पर्यन्त या बाल्यकाल से वृद्धावस्था पर्यन्त सम्भव नहीं। केवल यौवन काल मे ही सम्भव है। वह भी आहार और निद्रा की तरह अत्यावश्यक नही जैसेकि आज के मनोवैज्ञानिक कहते हैं। मानव जीवन के लिए समोग इतना ही आवश्यक है जितना जीवन के लिए आहार।

प्रारम्भिक जीवन मे, तथा उसके उत्तरकाल में ब्रह्मचर्य के पालन का जितना महत्व है उससे कम तरुणावस्था मे अपालन का निर्देश कही नही मिलता। यही बताया गया है कि—

न जातु काम कामानामुपयोगेन शाम्यति।
हविष्या कृष्णवर्त्मेव भूय मेवाभि वर्द्धते ॥

काम तो भोग से अधिक बढता है जिस प्रकार घृत डालने से अग्नि अधिक प्रदीप्त होती है। कारण स्पष्ट है कि स्त्री और पुरुष की जननेन्द्रिय ऐसे उत्थान शील तन्तुओ से निर्मित हैं जो शीघ्र ही स्मरण, स्पर्श आदि से उत्तेजित हो उठती है। इसी पर समय और आदत का भी बहुत बडा प्रभाव होता है। समागम के लिए जो समय निश्चय कर लिया जाता है उसी समय अधिकतर कामोत्तेजना हुआ करती है। इसका चस्का जिसे एक बार लग जाता है वह सहज छूटता नही, तोभी प्रकृति का नियम है कि हम जितना भी अपनी इच्छा को रोकलें उतना ही अभ्यास से सुगम हो जाता है। लगाम ढीली रखने से रोकना कठिन होता है।

पशु-पक्षियो मे प्राकृतिक नियमानुसार ऋतु पर ही कामवासना उत्पन्न हुआ करती है। ऋतु के पश्चात्

उनकी कामाग्नि स्वतः शान्त रहती है। मनुष्यो मे भी इस प्रकार यह स्वाभाविक इच्छा समय पर ही हुआ करती है किन्तु मनुष्य अपने कुविचारो से रतिक्रिया को एक आनन्द की अनुभूति मानकर उपभोग करता है इसे विषयानन्द, कामानन्द, कामक्रीडानन्द आदि नामो से जाना जाता है।

प्रकृति के नियमानुसार जब यौवन काल का प्रारम्भ होता है तभी भोगेच्छा की उत्पत्ति होने लगती है। प्रत्येक युवक-युवती उस समय अपने हृदय मे यह चाह रखता है कि हमे कोई अन्तरङ्ग मित्र मिले जो जीवन काल मे सब प्रकार का आनन्द देने वाला हो। उसमे स्वच्छन्दतापूर्वक एकान्त मे मिलन हो सके और मन की सम्पूर्ण चाह, इच्छा और विचार उससे कह सके सुन सके। यह इच्छा प्रत्येक युवक युवती के हृदय मे उठती है उसे समाजिक रूप मे स्वीकार कर युवक और युवतियो का विवाह सम्बन्ध करा दिया जाता है। यह विवाह सम्बन्ध ही ऐसा सम्बन्ध है। उनकी हर प्रकार की इच्छा को पूरा कर सकता है। जिस युवक या युवती का विवाह हो जाने पर भी, वे परस्पर प्रेम सम्बन्ध जोड नही पाते-- किसी कारण विशेष से तो जीवन भर दुखी रहते हैं। उसीका परिणाम तलाक, या आत्महत्या, या दोनो का परस्पर जीवन दुख मे रहता है। अत विवाह का कार्य भी सहज नही है बडी समझदारी से करना चाहिए। जिनका सम्बन्ध समय पर नही किया जाता, या जोडा मे मेल नही बैठता एक दूसरे से कतराते हो तो उनमे से कोई एक या दोनो कुटैव मे पाव रख सकते हैं। उनसे समाज में अनाचार व व्यभिचार फैलने का भय बना रहता है।

यौवन (विवाह) काल प्रारम्भ होने पर यथासम्भव विवाह योग्य युवक का किसी योग्य कन्या से विवाह कर देना चाहिए।

(१) शास्त्रकारो ने नक्षत्रो के मिलन को बहुत महत्व दिया है।

(२) काम शास्त्रकारो ने यौन-समता को विशेष महत्व दिया है।

(३) युवक-युवती की अपनी भी कुछ चाह होती है जैसे—

(अ) कितने ही युवक युवती एक दूसरे की बल बुद्धि विद्या पर रीझ कर विवाह करना चाहते हैं।

(ब) कितने ही रूप यौवन सौंदर्य व शौर्यता देखकर तो

(स) कितने ही कार्यशीलता, गृह सम्पन्नता, धन वैभव देखकर,

वे यह भी चाहते हैं कि स्वभाव मे गर्मी-क्रोध क्रूरता न होकर शीतलता हो, रूप रेखा एव बनावट सुन्दर हो, परस्पर गुण, विद्या भी सामान्य हो।

उक्त सभी बातो पर ध्यान देना आवश्यक होता है जो अत्यावश्यक ही नहीं अनिवार्य है। जहा परस्पर गुणो का मिलान नही हुआ, परस्पर झगडा रहने लगा, तलाक की नौबत आ जाती है या जीवन भर दुखी बने रहकर सहन करते रहते है। आज के युग मे दुख, द्वन्द, तलाक नारी निर्यासन और वेश्या व्यवसाय इसके परिणाम हैं। विवाह से पूर्व निम्न बातो पर भी ध्यान रखना आवश्यक है—

(१) युवक युवती से कम से कम ४ वर्ष और अधिक से अधिक १४ वर्ष बडा होना चाहिए।

(२) युवक किसी संक्रामक व भयङ्कर बीमारियों से ग्रस्त नही होना चाहिए-उनमे कुष्ठ उपदश, आतशक, सूजाक, वीर्यक्षय, प्रमेह, मधुमेह, नपुंसकता, क्षय, पागलपन, मृगी, हिस्टीरिया आदि रोग न हो। उसी प्रकार युवती भी कुष्ठ, रक्त विकार, रज विकार, योनिगत दोष, स्वप्नदोष, प्रदर, मृगी, हिस्टीरिया, पागलपन न हो।

(३) शरीर से दोनो हृष्ट पुष्ट हो, बलवान हो, सदाचारी हो, सुडौल व सम्पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्ग ठीक हो।

(४) एक दूसरे की चाह के प्रतिकूल न हो। वह सबन्ध उत्तम रहता है।

इसका विस्तृत वर्णन न करके इस विषय को यहाँ ही समाप्त किया जा रहा है। इस सम्बन्ध मे जितना भी लिखना चाहे लिखा जा सकता है।

ग्राम्यधर्म-मैथुन-का नाम है, काम वासना, इसी का दूसरा नाम मैथुन है।

इसका जितना भी नियमित उपयोग किया जायेगा उतना ही हितकर रहता है। अनियमित रति सुख मे

(शेषांश पृष्ठ २८२ पर)

स्वास्थ्यका अष्टम साधन — मनःस्वास्थ्य

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥

—कठोपनिषत्

सजीव सृष्टि आत्मा, मन और पचमहाभूतात्मक शरीर तीनो से बनती है। इनमे आत्मा निर्विकार है और मन तथा शरीर सविकार होते है। मनुष्य सजीव सृष्टि का ही एक अङ्ग है। इसलिए मनुष्यो मे उत्पन्न होने वाले रोगो या विकारो के शारीरिक और मानसिक करके दो विभाग किए जाते हैं। शारीरिक को 'व्याधि' और मानसिक विकार को 'आधि' (पुस्याधिर्मानसी व्यथा-अमरकोष) कहते है। वस्तुत. स्वस्थ मनुष्य वह है जिसके शरीर और मन दोनो स्वस्थ हैं। मन अस्वस्थ होने पर शरीर अस्वस्थ होता है और शरीर अस्वस्थ होने पर मन अस्वस्थ होता है। इसलिए शरीर स्वास्थ्य के साथ-साथ मन. स्वास्थ्य के बारे मे आवश्यक जानकारी यहाँ दी जा रही है।

विशेष—मानसिक आरोग्य मुख्यतया मन.स्वास्थ्य रक्षण से सम्बन्ध रखता है। फिर भी इसका सम्यक आकलन होने के लिए मनोविज्ञान (Psychology) और मन. चिकित्सा (Psychiatry) जैसे मन. सम्बन्धित शास्त्रो की जानकारी के अतिरिक्त जीवविज्ञान (Biology), व्याधि विज्ञान, शिक्षा, बालविज्ञान और समाज विज्ञान (Sociology) इत्यादि शास्त्रो की जानकारी की आवश्यकता होती है। इससे मानसिक विकार कैसे उत्पन्न होते है, उनका प्रतिबन्धन कैसे किया जा सकता है इसका ज्ञान होकर वैयक्तिक तथा सामाजिक मन. स्वास्थ्य बढाने में सहायता होती है। आजकल की चिन्ताजनक और जटिल परिस्थितियो के कारण मनोविकार तथा मन शारीरिक विकार (Psychosomatic) बढ़ने लगे है (और भविष्य मे और भी बढ़ेंगे) मानसिक आरोग्य और मानसिक विकार का विषय बहुत जटिल, विस्तृत और विशालकाय है। जिसका समावेश इस विशेषांक मे हो पाना सम्भव नही है। अत. यहा केवल मानसिक आरोग्य सम्बन्धी कुछ तथ्यो पर ही विचार कर रहे है। —विशेष सम्पादक

स्वस्थ मन के लक्षण

मानवी समाज यद्यपि एक है तथापि प्रत्येक मनुष्य कुलवृत्त, शारीरिक, आर्थिक और पारिवारिक स्थिति, सामाजिक तथा व्यावसायिक परिस्थिति, शिक्षण इत्यादि बातो मे प्रत्येक दूसरे मनुष्य से भिन्न होता है। इसलिये मानवीय समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए लागू किया जा सके इस प्रकार का मन. स्वास्थ्य का कोई एक निश्चित लक्षण समूह या मापदण्ड नही हो सकता। एक व्यक्ति मे जो लक्षण स्वास्थ्यदर्शक रहा वह दूसरे मे अस्वास्थ्यदर्शक हो सकता है। इसलिए मन के स्वास्थ्यास्वास्थ्य का विवेचन करते समय उपर्युक्त कुलवृत्तादि बातो का विचार करने की आवश्यकता होती है। सक्षेप मे मन स्वास्थ्य सापेक्ष (relative) है निरपेक्ष (Absolute) नही। फिर भी व्यावहारिक दृष्टया निम्न लक्षण मन स्वास्थ्य के निदर्शक मान सकते है—

(१) शरीर स्वस्थ होने पर जैसे उसके कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय एकैकश. और सबश अच्छी तरह और मिल-जुल करके काम करते हैं और शरीर को शारीरिक कर्म करने

मे किसी प्रकार का कष्ट नही होता वैसे मन स्वस्थ होने पर उसके विविध सघटक आपस मे मिलकर कार्य करते है और सब मानसिक कर्म भीतर सघर्ष पैदा न होकर सफलता से सुख से और प्रसन्नता से होते हैं।

(२) मनुष्य केवल व्यक्ति नही समाज भी है। मन स्वस्थ होने पर मनुष्य अपने सामाजिक व्यवहार परिस्थिति परम्परा, रीति-रिवाज इत्यादि के अनुसार बिना बक-बक, झक-झक के अच्छी तरह कर लेता है।

(३) अपनी इच्छाओ और प्रवृत्तियो के प्रतिकूल व्यवहार करने के प्रसग आने पर स्वस्थ मन अपना स्थैर्य नष्ट नही होने देता और खिलाड़ी वृत्ति (Sportmanship) से निबाह लेता है।

(४) जैसे स्वस्थ शरीर शारीरिक कार्य करने पर अधिक स्वस्थ होता है अर्थात् उसका स्वास्थ्य बढ़ता है वैसे स्वस्थ मन मानसिक कार्य करने पर अधिक स्वस्थ होता है अर्थात् शरीर के समान मन भी अवसर आने पर प्रगतिशील होता है। इसके विपरीत जैसे अस्वस्थ शरीर कष्ट करने पर अधिक अस्वस्थ होता है वैसे अस्वस्थ मन अधिक मानसिक कार्य करने के अवसर प्राप्त होने पर अधिक अस्वस्थ होता है।

मानसिक विकारो का प्रतिबन्धन

शारीरिक रोगो के समान मानसिक रोगो मे भी प्रतिबन्धन महत्व का होता है। यह कार्य मनुष्यो में मानसिक रोग उत्पन्न ही न हो पावे, अगर कही दिखाई दे तो बढने न पावे इस दृष्टि से जहाँ आवश्यक हो वहाँ प्रजोत्पादन, बच्चो का पालन-पोषण, शिक्षा, पारिवारिक रहन-सहन, सामाजिक परिस्थिति इत्यादि बातो पर ध्यान देने से साफ हो सकता है। मानसिक स्वास्थ्य के लिए निम्न बातो पर ध्यान रखना चाहिए—

(१) वंश विच्छेदन—शारीरिक रोगो के समान अनेक मानसिक रोग स्त्री-पुरुषो से प्रजा मे संक्रात होते हैं। अत ऐसे मनुष्यो का वंश आगे बढना नही चाहिए। यह कार्य निषिद्ध प्रजननिकी मे वर्णित साधनो (पृथक्करण, वन्ध्याकरण, गमनिरोधन, विवाह का वैध निषेध, गर्भ पातन आदि) से हो सकता है। इसमे अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां हैं तथा जनसमाज भी इसके लिए अभी पूर्णतया तैयार नही हैं। इसलिए यह कार्य जैसा होना चाहिए वैसा नही हो पा रहा है।

(२) शरीर स्वास्थ्य रक्षण—शरीर स्वस्थ हो तो मन स्वस्थ हो सकता है। अनेक मानसिक विकार शरीर हमेशा बीमार रहने से हुआ करते हैं। आख, कान, हृदय इत्यादि अगो के रोग या दोष नाड़ी सस्थान को बराबर प्रकुपित किया करते हैं जिसके कारण मन बेचैन हो जाता है। वैसे ही अत्यधिक थकावट से मन बेचैन रहता है। इसलिए शरीर मे कही भी रोग दुर्बलता, दोष हो तो उनको दूर करने का तथा अत्यधिक थकावट पैदा न हो इस प्रकार का जीवनक्रम रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

(३) बाल परिचर्या—बचपन मे मन, मस्तिष्क अविकसित होते हैं। यदि उस अवस्था में बालको के मन मे जरा-जरा सी बातो मे सघर्ष पैदा होता रहे तो उसका परिणाम उनके मन पर हुए बिना नही रह सकता। अतः बच्चो के पालन-पोषण, शिक्षा मे इस बात पर ध्यान दिया जाय। प्रारम्भ मे बच्चो को प्यार करना बहुत जरूरी है, बिना उसके उनका मन स्थिर और शान्त नही हो सकता परन्तु यह भी मर्यादातीत न हो तथा यकायक प्यार का रूपान्तर कड़ाई और ताड़न में न हो। बच्चे यकायक परिवर्तन को बरदाश्त नही कर सकते। उनके मन मस्तिष्क पर उससे चोट पहुचती है और उससे उत्तर काल मे अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। सक्षेप में बच्चो का शिक्षण और अनुशासन प्रेम, आश्वासन, प्रोत्साहन, सहानुभूति इत्यादि के द्वारा धीरे-धीरे करना चाहिए।

(४) सद्व्यवहार—प्रत्येक मनुष्य का मनोविकास उसकी प्रकृति परिस्थिति के अनुरूप स्वतन्त्रतया हुआ करता है। प्रत्येक मनुष्य व्यक्तित्व (Individuality) या पुरुषत्व (Personality) मे भिन्न होता है। जब समाज, मित्र, शिक्षक, रिश्तेदार इत्यादि के द्वारा व्यक्तित्व के विकास मे बाधायें खड़ी होती हैं तब मनुष्य के मन में सघर्ष पैदा होता है जिसके कारण मन अस्वस्थ हो सकता है। इसलिए दूसरो के साथ व्यवहार करते समय उदारता से और सहिष्णुता से काम लेना चाहिए।

(५) मर्यादारक्षण—प्रत्येक मनुष्य की बुद्धि शक्ति की स्वाभाविक या जन्मजात मर्यादा होती है। कितना भी प्रयत्न क्यो न किया जाय वह उसके आगे बढ नहीं सकता और यदि प्रयत्न किया जाय तो उससे उसके मन पर आघात होता है। इसलिए बच्चो से जो अपेक्षा की जाय वह उनकी नैसर्गिक शक्ति का विचार करके की जाय। पडौसी का लडका दर्जे मे पहला रहा। उसके साथ टक्कर देने के लिए अपने लडके के पीछे पडना, यदि उसमे वह नैसर्गिक क्षमता न हो तो, निहायत बेवकूफी है। इस प्रकार का विचार न करके अनेको ने अपने बच्चो का जीवन खराब कर दिया है।

(६) क्षतिपूर्ति—इस ससार मे मनुष्यो को थोडी बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त होने से उसका जीवन सुखकर, आनन्दमय और उसका मन प्रसन्न होता है। परन्तु प्रत्येक को अपने व्यवसाय मे प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए आवश्यक बुद्धि नही होती। ऐसी अवस्था मे उस क्षति की पूर्ति अन्य प्रकार से करने की शिक्षा या मार्ग दर्शन करना चाहिए। विद्यालयो मे प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए विद्यार्जन मे उच्च स्थान प्राप्त करना यही मुख्य उपाय है। रही विद्यार्थी के लिए विद्यालयो मे प्रतिष्ठा तब प्राप्त हो जाती है जब वह खेलकूद इत्यादि अन्य कार्यों में दक्षता दिखाकर अपनी क्षति की पूर्ति (Compensation) कर लेता है।

(७) समागीकरण—मनुष्य अपनी अनैतिक, पाशविक, स्वार्थी, आक्रामक, लैंगिक प्रवृत्तियो या भावो को जनसमाज मे खुल्लम-खुल्ला मातृसम (Maternal) प्रतिष्ठा के साथ प्रकट नही कर सकता। यदि ऐसी प्रवृत्तियो का मनुष्य रहा और उसको अपने भावो को प्रकट करने का अवसर न मिला तो ये भाव उसको सताते हैं और वह पागल-सा हो सकता है। ऐसे भावों को दूसरे जनसम्मत सन्मार्गों या उदात्त व्यवसायों की ओर लगाना ही मन का स्वास्थ्य बनाये रखने का उपाय हैं। इसको सन्मार्गीकरण (Sublimation) या उदात्तीकरण कहते हैं। जैसे किसी अविवाहित स्त्री मे वात्सल्य के कारण बच्चो की ओर अधिक आकर्षण रहा हो तो उसको अनाथालय मे किंवा बालमन्दिर मे काम करने से अपने भावो को प्रदर्शित करने का सुअवसर मिलकर उसका मन प्रसन्न और शान्त होता है। वैसे ही हिंसक मनुष्य से कसाई का व्यवसाय करने से और मारपीट करने की प्रवृत्ति के व्यक्ति को जमीन खोदना, पत्थर तोड़ना, लकड़ी चीरना, बज्रमुष्टि (Boxing), मुष्टियुद्ध, मल्लयुद्ध, शिकार करना आदि व्यवसाय करने से मन को शान्ति मिलती है।

(८) बालबच्चो के लैंगिक व्यवहारो की नैतिकता के सम्बन्ध मे जो हमारा पुराना दृष्टिकोण रहा उसमे मनोविश्लेषण से प्राप्त नवीन ज्ञान के आधार पर परिवर्तन करने का समय आ गया है। फ्राइड ने मनोविश्लेषण का गहरा अभ्यास करके यह बतलाया है कि मनुष्यो का अचेतन (Unconscious) मन जबरदस्त विषयासगी है, विषयाशक्ति मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है और वही उसकी जीवन शक्ति (Life energy) का मूल है। उसी के लिए उसमे लम्पटता (Libido) शब्द का प्रयोग किया है। छोटे बच्चो में चेतन मन का प्रभाव अचेतन मन पर बहुत कम होता है। इसलिए अचेतन मन की विषयाशक्ति बहुत रहती है। परन्तु वह अपने तक ही सीमित रहती है। इसलिए बालक गुद जननेन्द्रिय इत्यादि अपने ही अङ्गो की ओर आकर्षित होता है। इसको आत्मकामुक्त (Auto erotic) अवस्था कहते हैं। धीरे धीरे चेतन मन का नियन्त्रण अचेतन के लैंगिक व्यवहारो पर होने लगता है। यह मध्यम अवस्था होती है। इसको सुप्तावधि Latent period) कहते है। उसके पश्चात यौवनावस्था मे चेतन मन का पूर्ण नियन्त्रण अचेतन पर होकर जनसमाज की दृष्टि से लैंगिक व्यवहार मे पूर्ण शिष्टता आ जाती है। इस प्रकार लिंग प्रवृति (Sex instinct) का विकास मनुष्यो मे होता है। जिनकी लिंग प्रवृत्ति इन अवस्थाओ मे यथोचित विकसित होती है उनके व्यक्तित्व या पुरुषत्व का भी उत्तम विकास होता है जिससे उनके लैंगिक व्यवहार में कोई अशिष्टता नहीं दिखाई देती। परन्तु छोटे बच्चो तथा जिनमें विकास ठीक नही हुआ उन विवर्धमान नवयुवको में लैंगिक दृष्टया कुछ अशिष्टता उत्पन्न होती है। उसको देखकर आश्चर्यचकित होने का, उसको अनैतिक समझने का या अनैतिक समझ कर उनके साथ कडा व्यवहार करने का कोई कारण नही

है। यह उनकी सहज प्रवृति या बालस्वभाव है। इसलिये उनको समझा बुझाकर सहानुभूति पूर्वक व्यवहार कर सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये। कड़ाई या घृणा के साथ उनसे व्यवहार करने पर उनमे सुधार न होकर उनका भविष्य और भी खराब हो जाता है।

(६) प्रौढावस्था मे दिखाई देने वाले अनेक मानसिक विकारो का प्रारम्भ प्राय वचपन मे हुआ करता है। यदि वचपन मे बच्चो मे कोई मानसिक-विनिमता, विक्षिप्तता, विषमता दिखाई दे तो यदि अपने से हो सके, तो माता-पिता या पालक उसको ठीक करने का प्रयत्न करें। यदि अपने वस की बात न हो तो मनोवैज्ञानिक, मन चिकित्सक या उस विषय के किसी विशेषज्ञ को दिखाने या बालमार्ग दर्शन वैद्यानिकी (Child guidance clinic) मे ले जावें। वचपन मे ऐसा ही होता है, इस प्रकार समझकर उसकी ओर दुर्लक्ष न करें। इससे अनेको में मानसिक विकार बढते हैं और उनकी ओर ध्यान देकर उपाय करने से वे नष्ट होते हैं।

आगे मन को स्वास्थ्य रखने वाले सदाचारों का विवरण देखिये और अपने मन को स्वस्थ बनाइऐ।

(पृष्ठ २७८ का शेषांश)

लीन व्यक्ति वह कितना ही साधन सम्पन्न हो, दिनो दिन क्षीण होता जाता है। यह स्पष्ट लिखा है कि—

अति व्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तरा.।
क्षीयन्ते धातवः सर्वे तत शुष्यति मानव·॥

—माधव निदान

अर्थात् अति मैथुन करने से वीर्य क्षीण हो जाता है उसके पश्चात् अन्यान्य धातु भी क्षीण होने लगती है। और मनुष्य सूख जाता है। और भी—

व्यवाय शोषी शुक्रस्य क्षयलिंगैरुपद्रुतः।
पाण्डु देहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातव॥

अर्थात् अति मैथुन करने से जो पुरुष सूख जाता है वह धातु–क्षय के उपद्रवो से युक्त होता है। शरीर पीला (पाण्डु) वर्ण का हो जाता है। लिंग और अण्डकोषो मे पीडा बनी रहती है। मैथुन शक्ति जाती रहती है। यहाँ तक धातु क्षीण होने से मैथुन मे धातु का स्राव नही होता। इत्यादि अनेक विकार उत्पन्न हो जाते है।

अति मैथुन का यहाँ तक कुप्रभाव देखा जाता है वह न दिन देखता है न रात, किसी भी समय की उपेक्षा नही करता, दिन रातमैथुन की इच्छा किया करता है स्वप्न मे भी उसे जहा–तहा नारी ही नारी दिखाई देती है। ऐसे कामी पुरुषो की अन्त मे बुरी दशा होती है। अत अपने स्वास्थ्य की रक्षा को सर्वोपरि लक्ष्य में रखकर ही मैथुन का उपयोग करना चाहिए।

पूर्व शास्त्रकार तो मैथुन को मात्र सन्तान हेतु ही उपयोग करने को कहते हैं। किंतु मानव ने इसमे रति सुख की आनन्द अनुभूति प्राप्त कर यह जोड दिया कि मैथुन एक आनन्द के लिए भी उपयोग किया जा सकता है। यहाँ तक कह डाला कि इसमे जो आनन्द प्राप्त होता है उससे बढकर सुख ससार मे दूसरा नही। यही कारण है कि शराबी शराब पीता जाता है और अपने को इतना भूल जाता है कि वह उससे बढकर सुख कही नही देखता चाहे वह नाली मे गिरे या किसी भी गन्दी जगह पर। इसी प्रकार की दशा कामान्ध व्यक्ति की होती है।

शास्त्रकारो ने किसी ने वर्ष मे १ बार, तो किसी ने महीने मे १ बार, तो किसी ने १५ दिन मे, किसी ने ७ दिन मे, तो किसी ने ३ दिन मे, तो किसी ने नित्य मैथुन करने का निर्देश दिया है। ये सब अपने अपने अनुकूल परिस्थिति पर अवलम्बित है। न कोई जीवन भर नित्य एक बार कर सकता है न नियमित ३ दिन में, न १५ दिन मे, न महीने मे, न वर्ष मे ही करता है। जब जैसा उसे मौका मिलता है उपयोग मे लाता है।

स्वास्थ्य को बनाये रखने को दृष्टि मे रखकर जो यथासम्भव कम से कम मैथुन करता है वह जीवन मे सुखी और स्वस्थ रहता है।

—श्री वैद्य मुन्नालाल गुप्त बी० आई० एम०
५८/६८, नीलवाली गली, कानपुर।

आदरणीय श्री दीक्षित जी का परिचय इसी विशेषाक के पृष्ठ ५४ पर प्रकाशित हो चुका है। आपसे 'धन्वन्तरि' के पाठक सुपरिचित है। आप द्वारा प्रेषित 'रोग का उद्गम स्थान मन' शीर्षक लेख की प्रेरणा से ही 'मन. स्वास्थ्य' पर पृथक प्रकरण प्रकाशित करना मैंने उचित समझा है। आशा है पाठकगण मन को निर्मल बनाकर अपने स्वास्थ्य को अधिक समुन्नत कर सकेगे। —**विशेष सम्पादक**

रोगो से बचने के लिए यजुर्वेद में मत्रो मे ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हे प्रभु ! मेरा मन कल्याणकारी विचारो वाला होवे। गीता में भी भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि हे अर्जुन मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। मन शरीर रूपी रथ का सारथी है। अत शरीर को सही या गलत रास्ते चलाना मन का कार्य है। महात्मा हैनीमेन साहब ने लिखा है कि शरीर मन का स्थूल रूप है जैसा होगा मन वैसा होगा तन। स्वस्थ मन वाला व्यक्ति ही पूर्ण स्वस्थ माना जा सकता है।

मन को भी मनोवैज्ञानिको ने दो प्रकार का बताया है- (१) स्थूल मन (२) सूक्ष्म मन।

स्थूल मन—यह मन वह है कि जिसके विचारो का हमें स्मरण रहता है और उसके आदेशानुसार हम क्रियायें करते है। इस प्रकार स्थूल मन का प्रभाव हमारे स्थूल शरीर पर अस्थाई रूप से बराबर होता है और उसी के अनुसार हमारी दैनिक क्रियायें होती हैं। इसका प्रभाव हमारे सूक्ष्म शरीर पर (जिसे योग की भाषा में प्राणमय कोष कहते है) नहीं होता है।

सूक्ष्म मन—यह स्थूल मन मे होने वाले अच्छे या बुरे विचारो को ग्रहण करता है। अच्छे या बुरे विचार को भूल जाने पर ही उनका अस्तित्व नष्ट नही होता है। वह सूक्ष्म मन पर अपना प्रभाव रखते हैं और सूक्ष्म मन सूक्ष्म जीवनी शक्ति को प्रभावित करता है और उसीके अनुसार जीवनी शक्ति का अच्छा या बुरा प्रभाव हमारे शरीर पर होता है। यदि हमारे विचार पवित्र उत्साह-वर्धक, स्वस्थ्यप्रद होगें तो हम निरोग स्वास्थ्य रहेगे। वेद मे लिखा है कि "शिव सकल्पमस्तु" हमारे सकल्प कल्याणकारी होवें।

मन की दो धारायें होती हैं, प्रथम धारा कल्याण-कारी होती है और उसके गुण हैं दया, प्रेम, सत्य, सन्तोष, परोपकार, साहस। यह गुण हमें स्वास्थ्य दीर्घायु प्रदान करने वाले हैं। दूसरी धारा अहितकर है जिसके गुण कर्म काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, ईर्षा, चिन्ता, घृणा भय, आदि हैं। यह मनो स्वास्थ्य के लिए हानि-कारक हैं।

होमियोपैथिक के आविष्कारक , महात्मा हैनीमेन सद्दाब ने पुरानी बीमारियो का मूल कारण सोरा को बताया है। यहा आप प्रश्न करेगे कि सोरा क्या है ? इसका सछिप्त उत्तर यही है कि मन की विकृत अवस्था (कुमनन कुचिन्तन) का ही नाम सोरा है। उससे होने वाली जलन चर्म रोग या अन्य प्रकार के उपसर्ग तो सोरा के फल मात्र हैं।

आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने भी मन की विकृत अवस्था के कारण वहुत से शारीरिक और मानसिक रोगो का होना वताया है। प्राय. हम अपने चिकित्सा काल मे इस प्रकार के वहुत से रोगी देखते हैं कि जिनके रोग की जड़ मन मे होती है और जव तक उस जड़ को नही उखाड़ा जाता तव तक रोगी का पूर्ण आरोग्य होना-असम्भव है। तेज औषधियो से रोग और रोगी को दवा देना दूसरी बात है। वह स्वस्थ (स्व+स्थ) नहीं हुआ है। मानसिक 'रोगो का तो मूल उद्गम स्थान मन है ही पर शारीरिक रोगो का भी अधिकांश कारण मन की अस्वस्थता ही है।

मैं इस प्रकार के अनेको रोगियो को जानता हू जिन के रोग का कारण मानसिक तनाव ही है। जो युवक अपने दुश्मन से वदला लेने के लिये कई रातो तक सोचता है और अन्त मे स्वय अनिद्रा, डिसेन्ट्री, डायरिया, अजीर्ण, स्नायु शूल का रोगी बन जाता है। पुत्रहारा जननी, विधवा पत्नि, पुत्र शोकातुर पिता, हजारो उन्माद, हृदय रोग एव निम्न रक्तचाप के रोगी मिलेंगे। मेरे पास इस प्रकार के उच्चकोटि के व्यापारी वरावर ही आते है जिनको रक्तचाप या डायविटिज (मधुमेह) रोग होता है। यह सभी रोगी व्यापार के विषय मे वरावर सोचने के कारण रोगी हुए हैं और इनको दवा के अलावा मानसिक शान्ति की भी आवश्यकता है।

यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि वच्चो की हकलाहट का मूल कारण मानसिक ही है और इस रोग के लिये उत्तरदायी वह माता-पिता हैं जो मामूली बातो पर बच्चो को डांटते हैं, धमकाते हैं और उनकी अवहेलना करते हैं। इन सब कारणो से वच्चे के अन्तरमन पर भय की छाप पड़ जाती है और वच्चा हकलाने लग जाता है। यह मनोवैज्ञानिको की खोज है।

प्रायः सौ मे से अस्सी रोगी जोकि अपने को नपुंसक समझे हुए है वह मानसिक विकारो के कारण ही रोगी है। एक होमियोपैथिक चिकित्सक होने के कारण जब मैं रोगी को देखता हू और नियमानुसार रोगी का पूर्व इतिहास, रोग का कारण, मानसिक लक्षणो का सग्रह करने के लिये रोगी से उसके सभी विवरण सुनता हूँ तो इसी निर्णय पर पहुँचा हू कि अधिकाश रोगी भय, लज्जा, पत्नि द्वारा तिरस्कार, सकोच के कारण ही अपने आपको नपुंसक मान बैठे हैं। इस प्रकार के रोगी प्राय आदर्शवादी, शिक्षित, उच्च इज्जतदार या समाज में सभ्य और सदाचारी ही अधिकतर होते है। इस प्रकार के रोगियो की चिकित्सा दवा की अपेक्षा साइक्लोजिक होना अनिवार्य है। मैंने अनेको रोगियो को उपदेश के साथ-साथ सिर्फ सुगर आफ मिल्क की खुराकें देकर आरोग्य किया है जिन्हे सिर्फ नपुंसकता का वहम मात्र था।

कामेच्छा के दमन के कारण, पुत्र प्राप्ति इच्छा से निराश, पुत्रहारा जननेन्द्रियो को हिस्टेरिया, वेहोशी को सभी चिकित्सक जानते हैं।

वच्चो को भय दिखाने पर आक्षेप होते हुए बहुत बार देखा गया है। एक ४ वर्षीय वच्ची को देखने गया। वह अपनी माँ की गोद मे वैठकर खरगोश की तरह भयभीत दृष्टि से मेरी ओर देख रही थी। उसकी माँ ने वताया कि डाक्टर साहव यह कल जुलूस देखकर आई। उसके वाद से इसे वमन होने लग गई। जो भी कुछ खाती है वमन कर देती है। इस वच्ची ने जुलूस की इतनी बड़ी भीड़ और हजारो अजनवी चेहरे कभी नहीं देखे थे। इस भीड के भय के प्रभाव से उसके भावनात्मक केन्द्र ने ऐसी तेज गति से स्नायविक तरगे भेजीं जिन्होंने उसके आमाशय की मासपेशियो को निर्गमन मार्ग को तग वना दिया, परिणामस्वरूप खाना पचकर उसकी आंतो मे पहुंच नही पाता था और मुँह के रास्ते वाहर निकल जाता था। इसे हम आमाशय और आँतो का आक्षेप या स्नायविक उत्तेजना भी कह सकते हैं।

मैंने उसको एक सप्ताह घर मे ही रहने का सुझाव दिया और धीरे धीरे मोहल्ले के परिचित बच्चो के साथ निकटवर्ती स्कूल जाने को कहा एव साथ ही ६-७ खुराक दवा दे दी। वह बच्ची पूर्ण आरोग्य है।

इस प्रकार की घटना सिर्फ बच्चो मे ही नही वयस्को मे भी होती है। अठारह वर्षीय विमला देवी को ७ दिन से वमन, दस्त, पेट मे दर्द, मरोड उठकर दस्त हो रहे थे। उसे यह तकलीफ दाँतो के डाक्टर के यहाँ से आने के १ घण्टा बाद से ही आरम्भ हो गई।

दाँतो के डाक्टर ने इस सुन्दर और सुशील लडकी से कहा कि तुम्हें अपने सारे दाँत निकलवाकर उनकी जगह नकली दाँत लगवाने होगे। परिणामस्वरूप उसके भावनात्मक केन्द्र मे एक तूफान सा उठ खडा हुआ। इस केन्द्र से उठने वाली स्नायविक तरगो के कारण उसे शीघ्र ही वमन होने लगी। पेट मे सख्त मरोड उठने लगे और दस्त लगने लगे। जब मैंने बच्ची के पिता को बताया कि रोग का कारण आमाशय मे नहीं है बल्कि उसके दिमाग मे है। यह सुनकर उनको बहुत आश्चर्य हुआ।

एक व्यक्ति को अपने प्रिय मित्र की मृत्यु के बाद चिन्ता से सर दर्द हो गया। प्राय. गावो मे कालेरा होने के समय जिनका भावनात्मक केन्द्र दुर्बल होता है उनको भय के कारण कालेरा हो जाता है।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे इस प्रकार के बहुत से जटिल रोगो के उदाहरण मिलते हैं। इसीलिये इस प्रकार के मनोभावो के कारण पैदा होने वाले रोगो को अग्रेजी मे साइकोसोमेटिक सज्ञा दी गई है। मन मे उठने वाली तरगें भावनात्मक तनाव पैदा करके शरीर में जटिल और प्राणघातक रोगों तक को पैदा कर देती हैं। रोगियों के रोग दवा से सिर्फ दबा दिये जा सकते हैं, पूर्ण आरोग्य नही होते हैं। पूर्ण आरोग्य करने के लिये आपको इनके मन का अध्ययन करना होगा और विचारो में परिवर्तन लाना होगा। अत प्रत्येक चिकित्सक को चिकित्सा विज्ञान के साथ मनोविज्ञान की जानकारी आवश्यक है। इस पेपर की महगाई के जमाने मे लेख को न बढाकर सक्षेप मे कुछ मनोविज्ञान के अनुभव लिखकर समाप्त करेंगे—

एक्जिमा का रोग मानसिक खुजलाहट (ईर्षा–डाह घृणा आदि) का शारीरिक खुजलाहट मे परिणत होना है।

— प्रो० लालजी राम शुक्ल

जिन लोगो को वक्षस्थल और मूत्राशय मे कैंसर रोग हुआ था उनके सम्बन्ध मे अन्वेषण करने से पता चला है कि उन्हें मानसिक चिन्ता और व्याकुलता थी।

—डा० स्नो

आत्म–भर्त्सना मन का क्षय है, यही क्षय शारीरिक क्षय का रूप धारण कर लेता है।

—डा० लिण्डल हूर (प्रा. चि.)

दमा के रोगी का आन्तरिक मन किसी कारणवश मृत्यु का आवाहन करता है। जब तक उसके आन्तरिक मन की सफाई नही होती उसका रोग नही जाता। जब मन को अनेक प्रकार की चिन्तायें त्रास देती हैं तो मनुष्य ऊपर के मन से जीने का इच्छुक रहता है पर आन्तरिक मन से तो मृत्यु की कामना ही करता है। ऐसे व्यक्तियो को दमा या अन्य कोई जटिल रोग पकड लेता है।

—डा० पाल शिल्डर

हिस्टेरिया रोग मे आशक्ति और कामवासना का दमन ही अधिक स्थानो मे पाया जाता है। —डा० फ्रायड

उन्माद के ९८% रोगी सैक्स की विकृत भावना के कारण होते हैं।

—आचार्य रजनीश (सभोग से समाधि की ओर)

हमारे लिखने का अभिप्राय यह नही है कि उक्त सभी रोगो का कारण मानसिक ही है। बात ऐसी नही है। अन्य कारण भी हो सकते हैं। लेकिन उनमे मानसिक कारण भी एक है। मनोवैज्ञानिको की धारणा तो यह है कि मन रोगी हुये बिना तन रोगी हो ही नही सकता है। एक बौद्ध भिक्षु हमारे पास प्राय आते हैं। वह बहुत ही उच्च कोटि के साधक भी हैं। उनका कहना है कि वह किसी भी प्रकार के सक्रामक रोग का भय नहीं करते। रोगी की सेवा करते है, उनको रोग नहीं हो सकता है।
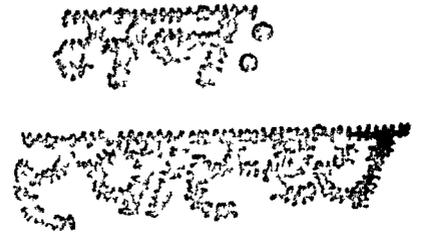
मनुष्य जीवन मे जैसे दिनचर्या, रात्रिचर्या आदि का आरोग्य रक्षा के लिए महत्व है, उसी प्रकार मन की शुद्धि और मानसिक स्वास्थ्य के लिए सदाचार और धर्माचरण की भी वडी महिमा और आवश्यकता है। मन शुद्ध होने से अन्य सब इन्द्रिया विमल रहती हैं, अपने काम मे तत्पर रहती है जिससे आरोग्यता वनी रहती है। सदाचार के द्वारा आत्मा पर अज्ञान, मोह आदि का पर्दा नही पडने पाता और मनुष्य अपने कर्त्तव्य में जागरूक रहता है। मन स्वास्थ्य के लिये निम्न सदाचारो का पालन करना हितकर है —

धार्मिक आचार

सुखार्था सर्वभूताना मताः सर्वा प्रवृत्तयः।
सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत्॥

इस ससार मे कोई मनुष्य ऐसा नही है जो सुख न चाहता हो, अर्थात् मनुष्य की प्रवृति ही सुख के लिऐ है। कोई ऐहिक सुख चाहता है और उसीके लिए बराबर प्रयत्न करता है। वह हर तरह से अपने आराम मे कमी पडने देना नही चाहता। कोई ऐहिक सुखो के लिए प्रयत्न करता हुआ भी पारमार्थिक सुख के लिये प्रयत्नशील रहता है। इन सबका अन्तिम लक्ष्य मोक्ष ही है। मोक्ष के लिए मनुष्य मात्र को धर्मपरायण होना चाहिए। धर्मपरायण होने के लिए हमे—निम्न पापकर्मो को छोड देना चाहिये—

हिंसा करना अर्थात् किसी को मारना, चोरी करना, निषिद्ध कामवासना, गुरु पत्नी आदि गमन, चुगली करना, कठोर वचन वोलना, असवद्ध भाषण, भूठ वोलना, किसी को दु ख पहुँचाने या मारने की वात सोचना, मत्सर और विपरीत अर्थ समझना ये दश पाप कर्म हैं। इन्हे छोड देना चाहिये और अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शुद्धाचार, ब्रह्म-चर्य, लोभत्याग, जीवमात्र का भला चाहना, चुगली न करना, कठोर वचन न वोलना, और किसी विषय के तत्व को समझकर प्रचार करना, उसका उल्टा अर्थ न करना ये धर्म कार्य हैं—इनका आचरण करना चाहिये। यद्यपि उपरोक्त दसो धर्म श्रेष्ठ और मान्य है, तथापि सत्य की महिमा सवसे वडी हुई है—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मन सत्येनशुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यो भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥

अर्थात् शरीर की शुद्धि तो जल से हो जाती है परन्तु मन की शुद्धि सत्य से ही होती है। मन शुद्ध रखने के लिए सत्याचरण की ही आवश्यकता है। विद्या की शुद्धि तप से होती है और मनुष्यों की बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है। मन का शरीर के साथ वहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। इसलिए मन को सयम द्वारा सीमावद्ध रखना चाहिए। मन की शुद्धता पर शारीरिक स्वास्थ्य निर्भर रहता है। मानसिक सयम न होने से मनुष्य अल्पायु होता है। अत निकृष्ट मनोवृत्तियो से मन की रक्षा करते रहना चाहिये। भय, क्रोध, शोक और निराशा भी मानसिक विकार हैं। ये सदाचार विरोधी और स्वास्थ्य के लिए घातक है। वच्चो को कभी भयभीत नही करना चाहिये। क्रोध से हृदय और मस्तिष्क क्षुब्ध होता है। क्रोध कभी कभी मृत्यु का कारण भी वन जाता है। शोक करने से वायु रोग और उन्माद की उत्पत्ति होती है। निराशा से भी अधीर होना आवश्यक नही है। अत इन विकारो से वचे रहना चाहिये।

जो अपना कल्याण चाहने वाले और मित्र हैं, उनके साथ भक्ति और श्रद्धापूर्वक व्यवहार रखना चाहिये। इसके विपरीत अन्य लोगो से ईर्ष्या द्वेष न रखते हुए दूर से ही व्यवहार रखे। जो लोग रोजी से हीन हैं उनके साथ सहानुभूति रखिये। जो लोग शोक से पीडित हैं उनकी यथाशक्ति सहायता कीजिए तथा जीवमात्र को न सताइये।

देवता, गाय, ब्राह्मण, वृद्धजन, वैद्य प्रजापालक/राजा, लोकमान्यजन और अतिथि पर सदा पूज्य दृष्टि रखें,

उनकी सेवा और अर्चना करें। अपने बर्ताव को सदा उपकार प्रधान बनाये रखें, अर्थात् जहाँ तक बन सके दूसरो का उपकार करते रहे। यहा तक कि यदि अपना कोई शत्रु हो और वह हमारी बुराई और अपकार करने मे ही लगा रहता हो तो भी आप मौका पडने पर उसका उपकार ही करें। इससे उसके मन की बुरी भावनायें नष्ट होगी और वह आपके उपकारो से नतमस्तक हो आपका अनुगामी हो जायगा।

सम्पत्ति और विपत्ति मे अपने को एक समान रखे। क्योकि चित्त स्थिर रखने वाला धैर्यशाली पुरुष धन्य होता है। किसी मनुष्य मे कोई गुण है तो उसे ग्रहण करना चाहिये। किसी ने अपने गुण के कारण उन्नति की हो तो उससे ईर्ष्या नही करनी चाहिये अपितु वह गुण ग्रहण कर हमे भी उद्योग करना चाहिए।

जिस कार्य से न तो धर्म की सिद्धि होती है, न अर्थ की प्राप्ति और न सदुद्देश्यो की पूर्ति होती है, न कामनाओं की ही सिद्धि होती है, उन्हें आरम्भ कभी नही करना चाहिये।

सामाजिक सदाचार

घर मे माता पिता और गुरु के प्रति भक्तवान और नम्र रहें। क्योकि माता पिता और गुरु देवता के समान पूज्य हैं। कहा है—"मातृदेवो भव, पितृ देवोभव, आचार्य देवोभव"। अपने से जितने बड़े बाबा, चाचा, चाची, मौसा मौसी, फूफा-बुआ, बड़े भाई-भौजाई, बहन-बहनोई आदि हैं-वे सब आप्तजन हैं। अतएव मननीय एव आदरणीय हैं। जिस परिवार मे आप्तजनो का आदर नही होता वे दुखी रहते हैं और उनका परिवार नष्ट हो जाता है। इसी तरह जिस परिवार मे ये प्रसन्न रहते हैं, उस परिवार की सदा वृद्धि होती है। आप्तजनो की तरह ही स्त्रियो का भी समादर होना चाहिए। जैसा किलिखा है-

यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रिया॥

अर्थात् जिस घर मे स्त्रियो का आदर होता है—वे पूजी जाती है, वहा देवताओ का निवास रहता है। परन्तु जिस घर मे स्त्रियो का अनादर होता है, वहा के सब किए कराए कार्य निष्फल जाते हैं।

किसी से मिलने पर पहले आप ही उससे कुशल प्रश्न पूछे। मिलने वाले से हसमुख होकर प्रसन्नचित्त से बोलें। सुशीलतापूर्वक, कोमलता के साथ और हृदय मे करुणा धारण किये हुए मिलने वाले से बातें करे। ससार मे यह इच्छा कभी न करे कि अकेला मैं ही सुखी होऊँ। जो मनुष्य अपने साथ अपने कुटुम्बियो, पड़ौसियो, ग्रामवासियो, प्रान्तवासियो और देशवासियो को सुखी देखना चाहता है वही सच्चा नागरिक है।

किसी से इस बात को प्रकट न करे कि अमुक मेरा शत्रु है अथवा मै अमुक से शत्रुता रखता हू। क्योकि न जाने कब और कौन उससे आपको हानि पहुँचाने का प्रयत्न करे। ससार मे स्वार्थ बहुत प्रबल होता है। स्वार्थ के वश होकर कभी-कभी मित्र शत्रु और शत्रु मित्राचरण करने लग जाते हैं। जैसा कि कहा है—

मित्रं च शत्रु तामेति कस्मिंश्चित्काल विपर्यये।
शत्रुश्च मित्रतामेति स्वार्थोऽति बलवत्तर.॥
कारणान्नियतामेति द्वेश्यो भवति कारणात्।
अर्थार्थी जीव लोकोऽय्य न कश्चित्कस्यचित्प्रिय॥

यदि कहीं अपना अपमान हुआ है, तो जहाँ तहा उसे कहते न फिरे। नही तो उस विषय को लेकर आप पर कभी तानेजनी हो सकती है, उसका दुरुपयोग हो सकता है।

बालो को निष्प्रयोजन कभी न बढावें (जैसाकि आज कल प्राय हिप्पीकट बाल वाले मिल रहे हैं), शिर और दाढी मूछ के बाल तथा नखो को कटवाते रहे। आँख, कान, नाक आदि मल के स्थानो को और हाथ तथा पैरो को सदा साफ रखे। सदा स्नान करें। शरीर को स्वच्छ और सुगन्धित रखें। कपडे साफ और सादे पहनें जिससे अपना वेष सादा और स्वच्छ, सुन्दर रहे। उससे उद्दण्ड भाव और गुण्डई न झलके। जहा तक हो सके मानव मात्र से मधुर वर्ताव करें जिससे वह सन्तुष्ट और प्रसन्न हो सके। लोगो को प्रसन्न रखने की कला मे निपुण होना बहुत बडी कला है।

मार्ग सम्बन्धी सदाचार

रास्ता चलते समय आवश्यकता होने पर छाता लगाकर चलें, जूता पहनकर और छडी लगाकर चलें। चलते समय आगे चार कदम पर दृष्टि रखते हुए चलें।

रात में बहुत आवश्यकता हुए बिना घर से बाहर न जावें। यदि बाहर जाना ही हो तो डण्डा ले ले । शिर पर साफा बाध लें और एक साथी ले लें। रास्ते मे चैत्य स्थान (बौद्ध मन्दिर, अथवा चबूतरा बधे हुए पीपल, हरिशर्करी, पचवरी आदि) पूज्य मनुष्य या पूज्य मनुष्यो के स्मरण स्थान मिलने पर उनके बायें भाग से निकलें। रास्ते में जहा राख का ढेर, चिता भस्म, और अपवित्र कूड़ा करकट पडा हो, उसे भी बचा कर निकलें। बालू और ढेले की जगह होकर न जावें। बलिदान और स्नान की भूमि को भी आक्रमण कर न निकलें। रास्ते में कोई नदी पडे तो उसे विशेष आवश्यकता और निरापद स्थिति हुए बिना तैर कर पार न करें। आशका हो उस पर चढकर भी पार न जावे। जिन वृक्षो के गिरने या टूटने का डर है, उन पर न चढे और न दुष्ट घोडे, हाथी आदि की सवारी पर ही चढकर जावें।

जब छीक, हँसी अथवा जमुहाई आवे तब खुले मुँह इन क्रियाओ को न करें। या तो मुँह के सामने कोई कपडा लगा ले या हाथ का पर्दा कर लें। अकारण ही नाक न खोदते रहे।

देवताधिष्ठित पीपल आदि वृक्ष के नीचे, चौराहे और देव मन्दिर मे, वध स्थान, जगल, खडहर और जन शून्य पर तथा श्मशान मे रात अथवा दिन मे भी न सोवें।

व्यावहारिक-सदाचार

शराब बनाने और बेचने का काम न करें क्योकि यह व्यावहारिक अपराध है और लोगो को नशेबाज बनाने का पाप सिर पर पडता है।

धर्मद्रोही, राष्ट्ररक्षक राजा के द्रोही और देश द्रोही मनुष्यो के पास न बैठें, नीच कुलशील वाले मनुष्य, अनार्य (बदमाश), दुष्ट और चालबाज मनुष्यो की सेवा में न रहे। अपने से बडे और बलशाली व्यक्तियो से झगडा न करें। ऋण, व्याधि, अग्नि और शत्रु को कभी शेष न रहने दें। क्योकि ये फिर बढ़कर कष्ट देते हैं।

बढा हुआ ऋण और पराजित शत्रु फिर बढ कर बहुत दुखदायी होते हैं। आग शेष रहकर फिर बढ कर जलाती है। जठराग्नि सम्बन्धी दोष शेष रहे तो वे भी बढकर वात और कफ स्तम्भ करते है। शीत, कफ, कपकपी को दूर करता है किन्तु रक्त पित्त को बढाता है। व्याधि शेष रहने पर फिर बढती और असाध्य हो जाती है।

बुद्धिमान मनुष्यो का बहुमत द्वारा निश्चित तत्व ही गुण उपदेश के समान सदाचार की कसौटी है। इसलिये कहा जाता है कि सज्जन और बड़े मनुष्य जिस मार्ग से चलने को कहे अथवा स्वय चलें वही मार्ग उचित है।

साधु और सज्जन पुरुष का मन क्रोध मे भी विकार को प्राप्त नही होता, उनका क्रोध क्षण स्थायी होता है। यद्यपि ऐसे पुरुष एकान्त मे रहना ही पसन्द करते हैं तथापि प्रयत्नकर ऐसे सज्जनो का सत्सग अवश्य करें।

ईश्वर पर विश्वास रखते हुए सदा अपना भरोसा रखें। अपने पुरुषार्थ से ही धन, कीर्ति और मान प्राप्त होता है। इस प्रकार सदाचार और दुराचार का निराकरण कर व्यवहार रखें। सदाचार का फल बहुत ऊँचा है और दुराचार का पतन कराने वाला है।

बडो पर भक्ति रखे और अपने से छोटो और अधीनो पर सन्तान के समान स्नेह रखे। कायिक-वाचिक और मानसिक क्रियाओ को सीमा के बाहर न होने दें। उन पर काबू रखें अर्थात् शरीर, वाणी और मन स्वाधीन रखें और उनका दमन करता रहे। प्राणिमात्र पर दया रखें और दानशील होवें। जिससे पराया हित होता हो उसे ही स्वार्थ समझें। इतना सदाचार मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिये काफी है। मनुष्य को यह सदा सोचते रहना चाहिये कि मेरी कैसी बीत रही है, मेरे कौन से काम मेरे और समाज के लिए हितकारी हैं। कौन से काम सशोधन योग्य है। जो इस प्रकार अपने कार्य कलापों पर दृष्टि रखता है वह कभी दुखी नही होता। इन सदाचारो को अपने आचरण मे पूर्ण करने वाला मनुष्य स्थायी आरोग्यता, दीर्घायुष्य ऐश्वर्य और यश प्राप्त करता है—

नक्तं दिवानि मे यान्ति कथ भूतस्य सम्प्रति ।
दुखमाड् न भयत्यव नित्यं शान्तिहितस्मृत ॥
इत्याचार समासेन सम्प्राप्नोति समाचरन ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं यशो लोकाश्च शाश्वतान् ॥

श्री जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव

श्री श्रीवास्तव जी 'धन्वन्तरि' के परम हितैषी एवम् आयुर्वेद के अनन्य भक्त है। आप प्रकाशनार्थ लेख सदैव ही अपनी आत्मीयता से भेजते रहे है जिनसे पाठको को रोचक ज्ञानवर्धक ठोस सामग्री प्राप्त होती है। प्रस्तुत लेख आपके ठोस ज्ञान का प्रतीक है। आप अत्यन्त सकोची है अत अपना परिचय एवम् फोटो भी नही भेजा। आपसे हमे बहुत कुछ आशाये है। भगवान धन्वन्तरि आपको चिरायु करे। —सम्पादक

१—शीत ऋतुचर्या

(अगहन पौष, दिसम्बर जनवरी)

(१) जठराग्नि अधिक तीव्र रहती है।

(२) खाये हुए गुरु पदार्थों का पाचन भी सरलता से हो जाता है।

(३) स्निग्ध लवण तथा अम्लयुक्त मास सेवन करना उत्तम है।

(४) मदिरा का पान करना उत्तम है। जो मदिरा सेवन नही करते वे कस्तूरी एव अष्टवर्ग युक्त दशमूलारिष्ट या मृतसजीवनी सुरा को उचित मात्रा मे सेवन कर सकते हैं। भोजन के बाद लौहासव और कुमार्यासव मिलाकर पी सकते है। अश्वगन्धारिष्ट भी ले सकते हैं।

(५) गोरस, गुड, शकर, तैल, नया चावल, मलाई रबड़ी, आयुर्वेदिक अनेक पाक, अवलेह, उष्ण जल का सेवन करना उत्तम है।

(६) शरीर मे तैल मलवाना, शरीर दबवाना, उबटन लगवाना, शिर मे तैल लगवाना, चारपाई के नीचे सुरक्षित रूप से निर्धूम आग रखना, घाम का सेवन करना, घर मे, या भूमि से नीचे बने कमरे में उष्ण स्थान से रहना उत्तम है।

(७) जहाँ वायु के झोके लगते हो वहाँ रहना हानि कारक है।

(८) हेमन्त ऋतु में रजाई, गद्दा, ऊनी कम्बल, ऊनी शाल, ऊनी अङ्ग-रक्षक, ऊनी कचुकी आदि ऊनी बसनो से शरीर को ढका रखना चाहिये।

(९) शीतल या वात बढाने वाले पदार्थों का सेवन न करें।

(१०) वर्जित तिथियो को छोडकर प्रति रात्रि निरोध का प्रयोग कर स्त्री-प्रसङ्ग किया जा सकता है।

(११) प्रतिदिन स्नान करना, निर्बलो के लिए अनिवार्य नही। या शिर को छोडकर कवोष्ण जल से स्नान करे।

शिशिर ऋतुचर्या

(माघ-फाल्गुन, फरवरी-मार्च)

शिशिरे शीतमधिकं मघ मारुत वर्षजम्।
रौक्ष्य चादानज तस्मात्कार्यः पूर्वाधिकं॥

हेमन्त या शीतऋतु के समान आहार-विहार आचरण इस ऋतु से भी करें।

शिशिर ऋतु में अनेक बार वर्षा भी होती है माघ में ओले भी पड़ सकते है। आधी भी आती है अत निर्वात स्थान मे रह कर उन सबसे बचाव करना चाहिए। उष्ण वसन और असन का अधिक प्रयोग करना चाहिए। इस ऋतु मे निमोनियाँ या वातज रोग पक्षवध आदि शीत लग जाने से हो सकते हैं अत उनका बचाव रखना चाहिये। यह ऋतु माघ-फागुन मे या फरवरी-मार्च मे पडती है। फागुन से अल्प शीतता (गुलाबी जाडा) रह जाता है तदनुसार अपनी दिनचर्या मे कुछ अन्तर कर लेना चाहिए। दिसम्बर, जनवरी, फरवरी ये ३ माह अधिक शीत वाले हैं। इस ऋतु मे अधिक सम्भोग करने की अनुमति आचार्यों ने दी है। उसके साथ ही यह भी कहा है कि—

वाजीकरण नित्य. स्यादिच्छन् काम सुखानि च।

—च. चि. वा. २-१-२२

यत् पूर्व मैथुनात् सेव्य सेव्य यन्मैथुनादनु॥

—च चि वा. २-४-५३

कामसुख चाहने वाले व्यक्ति को प्रतिदिन और प्रसग के पूर्व और पश्चात वाजीकरण या वृपण या पुरुषवर्धक योगो का प्रयोग कर शक्ति सरक्षण करना चाहिये क्योकि यदि स्त्री समागम मे शुक्रक्षय होता रहा तो कभी तो न्यूनता हो ही जायगी। अत जठराग्नि प्रवल होने से इन दोनो ऋतुओं मे बादाम पाक, मूसली पाक, अश्वगन्धा पाक, कामदेव घृत, कामचिन्तामणि, पुष्पधन्वा, कामशक्ति केशरी, लक्ष्मीविलास आदि का सेवन कर काम सुख भोग कर सकते हैं।

३—वसन्त ऋतुचर्या

(चैत्र-वैशाख, अप्रैल-मई)

(१) इस ऋतु मे कफ प्रकोप होता है।

(२) जठराग्नि मन्द होती है।

(३) वमनादि कर्म कर लेने से सञ्चित कफ शमन रहता है।

(४) इस ऋतु मे परिश्रम, व्यायाम, उवटन, कफ निकालने वाली औषधियो का धूम्रपान और नेत्रो में अजन आदि का प्रयोग करना चाहिये।

(५) शरीर पर चन्दन या अगर आदि का लेप करना चाहिये।

(६) जव गेहू का भोजन करें। मधुर, स्निग्ध, अम्ल-पान और दिन मे सोने का निषेध है।

(७) मदिरा का पान करना उचित है।

(८) इस ऋतु मे वटिका, दूर्वा-कुंज, आराम, वाग मे पुष्प विलासो का दर्शन एव शीतल-मन्द-सुगन्धयुक्त पवन सेवन का आनन्द उठाना चाहिए।

(९) स्त्री-प्रसङ्ग, हेमन्त और शिशिर ऋतु की तुलना मे कुछ न्यून करना चाहिये। प्रसग के पूर्व और पश्चात वाजीकरण योगो का सेवन करने वाले युवक प्रति दूसरे दिन या २ वार साप्ताहिक स्त्री प्रसग कर सकते हैं इस ऋतु मे कामोत्तेजना अधिक होती है विवाह की उत्तम ऋतु यही है। जून मास मे विवाह करना अनुचित है जब सम्भोग निषेध मुनियो द्वारा किया गया है। इस ऋतु मे नव विवाहित प्रतिदिन सम्भोग कर सकते हैं। दोपहर के पूर्व और साय काल के पूर्व दिन मे भी एकान्त स्थान में स्त्री प्रसग किया जा सकता है।

(४) ग्रीष्म ऋतुचर्या

(जेठ-अषाढ, जून-जुलाई)

(१) इस ऋतु मे सूर्य अपनी तीक्ष्ण किरण से जगत के स्नेह को खीच लेता है अत तीव्र रूक्षता रहती है।

(२) इस ऋतु मे मधुर एव शीत भोजनपान हितकर है। शकरयुक्त जव गेहूँ के सत्तू घोलकर पीना स्वास्थ्य के लिए उत्तम है। घृत और दूध से युक्त साठी चावल सेवन करना उत्तम है। नारगी, अनार, दधि की लस्सी उत्तमपेय है तैल, मट्ठा, कटु पदार्थ सेवन न करें।

(३) कई वार स्नान करना चाहिए साय काल स्नान कर लेने से शान्त सुखद प्रगाढ निद्रा आती है। दिन में १-२ घण्टे सोया भी जा सकता है।

(४) शीतल गृह में सोना बैठना चाहिये या खस की टट्टियाँ दरवाजो और खिडकियो पर लगाकर उन्हे प्रातः साय पानी से तर कर देना चाहिए। खस और जवासा मिलाकर भी टट्टिया बनाई जा सकती हैं।

(५) शराव या मदिरा कतई नही पीनी चाहिये।

(६) स्त्री प्रसग पक्ष मे १ वार करना चाहिये। चादनी रात मे अथवा दिन में ८-९ बजे। जो व्यक्ति

केवल ग्रीष्मावकाश मे ही घर आ पाते हैं ऐसे व्यक्तियों के लिये दिन मे प्रसग करने की अनुमति है या जो रात-भर कार्यालय मे सेवा करते हैं सैनिक आदि के लिये ही। वैसे दिन मे सम्भोग करने का निषेध है।

(७) चमेली आदि पुष्पो की माला धारण करें।

(८) चन्दन का लेप मस्तक पर लगाना चाहिये। शीतल हवादार स्थान भवन की छत पर शयन करना चाहिये। १२-१-२-३ वजे दिन मे लू या गर्म हवा से बचे।

(९) उजले हलके खादी के वसन धारण करने चाहिये उष्ण वायु से अपने को बचाना चाहिये।

(१०) गर्म खरबूजे या तरबूज हानि करते है। काम चिन्तामणि, चन्द्रकला, पुष्प धन्वारस, द्राक्षावलेह, च्यवन-प्राश आदि का सेवन विचारकर करना चाहिये।

५—वर्षा ऋतुचर्या

(श्रावण—भादो, अगस्त- सितम्बर)

१—इस ऋतु मे वातादि दोष कुपित होते हैं।

वसन्तेश्लेष्मजा रोगा शरत्कालेतु पित्तजाः।
वर्षासु वातिकाश्चैव प्राय प्रादुर्भवन्ति हि॥

—च. चि. ३०—३०९

२—वर्षा ऋतु मे धरा से निकलने वाली भाप, मेघो के बरसने से जल थल दूषित हो जाता है। सर्वत्र नमी रहने से कीटाणु व जीवाणु का विशेष प्रकोप होता है।

३—जठराग्नि मन्द रहती है।

४—वात की शान्ति के लिए अम्ल, लवण और स्नेह युक्त भोजन करना चाहिए। जब गेहूँ पुराने चावल मास रस खाना चाहिए।

५—नदी या तालाब का जल नही पीना चाहिए न उनमे स्नान करना चाहिए। पानी गन्दा और दूषित होता है।

६—मदिरा का सेवन अल्प परिमाण मे ही ठीक है।

७—ओस मे शयन, दिन मे सोना, व्यायाम, घाम सेवन, रूखा भोजन और अधिक मैथुन वर्जित है क्योकि शुक्र क्षरण होने के बाद वात कुपित होती है अत वातज रोग हो सकते है। इन दिनो किसानो को अधिक श्रम करना पडता है अत उन्हे दूध बहुल भोजन कर शरीर मे तैल मर्दनकर वात शमन करना चाहिए।

८—वसन हल्का खादी का धारण करना चाहिए। शरीर पर आने वाले पसीने को पोंछते रहना चाहिए।

९—वर्षा जल मे अधिक भीगना नही चाहिए।

६—शरद-ऋतु-चर्या

(क्वार—कार्तिक, अक्टूबर—नवम्बर)

१— इस ऋतु मे सूर्य किरणो से प्रतप्त पित्त प्रकुपित हो जाता है।

२—इस ऋतु मे मधुर, हल्का, शीतल, तिक्त रस युक्त, पित्तशामक, अन्नपान मात्रानुसार सेवन करे।

३—मुनक्का हरड मिश्रीयुक्त रेचन लेने से पित्तशमन रहता है। आत मे पुराना मल रुक जाने से अनेक रोग हो जाते है। अत टट्टी साफ होती रहे ऐसा भोजन करे।

४—प्राय· ज्वर इसी ऋतु मे अधिक आते हैं। पित्त वृद्धि होती है और वर्षाकालीन जीवाणु प्रवेश भी इसी ऋतु में प्रकोप कर रोग उत्पन्न करते है। आन्त्रिक ज्वर भी इसी ऋतु में अधिक होता है। आन्त्रिक ज्वर होने पर कोई भी विरेचन न दें। १-२ मुनक्के व अमलतास की गुद्दी का हल्का रेचन दिया जा सकता है।

५—कटु, उष्ण पदार्थ, क्षार, लालमिर्चें, तैल, मांस, दधि का सेवन उचित नही। दिन मे शयन न करें।

६—गेहू जव घृतयुक्त मास रस, दूध सेवन करें।

विशेष वचन—उक्त आचार्यों के आदेश का पालन करने से शरीर मे दोषो का सचय नही हो पाता और रोग हरण सामर्थ्य या क्षमता बढती है एव स्थिर रहती है जिससे व्यक्ति नीरोग रहता है। कभी शरीर में क्षत होने से उस पर मिट्टी का लेप न करें, महकने वाला या आविलया तालाब का पानी न पिये क्योकि उनमे जीवाणु रहते हैं। सावन में कन्दशाक न खाये। डालडा न खाये, मूगफली या मक्का के भुट्टे चबाकर तुरन्त पानी न पिये। सामने प्रकाश करके न पढें, थोडा भी ज्वर होने पर १-२ दिन उपवास करलें। रोग होने पर उसके दूर करने की शीघ्र ही व्यवस्था करे।

—श्री वैद्य जगदम्बा प्रसाद श्रीवास्तव
अरौल (कानपुर) उ. प्र.

वर्षा ऋतु की समाप्ति ही शीतकालीन ऋतुओं के आगमन की सूचना है। शरद्, हेमन्त और शिशिर ऋतु क्रमश वर्षा ऋतु के पश्चात् आती हैं। शरद् ऋतु से गुलाबी सर्दी प्रारम्भ हो जाती है और शिशिर की समाप्ति वसन्त का प्रारम्भ है। स्वास्थ्य और रोगनाशक दृष्टि से ये ऋतुयें सर्वश्रेष्ठ हैं। अत शीतकालीन आहार विहार से हमारा तात्पर्य शरद् और शिशिर ऋतु के आहार-विहार से है। दूसरे शब्दो में आश्विन कार्तिक, अगहन, पौष और माघ मास का आहार-विहार ही शीत-कालीन आहार-विहार है। मानव शरीर प्रकृति की एक अमूल्य रचना है। इसकी सुरक्षा एव स्वास्थ्य के प्रति उचित देखभाल रखना मनुष्य का परम कर्तव्य है, 'जब तक जिये स्वस्थ रहकर जिये' मानव मात्र की यह एक स्वाभाविक बात है। परन्तु पूर्णरूपेण स्वस्थ पाये जाने वाले व्यक्ति सम्भवत इने-गिने ही मिल पायेंगे। ऋतु और स्वास्थ्य का अत्यन्त ही घनिष्ट सम्बन्ध है। ऋतु के अनुसार अपना आहार-विहार न करने से ही नाना प्रकार के रोगो की उत्पत्ति होती है। शीतकाल मे पृथ्वी के साथ चन्द्रमा का सम्बन्ध अधिक रहता है। स्निग्ध किरणो वाले चन्द्रमा का यह स्वाभाविक धर्म होता है कि वह पार्थिव द्रव्यो को स्निग्ध शीतल और आर्द्र कर देता है। यही कारण है कि इस ऋतु मे मनुष्य के स्वास्थ्य तथा बल का उत्कर्ष अन्य ऋतुओ की अपेक्षा अधिक होता है। शरद् के महीने में बादल स्वच्छ हो जाते हैं, पृथ्वी शुष्क होती है धूप पडने लगती है सूर्य की तीक्ष्ण किरणो की चमक नमी को सुखा देती है। अब हम नीचे महर्षि चरक के मतानुसार आहार-विहार पर एक विहगम दृष्टि डालते हैं—

> तत्रान्नपानं मधुरं लघु शीतं सतिक्तकम्।
> पित्तप्रशमनं सेव्यं मात्रया सुप्रकाङ्क्षितैः ॥
> लावान् कपिञ्जलानेणानुरभ्राञ्छशान्।
> शालीन सयव गोधूमान् सेव्या नाहुर्घनात्यये॥
> तिक्तस्य सर्पिषः पानं विरेको रक्तमोक्षणम्।
> धाराधरात्यये कार्यम्—(चरक सूत्र स्थानम्)

अर्थात् अच्छी भूख लगने पर रस मे मधुर, गुण में लघु, वीर्य मे शीतल, कुछ तिक्त रसयुक्त एव पित्त को शान्त करने वाले अन्नपान का मात्रापूर्वक सेवन करना चाहिये। शरद् ऋतु मे मासाहारियो को लावा (बटेर) गौरैया (कपिंजल), हिरन, उरभ्र, बारहसिंगा और खरगोश का मास खाना चाहिए, सामान्यत सभी को चावल, जौ और गेहूँ का सेवन, तिक्त घृतपान विरेचन और रक्त-मोक्षण करना चाहिये। विरेचन का उत्तम समय शरद ही चरक ने बताया है यथा —'घनात्यये वार्षिक मास सम्यक प्राप्नोति रोगानृतुजान्नजातु (च०शा०अ०) विरेचन से रक्त-शुद्धि भी होती है।

प्राय शरद के प्रारम्भ मे पित्त प्रकुपित हो जाया करता है अतएव सौम्य एवम् पित्तशामक विरेचन द्वारा इस बढे हुए दोष को शान्त कर देना चाहिये। मुनक्का, निशोथ, धमासा, नागरमोथा, श्वेत चन्दन, मुलेठी सभी बराबर इनमे मुनक्का अलगकर शेष वस्तुओ को कूट-पीस चूर्ण बनाना चाहिए और मुनक्का पीसकर गोलिया बना लें। दो गोली रात को सोते समय गरम जल के साथ ले, शरीर में हलकापन अनुभव होगा। इस दवा से सभी बूढे-बच्चे अपना पेट साफ कर सकते हैं। आजकल दिन छोटे होने लगते हैं और रात लम्बी होती है। जिन व्यक्तियो को दिवाशयन की आदत हो उन्हे इसका परि-त्याग कर देना चाहिये। शीत बढ जाने पर कुछ व्यक्तियो को सोते समय तक निद्रा नही आ पाती जब तक कि वे मुख न ढकले। इस दूषित वायु से स्वास्थ्य पर बडा बुरा असर पडता है। अत मुख खोलकर सोये। कमरे मे खिडकियां होनी चाहिये, शयनागार मे किसी प्रकार से कोयला आदि नही जलाना चाहिये। इससे अत्यन्त दूषित वायु उत्पन्न होकर व्यक्तियो को कभी-कभी 'चिर निद्रा' मे सुला देती है। ब्राह्ममुहूर्त मे ही बिस्तर को छोड देना चाहिए और उठने के बाद उषःपान करना जरूरी है। वैसे महर्षि वाग्भट का कहना है कि शरद में जल अमृत के समान हो जाते हैं।

> तप्तं तप्तांशु किरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभि।
> समतादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम्॥
> शुचि हंसोदकं नाम निर्मलम् जलजिज्जलम्।
> नाभिष्यन्दि नवा रूक्ष पानादिष्वमृतोपमम्॥
> (अष्टांग-हृदय)

अर्थात् जो जल दिन मे सूर्य की किरणो से तपायमान हो और रात्रि को चन्द्रमा की किरणो से शीतल होता हो तथा जलाशय के चारो ओर सम्पूर्णरूप से दिन मे सूर्य की किरणें और रात्रि मे चन्द्रमा की किरणे पडती हो तथा तारो के उदय होने से ऋतु जनित विष शात हुआ हो ऐसे निर्मल पवित्र जल को हसोदक कहते हैं। चरक ने भी हसोदक का जिक्र अपने ग्रन्थ मे किया है। ऐसा जल प्रात. पीना चाहिये। इस मास मे शरीर के बलानुसार मैथुन का भी विधान है।

अब हमे क्या खाना चाहिए-देहाती कहावत है—कार्तिक मूली अगहन तेल पूष मे करे दूध से मेल। शरद मे नियमित तेलमालिश व व्यायाम करना जरूरी होता है। पर ध्यान रहे कि व्यायाम के बाद ही शरीर पर तेल मालिश करनी चाहिये। जिन व्यक्तियो को आसन-व्यायाम आदि करने मे कुछ असुविधा अनुभव होती हो या दुर्बल हो उनके लिए प्रात काल का भ्रमण स्वास्थ्यवर्धक उपाय है। टहलना उतना ही चाहिये जितने से थकान न आये व्यायाम के लिए यह ऋतुयें सर्वोत्तम मानी गयी है। सूर्य नमस्कार तथा शीर्षासन अत्यन्त लाभदायक है। तेल मर्दन के पश्चात् ताजे जल का स्नान शरीर को एक उत्तम टानिक का फल प्रदान करता है। मिथ्या आहार का स्वास्थ्य पर अनुचित प्रभाव पडता है। प्रात निराहार नीबू का रस थोडे गरम जल मे मधु मिलाकर प्रयोग करना अत्यन्त लाभदायक होता है, इससे पित्त का शमन होता है रक्तविकार, कोष्ठबद्धता (कब्ज), भूख का अभाव आदि में असीम हितकारी है। जलपान मे थोडी मात्रा मे हल्का सुपाच्य टमाटर अथवा अन्य फलो का रस या सूखे मेवे ले, भोजन मे चोकर सहित आटा छिलके वाली दाल, एव मसाला से न्यून साग सब्जी का सेवन करना चाहिये। शीतकाल मे विभिन्न प्रकार के फल और तरकारिया अमरूद, टमाटर, सिघाडा, गाजर, मूली, पालक, गोभी, अगूर आदि का खूब उपयोग करना चाहिए। अमरूद को खाली पेट और अधिक मात्रा मे नही खाना चाहिये। गाजर का उपयोग करने से चर्मरोग नही हो पाते। अब नीचे शरदऋतु मे होने वाले प्रमुख रोगो से बचाव के सामान्य नुस्खे दिए जा रहे हैं, इन्हे समय पर प्रयोग मे लाकर इनके गुण जाने जा सकते है।

१—शरद मे जुकाम और इन्फ्लूएन्जा की शिकायत हो जाया करती है ऐसी हालत मे दालचीनी का तेल मिश्री के साथ थोडा खाने से तथा रूमाल पर कुछ बू दें छिडककर सू घने से लाभ मिलता है। नए जुकाम मे दालचीनी की छाल का चूर्ण डेढ माशा को गरम चाय से लेने से विशेष लाभ मिलता है।

२—शीतकाल मे सरदी के कारण या कफ से कभी कभी शिर शूल होने लगता है। ऐसी हालत मे दालचीनी जल के साथ पीसकर कुछ गरम करके सिर पर लेप करने से दर्द में लाभ मिलता है।

३—सरदी, जुकाम, ज्वर, माथे का भारीपन, सुस्ती शिर शूल की खराश और मौसम की सुस्ती को दूर करने के लिए इन दिनो निम्न विधि से तुलसी की चाय बनाइये और परिवार को प्रकृतिजन्य व्याधियों से बचाइये। छाया मे सखी तुलसी की पत्ती डेढ सेर, दालचीनी, एक पाव, तेजपत्र आधा सेर, सौफ आधा सेर, इलायची आधा सेर, तृण चाय (अगियाघास) डेढ सेर, बनफ्सा आधापाव, ब्राह्मी बूटी आधा सेर, लालचन्दन एक सेर इनको जौकुट कर डिब्बे में बन्दकर रखें। बनाने की विधि—एक सेर स्वच्छ उबालते जल में एक तोला डालकर ढाँककर रख दें। थोडी देर में इच्छानुसार दूध व मीठा मिलाकर गरम-गरम पीयें।

४—इन दिनो शरीर गठन, स्फूर्ति, बलवीर्य, मेधा के वर्धनार्थं आयुर्वेद की परम प्रसिद्ध औषधि च्यवनप्राश अवलेह, आमलकी रसायन, मूसलीपाक, वसन्त कुसुमाकर रस इत्यादि वैद्य की राय से इस मास मे अवश्य सेवन करे। पाचन की गडबडी मे व कब्जियत रहने पर त्रिफला चूर्ण सोते समय गरम जल से लेकर पेट को बराबर साफ रखे। इस उपचार व सावधानी से पूरे मास का आनन्द लिया जा सकता है।

त्याज्य वस्तुएँ—शरद ऋतु मे त्याज्य आहार-विहार के सम्बन्ध मे चरक ने बताया है कि इस ऋतु मे धूप का सेवन बसा, तेल, मछली आदि का मास, क्षार तथा दही का सेवन नही करना चाहिए। दिन में सोना, पूरब की हवा का सेवन भी शरद ऋतु मे त्याज्य है।

श्री विजय मित्र शास्त्री

सामान्य रूप से जनता वर्षा को चौमासा (चातुर्मास्य) नाम से जानती है। इसके अनुसार आषाढ, सावन, भादो और क्वार ये चार मास वर्षाऋतु के होते हैं। महर्षि सुश्रुत ने इनमे से प्रारम्भिक दो मासो को प्रावृट् तथा अन्त के दो मासो को वर्षा माना है। वर्षा का अर्थ दोनो नामो से निकलता है, इस कारण इन चारो महीनो को चौमासा कहा जाता है।

चौमासे मे स्वास्थ्य पर वर्षा का क्या प्रभाव पडता है ? इसके प्रभाव से किन-किन रोगो की सम्भावनाएँ होती हैं ? इस समय कैसा रहन सहन होना चाहिये ? इत्यादि स्वास्थ्य-सबन्धी जिज्ञासाओ का समाधान पाने के लिये आप उत्सुक होगे। यहाँ हम क्रमश इन पर प्रकाश डालेंगे।

वर्षाऋतु

सूर्य अभी तक उत्तरायण था प्रचण्ड गर्मी पड रही थी, लोग परेशान थे। तेज आधियां आयी और मानसून को समुद्रतल से दूर उडा लायी। बिजली कडकी, बादल गरजे और रिमझिम शीतल जल की अमृत बूंदें धरातल पर गिरने लगी। वायुमण्डल का तापमान कम हो गया। लोगो की परेशानी दूर हुई। कृषक प्रसन्न हो गये। वे हल लेकर अपने खेतो मे जुट गये।

अब सूर्य दक्षिणायन हो रहा है। यह विसर्गकाल है। इस समय पृथ्वी पर सोम तत्व की वृद्धि का कार्य प्रारम्भ हो रहा है। उत्तरायण मे सूर्य शक्तिशाली था, दक्षिणायन मे अब चन्द्रमा का बल बढ़ेगा। अब पृथ्वी के समस्त स्थावर-जगम प्राणिवर्ग मे रसो की वृद्धि होनी प्रारम्भ हो जायगी।

यह पहले कहा जा चुका है कि वर्षा ऋतु मे विसर्ग काल प्रारम्भ होता है। सूर्य कर्क और सिंह राशि पर स्थिर रहता है। इस कारण पृथ्वीस्थ समस्त जड-चेतन पदार्थों मे कुछ कुछ अमृत रस की वृद्धि होनी प्रारम्भ हो जाती है। यही कारण है कि आप भी अपने शरीर में कुछ-कुछ बल का अनुभव करने लगते हैं। अखाडिये लोग अखाडा खोद कर उसमे लडना प्रारम्भ कर देते हैं। अब अब आगे बराबर प्रकृति मे परिवर्तन होता चला जायगा। अब प्रकृति मे सोमतत्व बढेगा। वायु मे अब रूक्षता नही रहेगी। चन्द्रमा का बल बढता जायेगा। सूर्य का बल क्षीण होता जायगा। समस्त पदार्थों मे स्निग्ध रस बढ़ेगा, अर्थात् खट्टा, नमकीन और मधुर रसो की वृद्धि होगी। अब आप इन सब बातो को समझकर अपनी दिनचर्या बनाइये। इस नियमित आचरण का यह फल होगा कि यदि आप स्वस्थ हैं तो आप मे बल और पराक्रम बढ़ेगा तथा आगन्तुक रोगो से आप बचे रहेंगे।

वर्षाऋतु में आहार-विहार

वर्षाऋतु मे पाचन-शक्ति कम हो जाती है। ऐसी दशा मे शीघ्र पचनेवाले तथा पाचक रसो को उत्पन्न करने वाले पदार्थों का सेवन करना चाहिये। गेहूं, जौ की रोटी या दलिया खाना चाहिए। गेहू के आटे का चोकर छानकर फेंकना नही चाहिये। उसे आटे मे मिलाकर रोटी बनानी चाहिए। पुराने चावल का भात, खीर या पुलाव कभी-कभी खाना चाहिए। इस ऋतु मे चावल का अधिक प्रयोग नही करना चाहिये। खडी मूंग, उडद, लोबिया, सोयाबीन, राजमाष रोंसा, चने, मटर दाल के स्थान पर खाना लाभप्रद है। छिलके सहित शिम्बीधान्य हितकर है। सब्जियो मे कन्दशाक कम खायें। हो सके तो न खायें तो बहुत अच्छा हो। कन्दशाक मे आलू, अरबी आदि हैं। वैसे आजकल आलू प्राय सडे निकलते हैं। इसे छोड देने से लाभ ही लाभ है। क्योकि आलू महगे भी बहुत हैं। इस ऋतु में हरी सब्जियाँ अधिक लाभदायक होती है। भिण्डी, नेनुआ, परवल, बोड़ा, टिण्डा, तरोई, सतपुतिया, लौकी, कद्दू, कोहडा, बैंगन, करेला, चिचिण्डा, चेखसा, करेला, कच्चा केला आदि सब्जियाँ विशेष हितकर होती है।

पाचक रस उत्पन्न करनेवाले पदार्थो में नीबू, अदरक, मूली, करौंदा, लहसुन, प्याज, हरीमिर्च, सिरका, काली-मिर्च, पीपल, जीरा, हीग, राई, मेथी और नमक हैं। इनमे से जो भी उपलब्ध हो उसका विधिवत् प्रयोग करें।

अद्रक, मूली, लहसुन, हरीमिर्च कूटकर उसमे नीबू का रस निचोड़कर उत्तम पाचक बन जाता है। प्रतिदिन भोजन के साथ खाने से आमाशय-सम्बन्धी बहुत-से रोगो से बचाव हो सकता है। सिरके मे कुछ प्याज के कतरे और नमक डालकर खाना लाभदायक होता है। नीबू के रस मे अदरक के टुकड़े, प्याज, मूली और हरीमिर्च के कतरे डालकर खाने से भी पाचक रसो की वृद्धि होती है।

फलो मे कलमी आम अधिक खाना हानिकर है। चूसनेवाले आम यथेष्ठ खाये जा सकते हैं। पके जामुन भी हितकर है। दही की अपेक्षा दूध पीना अच्छा है। सम्भव हो तो प्रतिदिन थोड़ा शुद्ध घी भोजन के साथ प्रयोग करना चाहिये। घी मे लहसुन या प्याज पकाकर खाना वायु-दोष को शान्त कर देता है। आजकल तेल मे अनेक प्रकार के चाटो का खाना बन्द कर देना चाहिए। पूड़ी, कचौड़ी, मालपूआ, नाना प्रकार की मिठाइयां आजकल नही खानी चाहिए। इनसे अनेक प्रकार की बीमारियो के होने की सम्भावनाये होती है। कोई भी फल या सब्जी जरा भी सड़ा हो तो उन्हे तत्काल फेंक देना चाहिए। क्योंकि कीटाणुओं का संक्रमण उनमें कहां तक है आप को दिखलाई नहीं दे सकता और उनके प्रयोग से आप रोगो के शिकार हो सकते हैं। इसलिये स्वस्थ फलो और सब्जियो का सेवन करें।

वर्षाऋतु मे सीलनरहित स्थान मे रहना चाहिए। कपड़े भीग जाने पर उन्हे तत्काल बदल देना चाहिए। जूते-चप्पल आदि पहनकर बाहर से आने पर सावधानी से उन्हे साफकर निश्चित स्थान पर रख देना चाहिए। कमरे में जूते-चप्पल पहन कर न जाये। उनमे बाहर की लगी गन्दगी से रोगों के संक्रामक कीटाणुओ के फैलने की सम्भावना रहती है। बाहर से नगे पैर आने पर पैर पोंछ कर कमरे मे प्रवेश करे।

वर्षा ऋतु मे अधिक से अधिक दस बजे रात तक आप अपना सारा कार्य समाप्त कर सो जायें। एक बात ध्यान मे रखे, आजकल शीत मे बाहर बिलकुल न सोयें। प्रात. पाच बजे तक अवश्य उठ जायें। नित्य क्रिया समाप्त कर सरसो का तैल सारे शरीर मे मलें और स्नान करे। इससे बाहरी विषैले कीटाणुओ का प्रभाव रुक जायगा। शरीर के किसी भी भाग मे वायु-दोष के कारण दर्द होने की सम्भावना समाप्त होकर शरीर मे बल-पराक्रम और तेज की वृद्धि होगी। इस ऋतु मे भूल कर भी दिन मे नही सोना चाहिये, दिन मे सोने से कफ और वायु-दोष बढ जाता है। इससे जुकाम, ज्वर और खांसी आदि रोग हो जाते हैं। इसलिये प्रत्येक दशा मे दिन का सोना त्याग देना चाहिये। इस ऋतु मे पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

प्रात. काल जलपान मे आप दूध, मीठे फल, ठण्डाई या भीगे चने ले सकते हैं और हां, आजकल आम के तो दिन ही है। प्रात. जलपान मे आम का प्रयोग कर सकते हैं। दूध और फल के अभाव मे चना तो बराबर आपका साथ देगा ही। चना भिगो देने पर और अकुरित होने पर अन्न नही रह जाता तब वह फल बन जाता है।

दिन मे कभी-कभी आधा नीबू एक गिलास जल मे निचोड कर पी लीजिये। इससे भी आपको बहुत लाभ होगा। इस ऋतु मे जल मे घोलकर सत्तू नही खाना चाहिये। बहुत आवश्यक पड़ने पर घी और शक्कर के साथ खाया जा सकता है, परन्तु इस ऋतु मे सत्तू न खाना ही हितकर है। महर्षि चरक का यह आदेश है। इस ऋतु मे नदी-तालाब या तलैया मे स्नान करना या उनका जल पीना भी हानिकारक है। कारण यह है कि चारो तरफ की गन्दगी बहकर जलाशयो में पहुंच जाती है, इस कारण उनका जल दूषित हो जाता है। आजकल धूप से भी बचना चाहिये। अधिक धूप लग जाने से वात और पित्त के प्रकोप से ज्वर हो जाता है।

वर्षाऋतु के रोग

वर्षाऋतु मे अनेक प्रकार के आगन्तुक रोग हो जाते हैं। इनमे चर्म रोग, ज्वर रोग, वात रोग तथा अनेक प्रकार के ज्वर प्रमुख है। चर्म रोगो मे फोड़े-फुन्सियां, विसर्प (अगियासन), विषैले कीटाणुओ के दश से अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। उदर रोग मे आव पड़ना, पेट में दर्द-ऐंठन, बार-बार पतले दस्त होना, अरुचि, मन्दाग्नि, सग्रहणी आदि। वातरोगो में—सिर मे, हाथ मे, पाव या पीठ मे दर्द, पैरो और हाथो के जोडो मे दर्द आदि वात रोग हो जाते हैं। ज्वरो में—साधारण ज्वर,

मिलाकर खाना भी हितकर है। हिंग्वष्टक चूर्ण और मलेरिया, टाइफायड तथा फाइलेरिया ज्वर आदि हो जाते हैं।

चर्म रोग

प्रतिदिन सरसो का तैल लगाते रहने से बहुत से चर्म रोगो से रक्षा होती हैं। फोड़े -फुन्सियो के हो जाने पर त्रिफला भिगोकर उसके रस में मधु मिलाकर पीना चाहिये। मधु के अभाव में केवल रस ही पी सकते है। त्रिफला चूर्ण मे सेंधानमक मिला कर प्रतिदिन खाने से भी लाभ हो सकता है। छोटे-मोटे फोड़े पर केवल साफ मिट्टी पानी मे भिगोकर उसका मोटा लेप लगा दे। सूखने पर उसे बराबर बदलते रहे। इससे या तो फोड़ा दब जायगा या पक कर फूट जायगा और इसी क्रिया से एक दम अच्छा भी हो जायगा। शुद्ध गन्धक शहद के साथ खाते रहने से सभी प्रकार क चर्म रोग समाप्त हो जाते हैं।

विसर्प (अगियासन) हो जाने पर शरीर मे जहा-तहाँ आग से जलन के समान फफोले बन जाते हैं। एक विषाक्त कीटाणु क सक्रमण के कारण बच्चो का प्राय: यह रोग हो जाता है। प्रारम्भ मे इसमे ज्वर का वेग बहुत रहता है। चार-पाच दिन मे इसका वेग कम हो जाता है। व्रणो पर मरिच्यादि तैल, इरिमेदादि तैल, बरनाल या चर्मरोगारि मलहम लगाना चाहिये। सितोपलादि चूर्ण मे गोदन्ती हरिताल भस्म मिलाकर मधु के साथ देना चाहिये। अभाव मे नीम के पत्ते कालीमिर्च के साथ पीसकर उसका स्वरस मधु के साथ केवल पिलाना चाहिये।

एक बडे कोड़े के स्पर्श से भी इसी प्रकार का रोग हो जाता है। उसमे भी यही उपचार हितकर है। इन रोगो मे अन्तर इतना ही है कि पहले रोग तेजी से फैलता है, ज्वर अधिक होता है। दूसरे मे रोग जहा का तहाँ रहता है, उसका पानी लगने पर दूसरे स्थान पर फैलता है, ज्वर नहीं होता है। रोग के बढ़ने पर कुछ ज्वर हो जाता है, परन्तु शीघ्र अच्छा हो जाता है।

वर्षाऋतु मे लाइफब्वाय, कार्बोलिक, या नीम सोप का प्रयोग बराबर करना चाहिए। कपडो को गर्म पानी मे उबाल कर साफ करना चाहिए। ओढने-बिछाने और पहनने के कपडो का बहुत ध्यान रखना चाहिए। आजकल फोड़े-फुन्सियो या अन्य आघातों मे जल्दी ही पीब पड जाती है। इसलिये इसका बहुत ध्यान रखना चाहिए कि व्रणो मे पीब न पडने पाये। पीब पड जाने पर तुरन्त सफाई करके वहाँ उपयुक्त औषधिया लगा दें।

इस ऋतु मे कई ऐसे सूक्ष्म कीड़े, मक्खियां और चींटें काट खाते हैं या डंक मारते हैं जिससे शरीर मे ददोरे पड जाते हैं और उनमे खाज होती है। वहाँ नख लग जाने से व्रण हो जाती है और फोड़े फुन्सियो का रूप ले लेता है। ऐसे समय मे खाज को दूर करने के लिये सरसो का तेल, अमृतधारा या अमृताञ्जन अथवा पूर्व औषधियो का प्रयोग करें।

पेट के रोग

वर्षाऋतु मे वायु विकृत हो जाने के कारण उदर सम्बन्धी नाना प्रकार के रोग हो जाते है। आजकल आव पेचिश और दस्त की शिकायतें बहुत रहती हैं। इसके लिये दिन मे सौंफ कई बार खानी चाहिये। रात मे भोजन करने के पश्चात् अजवाइन गर्म जल के साथ खानी चाहिये। ईसबगोल की भूसी मे देशी शक्कर डाल कर खाने से भी लाभ होता है। हिंग्वष्टक और लवणभास्कर चूर्ण को मिलाकर भोजन के साथ खाना चाहिए। नीबू का रस सादे जल मे कई बार पीना चाहिये। भोजन के पश्चात् भी हिंग्वष्टक चूर्ण और लवणभास्कर का प्रयोग हितकर है। इन औषधियो के अभाव मे गूलर के पत्ते जल में पीस कर पीना लाभप्रद होगा।

बार-बार पतले दस्त होने पर भोजन मे नियन्त्रण रखना आवश्यक है। हरे केले की सब्जी या गूलर का भरता, मूग और पुराने चावल की खिचडी के साथ खाना चाहिए। अद्रक के टुकडे साधारण नमक या लवणभास्कर के साथ दिन मे कई बार खाना चाहिए, लशुनादिवटी खाने से भी लाभ होता है। इनके अभाव मे गूलर की पत्तियो को पीसकर पीना हितकर है।

अरुचि और मन्दाग्नि मे अद्रक के टुकडे सेंधानमक के साथ दिन में कई बार खाने चाहिए। पानी में नीबू निचोड कर कई बार पीना चाहिए। पके जामुन मे भुना जीरा, काला जीरा, काला नमक और अजवायन आदि

(शेषांश पृष्ठ ३०१ पर देखें)

श्रीवैद्य समाकान्त झा शास्त्री

ग्रीष्मऋतु मे आदानकाल का अन्तिम समय होने के कारण सूर्य की प्रखरता विशेष होती है और सूर्य की प्रचण्ड किरणो द्वारा पृथ्वी का सोमभाग विशेष रूप से आकर्षित होता है, अतएव ऋतु मे प्रतिदिन शरीर के सोम अंश (कफ) का क्षय होने लगता है तथा रूक्षता एव उष्णता के साथ-साथ वायु का संचय होने लगता है। आयुर्वेद मे भी कहा है "ग्रीष्मे सचीयते वायु." अर्थात्—ग्रीष्मऋतु में वायु का सचय शरीर में होता है।

इस ऋतु मे सूर्य की किरण अति प्रखर होने के कारण धूप भी तीक्ष्ण लगती है, नैऋत्य कोण की दाहक और दु:खदायी हवा चलने लगती है। पृथ्वी अत्यन्त उष्ण, कठोर एव दिशायें जलती हुई सी प्रतीत होती है। नदियो मे जल अल्प रह जाता है, जीव-जन्तु पिपासा के मारे व्याकुल हो जाते हैं, छोटे-छोटे पौधे और लतायें भी झुलसने लगती है। मानव से लेकर पशु-पक्षी आदि सभी सासारिक प्राणी ग्रीष्म से अत्यन्त व्याकुल होने के कारण शीतल पदार्थों की कामना करते हैं।

अतएव इस ऋतु के आहार-बिहार में ऐसी सावधानी अवश्य रखनी चाहिये, जिससे शरीर के सोम अश (कफ) की कमी की पूर्ति होती रहे और वायु का भी अधिक संचय न होने पाये। इसी बात को दृष्टि मे रखते हुए आयुर्वेद के आचार्यो ने गरमी के दिनो मे मधुर रस प्रधान स्निग्ध, शीतल और सुपाच्य पदार्थों का सेवन उचित तथा अति नमकीन, कटु और अम्ल पदार्थों का सेवन हानिकर बतलाया है। अत इस ऋतु में विशेष जल तत्व वाले तरल शीतल तथा स्निग्ध द्रव (अन्नादि) का सेवन स्वास्थ्य के लिए कल्याणप्रद है। इस ऋतु मे कम खाना चाहिये। कोदो, साठी चावल का भात, जौ, ज्वार और गेहूँ की रोटी, मूंग, अरहर, मटर, मसूर आदि की दाल, तरबूज, खीरा, ककडी, पेठा, परवल, लौकी, घीयातोरई आदि का शाक, मीठा दही, मठा आदि का सेवन हितकर है।

मधुर रस प्रधान किन्तु हल्का, स्निग्ध, शीतल तथा पतला आहार ही सेवन करना चाहिये। स्वयं प्रकृति भी इन दिनो ऐसी चीजो को पैदा करती है जो हलकी, स्निग्ध, साथ-साथ शरीर पर होने वाले गर्मी के प्रभाव को शान्त करती हैं। गरमी के दिनो का प्राचीन खाद्य सत्तू ऐसी ही चीज है। दही और दूध की लस्सी, गन्ने का रस, प्याज, पुदीना, इमली और आम का पना इत्यादि ऐसी चीजे है, जो ग्रीष्म ऋतु की प्रचण्ड गरमी के आघात से बचाने के साथ-साथ शरीर मे नित्य नई शक्ति का भी सचय करती हैं।

गरमी के दिनो मे पाचक अग्नि एकदम कमजोर हो जाती है, अत प्रात. कालीन भोजन मे गरिष्ठ और अजीर्ण कारक पदार्थ कदापि नही लेने चाहिए। हल्के, सुपाच्य एव शीतल प्रभाव वाले पदार्थ परिमित मात्रा मे खाने चाहिए। सामान्य भोजन की मात्रा भी कम रखनी चाहिये और माँस यथासम्भव बिल्कुल ही नहीं खाना चाहिये।

प्रात नित्यकर्म से निवृत्त होकर एक गिलास अच्छी ठडाई, दूध या दही की लस्सी अथवा जौ या चने का सत्तू पानी मे घोलकर मीठा मिला कर पी लेना चाहिये। खश या चन्दन का शर्बत भी पी सकते हैं, जो सुगन्ध और गुण दोनो में उत्तम होते हैं।

बनाने की विधि—आधा पाव खश या चन्दन का बुरादा एक सेर जल में बारह घण्टे तक भिगोकर फिर खूब मलकर छान ले, छने घोल मे तीन सेर शक्कर या मिश्री और आवश्यकतानुसार जल मिला ले। इसका चार बोतल शर्बत घर मे ही बन सकता है। यह कच्चा शर्बत १०-१५ दिन तक खराब नही हो सकता।

प्रात. कालीन पेयो मे नीरा (ताड या खजूर से निकलने वाला रस) स्वास्थ्य के लिये बहुत उत्तम है। नारिकेल का जल, गन्ने या सन्तरा आदि फलो का ताजा रस भी उत्तम पेय है। राजस्थान मे लोग जौ के आटे को मठा (छाछ) मे मिलाकर बार्ली की तरह बहुत पतली बनाते हैं, फिर दूसरे दिन बासी होने पर मठा के साथ ही पीते हैं। यह पेय भी ग्रीष्म के प्रभाव से बचने के लिये अच्छा है। मद्रास मे लोग सुबह के भोजन मे ठण्डा भात और इमली को जल मे गलाकर तैयार किया तरल पदार्थ लेते हैं। ध्यान रहे, बासी भात और इमली का नित्य भोजन

यद्यपि स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है, परन्तु ग्रीष्मजन्य गरमी के प्रभाव से बचने के लिये यह प्रयोग बुरा नही है।

ग्रीष्मकालीन मध्याह्न भोजन—उत्तम चावल, पतली दाल या कढी, दही अथवा मठा अवश्य लेना चाहिए। जो केवल चावल खाकर नही रह सकें वे जौ या गेहू की रोटी भी अल्प मात्रा मे ले सकते हैं। दिन बड़े होने से दोपहर के बाद इन दिनो कुछ भूख लगती है तब भुने हुए जौ और चने खाकर ठण्डा जल पीना हितकर होता है। धनवान लोग फल या फलो का ताजा रस भी ले सकते हैं।

रात्रि के भोजन मे रोटी, हरी प्याज, पुदीना या धनिया की चटनी होनी चाहिए। गर्मी मे कच्चा प्याज खाना बहुत लाभदायक होता है। भारत के श्रमशील किसान केवल कच्चा प्याज और रोटी खाकर धूप मे काम करते हुए भी निरोग रहते हैं।

इन दिनो आम का सेवन बहुत उपयोगी है। कलमी आमो मे गूदा अधिक होने से वह देर में पचता है, परन्तु छोटे-बीजू आमो मे रस अधिक होता है, जो पाचन-शक्ति बढाकर शरीर को पुष्ट करता है। दूध के साथ आम का रस लेना—शरीर का वजन और शक्ति बढ़ाता है।

ग्रीष्मऋतु मे चाय का अति उपयोग स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक है, यदि अनिवार्य हो तो बहुत कम पीना चाहिए। इन दिनों दूध भी ठण्डा करके ही पीना चाहिए। परन्तु दूध को ठण्डा करने हेतु स्वच्छ पात्र मे कपड़े से मुँह बाँधकर रखना चाहिए जिससे उसमें धूल-कीट आदि न मिल सके।

गर्मी मे स्नायुमण्डल बहुत कमजोर रहता है, अतएव मादक पदार्थों का सेवन कतई नही करना चाहिए क्योकि मादक पदार्थों का प्रभाव सीधे स्नायुमण्डल पर पडता है। यदि किसी कारण पीना ही पड़े तो, अधिक पानी मिलाकर और अल्प मात्रा मे पीवें, अन्यथा सूजन, सुस्ती और बेहोशी तक हो जाती है तथा कभी-कभी स्नायुमण्डल पर घातक प्रभाव पडता है। इन दिनो स्त्री-प्रसग से सर्वदा बचने की चेष्टा करें, अन्यथा इससे शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार की निर्बलता बढती है।

आयुर्वेद मतानुसार ग्रीष्मऋतु मे दोपहर के समय दो तीन घण्टा सोना स्वास्थ्य के लिए हितकर है।

गर्मी के दिनो मे अधिकतर शहरी लोग बर्फ का बहुत प्रयोग करते हैं। बर्फ पीने में तत्काल तो ठण्डक देती है, परन्तु उसकी ठण्डक स्थाई नही होती। बर्फ अधिक खाने पीने से दाँतो की जड़ें कमजोर हो जाती हैं, पाचनशक्ति क्षीण हो जाती और गला खराब हो जाता है। विशेषकर बच्चो को आइसक्रीम आदि बर्फ के पदार्थों से बचाना चाहिए।

गर्मी की ऋतु में आखो की बहुत रक्षा करनी चाहिए, बहुधा इन्हीं दिनो मे आँख आया करती है। सर्वाधिक बचाव लू से करना चाहिए। थोड़ी सी असावधानी के कारण लू लगने से प्राण तक जा सकते हैं। यथासम्भव तेज धूप में कदापि बाहर न निकलना चाहिए। निकलना ही पड़े तो काफी पानी पीकर चलना चाहिए। बहुत महीन कपडा पहनकर धूप मे चलना-फिरना हानिकारक है। सफेद मोटे कपड़े से शरीर को ढककर चलने से लू से बचाव होता है।

ग्रीष्मऋतु में कुछ उपयोगी पेय पदार्थ

दूध और दही की लस्सी—

शरीर मे बढ़ी हुई गर्मी को कम करने के लिये अनेक उपायो मे लस्सी का प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है, क्योकि शरीर के अन्दर अधिक मात्रा मे पहुचाया हुआ पानी मूत्र की राशि और पानी के परिणाम को बढाता है और ये शरीर से गर्मी को निकालने में बहुत उपयोगी साधन हैं। ग्रीष्म ऋतु मे दूध या दही की लस्सी का प्रयोग भारतीय प्राचीन मतानुसार ही है और यह विज्ञानसम्मत भी है।

गर्मी की तपन और प्यास की शान्ति के लिये लस्सी का महत्व बहुत ज्यादा है और यही कारण है कि गरमी आते ही लस्सी की माँग बढ जाती है। लस्सी कच्चे दूध की भी बनती है और दही की भी तथा इनमे शरीर को शीतल और पुष्ट करने के पर्याप्त गुण हैं। कच्चे दूध की लस्सी मे इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि दूध ताजा हो, देर तक रखे हुये गरम किये हुए अथवा मक्खन निकाले हुए दूध की लस्सी मे उपरोक्त गुण नही रहते हैं। पेशाब लाने का काम दूध की लस्सी ज्यादा करती है, अत जिनके पास ताजा दूध का साधन हो, उन्हें प्रातःकाल इसी का सेवन करना चाहिए।

दही की लस्सी मे भी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा मे रहते हैं और यह सुस्वादु होने के साथ सुपाच्य भी है, अतः

प्यास की शान्ति एव शारीरिक शक्ति रक्षणार्थ दही की लस्सी का उपयोग इस ऋतु मे अवश्य करना चाहिए। इतना ध्यान रखें कि मक्खन निकाले हुए दूध का दही न हो तथा लस्सी गाढी भी न हो, क्योकि गाढी लस्सी भूख को कम करती है, अत. उचित परिमाण में पानी मिलाना चाहिए। शरीर के तन्तुओ को पानी की आवश्यकता पूरी करने के उद्देश्य से लस्सी पतली बनाकर पीनी चाहिए, गाढी लस्सी शरीर-पोषण के लिये तो ठीक है, परन्तु देखा गया है कि वह प्यास को बढाती और भूख को भी कम करती है, पतली लस्सी इसके विपरीत प्यास को शान्त करती है।

लस्सी नमकीन और मीठी दो तरह की बनायी जाती हैं, मीठी लस्सी नमकीन की अपेक्षा अधिक शीतल और तृषाशामक होती है। शरीर को ठण्डक पहुचाने के लिये मीठी बनाना ही उत्तम है। यद्यपि नमकीन लस्सी मीठी लस्सी की अपेक्षा हल्की और सुपाच्य होती है परन्तु इसमे प्यास को शान्त करने की क्षमता उतनी नही है। यही कारण है कि नमकीन लस्सी एक बार पीने के बाद बार-बार पीने की इच्छा होती है। नमकीन लस्सी उन लोगो के लिये उपयुक्त हो सकती है, जिनको पसीना जल्दी जल्दी और विशेष परिमाण में आता है, जिससे उनके शारीरिक तन्तुओं में पानी के अनावश्यक परिमाण को पूरा करने के लिये उसे पहुचाने की जल्दी-जल्दी आवश्यकता बनी रहे। निर्बल पाचकाग्नि वालो और उदर रोगियो के लिए नमकीन लस्सी पीना हितकर है।

गन्ने या सन्तरे का रस—

गन्ने का रस भी गर्मी मे एक उपयुक्त पेय है और सस्ता होने के कारण गरीब लोग भी इसे पी सकते हैं। दोपहर के समय १-२ बार गन्ने का रस पी लेने से पेट के साथ दिमाग में भी शान्ति आ जाती है और पेशाब खुलकर आने से तबीयत हल्की रहती है। यह पाचक भी है और दस्त साफ लाता है।

सन्तरे का रस चूँकि सर्वसाधारण के लिये सुलभ नही हो पाता, किन्तु जो साधन-सम्पन्न हैं, उन्हे २-४ सन्तरे का रस दोपहर मे अवश्य पीना चाहिए। यह परम सुस्वादु और सुपाच्य होने के साथ-साथ पौष्टिक भी है।

ठडा पानी—

गर्मी मे ठडे पानी की माँग बहुत बढ जाती है। अक्सर लोग पानी को ठण्डा करने के लिए बर्फ का उपयोग करते है, यद्यपि बर्फ मिला या इसके द्वारा ठण्डा किया हुआ पानी क्षणिक शीतलता प्रदान करता है, परन्तु इससे पीने वालो की प्यास शान्त नही होती और न वह सुस्वादु जल ही होता है। अत निम्नलिखित विधि से ही पानी ठण्डा करके पियें—

इस ऋतु मे पानी ठण्डा करने के लिये सर्वप्रथम ऐसे मृत्तिका पात्र लें, जो शीतऋतु मे बने हों, ऐसे मृत्तिकापात्र (हाँडी) में पानी भरकर इसे बालू पर रखें, बालू को पानी से तर करते रहे। हो सके तो पानी को सुस्वादु बनाने के लिए इसमें थोडा-सा गुलाब या केवडा का अर्क डाल दें। इस प्रकार तैयार किया हुआ शीतल जल तृषाशामक, मनोह्लादक, सुपाच्य और सुस्वादु होगा। इतना ध्यान रखें कि पानी रखने का स्थान ऐसा हो जहा सूर्य की किरणें सीधी न पड़ती हो, घड़ा के ऊपर गीला कपडा लपेट कर रखना चाहिए तथा घड़े का मुख ढक करके रखें, जिससे घड़े के अन्दर चीटी कीड़े आदि का प्रवेश न हो सके।

ग्रीष्मऋतु के कुछ प्रमुख रोग

स्वास्थ्य की दृष्टि से ग्रीष्मऋतु एक अभिशाप ही है, इस ऋतु मे न केवल शारीरिक एव मानसिक शक्ति का ह्रास होता है, अपितु कुछ ऐसे भयकर रोगो का प्रादुर्भाव होता है, जिससे स्वास्थ्य की रक्षा करना बहुत कठिन हो जाता है। अत इन भयकर रोगो से बचाव किस प्रकार हो सकता है, उसके सम्बन्ध मे सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

अंशुघात (लू लगाना)—

ग्रीष्मऋतु का यह आकस्मिक रोग है। इस रोग से कब किस स्थान या अवस्था मे कौन कहाँ पर आक्रान्त हो जायगा-कोई ठीक नही है। लू लगने के कुछ मुख्य कारण ये हैं—तेज धूप मे अधिक परिश्रम करना तथा अधिक मार्ग चलना, परिश्रम या मार्ग चलने के बाद बिना विश्राम किये तुरन्त पानी पी लेना, वायुरहित तथा अधिक उष्ण स्थान मे परिश्रम करना, नगे पैर तप्त जमीन पर चलना, बिना छाता लगाये नगे सिर तथा नगे बदन चलना—

इत्यादि कारणो से लू लगने की अधिक सम्भावना रहती है, विशेष कर दुर्बलता, मद्यपान, ज्वर, कोष्ठबद्धता आदि कारणो से लू शीघ्र ही लग जाती है।

अतएव लू से बचने के लिए—यदि किसी अत्यावश्यक काम के लिये तेज धूप मे जाना ही पड़े तो घर से निकलने के पहले पूर्णमात्रा मे शीतल जल पीकर ही घर से निकलें, जेब मे प्याज या कपूर का टुकडा रखें तथा इसे कभी-कभी सूँघते भी रहे। सफेद खादी या सफेद मोटे वस्त्र से शरीर विशेषत सिर और गर्दन के पीछे के हिस्से को ढँक लें। भुने हुए कच्चे आम की केरी का पना पीना भी बहुत लाभदायक है। पाती (कागजी) नीबू का सेवन भी बहुत लाभदायक है, कोष्ठबद्धता न हो, इस पर ध्यान रखें।

यदि दुर्भाग्यवश लू लग ही जाय तो लू के रोगी को नमकीन जल पिलावें, रोगी को ठण्डे घर मे रखें—यह स्थान हवादार होना चाहिए। लू के रोगी को आम-नीबू कपूर आदि के उपयोग से काफी लाभ होता है। यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिये कि लू से बचने के लिए पर्याप्त जल और लवण का भाग शरीर मे मौजूद रहना आवश्यक है। पसीना द्वारा जल और लवण का अधिकांश भाग शरीर से बाहर निकलता रहता है, अत. इसकी रक्षा के लिये आम का पना निम्नलिखित विधि से बना कर देना चाहिए—

आम की कच्ची कैरी (टिकुला) को आग मे भूनकर उसका रस—निचोड लें और उसमें आवश्यकतानुसार चीनी या मिश्री मिलाकर पीवें। कही-कही भोजनोत्तर भी इसे पिया जाता है।

इसी तरह इमली का पना भी लू से बचने के लिए सेवन किया जाता है। इसको बनाने की विधि निम्नलिखित है—

पकी इमली को २ घण्टे तक पानी मे भिगोकर इसे हाथ से खूब मल दें और छानकर इसमे आवश्यकतानुसार चीनी मिलाकर पीना चाहिए।

गरमी वा लू से बचने के लिए इमली का पानक बहुत उपयोगी है। इसके अतिरिक्त भोजन के साथ या भोजनोत्तर इसका व्यवहार कर सकते हैं परन्तु ध्यान रहे कि आम की अपेक्षा इमली में खट्टापन अधिक होने से इसका विशेष सेवन करना हानिकारक होता है।

लू लग जाने पर तत्काल कच्चे प्याज का रस निकाल कर रोगी को पिलाना चाहिये। बर्फ के टुकड़े चूसने के लिए मुँह मे डालते रहना और कपार पर बर्फ की थैली भी रखनी चाहिये। चने की सूखी पत्तियों को पानी में गलाकर रोगी के समस्त शरीर पर मल देना चाहिये।

हैजा—

आयुर्वेदीय सिद्धान्तानुसार जो मनुष्य बिना देश, काल का विचार किये ही अनाप शनाप अधिक भोजन करता है उसे अजीर्ण होकर हैजा (काँलरा) उत्पन्न होता है। हैजा का प्रकोप अत्यधिक गरमी पड़ने पर होता है और यह स्वाभाविक बात है कि अधिक गरमी पडने पर साधारण भोजन भी कठिनता से ही पचित होता है, ऐसी स्थिति मे यदि अत्यधिक भोजन किया जाय और उसमें भी गरिष्ठ (देर में हजम होने वाले) पदार्थ हों तो अजीर्ण होकर हैजा हो ही जायगा।

हैजे का साधारण लक्षण वमन और दस्त होना है, वमन और दस्त होते ही साधारण लोग समझ लेते हैं कि हैजा हुआ। इसमे प्रथम तो अतिसार आदि की तरह दस्त होते हैं, किन्तु पीछे पानी या चावलो के मांड़ के सदृश दस्त होने लगते हैं और वमन मे केवल पानी ही पानी निकलता है तथा पेशाब बन्द हो जाता है। हैजे की यह मोटा-मोटी पहचान (लक्षण) है।

हैजे से बचने के उपाय—

वैसे तो जितने भी रोग होते हैं वे सब मनुष्य के आहार विहार दोष के कारण ही होते हैं, साधारणतया मनुष्य की गलती से ही रोगोत्पत्ति का कारण माना गया है, परन्तु हैजे की गलती बहुत भयानक होती है, यदि मनुष्य अपनी गलती का सुधार करले तो कोई रोग हो ही नही सकता अस्तु, निम्नलिखित उपायो से हैजे से बचा जासकता है—

जहा अधिक गरमी पडने लगे, गन्दगी अधिक फैलने लगे तो, हैजे की सम्भावना समझनी चाहिए, अत. इनसे बचना चाहिए आतंकित नही होना चाहिये। अक्सर देखा गया है कि डरपोक व्यक्ति बहुत शीघ्र हैजे का शिकार बन जाते हैं। अत मन को शान्त रखे और सदा प्रसन्न

मन से रहें, हैजे के प्रकोप के समय सुगन्धित चीजें जैसे—कपूर, पिपरमेण्ट, इत्र आदि बराबर साथ रखें, निवास स्थान मे सुगन्धित धूप जलाये, जिससे वायु की परिशुद्धि हो, भोजन हलका और सुपाच्य थोडी मात्रा मे करें, दस्तावार दवा नही ले। विशेष सावधानी जल पर रखें, कूए या तालाब के पानी को उबालकर काम में ले। कुएं के पानी की परिशुद्धि के लिए उसमे पर्याप्त मात्रा मे कलई (चूना) डाल दें, इससे कुए का पानी स्वच्छ और कीटाणुरहित हो जाता है। भोजन के साथ अदरक, पुदीना और प्याज की चटनी का बराबर व्यवहार करें। बासी भोजन भूलकर भी न करें, बराबर ताजा और सुपाच्य भोजन करें। अर्क कपूर को पानी के साथ एक दो बार अवश्य व्यवहार करें।

मसूरिका—

मसूरिका (खसरा)—बच्चो के लिए यह रोग बडा कष्टदायक होता है, ऐसे बच्चे इस रोग से विशेष-तया आक्रात होते हैं, जिन्हे कफ की शिकायत अधिक बनी रहती है। जिन बच्चो में कफाधिक्य नही रहता, उनके शरीर मे यह रोग वृद्धिकर नही होता। इस रोग मे छोटी-छोटी फुन्सिया सर्वांग मे निकल आती हैं, बच्चे का शरीर इन फुन्सियो के कारण रक्तवर्ण सा हो जाता है, साथ ही बुखार, सर्दी, खांसी, न्यूमोनिया, आन्त्रिक ज्वर आदि उपद्रव भी देखे जाते हैं।

रोग के लक्षण मालूम होते ही लौंग, कूठ और तुलसी की पत्ती को पानी मे उबालकर पीने के लिए देना चाहिए। ब्राह्मीवटी १ गोली, मुक्तामस्म या पिष्टी चौथाई रत्ती, इन सबको एकत्र मिलाकर प्रात साय मधु मे मिलाकर दें। यदि कफाधिक्य हो तो चन्द्रामृत रस १ रत्ती, टकण २ रत्ती, प्रवालभस्म १ रत्ती, कस्तूरी चौथाई रत्ती—इन सबको एकत्र मिलाकर प्रात., दोपहर और शाम को पान का रस और शहद में मिलाकर देने से शीघ्र लाभ होता है।

वर्षा ऋतु मे स्वस्थ कैसे रहें : पृष्ठ २९६ का शेषांश

लवणभास्कर चूर्ण मिलाकर भोजन के साथ या बाद मे खाना चाहिए। यदि देशी पके आम मिले तो उन्हे ही कई बार चूसें। अन्न खाना छोड दें। एक दो दिन मे अरुचि या मन्दाग्नि दूर हो जायगी और भूख लगने लगेगी। सग्रहणी आदि रोगो में भी इन्ही उपचारो को अपनाया जा सकता है। प्रत्येक दशा मे पथ्य का आचरण करें।

वात रोग

शरीर के किसी भी भाग मे दर्द हो जाने पर वहा पर सरसों के तेल मे लहसुन या अजवायन या दोनो पकाकर मालिश करें तो दर्द दूर हो जायगा। गठिया हो जाने पर महानारायण तेल की मालिश करें तथा महायोगराज गुग्गुलु साय-प्रात गर्म जल से खायें।

ज्वर

आजकल मलेरिया और फायलेरिया के मच्छरो द्वारा काटे जाने के कारण मलेरिया और फायलेरिया का ज्वर हो जाता है। तालाब आदि के दूषित जल का सेवन करने, टाइफाइड, कालाजार आदि ज्वरो का सक्रमण हो जाता है। ऐसी दशा मे जल खौलाकर नये मिट्टी के घडे मे रख दें और यही जल रोगी को पीने के लिये दे। तुलसी के पत्ते अद्रक और कालीमिर्च का काढा बनाकर पिलाये। मूंग और पुराने चावल की खिचडी, परवल का यूष, नीबू, मुसम्बी और मीठा अनार आवश्यकतानुसार खाने के लिये देवे। गोमूत्र एक तोला से चार तोला तक अवस्था के अनुसार रोगी को पिलाये। इसके लिये लाल या काली गाय अधिक उपयुक्त होती हैं। अभाव मे किसी भी गाय का मूत्र काम मे लिया जा सकता है। शहद मिलाकर या बिना शहद मिलाये गोमूत्र का प्रयोग हो सकता है। इससे तीनो प्रकार के ज्वरो मे लाभ होगा।

विशेष-ध्यान

वर्षाऋतु में मक्खियो का उपद्रव बहुत बढ जाता है। मक्खियो से विशेष सावधान रहना चाहिये। पानी एव पीने की वस्तुओ को संभालकर रखना चाहिए। नल के पानी को छोडकर शेष कूआ, तालाब या नदी का पानी बिना उबाले नही पीना चाहिये। किसी भी दशा मे बासी भोजन का उपयोग न करे। बहुत भूख लगने पर कम से कम खाये। नीबू, अद्रक, लहसुन, प्याज इनमे से एक-न-एक वस्तु आपके भोजन मे अवश्य रहनी चाहिए। जब तक आम मिलें तब तक कम से कम एक आम प्रतिदिन लें।

हमारे भारतवर्ष मे ६ ऋतुयें होती हैं। प्रत्येक ऋतु दो मास तक की रहती है। इस प्रकार यहा दो महीने में एक ऋतु का विभाजन प्रकृति के अनुसार किया गया है। विभाजन निम्न प्रकार से किया गया है—

माघ-फाल्गुन	शिशिर ऋतु
चैत्र-वैशाख	वसन्त ,,
ज्येष्ठ-अषाढ़	ग्रीष्म ,,
श्रावण-भाद्रपद	वर्षा ,,
आश्विन-कार्तिक	शरद ,,
मृगशिर-पौष	हेमन्त ,,

हमें यहा वसन्त ऋतु पर विचार करना है। वसन्त चैत्र एव वैशाख मास मे होती है। किन्तु हम इसको पर्व (त्योहार) के रूप में माघ शुक्ल पक्ष की पचमी से ही मान लेते हैं। चैत्र महीने से यह वसन्त पचमी ठीक चालीस दिन पूर्व मे होती है।

चालीस दिन पहले मानने का पक्ष भी कुछ ठीक जान पडता है, क्योंकि ऋतु का चालीसवा दिन गर्भ काल के नाम से प्रसिद्ध बताते हैं।

वैसे हम प्रत्यक्ष रूप से देखते भी हैं कि इस समय आम मे बौर आने लगते हैं, सरसो विकसित होकर खेतो की सुन्दरता बढ़ाने लगती है। कोयल भी आम पर कूकने लगती है। इस प्रकार से वसन्त का आगमन माघ शुक्ल पचमी से ही स्पष्टत देखने को मिलने लगता है। किन्तु वसन्त चर्या हमको यहा से प्रारम्भ न कर फाल्गुन मास के अन्तिम सप्ताह से शिशिर ऋतु चर्या को छोडने के उपक्रम के साथ-साथ वसन्त-चर्या का उपक्रम प्रारम्भ कर देना चाहिये।

मधु और माधव दोनो ही शब्द मधु से बने हैं। मधु रस एक प्रकार का विशेष रस है, जो प्राणी एव वृक्षादि को आह्लादित करता है। इसीलिए इसको वसन्त नाम से कहा जाता है।

वृष्टि काल के बिना ही इस मधु रस से सारे वृक्षलतादि अंकुरित हो उठते हैं तथा पुष्प भी मन को मोहने लगते हैं। इसी वसन्त ऋतु में कानन एव कान्ता दोनों का विशेष रूप से अनुभव होता है, क्योंकि 'वसन्त्यास्मिन् सुमन्ति' आनन्दानुभव प्राणी इसी समय विशेष रूप से करता है।

इस कारण से भी इसको वसन्त कहते हैं। यह ऋतु प्राणियो के साथ ही साथ वृक्षादि को पल्लवित करने वाले मधु रस को प्रकृति से प्राप्त करती है। मधु इसकी प्राप्ति से इसको वसन्त कहा जाय, तो भी अनुपयुक्त नहीं होगा। शिशिर ऋतु मे सचित कफ वसन्त मे सूर्यरश्मि से तपकर अग्नि को मन्द करता है, मदाग्नि रोगोत्पादक है। चरक ने भी इस विषय मे कहा है—

> वसन्ते निचित श्लेष्मा दिनकृद्भाभिरीरित. ।
> कायाग्नि बाधते रोगास्तत. प्रकुरुते बहून् ॥
> —च० सू० अ० ६-२२

अत. शीतोद्‌भव दोषों का नाश वसन्त में कर लेना चाहिए। कहा है—

> "शीतोद्‌भव दोष चयं वसन्ते।"

वसन्त ऋतु में वमनादि कर्म का आचरण करें। अष्टांगकार भी शिशिर ऋतु मे सचित कफ-नाश के लिये तीक्ष्ण वमन रूक्ष भोजन तथा व्यायाम से कफ को जीतने के लिये कहते हैं। कहा है—

> तीक्ष्णैर्वमनस्याद्यं लघुरुक्षैश्च भोजनैः ।
> व्यायामोद्वर्तनाघातैर्जित्वा श्लेष्माणमुल्बणम् ॥

वमन के बाद आयुर्वेद मे तैलाभ्यङ्ग का वर्णन किया गया है। धर्मशास्त्र ने भी अभ्यङ्ग नही करने वालो को नरकगामी बताया है।

सवत्सरारम्भ तथा वसन्त, दीपमलिका उत्सव पर जो मनुष्य तैलाभ्यङ्ग नही करता है वह नरक में जाता है ऐसा निर्णय-सिन्धु में वशिष्ठ वाक्य है—

> वत्सरादौ वसन्तादौ बलिराज्ये तथैव च ।
> तैलाभ्यङ्गमकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते ॥

आयुर्विज्ञान तैलाभ्यङ्ग के लिए कहता है कि मनुष्यो को प्रतिदिन तैलाभ्यङ्ग का आचरण करना चाहिए। अभ्यङ्ग श्रम (थकान) वाले रोग एव वृद्धावस्था नाशक है। दृष्टि तीव्र करता है। आयुवर्धक, त्वक् को सुकोमल तथा शरीर को दृढ करता है अष्टाङ्गकार ने कहा है—

> अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं सजराश्रम वातहा।
> दृष्टि प्रसाद पुष्ट्यायु स्वप्नसुत्वदार्ढ्यकृत ॥

चरक ने भी इस विषय को अछूता नही छोडा है । वे लिखते हैं स्नेह का प्रयोग अगर मिट्टी के घडे पर किया जाय तो वह भी स्नेहाभिषिक्त होकर एक विशेष कान्ति को प्राप्त कर लेता है। मृत चर्म के ऊपर स्नेह का प्रयोग करने से वह भी चमक उठता है तथा चर्म टिकाऊ बन जाता है।

बागने से गाड़ी की धुरी सशक्त बन जाती है। निर्जीव भी जब स्नेह के प्रभाव से सुकोमल एव कार्य में दृढ़ता तथा तेजस्विता को प्राप्त करते हैं, यदि मानव त्वक् सुकोमल बन जाए, तो इसमे क्या विशेषता है ? तैलाभ्यङ्ग करने वाला मनुष्य वायुजनित पीडा, श्रम तथा कष्ट को सहन करने वाला बन जाता है । वायु विशेषत स्पर्शेन्द्रिय में विद्यमान रहती है तथा स्पर्शेन्द्रिय त्वगाश्रित है ।

अभ्यङ्ग से सहसा आघात लगने पर भी शरीर विकार को प्राप्त नही होता है।

प्रति दिन इस अभ्यङ्ग आचरण से अङ्ग-प्रत्यङ्ग बलिष्ठ, सुन्दर तथा वृद्धावस्था को दूर करता है। मालिश करने वाले का शरीर एक विशेष प्रकार की कान्ति को ग्रहण कर लेता है। शरीर का रूखापन, ऐंठन, श्रम, हाथ पैर का सो जाना इत्यादि समाप्त हो जाते हैं। दृष्टि निर्मल होती है। पैरो पर अभ्यङ्ग करने से पैरो में गृध्रसी, पैरो मे बिवाई फटना तथा सिरा स्नायु सकोच नष्ट होते हैं।

इन उपर्युक्त गुणो के कारण मनुष्यो को अधिकाधिक रूप से अभ्यङ्ग का सेवन करना चाहिये। तैलाभ्यङ्ग के पश्चात धूप-सेवन करना चाहिये। (धूप सेवन उन्ही को करना चाहिए, जो पूर्व से उसके अभ्यस्त हो। प्रत्येक के लिए यह आवश्यक नही है कि वे धूप का सेवन करें) कवलग्रह, अञ्जन तथा उष्ण जल से शौचविधि(शौचकार्य, दन्तधावन तथा स्नानादि) कुसुमागम के लिए बताये हैं। जैसा कहा है —

व्यायामोद्वर्तनं धूमं कवलग्रहमञ्जनम् ।
मुखाम्बुना शौचविधिं शीलयेत्कुसुमागमे ॥

—च. सू अ० ६।२४

बढ़े हुए कफ को व्यायाम, उद्वर्तनादि से जीतकर चन्दन, अगरू, कुंकुमादि से अनुलेपन कर स्नान करे। भोजन के लिए पुराने यव, गोधूम का प्रयोग कर। भोजनोपरान्त विभिन्न वृक्षो के पुष्पो से सुगन्धित वनो से आनन्द प्राप्त करें।

मध्याह्न मे गोष्ठी तथा मनमोहक विचित्र कथाओ मे अपना समय व्यतीत करे।

वसन्तकाल मे गुरु (भारी) शीत (ठडे) एव दिन का शयन, स्निग्ध, अम्ल, मधुरादि को छोड देना चाहिए। शरद एव वसन्त काल मे रूक्ष भोजन को विशेष प्रकार से काम मे लेना चाहिए। चरक के विमान स्थान मे कहा है कि कटु तिक्त एव कषाय वात को उत्पन्न करते है। मधुर अम्ल, लवण ये वात के शमन करने वाले हैं। मधुर, अम्ल, लवण श्लेष्माजनक हैं।

कटु, तिक्त, कषाय श्लेष्मा का शमन करते हैं। सब का साराश अष्टाग हृदय मे एक ही श्लोक मे इतनी सुन्दरता से भर दिया है, जैसे विहारी कवि ने अपने दोहो मे गागर में सागर भरने की कहावत को चरितार्थ कर दिखाया है।

वे कहते हैं, अपने शरीर के लिए हितकर भोजन करना चाहिए। विषयो मे अनासक्त की तरह से रहना चाहिए। दान देने वाला, सत्य बोलने वाला, क्षमाशील, वृद्धो की सेवा-सुश्रूषा करने वाला मनुष्य प्रतिदिन नीरोग रहता है। जैसा कहा भी है—

नित्य हिताहार विहार सेवी,
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ॥
दाताः सम. सत्यपर' क्षमावा,
नाप्तोपसेवी चभवत्यरोग' ॥

प्रत्येक ऋतु के अन्तिम सप्ताह मे उस ऋतुचर्या को छोडकर उपक्रम करना चाहिए और इस उपक्रम के साथ ही आने वाली ऋतु की विधि का आचरण करने से हानि होती है और मनुष्य रोगी बन जाता है, क्योकि रोग असात्म्यज होते है।

—वैद्य श्री यदुनन्दन त्रिपाठी,
कठेरा वाली चौकी, नाथद्वारा (राज०)

वायुर्वात्युत्तर शीतो रजोधूमाकुला दिशा ।
छन्नस्तुपारै सविता हिमावद्धा जलाशया ॥

उत्तर दिशा से शीतल वायु बहाने वाली हेमन्त ऋतु की सभी दिशायें रज कण तथा धुयें से व्याप्त रहती है। सूर्य देव कुहरे से छिपे रहते है और जलाशय बरफ से ढके रहते हैं। इस प्रकार शीतकाल की ठण्डी हवा के स्पर्श से (आमाशय मे ही) सरुद्ध हुई स्वस्थ मनुष्यो की जठराग्नि हेमन्त ऋतु मे प्रबल रहती है। इसलिये स्निग्ध और भारी पदार्थ खाने से भी वे हजम हो जाते हैं।

हेमन्त ऋतु का आहार--इस ऋतु मे भारी और स्निग्ध पदार्थ खाने चाहिए। इस ऋतु मे रात बड़ी होने से रात का किया हुआ आहार जल्दी हजम हो जाता है और सवेरे ही भूख लगने लग जाती है। इसलिये सवेरे कुछ पाक, लड्डू या अन्य वस्तु का नास्ते के रूप मे सेवन करना चाहिए।

इस ऋतु मे स्निग्ध, मधुर, खट्टे, खारे पदार्थ सेवन करने चाहिए। जो मासाहारी हैं वे बिलों मे रहने वाले (बिलेशय) तथा बाराह, वनभैसा, साभर, गैडा आदि महामृग, बतख, जलमुर्गी, हस, सारस, बगुला, चक्रवाक, क्रौंच आदि जलचर, मछली, कछुआ, रोहू मछली, पढिना मछली, घड़ियाल, मगर, केकडा, घोघा, शुक्ति आदि मत्स्य और शेर, रीछ, बाघ, बाज पक्षी, कुलिंज पक्षी आदि प्रसर श्रेणी के जीवो का मास खा सकते हैं। ऊख या गेहू, चावल की शराब थोडे परिमाण मे ले सकते हैं। अन्य दिनो मे नया अन्न वर्जित किया गया है, परन्तु इस ऋतु में नया अन्न खाना चाहिए। गेहू, उड़द, दूध, चरबी, तैल और ऊन की अनेक प्रकार की गर्म वस्तु उपयोग में लानी चाहिये।

हेमन्त ऋतु का विहार—व्यायाम, तैलमर्दन, सिर में तेल लगाना, उबटन, गरम जल से स्नान और गर्मी पहुंचा कर पसीना निकालना हितकारी है। धूम्रपान और वमन भी करना चाहिए जिससे संचित श्लेष्मा कुछ हानि न पहुँचा सके। हाथ पाव धोने के लिये गुनगुना पानी का उपयोग करना चाहिए। कमरे मे कोयला सुलगाकर सिगड़ी या बरोसी रखें जिससे कमरा गरम रहे। इस ऋतु मे आग तापना और युक्तिपूर्वक सूर्य की किरणो से शरीर को गरम करने का विधान है।*

यथा रुचि सूर्यरश्मि और निर्धूम अग्नि को तापकर शरीर में गर्मी पहुचानी चाहिए। सूर्य की रश्मि पीठ की ओर, अग्नि पेट की ओर सेंकना चाहिए। शौचकर्म के लिए जल गुनगुना लेना चाहिये। ऐसे ही कमरे में ऊनी सूती रेशमी अथवा रुई भरे गरम अनेक कपड़े ओढकर और बिछाकर सोवें। कुशल मनुष्यो के साथ कुश्ती लड़ना, पैरो से देह दबवाना और कस्तूरी केसर अगर आदि जलाकर कपडे धूपित करना चाहिए। जिससे वस्त्रों में कीटाणु सम्भव न हो। जूते और मोजे पहनना चाहिए। खुले पाव नही रहना चाहिए।

---

* सेवनं सूर्ये रश्मीना हुताशस्य च मात्रया ।
यथारुचिस्तु किरणान् निर्धूम च हुताशनम् ॥
पृष्ठतोऽर्कं निषेवेत जठरेण हुताशनम् ।
नात्युष्ण शीत सलिलै शौचं कुर्यात् प्रयत्नत ॥

****

शिशिर ऋतु वर्णन

शिशिरे शीतमधिक मेघमारुतवर्षजम् ।
रोक्ष्यं चवानज···· ···· ···· ···· ···· ।। वाग्भट
बहुल शिशिर वातारिकिञ्चिदुद्मनशस्या ।
भवति वसुमतीयं पक्वशस्येस्तु पीता ।।

शिशिर ऋतु मे सर्दी और भी अधिक पडती है। वायु कर्कश बहता है जिससे होठ फट जाते हैं। पावो मे बिवाई फट जाती हैं। कुछ बादल बूंदी भी इस ऋतु मे हो जाती है। अत्यन्त ठण्डी हवा से कुछ फसल और घास उत्पन्न होती है। पृथ्वी पर रवी की फसल पकने लगती है। कही-कही कोहरा या पाला पडता है जिससे अधिक सर्दी एव अधिक रूक्षता उत्पन्न होती है।

शिशिर ऋतु का आहार[१]

इस ऋतु में हेमन्त ऋतु मे बताया आहार विशेष रूप से सेवन करना चाहिए। हरीतकी और पिप्पली समान मात्रा मिलाकर लेवे। बनशूकर का मास, सुगन्धित अवलेह, चटनी, सूरण की तरकारी, वरा, वटी तथा मैदे की बनी हुई भोज्य सामग्री खावे।

हल्का, रूक्ष और वायुकारक पदार्थ, अल्पाहार और अधिक जल मिले पदार्थ शर्बत आदि से परहेज रखें।

शिशिर ऋतु का बिहार[२]

इस ऋतु मे आदानकाल भी प्रारम्भ हो जाता है, इसलिए इस ऋतु की सर्दी मे रूक्षता मिली होने के कारण गर्मी के समय टहलना और विशेषकर गरम पानी से ही स्नान करना चाहिये। कटु, तीक्ष्ण, कषाय, वातकारक हल्के और शीतल पदार्थों का अन्नपान नही करे।

इस मौसम मे मैथुन योग्य व्यक्तियो को अपनी प्रिया के साथ मैथुन करना चाहिए। मैथुन के विषय मे पिछले पृष्ठो मे लिखा जा चुका है।

इस ऋतु मे वातश्लेष्मिक ज्वर, वातज रोग, कास इत्यादि वात कफज रोग हो जाते हैं। इनसे बचते रहना चाहिए। इसके लिए पौष्टिक भोजन करना, व्यायाम करना, गरम ऊनी कपड़े पहनना हितकर है।

रतिसुख चाहने वाले व्यक्ति को वाजीकरण औषधियो का प्रयोग भी इसी ऋतु में करना चाहिए। इसके लिए दूध भी सर्वश्रेष्ठ बाजीकरण द्रव्य है।

---

[१] सर्वं हिमोक्तं शिशिरे प्रयोज्य
पथ्याकरणा तुल्य समा च सेव्या ।
बराह बदनान्सुकृतान् प्रलेहान्
स्यात्सूरणं वै वटकाश्च भक्ष्याः ।।
पिष्टान्न मन्नं वट भोजनाति
सेवेत सर्वनाति शीत काले ।
सार्द्रकाद्रा सन्धाना सवाल्हीका ससैन्धवा
सस्नेहा कामिनी चेर्यं कुशिरा शिशिरे हिता ।।

[२] आभुज्य सेवेत जल सुखोष्णम्
कान्तायुतो वांसगृहे वसेत् ।।

स्थली, वास्तु और वास स्थान

श्री तारा शङ्कर वैद्य

स्थली

गृह निर्माण के लिए अभिलाषी प्रत्येक व्यक्ति भूमि चयन करते समय यह चाहता है कि इस पर बने गृह के निवासी स्वस्थ एवं प्रसन्न रहे। अत वह स्वास्थ्य विज्ञान के दृष्टिकोण को सर्वोपरि रखता हुआ भूमि का चयन करता है। इस निमित्त व्यवहारिक दृष्टिकोण ग्रन्थो में लिखा हुआ है। किन्तु मनस्तोष जो स्वास्थ्य के सबसे बड़े लक्षण "प्रसन्नात्मेन्द्रिय मन" का ज्येष्ठ-श्रेष्ठ भाग नही तो १/२ अवश्य है का, उल्लेख आजकल बृहदाकार ग्रन्थो में नही मिलता। गृहविज्ञान के बड़े बड़े वैज्ञानिक निर्वाचक के ऊपर ग्रंथो में उल्लेखित उचित भूमि के दृष्टिकोण को थोपते हुए बहुधा उसके मनस्तोष की उपेक्षा कर जाते हैं। इस प्रकार वे मन की शक्ति या मन के शब्दो पर ध्यान नही देते किन्तु भारतीय वास्तुविद्याविशारदो ने निर्वाचन की भावना या मनस्तोष को सर्वोपरि ध्यान मे रखा है। इतना कि उसके आगे अन्यान्य व्यवहारिक तथ्य उपेक्षित नही तो पीछे अवश्य लगते है। गर्ग आदि समस्त वास्तु-विद्या विशारदो का इस विषय मे एक मत है। केवल यह एक श्लोक पर्याप्त है—

मनसश्चक्षुषो यत्र सन्तोषो जायते भुवि।
तस्या कार्यं गृहं सर्वैरिति गर्गादिसम्मतम्॥

—गृहभूषण।

अर्थ स्पष्ट है—जो भूमि अपने मन और आखो में जँच उसी पर घर बनाना चाहिए। 'भिन्नो रुचिर्हि लोक' के अनुसार सबकी अलग अलग रुचि होती है। रुचि अपने मन का विषय है। उस प्रकार किसी का दबाव स्वीकृत नही होता। यदि बलपूर्वक दबाव डाला ही जाय तो वह अन्तत. स्वास्थ्य के विपरीत ही होता है। क्योकि मन की प्रसन्नता स्वास्थ्य का एक प्रमुख लक्षण और कारण है। इसलिए स्वास्थ्योपयोगी गृह निर्माण के लिए भूमि को मनानुकूल होने पर सर्वोपरि और सर्वप्रथम ध्यान देना चाहिए।

व्यवहार—भावना मे जहाँ मनस्तोष का स्थान है वही व्यवहार मे स्थली (भूमि) का आकार प्रकार परिस्थिति और मूल्य देखा जाता है। यहाँ मूल्य की बात समीचीन नही है। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से आकार-प्रकार एव परिस्थिति का मूल्य अधिक है अत उसी पर विचार हो रहा है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि आकार प्रकार तथा परिस्थिति भवन निर्माण एव उसके स्थायित्व की सुविधाओ को भी प्रभावित करती है। आकार के सम्बन्ध मे ग्राह्यभूमि का लक्षण इस प्रकार है—

देवानां तु द्विजातीनां चतुरस्रायता: श्रुता.।
वास्त्वाकृतिरनिम्ना सावाक्प्रत्यग्दिक्समुन्नता॥
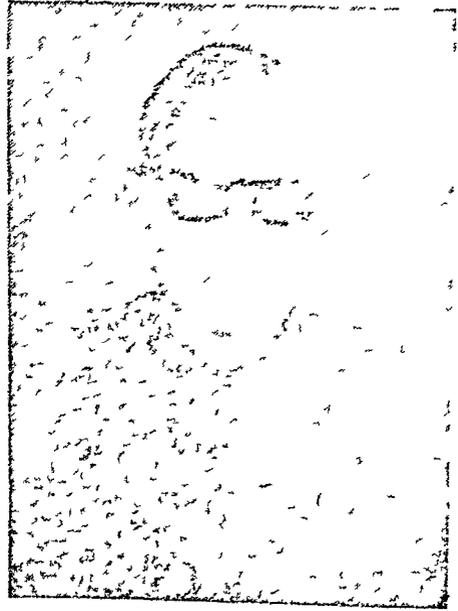
—मयमत अ० ३।

अर्थात् उत्तम कोटि के लोगो की आगमभूमि आयताकार (चौकोर) तथा पूरब पश्चिम कुछ उच्च होनी चाहिए।

प्रकार के सम्बन्ध में स्पष्ट उल्लेख है—

निष्कपाला निरुपला, क्रिमिवल्मीक वर्जिता।
अस्थिवर्ज्या न सुषिरा, तनुवालुक संयुता॥

अंगारैर्धान्यतैश्च शूलैश्चापि पृथग्विधैः ।
पङ्कसङ्कर कृपैश्च, दारुनिर्लोष्टकैरपि ॥
शर्करापिरयुक्ताया भस्माद्यैस्तु तुषैरपि ।
सा शुभा सर्ववर्णाना सर्वसम्पत्करी धरा ॥
— मयमत अ० ३ ।

अर्थ कठिन नही है उसमे स्पष्ट है कि मकान की प्रौढता एव अन्यान्य निर्माण स्थायित्व सम्बन्धी सुविधाओ के साथ ही स्वास्थ्यकरगृह की परिकल्पना भी प्रकार मे की गयी है। प्रकार मे भूमि के वर्ण रस गन्ध पर भी विचार किया गया है—

श्वेतारक्तक पीत कृष्ण वसुधा, स्वादुः कटुस्तिक्तकाः ।
काषायाघृतशोणिताम्बमदिरा, गन्धाः शुभा विप्रतः ॥
—मुहूर्त मार्तण्ड ।

परिस्थिति पर विचार करते हुए भारतीय वास्तुविद्या विशारदो ने बडा व्यापक एव वास्तविक दृष्टिकोण अपनाया है। श्लोक लिखकर कलेवर बढ़ाना उचित न होगा। इतना जानना आवश्यक है कि भूमि के चारो ओर पुष्पो-वृक्षो आदि से सुगन्धित वातावरण अपेक्षित है। सम्पन्न, शीलवान एव उच्चकोटि के स्वास्थ्य साधक व्यवसायियो का आवास होना चाहिये। इन सबका प्रभाव मानसिक सन्तोष और स्वास्थ्य पर उत्तम पडता है। झगडा झंझट या अरुचिकर अन्यान्य कार्यों की सम्भावना नही रहती। जिससे निवासियो के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पडता। भूमि मे गेहूँ आदि धान्य या सब प्रकार के बीजो के उगने की क्षमता होनी चाहिए। ताकि वह वन्ध्या न होकर परिवार की वृद्धि करने वाली हो और उस पर पुष्प-फल गृहपार्श्विक कृषि की भी व्यवस्था हो सके। उसके पूर्व और पर्याप्त पेय अथच ग्राह्य जल राशि होनी चाहिए।

अग्राह्य स्थली—उपर्युक्त आकार-प्रकार परिस्थिति से भिन्न भूमि गृह निर्माण योग्य नहीं है। गोल, त्रिकोण, विषम और वज्रवत् कठोर आदि भूमि के दुर्गुण हैं। सभास्थल, चैत्य, राजमहल और देवमन्दिर के समीप आवासीय भूमि होना उचित नही। इससे होने वाली प्रतिदिन की किचकिच और व्यवहारिक क्षति से, प्रत्येक चतुर व्यक्ति परिचित है। अत इस पर विस्तार उचित नही। वा मयमत मे इसका विस्तृत उल्लेख है।

स्थली का तात्पर्य आवासार्थ गृह निर्माण हेतु ग्रहीत पूरी भूमि (गृह तथा उसके चारो ओर की खुली भूमि) से है। गृह मात्र की ऊपरी भूमि को अधिष्ठान कहा गया है। इसी भूमि पर पहली मञ्जिल खडी होती है। भूमि से सतत निकलने वाली दूषित वायु से बचने, ऊचाई एव शोभा के लिए इसके नीचे उपपीठ (कुर्सी) बनानी चाहिए—

अधिष्ठानस्य चाधस्तादुपपीठं प्रयोजयेत् ।
रक्षार्थमुन्नतार्थञ्च, शोभार्थं तत्प्रवक्ष्यते ॥
—मयमत अ० १३ ।

कुल मिलाकर स्थली या भूमि का उसके ऊपर बनने वाले गृह के निवासियो के स्वास्थ्य पर गहरा और स्थायी प्रभाव पड़ता है। अत बहुत सोच विचार कर इस सम्बध मे कार्य करना चाहिऐ। यह भी जानना चाहिए कि भूमि या मकान का कार्य जीवन मे बारम्बार नही हुआ करता। इसलिए धैर्य और गम्भीरतापूर्वक पूरा विचार करना चाहिए। तद्विदो, अनुभवियो एवं हितैषियो से परामर्श मे भी न चूकना चाहिये। इससे लाभ ही होगा। हानि की सम्भावना नही होती।

वास्तु

आजकल वास्तु विद्या बहुत विकसित मानी जा रही है। किन्तु इसके प्रत्येक तथ्य की मौलिकता भारतीय वास्तु विद्या में अन्तर्निहित है। उदाहरण के लिये आजकल वातानुकूलित गृहनिर्माण को महत्व दिया जाता है। इसकी मौलिकता चरक शारीर स्थान अध्याय ८ मे वर्णित कुमारागार निर्माण मे लिखित "ऋतुसुखम्" शब्द है। वहाँ का वर्णन पूर्ण स्वास्थ्य वैज्ञानिक है। ऐसा लगता है—उससे उत्तम कुमारागार निर्माण कला आज नही मिलेगी। यही स्थिति सूतिकागार (सुश्रुत शारीर अ १०) की भी है। वास्तु मे रसोई का महत्व कम नही है। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से यह बहुत तथ्यपूर्ण है। किञ्चित् ध्यान दे—

आग्नेय्या दिशि कर्त्तव्यमावासस्यमहानसम् ।
गवाक्ष जाल मार्गाढ्यमर्घ भित्युपले पितम् ॥
चुल्ली तत्र प्रकर्तव्या पूर्व पश्चिमसायता ॥
—क्षेम कुतूहल

ऊपर के श्लोक मे वर्णित एक-एक तथ्य स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से परिपूर्ण है। ग्रह मे विभिन्न कक्ष स्नानघर,

शौचालय, शयनकक्ष, भण्डार गृह, अध्ययन कक्ष, स्वागत कक्ष, दुग्ध दधि घृत कक्ष, पशुशाला, गौशाला, अश्वशाला, हस्तिशाला आदि स्वास्थ्य एव सुविधा के दृष्टिकोण से कहा बनना चाहिए। इसका स्पष्ट वर्णन है—

स्नानादि पाक शयनास्त्र भुजेन्य धान्य,
भाण्डार दैवत गृहा दिशि पूर्वत. स्युः।
तन्मध्यतस्तु मथनाज्य पुरीप विद्याऽभ्या-
साख्य रोदनरतौषध सर्वधाम ॥—गृहभूषण

अर्थ स्पष्ट है। कौन कक्ष कहाँ बनना चाहिये ? कैसा बनना चाहिये ? ताकि वह स्वास्थ्य एव सौविध्य के दृष्टिकोण से परिपूर्ण हो। इसका पूरा उत्तर भारतीय वास्तु विद्या मे प्रदत्त है। भित्तिमूल (नीव), भित्ति, तल (फर्श), प्रणालक, वितान, द्वार, वातायन (खिडकी), वरामदा और गवाक्ष आदि के स्वास्थ्यकर दृष्टिकोण से बनाने का विधान बताया गया है। सबकी लम्बाई चौडाई आदि भी लिखी है।

भारतीय वास्तु विद्या विशारद महामुनि मय श्रेष्ठतम नगर नियोजक (टाउन प्लानर) और दुर्गनिर्माता भी थे। पुराणो के मत से ये रावण के श्वसुर अर्थात् मन्दोदरी के थे। पिता अलका एव लकापुरी का निर्माण उन्ही का कौशल है।

स्वास्थ्यरक्षण हेतु उपयोग

स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से उत्तम निर्मित उपयोगी स्थली और वास्तु का इस दृष्टिकोण से सदुपयोग न हो तो वह अस्वास्थ्यकर ही होगा। इसलिये स्थली और वास्तु का स्वास्थ्य रक्षण हेतु उपयोग भी जानना आवश्यक है। ऋतु के दृष्टिकोण से वातातप आवागमनार्थ वातायनो का उपयोग, तल (फर्श) वितान (छत) और भित्ति की यथासमय स्वच्छता एव रगाई-पोताई स्वास्थ्य रक्षण हेतु आवश्यक है। इन साधारण बातो को सभी लोग जानते हैं। पर किस वस्तु की सफाई किस वस्तु से किस प्रकार करनी चाहिये ? इसे कम लोग जानते हैं। रोग के समय रोग के बाद एव सक्रामक रोगो मे स्थली और वास्तु की सफाई का ज्ञान आवश्यक है। यद्यपि यह विशेषज्ञो का विषय है तथापि यहा उपयोगी सामान्य जानकारी दी जारही है। वास्तु या घर मे भू शुद्धिका सामान्य प्रकार यह है—

भूशुद्धिर्मार्जनाद्दाहात् कालाद्गोक्रमणात्तथा।
सेकादुल्लेखनाल्लेपाद् गृह मार्जन लेपनात् ॥
— स्वस्थवृत्त समुच्चय

सामान्यतः जल से समय-समय पर धो देने से पक्की भूमि शुद्ध हो जाती है। आवश्यकतानुसार उसमें फेनाइल आदि कीटनाशक द्रव मिला देना चाहिए। कच्ची भूमि को गोवर से यथासमय लीप कर शुद्ध करना चाहिये। सक्रामक रोग की स्थिति मे उसमें यथोचित मात्रा में चूना मिला देना चाहिये। सक्रामक रोग का कीटाणु या चूहा आदि जहाँ मरा हो वहा भूमि को जला देना चाहिये।

पाराशर सहिता (शार्ङ्गधर सहिता प्रथमखण्ड परशुराम शास्त्री की टिप्पणी, निर्णय सागर मन्त्रालय, बम्बई का सन् १९२० का प्रकाशन) में वातालिका या प्लेग का वैज्ञानिक वर्णन है। उसमे लिखा है कि इस रोग के सक्रमण काल में पृथ्वी वाष्पवती होती है अर्थात् इसमें गैस उत्पन्न होने लगती है। ऐसी अवस्था में भूमि में जितने छिद्र हो उनमें फेनाइल या मिट्टी का तेल या चूना घोल से युक्त जल डालना चाहिये। उसमें से निकलने वाले चूहो को तत्काल मिट्टी का तेल छिडककर जला देना चाहिये। छिद्रो में चूनायुक्त गोवर भरकर ऊपर से मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए। भूमि के माध्यम से उत्पन्न रोगो मे प्लेग सर्वाधिक व्यापक है इसलिये उसपर विशेष ध्यान दिया गया।

दीवाल और खिडकी आदि पर समय-समय पर क्रिमिनाशक घोल यथा फेनाइलयुक्त जल, डी. डी. टी. या चूना जल समय-समय पर छिडकना चाहिए। दीवालो और उनके कोनो मे व्याप्त जाला मकडा भी यथासमय साफ कर देना चाहिये। शौचालयो, स्नानघरो, रसोईघर, प्रनालो आदि को भी क्रिमिनाशक घोल से यथासमय स्वच्छ करते रहना चाहिए।

विषय बहुत व्यापक है। इतने कम पन्नो में पूरा वर्णन असम्भव है। अत यहा दिग्दर्शन मात्र दिया गया है। इतना अवश्य कथनीय है कि स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से स्थली एव वास्तु का निर्माण जितना महत्वपूर्ण है। स्वास्थ्यरक्षण हेतु उनका उपयोग उससे कम महत्वपूर्ण नही है।

—श्री ताराशङ्कर जी वैद्य आयुर्वेदाचार्य,
रामपुरी, जगतगज, वाराणसी—२

स्वास्थ्य और वासस्थान

श्री डा० सिद्ध गोपाल पुरोहित एम० ए०, बी० ए० एम० एस०, डी० जे०

प्राचीन आयुर्वेद एव नीति शास्त्रज्ञो ने गृहभूषण मयमते, मुहूर्त्त मार्तण्ड, सुश्रुत, चरक एव याज्ञवल्य सहिता आदि ग्रन्थो में वास स्थान, चयन एव निर्माण, प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन किया है। आधुनिक विज्ञान शास्त्रियो ने भी पब्लिक हाईजिन एव हेल्थ मे इस पर पर्याप्त विचार किया है।

निवास स्थान का निर्माण करते समय निम्न श्रेष्ठ एव निन्दित बिन्दुओ को ध्यान मे रखना चाहिये—

श्रेष्ठ	निन्दित
१. जो कुछ नीची हो।	१. अत्यन्त ऊँची।
२. सूखी अर्थात् जहाँ वर्षा मे जल न भरे।	२ गीली रहने वाली।
३. कुछ गर्म रहती हो अर्थात् वहाँ वनस्पति पैदा हो सके।	३. अत्यन्त ठण्डी रहने वाली।
४. छिद्रयुक्त महीन बालू वाली भूमि।	४. जल रोकने वाली काली मिट्टी।
५ गोल, विषम, उत्तर पूर्व की।	५ देवताओ एव ब्राह्मणो को घर बनाने के लिये चौकोर तथा दक्षिण पश्चिम की भूमि निन्दित है।
६. घोडा, हाथी, बाँसुरी, वीणा, जलाशय, दुन्दभी की ध्वनि के पास का।	६ खपडा, पत्थर, कृमि, बामी और हड्डी से युक्त।
७. केसर, चमेली, कमल, गुलाब की गध, श्रेष्ठ गधयुक्त भूमि या पास का स्थान।	७. कोयला, वृक्ष की जडें, काटे या कूडे से भरे गड्ढे।
८. सम, ठोस भूमि जहाँ सभी उगता हो।	८ बडे छोटे ककडो, राख एव भुसी से भरे गड्ढे।
९ एक रग की भूमि।	९. अनेक रगवाली भूमि, दरार युक्त।
१० जिसमें बेल, नीम, सम्हालू, बहेड़ा, सप्तपर्ण एव आम के वृक्ष लगे हो।	१०. मछलियो की गन्ध, पक्षियो की गन्ध या सभाभवन, चैत्य वृक्ष राजमहल या देव मन्दिर के समीप।
११. दही, घी, मधु, तेल, रक्त गन्ध युक्त सफेद, लाल, पीली	११. गोल, त्रिकोण, विषम, वज्रतुल्य कठोर, कछुये के समान बीच में उभरी, चाडाल (मेहतर) के घर की छायायुक्त, चमडे के काम करने वालो के समीप
१२ छै रसो वाली, दक्षिण पश्चिम मे ऊँची, पूर्व उत्तर मे जल के निकट।	१२. शोभा रहित, जङ्गली, ऊसर भूमि, छिछले तालाब, बिना बँधे जलाशय के निकट।
१३ जिस भूमि को देखने से मन को सतोष एव प्रसन्नता प्राप्त हो।	१३. हवाई अड्डा, रेलवे स्टेशन के पास।
१४ पर्वत के शिखर पर छायायुक्त।	१४ समीप मे श्मसान, कारखाने, कूडा करकट के गढ्ढे वाली।

गृह निर्माण के समय निम्न सावधानिया रखनी चाहिये—

१ वास स्थान खुले स्थान मे हो जिससे शुद्ध हवा आती रहे।

२ मलमूत्र की नाली पृथ्वी के धरातल पर न हो।

३ गड्ढा, धोबीघाट और नाले के समीप की भूमि में घर न बनाये क्योकि सजीव पदार्थों की सडन के कारण दूषित वायु इकट्ठी होती रहती है।

४ घर दूर, दूर और ऊँचे जमीन की सतह मे बनाने चाहिए। जिससे भूमितल का जल सरलता से दूर चला जाय।

५. मलमूत्र और कूडे से भरे गढ्ढो पर मकान नही बनाना चाहिए।

६ घर के चारो ओर खुले स्थान मे वृक्ष लगाना चाहिये या लगे रहना चाहिए जिससे हवा की उष्णता में अधिक अन्तर ना आवे।

७. घर के चारो ओर इतना खुला स्थान भी हो कि जिसका क्षेत्रफल घर की ऊँचाई और चौडाई के क्षेत्रफल के बराबर हो जिससे घर में हवा का आवागमन ठीक से हो सके तथा सूर्य का प्रकाश अच्छी तरह आ सके।

८ घर का द्वार जिस दिशा में हो घर की ऊँचाई उस दिशा की सडक की चौडाई से अधिक न हो, किसी भी अवस्था मे घर की ऊँचाई ६५ फुट से ज्यादा न हो।

९. घर का द्वार जहाँ तक हो उत्तर या पूर्व दिशा की ओर होना चाहिए।

शयनागार—जहा तक हो मकान के दूसरे खण्ड पर हो इसका द्वार भी उत्तर या पूर्व दिशा की ओर होना चाहिए।

आँगन—घर के बाहर की ओर चौकोर आँगन होना चाहिए जिसमे एक ओर चौकोर हिस्से मे दूर्वा लगी रहे। दूर्वा को प्रतिदिन काटते रहना चाहिए।

कुँआ—ग्रामो मे घर के पास कुँआ होना चाहिए परन्तु यह ध्यान रहे कि मल मूत्र एव गन्दी नालियाँ उसके समीप न हो।

नींव—जमीन के नीचे जब कूडा फर्श आ जावे तब इसको पत्थर आदि से भरना चाहिये। इसको दीवाल से कुछ चौडी होना चाहिए। यह इतनी मजबूत होना चाहिए कि मकान का बोझ सम्हाल सके। नीव जमीन के तल से कम से कम २ फुट ऊँची रहनी चाहिए। नीव के ऊपर का फर्श पत्थर या सीमेन्ट से बनाना चाहिए। जहाँ भूमि गीली हो वहाँ की ठण्डी वायु से मकान की रक्षा के लिए मकान की कुर्सी बनानी चाहिए। यह कुर्सी पृथ्वी के धरातल से ऊँची होनी चाहिये क्योकि इससे नीचे मे भी उत्तम वायु का आवागमन होता है।
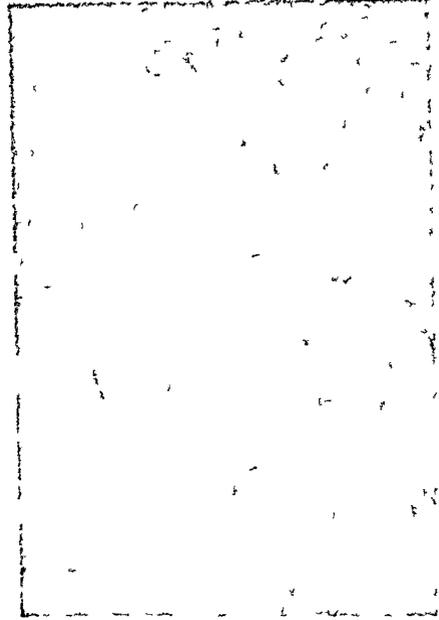
लेखक

दीवाल (भीत)—यह प्राय. मिट्टी, लकडी पत्थर ईंट से बनती है। दीवाल की दोनो ओर मिट्टी का पलस्टर लगाना चाहिए तथा प्रति वर्ष दीवाल को चूने, मिट्टी या गोबर से पुताई करानी चाहिये। सीमेन्ट या चूने की छपी दीवाल मजबूत रहती है।

दरवाजे एवं खिड़कियाँ—प्रत्येक दरवाजे में एक खिड़की एव एक दरवाजा होना चाहिये जो कम से कम साढे चार फुट ऊचा एव ढाई फूट चौडा हो। खिड़की उस दिशा मे लगानी चाहिए जिस दिशा मे से वायु आती हो।

फर्श—यह अप्रवेश्य पदार्थ (सीमेन्ट) से बनाना चाहिये। इसमे प्राय ईंट, पत्थर, चूना आदि का उपयोग किया जाता है।

छत—छत मे प्राय. कुछ ढालूपन रखना चाहिये जिससे वर्षा का पानी सरलता से बहकर निकल सके। घास पत्ता आदि से घर का छप्पर बनाना चाहिए। यह छप्पर अत्यन्त ठण्डा प्रकाश एव अच्छी वायु तथा स्वास्थ्य के लिए उत्तम रहता है। परन्तु इसमे साप, पक्षी, कीड़े आदि अपना घर बना लेते हैं तथा अग्नि लगने का भय रहता है। घर की छत को लोहे की टीन आदि से भी बनाते हैं तथा खपडो का भी उपयोग करते हैं। टीन वाली छत अत्यन्त गर्म होती है। इसमे वर्षा का पानी

[शेषांश पृष्ठ ३१७ पर]

स्वास्थ्य-संवर्धन मे सहायक स्थली, वास्तु और वासस्थान

स्थली चयन मे ध्यान देने योग्य बिन्दु

स्थली कई प्रकार की होती है । जैसे कणाश्म (Granite), चिकनी स्लेट (Clay slate), खरिया (Chalk), चूर्ण प्रस्तर तथा भ्राजिय चूर्ण प्रस्तर (Magnesium lime stone), सिकता प्रस्तर (Sand stone), उपल (Gravels), रेती (Sands), चिक्कण मिट्टी और कच्छार (Clay and aluvium), कृष्ट स्थली (Cultivated) और पाटस्थली या पूरित स्थली (Filled made-soil)। इनमे से पाटस्थली पर कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं —

१. पाटस्थली

पुराने तालाब, गड्ढे पोखरे खाइया, नीचे स्थान कूडा कर्कट से पटवाकर जब समतल बनाये जाते हैं तब उन स्थानो की जमीन को पाटस्थली कहते हैं। साधारणतया ऐसे स्थानो मे डाले हुए कूडे में जो अस्वास्थ्यकर जटिल सेन्द्रिय पदार्थ होते हैं वे भूयनकर जीवाणुओ द्वारा अनपायी खनिज द्रव्यो मे परिवर्तित होकर पानी के द्वारा जमीन मे प्रचूषित होते हैं। सेन्द्रिय द्रव्यो के सड़ने से वहा पर दलदलीवात Marshgas) उदजल शुल्वेय (Hydrogen Sulphide) तथा अन्य दूषित वात उत्पन्न होकर इधर-उधर फैलते हैं और आस-पास की हवा को दूषित करते है। इसके अतिरिक्त मक्खियाँ, चूहे, कीडे आदि उपद्रवी जन्तु भी उत्पन्न होते हैं। इसलिए यदि गढो को को पटवाकर पाटस्थली बनवाना हो तो निम्न बातो पर ध्यान देना चाहिए—

(क) गढे या तालाब पटवाने से पहले सूखे होने चाहिए यदि पानी से भरे हो तो पानी निकलवाकर उनको सुखाना चाहिये। यदि उनमे बरसात का पानी आकर इकट्ठा होता हो तो वह पानी उनमे जिस प्रकार से न आ सके इस प्रकार से (चारो ओर नाली या मुण्डेर बनवाकर) प्रबन्ध करना चाहिये ।

(ख) जो स्थान नगर, बस्ती या पीने के जलाशय के समीप हो उनको इस प्रकार पटवाने के काम मे न लायें।

(ग) कूडे कर्कट की तह ६ फुट से मोटी न होनी चाहिये और उसके ऊपर बीच मे ९ इञ्च मिट्टी या गिराये हुए मकानो का मलवा डालना चाहिये और फिर कूड़े की दूसरी तह बिछानी चाहिए। इस प्रकार कूडा और मिट्टी की जितनी तहे बैठ सकती हैं उतनी बिछा सकते हैं। दो तीन दिन से अधिक कूडा खुला रखना उचित नही। बस्ती की ओर कुछ टिट्टया भी लगवानी चाहिये, ताकि हवा के झोके से कूडा शहर की ओर न उड सके।

(घ) वर्षा ऋतु मे गढे पाटने का काम न किया जाय यदि कोई गड्ढा भरना हो तो बरसात से पहले उसको भरने और पाटने का काम पूरा किया जाय। इससे कोई नये छोटे मोटे गड्ढे नही बनते न मछलियाँ उत्पन्न होती हैं।

(ड) कूडे करकट के साथ मैला, मृत प्राणी तथा वध स्थान से फेके हुए प्राणियो के उच्छिष्टाग (Garbage) न मिलने चाहिए।

(च) कूडे करकट से भरा हुआ और मिट्टी से धोया हुआ स्थान आस-पास की भूमि से एक दो फुट ऊँचा रखना चाहिए, क्योकि कूडा धीरे-धीरे नीचे बैठ जाता है। इसके लिये अच्छा नियम तो यह होता है कि पहली कूडे की वह मिट्टी तोपने पर नीचे बैठने के पश्चात् उस पर दूसरी तह बनायी जाय।

२. स्थली वात

सब प्रकार की स्थली के आन्तरावकाशो मे (Inrerstices) चाहे कठिन से कठिन चट्टानें क्यो न हो, कुछ न कुछ हवा जरूर रहती है और उसकी राशि स्थली की सच्छिद्रता या घनता के अनुसार अधिक या कम होती है। उपल, रेती और सिकता-प्रस्तर इनसे बनी हुई स्थली छिदरी होने से अधिक वायु युक्त हुआ करती है। स्थली मे उत्पन्न होने वाली हवा निरन्तर बाहर वातावरण मे निकलती रहती हैं। निकलने की गति (१) स्थली और वातावरण के ताप पर निर्भर होती है। जब दोनो के ताप मे अन्तर अधिक होता है तब स्थली की अधिक हवा

निकलती है। (२) बरसात पर निर्भर होती हैं वर्षा से अनुस्थली जल बहुत ऊपर तक चढ़ता है। और उससे जमीन के भीतर की हवा बाहर निकाली जाती है। (३) वातावरण के भार (Pressure) पर निर्भर होती है। जब वातावरण का भार कम होता है तब अधिक हवा बाहर निकलती है।

कभी-कभी मोरी, परनाले, पोखरे, पाटस्थली इत्यादि मे उत्पन्न होने वाले दूषित वात तथा चूने वाली नालियो से बाहर आये हुए अगारवात (Coalgas) इतस्ततः फैल कर स्थलीवात मे मिल जाते हैं और उत्पत्ति के स्थान से बहुत दूर स्थान मे जमीन से बाहर आया करते है। इस लिये मकानो के भीतर की फर्श अप्रवेश्यस्वरूप की होनी चाहिए जिससे कि स्थली मे आने वाले या होने वाले वात मकान मे न आ सके।

३. स्थली क्लिन्नता

शुष्क स्थली स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छी होती है। क्लिन्नस्थली पर या उसके पास रहने वालो का स्वास्थ्य सदैव खराब रहता है। स्थली निम्न कारणो से तर होती है—

(१) प्रकृति— नीची सतह की, चिकनी (Clay) कछार मिट्टी सदैव तर रहती है। (२) जल मार्गो का न होना या अवरुद्ध हो जाना—बरसात का पानी निकल जाने के लिये जहा पर नैसर्गिक मार्ग नही होते वहाँ पर पानी स्थान-स्थान पर इकठ्ठा होकर दलदल बन जाती है। आज कल पक्की सडकें और आगगाडी के मार्ग बनवाने के लिए जब रास्ता बनवाया जाता है तब अपना खर्च कम करने के लिए नैसर्गिक जल मार्गों पर पुल नही बनाये जाते है। जिससे बरसाती पानी सडको के आस-पास इकठ्ठा होकर जमीन को तर करता है। (३) अप्रवेश्यस्तर की समीपता— यह स्तर समीप होने से अनुस्थली जल भी समीप रहता है और उसके कारण ऊपर की जमीन तर रहती है। अनुस्थली जल ५ फुट से अधिक समीप न होना चाहिए। (४) खाई, खन्दक, गड्ढा इनकी उपस्थिति—नवीन मकान, सड़कें, आग गाडी के मार्ग बनाते समय मिट्टी के लिए आस-पास बड़े-बड़े गड्ढे या खन्दक बनवाये जाते है और काम समाप्त होने पर वे पटवाये जाते हैं। ये गड्ढे बरसात मे पानी से भरकर सालभर जमीन को तर रखते हैं तथा मच्छरो की उत्पत्ति मे सहायता करते है। आगगाडी मार्ग के गडढे दोनो ओर नाली या खन्दक के तौर पर बनवाये जायें और उनको किसी नदी मे छोड दिया जाय। इससे उनमे पानी इकठ्ठा नही होगा। मकानो के लिए बनवाये गड्ढो को मकान के मलबे से भर देना चाहिये। (५) पानी कल का प्रबन्ध—आजकल नगरो, कस्बो मे पानी कल का प्रबन्ध किया जाता है। पानी की स्वच्छता की दृष्टि से यह प्रबन्ध आवश्यक होता है। परन्तु इसके पहले प्रत्येक बस्ती में परनाले का प्रबन्ध होना जरूरी होता है जो प्राय अधिक खर्च के कारण नही किया जाता। पानी के लिए कल होने से लोग अनावश्यक अधिक पानी खर्च करते हैं। परन्तु उसके निकल जाने का प्रबन्ध न होने से आस पास तथा कच्ची मोरियो मे वह इकठ्ठा होकर जमीन को तर कर देता है। इसके अतिरिक्त मच्छरो की उत्पत्ति में भी इससे सहायता होती है। आजकल नगरो, कस्बो तथा छोटी-छोटी बस्तियो में विषम ज्वर का प्रसार होने के जो कारण है उनमे परनाले के बिना पानी कल को जारी करना एक प्रधान कारण है। (६) नहरें और सिंचाई भी उस प्रदेश की स्थली को धीरे-धीरे तर करती हैं। इससे कुछ वर्षों बाद वह भूमि अस्वास्थ्यकर हो जाती है। अत केवल आवश्यक पानी देने के ऊपर तथा नहरो के द्वारा आये हुए अत्यधिक पानी बनाने के ऊपर ध्यान देना चाहिये।

४. स्थली जनित रोग

साधारणतया पूत्युपजीवी तृणाणु स्थली पर गिरने वाले सब प्राणिज तथा वनस्पतिज सेन्द्रिय पदार्थों का नाश करके उनको मिट्टी के साथ मिला देते हैं। इनमे यह गुण न होता तो आज पृथ्वी पर तिल धरने को जगह न होती और सब पृथ्वीतल प्राणियो और वनस्पतियो के मृत शरीरो से भरा रह जाता। परन्तु कभी-२ जब एक स्थान पर अधिक सेन्द्रिय पदार्थ इकट्ठा होते हैं तब वहा पर तृणाणुओ द्वारा उनके पूर्ण विघटन का कार्य नही हो सकता जिससे वहा की स्थली दूषित होकर जल तथा खाद्य द्रव्यो को भी दूषित कर सकती है।

जमीन जब मल मूत्र से तथा व्रणो के पूय से दूषित हो जाती है तब उनमे रहने वाले तृणाणु तथा कृमि कुछ काल तक जमीन में जीवन क्षय रहते है और उस अवधि

से ~~ल, मक्खियां, धूलि तथा दूषित स्थान से उत्पन्न होने वाली साग सब्जियों द्वारा मनुष्य में सक्रान्त होते हैं। जमीन में मिलने वाले विकारी तृषाणुओं और कृमियों से होने वाले रोगों में धनुर्वात, दुष्टशोथ (Malignant odema) वातिक कोथ (Gas gangrene) विसूचिका, आन्त्रिक अतिसार, अङ्गारक्षत (Anthrax) वल्मीकपद (Madura foot) अंकुश और स्फीत कृमि (इनका वर्णन 'व्याधियां और प्राथमिक उपचार में देखें) ये प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त तर स्थलों पर रहने से क्षय सन्धिवात, श्वसनक ज्वर आदि अन्य रोग भी दुर्बलता के कारण हो सकते हैं।

वास्तु (Building Site)

जिस भूमि पर निवास बनावाया जाता है उसको वास्तु कहते है। गृह निर्माण के पहले वास्तु का परीक्षण करना बहुत आवश्यक है। इस परीक्षण मे स्थली की ऊंचाई निचाई, प्रकृति और प्रकार तद्गत जल और ताप, आस-पास की परिस्थिति, सूर्य प्रकाश और शुद्ध वायु मिलने की सम्भावना आदि अनेक बातों का विचार करना पड़ता है। इसके लिए कुछ बातें इस प्रकार हैं—

(१) उच्चता—नीची स्थली पर बरसात का पानी इकट्ठा होकर उसको सदा के लिए क्लिन्न बनाता है। क्लिन्न स्थान अनारोग्यकर होने के कारण घर बनवाने के लिए स्थलो ऊंची होनी चाहिए जिससे बरसात का पानी इकट्ठा न होने पावे।

(२) प्रकार—कणाश्म, रेती आदि किट्ट वर्ग के स्थलों के प्रकार आरोग्यप्रद होते है और चिकनी मिट्टी कछार आदि कच्छ वर्ग के प्रकार अनारोग्यकर होते हैं। नगरों के आस-पास पाटस्थली घर बनवाने के लिए काम मे लायी जाती है। इसका उपयोग जहा तक होसके घरो के लिए न करना ही उचित है और यदि करना हो तो पटवाने का काम पूरा होने के १५-२० वर्षो के पश्चात् करना चाहिये। श्मशान या कब्रस्तान मे भी घर न बनवाना चाहिए।

खुलापन—घर चारो दिशाओं से कम से कम पूर्व और दक्षिण से खुला हो ताकि घर में काफी प्रकाश और प्रवात आ सके तथा घर के ऊपर सूर्य की रश्मियां सीधी गिर सकें।

(४) परिस्थिति—वास्तु के पास दलदली स्थान धान के खेत, गौशाला, अस्तबल, कूडाकर्कट या मैला डालने के स्थान, कारखाने, सार्वजनिक बखार, श्मशान, कब्रस्तान आदि न होने चाहिए।

(५) वनस्पतियां—घर के पास झाडी झखार न होना चाहिए। इससे यद्यपि घर कुछ ठंडा रहता है तथापि उससे प्रकाश और प्रवात के आवागमन मे बाधायें उत्पन्न होती है।

(६) अनुस्थली जल—यह ६ फूट से अधिक समीप न होना चाहिए तथा सालभर मे उसकी सतह (Leval) मे विशेषनिम्नोन्नता न होना चाहिए।

वास-गृह

घर कैसा हो—वैसे तो सब मनुष्य घरो मे ही रहते है। परन्तु जो घर गरमियो में लू से रक्षा करते हुए छाया देता है, वर्षा मे पानी से रक्षा करते हुए हवा देता है, जाड़े मे शीत से रक्षा करते हुए धूप देता है, अर्थात् जो सब मौसमो मे (ऋतुसुख) आराम दे सकता है, जो हमारी सब आवश्यकताओं (स्नान,शयन, अन्नरंधन, मूत्रमल विसर्जन इत्यादि कर्म तथा उनकी साधन सामग्री) को पूर्ण करता हुआ सचरण में बाधा नहीं करता (सुख प्रविचारण) तथा जो स्वास्थ्य को बनाये रखता है वही वास्तशास्त्रादृष्ट्या घर होता है। अत: यहाँ पर स्वास्थ्य रक्षा और आराम की दृष्टि से घरो के निर्माण मे जिन बातो पर ध्यान देना चाहिए उनका विवरण सक्षेप में दिया जाता है—

(१) प्रकाश और प्रवीजन—घर के प्रत्येक कमरे मे प्रकाश और प्रवीजन का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिए। शुद्ध वायु स्वास्थ्य के लिए क्यो आवश्यक है इसका विवरण पीछे किया गया है। प्रकाश का महत्व भी जीवाणुनाशन और 'घ' जीवतिक्ति की उत्पत्ति की दृष्टि से पी[illegible] से हो चुका है। घरो मे प्रकाश और हवा आने की दृष्टि [illegible] घरो का एक दुसरे से सलग्न रहना उचित नही है। घ[illegible] केवल दोनो पाखो से नही, पीछे से भी एक दूसरो [illegible] बहुत दूर होने चाहिए। इससे पारप्रकाश प्रवीजन [illegible] आसानी होती है।

(२) तापनिवारण—भारतवर्ष उष्ण प्रदेश है। इ[illegible] लिए घर की रचना और सामग्री ऐसी हो कि ताप क[illegible]

तकलीफ बहुत कम हो। इस दृष्टि से घर पूर्व या उत्तराभिमुख ऊंचे छत के अनेक खण्डो के हो, उनमें द्वार, गवाक्ष प्रवीजक काफी हो। बरामदा, ओसरा, छज्जा या बारजा, सहन, तलघर (तहखाना) आदि हो तथा घर निर्माण मे ऐसा मसाला काम मे लावें कि उष्णता का अवाहक हो।

(३) क्लिन्नता निवारण—घरो की तरी स्वास्थ्य नाशक होने से घरो मे जहा पर पानी का सम्बन्ध आता है, वहाँ पर मोरिया तथा नालिया बनवाकर उनको शहर के परनालो से जोड देना चाहिए या इस प्रकार का प्रबन्ध न हो तो उनको बहुत दूर छोडना चाहिए। फर्श चिकनी या नमकीन मिट्टी का न बनवाना चाहिए। ये जहाँ तक हो सके मिट्टी, ककड़, चूना, सीमेन्ट आदि सूखे या अप्रवेश्य पदार्थों का होना चाहिए। वर्षा म आस-पास गिरने वाले पानी को निकाल देन का उचित प्रबन्ध होना चाहिए। घरो मे जहा जहा पर पानी की टोटी या नल हो वहाँ वहाँ पर मोरी और नाली के अतिरिक्त आस पास की फर्श तथा दीवाल चूना या सीमेण्ट की होनी चाहिए। मकान का चौतरा (Plinth) नीचा न होना चाहिए। इस दृष्टि से घर का चौतरा आस-पास की भूमि या मुख्य रास्ते के समतल से कम से कम २ फुट ऊंचा होना चाहिए।

(४) शुद्ध पानी—जहा पर पानी कल (Water works) होती हैं वहाँ पर पानी का नल और टोटी घर मे लेने से पानी का प्रबन्ध आसानी से हो जाता है। परन्तु जहा पर पानी कल नही है और ऐसे स्थान ही बहुत हैं जहा पर कूए से पानी का प्रबन्ध करना पड़ता है। कुएं के प्रकार और जल शुद्धता की दृष्टि से उसकी बनावट का विवरण पीछे हो चुका है।

(५) अवस्कार का विनियोग (Disposal of refuse) अवस्कर तीन प्रकार का होता है—(अ) सूखा अवस्कर—इस मे राख, कागज, चिथडे आदि कूडे का समावेश होता है। (ब) तरल अवस्कर—इसमे रसोईघर, स्नान घर तथा अन्य स्थानो का खराब पानी होता है। (स) किट्ट—इसमे मल मूत्र का समावेश होता है। कूड़े कचरे के लिए घर में पात्र रखना चाहिए और प्रतिदिन एक या दो बार सडको के सार्वजनिक पात्रो मे उनका कूड़ा डालना चाहिए। तरल अवस्कार को खुली या बन्द नालियो द्वारा नगर के परनालो मे छोड देना चाहिए।

(६) पशुपालन—जहा मनुष्य रहे वहा गाय, भैंस, बकरी आदि को रखना हितकर नहीं होता क्योंकि इनके मलमूत्र से दुर्गन्ध फैलती है और मक्खिया बहुत आती हैं। इनके रहने का प्रबन्ध मकान से दूर अलग करना चाहिए। कम से कम शहरो मे जहाँ स्थान की कमी होती है वहा पर पशुशाला दूर रखना ही अच्छा है। गावो मे जहाँ पर आस-पास काफी खुला स्थान होता है वहाँ पर पशुशाला समीप होने से उतनी तकलीफ नहीं हो सकती।

(७) बाग बगीचा—घर के सहन, आगन, बरामदा आस-पास का खुला स्थान इनमे घासपात, साग सब्जी पेड पालव, झाड़ी झकार, बेलपत्तर आदि का होना स्वास्थ्य की दृष्टि से अनिष्टावह होता है, क्योंकि इनके होने से बाहर से शुद्ध वायु और धूप भीतर आने मे बाधा उत्पन्न होती है, रात के समय वातावरण दूषित हो जाता है, मच्छर, कीड़े, मकोड़े, साप, गिलहरी, गिरगिट चूहे आदि को रहने के लिए स्थान मिल जाता है, पानी इकट्ठा होने से पत्तियो के सड़ने से दुर्गन्ध और मच्छर उत्पन्न होते हैं और आस-पास सील बढ़ने मे सहायता होती है। इसलिए मकान के पास बाग बगीचा न होना ही श्रेयस्कर है।

वास गृह रचना (Construction)

(१) नीव (Foundation)—धरातल के ऊपर के खण्ड नीचे न धसने की दृष्टि से सम्पूर्ण गृहक्षेत्र मे विशेषतया भित्तियो के नीचे जमीन मे जो पीठ बनाया जाता है उसको नीव कहते हैं। यह नींव गृह विस्तार के अनुसार मजबूत होनो चाहिए। जब स्थली भुरभुरी और छिदरी होती है। तब घर की दीवालें चौडी होनी चाहिए और उनके नीचे चूने या सीमेन्ट का ठोस पीठ बनवाना चाहिए। यह पीठ जमीन खोदकर सम्पूर्ण गृहक्षेत्र पर तथा उसके चारो ओर एक बित्ता भर बाहर की भित्तियो के बाहर तक बनाया जाता है। इसकी मोटाई हाथ से कम न होनी चाहिये और यदि घर बहुत बड़ा अनेक खण्डो का हो तो इससे भी अधिक होनी चाहिए। भित्तियो की जुडाई स्थली समतल तक आने पर इस पीठ पर

सीसे (Lead) की चद्दर, धूम्रजतु (Asphalt), अङ्गारालित (Tarred) ईंटें या इसी काम के लिए बनाये हुए पत्थर इनकी २-४ अगुल मोटाई की तह बिछानी चाहिए। ईंटो मे स्थलीगत जलाश को सोखने का गुण होता है जिससे भित्तियो मे लोना लग जाता है और कभी-कभी यह लोना ऊपर के खण्ड तक पहुंचता है। इसको रोकने के लिए यह तह बिछायी जाती है।

(२) भित्तिया—दीवाल के लिये लकडी, पत्थर या ईंटो का उपयोग किया जाता है। लकडी का उपयोग बाहरी भित्तियो के लिए करना अच्छा नही, क्योंकि वह हवा और पानी से खराब हो जाती है। कमरो के भीतरी विभाजन (partition) के लिए ठीक है। भित्तियो के लिए ईंटें पक्की, एकाकारी, एकरगी और टकराने पर खनखनाहट पैदा करने वाली होनी चाहिए। कच्ची ईंटें बहुत छिद्री होती है और हवा एव जल को भीतर आने देती है। भित्तिया कम से कम दो बालिस्त मोटी होनी चाहिए। पतली दीवाल जाडे मे ठढ और गर्मी में गरम होकर घर को भी ठण्डा या गरम कर देती है। बाहरी दीवालें बीच में पोली रखने से या उसमे धूम्रजतु (Asphalt) भर देने से वे शीतोष्ण से घर की रक्षा अधिक कर सकती है। भित्तियो के ऊपर, भीतर और बाहर से चूना या सीमेट का पलस्तर करने से शीतोष्ण से अधिक रक्षा होती है, पानी सोखने का ईंटो का दोष, दूर हो जाता है, ऊबड-खाबड दीवालो मे कीड़ो-मकोड़ो के रहने के लिये जो स्थान मिला रहता है वह भी नष्ट हो जाता है तथा उनकी सफाई तथा रग सफेदी करने में आसानी हो जाती है। भित्तियो पर भीतर से रग या सफेदी की जाय। इसमे थोडी फिटकरी या गोद मिलाने से रग सफेदी जल्दी खराब नही होती। पलिस्तर बढिया हो तो तैली रग भी दिया जा सकता है। इससे दीवाल और भी अप्रवेश्य होती है और पानी से धोयी भी जा सकती है। भित्तियो में कही भी लकडी या लोहे का उपयोग किया हो तो उस पर अगाराल (Coaltar), रग या लाक्षी (Varnish) का लेप करें। इससे उनका परिरक्षण होता है। दीवालो मे दरवाजे, वातायन काफी सख्या मे हो और यदि दीवाले ऊची हो तो वहिस्पथ भी रखें। पहाड़ो मे जहाँ शीत अधिक होती है और अगीठिया जलायी जाती हैं वहां पर दीवालो मे धूमनी पथ (Chimney Etues) भी होने चाहिए।

(३) गृहवितान (Roots)—वर्षा और धूप से बचाने के लिए घरो के ऊपर जो बिछाया जाता है उसको वितान कहते है। जब वितान समतल या चपटा होता है तब इसको 'छत' (Terrase) कहते हैं। यह छत सीमेट, ईंटें, छड इत्यादि से पक्का बनाया जाता है। इस पर भी कुछ ढाल रखना चाहिए ताकि वर्षा का पानी ऊपर इकठ्ठा न होने पावे। छत गर्मियों मे गर्म होकर भीतर गरमी की तकलीफ हो सकती है इसलिए ये काफी ऊँचे होने चाहिए। इससे गर्मी की तकलीफ बहुत कम होती है।

ढालू वितान खपडा, घास फूँस की टट्टी या नालीदार (Corrugated) लोहा या अन्य अदह्वस्तु (Asbestos) के होते हैं। घास-फूस के वितान 'छप्पर' और खपडो के 'खपरैल' कहलाते हैं। गर्मी की तकलीफ कम करने की दृष्टि से घास फूस के वितान बहुत अच्छे होते हैं। इनमे दोष इतना ही है कि कीड़े-मकोड़े, साँप, बिच्छू, चूहे इत्यादि अपना डेरा जमाते हैं तथा इनके जल जाने का डर रहता है। नालीदार लोहे की चादरें गरमियो में बहुत गर्म हो जाती है और बरसात मे आवाज करती हैं। अदह्य वस्तु की चदरे इस दृष्टि से सर्वोत्तम होती है। छप्परो और खपरैलो मे खराब वायु बाहर जाने के लिए अलग प्रबन्ध नही करना पडता।

छत पर तथा खपरैल पर वर्षा का जो पानी गिरता है उसको सीमेट, चीनी मिट्टी या अयस के नलो के द्वारा सहन या आँगन तक ले आना चाहिए। दीवालो पर उनके बहने से या गिरने से वे तर हो जाती है। मकान के चारो ओर का सहन या आगन भी पक्का होना चाहिए तथा उसमे पक्की नालियाँ बनवाकर उनके द्वारा पानी बाहर निकाल देना चाहिए।

(४) गृह–तल (Floors)—नीचे के खण्ड का फर्श पक्का और अप्रवेश्य स्वरूप का होना चाहिए। इससे भूमिगत आर्द्रता, वायु इनका मकान मे प्रवेश नही होता तथा चूहे बिल नही बना सकते। इसके लिए रोडे, ईंटें, मिट्टी इनको देकर ऊपर से सीमेट, चूना, धूम्रजतु इनका पलिस्तर कर सकते है या चिकने पत्थर, खपट (Tiles)

संगमरमर इनको काम मे ला सकते हैं। ऊपर के खण्डो की फर्श लकडी की या सीमेंट की हो सकती हैं।

गृह-विशेष अंगो का वर्णन

रसोई घर—महावस या रसोईघर (Kitchen) स्वच्छ, प्रशान्त, सुप्रव्यजित और सुप्रकाशित होना चाहिए उसके पास शौच-स्थान, मूत्रस्थान, कचरे का स्थान, गोशाला, अस्तवल आदि खराब स्थान न होने चाहिए। मुख्य घर से भी यह कुछ अलग हो तो अच्छा होता है। ऐसा होने पर वहां तक जाने के लिए एक छायादार रास्ता होना चाहिए। इससे रसोई घर का धुआँ, सोने, बैठने, पढने के कमरे मे नही जा सकता। धुयें से घर की रग सफेदी भीतर का सामान और मनुष्यो का स्वास्थ्य खराब हो जाता है। धुआ बाहर निकलने के लिए ठीक चूल्हे के ऊपर धूमनी होनी चाहिए। यह धूमनी काफी ऊँची होनी चाहिऐ। उसके दरवाजो के किवाड नालीदार होने चाहिए तथा खिडकियो मे जाली लगवानी चाहिये। इससे मक्खियाँ भीतर नही आ सकती। उसकी फर्श सीमेन्ट या चूने की पक्की होनी चाहिए जिससे भोजन के उपरान्त धुलवाने में आसानी हो, कच्ची फर्श हमेशा गीली रहती हैं और उस पर नगे पैर चलते या बैठने वालो को हानि पहुचती है। उसकी दीवालें भी पक्की होनी चाहिए। इसमे केवल आवश्यक सामान रहे, आड-कलाड न रखा जाय। सामान रखने के लिए आलमारिया होनी चाहिये।

सेज घर—सोने के लिए (Bed room) सर्वोत्तम स्थान वरामदा या वारहदरी है। वरामदा या वारहदरी उस स्थान को कहते हैं जिस पर छत हो, परन्तु दीवालें विल्कुल ही न हो या अधिक से अधिक तीन दिशाओ मे हो। ऐसे स्थान में सोने से वर्षा ऋतु मे पानी और जाड़े में ओस से वचाव होकर अधिक से अधिक शुद्ध हवा प्राप्त होती है। गरमियो में खुले स्थान में ही सोना प्रशस्त है। फिर भी घर में एक ऐसा कमरा चाहिए जहाँ दिन मे आराम और रात में शयन किया जा सके। सोने का कमरा हवादार और प्रकाशयुक्त होना चाहिए। इसमें दिन में सूर्य का प्रकाश आना चाहिए। खिडकियो की ऊँचाई चारपाई से कोई दो फुट अधिक होनी चाहिए। जिससे शरीर पर हवा का झोंका न लग सके। रात में दरवाजे, खिडकिया वन्द करने पर हवा आने-जाने के लिए अन्त पथ और वहिष्पथ का प्रवन्ध इस कमरे में होना चाहिए।

स्नान घर—नहाने के लिए (Bath room) एक अलग स्थान होना स्त्रियो की दृष्टि से आवश्यक होता है। अन्यथा खुले स्थान मे वे अपने शरीर की यथोचित स्वच्छता नहीं कर सकती। कल का पानी हो तो उसमे फुहारे की भी व्यवस्था होनी चाहिये जिसका उपयोग गरमियो में कर सकते है। उसका फर्श जहाँ तक हो सके पत्थरो का खुरदरा होना चाहिये। सीमेन्ट या चूने का हो तो उसको काफी खुरदरा रखना चाहिये अन्यथा पैर फिसल कर गिरने का डर रहता है। स्नान घर ऐसे स्थान मे होना चाहिये कि दिन में कुछ समय तक अवश्य उसमें धूप आ सके ताकि हर समय उसमे सील न वनी रहे, अन्यथा फर्श पर काई लगने की और उससे पैर फिसलने की सम्भावना होती है। कपडे रखने के लिये भित्तियो में खूंटियाँ पर्याप्त होनी चाहिये।

भण्डार घर—इसका उपयोग चावल, गेहू, आटा, दाल, घी, चीनी इत्यादि खाने पीने की अतिरिक्त वस्तुओ को रखने के लिए करना चाहिए। रसोईघर मे केवल दैनिक भोजन से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएँ रखनी चाहिए। इसका फर्श और दीवालें पक्की होनी चाहिए, ताकि चूहे उनमें अपना डेरा न जमा सकें। सामान रखने के लिए दीवालो मे आलमारिया होनी चाहिए। फर्श पर सामान न रखें। परन्तु सामान के लिए फर्श से दो फूट ऊँचाई पर पत्थर का रोड वनाया जाय। सामान भरने के लिए टीन या पीतल के ढक्नेदार डिब्बे होने चाहिये। भण्डार घर (Store room) मे प्रकाश का प्रवन्ध उत्तम होना चाहिए।

कवाड़ घर- इसमे कभी-कभी काम मे आने वाली चीजें अनावश्यक मालूम होने वाला सामान, टूटी फूटी चीजें तथा अन्य आड कवाड रखना चाहिये। इसकी दीवालें तथा फर्श पक्की होनी चाहिये।

कोष घर—घर मे एक कोठरी ऐसी भी होनी चाहिए जो सव कमरो के बीच मे हो, तथा जिसकी दीवारें और दरवाजे काफी मजवूत हो। इसका उपयोग धन आदि रखने के लिए कर सकते हैं।

तल घर—उष्ण प्रदेशों में तले घर (Cellar) की आवश्यकता होती है। तहखाना भूमि खोदकर नीचे बनाया जाता है। यह बहुत पक्का और सीमेंट या चूने का बनवाना चाहिये। इसमें भी प्रकाश और हवा का मार्ग रखना चाहिये। इसका मुख्य उपयोग गरमियो में दिन मे आराम करने के लिए तथा धन एवं अन्य मूल्यवान वस्तुओ को रखने हेतु कर सकते हैं।

शौच घर—यदि पुराने ढङ्ग का और उठाऊ पद्धति का हो तो मुख्य निवास स्थान से दूरी पर एक ओर अलग होना जरूरी है। यदि जल बहाऊ पद्धति का या कमोड पद्धति का हो तो मकान मे एक अलग कमरे में हो सकता है। शौच घर (Privies) भी पक्का, सुप्रकाशित, सुप्रव्यजित, खपरैल या छत तथा किवाड वाला होना चाहिए।

मार्जन घर—यह घर कपडे धोना, वर्तन माजना इत्यादि कामो के लिए एक तरफ अलग होना चाहिए। इसके एक या दो ओर आधी या पूरी भित्ति होनी चाहिए। ऊपर खपड़ैल होनी चाहिए। नीचे की फर्श पक्की ढलुवाँ होनी चाहिए। तीन ओर नालियाँ होनी चाहिए। इसमें पानी के लिए टकी और पानी की टोटी होनी चाहिए।

नौकर घर—नौकरो को रहने के लिए स्वतत्र स्थान होना जरूरी है। यह स्थान सबसे ऊँचे खण्ड पर जिसके लिए स्वतन्त्र सीढी हो, या मुख्य वासस्थान से अलग, परन्तु उसके अहाते के भीतर एक ओर हो।

निवेदन—

वास-गृह अनेक उद्देश्यो से और अनेक कामो के लिए बनवाए जाते हैं। अतः प्रत्येक वास-गृह-भीतरी रचना, कमरो की सख्या, विस्तार इत्यादि बातो मे विभिन्न होता है। कुटुम्ब निवास गृह (Residential) सवास गृह (Lodging houses), झोपड़िया (Huts), पावरोटी घर (Bake houses) गोशाला और दुग्धागार (Cowsheds and Dairies), भोजनालय और चाय घर आदि के निर्माण मे विभिन्नता होती है। इनसे सम्बन्धित कुछ आवश्यक नियम ऊपर लिखे गये है। विस्तृत जानकारी हेतु एतद् विषयक ग्रन्थो का अध्ययन करना चाहिए।

घरेलू और नगर में होने वाले कूर्ड-कचरे, मल मूत्र इत्यादि का पाटन (Dumping), भस्मीकरण (Incineration) करना, मल को हाथ उठाऊ (Conservancy) या जल वहाऊ पद्धति (Water carriage system) इत्यादि कई विधियाँ हैं। इन सबका वर्णन करना इस अङ्क मे अशक्य है अत इनके बारे में भी एतद् विषयक ग्रन्थो का अध्ययन करना चाहिए।

—विशेष सम्पादक।

(पृष्ठ ३१० का शेषाश)

निकलने को नालियाँ बनाना चाहिए। पनाला दीवाल से सटा हुआ नही बनाना चाहिये किन्तु आगे को निकला रहने देना चाहिये, अन्यथा दीवाल गीली होकर नष्ट हो जायगी।

रोशनदान—छत के पास अलग से दीवाल मे दूषित वायु निकलने के लिए एव प्रकाश आने के लिए रोशनदान बनाना चाहिये।

रसोईघर—इसको पाखाना या पेशाबघर के पास नही बनाना चाहिये। रसोईघर के कमरे में धुआँ निकलने के लिये छत मे छेद बनवाना चाहिए। दीवाले आधी लिपी रहना चाहिये। फर्श की शुद्धि जलाने सीचने, झाडने एव लीपने से होती है। घर की शुद्धि धोने पोछने, पोतने से होती है।

गौशाला—ग्रामो मे गौशाला प्राय निवास से १०० फुट दूर बनाना चाहिये। यह जमीन से १ फुट ऊचा रहना चाहिये। इसका धरातल सीमेन्ट, रेत, पत्थर आदि से ढालू रखना अच्छा रहता है। मूत्र को एक नाली द्वारा दूर एक वद गड्ढे में एकत्र करना चाहिये तथा इसका खाद के रूप मे किसानो को काम मे लाना चाहिये।

स्वास्थ्य की दृष्टि से ही उपरोक्त वासस्थान की सावधानियो को दृष्टिगत रखते हुए ही निवास का चयन एव निर्माण करना चाहिये। इस प्रकार रहने से स्वास्थ्य उत्तम रहता है तथा स्वाथ्य की रक्षा होती है।

श्री डा० सिद्ध गोपाल शुक्ल 'पुरोहित'
एम., ए, बी. ए. एम. एस., डी. जे.
शासकीय आयु० औष०, रामगढ़ (दमोह) म० प्र०

प्रत्येक जाति, समाज और देश मे कुछ ऐसे सार्वजनिक स्थान होते हैं जो उस समाज के हित और आवश्यक पूर्ति के लिए आवश्यक होते हैं। उनकी आरोग्यता कायम रखना और वहाँ की सफाई की देख रेख रखना समाज का और सामाजिक प्रतिनिधि रूप सस्थाओ का कर्त्तव्य होता है। विद्यालय, धर्मशाला, औषधालय, व्याख्यानगृह, मन्दिर, श्मशान ऐसे ही स्थान है। अतएव संक्षेप मे इनकी आरोग्यता कायम रख सफाई कैसे रखी जाय इस पर प्रकाश डालते हैं।

जहाँ पर अक्सर अधिक लोग इकट्ठा रहते हैं, उस जनाकीर्ण स्थान (Over crowded) को इस अन्दाज से बनाया जाना चाहिये जिससे कि जितने आदमी वहाँ इकट्ठे हो उनका स्वास्थ्य ठीक रहे। सभा स्थल, नाटक, सिनेमा आदि इसमे आ जाते हैं। ऐसे स्थानो को इसी विचार से बनाया भी जाता है।

हम एक मिनट में साधारणत. १० बार प्रश्वास छोडा करते हैं। हिसाबियो का हिसाब है कि हम एक बार के प्रश्वास मे २५ घनइञ्च वायु छोडते हैं। इस तरह प्रति मिनट ४२५ घनइञ्च और प्रतिघण्टे ५५०० घनइञ्च वायु हम नि.श्वास द्वारा बाहर छोड़ते हैं। जो वायु हम सास के द्वारा भीतर लेते हैं, उससे नि श्वास वायु में प्रतिशत सवाचार भाग कार्बन-डाई-आक्साइड अधिक रहता है। अर्थात् २५,५०० घनइञ्च नि'श्वास वायु मे १०८४ घनइञ्च (०६ घनफुट) अतिरिक्त कार्बनडाई आक्साइड मिला रहता है। जब हमे प्रति घण्टे तीन हजार घनफुट वायु साँस लेने के लिए मिले तब उस अतिरिक्त कार्बनडाई आक्साइड का हानिकारी प्रभाव हम में असर न कर पावे। अच्छे जवान आदमी को ३६०० घनफुट वायु चाहिये। स्त्रियो को तीन हजार और बच्चों को दो हजार घनफुट वायु की आवश्यकता रहती है। रोगियों को ३७०० घनफुट वायु चाहिये। जब १० फुट लम्बा १० फुट चौडा और १० फुट ऊचा अर्थात् एक हजार घन फुट का कमरा हो और उसमे घण्टे मे तीन चार बार वायु परिवर्तन होता रहे तब रोगियो का स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। सार्वजनिक स्थानो मे मनुष्यो के हिसाब इतनी अधिक जगह का प्रबन्ध नही हो सकता। अतएव सार्वजनिक स्थानो में यदि खूब दरवाजे और जगले हों और वे बराबर खुलते रहे, उनमें वायु का परिवर्तन घण्टे में कई बार होता रहे, तब स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। अन्यथा ये सार्वजनिक स्थान हानिकारक होंगे। घरों में यदि घण्टे मे छ' बार वायु परिवर्तन हो तो ऊपर लिखे कमरे मे दो मनुष्य रह सकते हैं।

विद्यालयो मे प्रति विद्यार्थी १०० घनफुट हवा अवश्य होनी चाहिए। जिस कक्षा मे ४० विद्यार्थी पढ़ते हो वह ४००० घनफुट अर्थात् लगभग २० फुट लम्बा, १६ फुट चौडा और १२ फुट से कुछ अधिक ऊचा होना चाहिए। इस हिसाब की पूर्ति न करने से कमरा गरम और अशुद्ध रहेगा। जीवाणु और दुर्गन्धि से वायु दूषित होगा। थियेटर, बायस्कोप आदि मे अधिक मनुष्य होने के कारण सिर दर्द और चक्कर होने लगते हैं। पखे चलने से इसमें कुछ कमी होती है, क्योकि इससे वायु की गति बढती है। अधिक समय तक जनाकीर्ण स्थान में रहने से शारीरिक दुर्बलता, नीद की कमी, भोजन मे अरुचि, अजीर्ण, मानसिक अवसाद, नेत्ररोग, रक्ताल्पता आदि विकार हो जाते हैं। अन्त मे मनुष्य क्षय का शिकार हो जाता है। न्यूमोनिया इनफ्लुएन्जा, गले की व्याधि वाले रोगी जहा हों और

खासे तो दूसरे लोगो को भी ऐसी व्याधियाँ हो जाती हैं। इसलिए सार्वजनिक स्थानो के प्रबन्ध कर्त्ताओ को ये बाते समझकर उचित प्रबन्ध करना चाहिये। यहा कुछ प्रमुख सार्वजनिक स्थानो के बारे मे जानकारी दे रहे हैं—

१-विद्यालय

प्राय. सभी स्थानो मे छोटे या बड़े या दोनो प्रकार के विद्यालय होते हैं। विद्यार्थी प्रत्येक देश और समाज के आशास्थल हैं। देश का भविष्य कर्त्तव्यपूर्ति और देशोत्थान उन पर बहुत कुछ निर्भर करता है। उनकी शारीरिक और मानसिक उन्नति सब तरह से अभीष्ट है। केवल विद्यालाभ कर लेवे से ही काम पूरा नही हो सकता बल्कि उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहना चाहिये। बालक देश की मूल्यवान सार्वजनिक सम्पत्ति है। यूरोप देशो मे इस सम्बन्ध मे बड़ी सावधानी रखी जाती है। स्त्री के गर्भधारण करते ही सरकार की ओर से स्त्री स्वास्थ्य निरीक्षक उन्हे देखती-भालती है और खानपान तथा रहन सहन के सम्बध मे सलाह देती रहती है। बच्चा होने पर उसके लालन पालन की विधिया भी बताती रहती है। बच्चो की चिकित्सा और स्वास्थ्य रक्षा की सभाल सरकार की ओर से होती है। विद्यालय मे बालको को ज्ञानवृद्धि के साथ शारीरिक स्वास्थ्य और चरित्र सङ्गठन मे भी वृद्धि होनी चाहिये। बालक कोमल शरीर और कोमल मन के होते है, उन पर भली बुरी बात का असर तुरत होता है और उसका असर उनकी जीवनी का आधार होता है। इसलिए सरकार और समाज हितैषी संस्थाओ का कर्त्तव्य है कि बालको के स्वास्थ्य की ओर बराबर दृष्टि रखे।

विद्यालय भवन—छुट्टी के दिन के सिवाय बालको को नित्य छ. घण्टे विद्यालय भवन मे रहना पड़ता है। इसलिए सबसे पहले विद्यालय भवन की बात विचारणीय है। यदि विद्यालय के कारण उनके स्वास्थ्य में हानि पहुँचे तो उनका विकास रुक सकता है। विद्यालयो मे एक साथ सैकड़ो विद्यार्थी छ छ. घण्टे रहते है इसलिए स्वास्थ्य भङ्ग होने की सम्भावना रहती है, वहा एक बालक को व्याधि का सक्रमण दूसरे पर होने की अधिक सम्भावना रहती है। यही नही इन विद्यालयो से ऐसी व्याधिया देहातो मे उन गावो तक पहुँच सकती है, जहा जहा से विद्यार्थी पढने आते है। कुकुरखासी, श्वास, शीतला आदि का सक्रमण जल्दी बढता है।

विद्यालय के मकान—विद्यालय के मकान लम्बे और काफी ऊचे होने चाहिये। विद्यालय की भूमि यथा-सम्भव ऊची हो जिससे वहा जल सचित न हो सके और वायु का प्रवाह बिना रुकावट आ सके। देहातो मे विद्यालय का भवन बस्ती से अलग खुली जगह मे होना चाहिये। भूमि का निर्वाचन पहले ही समझकर किया जाय। विद्यार्थी अधिक हो तो मकान दुमजिला रहे अन्यथा एक मजिल का ही काफी होगा। शिक्षको के रहने का स्थान और यदि विद्यार्थियो के लिए छात्रावास भी हो तो वह भी अलग होना चाहिए। विद्यालय के साथ व्यायाम-शाला अवश्य होनी चाहिए। खेल कूद के लिए विद्यालय से मिली भूमि रहनी चाहिये। प्रत्येक कमरे मे खुली हवा और प्रकाश पहुंचने की सुविधा रहनी चाहिए। विद्यालय के चारो ओर चहार दिवारी रहनी चाहिए। मकान की ऊँचाई १२ फुट से कम न हो। विद्यालय के आस पास गढ़े, नदी, नाले और तालाब न हो। कमरे एक ही रेखा मे बनाए जाय और उनके सामने एक एक बरामदा हो। कमरे मे दरवाजे और खिड़किया काफी हो और काफी लम्बी चौड़ी हो, कमरे की ऊचाई १२ फुट से कम न हो। एक विद्यार्थी के हिसाब में १००० घनफुट-जगह आनी चाहिये। अर्थात् ३ फुट लम्बी २ फुट चौड़ी जगह रहे। ऊचे विद्यालयो मे कुछ अधिक जगह रखनी चाहिए—अथवा कमरे की ऊचाई अधिक कर देनी चाहिये। ऐसी व्यवस्था हो कि प्रकाश विद्यार्थियो के लिए बायी ओर से आवे।

विद्यार्थियो की बैठक—विद्यार्थियो के बैठने के लिये डेस्क और बैच रहनी चाहिये। इससे उन्हे पढने में झुकना नही पड़ता और फेफड़ो पर जोर नही लगता। डेस्को की ऊँचाई लडको की उम्र के अनुसार कम अधिक होनी चाहिये। ४ फुट ऊँचे लड़को के लिये १० इन्च चौडा और ५० इन्च ऊँचा आसन काफी होगा। डेस्क की ऊँचाई १२ इन्च हो। आसन का कुछ अंश डेस्क के नीचे रहने से लड़के अच्छी तरह बैठ सकते है। लड़को की डेस्क
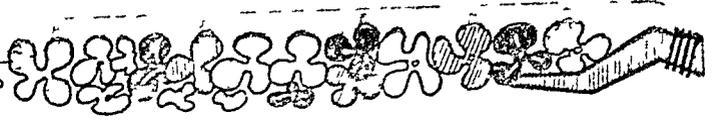
कमरो में लम्बाई की ओर लगी रहनी चाहिये । डेस्क ढालू रहनी चाहिये । बैंच यदि पीठ टेकने योग्य बनी हो तो अच्छी बात है । यदि बैठक भूमि की हो तो विद्यार्थियो का लिखते समय बाया पैर मोड़कर दाहिने पैर की गाठ ऊपर रख जानु पर कापी रख लिखना चाहिये । नीचे टाट या दरी जो बिछा हो, उसे नित्य उठाकर नीचे का फर्श साफ करना चाहिये ताकि गन्दगी न रहने पावे ।

जल और जलपान— विद्यार्थियो के पीने के लिये पानी साफ रहना चाहिये । मटको का बचा हुआ पानी शाम को खालीकर सवेरे दूसरा ताजा पानी भरना चाहिये । मटको को सदा ढक्कन से ढाके रहना चाहिये । विद्यार्थी कुतूहलवश नल की टोटी मे मुँह लगाकर जल पी लिया करते ह । इसके लिये उन्हे कड़ी मनाही कर देनी चाहियें । पानी पिलाने वाला ही सबका पानी पिलावे । देहातो मे स्कूल के अहाते मे एक पक्का और गहरा कुआ रखना अच्छा है । ऐसा कूआ जालीदार ढक्कन से बन्द रहना चाहिये । पानी भरने के लिए एक अन्दाज स खुली जगह रहे । यदि कूए का जल अच्छा न हो तो जिस कूए का जल अच्छा हो वही से मगाया जाय । जल क घड़े या मटके दोहरे रखने चाहिये । जिससे एक दिन खाला मटका धूप मे सुखा लिया करें । मटके ऐसी जगह म रहे जहाँ वायु का आवागमन होता रहता है ।

लडके विद्यालय मे एकदम छ: घण्टे रहने से ऊब जाते हैं । इसलिये बीच के विश्राम के समय यदि कुछ निर्दोष जलपान का प्रबन्ध हो तो ये बीच म फिर पढ़ने के लिये ताजे हो जाया करेगे । थोड़े समय की छुट्टी मे घर आने जाने मे समय अधिक लग जाता है और आने जाने मे लड़के व्यर्थ थक जाते हैं । इसलिए स्कूल मे ही जलपान का प्रबन्ध करना अच्छा है । भीगे या तले चने और किशमिश जलपान के लिये अच्छे रहगे । जलपान की चीज लडके अपने घर से भी ला सकते हैं । बाजारू चाट आदि की दुकाने स्कूल में नही आने देनी चाहिये । यों तो स्कूल से जलपान तैयार कर दिया जाय या किसी दुकानदार को ठेका दे दिया जाय और उसके सामान की बराबर परीक्षा होती रहे ।

खेल कूद— विद्यालय के अहाते मे या उससे लगे मैदान मे खेल कूद का प्रबन्ध होना आवश्यक है । योग्य शिक्षक की देख रेख में विभिन्न शारीरिक मानसिक विकास के खेल खेलाना चाहिये । लडकियो की पाठशालाओ मे भी उनके अनुकूल खेल और कसरत का अभ्यास कराना चाहिये । लडकियो के खेल की जगह चारो ओर से बन्द होना चाहिये । कमजोर लड़के या लडकियो के लिये चिकित्सक की राय के अनुसार हल्के खेलो की योजना करनी चाहिये । व्यायाम और खेलकूद का उद्देश्य शारीरिक और मानसिक उत्साह बढाने का है, लड़को के सारे शरीर को कुछ व्यायाम हो जावे ऐसे खेलो की योजना होनी चाहिये ।

छात्रावास —यदि विद्यालय के साथ छात्रावास भी हो तो विद्यार्थियो की सख्या के अनुसार उसमे कमरे बनाने चाहिये । एक कमरे मे तीन से अधिक विद्यार्थी रखना ठीक नही है । १४ फुट लम्बे १२ फुट चौड़े और १२ या १४ फुट ऊँचे कमरे मे ३ विद्यार्थी रह सकेंगे । इसमे आमने सामने एक के सामने एक दरवाजे और दो खिड़किया रहेगी । चारपाइयाँ ऐसी हो, जो बराबर धूप मे डाली जा सके । सुविधानुसार विद्यार्थियो को मेज, तिपाई और कुर्सी भी दी जा सकती है । यदि निवाड़ का पलग हो तो उसे साल मे एक बार धुलाना चाहिये । प्रकाश के लिए लैम्प ऐसे होने चाहिये जिनमे प्रकाश काफी तेज हो, धुआँ कम हो और ऊपर हरे रङ्ग का ढक्कन हो । विद्यार्थियो की रुचि और परम्परा के अनुसार रसोई का प्रबन्ध रहना चाहियें । छात्रो के भोजन पर अधिकारियो की दृष्टि रहनी चाहिये । स्थान भेद के अनुसार स्थान की सुविधा करनी चाहिये । विद्यार्थियो को जलाशय की सुविधा हो तो तैरने का अभ्यास कराना चाहिये । इससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है ।

शौचालय — विद्यालय के साथ विद्यार्थियो की सख्या के अनुसार एक, दो या तीन पेशाबघर और एक या दो देहरी बैठक के पाखाने रहने चाहिए । शहरो मे इनमे पानी का ऐसा प्रबन्ध रहे जिससे पेशाबघर आपसे आप धुला करें । कस्बो मे या छोटे शहरो मे इनके धुलाने का प्रबन्ध रहना चाहिए । शहरो मे पाखाने भी नई पद्धति

के रहने चाहिये। पेशाब पाखाना विद्यालय भवन से जरा दूर अलग रहना चाहिये। प्रत्येक २५ विद्यार्थियो पर एक पाखाना और पेशाब घर रहना चाहिये। पेशाब पाखाने पक्के रहने चाहिये। मूत्राशय और मल पात्र बराबर धोये जाने चाहिये। छात्रावास मे अलग पेशाबघर और पाखाना रहना चाहिये।

विद्यालय की सफाई - विद्यालय इमारत को साल में दो बार चूने से पुताना चाहिए। पखाना और पेशाबघर मे भी सफेदी होनी चाहिए। विद्यालय का प्रत्येक कमरा नित्य ऊपर से नीचे तक साफ करना चाहिए। मेज,कुर्सी, डेस्क, बेंच सबको कपड़े से पोछना चाहिए। कमरे मे धूल न रहनी चाहिये। यदि फर्श कच्चा हो तो पानी छिड़का कर तब झाड़ू लगानी चाहिए। कच्चा फर्श भी कभी कभी मिट्टी और गोबर से लीपना चाहिए। अहाता और खेल का मैदान भी सदा साफ रखना चाहिए।

विद्यार्थियो की स्वास्थ्य परीक्षा—विद्यार्थियो के स्वास्थ्य पर अध्यापक और अधिकारी वर्ग का बराबर ध्यान रहना चाहिये। विद्यार्थियो का स्वास्थ्य केवल विद्यालय के वातावरण से सम्बन्ध नही रखता, अपितु उसकी घर की परिस्थिति और माता-पिता की स्थिति से भी सम्बन्ध रखता है। तथापि विद्यालय पर उसकी एक हद तक जिम्मेदारी है। विद्यालयो के स्वास्थ्य का निरीक्षण करने के लिए आधुनिक ढङ्ग से शिक्षा पाये हुए वैद्य हकीमो को नियुक्त करना चाहिये। विद्यार्थियो में कोई बुरी आदत नही पड़ने देनी चाहिये। तम्बाकु, बीडी, सिगरेट की आदत बहुत हानिकारी है। इनसे विद्यार्थियो के कोमल श्वास पथ, हृदय और फुफ्फुस पर बुरा प्रभाव पडता है। यदि अध्यापको मे ऐसी आदत न हो तो उनके ससग और उपदेश से विद्यार्थी भी इस बुराई से बच सकते है। यदि अध्यापक स्वय पेशावघर आदि में छिपकर इनके आदि हो तो उनके उपदेश का कोई असर नही हो सकेगा। छात्रावास और विद्यालय जीवन मे बुरे लड़को के ससर्ग से अन्य लड़को मे भी कुछ ऐसी बुराइया आ जाती हैं जिससे उनका स्वास्थ्य ही नही बिगडता भावी, जीवन भी बेकाम हो जाता है। विद्यार्थियो मे हस्तमैथुन की आदत छात्रावास जीवन से ही अधिक आती है। निरीक्षको को इस सम्बन्ध मे काफी सावधानी रखनी चाहिए।

विद्यार्थियो की स्वास्थ्य परीक्षा प्रति मास होनी चाहिये। स्वास्थ्य निरीक्षक चिकित्सक का कर्त्तव्य है कि वह विद्यार्थियो की परीक्षाकर उनकी छाती की नाप, आखो की शक्ति, कानो की शक्ति, शारीरिक स्थिति, किसी रोग की उपस्थिति आदि बातो को नोटकर विद्यालय के अधिकारियो को सूचित करें। चिकित्सक का भी कर्त्तव्य है कि वह यह जान ले कि अमुक विद्यार्थियो मे कोई बुरी आदत तो नही है। उसकी रिपोर्ट गुप्त रूप से अधिकारियो को दे विद्यालय मे प्रत्येक विद्यार्थी के लिए एक-एक आचरण पुस्तक रहनी चाहिए। उसमे उसकी पढ़ाई, चाल चलन, पारस्परिक व्यवहार, शारीरिक उन्नति-अवनति आदि बातें लिखी जानी चाहिए। जिससे बराबर मालूम पड़ता रहे कि अमुक विद्यार्थी किस प्रकार सभी बातो में उन्नति कर रहा है। विद्यार्थियो के सरक्षक को भी उनकी रिपोर्ट पहुँचाते रहना चाहिए जिससे घर वाले भी विद्यार्थियो की ओर से सतर्क रहे। चिकित्सक भी एक रजिस्टर मे विद्यार्थियो की शारीरिक स्थिति आदि को लिख रखें जिससे आगामी महीने में मिलाप किया जा सके। यदि बालको को कोई बीमारी हो तो उसकी चिकित्सा का दिग्दर्शन भी करा देना चाहिए।

स्वास्थ्य निरीक्षक का कर्त्तव्य है कि वह विद्यालय भवन के सम्बध मे भी उचित परामर्श देता रहे। जलपान की चीजें, भोजन आदि पर भी उचित राय प्रकट करे।

आरोग्य विधान की शिक्षा—खाली स्वास्थ्य निरीक्षक के निरीक्षण से ही काम नही चलता है। विद्यार्थियो को आरोग्य विधान सम्बधी विषयो की शिक्षा भी देनी चाहिए। विद्यालय मे समय-समय पर स्वास्थ्य सम्बन्धी व्याख्यान करने चाहिए। पाठ्य पुस्तको मे आरोग्यता सम्बधी पाठ रहने चाहिए। केवल अक्षरज्ञान प्राप्त करना ही विद्यार्थियो की शिक्षा का उद्देश्य नही है, बल्कि वे आगे चलकर श्रेष्ठ नागरिक बन सकें, बलवान राष्ट्र सेवक सकें, यह उद्देश्य विद्यार्थियो के शारीरिक और मानसिक विकास का हेतु होना चाहिए। बिना स्वास्थ्य समाले पढ़ने मे शरीर शक्ति से अधिक परिश्रम करने से न जाने

को रखकर चिकित्सा करनी पडती है। उनके खानपान वस्त्र, औषधि आदि की समस्त व्यवस्था वहीं से होती है। इसमे दो तरह के विभाग करने पडते हैं। कुछ कमरे ऐसे बनाने पडते हैं; जिनमे यदि कोई चाहे तो अपने खर्च से आकर रहे। इसमे एक कमरा रोगी के लिए और उसके सम्बन्धी या सेवक के लिए तथा एक छोटा रसोईघर, स्नानगृह और पेशाबघर तथा पाखाना रहना चाहिये। रोगी के कमरे मे एक छोटी अलमारी, एक छोटी मेज तथा कुछ कुर्सिया रहनी चाहिये। रोगी के लिए पलग की व्यवस्था रहनी चाहिये। ऐसे कमरे कई बनाने पडते हैं। जिनमे आवश्यकतानुसार कई रोगियो की व्यवस्था हो सके।

साधारण रोगियो के लिए बडे कमरे बनाये जाते हैं। उन्हे वार्ड कहते हैं। साधारणत एक कमरे मे २५ से ३० रोगियो तक के लिए सुविधा रहती है। यदि आतुरालय छोटा हो तो एक कमरे मे १२ रोगियो तक की व्यवस्था करने के लिए छोटे कमरे बनाये जाते हैं। एक साथ ४० से अधिक रोगी एक कमरे मे नहीं रखने चाहिए। ऐसे कमरों मे रोगियो की चारपाइयाँ दोहरी लगाई जाती हैं और बीच मे काफी जगह निकलने के लिए रहती है। इसलिए कमरे की चौडाई लगभग २४ फुट और ऊंचाई १२ से १५ फुट तक की, लम्बाई दरवाजो के क्षेत्रफल को छोडकर प्रत्येक रोगी के हिसाब से १०० वर्ग फुट जगह आवे उतनी रखनी चाहिए। अर्थात् १२ रोगियो को रखने के लिए ४० फुट लम्बा २४ फुट चौडा और १५ फुट ऊचा कमरा होने से उसका घनफल १४४०० घन फुट होगा जिसमें प्रत्येक रोगी के हिसाब मे १२०० घनफुट जगह आवेगी। इसमें छ: रोगी एक पात में और छ: रोगी दूसरी पांत मे रह सकेगें। जगला आमने सामने और रोगियो के पलङ्ग के सिरहाने दीवाल की ओर दो जगलो के बीच मे होने चाहिये। बीच मे रोगी की दवा वगैरह रखने की छोटी जालीदार अलमारी और एक स्टूल रहना चाहिये। एक तख्ती पर कागज चिपकाकर रखा जाना चाहिये, जिसमे रोगी का नित्य का हाल लिखा जाया करे। कमरो के दोनो ओर बरामदा रहना चाहिये जिसकी चौडाई ८ से १० फुट तक हो। जमीन का फर्श पक्का रहना चाहिये। दरवाजे दोहरे हो तो अच्छा है। भीतरी दरवाजा जालीदार रहे। जङ्गले भी जालीदार रहने चाहिये। स्त्रियो के लिए अलग कमरा होना चाहिए। रोगो के हिसाब से भी कमरे अलग रहते हैं। जैसे नेत्र रोग का विभाग अलग चाहिये। प्रसूतिका विभाग भी स्वतन्त्र होना चाहिए। छूत के रोगो के लिए कमरे अलग और अन्य रोगियो से अलग रहने चाहिये। शस्त्रकर्म के रोगियो का विभाग अलग रहना चाहिये। प्रत्येक रोगी के पलङ्ग के बीच मे चार-पाच फुट का अन्तर रहना आवश्यक है। फर्श के समान दीवाले भी पक्की और घुटी हुई चिकनी होनी चाहिये, जिससे उन पर रोगाणु न ठहर सकें।

रोगियो के कमरे प्रशस्त बनाये जाते है क्योकि रोगियो को वायु की आवश्यकता अधिक रहती है। साधारण लोगो से रोगियो को ज्यादा स्थान चाहिये। गर्मी मे लू और जाडे में शीत आता है, इसलिए जङ्गले भी दोहरे रहे तो अच्छा होगा जब चाहे तब खोलें और आवश्यकतानुसार बन्द कर सकें। वायु का आगमन (इनलेट) फर्श से लगकर होता है और निर्गमन (आउटलेट) दरवाजो और जङ्गलो के ऊपरी भाग से होता है, इसलिए यदि जङ्गलो मे पर्दा लगाना पडे तो बीच मे लगाना चाहिये अथवा वायु के आगमन के लिए नीचे दीवाल मे पर्दे बने रहने चाहिये जैसे रेल मे लकडी की झिलमिलीदार खिडकी लगाकर रखते है। वायु निर्गमन के लिए दीवालो मे झरोखे लगाये जा सकते हैं जहा फुफ्फुसप्रदाह, कफज्वर अथवा क्षय के रोगी रहते है वहा पर कमरो मे और भी अधिक वायु का प्रबन्ध करना पडता है। रोगियो का कमरा खूब साफ ऊपर नीचे झाडा हुआ रहना चाहिए, कही जाला वगैरह न लगने पावे, जिससे वायु के सचार मे बाधा पडे और रोगाणुओ को आश्रय मिले। रोगी के कमरे मे सामान नही रखना चाहिए।

शस्त्र कर्म का कमरा जिन रोगियो मे शस्त्रकर्म करना आवश्यक है उनके लिए शस्त्रकर्म का कमरा साधारण रोगियो के कमरे से जरा हटकर रहना चाहिये। जिससे साधारण रोगियो मे आतङ्क न फैले। शस्त्रकर्मागार मे प्रकाश उत्तर की ओर से आना चाहिये। यदि आतुरालय के साथ विद्यालय भी हो तो विद्यार्थियो को शस्त्रकर्म देखने की सुविधा के लिए शस्त्रकर्मागार जरा

विस्तृत रहना चाहिए। बाहरी लोगों का [illegible] नहीं आने देना चाहिये। दीवाल में काँच का पर्दा [illegible] खिड़की प्रकाश के लिए लगी रहनी चाहिये। कमरे के कोने गोल हों तो और भी अच्छा। फर्श पत्थर, चीनी मिट्टी के चौके लगी हुई हो एक चीनी मिट्टी का पात्र हाथ धोने के लिये रहे। हाथ धोने के लिए साबुन, कीटाणुनाशक द्रव्य तथा ठण्डा और गरम जल रहना चाहिये। जिन वस्त्रों का उपयोग करना है उन्हें उसी कमरे से लगे एक उप विभाग मे आवश्यक दोष दूरीकरण पदार्थों के द्वारा धोकर शुद्ध कर लेना चाहिए। यदि रोगी को मूर्छित करने का कमरा उसी से लगा हुआ अलग रहे तो अच्छा होगा। इस कमरे मे रोगी को लेटाने के लिए मेज, शल्य कर्म चिकित्सक और सहायकों की उस समय मे उपयोगी पोशाक आदि अलग किसी अलमारी मे टगी रहनी चाहिए। आवश्यक शस्त्र और मूर्छन औषधियां पहले से ही रख लेनी चाहिए।

परीक्षा विभाग—आतुरालय के साथ एक रोग निर्णय मे सहायता पहुँचाने का परीक्षा विभाग (पैथालोजीकल) भी चाहिये। जहाँ थूक, पेशाब, मल आदि की परीक्षा हो और कहां किस विकृति से रोग हुआ है, उसे जानने के साधन, परीक्षा के सामान आदि हों। सूक्ष्म दर्शक यन्त्र, अणुवीक्षण यन्त्र, नेत्र, कर्ण, गुप्तेन्द्रिय, नाक, गले आदि की परीक्षा के यन्त्र स्वास्ति यन्त्र आदि रखे रहने चाहिये।

३—धर्मशाला

प्राय. प्रत्येक नगर मे एक या अनेक धर्मशाला होनी चाहिए और होती भी हैं। जिनमें वे मुसाफिर आकर ठहरते हैं जिनके जान-पहचान के उस नगर में नहीं हैं। ऐसी धर्मशालाएं प्रायः दानी लोगों की उदारता से बनाई जाती हैं। बादशाही जमाने में शाही मुसाफिर खाने होते थे और भटियारे भी अपने मुसाफिर खाने या सराय रखते थे। जहां मुसाफिर कुछ पैसा देकर रहा करते थे। अब सराय और मुसाफिरखानों की प्रथा कम होती जा रही है, किन्तु धर्मशालाएँ बढ़ रही हैं। धर्मशालाओं की आवश्यकता सर्वत्र है जहां उदार दानियों की ओर से ऐसी धर्मशालायें न हों वहां सरकार, नगर पालिका या जिलाबोर्ड की ओर से रहनी चाहिये। सरकारी अफसरों और बड़े आदमियों के लिए आजकल कुछ खास स्थानों में [illegible] बंगले रहते हैं किन्तु [illegible] नहीं। धर्मशालायें तो [illegible] हैं। कोई मुसाफिर [illegible] [illegible] उसकी [illegible] है। किसी, अपरिचित मनुष्य को [illegible] ठहराना नहीं [illegible]। यदि [illegible] [illegible] किया। जो हो, [illegible] और उनकी [illegible] के लिए सफाई की देख रेख रखना आवश्यक होता है। धर्मशाला के कमरे प्रकाश और वायु के आवागमन योग्य हों, वे बराबर साफ रखे जावें, ज्यों ही एक मुसाफिर कमरा खाली करे तुरन्त उसकी सफाई करवाई जाय। धर्मशाला की पुताई साल में दो बार होनी आवश्यक है। पेशाबखाने और पाखाने की सफाई के लिए मेहतर रखना आवश्यक है जिससे समय समय पर उनकी सफाई होती रहे। इनमें दुर्गन्धनाशक द्रव्य बराबर डाले जाया करें। नाली और मोरी साफ रखी जावे। अक्सर लोग धोना पसन्द छोड़ देते हैं अतएव मोरियों के मुख बन्द न होने पावें, उनमें बराबर पानी छोड़ कर सफाई की जानी चाहिये। एक कमरे मे जितने मनुष्य रह सकते हैं उससे अधिक न रहने दिये जाने चाहिए। नगरपालिका के सफाई अधिकारी को धर्मशालाओं की देख भाल करते रहना चाहिए।

४ मन्दिर

देहातों मे जो ऐसी धर्मशालायें बनायी जावें वे किसी मन्दिर से लगी हुई भूमि मे भी हो सकती हैं। देहात मे अधिक आदमियों के आने की सम्भावना नहीं होती। इसलिये एक या दो कमरे इसके लिये काफी होंगे। धर्मशाला के पास कोई जलाशय होना आवश्यक है। धर्मशाला के कमरे दरवाजे से लगे हुये बन्द, प्रकाशदार हों। देहातों मे पेशाबघर या पाखाने बनाने का प्रश्न ही नहीं है। लोग बाहर हो आते हैं। तब वहां एक रक्षक अवश्य होना चाहिये। मन्दिर के साथ होने से मन्दिर का रक्षक ही काम कर सकता है। सफाई का ध्यान इसमे भी रखना चाहिये। बहुत से यात्री लोग रसोई और पीने के बर्तन

धर्मशाला से लेवें तो उन्हे भी खूब साफकर तब काम मे लाना चाहिये।

मन्दिरो का प्रबन्ध—प्रत्येक गाव मे मन्दिर, मस्जिद और शहरों में गिरजाघर भी होते हैं। यद्यपि ये धार्मिक स्थान हैं और प्रत्येक धर्मवाले अपने-अपने धर्मस्थानो का प्रबन्ध स्वयं करते हैं, तथापि स्मरण रखना चाहिये कि ये धर्मस्थान के साथ-ही सार्वजनिक स्थान भी हैं। यही नही इन स्थानों मे उन-उन सम्प्रदायो के मानने वाले यात्री मुसाफिर या साधु-महात्मा आया करते हैं। अतएव वहा की सफाई भी सार्वजनिक विषय है। मन्दिरो मे प्राय: पुजारी या महन्त रहते हैं और वे उसकी सफाई आदि का भी प्रबन्ध करते हैं और मस्जिदो मे भी मुल्ला-मौलवी रहते हैं। गिरजाघर प्राय. प्रार्थना के समय ही उपयोग में आते हैं अत उनका सार्वजनिक स्वरूप व्यापक नही है तो भी उनके आस-पास की भूमि की सफाई रखना नगरपालिकाओ का काम है। मन्दिर और मस्जिद सर्व साधारण के लिए और भी उपयोगी बनाये जा सकते हैं। इनमें अभ्यागतो के ठहरने के लिये एक स्थान स्वतन्त्र होना चाहिए। प्रत्येक मन्दिर के साथ यदि धर्म-कर्म सिखलाने को पाठशाला रहे तो उत्तम है अथवा कुछ समाचार पत्र और पुस्तकालय का प्रबन्ध रहने से उनका उपयोग गांव वाले भी करेंगे और बाहर से आने वाले मुसाफिर भी। मन्दिरो की सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए। पूजा की फूलपत्ती और देवस्थान का जल यो ही बहता हुआ नहीं रहना चाहिये। पानी मे फूलपत्ती और अक्षत सड़ते हैं और उससे गन्दगी फैलने की सम्भावना रहती है। अतएव इसकी सफाई अच्छी तरह होनी चाहिए। मन्दिर के अहाते मे भक्त लोग प्रसाद के दोने आदि छोड देते हैं, उन्हे साफ कराते रहना चाहिए। जिन मन्दिरो के दरवाजे छोटे हैं और भीतर भीड़ अधिक हो जाती है, उनमे दर्शनार्थियो को पारी-पारी थोडी-थोडी देर मे जाने देना चाहिये। अन्यथा उसके प्रसाद से भक्तो मे बीमारी भी फैल सकती है। नगर निरीक्षण समिति को मस्जिदो की सफाई पर ध्यान देना चाहिए। वहा अधिक गन्दगी होने की सम्भावना कम रहती है। उसके आसपास सफाई होना आवश्यक है।

५—श्मशान

मृत्यु जैसे शरीर के लिए एक अपरिहार्य घटना है वैसे ही मृत शरीर का अन्त्यकर्म समाज के लिए एक अपरिहार्य कार्य है। भिन्न भिन्न देशो में यह कार्य करने की भिन्न-भिन्न विधियाँ प्रचलित हैं। कही पर मृत शरीर को यो ही छोड देते हैं, कही पर समुद्र मे या नदी मे फेंक देते हैं, कही पर कुत्तो या जगली जानवरो या गिद्ध, चील इत्यादि पक्षियो द्वारा उसका नाश किया जाता है और कही पर उसके छोटे-छोटे टुकडे बनाकर पक्षियो के सामने फेंक दिये जाते है। उल्लेख करने के अलावा इन विधियो पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नही है क्योकि ये असभ्य और अस्वास्थ्यजनक विधिया है। स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार करने लायक केवल दो ही विधियां है जो अत्यन्त प्राचीनकाल से सभ्य जातियो मे प्रचलित हैं। मृत्यु के जो अनेक कारण हैं उनमे सक्रामक रोग समूह बहुत महत्व का कारण है। यद्यपि मृत शरीर से सजीव शरीर के समान रोग फैलने का डर नही होता तथापि मसूरिका, विसूचिका इत्यादि कुछ ऐसे रोग हैं कि जो मृत शरीर से फैल सकते हे। इसलिये शवो को कपडे से भली भाँति लपेटकर ले जाना चाहिये। यदि मसूरिका जैसे सक्रामक रोग से मृत्यु हो तो रोगाणुनाशक घोल में भिगोये हुये कपडे मे लपेटना चाहिये। सक्षेप मे शवो का नाश इस प्रकार करना चाहिये कि किसी को उनसे उपद्रव या उपसर्ग न होने पावे।

(१) अग्नि संस्कार या दहन (Cremation)—इससे ३-४ घण्टे मे शव की तिनका भर राख हो जाती है और यदि आधुनिक यन्त्र का उपयोग किया जाय तो एकाध घण्टे मे वही कार्य हो जाता है। इस विधि के लिए न अधिक समय लगता है न अधिक स्थान की आवश्यकता होती है। केवल यही नही उससे न दुर्गन्ध पैदा होती है, न वातावरण खराब होता है। न स्थली जल दूषित होता है, और न किसी प्रकार से उपसर्ग फैलने का डर रहता है। इसलिये मृत शरीरो का नाश करने की दृष्टि से यही सर्वोत्तम विधि है। परन्तु व्यवहार में इसमे कई दोष दिखाई देते हैं। अत. निम्न नियमो के अनुसार इसको प्रयोग मे लाना चाहिये—

१—श्मशान भूमि प्राय नदियो के या तालावो के तट पर होती है। यह स्थान नगर के वीच की ओर जिधर को जल का प्रवाह हो, अन्तिम वस्ती से ५०० फुट की दूरी पर हो।

२—दहन के लिए पर्याप्त लकडी का प्रयोग करें। साधारणतया एक शव को जलाने के लिये २०० किलो लकडी की आवश्यकता होती है। इससे भी कुछ अधिक लकडी का प्रयोग करे तो अच्छा है। लकडी के साथ चन्दन, घृत आदि का भी प्रयोग करने का जो रिवाज है वह वहुत अच्छा है। इससे अग्नि प्रदीप्त होती है और दुर्गन्ध नही आती। शव को लकडियो मे इस प्रकार रखना चाहिए कि वाहर से उसका तनिक भी भाग न दिखाई दे सके।

३—चिता अच्छी तरह सुलगने पर उससे धुआं और दुर्गन्ध आना अग्निताप की कमी का सूचक होता है। शव के साथ सम्बन्ध रखने वाली हर चीज को उसके साथ जला देना चाहिये। उनको नदी मे फेंकना या यो ही छोड देना उचित नही है।

४—अर्धदग्ध शरीर को नदी मे न फेंकना चाहिए। पूर्णतया दग्ध हुए शरीर की राख और हड्डिया नदी मे फेंक सकते हैं।

५—जहा पर श्मशान वस्ती के पास है वहा पर उसके चारो ओर ऊँची दीवाले होनी चाहिए।

(२) वहन भ्राष्ट्र—आजकल दहन के लिए विशेष प्रकार के विजली के या वायु के दाहक यन्त्र या भट्ठे वनाये गये हैं। जिनमें शव आधे घण्टे मे पूर्णतया जल जाता है इनका उपयोग योरुप में और भारतवर्ष के यूरोपियन लोगो के लिए किया जा रहा है। इसमे चिता लकडी की न होकर विशेप प्रकार के पत्थरो के स्फटिको के महीन टुकडो (Broken quartz) की होती है जिसकी लम्वाई ७ फुट और चौडाई ढाई फुट रहती है। इसमे नीचे से ज्वलनशील वायु (gas) और हवा वडे जोर के साथ धौंकी जाती है। इससे स्फटिक श्वेतोष्ण (White hot) होकर शव को शीघ्र जला देते हैं। ऐसे कई भट्ठे थोड़े से स्थान में लगाये जाते हैं और एक वायु सदीपक (Air Compressor) सवको उपयुक्त होता है।

(३) दफन (Earth burial)—इसमे शव जमीन मे गाढा जाता है। यह विधि आम तौर से मुसलमान, ईसाई और हिन्दुओ की कुछ जातियो मे तथा सन्यासियो मे प्रचलित है। गाढने से जमीन की ऊपर की तहो मे जो जीवाणु उपस्थित होते हैं वे मृत शरीर का नाश करके उनको मिट्टी के साथ मिला देते हैं। एक तरह से यह जैविक क्रिया है।

दफन से प्रागार द्विजारेय, उद्जन शुल्वेय इत्यादि विषैले वात उत्पन्न होकर आस पास के वायु मण्डल को खराव कर देते हैं। इसके अतिरिक्त शव के सडने से अनेक विषैले द्रव्य उत्पन्न होते हैं तथा जीवाणु वढते हैं जिनसे आसपास का अनुस्थली जल खराव होने का डर रहता है। यह विधि वहुत खर्चीली भी है, क्योकि जमीन खरीदने मे उस पर कब्र या समाधि वाँधने में तथा हर साल उसकी मरम्मत करने मे वहुत पैसा लगता है। इस विधि को निर्दोप करने के लिए निम्न बातो पर ध्यान देना चाहिए—

१ दफन भूमि शहर से दूर हो। उसके चारो ओर ऊँचा अहाता हो जिससे शृगाल इत्यादि पशु उसके भीतर न जा सकें। उस भूमि मे तथा आसपास वृक्ष भी हो जो शव के सडने से उत्पन्न होने वाले प्रा० द्विजारेय को शोपित करें।

२ गाढने की जमीन रेतीली या ककरीली, धुटरी और नरम हो। चिकनी भूमि अच्छी नही होती। उसमे दरार इत्यादि भी न हो, न वह अधिक ऊँचाई पर स्थित हो।

३ एक साल तक वच्चो के लिए ३ फुट लम्बा और २½ फुट चौडा, १० साल तक ५ फुट लम्बा ३ फुट चौडा, उसके पश्चात ७ फुट लम्बा और ४ फुट चौडा स्थान पर्याप्त होता है। इसके अनुसार ४-४ फुट अन्तर बीच मे छोडकर दफन की भूमि कई स्थानो मे वाट दी जाय और इन स्थानो के चारो ओर मार्ग वनाये जायें।

४ शव को जमीन के भीतर ३ ५ फुट की गहराई तक गाढना चाहिए क्योकि इसमे जीवाणुओ की सख्या अधिक से अधिक गहराई पर नाश के लिये प्रति एक फुट के पीछे एक वर्ष अधिक काल लगता है और भूमिगत जल खराव होने का डर रहता है। अनुस्थली जल और शवो

को कम से कम दो फुट का अन्तर रहना जरूरी है। तीन फुट से कम गहराई पर गाढने से शृगाल, कुत्ते इत्यादि के द्वारा उखडने का डर रहता है।

५ पक्की कब्र में या धातुओ की कठिन सदूक मे शव को रखना अच्छा नही है। इससे शव पर जीवाणुओ का कार्य ठीक नही होता और शव के नाश के लिए अधिक समय लग जाता है। पतली लकडी के सदूक मे या वैसे ही जमीन मे शव को उपर्युक्त गहराई में गाढ दिया जाय तो एक वर्ष भर मे शरीर के कोमल अङ्ग नष्ट हो जाते हैं।

दहन या दफन के लिए निश्चित स्थान होने चाहिए। इतस्तत. बस्ती मे शवो को जलाना या दफनाना हानिकर है। कौटिलीय अर्थ शास्त्र मे इसके लिए दण्ड बताया है—मार्ग विपर्यासे शब द्वारादन्यतश्चव निर्णयने पूर्वस्साहसदण्डः।

६—व्यास भवन—सभा भवन

कथा कहने वाले को व्यास कहते हैं। जहाँ कथा कही जाती है उसे व्यास भवन कहा जा सकता है। कथा, पुराण, कीर्तन, व्याख्यान आदि सभा सम्बन्धी काम जहा होते हैं, उसे हम व्यास भवन या सभा भवन नाम देते है। सभाओ मे कभी कभी बहुत अधिक भीड इकट्ठी होती है। धक्कमधक्का मे कभी कभी बहुत से लोग बेहोश हो जाते हैं। बगाली कीर्तनकार भी भावावेश मे आकर कीर्तन करते करते बेहोश हो जाते है। पुराण कथा सुनने के लिए भी कभी कभी धार्मिको की अधिक भीड़ इकट्ठी होती है। आजकल कीर्तन का प्रवाह बहुत बढ रहा है। बात अच्छी है किन्तु कभी कभी थोडी जगह मे बहुत से लोग कीर्तन करते और उनसे भी अधिक लोग उनका साथ देने वाले दर्शनार्थी तथा श्रवणार्थी होते है। अतएव ऐसी जगहो का वायु सहज ही दूषित हो जाता है और यह भी बेहोशी का कारण हो सकता है। अतएव ऐसे कीर्तन और कथा व्याख्यान जहा तक हो खुलासा जगह में होने चाहिये। यदि कमरे के भीतर हो तो कमरे के सब दरवाजे-जगले खुले रखे जावें और पखे चला कर कृत्रिम वायु उत्पन्न कर वायु के निकलने और ताजी हवा आने का मार्ग प्रशस्त कर देना चाहिये।

७—धार्मिक मेले

भारतवर्ष यात्रा-भूमि है। भारतवर्ष मे प्रतिवर्ष असख्य स्थानो मे असख्य मेले होते हैं जहाँ पर हजारो से लेकर लक्षावधि लोग इकट्ठा होते हैं। आग गाड़ी की सुविधा और स्वास्थ्य-विभाग की दक्षता के कारण प्रत्येक स्थान के मेले में यात्रियो की सख्या अधिकाधिक हो रही है। यात्रा मे स्वास्थ्य रक्षा का प्रबन्ध करना बहुत आवश्यक होता है, क्योकि यहाँ पर ही विसूचिका जैसे घातक रोग उत्पन्न होते हैं और यात्रा से लौटते वक्त चारो ओर फैलते हैं। मेले मे स्वास्थ्य रक्षा का प्रबन्ध निम्न प्रकार से करना चाहिये—

(१) निवास स्थान (Accomodation)—प्रत्येक यात्रा के स्थान मे यात्रियो की सुविधा के लिए धर्मशालाये और सराये होती है। परन्तु मेले के समय ये अपर्याप्त होती है। इसलिए यात्रियो को टिकने का कुछ प्रबन्ध करना पड़ता है। इसके लिए मेले के पास कही खुले स्थान का उपयोग करना चाहिए। उस स्थान पर गढे या गन्दे पानी के सचय हो तो उनको पटवा देना चाहिये तथा घना जङ्गल हो तो उसको कटवा देना चाहिए। उस स्थान तक मुख्य सडक से पक्की सड़क बनानी चाहिए। वह स्थान छोटे-छोटे रास्ते के द्वारा कई भागो मे विभक्त कर प्रत्येक भाग मे झोपडियाँ बनानी चाहिये। प्रत्येक झोपडी पर नम्बर लगावे और भीतर रहने वालो की सख्या भी निश्चित की जावे। झोपडियो के अलावा तम्बू, पाल, शामियाना इत्यादि मे टिकने का प्रबन्ध यात्रा प्रारम्भ के पूर्व पूर्ण हो जाना चाहिए।

(२) जल का प्रबन्ध—यदि मेला नदी के किनारे पर हो तो मेले के स्थान के ऊपर, जिधर से जल प्रवाह मेले की ओर जा रहा हो, पीने के पानी के लिए कुछ भाग सरक्षित करना चाहिए। मेले के स्थान के नीचे का घाट स्नानादि के लिए रखना चाहिए। सबसे नीचे श्मशान रहे। नदी के किनारे पर मल-मूत्रादि का त्याग करने से लोगो को मना करना चाहिए। मेले के स्थान मे तथा आसपास पीने के लिये योग्य जल के कुयें हो तो उनको मेले के पूर्व पोटास परमेगनेट से या ब्लीचिंग पाउडर से शुद्ध

करना चाहिए। प्रत्येक कुएँ के ऊपर पानी निकालने के लिये डोर डोलची रखनी चाहिए। कूयें के तथा पीने के घाट के आस पास गन्दगी करने से मना करने के लिये एक मनुष्य वहाँ पर रखनी चाहिए जो वहाँ की सफाई भी करे। मेले के स्थान पर यदि पानी पहले ही न हो तो वहाँ पर कुछ नलिका कूप बनाने चाहिए। यात्रियों को पीने के पानी का प्रबन्ध करने की दृष्टि से स्थान पर विशुद्ध जल से भरी हुई टकिया रखना भी फायदेमन्द होता है। इन टकियो मे आप से आप बन्द होने वाली टोटियाँ लगाने से अधिक पानी नष्ट नही होता तथा टकी का पानी खराब होने का डर भी नही रहता।

(३) खाद्य पेय का प्रबन्ध—मेले में बेचने के लिए आने वाले दूध तथा अन्य खाद्य पदार्थों का निरीक्षण स्वास्थ्य निरीक्षको को करना चाहिए। सडी गली, बासी खराब चीजो को बेचना मना करना चाहिये। अगर कोई मनुष्य इस प्रकार की चीजो को बेचता हुआ दिखाई दे तो उन चीजो का नाश करने का अधिकार स्वास्थ्य अधिकारियो को होना चाहिए। पूरी, मिठाई इत्यादि खाने की चीजे मक्खियो से सुरक्षित बन्द या जालीदार आलमारियो मे रखने की सख्त तादीद होनी चाहिए। मेले के क्षेत्र मे खाद्य द्रव्यो के दूकानदारो और खोमचेवालो के लिए अनुज्ञप्ति (Licence) आवश्यक होनी चाहिए जिससे उनका नियत्रण करने मे और आवश्यकता पडने पर उन पर वैध कार्यवाही करने में आसानी हो सके।

(४) मैले का प्रबन्ध—मेले मे पीने के लिए शुद्ध जल और खाद्य द्रव्यो का जो महत्व होता है उतना ही या उससे कुछ अधिक महत्व मैल के प्रबन्ध का होता है। क्योकि इससे खाद्यपेय दूषित होने की सम्भावना रहती है। यह प्रबन्ध निम्न पद्धतियो से किया जाना चाहिए—

(अ) खात शौचस्थान—खाइयो का स्थान मेले के स्थान से बहुत दूर न होना चाहिए, वरना लोग उनका उपयोग नही करेगे। झोपड़ियो के एक या दो विभाग के पीछे एक शौचस्थान होना चाहिए। शौचस्थान में ४०-५० फुट लम्बी डेढ से तीन फुट गहरी और १०-१२ इच चौडी खाई खोदी जाती है। उस खाई के चारो ओर ऊँची टट्टियाँ खड़ी कर दी जाती है। खाई से जो मिट्टी निकलती है वह महीन बनाकर खाई के किनारे से छः इन्च पीछे पास ही रख दी जाती है। शौच के लिये बैठने वाला मनुष्य खाई के दोनो किनारे पर अपने पांवो को रखकर बैठता है जिससे मल-मूत्र और जल सब खाई में ही गिरते है।" प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वतन्त्र शौचस्थान बनाने के लिए प्रत्येक तीन फुट की दूरी पर खाई में आर-पार टट्टिया लगा दी जा सकती है। प्रत्येक दिन लोगों के शौच कर चुकने के पश्चात् भंगी खाई में थोड़ी थोड़ी मिट्टी डाल देता है। खाई मे जब मल अधिक भर जाता है तब मल के ऊपर चूना छोड़कर खाई को पास की मिट्टी से भर दिया जाता है और सात-आठ फुट के अन्तर पर पहिले की तरह खाई खोदकर और टट्टिया लगाकर नये शौचस्थान बना दिए जाते है।

खाई के बदले जमीन मे मिट्टी के गमले रखकर और पावदान के लिए ईटो को रखकर पूर्ववत् टट्टिया लगाकर भी शौचस्थान बनाये जा सकते है। इस तरह एक स्थान मे बीस-पच्चीस मनुष्यो के लिये मलत्याग का प्रबन्ध किया जा सकता है। यदि हो सके तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वतन्त्र शौचस्थान बीच मे टट्टिया लगाकर बनाया जा सकता है। खाई की अपेक्षा गमले के शौचस्थान मे फायदा यह है कि उसका स्थानान्तर करने की आवश्यकता नही होती, परन्तु दोष यह है कि प्रत्येक समय लोगो को मल त्यागकर चुकने के पश्चात् मल को हटाकर गमलो को साफ करना पडता है। स्त्री पुरुषो के लिए अलग-अलग शौचस्थान होने चाहिए। प्रत्येक शौचस्थान के पीछे एक स्वतन्त्र मेहतर होना चाहिए। स्त्रियो के विभाग मे मेहतरानियाँ होनी चाहिये। मेहतरो के द्वारा शौचस्थान तथा उसके आस पास का भाग स्वच्छ रखने पर ध्यान देना चाहिए तथा रात को वहाँ पर प्रकाश का उत्तम प्रबन्ध करना चाहिए, वरना लोग इतस्तत रास्ते मे ही शौच किया करते है। जहाँ पर मेले मे लोग रहते हैं वहा पर प्रति सौ मनुष्यो के पीछे एक पाखाना और जहाँ पर लोग दिन मे बाहर से आते हैं वहा पर प्रति पाच सौ मनुष्यो के पीछे एक पाखाना के हिसाब से पाखानो की सख्या नियत करनी चाहिए। इन स्थानो मे इकट्ठा हुआ मल गाडियो मे भरकर कही दूर खाइयो मे डालकर या भट्ठो में जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।

(ब) पेशाब घर —प्रत्येक विभाग के कोने पर पेशाब घर बनाने चाहिए। ये भी टट्टियो से घेरकर रखने चाहिए। स्त्रियो और पुरुषो के लिए अलग-अलग होने चाहिए। पेशाब करने का स्थान निम्न प्रकार से बनाया जाता है —जमीन मे चार-पाच फुट गहराई का गढ्ढा खोदा जाता है जिसमें पृष्ठ भाग से एक फुट तक चूने के ठिम्मे भाँवें भर दिए जाते है और उन पर मिट्टी के तेल का खाली कनस्तर रख दिया जाता है। जिसमे रस कपूर के तीव्र (५०० मे १) घोल मे भिगोया हुआ लकडी का बुरादा भरा रहता है।

(५) कूडे का प्रबन्ध—मेले के स्थान मे जो कूड़ा कचरा रहता है उसको उठाकर इकट्ठा करने के लिए स्वतन्त्र मेहतर रखने चाहिये। प्रत्येक दो हजार मनुष्यो के पीछे एक मेहतर के हिसाब से उनकी सख्या नियत करनी चाहिए। विभाग की लोकसख्या के अनुसार प्रत्येक विभाग मे एक या दो मेहतर तैनात करके उनसे प्रत्येक विभाग की सफाई का काम कराना चाहिए। कूडे को इकट्ठा करने के लिए प्रत्येक चौराहे पर तथा बीच-बीच मे पात्र रखने चाहिए तथा कूडे को ले जाने के लिए हाथ गाड़िया तथा बैल गाडिया भी रखनी चाहिए। इस प्रकार इकट्ठा किया हुआ कूडा मेले के स्थान के बाहर जमीन मे भर देना चाहिए या मैले को जलाने के काम मे लाना चाहिए।

(६) मृतो का प्रबन्ध—जहा पर असख्य लोग इकट्ठा होते हैं वहाँ पर दुर्घटनाओ से या बीमारियो से कुछ लोग जरूर मर जाते हैं। उनको जलाने के लिये मेले के स्थान के नीचे नदी के किनारे पर या कही पर एक स्थान नियत करना चाहिये। लावारिस मृतक मनुष्यो को तथा मृतक जानवरो को उठाने के, जलाने के या गाडने के लिए डोम भी तैनात करने चाहिए।

(७) वैद्यकीय प्रबन्ध—सम्पूर्ण मेले के लिए एक स्वास्थ्याधिकारी (Medical officer of health) होना चाहिए। जिसका अधिकार सम्पूर्ण मेले के स्वास्थ्य और वैद्यकीय विभागो पर हो। इसकी सहायता करने के लिए कई स्वास्थ्य निरीक्षक (Sanitary Inspectors) होने चाहिए। मेले के कई विभाग बनाकर प्रत्येक विभाग के लिये स्वास्थ्य निरीक्षक तैनात करने चाहिए जो प्रतिदिन अपने विभाग मे चक्कर लगाकर मेहतरो, डोमो कहारो, जमादारों की सहायता से उस विभाग की सफाई का पूरा प्रबन्ध किया करें। मेहतरो के द्वारा अतिसार, प्रवाहिका, हैजा इत्यादि रोगो से पीड़ित लोगो का पता भी लगावे और उनकी सुचना स्वास्थ्याधिकारी को पहुँचावे।

मेले के प्रत्येक विभाग में एक-एक दातव्य औषधालय भी होना चाहिये जहाँ पर पूर्ण शिक्षित वैद्य की देख-रेख मे मामूली बीमारियो के लिए औषधि मिलने की व्यवस्था हो। औषधालयो के अलावा अत्यन्त बीमार लोगो के लिए साधारण अस्पताल, सक्रामक रोगो से पीड़ित रोगियो के लिए प्रथकीकरण रुग्णालय होने चाहिए। रोगियो को ले जाने के लिये औषधालयो मे, आरक्षियो के थानो पर, स्वय सेवको के कार्यालयो मे डोली, म्याना, पालकी, अवस्तार (Stretchers) इत्यादि साधन तथा मनुष्य भी तैयार रखने चाहिये। इन रुग्णालयो में तज्ञ डाक्टरो की देख-रेख मे चिकित्सा, सेवासुश्रुषा इत्यादि का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये।

(८) संक्रामक रोगों का प्रबन्ध—मेले के समय कोई सक्रामक रोग उत्पन्न न होने पावे इसी प्रकार का प्रयत्न होना चाहिये। इस दृष्टि से आने वाले यात्रियो को वैद्यकीय परीक्षण करने का प्रबन्ध होना जरूरी है। अधिसख्य यात्री आम गाडियो से आते हैं। अत बड़े-बड़े स्थानो पर यात्रियो का परीक्षण किया जाय और यदि कोई यात्री सक्रामक रोग से पीड़ित मालूम हो तो उसको औरो से अलग करके वहा पर उसकी चिकित्सा की जाय और उसको मेले मे न जाने दिया जाय।

(९) टीका का प्रबन्ध—मेले मे अधिकतर विशूचिका आन्त्रिक विकार इत्यादि खाद्यपेय सवाहित रोग उत्पन्न होते हैं। अत मेले मे आने वाला प्रत्येक यात्री इनके लिये क्षम या प्रतिकारक होना आवश्यक है। यह कार्य टीका द्वारा किया जा सकता है। इसके लिए एक सयुक्त टीका द्रव्य भी रहता है। यह टीका ८-१० दिन पहले लेना उचित है। अत मेले के बहुत पहले समाचारपत्रो द्वारा तथा अन्य मार्गों द्वारा जनता को सुचित कर देना चाहिए कि जो मेले मे आना चाहते है वे ८-१० दिन पहले इसका

टीका लगाले और साथ उसका प्रमाण पत्र लावे। इसके लिए मेला स्थान के आस पास अनेक प्रदेशो मे सरकार द्वारा नि शुल्क टीका का प्रबन्ध होना चाहिए। मेले के स्थान पर आने पर जबरदस्ती टीका लगाने की पद्धति अनुचित है। टीका लगाने पर ८-१० दिन तक शरीर मे ऋणावस्था (Negative) होती है जिसमे पुरानी प्रतिकारिता नष्ट होती है और टीकाजन्य उत्पन्न नही होती। इस अवधि में यदि विसूचिका आदि का उपसर्ग हो जाय तो रोग बलवत्तर होता है। अत टीका एक सप्ताह पहले ही लगाना उचित है। मेले मे विसूचिका या अन्य सक्रामक रोग उत्पन्न हो जाय तो मेले को तुरन्त बन्द कर देना चाहिए।

मनोरंजक स्थानों का स्वास्थ्य

सार्वजनिक स्थानो के समान ही मनोरजन के साधन के स्थान भी प्रचलित हो रहे है। यहा भी जनता का समारोह बहुत इकट्ठा हुआ करता है। असल मे यह भी सार्वजनिक स्थानो के ही अग हैं। इन समारोहो मे भी लोगो के स्वास्थ्य विगडने का अदेशा रहता है। अतएव इधर भी नगरपालिकाओ का ध्यान आकर्षित होना आवश्यक है। हम सक्षिप्त मे ऐसे स्थानो का वर्णन करते हैं—

८—नाटक घर

नाटक द्वारा जनता का मनोरजन करना बहुत पुरानी प्रथा है। वाल्मीकि रामायण को वाल्मीकि के शिष्य मयऋषिकुमार रूपधारी लव और कुश ने श्री रामचन्द्र जी को जाकर सुनाया था। भीमसेन ने कचका वध नाट्यशाला मे किया था। भारत के सैकडो वर्ष पुराने सस्कृत के नाटक इसके साक्षी है कि यहाँ नाटक खेलने की प्रथा बहुत पुराने समय से थी। नाटको के द्वारा किसी कथानक को तद्वत सजाकर उन्ही-उन्ही पात्रो द्वारा दिखलाकर खाली मनोरजन ही नही किया जाता, बल्कि उस घटना का स्थायी स्मरण और उसका नैतिक सामाजिक धार्मिक प्रभाव हृदय मे अङ्कित किया जा सकता है। जो नाटक देखने के समय अपार भीड इकट्ठी होती है, धक्कमधक्का और ठेलमठेला कर कसमकस में बैठ कभी कभी नाटक देखना पडता है। असख्य लोगो मे भीड इकट्ठी होने से श्वास प्रश्वास से निकले हुए वायु मे वायुमण्डल विकृत होता है। इसलिए नाटक घर के दरवाजे खुले रहने चाहिए। जिस समय कोई अङ्क समाप्त होकर थोड़ी देर के लिए छुट्टी होती है उस समय बाहर निकलकर मुक्तवायु मे रहना चाहिए। इसके लिए नाटकघर की ओर से साफ धुले हुए पेशाबघर रहने चाहिए, उन्ही में ये लोग जावें। नाटकघर की दीवालो पर काफी रोशनदान और वायु निकलने की जगह बनी रहनी चाहिए। बैठको के नीचे का फर्श नित्य खूब साफ किया जाना चाहिए। पान, तमाखू खाकर लोग भीतर थूकने न पावे। इधर-उधर कोई नाक न छिडकने पावें। इन बातो से रोग फैलते हैं। वहा खटमल और पिस्सू न रहने पावें, ये भी रोग फैलाते हैं। रात के जागरण से भी स्वास्थ्य बिगड़ता है। पाचन क्रिया मन्द पडती है। बद्धकोष्ठ भी हो जाता है। जिससे आतो मे मल सडता है। बहुत नाटक देखने की आदत नही होनी चाहिए। नाटकघर बनाते समय विस्तृत और हवादार मकान, रोशनदान, आस-पास खुलासेदार जगह आदि का विचार पहले ही कर लेना चाहिए। कभी कभी कुर्सी, बेंच आदि को फिनाइल मिले पानी से पोछवाना चाहिए। जो लोग नाटक घर या सिनेमा में खुले पाव जाकर बैठना चाहते हैं, उन्हे चाहिए कि अपने पैरो मे कडुवा तैल, अजवाइन, कपूर वगैरह कीटाणुनाशक औषधि लगाकर जाया करें। कम से कम जल से पावो को स्वच्छ तो अवश्य कर लेना चाहिए।

९—सिनेमा

पहले सिनेमा या बाइस्कोप में मूक और चलित चित्र दिखाये जाते थे, तब भी कसे हुए खिडकियो के नाटक देखने के लिए उनमे लोग जाते थे। किन्तु अब तो बोलने वाले सिनेमा की कला बहुत ऊँचे दर्जे की होती जा रही है। इसलिए उसकी सर्वप्रियता बहुत बढ गयी है। नाटक मे यह दोष है कि भिन्न-भिन्न स्थानो मे नाटक करने वाले भिन्न-भिन्न होने से और नौसिखिये तथा अल्प कलायुक्त होने से वह उतना मनोग्राही नही हो पाता। सिनेमा मे चुने हुए खिलाडियो के द्वारा खेल तैयार किया जाता है और उसी के चित्र लेकर तथा उन्हीं की वाणी भरकर सर्वत्र एक सी दिखाई सुनायी जाती है। इसलिये नाट्य और कला की उनमे पूर्णता रहती है। अभी दोष यह है कि यहा चुने हुए भारतीय सभ्यता के अनुरूप सामाजिक

धार्मिक और ऐतिहासिक तथा देश-कर्तव्य–बोधक सिनेमा कम तैयार होते है। पैसा कमाने के लिए विचित्रता और मनोरजन (सो भी भद्दा और निकृष्ट प्रेम प्रदर्शक) ही उसमे अधिकाश रहता है। उन्हे देखने से मानसिक विकास तो होता नही, विषय-वासना की जागृति होती है। विचित्र नकली प्रेम की प्यास बढती है, हवाई आकाक्षाये हृदय मे स्थान करती हैं और सिनेमा प्रेमी दर्शक विचित्र सभ्यता के पुजारी बन जाते है। इसके सिवाय छायाचित्र होने के कारण सिनेमाघर अधिकाश बन्द और अन्धकार-मय रखे जाते है जिससे वे स्वास्थ्य को जल्दी बिगाडते है। सिनेमा मे चमकदार चित्र बारम्बार बदलते है, छोटे बड़े होते हैं, आख गढाकर उन्हे देखना पडता है। इससे आखो को हानि पहुँचती है। बन्द कमरे मे सास जोर से खीचना पड़ता है, इससे फेफड़े कमजोर हो जाते है। कम-जोर हो जाते हैं। कमजोर स्त्री-पुरुष और लडको को सिनेमा देखने से अधिक हानि पहुँचती है।

१०—पुस्तकालय

आजकल समाचार पत्र और पुस्तकें पढ़ने का शौक लोगो मे बढ रहा है अतएव इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए पुस्तकालयो के कमरे बड़े न हो तो वहा अधिक लोगो को इकट्ठा होने से श्वासोच्छ्वास से लोगो के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड सकता है। इसलिये पुस्तकालयो के कमरे बड़े, चौडे और काफी जगलेदार होने चाहिए। यदि भीतर अधिक भीड होती हो तो बाहर बरामदे मे भी कुछ लोगो के पढने की सुविधा कर देनी चाहिए। आजकल समाचार पत्रो और पुस्तको मे बहुत छोटे टाइप लगाये जाते है, इससे पढने वालो की आखो पर बहुत जोर पडता है। प्रकाशको को इस पर ध्यान देना चाहिए। पुस्तकालय की दीवालें, छत, आलमारिया, मेज, कुर्सी खूब साफ पोछी हुई चाहिए। जिनमे धूल का नाम न हो, नही तो वहाँ जीवाणुओ के अड्डे बनेगे।

११– अजायबघर

अजायबघरो मे चित्र विचित्र वस्तुये, ऐतिहासिक सामग्रिया, खोज के सामान, भिन्न–भिन्न स्थानो की सभ्यता के दर्शक चिह्न, पहनावा आदि का प्रदर्शन होता है, इसलिए लोग चाव से देखने जाते है। दीवालो मे और बीच मे भी दर्शनीय वस्तुओ की आलमारियाँ आदि सजी रहती है, बीच मे थोडी जगह रहती है जहाँ से देखने वाले खिसकते हुए निकलते हैं। एक तरह कसमकस सा होने लगता है। एक की साँस की हवा दूसरे के जाती है। ऐसी जगह मे एक ओर से आने और दूसरी ओर से जाने का प्रबन्ध रखने से कुछ सुविधा होती है। दीवाल पर की चीजो की सफाई बरा-बर होनी चाहिए। अन्यथा वहाँ की धूल लोगो की नाक मे जा कर विभिन्न रोग पैदा करेगी।

१२—खेलकूद की जगह

हाकी- फुटबाल- क्रिकेट के टूर्नामेंट, कुश्ती या मैच होने के समय खेल कूद की जगहो मे बडी भीड होती है। ऐसी जगहो की सफाई नगरपालिका को सावधानी से करानी चाहिए क्योकि वहा की सफाई किसी खास के जिम्मे नही रहती। व्यायाम शाला वगैरह जहाँ नित्य लोग जाते है वहाँ की सफाई पर भी वहाँ के प्रबन्धको को ध्यान देना चाहिए। लोग व्यायाम कर सिर का पसीना दीवालो मे न रगडने पावे। खेलने वाले और दर्शक जहाँ तहाँ थूकने न पावे, पेशाव न करने पावे।

१३—पार्क

आजकल शहरो मे मुहल्लो के बीच में छोटे–छोटे और बस्ती के बाहर बड़े पार्क या मैदान स्वास्थ्य-सुधार की दृष्टि से बनाये जा रहे है। ये सचमुच स्वास्थ्य-सुधार के लिए हैं भी। यहाँ शाम सवेरे लोग इकट्ठे होते है अत. ध्यान रखना चाहिये कि इधर उधर कोई पेशाव न करने पावे। पार्क मे तो दूब लगी रहती है, उसमे लोग मनोरजन के लिए बैठते हैं, लेट भी जाते हैं। अतएव ध्यान रखना चाहिये कि वहा कोई थूकने न पावे। थूकने के लिए चूना पड़े हुए मिट्टी के या चीनी मिट्टी के पात्र पार्क के कुछ स्थानो पर रखे रहें। पार्क के चारो ओर कुछ फूल के तथा हरियाली के छोटे वृक्ष लगे रहने चाहिए।

सक्षेप मे सार्वजनिक स्थानो मे उत्तम प्रकाश व्यवस्था, स्वच्छ वायु आगमन, स्थानो की उत्तम सफाई आदि पर ध्यान देकर मानव स्वास्थ्य को सुरक्षित रखना चाहिये।

आयुर्वेद-चक्रवर्ती श्री प० दुर्गाप्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य, प्राणाचार्य, आयुर्वेद-शिरोमणि, वैद्यरत्न, आयुर्वेद शास्त्र वाचस्पति, महामन्त्री—अ०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन, अध्यक्ष—कौंसिल आफ स्टेट बोर्डस ऐण्ड फैकल्टीज आफ इण्डियन मैडिसिन, निदेशक, श्री—वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन (प्रा०) लिमिटेड, पटना।

आयुर्वेद चक्रवर्ती आदरणीय शर्माजी को आयुर्वेद जगत् मे कौन नही जानता। आपने आयुर्वेदाचार्य, प्राणाचार्य, आयुर्वेद शिरोमणि, वैद्यरत्न, आयुर्वेद शास्त्र-वाचस्पति आदि उपाधियो से सुशोभित, अ०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन के मन्त्री, कौंसिल आफ स्टेट वोर्डस् एण्ड फैकल्टीज आफ इण्डियन मैडिसिन के अध्यक्ष तथा श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड के निदेशक है। आयुर्वेद के उत्थान मे आपका वहुत वडा योगदान है। आपने इसके विकास के लिए हजारो रुपये व्यय कर विदेशो की यात्राये की है। आयुर्वेद जगत को आपसे वहुत सी आशाये है।

'सार्वजनिक स्वास्थ्य एवम् राजकीय सस्थाये' शीर्षक आपका लेख ज्ञानवर्धक वन पडा है। भविष्य मे भी आपका सहयोग "धन्वन्तरि" को मिलता रहेगा, ऐसी आशा है।

—विशेष सम्पादक

स्वास्थ्य मात्र वैयक्तिक अथवा पारिवारिक विषय नहीं है, वल्कि यह सार्वजनिक एव सामाजिक विषय भी है। अत. मात्र यही हमारी चिन्ता का विषय नही है कि अपना शरीर एव परिवार स्वस्थ रहे, वल्कि हमारी चिन्ता का विषय यह भी समान रूप से होना चाहिए कि हमारा समाज स्वस्थ रहे।

महामारियो एव सक्रामक रोगो के सम्बध में तो यह सर्वविदित ही है कि समाज से इनका सक्रमण परिवारो तथा व्यक्तियो मे होता है। अत. ऐसे रोगो के नियन्त्रण एव उन्मूलन का प्रयास सार्वजनिक एव सामाजिक स्तर पर किया जाता है। प्राय सम्पूर्ण समाज ऐसे रोगो के नियत्रण तथा उन्मूलन की चिन्ता एव चेष्टा करता है।

इसी प्रकार सार्वजनिक तथा राजकीय सस्थाओ के सम्बन्ध मे भी ऐसी चिन्ता एव चेष्टा करनी चाहिए कि उनका निर्माण स्वास्थ्यप्रद परिवेश में हो और उनमें स्वास्थ्य-रक्षा की पूरी व्यवस्था हो। कटने-छँटने की आरम्भिक चिकित्सा के निमित्त फर्स्ट एड बाक्स रखना ही काफी नही है, बल्कि एक छोटा-मोटा औषधालय तो प्रत्येक बडी सस्था मे रहना ही चाहिए और रहना चाहिए एक प्रामाणिक चिकित्सक भी। ऐसी सस्थाओ मे स्वास्थ्य की नियमित जाच की व्यवस्था भी रहनी चाहिए।

विद्यालय, चिकित्सालय, धर्मशाला, छात्रावास, मन्दिर, श्मशान, कब्रिस्तान, नाट्यशाला, सिनेमाघर, पुस्तकालय, अजायबघर, पार्क अथवा सार्वजनिक उद्यान, क्रीडागार अथवा स्टेडियम आदि इस सबध में विशेष रूप से उल्लेखनीय एव महत्वपूर्ण हैं। हमारे देश मे प्राय. लोग इन सस्थाओ को पूर्णरूप से स्वच्छ रखने तथा इनका निर्माण स्वास्थ्यप्रद वातावरण मे करने पर ध्यान नही देते। सस्ती से सस्ती जमीन दान करने अथवा खरीदने की प्रवृत्ति के कारण अस्वच्छ परिवेश ही प्राय सार्वजनिक सस्थाओ को मिलते हैं। धनी बस्तियो मे ऐसी सस्थाओ का निर्माण करने की प्रवृत्ति भी कही-कहीं देखी जाती है और पर्दा-प्रथा एव महिलाओ की सुविधा के लिए मन्दिर, बालिका विद्यालय आदि धनी बस्तियो मे ही प्राय बनाये जाते हैं।

प्राय लोग भूल जाते हैं कि हमारे जीवन के लिए सर्वाधिक आवश्यक एव महत्वपूर्ण है वायु। अत यह भी स्वभावत सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि हमे श्वास लेने के लिए शुद्ध हवा मिले। यह ध्यान रखने योग्य है कि घनी बस्तियो मे शुद्ध एवं स्वच्छ हवा की प्राप्ति कठिन ही नही बल्कि असम्भव भी है। प्रशस्त एव खुले हुए तथा स्वच्छ क्षेत्र मे ही शुद्ध एव स्वच्छ हवा की प्राप्ति सम्भव हो सकती है।

जरा गगा-तट का ही निरीक्षण करके देखिए। प्राय लोग उसको गन्दा किये रहते हैं, जबकि उसे बिल्कुल साफ-सुथरा रखना चाहिए। गगातट-स्थित कई नगरो मे तो नालों का गन्दा पानी भी गगा जी के अन्दर ही गिराया जाता है। ऐसी स्थिति मे भला हम कैसे आशा कर सकते हैं कि गगा जी के अन्दर कोई सफाई-व्यवस्था हम कर सकते हैं? लेकिन सफाई की व्यवस्था तो बाहर भी रहनी चाहिए और भीतर भी। स्वच्छता दोनो ही प्रकार की चाहिए वाह्य भी और आन्तरिक भी। गन्दी चीजे गगा जी के अन्दर से निकाली जानी चाहिए। दोनो तरफ किनारो पर उतनी दूर तक तो गगा जी के अन्दर से कूडा-कचरा निकाला ही जाना चाहिए जितनी दूर तक लोग स्नान करने के निमित्त जाते हैं और ऊपर अथवा बाहर तो सफाई रहनी ही चाहिए और सफाई नियमित रूप से करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

इसी प्रकार श्मशान तथा कब्रिस्तान आदि मे भी सफाई रहनी चाहिए और सफाई करते रहने की नियमित व्यवस्था रहनी चाहिए। प्राय' श्मशान काफी गन्दे दिखाई पडते हैं और कब्रिस्तानो का भी यही हाल रहता है। राख एव मिट्टी की ही नही, बल्कि, अन्य प्रकार की गन्दगिया भी देखने मे आती हैं।

पार्को अथवा सार्वजनिक उद्यानो मे लोग शुद्ध एवं स्वच्छ हवा प्राप्त करने के लिए जाते है लेकिन उनको काफी गन्दा कर दिया करते हैं। प्राय उनकी सफाई की नियमित व्यवस्था नही रहती और यदि रहती भी है तो नियमित रूप से सफाई नही होती। उद्यान-भोज अर्थात् पिकनिक आदि करने वाले भी न तो स्वय पिकनिक के बाद सफाई करते हैं और न नियमित रूप से करने की व्यवस्था वहाँ रहती है। अत पिकनिक के द्वारा स्वास्थ्य सुधार होने के बदले स्वास्थ्य-विकार ही होने लगता है। काश इस बात का ध्यान हमारे देश मे व्यक्तिगत रूप से भी रखा जाता कि स्वच्छता ही स्वास्थ्य का मूलाधार है। पौष्टिक तत्व भी समुचित रूप से तभी लाभ पहुचाते हैं जब स्वच्छता रहती है।

विद्यालयो में स्वास्थ्य की आधार-शिला कायम होनी चाहिये और उनमे स्वच्छता की पराकाष्ठा रहनी चाहिये, जिससे विद्यार्थी अपने जीवन मे आदर्श स्वच्छता को स्थान दे सके। लेकिन देखने मे आता है कि उनके शौचालय काफी गन्दे रहते है और प्राय उनका निर्माण भी पास ही किया जाता है। पास निर्माण करने पर तो स्वच्छता का

और अधिक ध्यान रखना चाहिये। इसी प्रकार छात्रावासो मे भी ऐसी ही गन्दगी दिखाई देती है। यह स्थिति खेदजनक ही नही बल्कि लज्जाजनक भी है।

इतना ही नही, चिकित्सालयो तक मे भी भीषण गन्दगी देखने मे आती है। लोग अस्पताल के अहाते को भी गन्दा रखते हैं और गन्दी-गन्दी चीजो को अहाते के अन्दर ही फेंक देते हैं। प्राय बदबू भी आती रहती है और उसी बदबू में मरीज तथा उनके परिचारक एव चिकित्सक भी साम लेते है। कही-कही तो वार्ड भी गन्दे रहते है। यह कितना घातक, खेदजनक एव लज्जाजनक है।

शौचालयो को तो जैसे हमारे यहाँ गन्दगी का स्वाभाविक स्थान ही मान लिया गया है और उनको तथा उनके परिवेश को गन्दा रखा जाता है। वहाँ सारी अशुचिता एव अस्वच्छता इकट्ठी कर एव बिखेर दी जाती है। ऐसे क्षेत्रो में जाते समय लोग प्राय नाक बन्द कर लेने को विवश हो जाते है। काश हम सोच-समझ पाते कि उनकी इस भीषण अस्वच्छता से आखिर रोग ही तो पैदा होगे। आरोग्य तो कदापि पैदा नही हो सकता है। बेचारे मरीज भी अपने एक रोग का इलाज कराने जाते है तो इस भीषण गन्दगी से प्राय कई दूसरे रोग प्राप्त कर लेते हैं।

इन सारे केन्द्रो मे व्यवस्था का अभाव तो रहता ही है, ईमानदारी का भी कम अभाव नही रहता और अभाव रहता है कर्तव्यपरायणता का भी। जो लोग स्वच्छता रखने के काम मे लगाए जाते है वे ईमानदारी से कर्तव्यपरायणता का परिचय नही देते। और जो लोग इन सार्वजनिक केन्द्रो मे जाते–आते है वे भी स्वच्छता रखने की चेतना नही रखते और धडल्ले से अस्वच्छता करते चले जाते हैं। इन सारे कारणो से इन सार्वजनिक केन्द्रो मे गन्दगी अर्थात् रोगजनक स्थिति क्रमश बढती चली जाती है।

चिकित्सालयो मे तो खाद्य सामग्रियों मे भी अस्वच्छता देखने मे आती है। इनमे स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए। खाद्यपदार्थो मे मिलावट की कतई सम्भावना नही रखनी चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य की स्थिति तो यहा तक पहुची है कि दवाओं तक मे मिलावट होने लगी है और नकली दवाओ की भरमार हो गई है। ईश्वर की बडी कृपा है कि आयुर्वेदिक दवाओं के सबध मे ऐसी बात नहीं है और शायद ऐसी बात हो भी नही सकती और आयुर्वेदिक दवाऐ हानिकारक तो होती ही नही।

हमारा औपनिषदिक उद्घोष जीवन में सत्यम् शिवम् तथा सुन्दरम् का दृष्टिकोण रखने का है। शिवम् अर्थात् मगलम् या कल्याणम् को सत्यम् अर्थात् स्वच्छता और सुन्दरम् अर्थात् सुन्दरता से परिवेष्टित – आवेष्टित रहना चाहिए। अन्यथा मगल अथवा कल्याण सभव ही नही है

हमारी सार्वजनिक सस्थायें कल्याण मगल के लिए ही हैं। अतएव उनमे स्वच्छता और सुन्दरता का पूरा ध्यान रखना चाहिए। जहाँ सस्कारो का शिलान्यास किया जाता है वहाँ विकार का नही, बल्कि, परिष्कार का ही स्थान होना चाहिए। निरन्तर स्वच्छता को अनिवार्य मानकर उसकी समुचित व्यवस्था के लिए सस्था के आय-व्ययक मे प्रावधान किया जाना चाहिए और इस बात की पूरी जांच की जानी चाहिए कि नियमित स्वच्छता की रक्षा की जा रही है।

छात्रावासो तथा विद्यालयो में विद्यार्थियो के स्वास्थ्य की नियमित जाच एवं आवश्यक चिकित्सा की भी व्यवस्था रहनी चाहिए। और विद्यालयो मे तो स्वास्थ्य के नियमो की शिक्षा भी अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए और इस बात की जाच नियमित रूप से की जानी चाहिए कि विद्यार्थी स्वास्थ्य के नियमो का विधिवत् पालन कर रहे हैं।

इस बात की चेतना तो प्रत्येक नागरिक मे रहनी ही चाहिए कि हम स्वच्छता की पूरी रक्षा बराबर करें और सार्वजनिक केन्द्रो मे गन्दगी न करने का विशेष ध्यान रखें। मैं एक बार पुन बल देकर कहूगा कि स्वास्थ्य के सार्वजनिक पहलू का ध्यान हमे बराबर रखना चाहिए और व्यक्तिगत स्वास्थ्य को सार्वजनिक स्वास्थ्य से अविच्छिन्न मानना चाहिए।

आधुनिक यान्त्रिक और औद्योगिक उन्नति के युग मे प्रत्येक राष्ट्र का अधिकाश उत्पादन कल-कारखानो में, खानो मे तथा गिरणियो (Mills) मे होता है, जहाँ पर सैकडो या सहस्त्रो कामगार थोडे स्थान मे इकट्ठा होते है, वातावरण अशुद्ध रहता है, परिस्थिति अस्वच्छ होती है, प्रकाश कम रहता है और खडे-खडे घन्टो तक काम करना पडता है। इमसे कामगारो मे खाँसी, दमा, राजयक्ष्मा, कुब्जता, तिर्यग्दृष्टि (Nystagmus) इत्यादि अनेक विकार उत्पन्न होते है। इनके अतिरिक्त यन्त्रिक दुर्घटनाओ (Accidents) से अनेको के हाथ, पैर, आँख-कान इत्यादि अग-प्रत्यगों को हानि पहुँचती है और वे सदा के लिए विकलाग हो जाते है तथा अनेको की मृत्यु हो जाती है।

औद्योगिक व्यवसाय मे कामगारो को औद्योगिक विष, औद्योगिक वात और धूम से स्वास्थ्य की काफी हानि होती है। अत यहाँ इनके बारे मे सक्षिप्त वर्णन एव बचने के उपाय पर जानकारी दे रहे है—

औद्योगिक विष—

१. **सीस** (Lead)—सीसे की खानें, सीसे के रग, रङ्गीन काच, मुद्रणधानी (टाइप फाउण्ड्री), पानी के नल, बन्दूक की गोलियाँ, चीनी और तामचीनी के बर्तन, विद्युत सग्रह कोशायें (Storage-batteries) इत्यादि के काम करने वाले सीस विष से पीडित होते हैं। शरीर मे प्रवेश सूक्ष्म कणो के निगलने से, सूक्ष्म कणो के और भाप के सूँघने से या त्वचा से होता है। मुख और नासामार्ग मुख्य प्रवेश द्वार है।

प्रतिबन्धन—कारखाने के भीतर खाने का अन्न तथा पीने का पानी न रखना चाहिये। खाना और पीना बाहर करना चाहिये। खाने पीने से पहले हाथो, नाखूनो और मुख की सफाई करनी चाहिए। खाने-पीने मे दूध तथा अन्य पौष्टिक द्रव्यो का उपयोग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त काम पर स्वतन्त्र कपडो को पहनना, सीसे की वस्तुओ को उठाने के लिए हाथो का उपयोग न करके औजारो का प्रयोग करना और कारखाने मे धूये का और हवा की खुलासगी का उचित प्रवन्ध करना इन उपायो से भी सीस विष का उपद्रव कम हो जाता है।

२ **पारा** (Mercury)- ज्वरमापक, तापमापक के कारखानो मे, हिंगुल तथा पारे का उपयोग जिनमे होता है ऐसे व्यवसायो मे काम करने वाले पारदविष से पीडित होते है।

प्रतिबन्धन—पारद साधारण ताप पर भी धीरे-धीरे वाष्परूप होता रहता है। इसलिए उसको हमेशा बन्द बर्तनो मे रखे। निकलते समय या काम के समय जिस तरह वह जमीन पर न गिरे उस तरह उसको निकालें। गिरा हुआ पारा विशेष उठावे, फर्श भी ऐसी चिकनी हो कि गिरा हुआ पारा उठाने मे कठिनाई न हो। जिनके दात खराव, टूटे या घुने हुए होते है वे पारद विष से जल्दी पीड़ित होते है। अत ऐसे दातो को निकलवा देना चाहिए। प्रतिदिन मुख की सफाई की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। कमरो का ताप ६० अश फॅ० से कम रखना चाहिए ताकि पारद का उत्पादन (Volatilization) कम से कम हो। धुये को जल्दी निकालने के लिए श्वसित्र (Respirator) और शरीर रक्षा के लिए अगावरक (Oreralls) दिये जाये।

३. **भास्वर** (Phosphorus)—दियासलाई के कारखानो मे काम करने वाले इसके विष से पीडित होते हैं। इसके विष से अग्निमाद्य, रक्तक्षय, खासी, कृशता और नीचे के जबड़े का गल जाना (Necrosis) ये उपद्रव होते है।

प्रतिबन्धन—श्वेत या पीले भास्कर का उपयोग न करके लाल भास्वर का उपयोग करना चाहिए। दातो के सम्बन्ध मे पारे के समान इलाज करना चाहिए। मुख की सफाई क्षारीय द्रव्य के घोल से करनी चाहिए। कारखाने बहुत खुले स्थानो मे होने चाहिए तथा कारखानो के कमरे विस्तृत और हवादार होने चाहिए। तैलपर्ण (तारपीन) तेल की भाप से भास्वर का विषैलापन कम हो जाता है इसलिए चौडी तश्तरियो मे तैलपर्ण तेल भरकर स्थान-स्थान पर रखना चाहिए जिससे काम करने वाले काम के समय भाप को सूघते रहे।

४ सोमल (Arsenic)—सोमल, सोमल के रङ्ग, रङ्गीन कागज, रङ्गीन कागज के फूल, पैरीसग्रीन इत्यादि के कारखानो मे काम करने वाले सोमल विष से पीडित हो सकते है। सीसे के समान इसका भी शरीर मे प्रवेश होता है और सीसे के समान ही इसका भी प्रतिबन्धन करना चाहिए।

औद्योगिक वात और धूम—

अनेक रासायनिक और धातुओ के कारखानो में अनेक रोगावह और भयावह वात तथा धूम उत्पन्न होते हैं। उनके इतस्तत. न फैलने के लिए तथा निकासी के लिए कारखानो मे कृत्रिम प्रवीजन का उचित प्रबन्ध हो, जहाँ पर ये धूम उत्पन्न होते हैं वहाँ पर उचित आकार प्रकार के शिरच्छद (Hoods) लगाकर उनके द्वारा वे निस्सारण मार्गो में पहुँचाकर पखो द्वारा बाहर निकाल दिये जाय तथा उनसे बचने के लिए कर्मचारियो को श्वसित्र (Respirators) या मुखावगुठन (Masks) दिये जाय। नीचे कुछ वात और धूम का उल्लेख किया जा रहा है—

१ धातु धूम (Metal fume)—जस्ता (zinc) भ्राजातु (Mg), ताम्बा इनके जलते समय उत्पन्न हुए धुँए में इन धातुओ के भस्म के सूक्ष्म कण होते है, जिनके अन्त श्वसन से ज्वर आता है। इसको 'धातु धूम ज्वर' या पित्तल सधानक हिमज्वर (Brass Founder's ague) कहते हैं। ये धातुकण वस्तुत. औद्योगिक धातुविष न होने से इनसे कोई स्थायी विकार नही होता है।

२ प्रागार एकजारेय (CO)—लकडी, कोयला, प्रस्तटेल (Petrol) इत्यादि बाह्य वस्तुओ को दहन के समय जब जारक पर्याप्त मात्रा मे नही मिलता तब यह वात उत्पन्न होता है। इसलिए ईंटो के तथा धातु गलाने के भट्टों से यह वात न्यूनाधिक मात्रा मे बनता रहता है। विमान तथा मोटर मे भी प्रस्तटेल का दहन ठीक न होने से यह बनता है और कभी कभी भीतर आता है। अगारवात (Coal gas) मे ६% और जलवात (Water gas) मे यह ३०% होता है। अत ये दोनो वात विषैले होते है। रग-गन्ध-रसहीन होने के कारण इनका अस्तित्व तक विदित नही हो सकता। जिसके कारण इससे विषाक्त होने के अनेक आकस्मिक योग उत्पन्न होते है। प्राणवायु से भी शोणवर्तुलि (Haemoglobin) के साथ इसकी बन्धुता अधिक होती है। इससे श्वसन के साथ भीतर जाने पर वह शोणवर्तुलि के साथ प्रागागार शोणवर्तुलि (Carboxy haemoglobin) नामक स्थायी सयोग बनाता है जिससे लालकणो की जारक सवहन शक्ति (Oxygen Carrying Power) घट जाती है और प्राणावरोध (Asphyxia) उत्पन्न होता है। सक्षेप मे यह वायु विषैला नही परन्तु प्राणवायु को कम करके विषैला होता है। हाल्डेन ने यह बताया है कि वातावरण में ०५% हो जाता है तब आधा रक्त इससे सपूरित (Saturated) होकर बेकार होता है। इसका प्रमाण १% होने पर १ घण्टे मे शिर दर्द, तन्द्रा इत्यादि विषैले लक्षण होते हैं और जब यह प्रकाश ४% हो जाता है, तब मृत्यु होती है।

चिकित्सा—इससे बेहोश होने पर रोगी को शुद्ध हवा मे लाकर कृत्रिम प्रश्वसन कराना चाहिये। लोहफुफ्फुसो (Iron Lungs) का उपयोग इसमे बहुत लाभ करता है। सुंघने के लिए रोगी प्रा० ७% का दि० (CO_2) के साथ प्राणवायु देने से भी लाभ होता है। क्योकि उससे धीरे धीरे रक्त से प्रा० एकजारेय हटता जाता है।

३ तिक्ताति (Ammonia)—यह बहुत उग्रगन्ध वात है। नौसादर, बर्फ, रजत और मपु-पहन (Silverties-Plating) तथा प्रशीतीकरण (Refrigerating) के कारखानो मे यह वात मिलता है। अधिक काल तक इसके श्वसन से नेत्र दाला, गला और फुफ्फुस मे कालिक शोथ उत्पन्न होता है।

४. नीरजी (Chlorine)—यह वात पूर्णातु नीरेय

chloride of lime) नीटीयो (chlorates), नीरजी तथा तज्जन्य जीवाणुनाशक पदार्थों को बनाने वाले कारखानो मे, कागज और सुत की गिरणियो (mills) मे विरजन के (Bleaching) कामो मे उत्पन्न होता हैं। यह बहुत उग्रगन्धी है और उससे दम घुट जाता है। अधिक मात्रा मे होने पर इसके श्वसन से नासास्मान, आयुस्मान, कृच्छ्रश्वसन, खाँसी, फुफ्फुसपाक (Pneumonia) इत्यादि विकार होते है। अल्प मात्रा मे होने पर और अधिक काल तक सेवन करने पर पाचन की खराबिया, शिरोरुजा, पाण्डुरोग, कृशता इत्यादि विकार होकर दिनो दिन स्वास्थ्य गिरता जाता है। १०००० भाग मे इसका १ भाग ५ कला में घातक होता है।

(५) उदजन शुल्वेय (H_2S)—यह वात परनालो मे माक्षिको (Pyrites) की खानो मे तथा रबड के कारखानो मे पाया जाता है। इसकी गन्ध सड़े गले अण्डे के समान होकर १००० भाग में एक भाग होने पर भी मालूम होती है। अल्प मात्रा मे होने पर इससे तिल्ली, पचन की खराबियां, कास, शिरोरुजा इत्यादि विकार होते है। अधिक मात्रा मे (२-४% के करीब) होने पर इससे ओजपात, आक्षेप, मूर्च्छा, सन्यास और मृत्यु हो जाती है।

(६) नेपाल्येयित उदजन या नेपी (AsH_3, Arsine)—यह बात रसशालाओ मे, रसायनो के तथा चद्दरो पर जस्ता चढाने के (Galvanising) कारखानो मे पाया जाता है। यह बात हवा से भारी है जो नीचे की ओर इकट्ठा होता है। इसके अन्त.श्वसन से शोणितमेह, शोणवर्तुलिमेह, मूत्राघात (Suppression of urine), विषैले कामला और रुधिराशन (Haemolysis) होकर तुरन्त मृत्यु होती है।

(७) प्रागार द्विशुल्वेय (Carbon disulphide)—यह बात रबड़ बनाने वाले रबड से होने वाले जलाभेद्य (Water-Proof) वस्तुओ को बनाने वाले कारखानो मे तथा कृत्रिमरेशम के कारखानो मे पाया जाता है। दस लाख भाग मे इसका एक भाग विषैला परिणाम कर सकता है और डेढ भाग घातक हो सकता है। इसका परिणाम रक्त-पेशियाँ तथा मस्तिष्क इनके ऊपर होकर रक्तांधरावन (रक्त नाश), पेशीघात, ऐंठन, सुन्नता, अन्धता, भ्रम, शिरोरुजा, स्मरणनाश, कम्प इत्यादि लक्षण होते हैं।

यह बात हवा से भारी होता है अत. उसे निकालने के लिये शून्यक या निस्सारक (Extract) प्रवीजन की नालियाँ फर्श के पास लगानी चाहिए। यह बात अभिज्वाल्य याने आग पकडने वाला (Inflamable) होता है। अत आग या खुली बत्तिया उसके पास न रखने चाहिये।

कोयले की खाने (Coal mines)

कोयले की खानें मुख्यतया बगाल, बिहार और उडीसा मे है और उनमें सहस्त्रो व्यक्ति काम करते है। उनमें अल्प स्थान मे, अधेरे मे, अशुद्ध हवा मे और अस्वच्छता मे काम करना पडता है जिसके कारण अनेक रोग और अभिघात-उत्पन्न होते है। कोयले की खानो मे काम करने वालो की जो दुरवस्था होती है वही अन्य खानो मे काम करने वालो की प्रायः हुआ करती हैं। इसलिए प्रत्येक का सक्षिप्त विवरण यहाँ दे रहे हैं—

(१) कुदाल, फावडा इत्यादि से सदैव झुक कर काम करने की आवश्यकता होने के कारण उनके हाथ, कुहनी और घुटने आघात से खराब हो जाते हैं, जो 'घट्टहस्त' (Beat hand), 'घट्ट कूर्पर' (Beat elbow) और घट्ट जानु (Beat knee) कहलाते हैं।

(२) अधेरे मे विशिष्ट पद्धति से देखने की सदैव आवश्यकता पडने के कारण उनकी आंखो मे एक प्रकार का भेंगापन आ जाता है, जिसको खनक नेत्रदोष (Miner's nystagmus) कहते हैं।

(३) खानो मे नैसर्गिक प्रवीजन अपर्याप्त होता है। इसके अतिरिक्त अग्नि धूमिका (fire-damp) इसमे दलदली वायु CH_4 होता है), उत्तर-भूमिका (Afterdamp इसमें प्रागार एकजारेय होता है), श्वेत धूमिका (White-damp इसमे प्रा० एक जारेय या उदजन शुल्वेय होता है) कृष्ण धूमिका (Black-damp इसमें प्राण वायु नगण्य रहता है) इत्यादि खराब वायु बराबर निकलते रहते हैं। इससे खानो मे वातावरण बहुत खराब रहता है। वातावरण की खराबी के अतिरिक्त इनसे आग लग कर, बहि स्फोट (Explosions) होकर दुर्घटनाएं भी हुआ करती है।

(४) अस्वच्छता और खराब वातावरण के कारण

खनको में विसूचिका, अतिसार, मसूरिका, फुफ्फुस पाक, अ कुणोपसृष्टता (Hook worm infection) इत्यादि अनेक रोग उत्पन्न हुआ करते हैं।

औद्योगिक श्रमिको के स्वास्थ्य रक्षा के उपाय

(१) काम करने के लिये उचित पर्यावरण (Environment) उत्पन्न करके तथा उस पर्यावरण मे काम करने के लिए कर्मचारियो को तैयार करके उनके स्वास्थ्य को वढाना।

(२) व्यावसायिक रोगो का प्रतिबन्धन करना।

(३) काम करते समय होने वाली दुर्घटनाओ का प्रतिबन्धन करने मे सहायता करना।

(४) दुर्घटनाओ के समय तुरन्त उपचार करने की व्यवस्था करना।

(५) दुर्घटनाओ से पीडित व्यक्तियों को यथापूर्व काम करने योग्य बनाने का प्रयत्न करना।

(६) कर्मचारियो को स्वास्थ्य रक्षा की शिक्षा देना।

(७) इस विषय मे आवश्यक अन्वेषण और अनुसधान करना।

इस कार्य के लिय कल-कारखानो की तथा कामगारो की निम्न प्रकार से देखभाल तथा जाँच करनी चाहिये—

(१) कार्यकाल—कारखाने के प्रत्येक काम मे शारीरिक और मानसिक परिश्रम की भिन्नता होती है। इसको देखकर काम का काल निर्धारित करना चाहिए। प्रतिदिन ८ घण्टे का काम ५ दिन और ५ घण्टा एक दिन इस प्रकार सप्ताह में कुल ४५ घण्टे का काम हो। प्रतिदिन १० घण्टे से और सप्ताह मे ५४ घण्टे से अधिक काम न होना चाहिए। स्त्रियों को प्रसूति से पहले और पश्चात् ६ सप्ताह की छुट्टी दी जाय। अर्थात् उसको उतने दिनों का वेतन मिलना चाहिए। १८ साल से कम अवस्था के लडको को प्रतिदिन ७॥ घण्टे से अधिक काम न देना चाहिए तथा जिन कामो में प्रकोपक धूलि और जहरीले धुओ से जीवन के लिए भय हो ऐसे कामो पर उनको न रखना चाहिए। रात की पारी का काम लगातार दो सप्ताह से अधिक न हो। जो कारखाने साल भर मे कुछ ही मास चलते हो उनमे काम करने वालो के लिए दैनिक तथा साप्ताहिक काम के घण्टे कुछ अधिक रखें तो कोई हानि नहीं।

(२) नियतकालिक निरीक्षण—कामगारो की स्वास्थ्य की रक्षा की दृष्टि मे इसकी बहुत आवश्यकता होती है। इसके लिए स्वतन्त्र निरीक्षक नियुक्त किये जाते हैं और जहां नही है वहा पर होने चाहिए। ये कामगारो के निवास स्थानो के तथा जहा पर ये काम करते हैं वहा के कल कारखानो तथा गिरणियों के प्रकाश, प्रवीजन, धूलि धूमनिवारण, कार्यकाल मे शुद्ध पानी, मलमूत्र विसर्जन इत्यादि के सम्बन्ध मे समय-समय देख रेख करके उनको ठीक करने की सूचना या आदेश देते है और कामगारो के स्वास्थ्य का वैद्यकीय निरीक्षण करके उनको रोग निवारण की दृष्टि से उपयुक्त सूचना देते है और मोटे रोगो के उपाय बताते है। नियतकालिक निरीक्षण में बीच-बीच मे काम करने वालो की कार्यशक्ति का भी निरीक्षण होना जरूरी है। इसस अकार्यक्षम कर्मचारी मालूम होकर उनको निकाला जा सकता है और कारखाने की कार्यक्षमता स्थिर रखा जा सकता है। सास क कारखानो मे काम करने वालो के रक्त का परीक्षण क्षारप्रिय कणिका सवन (Basophilic stippling) के लिए होना जरूरी होता है जिसस सीसाविष का पता लग जाता है। वैसे ही राजयक्ष्मा और फुफ्फुसावरण रुग्णता (Pneumoconiosis) उत्पन्न होने की सम्भावना जिन धन्धो मे होती है उनमें कर्मचारियो के फुफ्फुसो का बीच-बीच में और बार-बार क्ष-रश्मि चित्रण भी करके देखना चाहिये।

(३) दुर्घटनायें—कारखानो मे काम करने वालो मे परिस्थिति के कारण अनेक रोग तथा दुर्घटनायें हुआ करती हैं। जैसे झुक करके सदैव काम करने से पीठ मे कूबड, खडे होकर काम करने से सिराकुटिलता (Vericose veins), ठीक प्रकाश न होने से दृष्टिमन्दता, पत्थर या धातु के कण आखो मे जाने से नेत्रव्रण इत्यादि। इनमे से बहुतेरी व्याधिया और दुर्घटनायें प्रतिबन्धनक्षम होती हैं। ये जिन कारणो से हुआ करते है उनको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। जैसे धोखे के स्थान मे उत्तम प्रकाश तथा सूचना लेख, यन्त्रो के चारो ओर अहाता लगाना, खरादो के आस-पास काम करने वालो की आखो की रक्षा करने के लिए नेत्ररक्षक चश्मो का का उपयोग, अपघातो, दुर्घटनाओ तथा रोगो की चिकित्सा का उत्तम प्रबन्ध इत्यादि।

(४) सुप्रकाश— कारखानो में विशेषतया खानो मे उत्तम प्रकाश होना चाहिये। जहा पर प्रकाश नही रहता वहा पर विजली के द्वारा प्रकाश का प्रबन्ध होना चाहिए। अल्प प्रकाश मे काम करने से अपघात होते है तथा आखें खराब होती हैं। खनको मे नेत्रदोलन (Nystagmus) की खास बीमारी होती है। कारखानो मे नैसर्गिक प्रकाश आने की दृष्टि से उनका उत्तर या दक्षिणाभिमुख होना जरूरी है। कारखानो की भित्तियो पर चूने की सफेदी करने से भीतर आया हुआ सूर्य प्रकाश भली-भांति सपूर्ण स्थानो मे परावर्तित होता है। कृत्रिम प्रकाशन छतो की बत्तियो से होना चाहिए। जब बत्ती समीप रखने की आवश्यकता होती है तब बत्ती पर इस प्रकार साया (Shade) लगाना चाहिए कि काम के समय तथा कमरे मे इधर-उधर देखते समय आखो पर रोशनी न पडे। कारखानो मे भासमान (Fluorescent) प्रकाश अधिक अच्छा होता है। क्योकि इससे छायायें नही पडती, एकसा प्रकाश रहता है तथा बिजली का व्यय कम होता है। सुप्रकाश से कारखानो मे सफाई अच्छी होती है, कूडा इकट्ठा नही होने पाता तथा यन्त्रो मे कही दोष या बिगाड हो तो इसका भी तुरन्त पता चल जाता है।

(५) सुप्रवीजन—प्रत्येक कारखाने की तथा गिरणी की इमारत सुप्रव्यजित होनी चाहिए। कारखाने मे शुद्ध वायु का ठीक प्रबन्ध न होने से कामगारो की कार्यक्षमता बहुत घट जाती है और वे अनेक रोगो के शिकार बन जाते हैं। छोटे कारखानो मे नैसर्गिक साधनो से भीतर शुद्ध वायु मिल सकती है, परन्तु बडे-बडे कारखानो और गिरणियो में कृत्रिम प्रवीजन का उपयोग करना पडता है। जहाँ तक हो सके कारखानो में पाणुवीजन का ही प्रबन्ध करना उचित है। एक खण्ड के कारखानो मे कूट व ढालू छप्परो से प्रवीजन का बहुत कुछ काम हो जाता है। जिन कारखानो मे धूलि, धुआ और ताप की तकलीफ है वहा पर प्रेरण, शून्यक या मिश्र विधि से प्रवीजन का प्रबन्ध करना चाहिए। भट्टो के पास काम करने वालो को प्रेरण विधि से ठडी हवा देकर उनकी तकलीफ दूर करके कार्यक्षमता बढ़ा सकते है। जहाँ हो सके वहाँ पर वातानुकूलन का प्रबन्ध किया जाय। इससे कारखानो की कार्यक्षमता और उत्पादन शक्ति बढती है।

(६) स्वच्छता—कारखानो के भीतर तथा बाहर पूर्ण स्वच्छता रखनी चाहिए। दीवालो तथा छतो पर समय-समय पर रग सफेदी करानी चाहिए। यहा पर उत्पन्न होने वाला खराब पानी नालियो द्वारा परनालो में छोड देना चाहिए। फर्श पर इकट्ठा होने वाली धूलि, कज्जली, महीनकण, तन्तु इत्यादि को यान्त्रिक समार्जको (Vacuum cleaners, Suction fans, dustremoving plants) द्वारा साफ करना चाहिए। जिन कारखानो मे कामगारो को कोयला, धूलि इत्यादि शरीर की त्वचा खराब करने वाले पदार्थों से काम करना पडता है वहा पर शरीर की सफाई की दृष्टि से पानी का प्रबन्ध होना चाहिए।

(७) धूम निवारण— जिन कारखानो मे धुआ भाप तथा अन्य वायव्य पदार्थ उत्पन्न होते है उनमे उनकी निकासी का उचित प्रबन्ध करना चाहिए। यह कार्य बिजली के द्वारा यन्त्र चलाने से, अच्छे भट्टे बनवाने से, भट्टो पर धुआ निकल जाने के लिए धूम्रमार्ग, धूमनी, शोषक प्रवीजन (Exhaust ventilation) इत्यादि का प्रयोग करने से होता है।

(८) आक्लेद और तापनियन्त्रण—आक्लिन्न (Humid) और गरम हवा मे काम करने से अनुत्साह होता है और बराबर काम करने से स्वास्थ्य खराब होता है। कारखानो मे थोडे स्थान मे अधिक लोगो के इकट्ठा होने के कारण वहा की हवा गरम और आक्लिन्न हो जाती है। कही-कही सूत की गिरणियो मे अच्छा सूत बनने के लिये सोच समझकर हवा आक्लिन्न रखी जाती हैं। इसलिए हवा की क्लिन्नता या गरमी या दोनो का नियन्त्रण कामगारो के स्वास्थ्य की दृष्टि से करना चाहिए।

(९) शुद्ध जल और मलमूत्र का प्रबन्ध—कार्य की अवधि मे कामगारो को पीने के लिए शुद्ध पानी का प्रबन्ध होना चाहिए। वैसे ही मलमूत्र विसर्जन के लिए सडास और मूत्रघर भी होने चाहिए और उनकी सफाई रखनी चाहिए।

(१०) निवास-गृह—कारखानो मे काम करने वालो के लिए रहने का प्रबन्ध होना चाहिए। एक व्यक्ति के लिये १० × १० × १२ फुट का कमरा हो। विवाहित के लिये ऐसे दो कमरे और रसोईघर, स्नानघर, पाखाना,
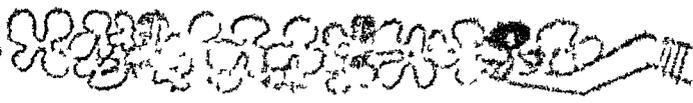
बरामदा ऐसा मकान हो। जहाँ पर ऐसे मकान हों वहाँ पर एक सार्वजनिक रसोईघर, पाखाना और स्नानगृह भी रहें।

(११) उपाहार गृह—यहाँ पर कर्मचारियों को अच्छा स्वच्छ, शुद्ध, सतुलित आहार मिलने का प्रबन्ध रहे। खाद्य द्रव्यों मे मिलावट न हो इस पर विशेष ध्यान दिया जाय।

(१२) बाल-गृह—पचास से अधिक स्त्रियाँ जहाँ पर काम करती हैं वहाँ पर उनके बच्चों की देखभाल करने के लिये, उनके नहलाने और वस्त्र पहनाने के लिए, उनको मुफ्त दूध पिलाने के प्रशिक्षित कुटुम्ब परिचारिकाओं की देख-भाल में बाल गृह (Creches) चलाना कारखानों के स्वामियों के लिए अनिवार्य करना चाहिए। इस गृह का उपयोग स्त्रियाँ काम के समय तथा छुट्टी मे अपने बच्चों को दूध पिलाने के लिये भी कर सकती हैं।

(१३) शिक्षा-गृह—काम करने वालो को अपने काम में क्या-क्या खतरा हो सकता है इसकी शिक्षा देनी चाहिए यदि कोई विषैला द्रव्य हो तो उसके विषैलेपनसे बचने के उपाय बतलाने चाहिए। स्थान-स्थान पर आवश्यकता के अनुसार सावधानी रखने की दृष्टि से सूचनाफलक, चित्रफलक लगवाने चाहिए। दुर्घटना के समय प्राथमोपचार करने की दृष्टि से कृत्रिम प्रश्वसन, रक्तस्तम्भन इत्यादि का प्रशिक्षण उनको देना चाहिये।

घृणास्पद धन्धे

ऐसे व्यवसाय जिनमें खराब, सड़ने वाले द्रव्य काम मे लाए जाते हैं या जिनमे प्रयुक्त विधियो से दुर्गंध विषैले वात या जल निकलते हैं और जिनके कारण काम करने वालो के तथा इतर लोगों के स्वास्थ्य को हानि पहुचती है, घृणास्पद धन्धे कहलाते हैं। सामाजिक और सार्वजनिक स्वास्थ्य की दृष्टि से इन व्यवसायों की देख-रेख होना बहुत आवश्यक होती है। अब नीचे इन व्यवसायो के नाम तथा देख रेख की बातें बताई जाती हैं—

सामान्य व्यवस्था—ये व्यवसाय मुख्य बस्ती से दूर स्वतन्त्र स्थानो में होने चाहिए। जिन मकानो में ये व्यवसाय किए जायें वे प्रशस्त, सुप्रकाशित, सुप्रव्यजित और पक्के हों। फर्श और [illegible] पक्की [illegible] प्रत्येक [illegible] होनी चाहिए। आवश्यकता के अनुसार [illegible] पानी का छिड़काव [illegible] प्रति दिन [illegible] देना चाहिए। प्रकाश के लिए [illegible] खिड़कियाँ या झरोखे [illegible] उचित होता है। जिन व्यवसायों में विषैले या दुर्गन्ध युक्त वात निकलते हैं या [illegible] काम में [illegible] पर धुएँ को निकालने के लिए ऊँची-ऊँची चिमनियाँ लगा देनी चाहियें। जिन व्यवसायों में दूषित पानी निकलता है या [illegible] मकानों में मोरी [illegible] का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिए। [illegible] व्यवसायों में निम्न प्रमुख हैं—

१ चावल मिल—धान से चावल बनाने के लिए उनको पानी में भिगोते हैं, सड़ाते हैं। इससे गुरु दुर्गंध उत्पन्न होती है। धान सड़ाने के पश्चात् भूसी निकालने के लिए वे पकाये जाते हैं जिससे आस पास बहुत दुर्गंधी उठती है।

२ तेल मिल—तेल के लिए सरसों, तिल, अलसी, मूँगफली, कुसुम, सूखी गरी इत्यादि का उपयोग किया जाता है। इन तेलों की खली तथा कच्चे माल को रखने का ठीक प्रबन्ध न होने से इनमें विघटन की दुर्गंध आस पास फैल जाती है।

३ पशुओं को पालना—इनमें गौ, बैल, भैंस, सूअर, घोड़ा आदि जानवरो का समावेश होता है। इनके सिवा मुर्गी बतख इत्यादि पक्षियो का भी इसी मे समावेश कर सकते हैं। इनके मलमूत्र से दुर्गन्ध पैदा होती है तथा मक्खियाँ, मच्छर, कृमि इत्यादि उत्पन्न होकर रोग फैलाते हैं। इनका स्थान रहने के मकान से दूर कम से कम २० फुट के अन्तर पर हो, फर्श पक्का, ढलवाँ और चारो ओर की जमीन से ६-१२ इन्च ऊँचा हो। फर्श के किनारे पर जिधर उसका ढाल हो पक्की मोरी हो। सारे स्थान को दिन मे दो बार स्वच्छ करना चाहिए। दीवालो को ऊँचा बनाने की आवश्यकता नही है। ऊपर छत होनी चाहिए। प्रत्येक गौ के लिये ८×४ फुट, भैंस के लिए ८×५ फुट और घोड़ा के लिये ९×५ फुट स्थान मिलना चाहिये। कूड़े के लिए पात्र रखने चाहिये और उनको दिन में दो बार साफ करवाना चाहिए।

४ पशुओ का वध करना—इसके लिए स्वतन्त्र स्थान होने चाहिए। भारतवर्ष मे कसाई स्वयं अपने घरो में बध करते हैं। यह पद्धति ठीक नही है, क्योंकि वहाँ पर रुग्ण पशुओ का भी बध होता है। सफाई ठीक नही हो सकती है जिसके कारण खाने का मास दूषित होने का डर अधिक रहता है। इसलिए नगरपालिका या सरकार के द्वारा नियन्त्रित सार्वजनिक वध स्थान होने चाहिए। वध स्थान खुले स्थान में और किसी भी निवास स्थान से १०० गज दूरी पर होने चाहिये। उनके चारो ओर ऊँची दीवालो का अहाता होना चाहिए। उसका चबूतरा चारो ओर की भूमि से कछ ऊँचा होना चाहिये। वहाँ पर पशुओं को रखने, उनका वध करने तथा बचे हुए मास को रखने के लिए भिन्न-भिन्न स्थान होने चाहिये। उनकी फर्श और दीवालें अप्रवेश्य पदार्थ की चिकनी और कोने गोल होने चाहिए। दरवाजे और खिडकियो के किवाड जालीदार और स्वय बन्द होने वाले होने चाहिए। बध स्थान के ऊपर कोई मकान न बनाना चाहिए। कसाइयो के रहने के स्थान, पाखाना, पेसाबखाना, वध स्थान से दूर होने चाहिए। वध स्थान में कुत्ते और चूहे जिस प्रकार से न पहुँचने पावें ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये। सासर्गिक रोग से पीड़ित कोई कसाई वध करने का काम न करे और काम के समय स्वच्छ कपडे पहने। वध करने के पश्चात् मास रक्त इत्यादि सेवन करने योग्य पदार्थ उत्तम अप्रवेश्य पदार्थों के पात्रो मे ढक्कन से ढककर रखने चाहिए तथा खचादि त्याज्य पदार्थों को भी दूसरे ढकनेदार पात्रो में रखना चाहिये। जल का पूरा प्रबध होना चाहिये। वध का काम समाप्त होने पर तीन घन्टे के भीतर फर्श और दीवारो को तीन फुट तक ब्रुश से रगड कर पानी से साफ धुलवाना चाहिये।

५ रक्त को उबालना—पशुओ का वध करने से निकला हुआ रक्त खाद के लिए, टर्की रेड नामक रग बनाने के लिए, रक्त की शुक्लि (अल्ब्यूमिन) बनाने के लिए तथा शर्करा को साफ करने के लिए काम मे आता है। इसलिए कसाई लोग रक्त को उबाल कर गाढा करते हैं या सुखा लेते है। उबालते समय दुर्गन्धित वायु निकलता है। उस वायु को धूमनी के द्वारा मकानो के ऊपर पहुचाने का प्रबन्ध होना चाहिए।

६. अस्थियो को एकत्र करना और उबालना—अस्थियो का उपयोग खाद के लिए, चाकू के दस्ते इत्यादि के लिये तथा श्लिषि (Gelatin) नामक पदार्थ बनाने के लिये किया जाता है। बस्ती के पास हड्डियो को इकठ्ठा करके न रखना चाहिये। हड्डियो को उबालने से दुर्गन्धित वायु उत्पन्न होता है। इसलिए इनको इकट्ठा करके ऊपर पहुचाने का प्रबन्ध धूमनी के द्वारा होना चाहिये।

७ चरबी को उबालना—चरबी का उपयोग मोम बत्ती, साबुन, यन्त्रो के लिये रोगन इत्यादि कामों के लिए किया जाता है। यह चरबी विशेषतया सूअर, भेड, बैल इत्यादि जानवरो की प्रयुक्त होती है।

८ तांत बनाना—इसके लिए सूअर और बकरी की आँतें काम मे लायी जाती हैं। यह कार्य अत्यन्त खराब है। इसमें प्रथम अन्तडियाँ धोकर साफ की जाती है। पश्चात् कुछ दिनो तक नमक के पानी मे भिगोकर लकडी की पत्ती से खरोची जाती है जिससे उनका पेशी का और आवरण का (Peritoneal) स्तर रह जाय। उसके बाद धोकर उनको सुखाया जाता है।

९. चमड़े को कमाना—इसमें जानवरो का कच्चा चमडा पक्का, मजबूत, मुलायम, न सडने वाला बनाया जाता है और उसी से व्यवहारोपयोगी चमडे की वस्तुएँ बनायी जाती है। इसके लिये प्रथम कच्चा चमडा पानी मे भिगोया जाता है। उसके पश्चात् चूना (Slaked Lime) या क्षारातु शुल्बेय (Sodium Sulphide) इत्यादि विलोमक (बाल निकालने वाले द्रव्यो से उनके बाल निकाले जाते हैं। अन्त मे बब्बूल की छाल या अन्य शल्किक (Tanic) अम्ल मुक्त द्रव्य के घोल मे उनको भिगोया जाता है। इस व्यवसाय में चमडे के सडने से बहुत दुर्गन्ध उत्पन्न होती है तथा बहुत खराब पानी बनता है।

१० ईंटो के भट्ठे—इनमे प्रा० द्विजारेय (CO_2) प्रा० एक जारेय (CO) शुल्बारी द्विजारेय (SO_2) उद्जन शुल्बेय (H_2S), इत्यादि वात उत्पन्न होकर आस पास की हवा को खराब कर देते हैं। भट्ठो की रचना ठीक करनी चाहिए, उनमे स्थान-स्थान पर ऊँची धूमनी लगानी चाहिए तथा सूखी घास पत्ती को छोडकर खराब कूडा न जलाना चाहिए।
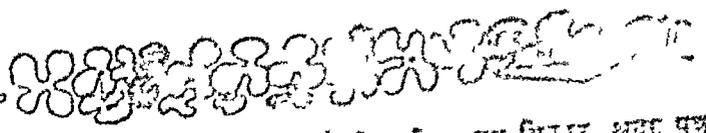
११ कागज बनाना—इसके लिए कागज की रद्दी, रुई, कपड़ो के चिथड़े, बांस, घास इत्यादि का उपयोग किया जाता है। प्रथम क्षारो में इनका गूदा बनाया जाता है। पश्चात् विरजन चूर्ण से सब द्रव्यो के रंगों का नाश किया जाता है। बांस के गूदे के लिये गुल्वारी हिजारेय (SO_2) का उपयोग किया जाता है। उबालने पर जो क्षारीय जल बचता है वह बहुत खराब होता है। वैसे ही उबालते समय खराब धुआँ निकलता है। इन कारणो से कागज के कारखानो के आस पास हवा बहुत खराब रहती है।

पांसुल धन्धे (Dusty trades)

अनेक व्यवसाय ऐसे होते हैं कि उनमे वातावरण सदैव अत्यन्त सूक्ष्म कणो से, धूलि से, अण्डरेन्ड से भरा रहता है। ये कण खनिज, वनस्पति या प्राणिज हो सकते हैं जैसे सींग, हड्डियां, ऊन, रेशम के कारखानो मे प्राणिज सूत, अवाडा (Flax), सन् (Jute), आटा इनकी गिरणियो में वनस्पति, और सीमेन्ट, चूना, पत्थर फोडना, विविध धातु, दियासलाई इत्यादि के कारखानो मे खनिज धूलि-कण हुआ करते हैं।

ये कण नासा और गले के द्वारा कुछ सीधे फुपफुस मे पहुचते हैं और कुछ आन्त्र मे पहुँच कर लसवाहनी या रक्तवाहिनी द्वारा फुपफुस मे आ जाते है। इस प्रकार विविध कणो से मुक्त वातावरण मे अधिक काल काम करने से फुपफुस इनकणो से भर जाता है और उनके अव-स्थान से फुपफुस मे तातुओ की वृद्धि (तन्तूत्कर्ष Fibrosis) होने लगती है। इस विकृति को फुफ्फुस कणरुग्णता (Pneumoconiosis) कहते है। जिस प्रकार के कणो से यह विकृति होती है उसके अनुसार नाम दिया जाता है। जैसे—

(क) कोयले के कणो से होने वाले विकार को अंगार-कण रुग्णता (Anthracosis) कहते हैं। खनको मे यह विकार होता है।

(ख) पत्थरो के कणो के कारण सैकतकण रुग्णता (Silicosis) होता है। यह विकार सोने के खनको में पाया जाता है।

(ग) अदह (Asbestos) के सूक्ष्मकणो से अदहकण रुग्णता (Asbestosis) होता है। यह विकार अदह वस्त्र बनाने के कारखानो मे काम करने वालो में होता है।

(घ) अयस्, ताबा, सोना, सीसा इत्यादि के कणो से अयस्थिकणरुग्णता अयस्कणरुग्णता (Siderosis) होता है। यह विकार उपर्युक्त धातुओं की खानो मे काम करने वालो मे होता है।

(ङ) सूत, रुई इत्यादि के कणो से कार्पास रुग्णता (Byssinosis) होता है। यह विकार रुई के कारखानों में काम करने वालों मे होता है।

धूलिकणो द्वारा होने वाले जीवाणुजन्य रोगो में राजयक्ष्मा और अंगारक्षत (Anthrax) ये निर्देश करने योग्य है। उपर्युक्त फुफ्फुसगत विकृतियां राजयक्ष्मा की उत्पत्ति मे सहायता करती है। अंगारक्षत प्राणियों का रोग होता है और प्राणिज धूलिकणो में उसके दण्डाणु होने पर मनुष्यो मे यह रोग हो जाता है। फुफ्फुस के विकारो के अतिरिक्त अन्य अंगो में भी धूलिकणो से विकार हो जाते हैं। जैसे सीसे के कणो से सीसविष पारे के कणो से पारदविष, मान्सकर के कणो से अधोहनु का नाश, जस्ते के कणो से प्रवाहिका, मरोड आदि।

प्रतिबन्धन

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होगा कि पांसुल व्यवसायो मे धूलि की व्यवस्था ऐसी करनी चाहिए कि यह कामगारो तक जहा तक हो सके पहुँच न जाय। यह कार्य निम्न पद्धतियो से किया जाता है—

(अ) धूलि की उत्पत्ति को रोकना—यह कार्य छेदना, काटना, रेदना इत्यादि मे तेल, पानी या भाप का उपयोग करने से हो सकता है। इसको आर्द्र (Wet) पद्धति कहते हैं।

(ब) उत्पन्न धूलि को बाहर आने से रोकना—जिन जिन यन्त्रो से धूलि उत्पन्न होकर बाहर आती है उनके ऊपर चारो ओर से प्रमञ्जूषा (Cabinet) या पेटी (Box) का ढक्कन बनाना चाहिए।

(स) धूलि निष्काशन—उपर्युक्त पद्धतियो का उपयोग करने पर भी या उपर्युक्त पद्धतियो का उपयोग करने की अशक्यता के कारण जो धूलि कण बाहर आते हैं उनकी निकासी के लिए यान्त्रिक समार्जक शोषक प्रवीजक, धूलि निवारक सयन्त्र (Dustremoval Plant) तथा अन्य साधन काम मे लायें।
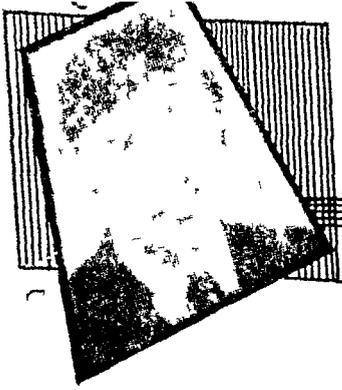
शोर और स्वास्थ्य

श्री टीकमचन्द जैन 'दानी'

मृत्यु लोक मे ध्वनि का सर्वत्र साम्राज्य है। हम यह जानते हैं कि बहिर्जगत का ज्ञान हमको मूलत. अपनी ज्ञानेन्द्रियो द्वारा प्राप्त होता है। हमारी दो प्रमुख ज्ञानेन्द्रिया आँख व कर्ण है। हमारे कर्ण-पटह (Ear-drum) के बाहरी भौतिक कारण को हम ध्वनि कहते है।

सामान्यत. ध्वनि को दो भागो मे विभाजित किया जाता है। जो ध्वनि कर्ण प्रिय होती है उसे सुस्वर ध्वनि (Musical Sound) कहते है। जो ध्वनि कर्ण-कटु होती है, उसे शोर या रव (Noise) कहते है। सामान्य रूप से सुस्वर ध्वनि मे तथा रव मे कोई निश्चित लक्ष्मण रेखा नही खीची जा सकती है। फिर भी सुस्वर ध्वनि मे कम्पन क्रमबद्ध होते है तथा उनमे सामयिकता व नियमितता होती है। इसके विपरीत रव मे अनियमितता, असामयिकता तथा विच्छिन्न कम्पनता पाई जाती है। दूसरे शब्दो मे शोर (रव) की परिभाषा यह है कि जो ध्वनि किसी के कार्य अथवा आराम मे विघ्न डालता है या किसी प्रकार का कष्ट पहुँचाता है, तो वही शोर है।

ध्वनियो का ससार हमारे सम्पूर्ण जीवन का अभिन्न अग है। इसके बिना जीवन नीरस है। कई प्रकार की ध्वनियाँ हमे आनन्द प्रदान करती हैं, परन्तु बहुत सी ध्वनियाँ हमारे विषाद का कारण होती हैं। आधुनिक कल कारखानो तथा वैज्ञानिक प्रगति की चरम सीमा पर अग्रसर है। इसी युग मे कल कारखानो के विभिन्न प्रकार के मानव द्वारा निर्मित यन्त्रो का कोलाहल, विभिन्न प्रकार के वाहनो को कर्ण को फाड़ने वाला कोलाहल मानव के स्वास्थ्य पर अनेक प्रकार के दुष्प्रभाव डाल रहा है, ऐसा वैज्ञानिको ने अनुसधानो से ज्ञात किया है। अधिक शोर से किस का हृदय व्यथित नही है, शातीपूर्ण वातावरण के लिये आज का मानव तरस रहा है।

शोर स्वास्थ्य के लिय हानिप्रद है। शोर विभिन्न प्रकार की शारीरिक एव मानसिक व्याधियो का जनक है। इस के सम्बन्ध म न्यूयार्क शहर के कार्यालय की एक घटना है—"शोर बन्द करो · शोर बन्द करो · · शोर बन्द करो कार्यालय के एक कक्ष मे काय करते हुए वह अचानक चीखने लगा। कार्यालय के उस कक्ष मे कार्य करते हुए सभी लोगो ने चौक कर देखा। एक क्षण के अन्तराल मे वहाँ बिल्कुल शाति छा गई, परन्तु वह अब भी चीखे जा रहा था शोर बन्द करो —निवाक सब एक दूसरे को घूर रहे थे। किसी की समझ मे कुछ भी नही आ रहा था कि वह क्या करे? उसी समय सबने देखा कि वह व्यक्ति तेजी से चीखता हुआ बाहर की ओर भागा। कुछ व्यक्ति उसके पीछे २ दौड, दौडता-हुआ वह व्यक्ति ऊपर की मजिल पर बने शौचालय मे घुस गया और उसने अन्दर स दरवाजा बन्द कर लिया। बाहर खड़े व्यक्तियो ने जो उसके पीछे आये थे, किसी वस्तु के बार बार टकराने की ध्वनि सुनी। वह जोर-जोर से कह रहा था, "शोर बन्द करो 'शोर' बन्द करो" और उसके कुछ देर पश्चात् बिल्कुल शाति छा गई। कार्यालय वालो ने आरक्षी केन्द्र पर दूरभाष से सम्पर्क किया। कुछ ही देर मे पुलिस के उडन दस्ते ने दरवाजा तोड कर देखा तो वह व्यक्ति बेहोश पडा था। उसके सिर से खून बह रहा था। पुलिस ने तुरन्त उस व्यक्ति को चिकित्सालय पहुचाया। चिकित्सको ने परीक्षण करके ज्ञात किया कि वह व्यक्ति शोर से बहुत परेशान हो चुका है। शोर ने
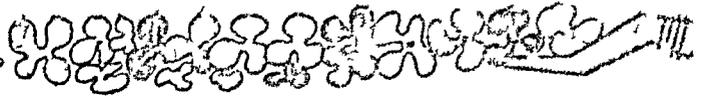
उसके स्नायुओं में विकृति उत्पन्न कर दी है। अगर उसे शांत वातावरण मे नही रखा गया तो वह अवश्य पागल हो जाएगा।

आप सोच रहे होंगे कि क्या शोर इतना घातक है कि मनुष्य पागल हो सकता है? इसका उत्तर है जी हां इसमे कोई दो मत नही हैं। भारतीय चिकित्सा परिषद के महानिदेशक डा० पी० एन० वाही के अनुसार अब तक किए अनुसंधानो से ज्ञात हुआ है कि अत्यधिक शोर न केवल कानो पर ही दुष्प्रभाव डालता है अपितु इस से सारा शरीर प्रभावित हो जाता है और उसे ठीक नही किया जा सकता।

यह शोर मस्तिष्क के लिये अस्त्र शस्त्र से भी कहीं अधिक घातक होता है। द्वितीय महायुद्ध में जर्मनी के सैनिक अधिकारियो ने इसी शोर का प्रयोग कर के शत्रुओ को पराजित किया था। जर्मन सैनिक शत्रु सेना को चारो ओर से घेर कर लाउडस्पीकरो द्वारा इतना शोर करते थे कि शत्रु सेना के सैनिक शोर के प्रभाव से विचलित होकर बिना युद्ध किए ही आत्मसमर्पण कर देते थे।

नगरो में शोर में उत्तरोत्तर प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। शोर के लिये बढ़ते हुए परिवहन, औद्योगिकरण को सबसे अधिक अपराधी ठहराया जा सकता है। दिन रात भरी हुई बसें और मालवाहन, मोटर साइकिल, टेम्पू इत्यादि चिंघाडते हुए चलते हैं। उसके अतिरिक्त रेडियो लाउडस्पीकर तथा बढ़ते हुए औद्यागीकरण से मशीनें भी अपना योग देती है। मानव, इसमें कोई संशय नही, शोरो का सुनने का अभ्यस्त हो गया है। मानसिक कार्य संपादन में शोर बाधक है। यदि विश्व के किसी भी महानगर के शोर को एकत्र करके किसी व्यक्ति को श्रवण करवाया जावे तो वह तीस क्षणो में पागल हो जायेगा, तथा पांच मिनिट इस शोर में रखने से उसकी मृत्यु भी हो सकती है।

आज विश्व के कोने कोने में शोर पर अनुसंधान किये जा रहे हैं। आज विश्व की समस्याओ मे शोर का स्थान अग्रणी है। वैज्ञानिक वर्न औ० नडसेन बत्तीस वर्षो से शोर पर प्रयोग कर रहे हैं, उन्होंने प्रयोगो द्वारा निष्कर्ष निकाला कि गत सैतीस वर्षो से शोर बहुत शीघ्र गति से विकसित हुआ है। यदि शोर को शीघ्र रोकने और कम करने का प्रयत्न नही किया गया तो सात-आठ वर्षों पश्चात कम से कम शोर वाले स्थान पर भी मनुष्य का रहना कठिन हो जावेगा। कितने ही मनुष्य सिर दर्द, परेशानी व मानसिक विकृति के रोगी बन जायेंगे। और श्रवण शक्ति खो बैठेंगे।

आप कहेंगे कि जब तो वैज्ञानिकों ने इस 'शोर' को मापने का यंत्र भी बनाया होगा? जी हां आवश्यकता आविष्कार की जननी है। वैज्ञानिकों ने ध्वनि को मापने के लिए कोलाहल मापक यन्त्र का आविष्कार किया। उसके अनुसार ध्वनि की तीव्रता उसके द्वारा उत्पन्न विस्तार पर निर्भर करती है। इसको डैसिबल (ध्वनि मापक यन्त्र की इकाई) मे नापा जाता है। इसके अनुसार मनुष्य की ध्वनि सहने की औसतन क्षमता ४०-४५ डैसीबल होती हैं। ध्वनि के विभिन्न स्रोतो से उत्पन्न होने वाली ध्वनि की तीव्रता निम्नलिखित चार्ट से विदित होती है।

क्रम संख्या	ध्वनि के स्रोत	उत्पन्न ध्वनि डैसिबल में
१	सब से क्षीण ध्वनि	० ०००२
२	कानो मे फुस-फुसाना	२०–३०
३	घर इत्यादि से	२०–४५
४	साधारण वार्तालाप	६०–६५
५	विभिन्न प्रकार के कलपुर्जे (साधारण वायुयान सहित।)	६०–१००
६	सडको पर यातायात	६०–८०
७	रेडियो और टेपरिकार्डर	६०
८	बायलर, फक्टरिया	१००–१२०
९	बरमा का कोलाहल	१२०
१०	आधुनिक जेट विमान	१५०

विभिन्न प्रकार से उत्पन्न हुई ध्वनि की तरंगे लगातार मानव के कान के पर्द पर टकराती रहती है। प्रतिक्षण टकराने वाली तरगो की संख्या उसके द्वारा उत्पन्न होने वाले चढ़ाव को निश्चित करती है। यहां यह बता देना उचित होगा कि मानव एक क्षण मे २०–२०,००० तक ध्वनि तरंगे ग्रहण करने में समर्थ है। इसलिए २० से कम

वह नही सुन सकता है और २०,००० से अधिक उसके लिये कष्टदायक सावित हो सकती है। अन्य प्राणियो मे श्वान, बिल्ली विशेषतया इसीलिए उल्लेखनीय हैं क्योंकि वे २० से कम तरगे प्रतिक्षण ग्रहण कर सकने मे भी समर्थ है जो साधारण मनुष्य नहीं सुन सकता। श्वानों को पहरेदारी मे उपयोग मे लेने का यही वैज्ञानिक कारण हो सकता है।

शोर का मस्तिष्क और स्वास्थ्य पर विशेष प्रभाव पडता है। इसके हानिकारक प्रभाव शरीर के विभिन्न अगो पर दुष्प्रभाव डाल सकने मे समर्थ है। यह देखा गया है कि १०० डेसिवल तक ध्वनि निश्चय ही मनुष्य के लिए असहनीय है तथा १३०–१५० डेसिबल पर तो पीडादायक हो जाती है। सड़को पर यातायात की ध्वनि ६०–८० डेसिबल तक है जो चौराहे पर खड़े पुलिसमैन तक पहुँचती है। वाहन चालक भी इसके शिकार होते है। इस प्रकार की ध्वनि का निरन्तर लम्बे समय तक पहुँचना थकावट एव सिर दर्द का सर्वप्रथम कारण है। तदुपरांत कानो मे भिनभिनाहट या आवाज गूंजने से चक्कर इत्यादि भी आ सकते है। यदि व्यक्ति इससे सावधान नही रहता तो कुछ समय बाद बहरा हो सकता है। साधारणतया एक तगड़ा विस्फोट मनुष्य को हमेशा के लिए बहरा कर सकता है।

कम शोर से अधिक शोर मे जाने का शरीर पर हानिकर प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। शान्त प्रकृति का व्यक्ति शोर मे भुँझला उठता है तथा कुछ समय उस वातावरण मे रहने से उसका स्वभाव ही चिडचिडा हो जाता है।

कई व्यक्ति मस्तिष्क का तनाव जो शोर की विकृति से उत्पन्न होता है, दूर करने के लिये धूम्रपान का सहारा लेते हैं। वह यह सोचते हैं कि अपने को अत्यधिक व्यस्त रखकर शोर के प्रभाव से बचे रहेगे। परन्तु इससे उनके स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पडता है उनके फेफडो में विकृति हो जाती है तथा तम्बाकू के भयकर घातक तत्व पोलोनियम, निकोटिन, पाइटिन जमकर कैंसर व क्षय रोग की उत्पत्ति का कारण बनते है।

निद्रा पर शोर का विशेष दुष्प्रभाव होता है। जागृत अवस्था मे मनुष्य कुछ शोर सहन भी कर लेता है परन्तु सोते समय उतना शोर सहन करना असम्भव होता है। शोर से नीद की अत्यधिक हानि होती है। शोर की मस्तिष्क और स्नायुओ पर तीव्र प्रतिक्रिया होती है। रक्त का तीव्र गति से सचालन होती है। मस्तिष्क अत्यधिक उत्तेजित होकर गर्म हो जाता है। इस अवस्था में मनुष्य बुद्धि को खो बैठता है। बच्चे भी शोर सुनकर चौंक उठते है, तथा रोने लगते है। अधिक समय शोर रहने से बच्चे की नीद पूरी नही हो पाती। ऐसी अवस्था में वह बालक खूब रोता है। बालक का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। शोर का बालक के स्वास्थ्य पर अत्यन्त हानिकारक प्रभाव पड़ता है। नीद पूरी न होवे से बालक दिन प्रतिदिन निर्बल होता जाता है।

वयस्क भी कोलाहल के वातावरण में कोई कार्य उचित व स्वस्थरूप से नही कर सकते। शोर से मनुष्य का सतुलन बिगड़ जाता है। स्नायुओ मे हमेशा तनाव बना रहता है। ऐसी अवस्था मे अधिक समय रहने वाले मनुष्य उन्मादी भी हो जाते हैं। मस्तिष्क का हृदय से सीधा सबध रहता है। मस्तिष्क की दीर्घकालीन उत्तेजना एव विकृति से हृदय में भी घबराहट के सकेत अनुभव होने लगते है।

जीव जन्तुओ पर शोर का अत्यधिक दुष्प्रभाव पड़ता है तथा अत्यधिक शोर से छोटे छोटे जीव जन्तुओ की मृत्यु हो जाती है। एक शोधकर्ता ने चूहो पर विशेष रूप से उसका प्रयोग किया। उसने एक कमरे में कुछ चूहो को बन्द करके उन पर शोर की प्रतिक्रिया देखी। उस कमरे में ध्वनि विस्तारक यत्रो से धीरे २ शोर को बढ़ाया गया तथा उनकी गतिविधि देखी। ५० डेसिवल शोर तक चूहे उस कमरे मे प्रसन्नतापूर्वक उछल कूद मचाते रहे, कुछ चुपचाप भी बैठे रहे। लेकिन शोर और बढाने से (१२०डेसिबल से ऊपर शोर करने पर) चूहे कही छिपने की तलाश में तेजी से इधर-उधर दौडने लगे। विशेषज्ञो ने नोट किया कि १५० डेसिवल से अधिक शोर करने पर चूहो ने सीधी दिवार पर चढ़ने का निरर्थक प्रयत्न किया। वे कभी भी सीधी दिवार पर नहीं चढ़ सकते थे लेकिन अधिक शोर के कारण वे अपना मानसिक

सतुलन खो चुके थे। इसके पश्चात् शोर को १६५ डेसिबल करने पर चूहे फर्श पर ऊपर को ओर उछलने लगे। और जब १७५ डेसिबल शोर किया गया तो चूहो ने प्राण त्याग दिये।

रोगियो पर शोर का अत्यन्त घातक प्रभाव पडता है। एक व्यक्ति को पक्वाशय से रक्तस्राव की चिकित्सा के लिये कुछ दिनो एक अस्पताल में रहना पडा, वह नगर की मुख्य सडक के किनारे स्थित था। यही नही उस व्यक्ति का कमरा भी सडक की ओर स्थित था। उस मार्ग पर दिन रात यातायात के कारण वाहन तेज आवाज करते हुए गुजरते थे। इस शोर का उस व्यक्ति पर बहुत ही हानिकारक दुष्प्रभाव पडता था। जैसे ही कोई भारी वाहन तेज ध्वनि के साथ सड़क पर निकलता तभी उस व्यक्ति के पेट मे बहुत जोर की पीडा उत्पन्न होती। चिकित्सक बहुत परेशान थे कि ऐसा क्यो होता है? बडी मुश्किल से वे यह समझ पाये कि शोर के कारण ही उस के पेट में पीडा होती है सबसे पहले चिकित्सको ने उसका कमरा परिवर्तित किया। फिर चिकित्सा करने पर उस व्यक्ति ने शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ किया। रोग मुक्त हो जाने पर उसने ध्वनि-निरोधक यन्त्र बनाया था। एक रिपोर्ट के अनुसार ऐसे ध्वनि-निरोधक यन्त्रो की २० वर्षो से भी कम समय में ७५ लाख से अधिक खपत हो चुकी है।

इन ध्वनि निरोधक यन्त्रो का आकाशवाणी के प्रसारण केन्द्र, कार्यालय, मिल, कारखानो मे बहुत उपयोग किया जा रहा है। वैज्ञानिको का अनुमान है कि निकट भविष्य में शोर को शक्ति के रूप में परिवर्तित करके, मानव को शोर से बचाया जायगा और उस एकत्रित शोर का शक्ति-स्रोत के रूप में उपयोग किया जावेगा।

आधुनिक निरीक्षणो से ज्ञात हुआ है कि गर्भवती स्त्री के निकट अत्यधिक शोर उसके पैदा होने वाले शिशु के मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

शोर के विषय मे अध्यनरत वैज्ञानिको को स्कैंडिनेवियन श्रमिको ने आश्चर्य चकित कर दिया। ये श्रमिक एक जहाज बनाने वाले कारखाने मे काम करते थे वह कुछ वर्ष काम करने से श्रवण-शक्ति खो बैठे थे। एक दूसरे की बात शात वातावरण में भी नही सुन पाते थे।

नगरो मे बसे हुए पचास वर्ष से अधिक आयु के अधिकतर लोग अब ठीक तरह से सुन पाने में असमर्थ है। यह प्रक्रिया तेज होती जा रही है। जहाँ तक युवा पीढी का सम्बन्ध है; दशा बड़ी गम्भीर है। साइसिज एन आवेनिर नामक पत्रिका मे स्वीडन के डाक्टर लोकेन्डर के अनुसधान के निष्कर्ष का उल्लेख करते हैं— लिखा है कि १९७० मे किशोरो मे श्रवण से सम्बन्धित अनियमितताए १९५९ के अनुपात से दस गुना अधिक थी।

उपरोक्त तथ्यो से स्पष्ट है कि 'शोर के आक्रमण' से उत्पन्न स्वास्थ्य पर पड़े दुष्प्रभावो की उपेक्षा नही की जा सकती है इनका वर्णन करने के लिए एक नया नाम 'शोर की बीमारी' तक रख दिया गया है।

शोर पर नियन्त्रण रख कर स्वास्थ्य की सुरक्षा की जा सकती है। शोर पर अनुसधान कर रहे विशेषज्ञ डा० नडसेन ने इस विषय मे बहुत प्रयोग किये हैं। शोर को कैसे मधुर स्वर व ध्वनि मे परिवर्तित किया जा सकता है। इसके रचनात्मक रूप मे उपयोग करने के लिये नडसेन ने लॉस ऐजिल स्थित सगीत विभाग तथा अन्य सभागारो मे विशेष परीक्षण किये हैं।

स्थान व कार्य के अनुसार शोर को सुनने की निश्चित मात्रा होती है। निश्चित मात्रा से कम की ध्वनि सुनाई नही देती। अधिक ध्वनि होने पर शोर बन जाती है। विशेषज्ञो ने स्थान व कार्य के अनुसार शोर की मात्रा नियत कर दी है। एक व्यक्ति को कार्यालय मे ४०-५० डेसीबल, होटल, रैस्तरा मे ५० डेसिबल, स्टूडियो मे २५-३० डेसिबल तक का शोर कार्य मे बाधक नही होता।

प्रत्येक वस्तु कुछ न कुछ ध्वनि (शोर) करती है। लेकिन जो ध्वनि स्नायुओ मे विकृति, मानसिक तनाव व उत्तेजना उत्पन्न करती है उसे शोर कहते हैं। सगीत से शरीर मे सिहरन होती है और मस्तिष्क को शाती मिलती है। यदि वाद्य यन्त्रो को नियमित रूप से (सुर) मे नही बजाया जाये तो उनका सगीत भी शोर मे परिणित हो जाता है और वह भी दूसरे शोरो की तरह विकृति उत्पन्न करता है।

बदूक की गोली के चलने पर, गाडी की गडगडाहट,

ट्रक से १०० डेसिबल शोर होता है। वायुयान के चालू होने पर १५५-१६० डेसिवल शोर उत्पन्न होता है। इतना शोर सहन शक्ति के बाहर है परन्तु वायुयान की खिडकियाँ बद होने पर ध्वनि-निरोधक यत्रो के उपयोग से शोर केवल ३०-४० डेसिबल ही रह जाता है।

आकाशवाणी में प्रसारण केन्द्रो पर शोर का पूरी तरह नियन्त्रण किया जाता है। तथा अन्य स्थानो पर भी ध्वनि-निरोधक यत्रो का प्रयोग करके शोर पर नियन्त्रण किया जा रहा है। शोर से बचने का सर्वोतम उपाय है मशीनो आदि मे जो ध्वनि पैदा करती है, ध्वनि— निरोधक यत्रो को लगवाया जावे, जिससे श्रमिक वर्गों के स्वास्थ्य पर शोर के दूषित प्रभाव न हो सके। या कारखानो मे कार्य करने वालो को जो ऐसे शोर वाले स्थान पर कार्य कर रहे हो अपने कानो पर ध्वनि-निरोधक यन्त्र लगा कर कार्य करें। कल कारखानो को नगरो से दूर बनाया जाना चाहिए। नगरो मे सडको पर भारी यातायात नही चलना चाहिये। ऐसे शोर उत्पन्न करने वाले भारी वाहनो को नगर की जन सख्या, आवास स्थानो से रहित मार्ग से निकलने का नियम बनाया जाना चाहिए ताकि नागरिको के स्वास्थ्य को शोर के दुष्प्रभाव से मुक्त रखा जा सके।

भवन निर्माण करते समय शोर रोकने का विशेष प्रबन्ध किया जावें। इस सम्बन्ध में वैज्ञानिको की राय है कि उस समय २ से १० प्रतिशत तक अलग व्यय कर दस इञ्च ककरीट की दिवार बनाई जाएँ। इससे शोर अन्दर नही जाता। इस प्रकार डेसिबल शोर कम हो सकता है।

विशेषज्ञो के अनुसार वायुयान के समुद्र पर उडान करने से नीचे लोगो को अपेक्षाकृत कम शोर सुनाई पडता है। अधिक ऊँचाई पर यानो के उडने से भी कम शोर सुनाई देता है। पृथ्वी तक पहुँचते-पहुँचते शोर की मात्रा कम होती जाती है।

उपरोक्त खतरो का सामना हमे आज नही तो कल अवश्य करना पड सकता है, हमारा देश विकासशील देशो की गिनती मे आता है। यहाँ नित्य नये कारखानो और औद्योगिक विकास की गति बढेगी। इसलिये स्वास्थ्य की रक्षाके लिये जिम्मेदार अधिकारियो को यह विचार करना चाहिए कि शोर द्वारा उत्पन्न दुष्प्रभावो को रोकने के प्रयास मे नगरो और औद्योगिक केन्द्रो के लिए कानून के उलघन कर्त्ताओ को दण्ड आदि का प्रावधान हो जिससे कि जन स्वास्थ्य की रक्षा हो सके।

केवल कानून बनाने मात्र से ही परिस्थिति का मुकाबला नही किया जा सकता। बल्कि लोगो को शिक्षित करना व उन्हे चलचित्रो, समाचार पत्रो के माध्यम से समझाना बुझाना बहुत जरूरी है। आकाशवाणी का उपयोग भी लिया जा सकता है। खराब इन्जन वाले वाहनो के चलने पर प्रतिबध लगा दिए जाएँ और हार्न का प्रयोग सीमित कर दिया जाये।

सार्वजनिक स्थानो पर जोर से बजाए जा रहे ट्रांजिस्टरो लाउडस्पीकरो, रेडियो पर भी अकुश लगाया जाना चाहिए। इन बातो को जनसाधारण समझे तथा कडाई से पालन किया जावे तो निश्चित रूप से होने वाली भयकर घटनाओ से काफी हद तक मुक्त रहा जा सकता है।

शोर से बहुत से विद्यार्थियों को जो नगरो मे रहते हैं पढाई का बहुत नुकसान होता है। क्योकि प्रचार कार्य के लिये लाउडस्पीकरो को निरन्तर बजाना, उनके ध्यान को बाँट देता है। अध्ययन के लिये एकाग्रता की आवश्यकता है। इस सबध मे भी सरकार को कानून बनाकर रोक लगायी जानी चाहिये जिससे विद्यार्थियो के स्वास्थ्य एव भविष्य पर प्रतिकूल प्रभाव नही पड़े।

—श्री टीकमचन्द दानी
रायपुर वाया पाटन (झालावाड़) राज०
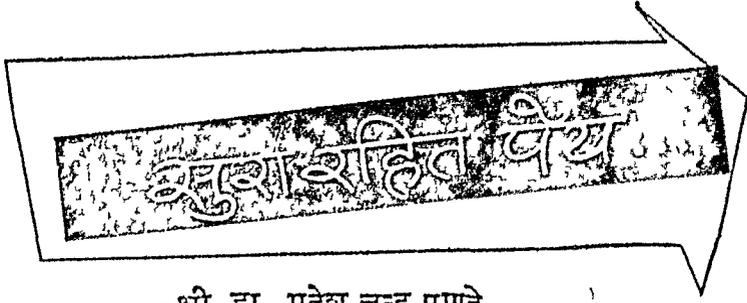
—श्री डा महेश चन्द्र पाण्डे
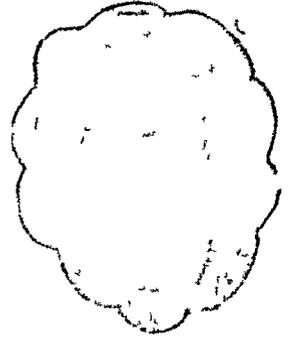
डा० पाण्डे जी का जन्म नवम्बर १९४४ अल्मोडा (कुमायू उ० प्र०) मे हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा अल्मोडा व नैनीताल मे हुई। बी ए. एम.एस. उपाधि (लखनऊ विश्वविद्यालय) प्रथम स्थान से उत्तीर्ण (१९७० में) की। डी. ए. वाई. एम. (द्रव्यगुण) उपाधि, चिकित्सा विज्ञान सस्थान, का. हि वि वि , वाराणसी से उत्तीर्ण (१९७४ मे), की। सम्प्रति स्नातकोत्तर स्तर पर अध्यापन कार्य में कार्यरत हैं।

आपका प्रस्तुत सुरारहित पेय-चाय, कॉफी, कोको शीर्षक सचित्र लेख निश्चय ही पाठकों के स्वास्थ्य सवर्धन मे योगदान देगा, ऐसी आशा है—

—विशेष सम्पादक

सुरारहित पेयो की श्रेणी मे मुख्य रूप से व बहुलता से प्रचलित द्रव्यो मे चाय, काफी व कोको आदि प्रमुख हैं। इनमें चाय का प्रचलन चीन से प्रारम्भ हुआ माना जाता है तथा यह योरोप मे लगभग १६ वी शताब्दी मे व्यवहृत हुआ। उस समय अत्यधिक मूल्य के कारण इसका व्यवहार सामान्य जनता तक नहीं हो पाया परन्तु पिछली शताब्दी से इसका प्रयोग सामान्य सा हो गया है। चीन के अलावा जापान, भारत आदि देशों मे भी यह व्यवहृत है। काफी का उत्पत्ति स्थान अबीसीनिया (अफ्रीका) माना जाता है और इसका प्रचलन चाय के प्रचलन के बहुत दिनो के बाद हुआ। वर्तमान समय में भारत मे भी इसकी खेती की जाती है और यह सर्वोत्तम है। कोको का व्यवहार पेय व भोज्य पदार्थ के रूप में प्राचीन समय से ही दक्षिणी अमेरिका मे होता रहा है, परन्तु आजकल यह अफ्रीका मे भी बहुतायत से पैदा होता है।

चाय (Cammellia sinensis Linn, Family-Theaceae)

परिचय—इसका सदा हरा-भरा एक क्षुप होता है जो कि लगभग २-५ फीट तक ऊँचा होता है। इसके पत्र एकान्तर, सदा हरित कुछ दीर्घ वृत्ताकार या अभि-लट्वाकार, सदन्तुर, कुछ चिकने तथा अध पृष्ठ मृदु रोमश होते हैं। नयी पत्तियाँ अधिक मृदु रोमश होती हैं। परिपक्व होने पर ये गहरी हरी रग की, मासल २ से १२"

चाय

लम्बी होती हैं। इसके पुष्प एकाकी या गुच्छो मे २-४ एक साथ निकलते हे। ये सफेद व सुगन्धित होते हैं इसका फल हरिताभ भूरा १ से ४ कोषो से युक्त होता है जिसमें प्राय १ से ३ बीज रहते हैं। ये बीज गोल या चपटे व भूरे रग के होते हे।

प्राप्तिस्थान चीन, जापान, फारमोशा, जावा, सुमात्रा, लङ्का व भारत। भारतवर्ष के उत्तरी व दक्षिणी क्षेत्रो से ७००० फीट की ऊँचाई मे इसकी खेती की जाती है। उत्तर भारत मे ब्रह्मपुत्र, आसाम, जलपाईगुड़ी, देहरादून, कुमायू आदि तथा दक्षिण मे कोचीन, नीलगिरी, कोयवटूर आदि।

प्रयोज्य अङ्ग—पत्र

रासायनिक संगठन—इसके पत्रो से लगभग २५ % कटेचिन, कैफीन ३-४% तथा अन्य पदार्थ एमाइनो एसिड, कार्बोहाइड्रेड, इन्जाइम्स आदि प्राप्त होते हैं। आसाम से प्राप्त चाय के पत्रो से टेनिन २२ २% प्रोटीन १७.२% कैफीन ४ ३%, स्टार्च ० ५%, क्रूडफाइबर २७% रिड्यूसिग सुगर ३.५%, पेक्टिन ६ ५% ऐस ५ ६% तथा रिवोफ्लेविन, निकोटिनिक एसिड, एसकोरविक एसिड आदि प्राप्त होते हैं।

कटेचिन (टेनिन) के कारण चाय का स्वाद कुछ कसैला व कैफीन के कारण स्फूर्तिदायक व मादक होता है।

निर्माण विधि—व्यवसायिक चाय अनेक रूपो मे प्राप्त होती है, जैसे ब्लेक टी, ग्रीन टी, उलाग टी, ब्रिक टी व लेटपेट टी। परन्तु उद्यानो से उपलब्ध चाय के पत्रो को व्यावसायिक रूप मे आने तक विशिष्ट प्रक्रियाओ से होकर गुजारना पडता है, उपरोक्त प्रकारो में से ग्रीन टी व ब्लेक टी का अधिक प्रचलन है।

ब्लेक टी (Black Tea)—सर्वाधिक इसी चाय का निर्माण किया जाता है। इस विधि मे चाय के पत्रो को सुगमता से तोडकर व विभिन्न प्रक्रियाओ जैसे विदरिंग, रोलिग, फर्मेटिंग, ड्राइग आदि से गुजारना पडता है। सारे विश्व मे इसका प्रयोग अधिक होता है।

ग्रीन टी (Green Tea)—इस विधि मे पत्रो को तोडकर वाष्प द्वारा वाष्पित (Steming) या किसी वर्तन मे हल्का भून (Pan Fring) दिया जाता है। उपरोक्त दोनो ही विधियो का उद्देश्य पत्रो मे उपस्थित इन्जाइम्स को अक्रियाशील बना देना है। वाष्पीकरण की विधि अधिकतर आसाम में व भूनने की प्रथा देहरादून, कांगडा आदि मे अधिक प्रचलित है।

उलांग टी (Oolong Tea)—इसकी विधि भी ग्रीन टी के समान ही है परन्तु इसमे पत्रो को अल्प-किण्वन (Semi fermentation) की विशिष्ट प्रक्रिया से गुजारना पडता है।

ब्रिक टी (Brick Tea)—इसका निर्माण ब्लेक व ग्रीन टी दोनो ही से होता है। ब्लेक ब्रिक टी का निर्माण, ब्लेक टी के बचे हुए अवशेषो से व ग्रीन ब्रिक टी हरे पत्रो से बनाई जाती है। इसके लिये उपयुक्त सामग्री को वाष्प देकर ब्रिक्स में परिणित कर दिया जाता है। यह विधि अधिकतर तिब्बत में प्रचलित है।

लेटपेट या लेप्पट टी (Letpet or Leppet Tea) इसका प्रचलन विशेषकर बर्मा में होता है। इसका निर्माण पत्रो को उबाल कर या वाष्प से वाष्पित कर विशिष्ट प्रकार के गढ़ो (Pits) में कुछ समय तक सुरक्षित रखकर किया जाता है। गढो में कुछ समय तक रखने पर यह विशिष्ट प्रकार की हो जाती हैं।

उपरोक्त सभी प्रकारों की चाय विभिन्न प्रदेश, जलवायु व समय आदि के अनुसार अलग-अलग प्रकार की होती हैं अत उसको समरूप करने के लिए इनको एक अन्तिम विशिष्ट प्रक्रिया ब्लैंडिग (Blending) से गुजारना पडता है ताकि बाजार मे उपलब्ध चाय एक समान रूप रग आदि को प्राप्त न हो सके।

अपमिश्रण (Adultration)

चाय के अपमिश्रण के लिए, उपयोग की हुई चाय का सर्वाधिक प्रयोग होता है। इसके अलावा अन्य वनपतियो के पत्रो जैसे—तरवड (Cassia auriculata, Linn) उर्द (Phaseolus mungo, Linn) की भूसी का अपमिश्रण किया जाता है। चाय के बुरादे का भी मिश्रण कभी-कभी किया जाता है।

उत्तम चाय की परीक्षा—उत्तम चाय मे कैफीन की मात्रा १ ५ से ५% तक अवश्य होनी चाहिए।

कॉफी (Coffea Linn, Family Rubiaceae)

परिचय--कॉफिया जीनस के अन्तर्गत ५० से लेकर ६० जातियाँ मिलती हैं परन्तु उनमे से सिर्फ ४-५ जातियो से ही कॉफी उपलब्ध की जाती है जैसे—सी० ऐरेबिका, सी० रोबस्टा, सी० लिबेरिका, सी० स्टेनोफाइला आदि। उपरोक्त मे से भी सी० ऐरेबिका की बहुतायत से खेती की जाती है और यह सारे विश्व की ९०% कॉफी की आपूर्ति करता है।

काफिया ऐरेबिका (Arabian Coffee)—इसका एक सदा हरा भरा क्षुप लगभग ४ से ५' ऊँचा होता है। इसमे मुख्य तने से शाखायें युग्म में निकलती हैं जो कि विपरीत या चक्राकार होती है। इसके पत्र गहरे हरे रग

काफिया एरेबिका या अरबियन काफी

के कुछ खर व विपरीत होते हैं। पुष्प सफेद रग के, सुगन्धित तथा गुच्छो मे पत्रकोण से निकलते हैं। फल छोटे-छोटे अपक्व अवस्था में गहरे व परिपक्वावस्था मे लाल हो जाते हैं। इसके अन्दर गूदा (Pulp) होता है जिसके अन्दर अधिकतर दो अण्डाकार, हरिताभ भूरे रग के वीज होते हैं जो कि एक पतली झिल्ली व सफेद त्वचा से ढके रहते हैं।

काफिया रोवस्टा (Congo Coffee) इसका वृक्ष उपरोक्त जाति के समान, परन्तु आकार मे बड़ा होता
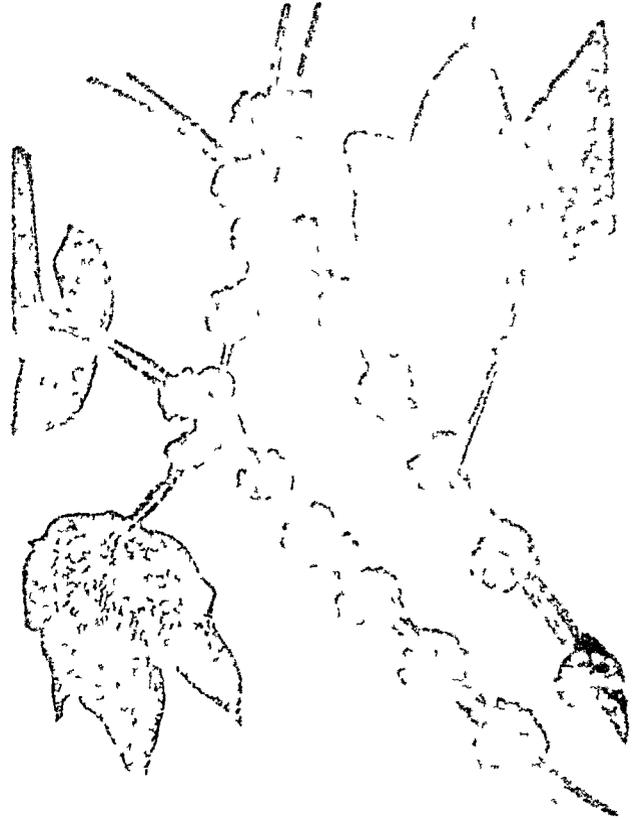
काफिया-रोवस्टा

है। इसमे उत्पन्न होने वाले फल संख्या मे अधिक, हल्के लाल रग के होते हैं। इसके वीज उपरोक्त जाति से छोटे व आकार मे अधिक गोल होते हैं।

प्राप्ति स्थान—भारतवर्ष में इसकी खेती दक्षिण में की जाती है, इसके अलावा यह जावा, वैस्ट इन्डीज, पूर्वी अफ्रिका, दक्षिणी अमेरिका में भी उत्पन्न होता है।

प्रयोज्य अङ्ग—फलो से प्राप्त वीजो का प्रयोग कॉफी निर्माण मे किया जाता है। इसके अलावा मलाया के कुछ प्रान्तो में इसके पत्रो का भी प्रयोग होता है।

वीजो का भौतिक स्वरूप-सूखे हुये वीजो का आकार अण्डाकार, लगभग १/२ से १ सेमी० लम्बे होते हैं जो कि एक तरफ उन्नतोदर तथा दुसरी ओर कुछ चपटे होते हैं। इनका रग हल्के नीले से लेकर पीताभ या भूरे रंग का होता है जो कि जलवायु, भूमि आदि पर निर्भर करता है।
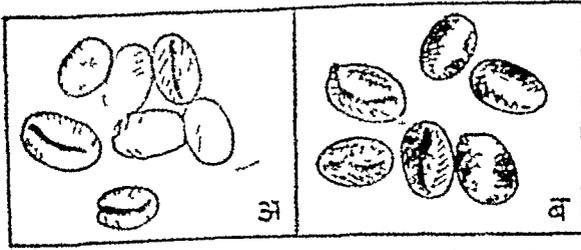
स्थानीय बाजार मे उपलब्ध काफी के बीज

रासायनिक संगठन—इसके बीजो में कैफीन १—२% क्लोरोजनिक एसिड ७ से ८%, आर्गेनिक एसिड जैसे टारटरिक १%, ट्राइगोनलिन १% तथा सैल्यूलोज, सुगर व प्रोटीन आदि पाया जाता है। कॅफिया अरेबिका के भुने हुए बीजो मे प्रोटीन—११.२३%, कैफीन ०.८२%, फैट १३.५९%, सुगर ०.४३%, डैक्सट्रीन १.२४% व कैफीटनिक एसिड ४.७४% व ऐस ४.५६% पाया जाता है, कॅफिया रोवस्टा मे कैफीन की मात्रा १.५ से २.५% तक होती हैं।

निर्माण विधि—व्यावसायिक कॉफी का निर्माण मुख्य रूप से निम्न दो प्रकार से होता है—

(१) शुष्क विधि (२) आर्द्र विधि

शुष्क विधि : इस विधि का प्रयोग अल्प-साधन युक्त होने पर किया जाता है। सर्व प्रथम फलो को २-३ सप्ताह तक धूप मे सुखा लिया जाता है। तत्पश्चात् उनमे से बीजो को अलग कर व भून कर काफी का निर्माण किया जाता है इस चेरी या नेटिम काफी कहते हैं।

आर्द्रविधि : इसे विधि में फलो का सग्रह कर इसे विभिन्न प्रक्रियाओ से होकर गुजारना पडता है जैसे—पल्पिग, फर्मेटिंग, वासिग व ड्राइ ग। इस विधि से निर्मित काफी को प्लाण्टेशन या पार्चमेन्ट काफी कहा जाता है।

चूँकि व्यवहृत काफी का निर्माण बीजो को भून कर किया जाता है अत बिना भूने हुए बीजो में कोई स्वाद नही होता। कच्ची काफी की एक विशेष हल्की मधुर गध होती है। इसका पेय बनाने के लिए भूनकर प्रयोग किया जाता है। बीजो को भूनने के पश्चात् ही इसमे विशिष्ट रग, रूप, स्वाद व सुगन्ध उत्पन्न होती है। काफी का रूप, रग, स्वाद आदि इसके सम्यक् भूनने पर ही निर्भर करता है। अधिक भूनने पर इसका स्वाद कडुवा व कम भूनने पर इसके कैफीन मात्रा (Caffein content) पर प्रभाव पडता है।

अपमिश्रण—इसमे अधिकतर मिलावट चिकोरी की जड (Cichorium-intybus Linn) की की जाती हैं। इसके अलावा कासमर्द व चक्रमर्द के बीजो तथा सोयाबीन व मटर के बीजो का भी मिश्रण किया जाता है।

काको (Theobroma cacao L.,
Family-Sterculiaceae)

परिचय—इसके वृक्ष अधिकता से ५० से १५०० फीट की ऊचाई तक प्राप्त होते है जो कि लगभग ४० फीट तक ऊँचे होते है। इसके पत्र पतले, चमकदार, आयताकार, भालाकार, नवीन अवस्था में कुछ लाल व परिपक्वावस्था में हरे रग के होते है। पुष्प सीधे तने से या पुरानी टहनियो से छोटे २ गुलाबी सफेद रग के ५ पखुडियो युक्त गुच्छो में लगते हैं, इसके फल लगभग ८ से १५ इन्च तक लम्बे व ३ से ४ इच तक चौडे, खीरे के आकार के नालीदार (Furrowed) चर्मवत् (Leathery) होते हैं जो अपक्वावस्था में हरे रग के व परिपक्वावस्था
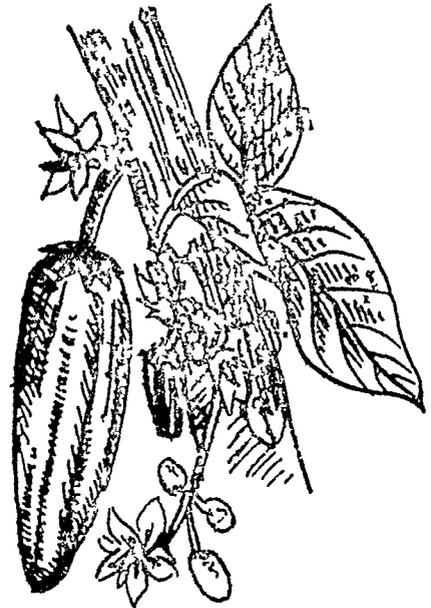
कोको

में पीले या नारगी लाल रग के हो जाते हैं, इसके अन्दर २० से ५० तक, क्रीम के रग व बादाम के आकार के

०.६ से १" तक लम्बे बीज, ५ कतारो में लगे रहते है। ये बीज एक मधुर पदार्थ से घिरे रहते हैं।

प्राप्ति स्थान—अमेरिका, वेस्टइन्डीज, मेक्सिको आदि।

प्रयोज्य अंग—फलो से प्राप्त बीज।

रासायनिक संगठन—कोको का मुख्य संगठन वसा है जो कि लगभग ५०% तक होता है। इसके अलावा थियोब्रोमिन १ से ३%, कैफीन-०·१ से ०.४% तक होता है।

निर्माण विधि - सर्व प्रथम बीजो को एकत्र कर ५ से १० दिन तक किण्वन (Fermentation) के लिये रख देते हैं और अल्प-किण्वन (Semi fermentation) व विशिष्ट गंध उत्पन्न हो जाने पर पुन निकालकर, धोकर सुखा लिया जाता है। इसके पश्चात् इन्हें भूना जाता है। भूनने पर इसमे विशिष्ट गंध, रूप, रंग आदि उत्पन्न हो जाती है। तत्पश्चात् इन्हें तोडकर छोटे-छोटे निब्स (Nibs) में परिणित कर दिया जाता है जो कि प्राय समान आकार के बनाये जाते हैं। इन्हीं का प्रयोग कोको व चाकलेट बनाने के लिये किया जाता है। चाकलेट व मक्खन बनाने के लिये इनको रोलरो में डालकर लुग्दी में परिणित कर दिया जाता है जिसे मास (Mas) कहते हैं। इसी मास के पीसने की क्रिया से उत्पन्न गर्मी के कारण वसा पिघल कर अलग हो जाती हैं जिससे कोको बटर का निर्माण होता है। मास को ठंडा व घनीभूत करके चाकलेट का निर्माण होता है। इस प्रकार प्राप्त कोको मे सिर्फ १८ प्रतिशत चर्बी होती है।

अपमिश्रण—इसमें अधिकतर मक्के के आटे व शर्करा की मिलावट की जाती है जिससे कि यह सुपाच्य हो सके।

संस्थानगत कर्म व प्रयोग —चाय व कॉफी के बीजो से प्राप्त होने वाले कैफीन, थियो फाइलिन व कोको के बीजो से प्राप्त थियोब्रोमीन के गुण कर्म लगभग एक समान हैं। थोडा बहुत ये अपने विशिष्ट संस्थानिक गुण-कर्मो के कारण एक दूसरे से भिन्न होते है जैसे कैफीन का विशिष्ट कर्म केन्द्रीय नाडीवह संस्थान पर, उसके समरूप द्रव्य थियोफाइलीन का परिहृद-धमनी (Coronary artery) के विस्फारण व मूत्रल कर्म तथा थियोब्रोमीन का विशिष्ट कर्म मांसपेशियो पर होता है।

मुख्य रूप से उपरोक्त द्रव्यो मे निम्न कर्म दृष्टिगोचर होते हैं—

१—मूत्रल।

२—हृद्पेशी उत्तेजक।

३—श्लक्ष्ण पेशी (Smooth muscle) का विस्फारण जैसे श्वसननलिका आदि।

४—केन्द्रीय नाडीवह संस्थान उत्तेजक।

(१) रक्तवह संस्थान—इस संस्थान पर विशिष्ट कर्म थियोफाइलीन व सबसे अल्प कर्म कैफीन का होता है। अत्यधिक मात्रा मे कैफीन हृदयोत्तेजक है परन्तु यह केन्द्रीय नाडीवह संस्थान को उत्तेजित करने के कारण हानिकारक है। अधिक मात्रा मे थियोफाइलीन भी हृदयोत्तेजक है व अनियमितता उत्पन्न करता है, अत. उपयुक्त मात्रा मे यह हृदयोत्तेजक होने के कारण हृद्जन्य दमा (Cardiac Asthma) फुफ्फुसीशोफ (Pulmonary Oedema) आदि की अवस्था मे विशेष लाभकारी होता है।

(२) श्वसन संस्थान—इस संस्थान पर थियोफाइलीन व कैफीन दोनो का ही कर्म उत्तेजक होता है और इसका कार्यक्षेत्र मस्तिष्क मे स्थित श्वसन केन्द्रो पर होता है। उपरोक्त दोनो द्रव्यो मे से प्रथम विशेष महत्त्व का है क्योंकि यह श्वसन केन्द्र उत्तेजक होने के साथ हृदयोत्तेजक भी है अतः यह श्वसनिका-दमा (Bronchial Asthma) में अधिक लाभप्रद होता है।

(३) नाड़ीवह संस्थान—इस संस्थान पर कैफीन का विशिष्ट प्रभाव पडता है व उत्तेजक है। थियोफाइलीन का प्रभाव कैफीन की तुलना मे अल्प व थियोब्रोमीन का प्रभाव एकदम नगण्य हैं। इसी उत्तेजक गुण के कारण यह स्फूर्तिदायक होता है। यह थकान को कम करता है और शारीरिक कार्य क्षमता को बढाता है। मुख्यरूप से इसका कार्यक्षेत्र साइकिक-केन्द्रो पर है। इन्ही गुणो के कारण अर्धावभेदक (Migraine) व अन्य शिर शूल की अवस्थाओ मे कैफीन का प्रयोग अन्य औषधियो जैसे एसपरीन, कोडीन, अर्गोटमीन आदि के साथ मिला कर किया

(शेषांश पृष्ठ ३५५ पर)

चाय का सामान्य परिचय

चाय भिन्न-भिन्न भाषा मे निम्नोक्त नाम से पहचानी जाती है। जैसे–(१) लेटिन मे Camellia Thea (कमेलीया थीया) (२) हिन्दी में–चाय, चा, (३) मराठी मे–चक्का (४) बगाली, नेपाली, मद्रासी और गुजराती मे चा, (५) मलयालमी मे–चाय (६) तेलूगु मे–टेपकु, (७) तामिलनाडु मे–टेयिलै, (८) सस्कृत मे–चाह, श्यविका, श्लेष्मारि और (९) अग्रेजी मे–टी (Tea)

चाय के एक प्रकार के छोटे वृक्ष एव क्षुप के सूखे पत्ते होते है। इसका क्षुप प्राय डेढ से दो हाथ बडा होता है। इनके पत्ते ३" से ६" लम्बे और २ से २½ इन्च चौडे लम्ब गोलाकार, नोकदार, अणीयुक्त, साधारण चिमडे हुये सफेद पखुडीयुक्त होते है। यह हरी और कृष्ण ऐसे दो प्रकार की होती है। चाय के बीज हल्के भूरे रग के आते है। हरी चाय मे से मीठी खुशबू आती है। इसके पत्र में से एक खास प्रकार का तेल निकलता है जिनको अग्रेजी में (लेमन-ग्रास-आईल) कहा जाता है। जिनका प्रयोग औषधरूप में त्वचा पर मालिश एवम् अभ्यग के रूप मे करने से त्वचा रक्तवर्ण की हो जाती है। चाय के अनेक प्रकार में भी बादशाही चाय (Imperial Tea) सर्वोत्तम मानी जाती है। कई बार हरी चाय को विशेष रग देने के लिए व्यापारी लोग 'मोरथुथु' (प्रश्चण-ब्लु) नाम के विषयुक्त द्रव्य का कुछ अ श डालते है जिसके प्रयोग से स्वास्थ्य को विशेष हानि होती है।

उत्पत्तिस्थान और भारतवर्ष मे चाय का प्रयोग—

सर्वप्रथम चाय विशेष रूप से चीन, मलाया और जापानादि विदेशो मे ही पैदा होती थी। किन्तु आजकल तो भारत में भी आसाम, नीलगिरी के अतिरिक्त पडोस के देशों लका, देहरादून, सिक्किमादि अनेक प्रातो मे चाय की पैदाइश अच्छे रूप मे होती है जो विदेशो मे भी भेजी जाती है।

सोलहवीं शतक तक भारत देश मे चाय का बिलकुल प्रचार नही था। किन्तु अग्रेजो के भारत आने के बाद जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सहत्रवें शतक में चाय की खेती का प्रारम्भ किया तब से भारत के लोग चाय पीने लगे है। सन् १८०७ से भारतीय चाय ससार मे सर्वोत्तम साबित हुई जो क्रमश १९ वी और २० वी शताब्दी मे चाय प्रत्येक गाँवो मे और झोपडी मे पहुँच गई। जिसका प्रखर स्वरूप भी आज वर्तमान काल मे हम प्रत्येक घर मे देख सकते है कि प्रत्येक जगह पर दिन प्रतिदिन चाय से ही हमारा स्वागत होता है।

चाय का रासायनिक सगठन

चाय मे मुख्य द्रव्य कैफीन (Caffine) है। उसे थीइन (Theine) भी कहा जाता है जो शरीर को उत्तेजित करता है। जिसका प्रमाण ३% (प्रतिशत) होता है। दूसरा द्रव्य टेनीक-एसिड (Tanic acid) १२% से १५% प्रमाण मे कषायाम्ल के रूप में होता है। जो शरीर को अधिक हानि पहुचाता है। और तीसरा द्रव्य उडनशील तैलीय पदार्थ ½% से १% मे घुला हुआ रहता है।

उपर्युक्त सगठन के प्रथम मुख्य द्रव्य कैफिन से डाक्टर लोग कैफाईन, एट-सोडी-बेन्झोअस, कैफाईन-साईट्रस आदि अनेकविध औषधि-नुस्खे बनाते हैं। जिनका उपयोग सामान्यत शिर शूल, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रस्राव, हृदय और नाडी की अति दौर्बल्यता, फुफ्फुसशोथ, हृदयजन्य अन्य विकार, सर्वांगशोथ, आँत्र के विविध रोग, चिरकाली वृक्क-प्रदाह (Chronic interstitial-nephritis) आदि कई विकारो पर आधुनिक विज्ञान मे इसका प्रयोग अति प्रमाण में होता रहता है।

शरीर पर चाय का कार्य एवं चाय के गुणधर्म —

चाय का क्वाथ स्वाद में कषैला और कटु विपाक और वीर्य में उष्ण होने से कफहर, वातवृद्धिकर तथा पौष्टिक है। दूध मिलाकर बनाया गया फाण्टस्वरूप चाय स्वादु, कफघ्न, स्वेदल, उत्तेजक, शीतहर, श्रमहर, जड़ता नाशक, ज्वर, शिर शूल, कास और प्रतिश्याय में लाभकर है। और शरीर में नई चेतना मिलती है।

चाय बनाने की विधि—

सामान्य रूप से चाय दो रीति से बनायी जाती है। जिनमे (१) क्वाथ विधि से (Decoction) चाय दुग्ध शक्करादि को एक ही साथ मे डालकर ५-१० मिनट तक उबालना। (२) फाण्ट विधि से (Infusion) उबलते हुए जल मे थोड़ी चाय डालकर ढक्कन-ढककर ५-७ मिनट रख देवें और बाद मे शीतल दुग्ध मिलाकर बनायी हुई चाय पीने मे बहुत कम हानि होती है। प्रथम विधि से उबालकर बनायी हुई चाय स्वास्थ्य को ज्यादा नुकसान करती है।

शरीर-स्वास्थ्य पर चाय का मादक प्रभाव

वर्तमान काल मे चाय से ही किसी का स्वागत करने की प्रथा के कारण दिन-प्रतिदिन देश और समाज को हानि हो रही है। स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। व्याधियां बढती जा रही हैं। जैसे कि—चाय को विशेष उबाल करने से कषायाम्ल (टेनिक एसिड Tanic-Acid) अधिक आता है। शरीर की रक्तवाहिनियो को कठोर बनाकर रक्तपरिभ्रमण मे हानि करता है। यकृत के रस-स्राव को भी हानि होती है। चाय की बडी पत्ती की अपेक्षा में Dust अर्थात बारीक चूर्ण (Powder) मे अधिकतम टेनीक एसिड मिलता है। इसी दृष्टि से होटल वाले कम खर्च मे अच्छा रङ्ग लाने के लिये नशीली कडक चाय मे प्राय पाउडर चाय का उपयोग करते हैं। ऐसी कडक चाय अधिक रूप मे पीने से क्षुधानाश होता है। दौर्बल्यता आती है। आहार का पचन नहीं होता। ठीक समय पर चाय नही मिलने पर शिर शूल होता है। सुस्ती एव बेचैनी लगती है। पैर मे वेदना होती है। जृम्भा आते हैं। कोई कार्य मे ठीक रूप से मन लगता नही है और निद्रानाश होता है। मुखमडल का तेज नष्ट होता है। पाचन क्रिया मे विकृति आती है। रक्त का दबाव बढ़ता है। वात नाड़ीशूल, हृदय क्रिया की अनियमितता और वक्षशूल आदि विकार भी हो जाते हैं। ऐसा अनुभव और अभिप्राय अधिक चाय पीने वाले लोगो तथा डाक्टरों का प्रगट अनुभव है।

चाय के औषधीय प्रयोग

(१) ज्वर—खुशबू वाली हरी चाय ज्वर में लेने से मल मूत्र की शुद्धि होती है। उदर हल्का होता है तथा स्वेद द्वारा ज्वर का विष शरीर से बाहर निकल जाने पर ज्वर शान्त होकर शरीर मे नई ताजगी आती है। मन प्रसन्न होता है, ग्लानि, आलस्यादि का नाश होता है। इसके अतिरिक्त यह खुशबूदार हरी चाय के साथ सोंठी, शक्कर, आर्द्रक, तुलसीपत्र मिलाकर अष्टमांश क्वाथ कर पीने से पीनस, वात ज्वर, जड़ता, आगतुक ज्वरादि का प्रशमन होता है।

(२) उदरशूल—उदर के शूल पर हरी चाय के तेल का मालिश करने से और पीने से ठीक फायदा होता है।

(३) प्रतिश्याय—शीत एव वर्षा से आघातजन्य प्रतिश्याय पर और कंठदाह, कंठशूल, शिरो-आध्मान, कफ, मलावरोधादि विकारो में चाय का सेवन और उबलते जल मे चाय डालकर छिद्र वाला ढक्कन रखकर, गरम कपड़ा लपेट कर उसका 'नस्य' लेने से शीघ्र लाभ होता है। हरी चाय, पुदीना, तुलसी, अदरक, वचा तथा गुड डाल कर बनाई गई चाय से जीर्ण प्रतिश्याय का शमन होता है।

(४) अग्निदाह—अग्नि की लपट, गरम जल, एसिड, गरम तैलादि किसी से भी जलने पर चाय के उबले हुए जल मे कपड़े की पट्टी भिगोकर उस अङ्ग पर रखें। बार-बार ऐसी भीगी हुई चाय के पानीयुक्त पट्टी २-३ घण्टे तक जले हुए भाग पर रखने से फफोले नही होते और त्वचा पूर्ववत् बन जाती है।

(५) थकावट—थकावट, आलस्य, बेचैनी इत्यादि में अल्प मात्रा में चाय का सेवन करने से तुरन्त लाभ होता है।

(६) नेत्राभिष्यन्द—चाय का क्वाथ १/१६ भाग से बनाया हुआ हो ऐसे प्रवाही का बूँद सुबह-शाम डालते रहने से २-३ दिन मे नेत्राभिष्यन्द होता है।

(७) कण्ठक्षय—आमाशय के रस की उग्रता एवम् पाचन क्रिया की विकृति से उत्पन्न विकारो मे चाय के क्वाथ से दिन मे २-३ बार कुल्ले कराते रहने से क्षत का रोपण हो जाता है।

चाय पीने वालो के लिए संक्षिप्त नियम

१. बडा भारी शरीर वाले और बहुत खाने वाले लोगो को प्रमाणसर चाय पीना लाभकारी है। २, दुबले-पतले और कमजोर लोगो को चाय नही पीनी चाहिये। यदि पीना हो तो ज्यादा दुग्ध डाल कर पीनी चाहिये। ३ सुबह मे चाय के साथ लघु आहार (नास्ता) स्वरूप मे लिया जा सकता है। किन्तु दुपहर और साय काल के भोजन के पश्चात् चाय पीने से नुकसान होता है। ४. मृदु कोष्ठ वाले लोगो को बहुत कडवी और ज्यादा शक्कर वाली चाय नही पीनी चाहिये। ५. प्राय करके दिन मे १ से २ बार से ज्यादा बार कभी भी चाय नही पीनी चाहिए।

अम्लपित्त, दाह, निद्रानाश, उन्माद, हिस्टीरिया, अतिसार, प्रवाहिका, अर्श, शुक्र का पतलापन, अग्निमाद्य, शुष्ककास, वृक्कप्रदाह आदि विकारो से पीडित तथा विशेषरूप से छोटे बच्चो को कभी भी चाय नही देनी चाहिये।

शीतकाल और वर्षा ऋतु मे सम्यक् मात्रा मे चाय लेने से विशेष हानि नही पहुँचती। किन्तु ग्रीष्म और शरद ऋतु मे चाय का अधिक सेवन अधिकतम हानि देगा।

—डा० हसमुख सी-शाह, M S A M
असिसटन्ट रिसर्च आफीसर मणिबेन अमृतलाल
सरकारी आयुर्वेदिक हॉस्पीटल, अहमदाबाद, ३८००१६

सुरारहित पेय—चाय, काफी, कोको

(पृष्ठ ३५२ का शेषांश)

जाता है। मदात्यय (Alcoholic Poisoning) में भी इसका प्रयोग लाभदायक सिद्ध होता है।

(४) पचन संस्थान—कैफीन का प्रभाव इस सस्थान पर विशेष रूप से आमाशय स्थित एसिड व पैपसिन पर पड़ता है। यह उपरोक्त दोनो स्रावो की मात्रा को बढा देता है। आमाशयिक व्रण (Peptic Ulcer) वाले रोगियो में इसका प्रभाव अधिक पड़ता है, अत हानिकारक होता है। थियोफाइलीन, पित्ताशय व उसके अन्य अवयवो (Biliary Tract) के सकोच को दूर करता है साथ ही क्षुद्र व वृहत आन्त्र की गति को कम करता है। कभी-कभी यह मुख द्वारा दिये जाने पर क्षुधानाश व आमाशयिक विकार जैस क्षोभ आदि उत्पन्न करता है। एमाइनोफाइलीन के रूप मे इसका प्रयोग शिरागत पिताशय के सकोच की अवस्था मे किया जाता है।

(५) मूत्रवह संस्थान—इस सस्थान पर कैफीन आदि द्रव्यो का मूत्रल कर्म होता है। थियोफाइलीन का कर्म सबसे प्रबल, थियोब्रोमीन का मध्यम परन्तु अधिक समय तक व कैफीन का सबसे अल्प होता है। इनका कार्य क्षेत्र मुख्य रूप से वृक्क की नलिकाओ में उपस्थित विशिष्ट एन्जाइम पर होता है और ये सोडियम के पुनर्शोषण को कम करके मूत्रल कर्म करते हैं। अत इस गुण के कारण इनका प्रयोग वृक्कजशोफ की अवस्था मे किया जाता है।

विषैला प्रभाव—

कैफीन की घातक मात्रा लगभग १० ग्राम है परन्तु १ ग्राम से अधिक की मात्रा में ही केन्द्रीय नाडीवह सस्थान व रक्तवह सस्थान के विकार उत्पन्न होने लगते है। इनमे मुख्यतया मचली, वमन, शिर शूल, हृद्क्षिप्रता (Tachycardia), स्वतन्त्रमूत्रलता (Free Diuresis), चक्कर, अनिद्रा, उत्तेजना, बेचैनी आदि होने लगते है।

अत उपर्युक्त तथ्यो को ध्यान में रखते हुए यह प्रतीत होता है कि ये द्रव्य एक निश्चित मात्रा में लाभप्रद हैं परन्तु अत्यधिक मात्रा मे सेवन करने से विभिन्न शारीरिक व मानसिक विकारो को उत्पन्न करते है।

—डा० श्री महेश चन्द्र पाण्डेय
बी०ए०एम०एम०एस०,डी०ए०वाई०एम०
डिमास्ट्रेटर—द्रव्य गुण चिकित्सा विज्ञान सस्थान,
का०हि०वि०वि०, वाराणसी।

मद्यपान का स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव

श्री डा॰ शिवपूजन सिंह कुशवाह
साहित्यालंकार एम ए

गेहूं, जौ, चावल, ताड, खजूर, महुआ, गुड, धान, जामुन, अजवायन, अंगूर, गन्ना, कन्द-मूल आदि से मद्य का निर्माण किया जाता है। भारत में महुए का मद्य प्रसिद्ध है।

संस्कृत में 'सुरा' हलिप्रिय, हाला, वरुणात्मजा, गन्धोत्तमा, चपला, वारुणी, आसव, अमृता, वीरा, महानन्दा, मदिष्ठा आदि नाम हैं। आंग्ल भाषा मे 'Liquor' (लिकर) Wine (वाइन) प्रसिद्ध शब्द हैं। शराब को विष इसलिए कहा गया है कि उसमें 'अल्कोहल' है। यह विशेष रासायनिक प्रक्रिया से उत्पन्न होने वाला एक ऐसा विष है, जो किसी भी वस्तु मे ताजा अवस्था में सु-मधुर-तत्व के उपस्थित रहते हुए नही पाया जाता।

वाइन (Wine) में १०% अल्कोहल होता है। बियर (Bear) में ३% है जो एक हल्की शराब समझी जाती है। ह्विस्की (Whisky), ब्राण्डी (Brandy) में ४० से ६०% अर्थात् आधे से अधिक अल्कोहल होता है। जितना अल्कोहल जिस शराब में अधिक होता है उतनी ही वह अच्छी समझी जाती है क्योकि उससे मादकता अधिक होती है। यही कारण है कि मद्यपान करने से मलावरोध, सग्रहणी, राजयक्ष्मा और दमा के रोग हो जाते हैं।

वेदो मे मद्यपान निषेध— "न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्ति"

[ऋ० मं ७ सूक्त ८६ म ६]

श्री सायण भाष्यम्—वक्ष्यमाणासुराप्रमादकारिणी, मृत्यु' क्रोधश्च गुर्वादि विषय. सन् अनर्थ हेतु विभीदक द्यूतसाधनोक्ष. द्यूतेषु प्रेरयन्।

अर्थात्—वह सुरा प्रमाद (आलस्य) करने वाला, मन्यु, क्रोध, निश्चित अनर्थ का कारण और द्यूत (जुए) के लिए भी प्रेरणा करने वाला है।

प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति, विद्यामार्तण्ड-ऋ० ७/८६/६ मे उन वस्तुओ का निर्देश किया गया है जिनसे मनुष्य अधर्म मे प्रवृत्त होता है उन्ही में सुरा (शराब) और (विभीदक) जुए का भी परिगणन है।"[1]

"हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्। ऊधर्न नग्ना जरन्ते।" [ऋ० म ८ सू २ मन्त्र १२]

श्री सायण भाष्यम्—सुराया पीताया जायमाना दुर्मदासो न दुष्टमदा यथा पातार मादयन्तितद्वत्।

जैसे सुरा (शराब) के पीये जाने पर दुष्टमत्तता सुरा पायी को प्रमत्त करने के लिए उनके अन्त.करण में युद्ध करती है।

न की रेवन्त सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्व।"

[ऋ० म ८ सु २१ मन्त्र १४]

सायणभाष्यानुवाद—इन्द्र, बन्धुता के लिए केवल धनी (अयाज्ञिक) मनुष्य को क्यो नही आश्रित करते? इसलिए कि, अयाज्ञिक मनुष्य सुरा (मद्य) पान करके प्रमत्त होते और तुम्हारी हिंसा करते हैं।

चतुर्वेद भाष्यकार प० जयदेव शर्मा 'विद्यालङ्कार' मीमांसा तीर्थ—हे प्रभो! तू (रेवन्ते) धन से सम्पन्न पुरुष को (सख्याय) अपने मित्र भाव से योग्य (न कि विन्दसे) कभी नही पाता। सम्पन्न जन (सुराश्व) 'सुरा' मद्य पी कर घमण्ड मे फूलने वाले, मत्त जनो के समान 'सुरा' अर्थात् सुख से रमण करने योग्य स्त्री भोग आदि विषय तथा राज्य लक्ष्मी से बढ़ते हुए, मदमत्त होकर (ते पीयन्ति) तेरे भक्तजनो को पीडित करते हैं।[2]

---

[1] "वेदो का यथार्थ स्वरूप" पृष्ठ ४९७ [गुरुकुल कागड़ी प्रथमावृत्ति २०१४ वि सवत्]

[2] "ऋग्वेद संहिता भाषा भाष्य" पञ्चम खण्ड, प्रथमावृत्ति (अजमेर) पृष्ठ ३७०।

"सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्।" [ऋ० म० १० सू० मन्त्र ६]

श्री यास्क ने निरुक्त ५/२७ मे सप्त मर्यादा मे सुरा-पान' (मद्यपान) को गिनाया है।

श्री रामचन्द्रजी महाराज 'सप्त मर्यादाओं' के पालन के कारण ही 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहलाते थे।

यथा मांस यथा सुरा यथाऽक्षा अधिदेवने।
यथा पुंसो वृषण्यत स्त्रियां निहन्यते मनः॥
[अथर्ववेद काण्ड ६ सूक्त-७० मन्त्र १]

श्री ग्रिफीथ ने ऋ० १०/३४/१३ के अंग्रेजी अनुवाद मे लिखा है—

'Its (of flesh use is disapproved) as in a passage of the Atharvaveda (6 70 1) where meat is classed with Sura (सुरा) or intoxicating liquor as a bad thing"

अर्थात् अथर्ववेद के ६.७० १ मन्त्र में मांसभक्षण का निषेध किया है जहां मांस को मद्य के साथ लिखकर बुरा बतलाया है।

इससे सिद्ध हुआ कि मांस भक्षण, मद्यपान, द्यूतक्रीडा, व्यभिचार मनुष्य को गिराने वाली बातें हैं।

उपनिषद् और मद्यपान—

"राजा अश्वपति का गौरवपूर्ण कथन—

"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो"
—[छान्दोग्योपनिषद् ५/११/५]

आद्यश्रीशांकर भाष्यम्—न मे मम जनपदे स्तेनः परस्वहर्ता विद्यते न कदर्योऽदाता सति विभवे। मद्यपो द्विजोत्तम सन्" मेरे राज्य मे कोई चोर दूसरे का धन हरण करने वाला नही है। न कोई कदर्य सम्पत्ति कहते हुए दान न करने वाला है। न कोई द्विजश्रेष्ठ मद्यपान करने वाला है।"

"स्तेनो हिरण्यस्य सुरांपिबंश्चगुरोस्तल्प‥‥‥।"
—[छान्दोग्योपनिषद् ५/१०/९]

अर्थ—सोने का चुराने वाला, मद्यपान करने वाला, गुरुस्त्री से मैथुन-करने वाला, और ब्राह्मण की हत्या करने वाला ये चारो पतित होते हैं।

स्मृतियां और मद्यपान—मनुस्मृति २/१७७, ६/१४, ७/५०, ११/९०, ११/९१, ९२, ९३, ९४, ९५ ९६, ९७, ११/१४६, १४७, १४८, १४९, १५० मे स्पष्ट रूप से मद्यपान का निषेध है।

याज्ञवल्क्यस्मृति, प्रायश्चिताऽध्याये, प्रायश्चित प्रकरणम् ५/२५३, २५५; २५६, वसिष्ठ स्मृति २०/२४, २५, १/१९;

आपस्तम्ब स्मृति ७/१६; वृद्ध हरिति स्मृति ९/२८६ से २८८ तक, शंखस्मृति १२/१७, १७/४२, ४३ मे मद्य-पान का निषेध है।

महाभारत और मद्यपान—महाभारत आदिपर्व ७६/६७; मासलपर्व १/१८ स ३१ तक, मे मद्यपान का निषेध है।

सुरा मत्स्या मधु मांसमासवं कृसरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम्॥९॥
—[महाभारत शान्तिपर्व अ० २६५]

अर्थ—सुरा, आसव, मधु, मांस और मछली तथा तिल और चावल की खिचडी इन वस्तुओ को धूर्तो ने यज्ञ मे प्रचलित कर दिया। वेदो में इनके उपयोग का विधान नही है।[१]

आपत्तिकाल मे भिषक्गण आसव, अरिष्ट का प्रयोग रोगियो पर करते हैं।

पुराण और मद्यपान—

श्रीमद्भागवत् स्क० ५ अ २६ श्लो २९,६/२/९,६/२/२७,७/१२/१२,८/८/३०,११/५/११,११/३०/१२,

हरिवंश महात्म्य अ. ६ श्लो. ५२, कूर्मपुराण उत्तर-भाग अ. १७ श्लो ४४, १६/४५ मे मद्यपान का निषेधहै।

आयुर्वेद व मद्यपान—

निवृत्तः सर्वमद्येभ्यो, नरोयश्च जितेन्द्रियः।
शारीर-मानसैर्धीमान्, विकारैर्न स युज्यते॥
—चरक संहिता अ. २४/२०६

अर्थ—जो जितेन्द्रिय पुरुष सभी प्रकार के मद्यो से निवृत्त हैं अर्थात् मद्यपान नही करता है, वह बुद्धिमान व्यक्ति पीने से उत्पन्न होने वाले शारीरिक तथा मानसिक व्याधियो से युक्त नही होता है।

---

[१] महाभारत (पंचम खण्ड) [शान्तिपर्व] पृष्ठ ५१०९ [गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित]

(शेषांश पृष्ठ ३५९ पर देखें)

परिचय—मद्य को सुरा, शराब, वारुणी एवं मदिरा आदि अनेकों नामों से जगह-जगह जानते हैं। साधारण भाषा में जो पदार्थ मादक हो यानी नशा करने वाले हो उसे ही मद्य कहा जाता है।

मद्यपान का वर्णन आयुर्वेद मे सुन्दर प्रकार से मिलता है। कुछ लोग तो स्वर्ग मे स्थित अमृत से भूलोक की मदिरा की तुलना भी करते हैं।

आ० छ० मे "न केवल स्वयं ही कोई व्यक्ति मद्यपान करे अपितु उसे चाहिये कि वह अपने कुटुम्बीजनों, आश्रित उपाश्रित आदि को भी मद्यपान करायें। क्योंकि मानव जीवन मूल्यवान है तथा जीवन की रक्षा के लिये आवश्यक है कि वह विधिपूर्वक मद्य का सेवन करे। मद्यपान जीवन के लिए न केवल हितकारी हैं बल्कि परमधर्म का साधन भी है।" आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि "किन्तु मद्य स्वाभावविनयथैवान्न तथा स्मृतम्" अत मद्य स्वभाव से ही अन्न के समान मानी गयी है।

भेद—

इसके अरिष्ट, सुरा, सीधू और आसव आदि भेद प्रमुख रूप से सभी जगह वर्णित हैं—

(अ) अरिष्ट—जल तथा औषधियों से पकाकर भी मद्य बनाई जाती है उसे अरिष्ट कहते हैं। यह उत्पादक द्रव्यों के गुणों के अनुसार ही गुण वाली होती है। यह अरिष्ट ग्रहणी, पाण्डु, कुष्ठ, अर्श, शोफ, शोष, ज्वर, उदर रोग, कृमि, प्लीहा वृद्धि को नष्ट करती हैं। यह कषाय, कटु एवं वातकारक भी है।

(ब) सुरा—चावलों के द्वारा बनाई गई मद्य को सुरा कहते हैं। यह गुण ग्राही, वातकारक एवं पुष्टिदायक होती है। दुग्ध मूत्र रक्त मेद एवं कफवर्धक एवं स्नेहन करने वाली है।

(स) वारुणी—पुनर्नवा को शिला पर पीसकर जो मदिरा बनाई जाती है उसे वारुणी कहते हैं। इसके अलावा ताड़ी और खजूरी के रस से तैयार होने वाली मदिरा वारुणी कहलाती है। यह सुरा के समान गुण वाली किन्तु कुछ हल्की होती है। वह वायुकारक एवं गुरु है। पीनस शूल, अध्मान् नाशक है।

(द) सीधु—यह दो प्रकार की होती है—पक्व रस, शीतरस, यह दोनों ही ईख के रस से तैयार होती हैं। ईख के पके रस से जो मदिरा तैयार बनती है उसे पक्व रस तथा कच्चे रस से बनने वाली सीधू शीतरस सीधू कहलाती है।

शोथ, मेद, अर्श, उदरशोथ, कफज रोगों को नष्ट करती है स्वर उत्तम करती है। अग्नि प्रदीपक, बलवर्द्धक, वर्ण को उत्तम करने वाली, वात या पित्तकारक है। तत्काल स्निग्धता करने वाली, रुचिकारक मल बन्ध आदि नष्ट करती है। यह लेखन कर्म भी करती है।

(य) आसव—अपक्व औषधि एवं जल से भी मदिरा तैयार की जाती है। उसे आसव कहते हैं। इसके अलावा बहेड़े यव, शर्करा, गुड़, मधु आदि से भी मद्य बनाई जाती है जो सुगन्धित हितकारी, मध्यम मदकारक एवं लघु होती है। मधु मद्य कफ तोड़ने वाली, तीक्ष्ण, प्रमेह, पीनस और कासनाशक है।

मद्य के गुण एवं दोष—

आचार्य सुश्रुत के अनुसार "मद्यमुष्ण तथातीक्ष्णं सूक्ष्म विशद मेध्या रुक्षमासुकर चैवव्यवायिच विकाशिच"। अर्थात् मद्य उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, विशद, रूक्ष, आशुकारी, व्यवायि और विकाशि गुणवाली मानी गई है। इसके अलावा यह मद्य रस से अम्ल रस वाली है। अत लघु है, रुचिकारक और अग्निदीपक है। कुछ विद्वान (आयुर्वेदाचार्य) लवण को छोड़कर सभी रसों को मद्य मे मानते है।

आइये अब इसके अलग-अलग गुणों के ऊपर थोड़ा प्रकाश डालें—

(१) उष्णता से—पित्त प्रकोपक है।

(२) तीक्ष्णता से—मन की गति को नष्ट करती है।

(३) सूक्ष्मता से—शरीर के सम्पूर्ण अवयवो मे पहुचने की क्षमता है।

(४) विशद होने से—वातकारक है कफ तथा शुक्र को नष्ट करती है।

(५) रूक्षता से—वायु का प्रकोपन करती है।

(६) आशु गुण से—तत्काल प्रभाव बतलाती है।

(७) व्यवायि से—मानसिक हर्ष, कामशक्ति वर्धक।

(८) विकाशि होने से—सम्पूर्ण शरीर के अवयवो मे फैलकर ओज को आक्रान्त करती है। इसके अलावा इसका एक महान गुण यह भी है कि यह मन, बुद्धि और इन्द्रियो के अन्दर प्रविष्ट होकर उन्हे नियत्रणरहित कर देती हैं। अत मानव अपने मन के गुप्त विचार भी प्रगट कर देता है और अगम्या नारीगमन कर बैठता है। इसके अलावा अभक्ष्य पदार्थों को भी खा लेता है। और अगर मन मे किसी की हिंसा का भाव पहले से बैठा हो तो मद्यपान के बाद उग्र और निर्भय हो यह हत्या कर देता है।

मद्य जठराग्नि के साथ मिलकर मद रोगो को भी उत्पन्न करता है। मद के कारण ही वह अपने मन की गुप्त बातो को प्रकाश मे लाता है।

युक्ति से पिया मद्य अग्निदीपक रुचिकारक, तीक्ष्ण, उष्ण तुष्टि एव पुष्टिदायक है किन्तु विपरीत प्रकार से पिया मद्य विष के समान होता है।

मद्यपान का प्रभाव—

इसका विशेष प्रभाव मन, बुद्धि और हृदय पर पड़ता है। अत समस्त इन्द्रिया प्रभावित होकर बुद्धि स्मृति और प्रीति की बढोत्तरी करती है। सुख का अनुभव होता है पढने, गति गाने, कार्य करने की क्षमता बढती है। कमनीयता, धैर्य, तेज, प्रसन्नता, पराक्रम की प्राप्ति होती है।

मद्यपान निषेध—

गर्म भोजन के बाद, धूप से आने के बाद, विरेचन लेने के बाद, अति भूख लगने पर मद्यपान का निषेध माना है। इसके अलावा अति तीव्र या मृदु मद्य नही पीनी चाहिए। मलिन, अस्वच्छ मद्यपान का भी निषेध है।

स्त्री शोक, भय, भार तथा काम के कारण अत्यन्त कृश, रूक्ष, अल्प निद्रात्याग कर अधिक मात्रा मे रूक्ष मदिरा का पान करने वाला मनुष्य मदात्यय, और पान विभ्रम आदि भयानक रोगो से घिर जाता है।

जैसे विष का उपचार विष से किया जाता है उसी सिद्धान्तानुसार एक जाति की मद्य से उत्पन्न मदात्यय मे दूसरी जाति के मद्य का उपयोग हितकारी है।

—श्री प. बी डी. बुत्रोलिया वैद्य विशारद
रेलवे क्वार्टर १५४–डी, खजाची बाग, भोपाल।

(पृष्ठ ३५७ का शेषांश)

मद्ये मोहो भय शोक क्रोधो मृत्युश्च सश्रित.।
सोन्मादमदमूर्च्छाया. सापस्मारापतानका.।
—चरक सहिता अ. २४/५६

अर्थ—मद्य मे मोह, भय, शोक, क्रोध और मृत्यु आश्रित रहती है तथा उन्माद के साथ मद, मूर्च्छा, अपस्मार एव अपतानक रोग भी आश्रित रहता है[४]।

डा० राधा कुमुद मुकर्जी एम ए.पी एच डी.डी लिट्.—

"सुरा निन्दित समझी जाती थी। ६/८६/६ उसे पीकर लोग दुर्मद हो जाते थे और सभा-समितियो मे आपस मे लड जाते थे[५]।"

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती (आर्य समाज के प्रवर्तक)—

"इतना अवश्य चाहिये कि मद्य मास का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करे।" सत्यार्थ प्रकाश, दशम समुल्लास 'मद्य मासादि के सेवन से अलग रहे।"

—सत्यार्थ प्रकाश, द्वितीय समुल्लास

"मद्यपान का तो सर्वथा निषेध ही है क्योकि अबतक वाममार्गियो के बिना किसी ग्रन्थ मे नही लिखा किन्तु सर्वत्र निषेध है। —सत्यार्थ प्रकाश, एकादश समुल्लास

—श्री डा० शिवपूजन सिंह कुशवाह एम. ए.
साहित्यालकार, विशारद, आर एम. पी.
द्वारा–टफ्को, १३/४०० सिविल लाइन्स,
हजारी बगला, कानपुर–१

---

[४] "चरक सहिता, उत्तरार्द्ध, सविमर्श विद्योतिनी हिन्दी व्याख्योपेता, पृष्ठ ६७४-६७५ (वि० संवत् २०२७ चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित द्वितीय संस्करण)।"

[५] हिन्दू सभ्यता 'प्रथम सस्करण' पृष्ठ ८०-८१।

शरीर के विभिन्न अंगों पर एलकोहल का दुष्प्रभाव

श्री डा जय कुमार 'सुधाकर'

जिस प्रकार विदेशों मे मनुष्य एलकोहल का प्रयोग करते हैं उसी प्रकार हमारे देशवासी भी आधुनिक चाक चक्य की चकाचौंध मे इसका सेवन करने लगे हैं। एलकोहल के नाम से बहुत कम व्यक्ति परिचित होगे परन्तु शराब, ब्राडी आदि को शायद ही कोई व्यक्ति न जानता हो। इन सबके अन्दर एक प्रकार का द्रव पदार्थ रहता है जिसे एलकोहल कहते हैं। यह शराब के अन्दर मर्यादित मात्रा मे, ब्रान्डी मे ३० से ५० प्रतिशत और बाजार में बिकने वाली स्प्रिट के अन्दर ९० से ९६ प्रतिशत रहता है। स्प्रिट के अन्दर कुछ विषैले पदार्थों का मिश्रण किया जाता है जिससे उसमे दुर्गन्ध एव नीला रग होता है। प्रस्तुत लेख मे यही दिग्दर्शन कराया गया है कि एलकोहल से हमारे शरीर के विभिन्न अङ्गो पर क्या-क्या दुष्प्रभाव होते हैं।

त्वचा पर—शरीर के ऊपर जो भी वस्तु हमें दिखाई देती है, उसे हम त्वचा या चमडी कहते हैं। प्रकृति ने इसे भीतरी अङ्गो की सुरक्षा के लिए बनाया है। इसका मुलायम होना भीतरी अङ्गो की सुरक्षा के लिए उतना ही आवश्यक है जितना प्राकृतिक भूख लगने पर भोजन। मुलायम का कारण स्निग्धता एव पानी माना जाता है। एलकोहल त्वचा का सम्पूर्ण पानी सोखकर प्रोटीन को भी अलग करने में सहायक होता है। जहाँ यह शरीर के ऊपर गिरता है वहा थोडे ही समय में त्वचा रूक्ष एव कठोर हो जाती है। इससे सिद्ध होता है कि एलकोहल त्वचा की स्निग्धता सोखता हुआ वाष्प बनकर उड जाता है।

आमाशय पर—आजकल कई लोग प्राकृतिक वस्तुओ को त्यागकर पाचक रसो की वृद्धि के लिए एलकोहल का प्रयोग करते हैं। एलकोहल पाचक रसो की वृद्धि तो करता है परन्तु प्राकृतिक वस्तुओ के रस से भिन्न जो पाचक रस इसके द्वारा तैयार होता है उसमें पेपसीन नही रहता। लवणाम्ल की मात्रा अधिक होने के कारण रक्त विकार एव रक्त विकार से उत्पन्न होने वाले दाद, खाज, कुष्ठ आदि अनेक रोग उत्पन्न होने की आशङ्का रहती है। प्रोटीन को अच्छी तरह पचने मे सहायता नही मिलती जिससे हृदय, स्नायु, मस्तिष्क अपना कार्य सुचारू रूप से करने मे असमर्थता प्रकट करते हैं। आमाशय भी स्वतन्त्रता से अपना कार्य नहीं कर पाता, जिनसे अनेकानेक रोगो का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सकाचता भी कभी कभी आमाशय म आ जाती है।

केन्द्रीय नाड़ी सस्थान पर—एलकोहल का दुष्प्रभाव केन्द्रीय नाडी सस्थान पर बहुत जल्दी होता है। इसके पीने से सुषुम्ना में शिथिलता, मूर्छा, तृषा एवम् पक्षाघात जैसे भयकर रोग हो जाते हैं। मनुष्य म अपने को नियन्त्रण रखने की शक्ति नष्ट हो जाती है और जो व्यक्ति जिस प्रकार के स्वभाव का होता है वह वैसे ही कार्य करने लगता है। जैसे एक हसोड व्यक्ति हसता ही रहता है, दूसरा क्रोधी व्यक्ति क्रोध की अधिकता के कारण झगडा हो झगडा करता रहता है आदि।

मस्तिष्क शक्ति नष्ट होने के साथ साथ शरीर के अनेक अवयवो की प्राकृतिक शक्ति का भी ह्रास होता है। इसके पीने से कई लोगो की चेतना शक्ति इतनी अधिक नष्ट हो जाती है कि कई घन्टे बेहोश पड़े रहते हैं और उसी बेहोशी मे कभी कभी किसी किसी व्यक्ति के प्राण पखेरू भी उड जाते हैं। कई विद्वानो का मत है कि—

"एलकोहल पीने से मनुष्य के मस्तिष्क मे खराबी होती है, और इसी कारण कई लोग पागल हो जाते है, शरीर के अवयव नष्ट होने लगते हैं, नसो की कार्य शक्ति से सयम का अ श उठ जाता है, ऊचे केन्द्र समूह नष्ट हो जाते, इच्छा शक्ति का ह्रास, मूर्च्छा का प्रादुर्भाव और

कभी कभी मनुष्य की भी सम्पूर्ण चेतना शक्ति नष्ट होकर मृत्यु हो जाती है ।"

नाड़ी और हृदय पर—आजकल के वैज्ञानिक भी इस बात को मानने लगे हैं कि हृदय की धड़कन और नाडी की गति प्रायः बराबर सी होती है, क्योकि इन दोनो का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है । एलकोहल पीने से खून के दबाव मे कमी के कारण हृदय की धड़कन बढ जाती और नाडी की गति भी उसी अवस्था मे चलने लगती है । कभी कभी हृदय की धडकन इतनी अधिक बढ जाती है कि पीने वाले व्यक्ति को काल के गाल मे जाना ही पड़ता है । जल का शोषण करना एलकोहल का प्रमुख गुण माना जाता है । यह पहले बताया जा चुका है कि मनुष्य इसको पीकर अपने आपको भूल जाता और जब अन्दर एलकोहल को पानी की आवश्यकता पडती है तब वह रक्त का जलीयाश शोषण करने लगता है । रक्त की जब प्राकृतिक अवस्था नष्ट हो जाती है, तब शरीर मे रक्त का सुचारू रूप से सचार नही होता, जलन होने लगती, मस्तिष्क विकार एव हृदय सम्बन्धी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं । कम मात्रा मे भी एलकोहल पीने से हृदय और नाडी की गति मद हो जाती है ।

धमनियो पर—खून की नलियो पर एलकोहल का दुष्प्रभाव बहुत ही शीघ्र होता हुआ देखा गया है । इसके सेवन करने से ऊपर की त्वचा की नलिया अवश्य ही फैल जाती हैं जिससे चेहरे पर ललाई दृष्टिगोचर होने लगती है, परन्तु अन्दर की नलियों मे ठीक इसके विपरीत प्रभाव पडता है । भीतर की नलियाँ जब समुचित हो जाती हैं तब शरीर मे रक्त का सुचारू रूप से सचार नही होता तब शरीर मे विशेषकर शिराओं मे शिथिलता, चक्कर-आना, त्वचा मे खुरदरापन, हाथ पैरों में आलस एव मूर्च्छा आदि अनेक भयकर रोगो से शरीर रोगाक्रान्त हो जाता है ।

श्वास क्रिया पर—प्रकृति के विरुद्ध जो भी वस्तु हमारे शरीर के अन्दर जाती है वह अपना विशेष प्रभाव दिखलाती है । ठीक इसी प्रकार जब मनुष्य एलकोहल पीता है तब उसकी श्वास क्रिया मात्रा से अधिक हो जाती है । कई लोगो का ख्याल है कि यह सीधा श्वास क्रिया पर अपना प्रभाव दिखलाता है और कई लोगो का मत है कि पहले आमाशय की दीवारो को उत्तेजित करता हुआ अप्रत्यक्ष रूप से यह श्वास क्रिया को प्रभावित करता है । श्वास क्रिया पर इसका इतना अधिक दुष्प्रभाव देखने में आया है कि जो पहले एलकोहल का प्रयोग करते थे उन्हें कुछ श्वास, कास, यक्ष्मा आदि अनेक भयकर रोगो ने आकर घेरा और इन्ही रोगो के कारण कुछ दिनो में वे पचत्व को प्राप्त हुए ।

तापक्रम पर—यह बात बड़े बडे निष्पक्ष निर्लोभी एव स्वास्थ्य प्रेमी डाक्टरो द्वारा सिद्ध हो चुकी है कि एल-कोहल मनुष्य के शरीर का तापक्रम नष्ट करता है । इसके सेवन से ऊपर की रक्तवाहिनियो मे और अन्दर की रक्त वाहिनियो मे सकोच आने के कारण शरीर की प्राकृतिक गर्मी नष्ट हो जाती है । एलकोहल पीकर बाहर निकलने से मनुष्य के प्राण पखेरू भी उड़ते हुए देखे गये हैं । इसका कारण है कि रक्तवाहिनियो मे सकोच और विस्तार के कारण पहले ही तापक्रम नष्ट रहता है और बाहरी ठड के कारण मात्रा से अधिक हो जाता है ।

उपर्युक्त प्रमाणो से यही सिद्ध होता है कि एलकोहल मनुष्य का छिपा हुआ दुश्मन है और न जाने कब अपने फंदे मे फसाकर हमेशा के लिए सुला दे । इसलिए एलकोहल तथा एलकोहलयुक्त पदार्थों को त्याग कर घी, दूध, दही, सस्ती चीजो मे शाक सब्जियाँ आदि सेवन कर अपना स्वास्थ्य समुन्नत करना चाहिए ।

—श्री डा० जयकुमार 'सुधाकर'
'नवभारत प्रतिनिधि' मानगढ़ बीना
(सागर) म० प्र०

चाय, कहवा, कोको, मद्य—इनके बारे में आप पिछले पृष्ठो में पढ़ चुके हैं। यहाँ पर भाँग, गाँजा, चरस, अफीम आदि उत्तेजक और मादक पदार्थों का वर्णन किया जाता है—

भाँग (Cannabis Indica)

प्राचीन सहिता काल मे समवत: औषधि कार्यार्थ ही भाग का विशेष प्रचार न हो, परन्तु पेयादि अन्य रूप से इसका व्यवहार अवश्य ही किया जाता था। इसी से अब भी अन्य देशो की अपेक्षा भारत मे इसका अत्यधिक उपयोग किया जाता है। औषधि कार्य के अतिरक्त ठण्डाई की तरह इसका विशेष उपयोग किया जाता है। तथा मागलिग कार्यो मे भी इसका व्यवहार होता है। मुगल शासन काल मे यूनानियो ने इसके उपाङ्गभूत गाजा, चरस आदि का खूब प्रचार किया। १९ वी शताब्दी मे पाश्चात्य चिकित्सको ने इसके गुणो का परिचय प्राप्त कर इसके निद्राप्रद एव वेदना शून्यताकारक गुणो की विशेष प्रशसा की।

रासायनिक सघटन—भाग में राल, कैनेबिनोन (Cannabinone) नामक क्षार तत्व, उडनशील तैल, निर्यास, वसा, शर्करा, मोम तथा पोटाशियम नाइट्रेट पाये जाते हैं।

भांग का शरीर पर प्रभाव—भाग का उपयोग मादक रूप मे तथा औषध रूप में किया जाता है। जो मादक रूप में इसका सेवन करते हैं, उनको सिवाय हानि के कोई लाभ नही होता। यद्यपि औषधि रूप से सेवन की जावे पर यह वाक्शक्ति एव विचार शक्ति को बढाती है, तथापि मादक रूप मे इसका सेवन विरुद्ध प्रभाव भी करता है। नशेबाजो को अनेक प्रकार के मस्तिष्क रोग तथा स्नायविक विकार उत्पन्न हो जाते है, स्वास्थ्य नष्ट होता है।

भाग तीसरे दर्जे मे शीत व रूक्ष है। यह प्रथम आराम और नशा पैदा करती, गालो की लाली को निखारती है। चिन्ता को मिटाती है, भूख-प्यास को तेज करती है अन्त में इसके सेवन से दिमाग विकृत हो जाता है। दृष्टि मे भी विकृति आती है, आँखो के नीचे अन्धेरा छाने लगता है। जनून और मालीकोलिया हो जाता है, नामर्दी आ जाती है। वीर्य खुश्क होता तथा कामवासना कम होती है। खाली पेट इसे लेने से नुकसान पहुँचाती है। जो इसका सेवन दिन में दो बार करते हैं वे खाँसी से पीडित होकर शीघ्र मरणासन्न हो जाते हैं। भारतवर्ष मे पागलपन के जो विविध कारण होते हैं उनमे भाँग का सेवन भी एक महत्व का कारण है।

गाँजा (Cannabis Sativa)

गाँजा, चपटा, गोल तथा चूर्ण तीनो रूपो में पाया जाता है। मादा जाति के भाग के पुष्पाकुरो को एक मे (एक पर एक) जमाकर रख कर पैरो से या अन्य साधनो से खूब दबाने या कुचलने पर जो उसकी खली सी (गद्दा सी) बन जाती है उसे ही सुखाने से चपटा गाजा तैयार हो जाता है।

अथवा इसकी पुष्पाकुरयुक्त टहनियो को तोड़ कर कुछ थोडी जगह रखकर साधारण सूख जाने पर इन्हे पैरो से रौंदते हैं तथा थैलो मे ठूस कर भरते हैं। कुछ दिन बाद नमी से कुछ ताप पैदा हो जाती है। अन्दर हाथ डाल इच्छानुसार गरमी पाने पर फिर रौंदा व पीटा जाता है। पुन बोरियो मे बन्द कर देते हैं। फिर उनमे गरमी आने पर पूर्णतया शुष्क होने के लिए रख देते हैं। वह कुछ चिपचिपासा भूरा चिपटा पपटी के रूप में हो जाता है।

उक्त पुष्पाकुरो को अलग-अलग शुष्क करने पर, वह सिकुड कर गोलाकार सा बन जाता है। वही गोल गाजा कहाता है तथा पुष्पाकुरो को डडी एव पत्तो सहित एकत्र

मिलाकर शुष्क किये हुए चूर्ण को चूर्ण या चूरा गाजा कहते हैं। इनमे चपटा गाजा श्रेष्ठ माना जाता है।

गांजे का शरीर पर प्रभाव—गाजे की क्रिया विशेषत मस्तिष्क पर होती है। प्रारम्भ मे न्यूनाधिक उत्तेजना मिलती है, किन्तु भरपूर मात्रा मे लेने से ज्ञान ग्राहक शक्ति कम होती है, नशा आता है, त्वचा शून्य होती है, पैरो मे शिथिलता आती है। नेत्रो की कनीनिका विकसित होती, नाडी तेज होती तथा गाढ़ सुषुप्ति की अवस्था प्राप्त होती है।

गाजा शुद्धि— गाजे को दोलायत्र विधि से ३ घण्टे तक गोदुग्ध मे पकावे या वाष्पित करने से शुद्ध हो जाता है। विशेष हानिकर नही होता, औषधि कार्यार्थ इसे शुद्धि कर लेना आवश्यक है। गाजा पान करने नशे बाज अशुद्ध ही का धूम्रपान करते हैं। जो जानकार होता है, वह इसे खूब जल में धो लेता है।

गांजा पान—नशेबाज प्राय. इसका धूम्रपान ही करते है। एक तोला गाजे के साथ तम्बाकू ३ माशा के प्रमाण मे लेकर दोनो को एकत्र मसलकर वस्त्र मे बाँध कर जल मे डुबो डुबोकर, तदन्तर्गत चरस का अश दूर हो जाने तक खूब मसलते हुए धोते हैं। पश्चात् चिलम मे थोड़ी तमाकू डालकर उस पर उक्त लुगदी को यथाप्रमाण (जितने पीने वाले हो तदनुसार) रख उस पर पुन. थोड़ी तमाकू डालकर आग से जलाकर धूम्रपान करते हैं। इसकी आदत या नशेबाज नही हैं वह तो इसके एक ही दम लगाने (कश लगाने) से गूगा हो जाता है, तन्द्रासी आ जाती है। नशेबाज को ४-५ दम लगाने पर भी कुछ नही होता, वह सावधान रहकर सब कार्य करता है। किन्तु अत्यधिक बार कश लगाने पर उसे भी इसका नशा चढ़ता है। वह भी गुमसुम सा हो जाता है। जो इसके विशेष आदी हो जाते है, उनके बल, वीर्य एवं ओज का शीघ्र ही नाश होता है। सिवा गपशप मारने के, वह अपना या समाज का कोई भी कार्य ठीक प्रकार से नही कर सकता। अत. इसका सेवन न करना ही अच्छा है।

चरस (Cannabinin)

चरस-भाग के मादा क्षुपो की दरारें, पत्र, डठल एव पुष्पो पर जो एक प्रकार का लसदार, राल सदृश रस निकलकर जम जाता है, उसे ही चरस कहते है। इसमे उक्त प्रभावशाली तत्व ४० % तक पाया जाता है। इस तत्व की दृष्टि से नेपाल, काश्मीर तथा लद्दाख के पहाडी भागो पर बोये हुए क्षुपो से इसका सग्रह किया जाता है। शीतकाल मे रात्रि में ओस पडने के पश्चात् प्रात चमडे का कपड़ा पहनकर इसके क्षुपो में इतस्तत। फिरने से, क्षुपो की रगड से उक्त लसदार चरस कपड़े पर चिपट जाता है, उसे खुरचकर चमड़े से पृथक कर गोले या डेले के रूप में बना लेते हैं। अथवा हाथ और पैरो से पुष्प मजरियो को रगड़ कर हाथ पैरो मे चिपके हुए इस लसदार द्रव्य को खुरचकर जमा कर लेते हैं।

प्राय भारत में उत्पन्न हुए क्षुपो से चरस पृथक नही की जाती अत यहा गाजा ही तैयार किया जाता है। यहाँ चरस यारकन्द से काशमीर के लेह के मार्ग से लाया जाता है।

रासायनिक संघटन—चरस मे टर्पिन १.५%, सिक्विटर्पिन २.०% टसिकरैड आयल ३३% और पैराफिन ०७५% पाया जाता है।

चरस का शरीर पर प्रभाव— चरस चौथे दर्जे मे शीत व रूक्ष है। मदकारी, शुक्र स्तम्भ, मूर्च्छा तथा दौर्बल्यकारक है। इसके गुण धर्म प्राय गाजे के जैसे ही होते हैं। इसका सेवन प्राय. गांजे के समान ही तम्बाकू मिला कर चिलम मे रखकर धूम्रपान के रूप मे किया जाता है। और कई स्थानो मे इसे ही अफीम के समान खाया जाता हैं। चरस के निरन्तर अभ्यास से जो व्यसन हो जाता है उसके कारण अग्निमाद्य, अनिद्रा, कृशता, कामावसाद, स्मृतिह्रास, कम्प, उन्माद आदि जीर्ण विष के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

तमाखू (Nicotina Tobacum)

इसका आदि स्थान अमेरिका है। वहाँ से सरवाल्टर रैले इसको यूरोप ले गये। वहा से मुसलमानो द्वारा यह भारत मे आ पहूँचा। आजकल इसका सेवन सभ्यता का एक प्रधान लक्षण माना जा रहा है जिसके कारण इसका प्रचार दिन-दूना रात-चौगुना बढ रहा है। तमाखू एक पौधे Nicotina Tobacum का पत्ता है। इसमे ताम्रकुटी (Nicotine) नामक क्षाराभ होता है जो शरीर

को हानि पहुचाता है। यह इतना विषैला है कि ८ बूदो से घोडा और २ बूदो से कुत्ता शीघ्र मर जाते हैं। दिन-रात मे मनुष्य जितनी तमाकू सेवन करता है उतनी यदि एक बार सेवन करे तो निस्सदेह उसकी उसी दम मृत्यु हो सकती है। तमाकू से भी मद्य के समान शरीर मे स्फूर्ति और उत्तेजना मालूम होती है और इसीलिए इसका सेवन किया जाता है। इसमे भी आदत बनाने का अवगुण होता है। अतः इससे भी दूर रहना चाहिए।

तमाखू खाने से मुख और दात खराब हो जाते हैं। आमाशय मे प्रकोप होकर अग्निमाद्यादि पाचन के विकार होते हैं। खून में मिलने के पश्चात् इसका विषैला परिणाम मस्तिष्क और हृदय पर होकर धड़कन, हृदयोद्वेष्टन (Heart cramp), उच्च रक्तचाप (High Blood pressure), नाड्यवसन्नता, काम में अनिच्छता, स्मृतिभ्रंश, शिर शूल, अनिद्रा, अक्षनाडी (Optic nerve) क्षय के कारण अन्धता इत्यादि विकार होते हैं।

अहिफेन (Opium)

अफीम में भी मादक गुण है। इसलिए एक बार इसका सेवन प्रारम्भ करने पर इससे छुटकारा नहीं हो सकता। अफीम बहुत विषैली वस्तु है। इसके लगातार सेवन से मनुष्य जवान से बूढे बनते हैं। उनका शरीर एकदम निकम्मा हो जाता है। अफीमची के ऊपर औषधियो का जल्दी परिणाम नहीं होता। इसलिए उनके रोग प्राय असाध्य हो जाते है।

मादक पदार्थो की विशेषताएँ—

(१) प्राचीनकाल से पृथ्वी के प्रत्येक भाग मे किसी न किसी मादक द्रव्य का सेवन मनुष्य करते आ रहे हैं और भविष्य मे भी करते रहेंगे।

(२) इनका सेवन प्रारम्भ करने पर फिर इनको छोडना असम्भव हो जाता है और मनुष्य उनका आदी बन जाता है।

(३) लगातार सेवन करने से आराम देने की उनकी शक्ति कम होती जाती है और पहले जैसा आराम (जिसके लिये इनका सेवन किया जाता है) मिलने के लिए उनका सेवन अधिकाधिक मात्रा में करना पडता है।

(४) इनके सेवन से शरीर के हृदय-मस्तिष्क आदि मर्माङ्ग बिना जरूरत के उत्तेजित हो जाते हैं जिससे धीरे धीरे उनकी कार्यक्षमता घट कर वे बहुत जल्दी निकम्मे हो जाते हैं और अकाल मृत्यु हो जाती है।

विषाक्त प्रभाव और उपचार

उपरोक्त विषाक्त प्रभावों को नष्ट करने के लिए निम्न उपाय समयानुसार काम मे लाने चाहिये—

(१) तुरन्त ही वमन करावें। एक डाक्टरी रिपोर्ट से ज्ञात हुआ है कि जिंक सल्फेट (Zinc Sulphate) देने से शीघ्र वमन होती है। या अन्य वमनोपचार करें, मुख द्वारा आमाशय प्रक्षालन करावें। वमन कराने के बाद यदि होश आने के बाद भी कोई व्यक्ति अकारण हसता रहे और असगत बातें करे तो उसे ऐसी दशा मे विरेचक पदार्थ देकर दस्त करा देवें।

(२) गाजे व चरस के विषाक्त प्रभाव में नीबू का शर्बत देवें। मुख और मस्तिष्क पर शीतल जल छिड़कें। इससे गरमी व खुश्की दूर होती है। रुग्ण को दूध देना तथा सोने देना उचित है। स्वर्णमाक्षिक भस्म और जटामासी देने से भी बहुत लाभ होता है।

(३) ध्यान रहे भाग के प्रबल विष का प्रभाव दूर होने पर भी रोगी की आँखे कुछ दिनो तक लाल लाल और चपल रहती हैं, प्रलाप करता है, साधारण बात में भी उत्तेजित हो जाता है, क्षुधा मन्द हो जाती है तथा शरीर निर्बल हो जाता है। इन लक्षणो को दूर करने के लिये दही और मक्खन मिश्री का सेवन कराना चाहिए।

(४) कभी कभी नीबू, इमली, सन्तरे आदि के रसो से या तक्र दही आदि से भी भाग का नशा नही उतरता (मधुर रस से तथा घृत आदि स्निग्ध पदार्थों से तो नशा और भी बढ जाता है) ऐसी दशा में केवल कागजी नीबू, मौसम्मी या सन्तरे के १-२ बीजो को जल मे पीस छान कर पिलाने या इस पीसे हुये कल्क को शहद के साथ चटाने से भाग-गाजा, चरस, अफीम आदि का नशा तुरन्त उतर जाता है।

(५) यदि नशे के साथ ही समस्त अङ्गो मे पीडा हो, वात प्रकोप हुआ हो, तो सोठ व अदरक को पीस कर पिलाने से उपद्रवो का उपशम हो जाता है। कभी कभी नशे के कारण जिह्वा पीली, श्वास-प्रश्वास मे कठिनता, अत्यधिक प्रलाप, खुजली आदि उपद्रव हो जाते हैं। ऐसे में सोया के क्वाथ मे नमक व जैतून का तेल मिला, उसमे काली मिर्च, सौंफ या अदरक का चूर्ण मिलाकर पिलावें, तत्काल नशा उतर जावेगा।

*

मादक द्रव्यों के दुर्व्यसनों को छुड़वाने के अनुभूत प्रयोग

बीडी, सिगरेट, चिलम, तम्बाकू तथा चाय आदि दुर्व्यसनो की आदत को छुड़ाने के लिये मेरा अनुभूत प्रयोग यह है कि असली पारस पीपल के पुराने दरख्त की छाल जो स्वत. दरख्त से अलग हो जाया करती है, उसको लेकर खूब बारीक कूट पीसकर नसवार की तरह महीन कर, एक बोतल मे डालकर काग डाट करलें। इस पीपल छाल के महीन पाउडर को १ तोला लेकर ढाई तीन पाव पानी मे पकावें और आधा पाव पानी शेष रहने पर छानकर नवाया-नवाया (चाय की तरह) पी लेवें। सुबह-शाम नियमित रूप से १५ रोज तक यह प्रयोग करने से बीडी, सिगरेट, चिलम, तम्बाकू तथा चाय की आदत छूटकर इन मादक द्रव्यो के प्रति घृणा (नफरत) सी पैदा हो जाती है और बाद में इन दुर्व्यसनो को पुन: पकडने की कोशिश नहीं करनी चाहिये। यह सफल अनुभूत प्रयोग है। जिनको आवश्यकता हो नि:संकोच काम में लें।

अफीम खाने की आदत को छुड़ा देने वाला अनुभूत प्रयोग

(अ) धतूरे का पचाग (पत्ते, फल, फूल, डाल और जड) ५ सेर लेकर जौ कुट करके १० गुने पानी में भिगो देवें।

(ब) आधा सेर काली चिकनी दक्षिणी सुपारी भी बारीक पीस कर १० गुना पानी मे भिगो देवें।

दोनो ही को ४८ घन्टा तक पानी मे भीगने दो। बाद मे अलग-अलग आग पर चढ़ावें। चौथाई पानी शेष रहने पर मल-छान लेवें। फिर इन दोनो काढ़ो को इकट्ठा कर एक कढाई मे डाल दो। नीचे मन्दाग्नि जलाकर गाढ़ा करें। गाढ़ा होने पर अफीम के रग का गाढा सा द्रव्य तैयार हो जायगा। जिसे मामूली सा नरम रहने पर आग पर से उतार लें। फिर खुरचकर १-१ या २-२ रत्ती की गोलिया बना डालें जो अफीम से मिलती-जुलती गोलिया बनेगी, मगर स्वाद में फर्क जरूर रहेगा। इनको एक साफ ढक्कनदार शीशी मे रखें। यदि कोई ४ रत्ती अफीम खाता हो तो १½-२ रत्ती गोली खाले मगर रोज थोडी-थोडी मात्रा कम करते जाय। इन गोलियो से अफीम जैसा ही नशा होगा और धीरे-धीरे कम करते हुए, फिर नशा की आदत बिल्कुल ही छूट जायगी और फिर कभी अफीम की लत्त नहीं लगाने का पूरा ख्याल रखें।

यह एक सुपरीक्षित योग है। मगर इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि इन गोलियों के प्रयोग काल में पर्याप्त मात्रा मे असली देशी गाय का घृत गौ दुग्ध देवें। अन्यथा सिर मे विकार भ्रम आदि पैदा होकर बडी हानि हो सकती है।

शराब पीने की आदत को छुड़ाने के लिए प्रयोग

असली नई ताजी देशी अजवायन ५ किलो लेकर जौकुट करके १६ गुना पानी मे पूरे ४८ घन्टा तक भीगने देवें। बाद में आग पर चढावें और मन्दाग्नि से पकावें। चौथाई पानी शेष रहने पर आग पर से नीचे उतार लें और ठण्डा होने दें। दूसरे रोज मसल छानकर इस काढ़ा की बोतल भरकर काग डाट करदें। शराब पीने की जब-जब इच्छा पैदा हो शराब के बजाय २ से ५ तोला तक यह दवाई शराब की तरह आहिस्ता-आहिस्ता पीवें। यह प्रयोग नियमित रूप से एक महीना तक बराबर करते रहने से धीरे-धीरे शराब पीने की आदत कम होती जायगी। सुपरीक्षित योग है।

—वैद्य श्री हरिसिंह राठौड
ग्राम—सुरियास, पोस्ट—रिया (जीठीया)
वाया मेडता (नागौर) राजस्थान
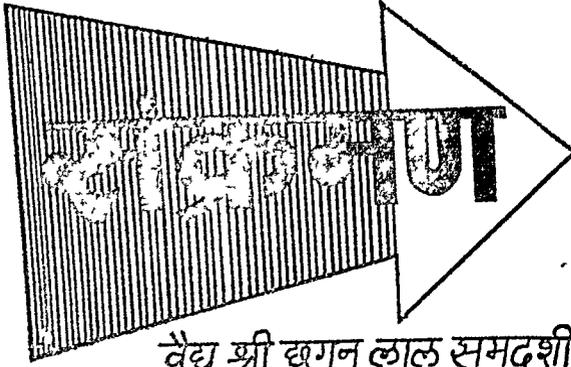
जीवाणु (Microbes, micro-organisms)

व्याख्या, वर्ग, प्रकार—ससार की सजीव या चेतन सृष्टि मे जो जीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनको देखने के लिये अणुवीक्षणयन्त्र या सूक्ष्मदर्शक यत्र की आवश्यकता होती है। वे अणुवीक्ष्यजीव या जीवाणु कहलाते हैं। ये अनन्त और सर्वव्यापक होते है। कुछ तो हमेशा पालतू प्राणियो के समान मनुष्यो की त्वचा पर, बालो पर, पचन सस्थान मे, मूत्र-प्रजनन-सस्थान मे, कर्णनासादि अगो मे उपस्थित रहते है। ये सहवासी या सहभोजी (Commensals) कहलाते हैं। अधिक सख्य जीवाणु सृष्टिचक्र मे बहुत ही लाभदायक होते है। इनके द्वारा दूध से दही, पनीर, गन्ने या द्राक्षा रस से मद्य, मैले से खाद, मृत शरीरो से मिट्टी, वातावरण से भूयाति को ग्रहण करके उससे पौधो के लिए खाद इत्यादि अनन्त आवश्यक क्रियायें हुआ करती हैं। जो जीवाणु केवल मृत शरीरो पर या सड़े गले सेंद्रिय द्रव्यो पर अपना निर्वाह करते हैं और जीवधारियो से प्राय. दूर रहते हैं वे पूत्युपजीवी (Saprophytes) कहलाते हैं। जो भूयाति से खाद बनाते है वे भूयीय-तृणाणु (Nitro bacter) कहलाते हैं। कुछ जीवाणु प्राणियो में रोग भी उत्पन्न करते है। ये विकारी जीवाणु (Pathogenic) या रोगाणु कहलाते है। ये अपना निर्वाह अन्य जीवधारियो के ऊपर करते हैं, इस लिए परोपजीवी (Parasites) भी कहलाते हैं। कुछ वास्तविक विकारी जीवाणु कभी-कभी सहवासी स्वरूप के याने शरीर में रहते हुए भी रोग न उत्पन्न करने वाले होते हैं। विकारी जीवाणुओं की यह स्थिति वाहको (Carriers) मे दिखाई देती है। सब विकारी जीवाणु सब जाति के प्राणियो मे रोग उत्पन्न नही कर सकते। कुछ मनुष्येतर प्राणियों मे, कुछ केवल मनुष्यो में और कुछ दोनो मे रोग उत्पन्न कर सकते है।

जीवाणुओं के मुख्यतया निम्न मोटे-मोटे भेद किये जाते हैं।

(१) तृणाणु (Bacteria)—ये वनस्पति वर्ग के अत्यन्त सूक्ष्म जीवाणु माने जाते हैं। ये केवल एककोषीय होकर आकार मे गोल, लम्बे, टेढे होते हैं। इनके शरीर में न्यष्टि नही होती। सख्यावृद्धि बडी तेजी के साथ लम्बाई या चौडाई के रुख फट जाने से होती है। कुछ गतियुक्त या चञ्चल होते हैं और कुछ प्रतिकूल परिस्थिति में क्षुल्लक (Spore) जैसे प्रतिकारक रूप धारण कर सकते हैं। आकार के अनुसार इनके निम्न भेद किये जाते हैं—
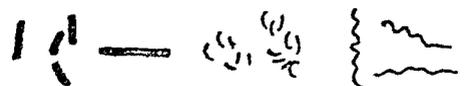
(अ) गोलाणु (Cocci)—ये सरसो के समान गोल-गोल या कुछ लबोतरे होते हैं। लबाई और चौड़ाई मे

इनका व्यास प्राय. समान होता है। मोटाई प्राय. १ णु (म्यू) के करीब होती है।

(आ) दण्डाणु (Bacilli)—ये डण्डे के समान लम्बे हैं। कुछ चौपूटे और कुछ अण्डाकार भी होते हैं। इनकी लम्बाई चौडाई से दुगुनी या उससे अधिक होती है।

(इ) चक्रकाणु (Spirillae)—ये कुछ टेढे मुडे हुए या चक्राकार होते हैं। जब एक स्थान मे वक्रता होती है तब ये वक्राणु (Vibrio) कहलाते हैं, जैसे—विसूचिका वक्राणु। जब चक्राकार अनेक वक्रतायें होती हैं तब उनको चक्रकीटाणु (Spirochaete) कहते हैं। ये सब गतियुक्त या चञ्चल होते हैं। लम्बाई बहुत अधिक होती है।

(२) कीटाणु (Protozoa)—ये प्राणि विभाग के अत्यन्त सूक्ष्म जीव माने जाते है। ये तृणाणु के समान एक कोषीय ही होते हैं, परन्तु इनमें न्यष्टि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। ये आकार मे गोल या बहुत लम्बे तथा प्राय गतियुक्त होते हैं। सख्या-वृद्धि विभजन, कोषोत्पत्ति या मैथुन से होती है। इनका निश्चित जीवन-चक्र होता है और कई कीटाणुओ मे इसके लिये दो स्वतन्त्र प्राणियो की आवश्यकता होती है। कुछ कीटाणु प्रतिकूल परिस्थिति में प्रतिकारक कोष्ट (Cysts) बनाते हैं।

(३) रिकेट्सिया (Rickettsia)—शरीररचना मे तृणाणुओ से मिलते हैं। परन्तु कृत्रिम निर्जीव वर्धनको मे सवर्धित न होने के गुण मे ये तृणाणुओ से भिन्न और विषाणुओ से मिलते जुलते होते हैं। सूक्ष्मता मे ये तृणाणुओ से सूक्ष्म और विषाणुओ से कुछ बड़े होते हैं। इनमे कुछ रिकेट्सिया इसलिए सूक्ष्मदर्शकातीत और निस्यन्दनशील और कुछ अनिस्यन्दनशील होते है। ये केवल जीवित कोशाओ मे वर्धित हो सकते हैं। इनसे अनेक प्रकार के तण्द्रिक ज्वर उत्पन्न होते हैं।

(४) सूक्ष्म दर्शकातीत (Ultra-microscopic)—उपर्युक्त तीनो प्रकार के जीवाणु सूक्ष्मदर्शक से दिखाई देते है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी जीवाणु विद्यमान हैं कि जो सूक्ष्मदर्शक से दिखाई नहीं देते। ये सूक्ष्मदर्शकातीत या अतिसूक्ष्म कहलाते हैं। ये अत्यन्त सूक्ष्म निस्यन्दको (Filters) से छनकर बाहर निकल आते हैं, इसलिए निस्यन्दनशील (Filterable) कहलाते हैं। अदृश्य होने के कारण इनके स्वरूपादि का ज्ञान असम्भव है। कार्य की दृष्टि से इस वर्ग के जीवाणु विषाणु (Virus) कहलाते है।

परिमाण (Size)—जीवाणुओ के अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण उनके शरीर मापन के लिये जो मानदण्ड नियत किया गया है वह अत्यन्त सूक्ष्म है और उसे णु (मैक्रोन सक्षेप-म्यू) कहते है। इसकी लम्बाई एक मिलीमीटर का $\frac{१}{१०००}$ भाग या एक इन्च का $\frac{१}{२५०००}$ भाग होती है। इसका अर्थ यह है कि जो जीवाणु एक णु लम्बा है उसके २५००० जीवाणु एक सीध मे पास-पास रक्खे जाय तो वे लम्बाई मे एक इन्च होगे। परिमाण की दृष्टि से सूक्ष्मदर्शकातीतो के सम्बन्ध मे कहना बेकार है। तृणाणु साधारणतया कीटाणुओ की अपेक्षा परिमाण मे छोटे होते है।

वासस्थान—तृणाणु सर्वव्यापी होने के कारण वायु, जल, भूमि तथा प्राणियो के शरीर पर कही अधिक कही कम, कभी अधिक कभी कम सख्या मे मिलते है। इनमे विकारी और अविकारी दोनो प्रकार के उपस्थित रहते हैं।

उपसर्ग या संक्रमण

व्याख्या—उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होगा कि विकारी जीवाणु हवा मे, पानी मे, भूमि मे, मुख मे, नासा में, गले मे, त्वचा पर उपस्थित रहने के कारण बराबर खाद्यपेयो तथा साँस द्वारा शरीर मे प्रवेश करते रहते है। परन्तु केवल प्रवेश या उपस्थिति उपसर्ग के लिए पर्याप्त नही होती। उपसर्ग उत्पन्न होने में जीवाणुओ की सख्या, तीव्रता, प्रवेश मार्ग, निवास स्थान, आक्रान्त मनुष्य की आयु, प्रकृति, शारीरिक और मानसिक स्थिति इत्यादि कई बातो का सम्बन्ध आता है। उपसर्गकारी जीवाणुओ की उपस्थिति की उस अवस्था को उपसर्ग कह सकते हैं जब ये शरीर मे पनपकर सख्यावृद्धि और विषोत्पत्ति करके शरीर पर अपना प्रभाव डालने लगते है और उसके कारण शरीर के धातुओ में प्रतिक्रिया प्रारभ होती है।

उपसर्ग के स्थान (Sources of infection)—जिन प्राणियो में उपसर्गकारी जीवाणु पनपते हैं, प्रगुणित होते है उनको उपसर्गस्थान कहते है। सब औपसर्गिक रोग

ग्रहणशील (Susceptible) मनुष्यो मे इन उपसर्गस्थानो से आये हुए उपसर्गकारी जीवाणुओ के आक्रमण से हुआ करते हैं। इन उपसर्गस्थानो को उपसर्ग के सचयाधार (Reservier) भी कहते है। भूमि, जल, खाद्यपेय, हवा, इनमे रहने वाले उपसर्गकारी जीवाणुओं से भी औपसर्गिक रोग होते है। परन्तु इनको उपसर्ग स्थान नही कहते परन्तु उपसर्ग के वाहक (Vehicle) कहते हैं। मनुष्यो को उपसर्ग पहुचाने वाले स्थान अनन्त होते हुये उनको निम्न तीन वर्गों मे बांट सकते हैं—

१. मनुष्यजन्य—गर्दनतोड बुखार, फुपफुसपाक (न्यूमोनिया), सोजाक, फिरङ्ग, उपदश, विसूचिका, अतिसार, आन्त्रिक ज्वर, इन्फ्लुएन्जा, राजयक्ष्मा, कुकुर खासी, कुष्ठ, रोहिणी, मसूरिका, रोमान्तिका, पीतज्वर, कनफेर, विषमज्वर, कालाजार इत्यादि।

२ प्राणिजन्यरोग—घोड़े से धनुर्वात, गौ से धनुर्वात, क्षय, अङ्गारक्षत, माल्टाज्वर, भेड से धनुर्वात अङ्गारक्षत, बकरी से माल्टा ज्वर, कुत्ते, सियार से जल सत्रास, बदरो से पीत ज्वर, चूहे से प्लेग, मूषिकदशज्वर; स्फीतकृमि, औपसर्गिक कामला आदि।

३ कीटकजन्यरोग—ये प्राय मनुष्योपजीवी कीड़े होते हैं जो अधिकतर मनुष्यो के रक्त पर अपना निर्वाह किया करते हैं। इनका अपना कोई रोग नही होता, परन्तु ये अन्य व्यक्ति प्राणियो या मनुष्यो से रोगाणुओ का सवहन करके उनको स्वस्थ मनुष्यो पर सक्रान्त करते हैं। पिस्सू, जूँआ, खटमल ऐसे कुछ कीटको के अन्न स्रोत मे रिकेट्सिया जाति के जीवाणु स्वाभाविक निवासी होते हैं जो उनके लिए अविकारी होते हुए मनुष्यो के लिए विकारी होते हैं। नीचे तीनो विभागो से मनुष्यो को प्राप्त होने वाले रोगो के नाम दिये जाते हैं—

उपसर्गान्तर (Gross infection)—जब एक प्रकार के उपसर्ग से पीड़ित होते हुए दूसरे प्रकार के उपसर्ग के उपसर्ग से पीडित होते है तब उपसर्गान्तर कहते हैं। घर की अपेक्षा आतुरालय मे इसको प्राप्त करने की संभावना बराबर बनी रहती है क्योकि वहा एक ही विभाग में अनेक प्रकारो के उपसर्ग से पीडित रोगी साथ-साथ रहते है और उनके उपसर्गकारी जीवाणु निम्नोक्त पद्धतियो से शरीर के बाहर निकल कर विविध सक्रमण मार्गो से एक दूसरे के पास पहुचते रहते हैं। उन उपसर्गो मे श्वसन सस्थान, पचन सस्थान और त्वचा के उपसर्ग विशेष महत्व के होते है। उपसर्गान्तर होने का भय शिशुओं और बालको मे अधिक रहता है।

प्रभाव—रोगाणुओ के उपसर्ग से भीषण स्वरूप के असख्य सक्रामक रोग उत्पन्न होते है, जो प्रतिवर्ष असंख्य प्राणियों का सहार किया करते हैं तथा असंख्य प्राणियो को सदा के लिए या अल्प काल के लिए दुर्बल बनाकर उनका जीवन सकटमय बनाते हैं। तृणाणुविषाणुजन्य रोग सख्या मे बहुत, शीघ्र फैलने वाले, भयानक और ससारव्यापी होते हैं। कीटाणुजन्य रोग सख्या मे मध्यम, चिरकालीन स्वरूप के, धीरे-धीरे फैलने वाले और प्राय. उष्ण या अनुष्णकटिबन्धव्यापी होते हैं। रिकेट्सियाजन्य रोग सख्या मे सबसे कम, प्राय एकैकश होते है।

उपसर्गस्थानो से रोगाणु निष्क्रमण मार्ग—उपसर्गकारी जीवाणु जब तक अपने उपसर्ग स्थानों में ही मर्यादित या बद रहते हैं तब तक उनसे किसी को कोई डर नहीं होता। औरों पर उनका आक्रमण होने के लिये उनका अपने स्थान से बाहर निकलना आवश्यक होता है। निकलने के मार्ग शरीर के उपसृष्ट सस्थानो या अङ्गो के अनुसार निम्न हो सकते हैं—

(१) श्वसनमार्ग—मुख और श्वसन सस्थान के विविध प्रत्यगो के उपसर्गकारी जीवाणु मुख नासा से बाहर निकलते हैं। श्वासप्रश्वास का कार्य निरन्तर जारी रहना आवश्यक होने के कारण इस मार्ग से निकलने वाले जीवाणुओ द्वारा फैलने वाले रोगो का नियन्त्रण करना बहुत कठिन कर्म होता है।

(२) आन्त्रमार्ग—इसके जीवाणु प्राय गुदा से मल के साथ निकलते हैं। वमन से यद्यपि जीवाणु निकल सकते हैं तथापि वमन द्वारा निकलने की सम्भावना बहुत कम होती है।

(३) मूत्रमार्ग—मूत्रण और प्रजनन सस्थान के जीवाणु मूत्र मार्ग से मूत्र के साथ निकलते है।

सक्रमणमार्ग—उपर्युक्त मार्गों से अपने स्थानो के बाहर निकलने पर जिन मार्गो से ये रोगाणु अन्य मनुष्यो

तक पहुचते है उनको सक्रमण मार्ग (Modes of transmission) कहते हैं। ये तीन हैं-

१. प्रत्यक्ष (Direct) सक्रमण—इस मार्ग मे मृत, व्याधित या वाहक मनुष्य या पशु के प्रत्यक्ष ससर्ग से उपसर्ग का प्रसार होता है। फिरग, सोजाक, उपदश तथा त्वचा के अनेक रोग प्रत्यक्ष सस्पर्श या ससर्ग से फैलते है। प्रत्यक्ष ससर्ग से फैलने वाले रोग सस्पर्शिक या सासर्गिक (Contagious) कहलाते है।

प्रसगाद्गात्रसस्पर्शान्नि.श्वासात् सहभोजनात् ।
सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिकरोगांश्च सक्रामन्ति नरान्नरम् ॥सुश्रुत॥

२. अप्रत्यक्ष सक्रमण (Indirect)—जब सक्रमण सक्रमित प्राणियो से उपर्युक्त स्वरूप का प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होते हुए अनुपसृष्ट व्यक्तियो पर सक्रान्त होता है तब उसको अप्रत्यक्ष सक्रमण कहते है। इसके लिए उपसर्गकारी जीवाणुओ मे शरीर के बाहर कुछ काल तक जीवित रहने की शक्ति तथा उनको एक स्थान से दूसरे स्थान मे ले जाने के लिए वाहन इन दो बातो की आवश्यकता होती है। इस वाहन को प्रसारक (Vector) कहते हैं।

ये प्रसारक सजीव और निर्जीव दोनो प्रकार के हो सकते है। दूषित जल, दूध, वायु, भूमि, खाद्य ये निर्जीव के और विविध कीड़े-मकोड़े सजीव के उदाहरण है।

कीटकों से फैलने वाले रोग—

(१) गृहमक्षिका—आन्त्रिक, विसूचिका, अतिसार तथा अन्य खाद्यपेय सवाहित रोग।

(२) मच्छर—विषमज्वर, श्लीपद, दण्डकज्वर, पीत ज्वर।

(३) पिस्सू—प्लेग, तन्द्रिकज्वर, शैशवीय कालज्वर।

(४) यूका—तन्द्रिकज्वर, परिवर्तितज्वर, खदकज्वर।

(५) कालमक्षिका (Tse-Tse)—निद्रा रोग।

(६) वालुमक्षिका—कालाजार, वालुमक्षिकाज्वर, पौर्वात्यव्रण।

(७) किलनी (Tick)—आफ्रिकाका परिवर्तितज्वर, तन्द्रिकज्वर, शैलपर्वतज्वर।

३. वाहक—जो मनुष्य अपने शरीर में विकारी जीवाणुओ को स्थान देते हुए स्वय पीडित नही होते है वे वाहक कहलाते हैं। वाहक दो प्रकार के होते हैं—जो रोग निर्मुक्त होने के पश्चात् न्यूनाधिक काल तक जीवाणुओ का वहन करते हैं वे व्याधित वाहक होते है। इनके भी सनिवृत्त वहक और कालिक वाहक करके दो विभाग होते हैं और जो स्वय रोग से कदापि पीडित न होते हुये जीवाणुओ का वहन करते है वे स्वस्थ वाहक होते है। ये वाहक खाद्यपेय पदार्थों को तथा हवा को दूषित करके रोग प्रसार मे सहायता करते हैं। एक दृष्टि से वाहक मनुष्य रुग्ण मनुष्य के समान होते हैं, परन्तु उनसे ये अधिक भयकर होते है क्योकि रुग्ण मनुष्य के रोग का ज्ञान हो जाता है और इनका ज्ञान नही होता, जिसके कारण ये बेखटके जहाँ-तहाँ मिल-जुल के रोगो को फैलाते है। यह वाहकावस्था आन्त्रिक ज्वर, विसूचिका, अतिसार, रोहिणी इन रोगो मे अधिक दिखाई देती हैं।

शरीर प्रवेश मार्ग—इस तरह वाहक या रुग्ण मनुष्य से खाद्यपेय, हवा इत्यादि के द्वारा इतस्तत. फैले हुये रोगाणु स्वस्थ मनुष्यो के शरीर मे निम्न मार्गों द्वारा प्रवेश करते है।

(१) त्वचा—

(अ) श्लेष्मल त्वचा द्वारा—फिरग, सोजाक, उपदश।

(आ) क्षत या व्रण द्वारा—विसर्ग, धनुर्वात्।

(इ) दश द्वारा—विषम ज्वर, कालाजार, प्लेग, श्लीपद, जलसत्रास, मूषिकदशज्वर, अकुश कृमि।

(२) पचन सस्थान—विसूचिका, अतिसार, आन्त्रिक ज्वर, राजयक्ष्मा, माल्टाज्वर, विविध कृमि, कालाजार।

(३) श्वसन सस्थान—राजयक्ष्मा, फुफ्फुस प्लेग, न्युमोनिया, इन्फ्लुएन्जा, रोहिणी, मस्तिष्कसुषुम्ना-ज्वर, कुकुर खाँसी, मसूरिका, रोमान्तिका इत्यादि।

उपसर्ग का उचित मार्ग—उपसर्ग उत्पन्न करने के लिये प्रत्येक विकारी जीवाणु का विशिष्ट मार्ग और स्थान होता है। अन्य मार्ग से अन्य स्थान में पहुँचने पर ये रोग उत्पन्न करने मे प्राय. असमर्थ होते है। त्वचा मे छोटे छोटे क्षत या व्रण होने से त्वचा द्वारा होने वाले रोग होने मे आसानी होती है। पचन सस्थान या श्वसन सस्थान मे खराबी होने से उनके रोग होने मे आसानी

होती है। श्वसन सस्थान के बिन्दुक्षेपो तथा हवा से और पचन सस्थान के खाद्यपेयो से उत्पन्न होते हैं। यह आवश्यक नही है कि पचन या श्वसन सस्थान से प्रविष्ट हुये जीवाणु उन्ही मे विकार उत्पन्न करें। कभी-कभी ये दूसरे सस्थानो मे भी विकृति उत्पन्न करते हैं। जैसे, राजयक्ष्मा और मस्तिष्क सुषुम्नाज्वर।

सचयकाल (Incubation period)—अनुकूल परिस्थिति होने पर भी जीवाणु शरीर मे प्रविष्ट होते ही रोग के लक्षण प्रकट नही होते। इसके लिए कुछ काल आवश्यक होता है। जीवाणुओ के शरीर प्रवेश दिन से रोग के लक्षण प्रकट होने के दिन तक का जो काल होता है वह सचयकाल कहलाता है। इस काल मे जीवाणु तथा उनका विष दिन-प्रतिदिन सचित होते रहते है और जब पर्याप्त मात्रा मे सचित होते है तब रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। प्रत्येक रोग का सचय काल न्यूनाधिक अन्तर से नियत रहता है।

सक्रमण काल (Infective period)—रोग निवृत्त होने के पश्चात् भी कुछ काल तक रोगियो के शरीर से उस रोग के जीवाणु मल-मूत्रादि के साथ निकलते रहते है। जीवाणु निष्कलन की यह अवधि सक्रमणकाल कहलाती है। इस अवधि मे रोगनिवृत्त मनुष्य को दूसरे स्वस्थ मनुष्यो के साथ बहुत सम्बन्ध रखना ठीक नही है, जहाँ तक हो सके पृथक रहना ही उचित है। नीचे मुख्य सक्रामक रोगो के सञ्चयकाल और उपसर्ग काल दिये जाते है—

रोग का नाम	सचयकाल	सक्रमणकाल
मसूरिका	१२ दिन	६ सप्ताह
स्वड् मसूरिका	१०-१२ ,,	३ ,,
रोमान्तिका	८-१५ ,,	४ ,,
इन्फ्लुएन्जा	१-५ ,,	२ ,,
रोहिणी	१-८ ,,	६ ,,
कर्ण फेर	१२-२२ ,,	३ ,,
कुकुर कास	३-२१ ,,	८ ,,
आन्त्रिकज्वर	५-२० ,,	६ ,,
विसूचिका	कुछ घण्टो से ५ ,,	२ ,,
प्लेग	३-१० ,,	३ ,,
दण्डकज्वर	३-६ ,,	३ ,,

संक्रमण नियन्त्रण (Control of Infection)

जब कोई व्यक्ति किसी उपसर्ग से सक्रमित हो जाता है तब वह उपसर्ग उसी में मर्यादित करके अन्य स्वस्थ मनुष्यो पर उसका सक्रमण न होने देना तथा यदि हो सके तो उसका निर्मूलन करना नियन्त्रण का प्रधान उद्देश्य है। इसके लिये निम्न पद्धतियो का अवलम्बन करना चाहिये—

(१) अधिसूचना (Notification)

सक्रामक रोग से अगर कोई व्यक्ति पीडित हो जाय तो उसकी सूचना स्वास्थ्य विभाग के स्थानिक अधिकारियो को देना अधिसूचना का अर्थ है। रोग प्रसार रोकने का यह प्रारम्भिक मुख उपाय है। उससे कई फायदे होते है—रोग प्रारम्भ का स्थान मालूम होकर उसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध मे जाँच करने मे सुविधा होती है। रोग पीडित व्यक्ति को अलग किया जा सकता है, तथा उसके परिवार के लिये, आसपास के स्वस्थ मनुष्यो के लिये टीका इत्यादि का प्रबन्ध किया जा सकता है। खाद्य-पेयो-द्वारा फैलने वाला रोग हो तो शहर के पानी की, दूध की तथा खाद्यपेयो की जाँच की जा सकती है। पाठशाला, कालेज, नाटकगृह या चलचित्रगृह इत्यादि बन्द किए जा सकते हैं तथा शहर में उस विशिष्ट रोग के प्रतिबन्धन सम्बन्ध मे प्रथम उपाय के द्वारा ज्ञान फैलाया जा सकता है। सूचना देने का काम डाक्टरो या वैद्यो का है तथापि शिक्षित जनता भी इसमे सहायता कर सकती है।

(२) प्रथक्की करण (Isolation)

इसमें सक्रामक रोग पीडित मनुष्य अन्य स्वस्थ मनुष्यो से प्रथक किया जाता है, जिससे रोगी का उपसर्ग औरो को न पहुच सके। प्रथकीकरण निम्न दो रीति से किया जाता है—

१. स्वगृहान्तर्गत प्रथक्कीकरण (Private isolation)—इसमे रोगी इतर स्वस्थ मनुष्यो से अपने घर मे एक स्वतन्त्रस्थान मे रक्खा जाता है। जिस घर मे अनेक कमरे और अनेक खण्ड होते हैं वहा पर रोगी को अलग रखने का प्रबन्ध निम्न प्रकार से कर सकते हैं—

(१) रोगी का स्थान मकान के सबसे ऊँचे मजिल पर या मकान से पृथक और दो कमरे का हो। (२) वहाँ से सब अनावश्यक वस्तुयें हटायी जाय। (३) कमरे मे

हवा और प्रकाश का सुप्रबन्ध हो। (४) कमरे के दरवाजो और खिडकियों पर ५% प्रागविक अम्ल के घोल में भिगोये हुये पर्दे टाँग दिये जायें (५) परिचारको के सिवा कमरे मे और कोई न जावे। परिचर्या के समय स्वतन्त्र कपड़े पहने जायें और काम समाप्त होने पर हाथो को उपसर्ग नाशक घोल से साफ धोकर कपड़े बदल दिये जायें (६) रोगी के कमरे से कोई वस्त्र या पात्र बिना विशोधन किये घर मे न ले लिया जाय। (७) रोगी के मल, मूत्र, थूक इत्यादि के लिए स्वतन्त्र ढक्कन वाले पात्र तथा उसके भीतर ५% प्रागविक अम्ल का घोल रखकर उसको बाहर ले जाकर जमीन मे गाढ दिया जाय या जला दिया जाय। (८) परिचारक के सिवा अन्य मनुष्य रोगी के कमरे मे न जाकर खिडकियों से ही वातचीत करें। (९) मक्खियां, मच्छर इत्यादि को दूर रखने का या नाश करने का प्रबन्ध हो। (१०) उपसर्ग काल समाप्त होने पर रोगी को साबुन और गरम पानी से साफ नहलाकर और स्वच्छ वस्त्र पहनाकर फिर दूसरे मनुष्यो के साथ मिलने-जुलने की आज्ञा देनी चाहिए। इन नियमो का घर मे पूर्णतया पालन करना बहुत कठिन है, तथापि 'अकरणान्मन्दकरण श्रेय.' इस न्याय से इन नियमो का आंशिक पालन भी रोग प्रतिबन्धन की दृष्टि से लाभदायक होता है।

(२) रुग्णालयान्तर्गत प्रथक्कीकरण (Hospital isolation)–इसमें औपसर्गिक रोगो की स्वतन्त्र चिकित्सा करने वाले चिकित्सालयों में रोगी रखा जाता है। रोगी को अलग रखने की यह रीति प्रथम रीति की अपेक्षा अधिक कार्यक्षम होती है। क्योकि यहा पर उपसर्गनाशन का तथा चिकित्सा का उचित प्रबन्ध तज्ज्ञो के द्वारा किया जाता है। इस प्रकार के चिकित्सालय प्रत्येक नगर मे होने चाहिए। ये औपसर्गिक या प्रथक्कीकरण रुग्णालय कहलाते हैं।

रुग्णवाहन (Abulances) –रोगियो को चिकित्सालय में ले जाने के लिये स्वतन्त्र वाहन रखना आवश्यक है। किराये के वाहनो का उपयोग करना हानिकर है, क्योकि उनका विशोधन न होने से वे रोग प्रसार में सहायता करते हैं। इसके लिये डोली, पालकी, म्याना, रबड पहिये की गाड़ी या मोटर प्रयुक्त कर सकते है। इनमे मोटर सर्वोत्तम है। ये वाहन आरक्षियो के थानो पर या मुख्य-मुख्य सार्वजनिक स्थानो पर रखने चाहिये और रोगी को ले जाने के बाद प्रत्येक समय उनका विशोधन करना चाहिए।

निरोधन (Quarantine)

इसमे दूषित स्थान के स्वस्थ लोगो का निरोधन किया जाता है जिससे वे अन्य स्थान मे नही जा सकते। प्राचीनकाल मे औपसर्गिक रोगो के प्रसार का ठीक ज्ञान न होने से सब लोगो के लिये ४० दिनो का निरोधन किया जाता था। इसलिए इसको चालीसा (Quarantain-forty) नाम भी दिया गया।

निरोधन के दोष—इसमे यात्रियो को बहुत कठिनाइया सहन करनी पडती है, व्यपार मे बाधा उत्पन्न होती है, निरोधन के डर के मारे रोग छिपाने की कोशिश होती है और निरोधन काल में स्वस्थ और उपसृष्ट मनुष्य एक स्थान में रक्खे जाने के कारण स्वस्थो मे रोग फैलने की सम्भावना होती है।

(३) विसंक्रमण (Disinfection)

औपसर्गिक रोगो के रोगाणुओ का नाश करने को उपसर्गनाशन या रोगाणुनाशन कहते हैं। जो द्रव्य रोगाणुओं का या उपसर्गकारी विष का नाश करते है वे उपसर्गनाशक (Disinfectants), रोगाणुनाशक (Germicides) कहलाते हैं। कुछ द्रव्य ऐसे होते हैं जो अपनी उपस्थिति मे जीवाणुओ को पनपने या बढने नही देते। ये दोषहर(Antiseptic) कहलाते है। सब उपसर्गनाशक द्रव्य अल्प मात्रा मे दोषहरण का काम करते हे परन्तु दोषहर उपसर्गनाशक का काम नही कर सकते। जो द्रव्य सडी गली वस्तुओ की दुर्गन्ध दूर करते हैं वे दुर्गन्धहर (Deodorants or Deodorisers) कहलाते हैं। इनमे कुछ सडी गली वस्तुओ को जारित करके दुर्गन्धहरण करते है और कुछ सडाव उत्पन्न करने वाले जीवाणुओ को नष्ट न करके केवल दुर्गन्ध को अपनी उग्रगन्ध से दबाते हैं।
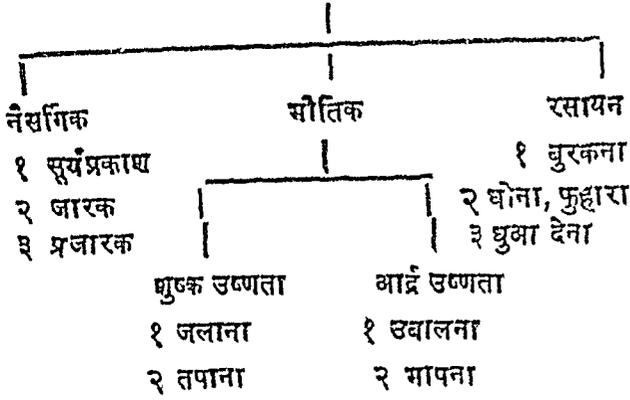
नैसर्गिक उपसर्गनाशन—सूर्यकिरण और शुद्ध हवा ये नैसर्गिक रोगाणु नाशक हैं। इनके द्वारा जीवाणु की आर्द्रता नष्ट होती है जिससे उनकी वृद्धि बन्द होकर रोगोत्पादक शक्ति घट जाती है। इसके सिवा सूर्य की नीललोहितातीत किरणो का तथा हवा के प्रजारक का जीवाणुओं पर घातक परिणाम होता है।

भौतिक (Physical)—भौतिक का रूप उष्णता है जो शुष्क (Dry) और आर्द्र (Moist) इन दो प्रकारो में प्रयुक्त होती है। शुष्क मे जलाना, गरम हवा से तपाना और आर्द्र मे उबालना और भाप से ये साधन प्रयुक्त होते हैं—

(अ) **ज्वलन**—जीवाणुनाशन के लिए यह उत्तम विधि है। मल-मूत्रादि से दूषित छोटे-छोटे कपड़े, फटे कम्बल, तकिया, कागज, लकडी के टुकड़े तथा जिसमें प्लेग जैसे भयकर रोग से मृत्यु हुई है ऐसी घास फूस की झोपडिया इनका नाश करने के लिए इसका उपयोग करना उचित है। थूक मल इनका नाश भी इनके साथ घास-फूस, लकडी का बुरादा, मिट्टी के तेल के साथ मिला कर करना उचित है।

(ब) **गरम हवा**—विशोधन के लिए वस्तुयें बद कमरे (Chamber) में रखकर गरम की जाती हैं और २ घण्टे तक ताप १००° श० रखा जाता है।

(स) **उबालना**—इससे बीस मिनट में दूषित चीजें निर्जीवाणुक हो जाती हैं। पानी मे २% कपडे का विक्षार मिलाने से उसकी रोगाणुनाशक शक्ति बढ जाती है। यह विधि रोगी के तौलिया, कम्बल, चादर, रूमाल इत्यादि वस्त्र तथा खाने-पीने के बर्तन साफ करने के लिए बहुत उत्तम है। फर्श की सफाई के लिए भी उबलते पानी का उपयोग कर सकते हैं।

(द) **जलवाष्प**—जीवाणुनाशन के लिए जलवाष्प साधन उत्तम है। जब वाष्प ठण्डी वस्तुओ के सम्पर्क में आती है तब वह फिर से शीघ्र जल में परिवर्तित होती है और उस समय वह अपनी गुप्त उष्णता (Latent heat) को बाहर छोड़ती है। इस तरह जलवाष्प वस्तुओं के भीतर प्रवेश करती हुई उनको गरम करती जाती है। तथा अधिक तेजी से जीवाणुनाशन का काम करती है। भाप २१२° फ़ै० ताप पर ५ मिनट में सब प्रकार के जीवाणु तथा उनके क्षुल्लक (Spore) नष्ट कर देती है जिसके लिये उष्ण हवा को २५०° फ़ै० ताप ४ घण्टे तक आवश्यक होता है। जलवाष्प द्वारा विशोधन इसी तत्व पर निर्भर होता है। इससे वस्तुओं की खराबी नही होती। उष्ण हवा की अपेक्षा भाप वस्तुओ के भीतर अधिक तेजी से घुसती है।

विसक्रमण का स्थान (Disinfecting station)—यह स्थान दो कमरो का होता है, एक दूषित वस्तुओ के लिए और एक विशोधित वस्तुओ के लिए। दोनो कमरो के लिए प्रवेश स्थान प्रथक होते हैं और दोनों के बीच में दीवाल होती है। इस दीवाल मे यन्त्र रक्खा जाता है। कमरे अप्रवेश्य पदार्थों के होते हैं और समय समय पर वे रोगाणुनाशक घोल से धोये जाते हैं। प्रत्येक कमरे मे काम करने वाले मनुष्य स्वतन्त्र होते हैं। एक कमरे के द्वारा यन्त्र में दूषित वस्तुओ का प्रवेश होता है और उनका विशोधन होने के पश्चात् दूसरे कमरे के द्वारा वे वस्तुएँ बाहर निकाली जाती है। दोनो कमरे आपस मे केवल यन्त्र के द्वारा मिले हुए रहने के कारण विशोधित वस्तुओ का सम्बन्ध दूषित वस्तुओ के साथ नही हो सकता।

रासायनिक रोगाणुनाशन—इसमे विविध रासायनिक द्रव्यो की क्रिया से जल, मलमूत्र, मोरी-परनाले, मकान इत्यादि मे होने वाले रोगाणुओ का नाश किया जाता है। इनका क्षेत्र आजकल बहुत बढ गया है। ये द्रव्य चूर्ण, घोल या भाप के रूप मे प्रयुक्त किए जाते हैं।

कार्य पद्धति—रासायनिक पदार्थ जीवाणओ के कायाणुरस (Cytoplasm) को जारित करके, गाढा बनाके, उसके जलाम को शोषित करके तथा उसके ऊपर आवरण बनाके (अधिचूषण Absorption) उनका नाश करते हैं।

आदर्श रोगाणुनाशक—आदर्श रोगाणुनाशक मे निम्न गुण होने चाहिए—(१) उसमे वस्तुओ के भीतर प्रवेश करके शीघ्रता से जीवाणुनाशन की शक्ति होनी चाहिए। (२) मलमूत्रादि सेन्द्रिय पदार्थों के सामने उसकी जीवाणुनाशन की शक्ति कम न होनी चाहिए। (३) जीवाणुओं को छोड़ कर उसकी क्रिया मनुष्यो की त्वचा, कपड़े, वर्तन इत्यादि पर न होनी चाहिए। (४) मनुष्यो के लिए वह विषैला न होना चाहिए। (५) पानी में वह खुब मजे मे मिलने वाला होना चाहिए। (६) चरबी को घोलने की शक्ति उसमे होनी चाहिए। (७) बहुत सस्ता भी होना चाहिए। उक्त गुण विशिष्ट रासायनिक पदार्थ आज उपलब्ध नही है, इसलिए उपलब्ध पदार्थों का उपयोग उनके दोषो को यथाशक्ति हटाकर सावधानी से किया जाता है।

(१) जीवचूर्णक (Quick lime)—यह बहुत उपयोगी और अच्छा उपसर्गनाशक है जो ३% घोल मे आन्त्रिक दण्डाणुओ को कुछ घण्टो मे नष्ट कर देता है। इसका २०% घोल मलस्थित सब रोगाणुओ को १ घण्टे मे नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त इसकी विशेषता यह है कि यह बहुत सस्ता और देहातो में भी मिलने वाला पदार्थ है। इसका उपयोग पानी, मलमूत्र और मकान की सफाई के लिए किया जाता है। यह पदार्थ ताजा होना चाहिए, अन्यथा हवा से आर्द्रता और प्रा० द्विजारेय को शोषण करके खडिया (Carbonate) मे परिवर्तित होजाता है। रोगाणुनाशन के लिए इसका दुधिया घोल (Milk of lime) निम्न प्रकार से बनाकर प्रयोग में लाया जाता है—१ भाग चूना, २ भाग पानी के साथ मिलाकर प्रथम चूने का चूर्ण बनाया जाता है, फिर उसका एक भाग ८ भाग पानी के साथ अच्छी तरह मिलाकर घोल बनाया जाता है। मल स्थित रोगाणुओ का नाश करने के लिए उसके साथ समप्रमाण मे चूने का दुधिया घोल सफाई के साथ भली-भाँति मिलाकर दो घण्टे तक उसको वैसे ही रखना चाहिए। पश्चात् जमीन में गाड़ सकते हैं या परनाले में छोड सकते हैं।

(२) रसकपूर (Mercury perchloride)—यह अत्यन्त तीव्र रोगाणुनाशक पदार्थ है, जो एक हजार भाग मे एक भाग की शक्ति में ६० कलाओ मे जीवाणुनाशन का और ५०० भाग में १ भाग की शक्ति मे क्षुल्लकनाशन का काम करता है। इसमे दोष ये है—शुक्लिय (अल्ब्यूमिन) पदार्थों के साथ सम्बन्ध होने पर इसकी शक्ति घट जाती है। धातुओ के बर्तनों को यह खराब करता है या खा जाता है, रोगाणुनाशक तथा इसका घोल पानी के समान निर्गन्ध और निर्मल होने के कारण भूल से इसका सेवन होकर मृत्यु होने का डर रहता है। इसके साथ अम्ल या लवण मिलाने से प्रथम दोष तथा कुछ रग मिलाने से तीसरा दोष दूर हो जाता है। अत जीवाणुनाशन के लिए इसका घोल निम्न प्रकार से बनाया जाता है—सवा तोला रसकपूर, ढाई तोला उदनीरिक (हाइड्रोक्लोरिक) अम्ल, ढाई रत्ती विनीली नील (अनीलिन ब्ल्यू) और १५ सेर पानी।

(३) पारद जाम्बेय (Mercury iodide)—रसकपूर से यह कम विषैला है तथा उसके समान शुक्लिय द्रव्यो से निस्सादित नही होता। यह पानी में अविलेय होने के कारण इसका विलयन बनाने के लिए दहातु जम्बेय का उपयोग करना पडता है। इसका घोल १००० : १ की शक्ति में बनाया जाता है और अधिकतर शस्त्र चिकित्सा में विसक्रमण के लिए प्रयुक्त होता है।

(४) अंगाराल जनित उपसर्ग नाशक (Coal-tar disinfectants)—ये उदागार (Hydrocarbons), तेल, दर्शव (Phenols) और उनकी श्रेणी के अन्य पदार्थ साबुन, राल, शुक्ल्याभ (Albuminoid) पदार्थ और पानी के सयोग होते हैं। इनमें उपसर्गनाशन का काम दर्शव, क्रत्रिपव (Cresols) तथा उनकी श्रेणी के रसायन करते हैं। और साबुन तथा राल उनका अच्छा प्रनिलम्ब (Emulsion) बनाने के लिए मिलाये जाते हैं। ये सफेद और भूरे दो रंग के होते हैं। पानी के साथ मिलाने पर इनका दुधिया घोल बन जाता है। प्रागविक अम्ल से ये कम विषैले, अधिक सस्ते और १०–१५ गुना अधिक उपसर्गनाशक होते है। इनमे निम्न प्रधान हैं—

(अ) प्रांगविक अम्ल या दर्शव (Carbolic Acid or Phenol)—अगाराल के तिर्यक्पातन से प्राप्त होता है। सेन्द्रिय द्रव्यों से यह निष्क्रिय नहीं होता, परन्तु यह विषैला और दाहक है। इसलिए इससे हाथ खराब हो जाते हैं। यह सस्ता है और धातुओं पर इसका परिणाम नहीं होता। इसका २% घोल सामान्य दण्डाणुओं को कुछ कलाओं से कुछ घण्टों में नष्ट कर देता है, परन्तु क्षुल्लकोद्वह (Spore bearing) दण्डाणुओं के लिए यह व्यर्थ हो जाता है। फर्श, छत और दीवाल के उपसर्ग नाशन के लिए यह उत्तम द्रव्य है। परन्तु हाथ जल जाने के कारण इसका उपयोग फुहारे (Spray) में या रस्सी में बँधे हुए कपड़े से करना चाहिए। उपसर्गनाशन के लिए उसका उपयोग ५% में और मलमूत्र, थूक इत्यादि के नाशन के लिए १०% में उपयोग किया जाता है।

(आ) फिनाइल—दर्शव से यह द्रव्य अधिक सस्ता और दुगुना उपसर्ग नाशक है।

(इ) इझाल (Izal)—उच्च दर्शवों का यह इमल्शन है। दर्शवों से यह आठगुना अधिक उपसर्ग नाशक है। आन्त्रस्थ रोगाणु नाशन के लिए यह बहुत प्रशस्त द्रव्य है। ५०० : १ का इसका घोल १५ कलाओं में आन्त्रिक रोगी के मल-मूत्र का उपसर्गनाशन करता है। प्रत्यक्ष मल मूत्र उपसर्गनाशन के लिए इसका ५% घोल प्रयुक्त होता है।

(ई) सिल्लीन (Cyllin)—दर्शव से यह १७ गुना अधिक उपसर्ग नाशक है। यह बहुत सस्ता और कार्यक्षम द्रव्य है जो मोरी परनाले की सफाई के लिए १५० : १ भाग में प्रयुक्त होता है।

(उ) हैकोल (Hycol)—यह दर्शव से २० गुना अधिक उपसर्ग नाशक है। इसमें अच्छी गन्ध होती है। पानी में मिलाने पर इसका भूरे रंग का घोल बनता है।

(ऊ) लायसोल (Lysol)—दहातु, साबुन और पानी में बनाया हुआ यह ऋविपद (Cresol) का इमल्शन है। उपसर्गनाशन के लिए इसका उपयोग ४% घोल के रूप में किया जाता है।

(५) साबुन (Soap)—विशोधन की दृष्टि से साबुन बहुत लोकप्रिय वस्तु है। परन्तु उसमें रोगाणुनाशन का गुण न्यून होता है। इसका मुख्य गुण मल हटाने का है अर्थात् यह मलापनयन (Detergent) है। यदि गरम जल के साथ इसका उपयोग किया जाय तो मलापनयन का कार्य उत्तम होता है जिससे उपसर्गनाशन में सहायता होती है। यदि गरम पानी में बहुत अधिक झाग तैयार करके तीन मिनट तक हाथों को साबुन से धोया जाय तो उन पर के बहुतेरे विकारी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। यही कारण है कि साबुन उपसर्गनाशक माना जाता है।

(६) उदश्यामिक वायु (Hydrocyanic Acid)—गुन्धकिक अम्ल और पानी के मिश्रण में पोटाशुश्यामिद डाल कर यह वायु उत्पन्न किया जाता है। ५ औंस श्यामिद ७½ औंस गुन्धकिक अम्ल और दुगुने पानी के साथ मिलाने पर १००० घनफुट कमरे के लिए पर्याप्त होता है। श्यामजन नीरेय (Cynogen chloride) और जीक्लोन-बी (Zyklon-B) इसी के योग हैं। ये भी प्रयुक्त होते हैं। इसका उपयोग मुख्यतया धूपन के लिए किया जाता है। यह अत्यन्त विषैला वायु है जो कपड़ों में बसा रहता है और त्वचा द्वारा भी शरीर में प्रविष्ट हो सकता है। इसलिए अनुभविक और कर्मनियुक्त लोगों के द्वारा ही धूपन का काम करना पड़ता है। बड़े बड़े बेलनों में तरल रूप में भरा हुआ यह वात मिलता है। १००० घन फुट स्थान के लिए ५ तोला तरल पर्याप्त होता है। इसका मुख्य उपयोग जहाजों के उपसर्गनाशन के लिए तथा प्लेग में बिलों में चूहों के नाशन के लिए किया जाता है। चूहों के अतिरिक्त इस वायु से मक्खियाँ, मच्छर, खटमल इत्यादि कीड़े तथा इनके अण्डे भी मर जाते हैं। धूपन के समय स्थान ३-४ घण्टे तक पूर्णतया बन्द करना पड़ता है और धूपकों (Fumigators) को मुखावगुण्ठनों (Face-masks) का प्रयोग करना पड़ता है। कमरा या बन्द स्थान खोलने के पश्चात् उसमें प्रवेश करने से पहले वात पूर्णतया नष्ट हुआ कि नहीं इसको भी देखना पड़ता है। जीक्लोन-बी में उदश्यामिक अम्लवायु के साथ अश्रुवायु (Tear gas) भी मिलाया हुआ रहता है। इसलिए जिस स्थान में धूपन के लिए जीक्लोन का उपयोग किया गया है वहाँ पर किवाड़ खोलने के कुछ काल के पश्चात् यदि उदश्यामिक वायु अवशिष्ट रही हो तो प्रवेश करने पर

उसकी श्लेष्मकला आँखो मे अश्रुपूरण सी हो जाती है।

(७) गुल्वार्य अम्ल (Sulphurous acid)—उपसर्ग नाशन के लिए गुल्वारि या गन्धक धूएँ के रूप में (SO_2) प्रयुक्त होता है। परन्तु सूखा धूआ यह काम नही कर सकता, उसको तरी (१%) की आवश्यकता होती है। १०००घनफुट आयतन के स्थान के लिए ८००ग्राम गन्धक पर्याप्त होता है।

कीट-नाशन

जो द्रव्य कीटकों का नाश करते हैं वे कीटघ्न या कीटनाशक (Insecticide) कहलाते हैं। ये द्रव्य चूर्ण, घोल या धुंआ इन तीन रूपो में प्रयुक्त होते हैं। ये कीटको पर विषैला प्रभाव डालकर या प्राणोपरोध (Suffocation) करके उनका नाश करते है।

कीटघ्न द्रव्य—वज्रविष, गधक, उदश्यामिक अम्ल वायु, प्रस्तरैल (Petroleum), मृत्तैल (मिट्टी का तैल), संखिया के योग (जैसे प्यारिसग्रीन) पायरेथ्रम, द्वि द्वि. त्रि. (D.D.T.) तथा उसकी श्रेणी के अन्य द्रव्य इस काम के लिए प्रयुक्त होते हैं। इनमे पहले तीन द्रव्य ऊपर वर्णन किये गये हैं। अन्य द्रव्य आगे मच्छर तथा मक्खियो के नाशन में वर्णित हैं।

उपसर्गनाशन की व्यावहारिक पद्धतियाँ-इसमें कमरे, कपड़े, कुर्सी, मेज इत्यादि उपसृष्ट सामान, मलमूत्रादि त्याज्य वस्तु, स्नानगृह, पाखाना इत्यादि का विशोधन इस प्रकार से करना चाहिये, जिससे तद्‌गत रोगाणुओ का तथा रोगाणुवाहक कीटको का पूर्णतया नाश हो जाय, इसका विचार होता है।

कपड़े—इसके लिये उत्क्वथन, ज्वलन, सूर्यप्रकाश, भाप और रोगाणु नाशक घोल इन पद्धतियो का उपयोग किया जाता है। कपड़ो को कम से कम आधा घण्टा उबालना चाहिए। घोल के लिए ५% फेनाल, १०% फार्मेलिन या १% रस कपुर का प्रयोग होता है। इनके घोल में काफी देर तक वस्त्रो को रखना चाहिए। जहाँ पर वाष्पयन्त्र द्वारा विशोधन की सुविधा हो वहाँ पर सब दूषित कपड़ो को मजबूत बोरो में भर कर भेज देना चाहिये। जिन वस्त्रो पर मल मूत्र थूक इत्यादि के धब्बे होते है उनको उबालने से पूर्व गरम पानी और साबुन से मिटा देना चाहिये।

बर्तन पुस्तकें इत्यादि—खाने पीने के बर्तन पन्द्रह मिनट तक उबलते पानी में या धोने के विक्षार (Washing soda) के बहुत गरम पानी मे रखने से शुद्ध हो जाते हैं। कुर्सी, टेबुल, तथा काठ की अन्य वस्तुये साबुन के गरम पानी से, रस कपूर के या विरजन चूर्ण के १ हजार भाग पानी मे एक भाग के घोल से खूब रगड़ने पर शुद्ध हो जाती हैं। तैल चित्र फार्मेलिन के घोल से रगडकर विशुद्ध कर सकते हैं। पुस्तकें, चमड़े की चीजें एक छोटे बन्द कमरे मे ३-४ घण्टे तक फार्मेलिन के धुएँ में रखने से शुद्ध होती है। चाकू, छुरी इत्यादि वस्तुएँ १% फार्मेलिन के घोल मे दो घण्टे तक रखने से शुद्ध होती हैं। हाथ प्रथम साबुन के गरम पानी मे ब्रुश से धोकर पश्चात् लायसोल या रसकपूर के (५०० मे १) घोल से स्वच्छ होते है।

मलमूत्र थूक - अतिसार, आन्त्रिक ज्वर मे मलमूत्र का, विसूचिका मे वमन और मल का, राजयक्ष्मा, न्यूमोनिया, प्लेग, इन्फ्लुएंजा मे थूक का, रोहिणी रोमान्तिका मे नासा और गले के स्राव का नाश करना अत्यावश्यक है, क्योंकि इनमे रोगाणु होते हैं। मल का नाश चूने से, ५% इभाल से, १०% प्रांगविक अम्ल के घोल से, या १० प्रतिशत वर्त्रि (फार्मेलिन) के घोल से सम प्रमाण मे अच्छी तरह मिलाकर दो तीन घण्टे तक रखने से होता है, किंवा एक बाल्टी भर उबलता हुआ पानी उसमे छोड कर पानी ठण्डा होने तक रखने से होता है। थूक, नासास्राव, गले का स्राव इनको रद्दी कपड़ो के टुकड़ो मे एकत्र करके जलाना चाहिये। थूकदानी में हमेशा ५% प्रांगविक अम्ल का घोल रखना अच्छा होता है।

मकान और कमरे—इसके लिए जलन, धावन (Washing) और धूपन ये तीन विधियाँ हैं। महामारी के दिनो मे जब स्थानान्तर के लिये घास फूस की झोपड़ियाँ बनायी जाती हैं तब उनका विशोधन ज्वलन से ही करना उचित है। पक्के मकानो का विशोधन धावन या धूपन से किया जाता है। धूपन (Fumigation) के लिये कमरे की हवा बन्द होना आवश्यक है। फार्मेलिन, गन्धक

(शेषांश पृष्ठ ३७९ पर देखें)

श्री डा० दाऊदयाल गर्ग, ए.एम बी एस, आयु० वृह
सम्पादक 'धन्वन्तरि'

विकारी जीवाणुओ का शरीर में प्रवेश होने के पश्चात् उनसे होने वाले उपसर्ग को रोकने की, उपसर्ग होने के पश्चात् तज्जन्य रोगोत्पत्ति को रोकने की या उत्पन्न रोग के साथ प्रतिकार करने की जो शक्ति प्राणियो के शरीर में होती है वह व्याधि क्षमता या रोग क्षमता (Immunity) कहलाती है। चरक के टीकाकार चक्रपाणिदत्त का कथन है—

व्याधि क्षमत्व व्याधिबलविरोधित्व, व्याध्युत्पाद प्रतिबन्धकत्वमिति।

अर्थात् व्याधि (रोग) का विरोध करे या व्याधि को उत्पन्न होने से रोके उसे व्याधि क्षमता कहते हैं।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में जन्म से मृत्यु पर्यन्त सूक्ष्म रोगाणुओ से सम्बधित होने के अनेक अवसर आते हैं परन्तु प्रत्येक मनुष्य को उन रोगाणुओ से व्याधि उत्पन्न नही होती। यथा विशूचिका के जीवाणुओ से सक्रमित एक कुएँ का जल अनेको व्यक्ति पीते हैं लेकिन विशूचिका से उनमे से कुछ ही व्यक्ति आक्रान्त होते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्यो के शरीर मे एक रोग प्रतिकारक शक्ति होती है जिसके बल पर वह रोग के जीवाणुओ से सक्रमित होने पर भी रुग्ण नही होता। यह शक्ति किसी व्यक्ति मे जीवाणुओ के बल से अल्प होती है तो उस व्यक्ति पर जीवाणुओ का प्रभाव हो जाता है तथा वह रुग्ण हो जाता है अन्यथा यह रोग प्रतिकारक शक्ति उन जीवाणुओ का नाश कर देती है।

यह व्याधि क्षमता कई प्रकार की होती है। वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—
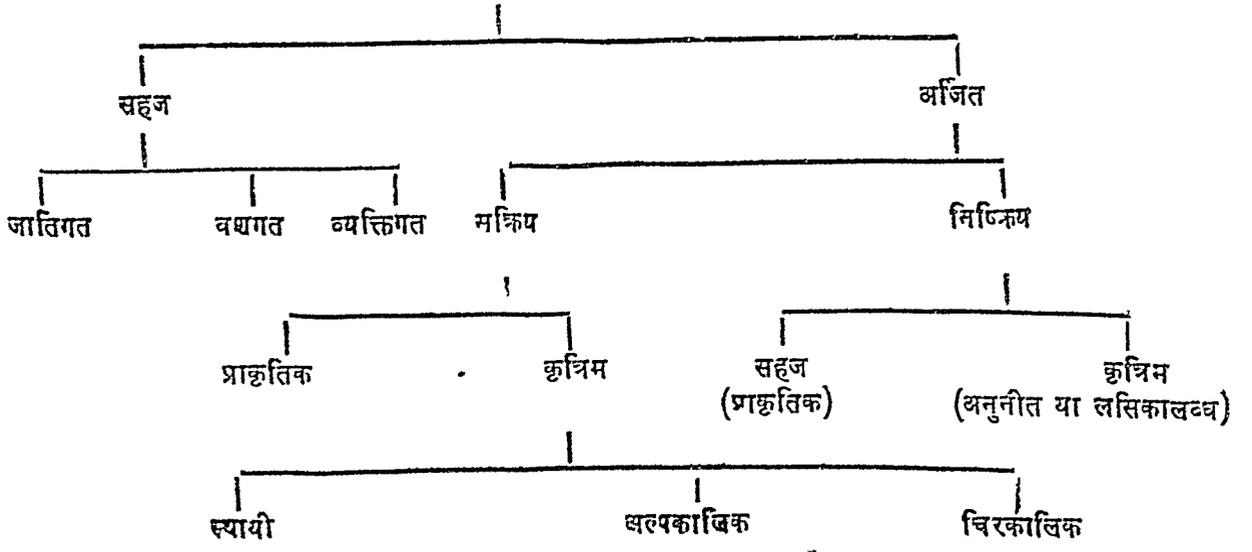
सहज व्याधि क्षमता (Natural)—समस्त प्राणियो में यह व्याधिक्षमता पाई जाती है किसी प्राणी में किसी रोग से तथा किसी प्राणी में अन्य रोग से। यथा बकरी, भेडऔर चूहो में यक्ष्मा नही पाया जाता, कुत्ते को एन्थ्रैक्स, मुर्गी को धनुर्वात तथा मनुष्यो को राइण्डरपेस्ट (जानवरो का अतिसार) नही होते। यह जातिगत सहज क्षमता है।

एक जाति के भिन्न-भिन्न वशो में जो विशिष्ट क्षमता होती है उसका नाम वंशगत सहज व्याधिक्षमता है। यथा नीग्रो जाति के मनुष्यो को पीतज्वर नही होता।

व्यक्तिगत व्याधि क्षमता—अन्य प्राणियो की अपेक्षा मनुष्यो में अधिक होती है। यह कुछ व्यक्तियो को माता पिता से, कुछ व्यक्तियो को शरीरान्तर्गत रासायनिक पदार्थों से, कुछ व्यक्तियो में उसकी विशिष्ट परिस्थितियो से तथा कुछ व्यक्तियो मे शरीर की रचना विशेष से उत्पन्न होती है। जन्म के पूर्व ही शरीर मे कुछ ऐसी वस्तुयें बन जाती हैं जो माता-पिता से गुण सूत्रो द्वारा जीन्स (Genes) में होती हुई व्यक्ति मे अवतरित होती हैं।

अर्जित व्याधि क्षमता (Acquired immunity)—रोग के एक बार आक्रमण होने से उसका पुनराक्रमण नही होता। कदाचित् होता भी है तो बहुत हल्का। इसका कारण वह व्याधि क्षमता है जो रोगाक्रमण के कारण शरीर में उत्पन्न हो गई है। इसको अर्जित भी कहते हैं। इस प्रकार प्राप्त व्याधि क्षमता की प्रबलता में भिन्नता पाई जाती है यथा चेचक के आक्रमण के फलस्वरूप उत्पन्न व्याधि क्षमता बहुत प्रबल तथा प्राय. आयु पर्यन्त रहती है रोमान्तिका, डिफ्थीरिया आदि से उत्पन्न व्याधि-क्षमता काफी समय रहती है लेकिन फिर भी चेचक के समान आयुपर्यन्त नही रहती। टीटेनस, विशूचिका, इन्फ्लुएन्जा आदि मे व्याधि क्षमता बहुत अल्प काल तक रहती है।

अर्जित व्याधि-क्षमता दो प्रकार की होती है—सक्रिय और निष्क्रिय। सक्रिय व्याधि-क्षमता में रोग का विष या जीवाणु अघातक मात्रा मे शरीर मे प्रविष्ट करके क्षमता जनक प्रतियोगी (Antibodies) मनुष्य शरीर मे उत्पन्न किये जाते है। इनको उत्पन्न करने में मनुष्य शरीर सक्रिय भाग लेता है इस कारण इसे सक्रिय अर्जित व्याधि कहते हैं। रोग के प्रबल जीवित जीवाणु या विष को शरीर में प्रविष्ट कराके व्याधि-क्षमता उत्पन्न करना अब बन्द कर दिया गया है क्योकि इससे रोग का उग्र आक्रमण होता है तथा भयकर हानि होने की सम्भावना रहती है। जीवाणुओ मे कुछ विसक्रामक वस्तु मिलाकर पोषक माध्यम मे रखने से, या अधिक ताप पर जीवाणुओ को रखने से, या जीवाणुओ को सहज जातिगत व्याधि क्षमता लब्ध जन्तुओ में प्रविष्ट कर नवीन जीवाणु बनाने से या शुष्क वायु मे सुखाने से जीवाणुओ का बल कम हो जाता है तथा इनका व्याधिक्षमता उत्पत्यर्थ प्रयोग किया जाता है।

मृत जीवाणु और विष को शरीर में प्रविष्ट करने से, या जीवाणुओ के शरीर से उत्पन्न विष के प्रवेश से, या जीवाणुओं के शरीर से निष्कासित अन्य वस्तुओं के शरीर में प्रवेश से शरीर इस प्रकार की वस्तु बनाता है जो आगन्तुक जीवाणुओ का नाश कर दें। प्रविष्ट की जाने वाली इन वस्तुओ को एण्टीजन या प्रतिजन (Antigen) कहते हैं तथा उनसे उत्पन्न होने वाली प्रति वस्तुयें एण्टीबाडी (Antibody) कहलाती हैं। शरीर मे पहलेपहल जो मात्रा प्रविष्ट की जाती है वह बहुत थोडी होती है तथा इस कारण से शरीर की प्रतिक्रिया भी हल्की होती है। इसके सहन कर लेने पर पुन' अधिक मात्रा प्रविष्ट की जाती है। इस प्रकार से क्रमश. बढाकर बहुत अधिक व्याधि-क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। इस प्रकार से व्याधि क्षमता उत्पन्न होने से काफी समय लगता है। इस कारण यह विधि केवल रोग को रोकने के काम मे लाई जाती है, चिकित्सार्थ इसका प्रयोग नही होता। किन्तु निष्क्रिय व्याधि-क्षमता से यह अधिक स्थायी होती है। व्याधि-क्षमता उत्पत्यर्थ शरीर मे जो वस्तु प्रविष्ट की जाती है उसको वैक्सीन कहते हैं।

अर्जित निष्क्रिय व्याधि क्षमता—शरीर मे रोग के जीवाणु और विषो को प्रविष्ट करने से रोगाक्रमण होता है। आक्रमण की तीव्रता जीवाणु या विष की प्रविष्ट मात्रा पर निर्भर करती है। शरीर में जीवाणु या विष की अल्प मात्रा प्रविष्ट करने से उस रोग का आक्रमण हलका-हलका होगा तथा उससे शरीर मे रोग के प्रति विष बन कर व्याधि-क्षमता उत्पन्न होगी।

कुछ दिनो बाद उसी शरीर मे उस जीवाणु या विष की अधिक मात्रा प्रविष्ट करने से वह उसको भी सहन कर लेगा तथा और अधिक मात्रा मे प्रतिविष उत्पन्न हो और अधिक व्याधि क्षमता उत्पन्न हो जायेगी। इस प्रकार उत्तरोत्तर अधिक मात्रा को प्रविष्ट करने से अत्युच्च कोटि की व्याधि क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। जब जन्तु मे इस प्रकार की अत्युच्च कोटि की व्याधिक्षमता उत्पन्न हो जाती है तो उसके शरीर से रक्त निकाल कर सीरम प्रथक कर लेते है। इस सीरम मे जन्तु के शरीर मे उत्पन्न सभी प्रतिविष होते है तथा चिकित्सार्थ इसी सीरम का प्रयोग होता है। इस सीरम से शरीर मे एण्टीबाडीज उत्पन्न नही होती अपितु उत्पन्न हुई एण्टीबाडीज शरीर मे पहुँचती हैं। इस कारण इनकी आयु थोडी ही होती है। अत यह अल्पकालिक कृत्रिम सक्रिय अर्जित व्याधि क्षमता होती है।

यह सीरम दो प्रकार का होता है। यदि जन्तु के शरीर मे जीवाणु प्रविष्ट करने के पश्चात् उसका सीरम प्राप्त किया गया है तो वह जीवाणुओ को नाश करने की शक्ति से सम्पन्न होगा किन्तु विषो पर कोई क्रिया न होगी। यदि केवल विषो को ही प्रविष्ट कर सीरम प्राप्त किया गया है तो सीरम विषनाशक शक्ति से सम्पन्न होगा। वाइरसो के लिये उनसे सीरम बनाना पडता है।

वैक्सीन और सीरम--अर्जित सक्रिय व्याधि-क्षमता उत्पन्न करने के लिए जिस वस्तु को सूचीवेध द्वारा शरीर मे प्रविष्ट किया जाता है वह वैक्सीन कहलाती है। और उससे जो प्रतिवस्तुये (एन्टीबाडीज) शरीर में बनती है वे रक्त के जिस भाग में रहती है वह सीरम कहा जाता है। अत. वैक्सीन एण्टीजन युक्त वस्तु है तथा सीरम एण्टीबाडीज युक्त वस्तु। वैक्सीन सक्रिय व्याधि-क्षमता उत्पन्न करती है जबकि सीरम द्वारा निष्क्रिय व्याधि-क्षमता को शरीर मे प्रविष्ट कर शरीर को व्याधि क्षम बनाया जाता है। वैक्सीन द्वारा रोग की रोक-थाम होती है जबकि सीरम द्वारा उसकी चिकित्सा होती है।

टोक्सोइड भी एक प्रकार की वैक्सीन है जो एण्टीजन उत्पन्न करता है। रोग के कारण शरीर में जो प्रतिविष या टाक्सिन उत्पन्न होते है उनको प्रथक करके उनका विषैलापन कम कर दिया जाता है। इससे उनको शरीर में प्रविष्ट करने से कोई हानि नही होती। सामान्य वैक्सीन की तरह से क्रमश. अधिक मात्रा देने से इनके द्वारा भी अत्युच्चकोटि की व्याधि-क्षमता उत्पन्न की जा सकती है। किन्तु यह व्याधि-क्षमता केवल जैव विषो का ही निराकरण करेगी जीवाणुओ का नही। इस कारण ऐसी व्याधियो की रोकथाम के लिये, जिनके जैव विषो के कारण ही शरीर रोगाक्रान्त होता है, टोक्सोइडो द्वारा सक्रिय व्याधि क्षमता उत्पन्न की जाती है जो चिरस्थायी होती है। एण्टी टॉक्सिन रासायनिक पदार्थ होते हैं जो रक्त में उत्पन्न हो जाते है।

जिस प्रकार जीवाणुओ और टाक्सिनो के लिये शरीर में व्याधि-क्षमता उत्पन्न की जाती है उसी प्रकार वाइरसो के लिये भी इसका उपयोग होता है।

सीरम रुग्णता--कभी कभी ऐसा व्यक्ति, जिसे किसी सीरम का सूचीवेध पहले लगाया जा चुका है मे उसी सीरम को कुछ दिन पश्चात् पुन शरीर में प्रविष्ट कर देने पर एक प्रकार की दुर्घटना देखने मे आती है जिसे सीरम रुग्णता (Serum sickness) कहते हैं। दूसरा टीका लगाने पर उसके चारो ओर की त्वचा लाल हो जाती है तथा उसमें तीव्र खुजली चलती है। इसका कारण पहले सूचीवेध से उत्पन्न प्रतिवस्तुओ का नाश होना है जिससे शरीर में कुछ रासायनिक पदार्थ बन जाते हैं।

इस सीरम-रुग्णता का दूसरा रूप अत्यन्त भयकर होता है जिसमे कभी-कभी रोगी की मृत्यु भी हो जाती है। इसे एनाफीलैक्सिस (Anaphylaxis) कहते हैं। इसी कारण किसी भी सीरम का सूचीवेध देते समय रोगी से यह ज्ञात कर लेना चाहिये कि उस सीरम का सूचीवेध उसे इससे कुछ दिन पहले ही लग तो नही गया है। शका होने पर पहले अल्प मात्रा त्वचान्तर्गत देनी चाहिये। यदि उस स्थान पर कुछ ही मिनटो मे लाल शोथ हो जाये और एक घण्टे के भीतर वह एक बडे चकत्ते या स्फोट का रूप ले ले तो उसे वह सूचीवेध नही लगाना चाहिये। यदि आवश्यक हो तो पहले व्याधिक्षमीकरण करे। एड्रिन-

लिन - सूचीवेध से भी एनाफिलैक्सिस का डर कम हो जाता है।

सीरम विस्फोट—एलर्जी की प्रवृत्ति वाले व्यक्तियो में सूचीवेध के ७ से १४ दिन के पश्चात् सारे शरीर में पित्ती के समान लाल लाल चकत्ते बन जाते हैं। इसे सीरम विस्फोट (Serum rashes) कहते हैं। जहा सूचीवेध दिया जाता है प्राय' उसके चारो ओर यह चकत्ते बनने प्रारम्भ होते हैं। वहा से यह अन्य स्थानो पर फैलते जाते हैं। दो चार दिन मे यह स्वय ही ठीक हो जाते है। कभी कभी ज्वर या सधियो में दर्द भी हो जाता है।

जीवाणु भोजी (Bacteriophage)—यह सूक्ष्म दर्शक यन्त्र से भी न दिखाई देने वाला परोपजीवी है जो अपने पोषण के लिये जीवाणुओ पर निर्भर करता है। इसके द्वारा वह द्रव्य जिसमे जीवाणु उपस्थित होते हैं, जीवाणु रहित हो जाता है। ये मनुष्यो और पशुओ की अन्त्रियो में उपस्थित रहते हैं तथा मल मे इनका निष्कासन होता है। इनमें जीवाणुनाशक शक्ति बहुत तेज होती है।

एलर्जी (असहिष्णुता)—कुछ व्यक्ति बाह्य प्रोटीनो को सहन नही कर पाते। सूचीवेध द्वारा प्रविष्ट की जाने वाली वस्तुयें वैक्सीन या सीरम बाह्य प्रोटीन ही है। इसके कारण छीक आना, प्रतिश्याय, श्वास, हे फीवर, पामा या एक्जीमा हो जाते हैं। असहिष्णुता होने पर या तो उस सूचीवेध का प्रयोग करना ही नही चाहिए। यदि अत्यावश्यक हो तो बहुत अल्प मात्रा देकर धीरे-धीरे मात्रा बढ़ानी चाहिए और इस प्रकार उसके प्रति क्षमता उत्पन्न करनी चाहिए।

(पृष्ठ ३७५ का शेषाश)

या उदश्यामिक (हाइड्रोसैनिक) अम्ल का प्रयोग धूपन के लिये होता है और कमरा छ' घण्टों तक बन्द रक्खा जाता है। धावन के लिए फेनाल, फार्मेलिन, रसकपूर इत्यादि के घोल प्रयुक्त होते हैं। मकान के विशोधन मे अधिक ध्यान फर्श, चार पाँच फुट तक दीवाल, इनके कोने, दरार, बिल इनकी ओर देना चाहिए। दीवाल और फर्श को प्रथम तार के ब्रुश से रगडकर पश्चात् घोल से धोना चाहिए। धोने के लिए फुहारे (Spray) का भी उपयोग किया जाता है।

मकान का विशोधन करने से पूर्व उसके भीतर की सब चीजें हटा देनी चाहिए, और उनका विशोधन स्वतन्त्रतया पूर्वोक्त पद्धति से करनी चाहिए। फिर धावन फुहारा या धूपन के द्वारा उसकी सफाई करने के पश्चात् उसको चूने की सफेदी करवानी चाहिए और पश्चात् कुछ रोज तक वह स्थान खुला रख छोडना चाहिए।

शौच स्थान और नालिया—आन्त्रिक ज्वर, विसूचिका इत्यादि पचन सस्थान के रोगो मे इनके ऊपर ध्यान देना परमावश्यक है। इनको ब्रुश से रगडकर पश्चात् फेनाल, या विरजन चूर्ण या अन्य उपसर्ग नाशक के घोल से साफ धोना चाहिए।

अनुषंगी और अन्तिम उपसर्ग नाशन—रुग्णावस्था मे प्रतिदिन उपसर्ग फैलाने वाले द्रव्यो या वस्तुओ का जब उपसर्गनाशन किया जाता है तब उसको अनुषगी (Concurrent) उपसर्गनाशन कहते हैं। इसमे रोगी के मलमूत्र, थूक, नासास्राव, गले का स्राव इत्यादि का तथा रोगी से सम्बन्धित वस्त्रपात्रादि का उपसर्गनाशन किया जाता है। जब रोगी ठीक होने के पश्चात्, रुग्णालय जाने के या मरने के पश्चात् उसके कमरे का या घर का उपसर्गनाशन किया जाता है तब उसको अन्तिम (Terminal) उपसर्गनाशन कहते है। इसमे अधिकतर फर्श, दीवाल, बाहक कीड़े तथा अन्य जीव, बडे-बडे गद्दे, दरी, किताबे इनके नाशन या उपसर्गनाशन पर ध्यान दिया जाता है।

(श्री वैद्य छगन लाल समदर्शी (विशेष सम्पादक)

इसका स्वतन्त्र विचार चरकसंहिता के विमान स्थान मे 'जनपदोद्ध्वसनीय विमान' अध्याय मे किया गया है। सुश्रुत के सूत्रस्थान के ऋतुचर्याध्याय मे भी इसी विषय का प्रतिपादन मिलता है। ये रोग बाह्यकारण से उत्पन्न होते हैं, यह आधुनिक सिद्धान्त आयुर्वेद ने भी माना है और उसके अनुसार आयुर्वेद में रोगो के दो विभाग किये हैं—निजागन्तुविभागेन तत्र रोगा द्विधा स्मृताः। वाग्भट। निज का अर्थ अपथ्य आहार विहार जनित और आगन्तु का अर्थ बाह्य कारण जनित। अनौपसर्गिक रोग निज मे और औपसर्गिक रोग आगन्तु में आते हैं। दूसरी दृष्टि से देखा जाय तो एक ही अनौपसर्गिक रोग से पीडित अनेक व्यक्तियो मे अनेक आभ्यन्तरीय कारण हुआ करते है, परन्तु एक औपसर्गिक रोग (यथा विसूचिका, मसूरिका) से पीडित अनेक व्यक्तियो में एक ही बाह्य कारण हुआ करता है। इस सम्प्राप्ति के आधार पर रोगो के असाधारण और साधारण करके दो विभाग किये गये हैं। उसके अनुसार निज रोग असाधारण मे और आगन्तु (औपसर्गिक) रोग साधारण मे आते हैं—द्विविधो हेतुर्व्याधिजनक. प्राणिना भवति साधारणोऽसाधारणश्च। तत्रासाधारण प्रतिपुरुषनियत वातादिजनकमाहारादि, बहुजनसाधारण वातजलदेशकालरूप साधारणरोगकारणमभिधातु जनपदोद्ध्वसनीयोऽभिधीयते। चक्रपाणिदत्त ॥ इसका तात्पर्य यह है कि मरकोत्पत्ति में मरक पीडित प्रदेश निवासियो के दोष की अपेक्षा बाह्य दोष बलवान् हुआ करता है जिसके कारण विभिन्न आकृति, प्रकृति, आयु सत्व, सात्म्य इत्यादि के लोग एक ही रोग से एक एक समय मे पीडित होते हैं—अपितु खलु जनपदोद्ध्वसनेनैकेनैव व्याधिनायुगपदसमानप्रकृत्याहारदेहबलसात्म्यसत्ववयसा मनुष्याणा कस्माद्भवति ॥ चरक ॥

शीतोष्णवातवर्षाणि खलु विपरीतान्योपधीर्व्यापदयन्त्यपश्च। तासामुपयोगाद्विविधरोग-प्रादुर्भावो मरको व भवति ॥सुश्रुत ॥

व्याख्या और प्रकार—जो रोग विकारी जीवाणुओ के उपसर्ग से उत्पन्न होते हैं तथा रोगपीडित या रोगवाहक प्राणियो और मनुष्यो के प्रत्यक्ष सम्बन्ध से स्वस्थ मनुष्यो पर सक्रान्त होते हैं वे उपसर्गज, औपसर्गिक या सक्रामक (Infectious) कहलाते हैं। जो प्रत्यक्ष सम्बन्ध से होते हैं वे सासर्गिक (Contagious) भी कहे जाते हैं। कुष्ठ, त्वचा के रोग, मैथुनी रोग (फिरग, सोजाक) सासर्गिक के उदाहरण हैं। औपसर्गिक रोगो मे रुग्णो से स्वस्थों पर सक्रान्त होने की प्रवृत्ति होने के कारण वे बराबर उपसृष्टो से अनुपसृष्टो पर संक्रान्त होते रहते हैं।—परन्तु प्रत्येक औपसर्गिक रोग के सक्रमण का वेग और प्रकार भिन्न होता है और इसके अनुसार औपसर्गिक रोगो के लिए निम्न परिभाषिक शब्द प्रयुक्त होते हैं—

(१) ऐकपदिक (Sporadic)—इसमे रोग क्वचित कदाचित् एकाध व्यक्ति मे हुआ करता है। आन्त्रिक ज्वर इस प्रकार का उत्तम उदाहरण है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क सुषुम्ना ज्वर, इन्फ्लुएन्जा, रोहिणी, कुकुर खाँसी इत्यादि रोग प्राय इस प्रकार के होते हैं।

(२) स्थानपदिक (Endemic)—जब किसी स्थान या जनपद मे कोई उपसर्ग सदा के लिए पैर जमा करके उस स्थान के लिए विशेष (peculiar) बन करके उपस्थित रहता है तब स्थानपदिक कहलाता है। पीतज्वर, माल्टाज्वर, विषमज्वर, कालाजार इत्यादि इस प्रकार के उत्तम उदाहरण है।

(३) अभ्यागतिक (Exotic)—जब किसी स्थान या जनपद मे कदापि न होने वाला रोग बाहर से आकर शुरू होता है तब उसको अभ्यागत कहते है। १८९६ मे बम्बई में शुरू हुआ प्लेग हागकाग से आया हुआ अभ्यागत था।

(४) जानपदिक (Epidemic)—जब रोग किसी स्थान में अकस्मात् उत्पन्न होकर थोड़े समय मे असख्य मनुष्यो पर सक्रान्त होता है और कुछ काल के पश्चात् आप से आप बन्द होता है और इस प्रकार एक जनपद के अनेक

स्थानो पर आक्रमण करता है तब वह जानपदिक कहलाता है। प्राणियो मे फैलने वाले इस प्रकार के रोग को प्राणिपदिक (Epizootic) कहते हैं। प्लेग दोनो का उत्तम उदाहरण है। प्लेग, विसूचिका, मसूरिका, रोमान्तिका कनफेर ये प्राय जानपदिक होते हैं। स्थानपदिक रोग कभी-कभी जानपदिक स्वरूप धारण करते है। जानपदिक रोग 'मुहूर्त ज्वलित' के समान और स्थानपदिक 'चिर धूमायित' के समान होते हैं। जानपदिक के लिए ही व्यवहार मे मरक, महामारी या प्रमारक कहते हैं।

(५) **सार्वपदिक (Pandemic)**—जब रोग बहुत अधिक विस्तृत प्रदेश मे या सर्व ससार भर मे फैलता है तब उसको सार्वपदिक कहते हैं। इसका प्रसिद्ध उदाहरण इन्फ्लूएन्जा है। १८९० और १९१९ मे इसका स्वरूप सार्वपदिक था। इसका दूसरा उदाहरण प्लेग है जो पहले इस प्रकार का था।

जब कोई औपसर्गिक रोग जानपदिक रूप धारण करता है तब उसको महामारी, प्रमारक या मरक कहते हैं। अनेक औपसर्गिक रोग मरक के स्वरूप मे हमेशा फैलते हैं और आन्त्रिक ज्वर, विषम ज्वर, मस्तिष्क सुषुम्ना ज्वर, रोहिणी इत्यादि एकपदिक और स्थानपदिक रोग भी अनेक बार जानपदिक या मरक स्वरूप धारण करते हैं। मरक विज्ञान मे इसलिए इन सब औपसर्गिक रोगो की उत्पत्ति और प्रसार का विचार उनके प्रतिबन्धन की दृष्टि से किया जाता है। औपसर्गिक रोग अनेक श्रेणी के रोगाणुओ से उत्पन्न होते है, जिनकी उग्रता और जीवनक्षमता (Vitability) भिन्न भिन्न हुआ करती है तथा जिनका सक्रमण भी भिन्न भिन्न प्रकारो से हुआ करता है। इसलिए औपसर्गिक रोगो के मरको की उत्पत्ति के कारणो मे बहुत विविधता रहती है जिससे उनके प्रतिबन्धन के साधनो मे भी विविधता आ जाती है। फिर भी मरकोत्पत्ति मे कुछ सामान्य बातें होती है और उनका यहाँ पर सक्षिप्त विवरण दिया जाता है। परन्तु इन बातो का स्वतन्त्र विवरण करने से पहले एक मोटी बात यहाँ पर बताना आवश्यक है जिसमे और सब बातो का समावेश होता है। वह बात यह है कि उपसर्ग एक प्रकार का द्वन्द्व या सग्राम है जिसमें रोगाणु समाज एक ओर रहता है और मनुष्य (या प्राणि) समाज दूसरी ओर होता है। जब रोगाणुओ का बल बढ़ता है तब मरक उत्पन्न होता है और जब फिर मनुष्य समाज का बल बढ़ता है तब मरक समाप्त हो जाता है। सक्षेप मे रोगाणुओ का बल बढ़ाने वाली तथा मनुष्यो का बल घटाने वाली जो जो बातें होती हैं वे मरकोत्पत्ति मे तथा उसको जारी रखने में सहायता करती है और रोगाणुओ का बल घटाने वाली और मनुष्यो का बल बढाने वाली जो जो बाते होती है वे मरक की अनुत्पत्ति मे और उत्पन्न हुए मरक को रोकने मे सहायता करती हैं। अब सक्षेप मे मरकोत्पत्ति के कुछ कारणो का विचार किया जाता है—

(१) **रोगाणु प्रमात्रा**—(Quantum of the infective agent)—सख्या, उग्रता, आक्रमण-शीलता, विषोत्पादन-क्षमता, जीवन क्षमता इत्यादि अनेक ज्ञात और अज्ञात बातो के सयुक्त प्रभाव से रोगाणुओ की प्रमात्रा बनती है। इसका रोगोत्पादक प्रभाव प्रत्येक स्थान के ग्रहणशील व्यक्तियो की सख्या के अनुसार प्रवीजन प्रकाश, स्थली, वातावरण का ताप, आक्लेद, वर्षा, ऋतु आदि उनके पनपने तथा सन्तानोत्पत्ति के लिए आवश्यक साधनो की प्रतिकूलता या अनुकूलता के अनुसार न्यूनाधिक हुआ करती है। उग्रता, आक्रमणशीलता, विषोत्पादन क्षमता, जीवन क्षमता इत्यादि बातें प्रत्येक रोगाणु की अपनी स्वतन्त्र या विशेष होती है। फिर भी यदि रोगाणुओ को ग्रहणशील व्यक्ति बार-बार मिलते जाये तो उनकी उग्रता तथा आक्रमणशीलता उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी। और यदि अग्रहणशील (Nonsuseptible) व्यक्ति बार-बार मिलते जायें तो उनकी उग्रता तथा आक्रमणशीलता उत्तरोत्तर घटती जायगी।

(२) **मनुष्य बल**—मनुष्यो का बल उनकी सहज या जन्मोत्तर क्षमता आयु, आहार, आरोग्य, आघात, परिस्थिति, इत्यादि अनेक ज्ञात और अज्ञात बातो के सयुक्त प्रभाव से बनता है। सहज या जन्मोत्तर क्षमता सब मनुष्यो मे, सर्वावस्था मे और सब रोगाणुओ के लिए एक सी और प्रबल नही होती। इसलिये मनुष्य समाज मे अनेक लोग अपनी अवस्था या दुर्बलता के कारण सदैव उपसर्ग के लिए ग्रहणशील रहा करते है। जैसे अवस्था विशेष के कारण सब लोग बचपन मे मसूरिका, रोमान्तिका, कुकुर खासी, रोहिणी आदि उपसर्ग से पीडित हो

सकते हैं। दुष्प्रकाशित, दुष्प्रवाजित (Ill-ventilated) गन्दे, गुञ्जान मकानों और मुहल्लों में रहने वाले मनुष्यों का बल घट जाता है। अत्यधिक उष्ण या शीत का परिणाम बल घटाने में होता है। शीत या उष्ण का परिणाम आघात के समान होता है। सतुलित आहार न मिलने से भी जीवशक्ति दुर्बल होती है। जब स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, शरीर मधुमेह, वातरक्त अतिपानता (Alcoholism), वृक्कशोथ तथा अन्य रोगों से पीड़ित रहता है तब शरीर दुर्बल होने के कारण दूसरे रोग भी उत्पन्न हुआ करते हैं। बच्चों में रोमान्तिका के पश्चात् प्राय. कुकुर खांसी का मरक उत्पन्न होता है। अब नीचे मरक सहायक कुछ और कारणों का विवरण दिया जाता है।

(३) वय—अनेक औपसर्गिक रोगों का वय के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। मसूरिका, लघुमसूरिका, रोमान्तिका, रोहिणी, कुकुरखांसी, शैशवीय अङ्गघात आदि रोग बचपन में और आन्त्रिक ज्वर, विसूचिका, प्लेग, मस्तिष्क सुषुम्ना ज्वर इत्यादि कुछ रोग जवानी में अधिक हुआ करते हैं। बहुधा ग्रहण-शीलता का यह परिणाम होता है।

(४) स्थली वर्षा और आक्लेद—अनेक रोगों के मरक से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इनसे श्लीपद विषमज्वर, विसूचिका और अकुशकृमि रोग विशेष महत्व के है। जहां पर अधिक पानी बरसता है, स्थली समतल रहती है वहा पर स्थान-स्थान पर पानी इकट्ठा होकर मच्छरों की वृद्धि होती है। मच्छर विषम-ज्वर और श्लीपद्-ज्वर के सवाहक और उनके कीटाणुओं के सवर्धक हैं। वैसे ही गीली जमीन में अकुशकृमि के अण्डे अधिक काल तक जीवन क्षम रहकर इल्लियो (Larve) में परिवर्तित हो सकते हैं। विसूचिका वक्राणु की वृद्धि के लिए २०°-४०° से० की उष्णता, आर्द्रता, मलमूत्रादि अन्य सेन्द्रिय द्रव्यों से दूषित स्थली तथा पानी आदि की आवश्यकता होती है। वर्षा ऋतु में पानी न बरसना और बाद में बरसना ये दोनों विसूचिका मरक उत्पन्न करने में सहायक होते है। ये सब आवश्यकतायें वर्षा और गर्मी के दिनों में पूरी होने के कारण इन दिनों में विसूचिका के मरक उत्पन्न होते हैं। सक्षेप में इनकी अनुकूलता रोगाणुमात्रा बढ़ाने में सहायता करती है।

(५) ऋतु—अनेक औपसर्गिक रोगो के मरक ऋतुज (Seasonal) होते हैं। जैसे प्लेग के वसन्त में, मसूरिका रोमान्तिका के वसत-ग्रीष्म में, विषम-ज्वर के शरद् में विसूचिका के वर्षा और प्रावृट में, रोहिणी के शिशिर में उत्पन्न होते हैं, क्योंकि इन ऋतुओं में रोगाणु तथा उनके वाहक कीटकों की वृद्धि के लिए अनुकूल ताप और आक्लेद वातावरण में तथा स्थली में विद्यमान रहते हैं। सक्षेप में ऋतु अनुकूलता रोगाणु मात्रा बढ़ाने में सहायता करने वाला कारण है।

(६) प्रवास और आवागमन—आप्तेष्ट भेंट, विदेश दर्शन, यात्रा, व्यापार, राजकर्म आदि अनेक कर्मों के निमित्त मनुष्य सदैव एक स्थान से दूसरे स्थान में और एक देश से दूसरे देश में घूमा करते हैं। आजकल जल पोत, आगगाड़ी, मोटर, विमान इत्यादि सुखकर और समय की बचत करने वाले वाहनों के कारण लोगों की प्रवास करने की प्रवृत्ति और बढ़ गयी है। प्रवास दो प्रकार का होता है। जब किसी स्थान से लोग बाहर चले जाते हैं तब उसको उत्प्रवास (Emigration) और उन लोगो को उत्प्रवासी (Emigrants) तथा जब बाहर से किसी स्थान में आते हैं तब उसको आप्रवास (Immigration) और उन लोगो को आप्रवासी (Immigrant) कहते है। उपसर्ग पर दोनों का परिणाम भिन्न होता है।

उत्प्रवास का परिणाम—बाहर जाने वालों में रोगी, उपसृष्ट और वाहक मनुष्य तथा उनके साथ पिस्सू, मच्छर, चूहे आदि प्राणी तथा कीड़े हो सकते हैं। इससे उपसृष्ट स्थान का उपसर्ग दूसरे स्वस्थ स्थान को पहुंचकर वहा पर मरक उत्पन्न हो सकते हैं।

कोलम्बस के नाविक अमेरिका से फिरङ्ग (Syphilis) का उपसर्ग यूरोप में ले आये जिससे यूरोप के देशों में उसके मरक प्रारम्भ हुए। फिर जब पोर्तुगीज (फिरङ्ग देशीय[1]) भारत में आये तब वे इसको अपने साथ ले आये जिससे भारत में इसका प्रसार हुआ। प्लेग चीन के हागकाग में था। वहां से व्यापारी जहाजों द्वारा वह भारत बम्बई बन्दरगाह में पहुंचा और उसके पश्चात्

[1] फिरङ्गसज्ञके देशे बाहुल्येनैव यो भवेत्।
तस्मात् फिरङ्ग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः॥
—भावप्रकाश

बम्बई से लेकर तमाम भारतवर्ष में उसके अनेक मरक उत्पन्न हुए। मेले के स्थान मे उत्पन्न हुई विसूचिका मेला टूटने पर वापिस जाने वाले लोगो के साथ अन्य स्थानो में फैलती है। भारतवर्ष मे विषम-ज्वर का उपसर्ग पहले सब स्थानो में नही था, यद्यपि जलवायु उनके लिए अनुकूल थी। अब प्रवासियो के साथ वह अन्य स्थानो में फैल गया है—

आप्रवास का परिणाम—जब किसी स्थान में मरक जारी रहता है तब कुछ काल के पश्चात् वह आप से आप बद हो जाता है परन्तु यदि उस स्थान में बाहर से लोग बराबर आते रहेगे तो वह भी उचित समय पर विराम न होकर धूमायित के समान अधिक काल तक जारी रहेगा। सक्षेप मे लोगो के आवागमन से किसी स्थान में नये मरक का प्रादुर्भाव होता है, पुराने मरक की पुनरुत्पत्ति हुआ करती है और उत्पन्न हुआ मरक अधिक काल तक जारी रहता है तथा उसकी प्रत्यावृत्ति भी हो सकती है।

(७) **आर्थिक दुःस्थिति**(Economic conditons)—मनुष्यो का स्वास्थ्य सन्तुलित आहार का सेवन सुन्दर, सुप्रकाशित, सुप्रव्यजित, प्रशस्त पक्के मकानो और मुहल्लो में रहना, शरीर और कपडो की सफाई, शुद्ध जल सेवन, मकानो के आसपास के कूडे आदि का नाश, खराब पानी और मैले के लिए परनालो का प्रबन्ध आदि अनेक बातों पर निर्भर होता है परतु ये सब काम बहुत धन खर्च किए बिना नही हो सकते हैं। दरिद्री देश, सरकार या समाज जनता की स्वास्थ्य रक्षा के लिए इनका उपयोग नही कर सकते, जिसका परिणाम आम जनता की जीवशक्ति (Vitality) या प्रतीकारकता (Resisting power) कम होने मे होता है। ऐसे समाज या देश में जब कोई उपसर्ग कही से पहुँच जाता है तब उसके पैर जमने मे देर नही परतु उखडने में बहुत देर लगती है। आर्थिक दुःस्थिति के साथ अकाल, और अकाल उत्पन्न करने वाली आपत्तियो (ईतियो) को रख सकते है।

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषका शलभा खगा।
स्वचक्र परचक्रं च सप्तैता ईतय स्मृता.॥

(८) **युद्ध**—युद्ध के समय जनता को अन्न की कमी होती है और युध्यमान् सैनिको को अतिजनाकीर्णता, गन्दगी, अन्न की कमी, अशुद्ध जलवायु इनका सामना करना पडता है। सब का परिणाम मरकोत्पत्ति के लिए अनुकूल होता है। तन्द्रिक ज्वर प्राय युद्ध के समय हुआ करता है। प्रथम महायुद्ध में इससे १५०००० के करीब सैनिक मर गये थे।

आयुर्वेद मे वायु, काल, देश, वर्षा, ऋतु इनका विपर्यय मरकोत्पत्ति का बाह्य कारण माना गया है—ते तु खल्विमे भावा सामान्या जनपदेषु भवन्ति, तद्यथा—वायुरुदक देश काल इति। तत्र यथर्तु विषमतिस्तिमितमतिचलमतिपरुषमतिशीतमत्युष्णमतिरूक्षमसात्म्यगन्धबाष्पसिकतापाशुधूमोपहत वातमनारोग्यकर विद्यात्।

उदक तु खल्वत्यर्थविकृतगन्धवर्णरसस्पर्शं
क्लेदबहुलमपगतगुण विद्यात्।

देश पुनः प्रकृतिविकृतिवर्णगन्धरसस्पर्श क्लेदबहुल सरीसृपव्यालमशकशलभमक्षिकामूषकादिभिरुपसृष्टमहित विद्यात्।

काल तु यथर्तु लिङ्गाद्विपरीतलिङ्गमतिलिङ्गहीनलिङ्ग चाहित व्यवस्येत्।

ऋतवो व्यापद्यन्ते, तेन नापो यथाकाल वर्षति, न वा वर्षति विकृत वा वर्षति, वाता न सम्यगभिवान्ति, क्षितिर्व्यापद्यते, सलिलान्युपशुष्यन्ति, ओषधय. स्वभाव परिहाय विकृतिमापद्यन्ते, तत उद्ध्वसन्ते जनपदा स्पर्शाभ्यवहार्यदोषात्। —चरक

ये सब कारण आधुनिक उपर्युक्त कारणो के साथ बहुत कुछ मिलते हैं। राजर्स ने विसूचिका मरको का अभ्यास करके यह सिद्ध किया है कि अवृष्टि या अल्पवृष्टि का विसूचिका मरकोत्पत्ति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। उसका यह अनुभव है कि जिस साल वृष्टि कम होती है उसके पश्चात् दूसरे साल मे विसूचिका मरक जोर करता है। अतिवृष्टि अनावृष्टि क्यो होती है? वातावरण का ताप या आक्लेद क्यो बढ़ता है? इसका उत्तर देना आज भी बहुत कठिन है। इनके ऊपर मनुष्यो का अधिकार नही। ऐसी अवस्था में जनपदोद्ध्वसक रोगो को कैसे रोका जाय इसका चरकाचार्य जी ने जो उत्तर दिया है और जो सिद्धान्त बताया है वह आज भी सम्मत होने योग्य है। चरकाचार्य लिखते हैं—वाय्वादीना यद्वै-

गुण्यमुत्पद्यते तस्य मूलमधर्म, तन्मूल वाऽसत्कर्म पूर्वकृत, तयोर्योनि प्रज्ञापराध एव।

यहाँ पर अधर्म का अर्थ स्वर्गप्राप्त्यर्थ पूजा-पाठ नही है। इसमे राजा का या नगराध्यक्ष का प्रजारक्षा का कर्तव्य न करना, प्रजा का अपने प्रति तथा अपने भाइयो के प्रति सहायता न करना इत्यादि व्यवहारोपयोगी कर्तव्यो का समावेश होता है—यदा वै देशनगरनिगमजनपदप्रधानाधर्ममुत्क्रम्याधर्मेण प्रजा वर्तयन्ति, तदाश्रितोपाश्रिता पौरजनपदा व्यवहारोपजीविनश्च तमधर्ममभिवर्धयन्ति तत सोऽधर्म । —चरक

रोगाणु और मनुष्य बलाबल विचार—मनुष्य शरीर में रोगाणुओ का नाश करने की शक्ति होती है। जब रोगाणुप्रमाणा अधिक और मनुष्य बल अल्प होता है तब रोग उत्पन्न होता है। इसमे प्रत्येक बलाबल के अनुसार निम्न अवस्थायें पाई जाती हैं—

(१) यदि रोगाणुप्रमात्रा से मनुष्य का रोगाणुनाशक बल बहुत अधिक हो तो उनके शरीरप्रवेश से न रोग उत्पन्न हो सकता है, न शरीर मे प्रतिक्रिया होकर सक्रिय क्षमता उत्पन्न हो सकती है।

(२) यदि रोगाणुप्रमात्रा से मनुष्य का रोगाणुनाशक बल थोडा सा अधिक हो तो शरीर मे प्रवेश होने पर रोग नही उत्पन्न होता, परन्तु प्रतिक्रिया होकर उसके फलस्वरूप उस रोगाणु के लिए कुछ सक्रिय क्षमता उत्पन्न हो सकती है।

(३) यदि रोगाणुप्रमात्रा से मनुष्य का रोगाणुनाशक बल समान हो तो शरीर मे प्रवेश होने पर सक्रिय क्षमता उत्पन्न होती है, परन्तु रोगाणुओ का पूर्ण नाश नही हो सकता और वाहकावस्था उत्पन्न होती है।

(४) यदि रोगाणुप्रमात्रा से मनुष्य का रोगाणुनाशक बल कुछ ही कम हो तो रोग उत्पन्न होता है, परन्तु लक्षण यथारूप (Typical) नही होते जिससे उसको पहचानना कठिन होता है।

(५) यदि रोगाणुप्रमात्रा से मनुष्य का रोगाणुनाशक बल बहुत कम हो तो ठीक यथारूप रोग उत्पन्न होता है, परन्तु रोगी बच जाता है।

(६) यदि रोगाणुप्रमात्रा के सामने मनुष्य का रोगाणुनाशक बल कुछ भी न हो तो तीव्र स्वरूप का रोग उत्पन्न होकर मृत्यु हो जाती है।

औपसर्गिक रोगो का अनुसंधान (Investigation)

जातमात्रं न य शत्रुं व्याधि च प्रशम नयेत्।
महाबलोऽपि तेनैव वृद्धि प्राप्य स हन्यते ॥

जहाँ पर औपसर्गिक रोग का प्रारम्भ हुआ है वही पर उसको स्थानबद्ध करके निरोध करना और इधर-उधर फैलने से रोकना अनुसन्धान का मुख्य उद्देश्य होता है। इसकी सिद्धि के लिए पहले पहल जो व्यक्ति (या प्राणी जैसे प्लेग मे चूहा) पीडित हो जाता है उसका पता स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियो को लगाना चाहिए। पता लगने पर उसका ठीक निदान करना आवश्यक होता है। औपसर्गिक रोगो के निदान मे प्रायोगिक कसौटियाँ (Tests) बहुत सहायता करती है। इसलिए अनुसधान मे प्रयोगशाला की सुविधायें (Laboratory facilities) प्राप्त होनी या करनी चाहिए। कई बार निदान न होने के कारण, प्राय लापरवाही के कारण और अनेक बार सोच समझ करके दबाने की इच्छा से प्रथम रोगी का पता नही लगता। यदि निदान नही हुआ तो कोई उपाय नही, परन्तु निदान होने पर रोग की सूचना विशेष करके मसूरिका, विसूचिका, प्लेग जैसे भयानक और फैलने वाले रोगो की सूचना, स्वास्थ्याधिकारियो को जरूर देनी चाहिए। इस प्रकार पता लगने पर रोगी और परिवार का अनुसधान निम्न प्रकार की पूछ-ताछ करके करना चाहिए—

(१) रोगी—नाम, स्थान (पता), अवस्था, लिङ्ग, आक्रमण की तिथि, किसी उपसृष्ट से सम्बन्ध रखने का पूर्ववृत्त और रोगी के मन से सम्भवनीय उपसर्ग स्थान।

(२) परिवार—सब लोगो के नाम, अवस्था, लिंग, पूर्व रोगो का इतिहास तथा उनके आक्रमण की तिथि, व्यवसाय और उसके स्थान।

(३) निवास स्थान मे होने वाले काम का विवरण।

(४) दूध और पीने के पानी का निकास।

(५) पीडित के घर की तथा आस पास की स्थिति का आरोग्यदृष्टया विवरण।

(६) घर मे, आसपास मह्ल्ले मे, पाठशाला या विद्या-

[शेषांश पृष्ठ ३९० पर देखें]
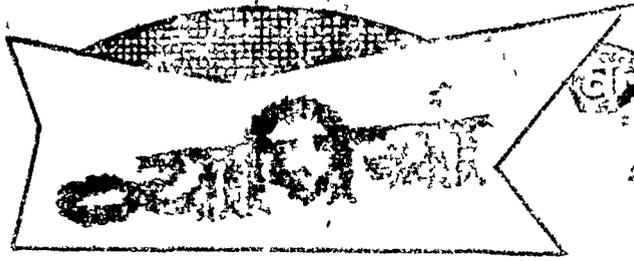
जिन रोगो का उत्पादन मनुष्य मे और प्रादुर्भाव समाज मे रोका सकता है उनको प्रतिबन्धनीय रोग कहते हैं। वैसे देखा जाय तो स्वस्थवृत्त के नियमो का पालन करने से मनुष्य और सामाजिक स्वास्थ्यरक्षा की बातो पर ध्यान देने से समाज मनुष्यो में होने वाले प्रत्येक रोग से बच सकता है, अर्थात् मनुष्यों मे होने वाला प्रत्येक रोग प्रतिबन्धनक्षम है। परन्तु यहाँ पर मनुष्यो मे होने वाले प्रत्येक रोग का विचार कर्तव्य नही है। यहाँ पर केवल उन रोगो का विचार करेंगे जो अनेक मनुष्यो में फैलते हैं, अनेको को निर्बल, पगु या विकल बनाते हैं, अनेको की कार्यक्षमता को घटाते है तथा अनेको के जीवन का अकाल मे नाश करते है। ऐसे रोगो के केवल दो ही वर्ग होते हैं—

(१) औपसर्गिक—इसमें तृणाणु, कीटाणु, विषाणु, कृमिकीटन इनसे होने वाले और फैलने वाले रोग आते हैं। इसके फिर निम्न विभाग कर सकते है—

(अ) कीटकदंश जन्य—विषमज्वर, कालाजार, श्लीपद, दण्डक, पीतज्वर, प्लेग, तन्द्रिक, निद्रारोग।

(आ) खाद्यपेय सवाहित—आन्त्रिकज्वर, अतिसार, विसूचिका माल्टाज्वर, औपसर्गिक कामला, कृमिरोग।

(इ) बिन्दूत्क्षेप सवाहित—राजयक्ष्मा, रोहिणी, मसूरिका, लघुमसूरिका, रोमान्तिका, कनफेर, शैशवीय अगघात, मस्तिष्क सुषुम्नाज्वर, कुकुरखाँसी, इन्फ्लुएन्जा।

(ई) प्राणिजन्य-जलसन्त्रास, अगारक्षत, खुरमुखपाक।

(उ) सासर्गिक—कुष्ठ, रतिजरोग।

(२) अन्न जन्य (Dietetic)—इन रोगो का विस्तृत विवरण पीछे आहार प्रकरण मे सविस्तार कर दिया गया है।

अब हम प्रत्येक रोग पर विस्तारपूर्वक वर्णन प्रस्तुत करते हैं—
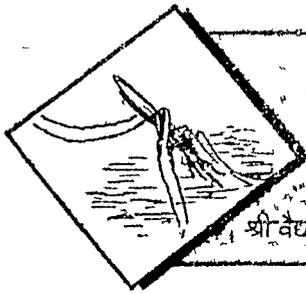
कारण—विषम ज्वर का प्रधान कारण रक्तामरूी (Haemamoeba) या हिमज्वरी (Plasmodium) प्रजाति का कीटाणु है। मनुष्यो मे इसकी निम्न चार जातियो के हिम ज्वरी विषम ज्वर उत्पन्न करते हैं—

(१) तृतीयक हिम ज्वरी (Plasmodium Vivax)

(२) चतुर्थक हिम ज्वरी (Plasmodium Malariae)।

(३) दात्राकृतिक हिमज्वरी (Plasmodium Falciparum)

(४) अण्डाकृतिक हिमज्वरी (Plamodium Ovale)

जीवनचक्र—उपर्युक्त चारो जातियो के कीटाणुओ की जीवनी एक सी होती है। इनकी जीवनी के दो चक्र होते हैं। अमैथुनी चक्र (Asexual cycle) मनुष्य शरीर मे जिसको विभक्तजीवनी या खण्डजीवनी (Schizogony)
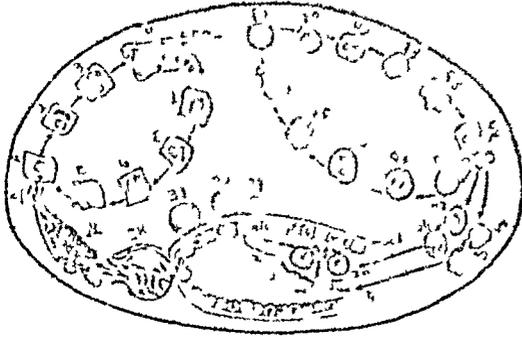
विषमज्वर कीटाणु जीवनी की तीन अवस्थायें

१-९—रुधिरकायाणु बाह्य (यकृत गत जीवन की) अवस्था।
१०-२४—रुधिरकायाणु गत (रक्तगत जीवन की) अवस्था।
२१-२२ पुरुष व्यवायकायाणु २३-२४ (Gametocyte)
२३-२४—स्त्री ,, ।
२५ - मच्छर के उदर की प्राचीर ।
२६-३५—मच्छर शरीरगत जीवन की अवस्था।
२६—उत्तन्तु पिच्छी पुरुष व्यवायक ।
२७ - छिद्र युक्त स्त्री व्यवायक।
२८—पुरुष व्यवायक स्त्री व्यवायक के पीछे :
२९ — मिथुन (Zygote)
३०—गतिकाण्ड (Ookinete)
३१—अण्डकोष्ठ (Oocyst)
३२-३३— क्षुल्लकेतों की ओर अण्डकोष्ठ का विकास ।
३४— पूर्ण विकसित अण्डकोष्ठ विदीर्ण होकर अंशुकेतों का बाहर निर्गमन ।
३५—मच्छर की लाला ग्रंथियो मे प्रवेश ।

और मैथुनी (Sexual) चक्र मच्छर शरीर में जिसको क्षुल्लजीवनी (Sporogony) कहते हैं। अमैथुनी जीवनी के फिर दो विभाग होते हैं - एक लालकणो के बाहर यकृतादि अंगों में जिसको रुधिरकायाणु वाह्य (Exerythrocytic) और दूसरा लालकणो के भीतर जिसको रुधिरकायाणुगत (Erythrocytic) कहते हैं। इस प्रकार विषमज्वर कीटाण की जीवनी तीन चक्रो मे विभक्त होती है—

(१) रुधिरकायाणु बाह्य (Extra-erythrocytic)—मच्छर के दंश से शरीर में प्रविष्ट [illegible] (Sporozoites) रक्त में [illegible] यकृत की कोशाओं में चले जाते हैं। चित्र में अंक १–९ देखिये। वहाँ ये अमैथुनी पद्धति से २–४ चक्र काटकर या २–४ पीढ़ियों (Generations) को उत्पन्न करके प्रत्येक [illegible] अंशुकों (Merozoites) में परिवर्तित होते हैं। इसके लिए ६–१२ दिन लग जाते हैं। इस प्रकार अंशुकेतों से [illegible] भरी हुई यकृत की कोशायें विदीर्ण होकर वे स्वतन्त्र हो जाते हैं। इनमें कुछ लालकणों में घुसकर रुधिरकायाणुगत (Erythrocytic) अमैथुनी जीवन प्रारम्भ करते हैं, कुछ भक्षकायाणुओं द्वारा नष्ट किये जाते हैं, और कुछ फिर से यकृत कोशाओं में प्रविष्ट होकर पूर्ववत् अपना चक्र जारी करते हैं।

यकृत्गत अंशुकेत

पुनर्यकृत् प्रवेश	रक्त मे प्रवेश	रुधिरकायाणु प्रवेश
द्वितीय रुधिरकायाणु बाह्य जीवन	भक्षकायाणु द्वारा नाश	रोगोत्पत्ति
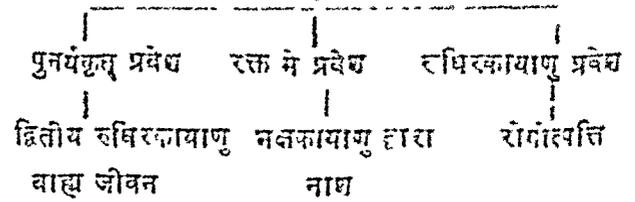
इस प्रकार रुधिरकायाणु बाह्य जीवन की दो अवस्थायें होती हैं। प्रथम अवस्था रुधिरकायाणुओं के भीतर पहुँचने के पहले [illegible]। इसको प्राथमिक (Primary) या पूर्व (Early) कहते हैं। दूसरी रुधिरकायाणुओं के भीतर अमैथुनी चक्र जारी रहने के साथ-साथ या उसका नाश होने के पश्चात् की। इसको द्वितीयक (Secondary) या उत्तर (Late) कहते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि द्वितीयक अवस्था सब जातियो के कीटाणुओं मे जारी रहे। तृतीयक चतुर्थक में वह जरूर हुआ करती है। परन्तु दात्राकृतिक या मारक मे या तो यह अवस्था होती ही नहीं या होने पर अधिक काल तक चलती नहीं जिससे इस अवस्था का महत्व उसमें नगण्य होता है।

शरीर में शीतज्वरादि लक्षण रुधिरकायाणुगत कीटाणु

के जीवन से उत्पन्न होते है, औषधियो का और क्षमता का नाशक परिणाम इसी जीवन के कीटाणुओ पर मुख्यतया होता है। रुधिरकायाणुबाह्य जीवन से न दूसरो को उपसर्ग पहुँच सकता है क्योंकि उसमें व्यवायकायाणु नही बनते, न रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं, न उसके कीटाणुओ पर औषधियो का और क्षमता का जल्दी परिणाम होता है। इसलिए चिकित्सा से या क्षमता से रोगनिवृत्ति होने पर भी अर्थात् रुधिरकायाण्विक कीटाणुओ का नाश होने पर भी रुधिरकायाणुबाह्य कीटाणु ज्यो के त्यो रहकर, आगे शरीर दुर्बल होने पर या क्षमता टूटने पर, पहले की तरह लालकणो मे फिर से प्रवेश करके रोग का पुनरावर्तन[1] (Relapse) उत्पन्न कर सकते है। सक्षेप मे रुधिरकायाणु बाह्य जीवन शरीरगत उपसर्ग का मूल, प्रारम्भिक, अप्रकट, अविकारी, लक्षणहीन, अहानिकर, असक्रमणशील, आवर्तन का मूल और औषधियो तथा क्षमता के लिए अधिक प्रतिकारक होता है।

(२) **रुधिरकायाण्विक**—यह अमैथुनी जीवन है और रुधिर कायाणुबाह्य प्राथमिक अमैथुनी जीवन के पश्चात् प्रारम्भ होता है। इसका प्रारम्भ रुधिरकायाणुबाह्य जीवन चक्रान्तर्गत गुप्ताशुकेत (Cryptomerozoites) से होता है। ये लालकणो में घुसते है। साधारणतया एक कण मे एक प्रवेश करता है। मारात्मक प्रकार में एक कण में अनेक भी करते हैं। इस प्रभूत (Multiple) उपसर्ग कहते है। कणो के भीतर की इस अवस्था को पुष्टकेत (Trophozoit) कहते हैं। ये कीटाणु तद्गत शोणवर्तुलि नामक रागक भक्षण से अपना निर्वाह करके वृद्धि करते हैं। पूर्ण वृद्धि करने पर जब वह विभक्त होने की दशा में परिणत होता है तब उस प्रगल्भ कीटाणु का नाम विभक्तक (सायजोण्ट) होता है। यह विभक्तक फिर कण के भीतर कई भागो में विभक्त होता है। इनका नाम अशुकेत (Merozoite) है। थोडे काल तक ये अशुकेत कण के भीतर रह कर पश्चात् कण का नाश करके रक्तरस मे आते हैं और फिर कणो के भीतर प्रवेश करते हैं। इस प्रकार कई बार मनुष्य शरीरगत रक्तकणो में इनका जीवनचक्र जारी रहता है। थोडे काल के पश्चात् इस प्रकार से विभजन द्वारा वश विस्तार करने की इनकी शक्ति धीरे-धीरे घटने लगती है और उनमे से कुछ जीवाणु दूसरे जीवनचक्र मे भाग लेने के लिए मैथुनधर्मी बन जाते हैं। इनका नाम व्यवायकायाणु (Gametocytes) है। ये स्त्री और पुरुष करके दो प्रकार के होते है। मनुष्य शरीर मे इनकी वृद्धि नही होती है। यदि इनको मच्छरी के शरीर मे पहुँचने का मौका न मिले तो ये न्यूनाधिक काल तक शरीर में जिन्दे रह सकते है, परन्तु अन्त मे इनका नाश हो जाता है।

(३) **मैथुनी**—यह जीवनचक्र मच्छरी के शरीर में होता है। जब व्यवायकायाणु दश के समय मच्छरी के आमाशय मे प्रवेश करते है तब उनके ऊपर का आवरण आमाशयिक रस से गल जाता है और ये स्वतन्त्र हो जाते हैं। पश्चात् उनके स्त्री या पुरुष के अनुसार निम्न परिवर्तन शुरू होते है। इनको व्यवायक (Gamete) कहते है। चित्र में २६-३५ देखिए। स्त्री व्यवायक के शरीर से न्यष्टि का उत्सर्ग होकर वह पुरुष व्यवायक के साथ मिलने योग्य बन जाती है। पुरुष व्यवायक की न्यष्टि के पाँच-सात भाग होकर वे ततु बन जाते हैं और उसके आवरण पर लगे रहते हैं। पश्चात् उनमें गति उत्पन्न होकर वे

---

[1] विषम ज्वर की पुनरावर्तनशीलता बहुत प्रसिद्ध है। ये पुनरावर्तन क्यो होते है इसका ठीक पता १९४८ तक नही लगा था। आयुर्वेद ने इसका कारण सहस्रावधिवर्ष पहले कल्पनागम्य किया था जो विज्ञान की सहायता से अब दृष्टिगम्य हो गया है। आयुर्वेद में स्पष्ट लिखा है कि विषमज्वर निवृत्ति होने पर भी शरीर को छोडता नही। वह आभ्यन्तरीय धातुओ के सूक्ष्मतर रक्तादि मार्गो मे छिपा हुआ रहता है—स चापि विषमो देह न कदाचिद्विमुञ्चति। वेगे तु समतिक्रान्ते गतोऽयमिति लक्ष्यते। धात्वन्तरस्थो लीनत्वान्न सौक्ष्म्यादुपलभ्यते॥ सुश्रुत॥ सूक्ष्मसूक्ष्मतरास्वेपु दूरदूरतरेपु च। दोषो रक्तादिमार्गेपु शनैरल्पश्चिरेण यत्। याति देह च नाशेषं भूयिष्ठं भेषजेपि च। क्रमोऽय तेन विच्छिन्नसन्तापो लक्ष्यते ज्वर॥ अष्टाग-सग्रह॥
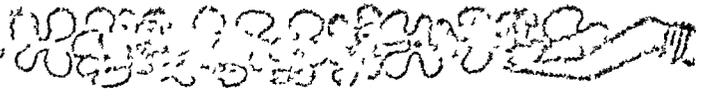
स्वतन्त्र होते हैं। स्त्री व्यवायक के शरीर पर एक उन्नत सूक्ष्मछिद्र बनता है जिसमें से होकर पुरुष व्यवायक से उत्पन्न हुए ततुओं में से एक ततु भीतर प्रवेश करता है। इसको मैथुन (Zygosis) कहते हैं और सयुक्त कीटाणु को मिथुन (Zygote) कहते है। यह मिथुन गतियुक्त होने पर गतिकाण्ड (ookinet) कहलाता है। प्रारम्भ में यह गोल होता है, परन्तु धीरे-धीरे यह नोकीला बन जाता है। यह अपनी नोक से आमाशय की त्वचा को भेद करके भीतर श्लेष्मल कला और पेशियों के बीच में स्थिर होता है। वहाँ पूर्ववत गोल बनकर बढ़ने लगता है। पूर्ण वर्धन होने पर यह अण्डकोष्ठ (oocyst) कहलाता है। इस प्रकार के कई अण्डकोष्ठ आमाशय की प्राचीर मे होते हैं। ये भीतर कई सूक्ष्म भागों में विभक्त होते हैं। प्रत्येक भाग क्षुल्लकेत (Sporozoite) कहलाता है। इनकी पूर्णवृद्धि होने के पश्चात् ऊपर का आवरण नष्ट होकर सारे क्षुल्लकेत मच्छरी के शरीर में फैलते हैं। इनमें से अधिकसख्य मच्छरी की लाला ग्रथियों में पहुचकर जब मच्छरी किसी स्वस्थ मनुष्य को काटती है तब उसके दश के समय ये मनुष्य शरीर में प्रवेश करके अपना अमैथुनी चक्र प्रारम्भ करते हैं। अमैथुनी चक्र का प्रारम्भ क्षुल्लकेतों से और उसका अन्त व्यवायकायाणुओं से होता है। मैथुनी चक्र का प्रारम्भ व्यवायकायाणुओं से होता है और उसका अन्त क्षुल्लकेतों में होता है। दोनों में भेद यह है कि अमैथुनी जीवन मे अनेक चक्र होते हैं और मैथुनी जीवन मे केवल एक चक्र (cycle) होता है। मच्छर शरीरगत जीवन केवल जाति रक्षण के लिए आवश्यक होता है।

मैथुनी चक्र की अवधि बाह्य ताप, आक्लेद और कीटाणु उपजाति के अनुसार ९-२१ दिन की होती है।

विषम ज्वर के सचयाधार—मशकशरीरान्तर्गत मैथुनी चक्र के लिए व्यवायकायाणुओं की आवश्यकता होती है। जिनके शरीर मे विषम कीटाणुओं के व्यवायकायाणु होते हैं वे ही इसके सचयाधार (Reservoirs) होते हैं और उन्हीं से उपसृष्ट होकर मच्छर रोग का प्रसार करते है। मनुष्य के अतिरिक्त चमगादड़, गिलहरी, हिरण, भैंस, वानर इनमें मानवी विषमज्वरकीटाणु के समान कीटाणु पाये जाते हैं। इसलिए क्वचित् ये प्राणी भी रोग सचयाधार हो जाते हैं ऐसी कुछ शास्त्रज्ञों की राय है और इसकी पुष्टि मनुष्य बस्ती से दूरवर्तित प्रदेशों में उत्पन्न हुए विषमज्वर के वृत्तान्तों से होती है। परन्तु मुख्य सचयाधार मनुष्य है।

मनुष्य शरीर में कीटाणुओं का प्रवेश होते ही व्यवायकायाणु उत्पन्न नहीं होते। प्रथम रुधिरकायाणु बाह्य जीवनचक्र पूरा करता है जिसमें व्यवायकायाणु बनते ही नहीं। इसलिए मनुष्य शरीर में जब तक केवल यही जीवनचक्र चलता है तब तक मनुष्य उपसर्गी या सक्रमणशील (Infective) हो नहीं सकता। मच्छरी के काटने के पश्चात् दानाकृतिक में यह काल ५-६ दिन का और तृतीयक चतुर्थक मे ८-९ दिन का होता है। रुधिरकायाणिक जीवन प्रारम्भ होने पर व्यवायकायाणु उत्पन्न होने के लिए कुछ चक्र व्यतीत होने की आवश्यकता होती है जिसके लिए

मच्छरों के जीवन की विभिन्न अवस्थायें

एनाफिलीज		क्यूलेक्स	
अंडा		अंडा	
प्यूपा		प्यूपा	
पूर्ण मच्छर		पूर्ण मच्छर	
बैठा हुआ पूर्ण मच्छर		बैठा हुआ पूर्ण मच्छर	
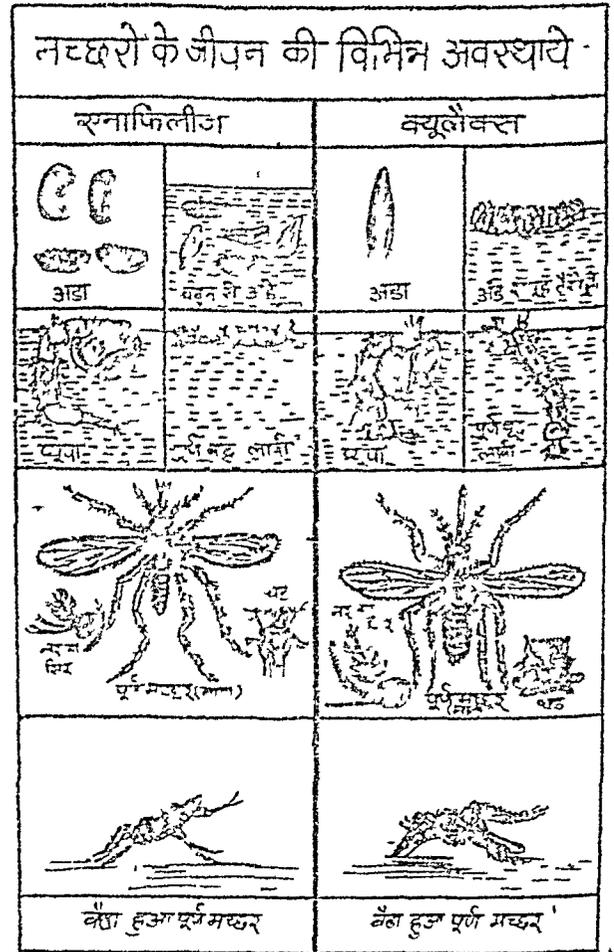
भी कुछ दिन लग जाते है। इसलिए पहले पहल विषम ज्वर उत्पन्न होने से पूर्व तथा ज्वर उत्पन्न होने पर कुछ दिनो तक विषमज्वरी विषमज्वर का सचयाधार नही होता। उसके पश्चात् जब तक उसके रक्त मे व्यवाय-कायाणु विद्यमान रहेंगे तब तक वह सचयाधार बना रहेगा। विषमज्वर पीडित समाज में मुख्य सचयाधार बालक होते हैं।

संक्रमण— विषमज्वर का सक्रमण मुख्यतया उपसृष्ट एनोफेलीज मच्छरी के दंश से होता है।

सहायक कारण—मच्छरो की उत्पत्ति, वृद्धि और प्रसार मे तथा मनुष्यो को दुर्बल बनाने मे जो जो सहायता करते हैं वे सब सहायक कारण होते हैं।

विषमज्वर प्रतिबन्धन के सिद्धान्त

(अ) मनुष्यशरीरगत कीटाणुओ को निर्वंश करना जिससे कि आगे व्यवायकायाणु उत्पन्न ही न होने पावे, हुए हो तो उनका भी नाश करना। इससे रोग का निर्मूलन होता है।

(आ) प्रसारक मच्छरो का नाश करना जिससे मनुष्य उपसृष्ट रहने पर भी उनका उपसर्ग औरो पर सक्रान्त न होने पावे। इससे रोग का प्रसार नही हो पाता।

(इ) मच्छरो से शरीर की रक्षा करना। इससे उपसर्ग मनुष्यो पर सक्रान्त नही हो पाता। ये सिद्धात निम्न साधनो से कार्यान्वित किये जाते हैं—

(१) मच्छरो से शरीर की रक्षा

(अ) जाली का उपयोग—इसमे मकानो के चारो ओर जाली लगवायी जाती है, जिससे मकान के भीतर मच्छर न आने पावें।

(आ) **अदंश्य प्रावरण**— इसमे शरीर पर मोटे वस्त्र, पैरो के लिए बूट, हाथ पैरो के मोजे और मुख के लिए मुखाच्छादक (Veils) इनका उपयोग किया जाता है जिनके ऊपर से मच्छर काट नही सकते। इनका उपयोग मच्छरपीडित प्रदेश में सन्ध्या तथा रात के समय घूमने फिरने के लिए किया जाता है।

(इ) **मशहरी**—निजी उपयोग के लिए मच्छरदानी बहुत उपयोगी चीज है। इसका उपयोग करना चाहिए।

(ई) **प्रत्यापसारक** (Repellents)— ये प्राय उग्रगन्ध तैल या अन्य द्रव्य होते हैं। इनका उपयोग शरीर पर मलने के लिए किया जाता है। इनकी उग्रगन्ध के कारण मच्छर दूर भाग जाते हैं। निम्न मरहम इसके लिए बहुत उपयोगी है—निम्बुकी (सिट्रोनेला) तैल १५ ग्राम, प्रासव कपूर (स्प्रिट कैम्फर) ४ ग्राम, देवदारु तैल ४ ग्राम और सफेद मृद्रसा ६० ग्राम।

मलने के लिए तैल—निम्बुकी तैल १॥ भाग, तरल मृद्रसा १ भाग, गरी का तेल २ भाग, प्रांगविक अम्ल १%। सरसों के तेल का भी उपयोग कर सकते हैं। आजकल डायमेथिल थ्यालेट (Dimethyl Phthalate) का उपयोग द्रव या मलाई (Cream) के रूप मे इसी काम में लाया जाता है।

आजकल बाजार मे इस हेतु ओडोमास क्रीम, रिप्लैक्स क्रीम, कछुआ छाप अगरबत्ती आदि उपलब्ध हैं।

(उ) **हाथ पंखे या बिजली के पंखे**— इनसे मच्छरो का परिहार होता है।

(२) **मच्छरनाशक उपाय**—इसके लिए जालीदार पखे (Swatters), पिंजरे, कीटनाशक द्रवों के फुहारे (Sprays), धूपन आदि का उपयोग किया जाता है। फुहारो में मुख्य द्रव्य मिट्टी का तेल होता है। इसमें द्वि. द्वि त्रि. (D D T) पायरैथ्रम या हृषडीयन्य (Gammexane) मिलाया जाता है। इसके फुहारे सप्ताह मे दो या तीन बार और विषम ज्वर के मौसम मे प्रतिदिन करने चाहिए।

धूपन से भी मच्छर नाशन का कार्य किया जाता है। धूपन के लिए गन्धक या क्रावपव (१००० घनफुट स्थान के लिए १००-१५० ग्राम) बहुत अच्छे है। इसके अतिरिक्त बस्ती के पास होने वाले जङ्गल को तोडने से भी मच्छरो का उपद्रव कम होता है, क्योकि कुछ अनोफेलीज मच्छर दिन मे जगलो में, घनी झाडी में जाकर आराम करते हैं।

(३) **द्वि. द्वि त्रि. (D. D T.)**-यह द्रव्य जैसे कीटघ्न है वैसे इल्ली नाशक भी है। इसका उपयोग तैल मे घोल बना करके पानी भरे स्थानो पर छिड़का जाता है। इसमे दोष इतना ही है कि मात्रा जरा सी अधिक होने पर मछलियां भी मर जाती हैं।

(४) **इल्लीनाशक (Larvicidal) मछलियाँ**—कोई या सघुरा (Anabas Scandens), पीकू (Haplochilus

linctus) तथा [illegible] अपना निर्वाह किया करती है। इनका उपयोग [illegible] के लिए कहीं-कहीं किया जाता है।

(४) कीटाणुनाशक औषधियाँ—इनका उपयोग मनुष्य शरीरगत कीटाणुओं तथा उनके [illegible] का नाश करने के लिए किया जाता है—

१ विज्वरी (Quinine)

२. अटेब्रिन (Atebrin)

३. पाल्युड्रिन या प्रोग्वानिल ३ गोलियाँ एक दिन चिकित्सा के लिए। १ गोली प्रतिदिन या २ गोलियाँ सप्ताह में एक बार रोगप्रतिबन्धन के लिए।

४ प्लाज्मोचिन (Plasmochin)- यह औषधि मारात्मक विषम कीटाणु [illegible] नाशक होने से अद्वितीय है। इसका उपयोग विज्वरी के साथ किया जाता है। प्रतिदिन [illegible] एक गोली (इसमें १/६ ग्रेन प्ला. ४॥ विज्वरी) सेवन की जाती है। विज्वरी या अटेब्रिन द्वारा रोग मुक्त होने के पश्चात् पांच दिन तक प्लाज्मोचिन लेने से शरीर [illegible] रहित हो जाता है।

विषम ज्वर की आयुर्वेदिक चिकित्सा

(१) गोदन्ती भस्म २ रत्ती, मृत्युञ्जय रस १ रत्ती, महाज्वरांकुश रस १ रत्ती। यह मात्रा ६। तुलसीपत्र [illegible] दिन में [illegible] बार। [illegible]

(२) [illegible] ३ माशा की [illegible] दिन में [illegible] बार दें।

(३) विषमज्वरान्तक लौह (सि० यो०) [illegible] दिन में [illegible] बार दें।

(४) [illegible] (र० यो० सा०) [illegible] रत्ती, [illegible] २ रत्ती, [illegible] मात्रा [illegible] दिन में ३ बार दें।

[illegible]

विषम ज्वर की आधुनिक चिकित्सा

(५) [illegible] (Camoquine [illegible]), [illegible] (Comaquine P D) रिसोचिन (Resochin Bayer) [illegible] (Aulochlor I C I) आदि की गोलियाँ [illegible] के लिए तथा एरिस्टोचिन (Aristochine) दाराप्रिम (Daraprim) आदि [illegible] गोलियाँ [illegible] विषम ज्वर में [illegible] गोलियाँ हैं। इनका यथा [illegible] मात्रा में प्रयोग करना चाहिए।

(६) रोगमुक्ति के पश्चात् [illegible], [illegible] आदि का प्रयोग [illegible], [illegible] आदि के निवारण हेतु करना चाहिये।

पृष्ठ ६८४ का शेषांश .. जनपदोध्वंस या मरक विज्ञान

लय में और व्यवसाय के स्थान में इसके पहले इस रोग से कोई पीड़ित हुआ हो तो उसकी पूछ-ताछ।

प्रत्येक औपसर्गिक रोग के [illegible] की उत्पत्ति तथा संक्रमण की पद्धतियाँ भिन्न-भिन्न होने के कारण अनुसंधान के समय उस दृष्टि से पूछताछ करनी चाहिए और उसके अनुसार प्रतिबन्ध के उपायों का अवलम्बन करना चाहिये। सबके लिए सामान्य नियम नहीं बताये जा सकते। फिर भी नीचे कुछ मार्गदर्शन किया जाता है—

रोगी का पता लग जाने पर गृहान्तर्गत या रुग्णालयान्तर्गत उसका पृथकीकरण करना चाहिए। यदि रोग जल द्वारा हुआ है ऐसा मालूम हो जाय तो जिस कुँए का पानी रोगी पीता है उसका परीक्षण करके उसके विसंक्रमण का तुरन्त प्रबन्ध करना चाहिए। यदि दूध से रोगोत्पत्ति मालूम हो जाय तो दूध उबालकर पीने के लिए कहें तथा जिस ग्वाले के यहाँ से या दुग्धागार से दूध लिया जाता है उसकी जांच करें। गौ, परिवार की, दुग्धागार की, दुग्धपात्रों की जाँच करनी चाहिये। जो रोग वाहकों के द्वारा फैलते हैं उनमें नजदीकी मनुष्यों की जाँच करके वाहक ढूंढ निकालने की कोशिश करनी चाहिए। मसूरिका के प्रतिबन्धन में मसूरीकरण (Vaccination) सबसे महत्व का और एक मात्र उपाय है। यदि प्लेग का सन्देह हो तो चूहों के सम्बन्ध में विशेषतया मृत चूहों के सम्बन्ध में विचारणा होनी चाहिये। कभी-कभी एक रोग दो विभिन्न मार्गों द्वारा हो सकता है।

श्लीपद

—श्री जयनारायण गिरि 'इन्दु'

आचार्य सुश्रुत ने निदान स्थान अध्याय १२ मे बडे ही स्पष्ट शब्दो मे श्लीपद का परिचय निर्देश किया है—

"वक्षणोरू जानुजघास्वतिष्ठमाना कालान्तरेण पादमाश्रित्य शनै शोफ जनयन्ति, त श्लीपदमित्याचक्षते ।"

अर्थात् जिस रोग मे वक्षण सन्धि से शोथ उत्पन्न होकर ऊरु-जानु-जघा में होता हुआ क्रमश पाद में स्थित हो जाय और शनै शनै बढता रहे उसे श्लीपद कहते है। महामानव वाग्भट्ट भी "अष्टाङ्ग हृदय" मे सुश्रुताचार्य के कथन का समर्थन करते हुए कहते हैं—

"शनै शनैर्घन शोफ. श्लीपदम् ।"

अर्थात्—क्रमश घनता को प्राप्त हुए शोथ को श्लीपद कहा जाता है।

इस रोग की उत्पत्ति विशेषत उन प्रदेशो में अत्यधिक रूप से सम्भव है, जहा अधिक दिनो तक वर्षा या गढे का जल सचित रहता हैं अथवा प्रत्येक ऋतुओ मे शीत वर्तमान रहता हो। सुश्रुत ने इसी तथ्य को निम्न शब्दो के माध्यम से व्यक्त किया है—

पुराणोदक भूयिष्ठा सर्वर्तुषु च शीतला. ।
ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदाजि विशेषत ॥

—सु नि १२

'चरक के अनुसार यह रोग वैसे प्रदेशो में विशेष रूप से होता है, जहां गम्भीर जलवाली नदियाँ बहुश वृक्ष, बहुश पर्वत, निर्वात अथवा मदुशीतवात चलता हो, जहा आतप का दर्शन नही होता हो और जहा के निवासी मृदु और सुकुमार प्रकृति के हो।
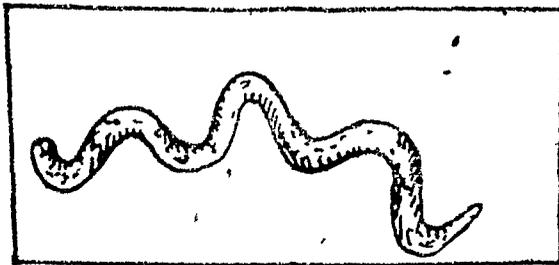
श्लीपद रोग का जीवाणु—फाइलेरिया पैनीक्रापट

एलोपैथिक पद्धति के विद्वान इस रोग का प्रधान कारण Filaria Panicraft जीवाणु मानते हैं। इन कारणो के अतिरिक्त वे सहायक कारणो मे हमारे पूर्वाचार्यों द्वारा वर्णित सिद्धान्तो का भी समर्थन करते है। वे सहायक कारणो मे शीलनयुक्त स्थान और आनूपदेश मानते हैं। वाग्भट्ट ने आनूपदेश वैसे स्थानो को कहा है जहाँ वर्षादि का वारि अधिक दिवस तक सचित रहता है। यह बहुत सम्भव है कि आनूप प्रदेश मे इस रोग के कृमि अधिक होते हो और सामान्य मच्छरो के अतिरिक्त इस व्याधि के वाहक अथवा प्रसारक मच्छर Culex fatigens अधिक होता हो।

प्रकुपित वात पित्तादि त्रिदोष अगो के अध भाग मे सबसे पहले वक्षण मे स्थित होता है। इसके पश्चात् दूष्य रक्त, मास, मेद से मिलकर उरु-जानु-जघा मे क्रमशः आ जाता है। चरकाचार्य के अभिमतानुसार उरु-जानु-जघा के पश्चात् पिण्डो एव प्रपद मे आकर धीरे-धीरे श्लीपद भूत शोथ को उत्पन्न करते है। क्योंकि—

"कुपितास्तु दोषा वातपित्त श्लेष्माटिर्ध प्रपन्ना वक्षणोरूजानु जघास्वतिष्ठमाना कालान्तरेण पादमाश्रित्य शनै शनै शोफ जनयन्ति ।" —च नि. १२

इस प्रकार वक्षण मे दोषादिक का अवस्थान ही श्लीपद के पूर्वरूप हैं। माधव-मधुकोष के अभिमतानुसार—

"वक्षणावस्थानमेवास्य पूर्वरूपम् ।"

श्लीपद के सामान्य लक्षण

१—इस व्याधि मे वक्षण सधि में शोथ और रूक् हो जाता है।

२—इस व्याधि में ज्वर की उपस्थिति होती है और स्वत उसका उपशम भी हो जाता है।

३—शोथ अथवा ज्वर या शोथ और ज्वर आवेग रूप में आते हैं। प्रति आवेग में शोथ पैर की ओर अग्रसर होता है।

४—श्लीपदजनित शोथ अंगुली से दबाने पर अन्य शोथ की भांति उसमें गढा नहीं पड़ता है।

५—प्रत्येक वार वेग शमन रहने पर किंचित् शोथ अवशिष्ट रह जाता है। इसका यह भी अर्थ होता है कि पूर्वापेक्षया प्रतिवार के वेग में शोथ की वृद्धि होती है।

श्लीपद रोग-भेद

श्लीपद के ८ भेद होते हैं—(१) वातज, (२) पित्तज (३) कफज, (४) कफवातज, (५) रक्तज, (६) मासज, (७) मेदज और, (८) शुक्रज।

साध्यासाध्यता

"तत्र सम्वत्सरातीतमात महद्वल्मीक जात प्रभूतमिति वर्जनीयानि।" —सु० नि० १२

यानी—जिस श्लीपद के कारण शोथ से वल्मीकवत् उभार उत्पन्न होकर उसमें से स्राव निष्कासित हो और उसे एक वर्ष व्यतीत हो गया हो वैसा श्लीपद साध्य नहीं होता। रोगी अगर कफज प्रकृति का हो और कफज, आहार विहार द्वारा यह रोग हुआ हो, शोथ महान एव स्रावयुक्त हो, तीनो दोषो के लक्षण मिलते हो, साथ ही कण्डु की विशेषता हो तो ऐसा श्लीपद असाध्य होता है। देखिए—

यच्छ्लेष्मलाहार विहार जातं
जातं तथा भूरिकफस्य पुंस.।।
सास्रावमत्युन्नत सर्वलिङ्गं
सकण्डुकं चापि विवर्जनीयम्।।

चिकित्सा

(१) भावमिश्र इस रोग की चिकित्सा मे निर्देश करते हुए लिखते हैं—

वर्षाभू त्रिफला चूर्णं पिप्पल्यासर योजितम्।
सक्षौद्र श्लीपदे लिह्याच्चिरोत्थ श्लीपद जयेत।।

अर्थात्—पुनर्नवा, त्रिफला, पिप्पली के चूर्ण को मधु के संग सेवन करने से पुरातन श्लीपद का नाश होता है।

(२) भावमिश्र उपर्युक्त योग के अतिरिक्त कतिपय बाह्य प्रयोगार्थ योगो के प्रयोग का भी निर्देश किया है। यथा—

धत्तूरैरण्ड निर्गुण्डी वर्षाभू शिग्रु सर्षपैः।
प्रलेपं श्लीपदहन्ति चिरोत्थमपि दारुणम्।।

यानी धत्तूर, एरण्ड, पुनर्नवा, शिग्रु, सर्षप लेप करते रहने से चिरकालिक शोथ शमन होता है।

(३) भैषज्य रत्नावली के मतानुसार—

गन्धर्व तैल सिद्धा हरीतकी गोजलेन य पिबन्ति।
श्लीपद बन्धन मुक्तो भवत्यसौ सप्त रात्रेय।।

अर्थात्—एरण्ड भ्रष्ट हरीतकी चूर्ण को गोमूत्र से सेवन करने से मात्र सात दिन मे ही श्लीपद का शमन हो जाता है।

(४) 'भैषज्य रत्नावली' के ही अनुसार हरिद्रा चूर्ण गुड के साथ लेकर ऊपर से गोमूत्र का व्यवहार इस व्याधि के निवारणार्थ करना उपयोगी होता है। यथा—

रजनी गुड संयुक्ता गोमूत्रेण पिबेन्नर।
वर्षोत्थ श्लीपद हन्ति दद्रुकुष्ठ विशेषतः।।

(५) भैषज्य रत्नावली के प्रणेता का कथन है कि नित्यानन्द रस ५-१० रत्ती २-१ बार शीतल जल के साथ प्रयोग कराना चाहिये। आयुर्वेदीय परम्परा मे यह योग वैद्यवर्ग द्वारा इस रोग मे विशेष रूप से व्यवहृत होता है।

(६) चरकाचार्य का अभिमत है कि शोथ स्थान पर वेदनाहर तैल के अभ्यंग से अपूर्व लाभ प्राप्ति होती है। अभ्यंग करने के उपरान्त उपनाह स्वेद गोधूम या यव चूर्ण को अम्ल काजी, सुराबीज तथा स्नेह मिलाकर मोटा लेप लगा देना चाहिए। तदुपरान्त ऊपर से उष्ण वस्त्रो यथा कम्बल आदि से बाँध देना चाहिए। दिवाबन्ध को रात्रि मे और रात्रि बन्ध को दिन मे खोल देना चाहिए।

(७) सुप्रसिद्ध आयुर्वेदीय प्रतिष्ठान जी. ए. मिश्रा आयुर्वेदिक फार्मेसी झाँसी "श्लीपदारि" नाम से कैपसूल और इन्जेक्शनो का निर्माण करती है जो इस रोग की अतीव गुणप्रद विशुद्ध आयुर्वेदीय अवदान मानी जायगी। विवरण पत्रानुसार प्रयोग कर लाभ उठावें।

(८) पित्तज श्लीपद में, जिसका वर्ण पीताभ लोहित

है, स्पर्श में मृदुशोथ होता है, सूतशेखर रस १ ग्राम और प्रवाल भस्म ८ ग्राम को मिलाकर ३ घण्टा मर्दन करके दूध एवं निम्न क्वाथ मिलाकर प्रयोग करना चाहिए—

वरूणत्वक, शिग्रुत्वक, मार्कण्डिका पुनर्नवा, हरीतकी, देवदारू, त्रिकटु, गुडूची सब सममाग लेकर आठ गुने पानी में क्वाथ करे। चतुर्थांश शेष रहने पर प्रयोग करावें।

(९) पित्तज श्लीपद में बाह्य प्रयोगार्थ निम्न लेप का प्रयोग हितावह है—

मंजिष्ठा मधुकं रास्नां सहिस्रां सपुनर्नवाम्।
पिष्टवारमालेपोऽयं पित्तं श्लीपद शान्तये॥
—भै० र०

अर्थात् मजीठ, मधुयष्टि, रास्ना, हिंस्रा, पुनर्नवा और काञ्जी का प्रलेप पित्तजन्य श्लीपद को शमन करता है।

(१०) कफज प्रकार के श्लीपद में शोथ का वर्ण श्वेत व पाण्डु होता है तथा स्पर्श में स्निग्धता प्रतीत होती है। आन्तरिक प्रयोगार्थ आरोग्यवर्द्धिनी २ से ८ रत्ती दिन में दो बार उष्णोदक के साथ प्रयोग करावें, मेरा अनुभूत है।

(११) कफ विकारजन्य श्लीपद में सुश्रुतवर्णित निम्न योग बाह्य प्रयोगार्थ अतीव गुणप्रद है—

विडङ्ग, मिर्च, आक, शुण्ठी एव चित्रक का लेप।

(१२) महर्षि सुश्रुताचार्य के अभिमतानुसार कफज श्लीपद के रोगी के पैर के अंगूठे मे शिरावेधन कर्म सम्पादित करके रक्तमोक्षण करना चाहिए।

(१३) सुश्रुत के ही अनुसार अभया का गोमूत्र के साथ सेवन कराना इस रोग में उपयोगी है।

(१४) रसोनसुरा १५ बूँद से ६० बूँद तक जल के साथ भोजनोत्तर देवें।

(१५) हरिद्रा व गुड दोनो सममाग मिलाकर गोमूत्र के साथ सेवन करने से श्लीपद का प्रतिषेध होता है।

(१६) लोध, बडी हरड, कायफल, आँवला, खदिर और शाल की छाल सममाग २ तोला, जल २५० ग्राम क्वाथ कर २५ ग्राम शेष रहने पर पीने को दे। इससे श्लीपदजन्य पायसमेह (Chyluria) की निवृत्ति होती है।

(१७) श्लीपद-गज-केशरी (भै० र०) २ रत्ती गरम जल के साथ प्रात. तथा सायंकाल दें।

(१८) नित्यानन्द रस (र० सा० स०) १ गोली हरड के कषाय के साथ प्रात साय दें।

(१९) चित्रक, देवदारु, सरसो, सहजन की छाल को गो-मूत्र मे पीसकर सुखोष्ण लेप करने से श्लीपद के शोफ का शमन होता है।

(२०) धतूरे की पत्ती, एरण्ड की जड, निर्गुण्डी की छाल, भूमि आमला, सहजन की छाल, सरसो को गोमूत्र या जल में पीस कर लेप करने से श्लीपद की सभी अवस्थाओ में लाभ होता है।

श्लीपद की आधुनिक चिकित्सा

(२१) एसिटार्सल, एसिटिलारसान, एसिटार्सिन, ऐन्थिपोमलीन के इन्जेक्शन सप्ताह मे २ बार २ सी० सी० की मात्रा में देने से लाभ होता है।

(२२) हेट्राजान, वैनासाइड, कार्मिलाजाइन मे से किसी को ५० मि० ग्राम की मात्रा मे दिन में ३ बार लेने से रक्त से सूक्ष्म श्लीपदी पूर्णतया निकल जाते हैं। कुल १५ दिन तक देना चाहिये।

पथ्यापथ्य

पुरातनशालि, षष्टीक शालि, यव, कुलथी, एरण्ड तैल, गोमूत्र, लहसुन, करेला, पुनर्नवा, परवल, मूली, गोदुग्ध आदि।

अपथ्य

पिष्टान्न, गुड, आनूप मास, गर्ममसाला, जलाशय का जल।

—वैद्यरत्न श्री जय नारायण गिरि "इन्दु"
धजवा, पो०नूरचक (मधुबनी) बिहार

व्याख्या—इसमे ज्वर, त्वचा पर छोटे-छोटे गुलाबी दाने और हड्डियो जोडो मे तीव्र पीडा ये लक्षण होते हैं। हड्डियो की पीडा इतनी तीव्र होती है कि हड्डियाँ टूट रही है ऐसा मालूम होता है। इस कारण से यह रोग 'हड्डीतोड बुखार' भी कहलाता है।

हेतु और संक्रमण—इस रोग का कारण कोई विषाणु
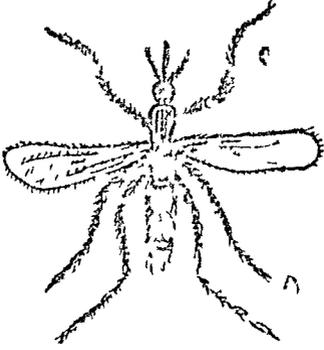
दण्डक ज्वर कीटाणु वाहक मक्षिका

है। रोग का प्रसार स्टेगोमिया फेशिएटा या ईडीज इजिप्टी (Stegomyia fasciata or Ades Aegypti) से होता है। दण्डक ज्वर पीडित मनुष्य के रक्त मे प्रारंभिक तीन दिन तथा उसके पूर्व १० घटा रोग का विष रहता है। इस अवधि मे स्टेगोमिया मच्छरी के काटने से उसके शरीर मे रोग का विष प्रविष्ट होता है। वहाँ पर १०-१२ दिन तक उसमे कुछ परिवर्तन होता है। उसके पश्चात् मच्छरी जीवन भर रोग का संक्रमण अपने दश से कर सकती है। यह मच्छरी दिन मे काटती है।

दण्डक ज्वर की चिकित्सा

(१) अभयादिमोदक या मैगनेशियम सल्फेट से विरेचन देकर कोष्ठ शुद्धि करें।

(२) लक्ष्मीनारायण रस २-२ रत्ती दशमूल क्वाथ से।

(३) रत्नगिरि रस, सजीवनीवटी, जयन्तीवटी, सुदर्शन चूर्ण आदि का यथा आयु प्रयोग करें।

(४) सर्वांग वेदना को दूर करने के लिए एसजीपायरिन (Esgypyrin) या नोवाल्जिन का सूचीवेध देवें।

(५) आयलोटायसिन (Ilotycin) या एक्रोमाइसिन के केपसूल एवं इन्जेक्शन सदा लाभदायक हैं।

(६) सोडा सैलिसिलास (Soda Salicylaas) ५ ग्रेन, सोडा बाई कार्ब (Soda bi-carb) १० ग्रेन, पाट साइट्रास (Pot citras) १० ग्रेन, टि० वेलाडोना (Tr Belladona) १० बूंद, टि० कार्ड को (Tr.card-co) १० बूंद, सिरप आरेन्ज (Syp Orange) १ ड्राम, जल (Aqua) १ औंस—इन सबकी १ मात्रा बनाकर प्रति ६ घण्टे पर देने से ज्वर तथा वेदना का शमन होता है।

यह एक चिरकालीन स्वरूप का रोग है जिसमें ज्वर, प्लीहा और यकृत् की अभिवृद्धि, रक्तक्षय, कृशता, शरीर का कालापन इत्यादि लक्षण होते है।

कारण—इस रोग का कारण लीशमन-डोनोवन पिण्ड नामक कीटाणु (L. D. Body) है। इसकी दो अवस्थायें होती हैं—एक रोगी के शरीर में और दूसरी प्रसारक कीड़े के शरीर में।

सहायक कारण—कालाजार स्त्री पुरुषो में तथा

सब अवस्थाओ में दिखाई देता है। परन्तु एक वर्ष तक के बच्चो मे तथा ५० वर्ष के पश्चात बूढ़ो मे बहुत कम होता है। वर्धमान तथा युवा अवस्था में ५-२५ वर्ष तक (६५ प्रतिशत) अधिक होता है। भूमध्यसमीपवर्ति प्रदेशो मे अधिक होता है, इसलिए उसको शैशवीय (Infantile) नाम दिया है। नगरो की अपेक्षा गावो में और पठारो की अपेक्षा नीची सतह की कछार (Alluvial) भूमि में यह रोग अधिक होता है। २००० फुट से अधिक ऊँचाई के तथा किट्ट वर्ग की स्थली मे होने वाले कुछ प्रदेशो में यह बहुत कम दिखाई देता है। जिस प्रदेश में वर्षा अधिक होती है, वातावरण मे आक्लेद (Humidity) अधिक रहता है, जहा का ताप ५०° फै० से कम और १००° फै० से अधिक नही होता ऐसे प्रदेशो में यह रोग होता है। श्लेष्मक, विषम ज्वर, आन्त्रिक ज्वर, अकुशकृमि रोग तथा अन्य शरीरदौर्बल्यकर औपसर्गिक रोगो से पीड़ित होने पर इसके होने में सहायता होती है। इनमें आन्त्रिक ज्वर इसकी उत्पत्ति में विशेषतया सहायता करता है ऐसा अनेक शास्त्रज्ञो का अनुभव है। अकाल और आर्थिक दुरवस्था भी इसकी उत्पत्ति मे सहायक होते हैं। यह रोग अँधेरे और गन्दे मकानो तथा झोपड़ियो में, विशेष करके जिसकी फर्श और आस पास की भूमि मुर्गी, भेड-बकरी तथा अन्य प्राणियो के मल-मूत्र से खराब रहती है, रहने वालो मे हुआ करता है। उसमे भी ऊपर के खण्डो पर रहने वालो की अपेक्षा नीचे के खण्डो में रहने वालो मे अधिक होता है।

भारतवर्ष में यह रोग असम, बगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश का पूर्वभाग (अधिक से अधिक लखनऊ तक), तमिलनाडु का पूर्वी तट विशेषकर मद्रास शहर, तूतीकोरिन, तिनेवल्ली इत्यादि प्रान्तो मे पाया जाता है। पजाब, बम्बई, राजस्थान, मध्यप्रदेश, मलाबार इत्यादि पश्चिमी प्रान्तो में यह नही पाया जाता। यह रोग गगा और ब्रह्मपुत्र नदी के मुख से प्रारम्भ होकर धीरे-धीरे पश्चिम की ओर फैलता गया। इसकी गति बहुत मन्द (प्रति वर्ष १०-११ मील) रही है।

सक्रमण—(१) कीटक दश—इस रोग का सक्रमण फ्लेबोटोमस जाति के एक भुनगे के दश से होता है।

(२) दूषित खाद्य पेय--रोगी के मलमूत्र से उपसृष्ट खाद्यपेय पदार्थों के द्वारा भी इसका सक्रमण हो सकता है।

(३) बिन्दूत्क्षेप—कुछ रोगियो के नासास्राव में काला-जार के कीटाणु उपस्थित रहते है। इसलिए इसका प्रसार बिन्दूत्क्षेपो के द्वारा भी हो सकता है।

लीशमन-डोनोवन पिण्ड के सचयाधार भारतवर्ष में मनुष्य ही होते हैं। ये पिण्ड रक्त मे एक कायाणुओ के भीतर या यकृत प्लीहादि अङ्गो की अन्तश्छदीय (Endothelial) कोशाओ के भीतर रहते हैं। त्वचागत विकृति मे ये त्वचा मे पाये जाते है और चिकित्सा पूर्ण होने के पश्चात् ये त्वचा मे सुप्त स्थिति में होते हैं। सक्षेप मे उपसृष्ट मनुष्य से भुनगे के द्वारा स्वस्थ मनुष्यो पर रोग का सक्रमण हुआ करता है।

कालज्वरवाहक भुनगा—यह फ्लेबोटोमस जाति का कीडा है इसका रग भूरा होता है। शरीर बीच मे मुड़ा रहता है। सम्पूर्ण शरीर पर तथा पैरो पर छोटे छोटे रोयें होते हैं। यह रक्तशोषी कीडा है, नर और
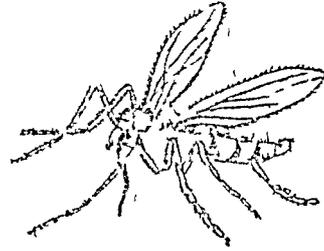
कालाजार कीटाणु वाहक मक्षिका

मादा दोनो रक्त चूसते है। ये अन्धकार प्रिय होने से रात को बाहर निकल कर काटते है और दिन में अधेरे स्थान में आश्रय लेते है। ये न बहुत ऊँचे उड सकते है न बहुत दूर जा सकते है।

कीटक शरीरगत वृद्धि--जो मनुष्य कालाजार से पीडित रहता है उसके अधिचर्म के नीचे के स्तरो मे स्वेद पिण्ड और धमनिकाओ के आस-पास कीटाणु से भरी हुई असख्य कोशायें रहती हैं। जब ऐसे व्यक्ति को यह भुनगा काटता है तब कोशाओ के भीतरी कीटाणु उसके आन्त्र में चले जाते हैं। वहाँ पर वे कृत्रिम सवर्ध के समान तन्तु-पिच्छी रूप मे परिवर्तित होकर सख्यावृद्धि करते हैं। उसके पश्चात् ये ग्रसनिका और मुख में भी आते हैं जिसके

लिये ७-१२ दिन लगते हैं। इस प्रकार मुख मे आये हुए कीटाणु काटते समय प्रभेदिनी में से स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रवेश करते हैं।

रोकथाम—कालाजार पीडित मनुष्य की योग्य चिकित्सा करना। जिस मकान या वस्ती मे कालाजार होता है उस मकान या वस्ती का परित्याग करना और अन्य मकान या स्थान में निवास करना, मकान के अधेरे और सील स्थान मे फर्श और दीवारों की दरारो पर अधिक ध्यान देकर फार्मेलिन, द्वि द्वि.त्रि, पायरेथ्रम या गन्धक के द्वारा मक्खियो का नाश करना, सोने के लिए दूसरा मजिल, जहां पर दिन मे काफी प्रकाश आता हो, का उपयोग करना, अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र की (मलमल की) मशहरी का उपयोग करना, मकानो के आसपास के कूडे-कर्कट का नाश करदी करना, जिससे मक्खियो की उत्पत्ति न होने पावे, जमीन पर न सोना इत्यादि उपाय करें।

कालाजार की चिकित्सा

(१) ज्वराशनि १ रत्ती ताराभ्रक लौह १ रत्ती, गुडूची सत्व ४ रत्ती की एक मात्रा तुलसी तथा शेकाली पत्र स्वरस और मधु से दिन मे तीन बार देने से शीघ्र लाभ होता है।

(२) मलावरोध होने पर ज्वर केशरी या अश्व-कचुकी रस की २ गोली रात्रि मे ठण्डे पानी से देवें।

(३) प्रवालपिष्टी २ रत्ती सुदर्शन अर्क से ४-४ घण्टे पर दिन मे ५-६ बार देवे।

(४) मृतशेखर रस ½ रत्ती शहद से दिन मे दो बार दे।

(५) लोहभस्म १ रत्ती, अभ्रक भस्म ½ रत्ती तथा नागभस्म ¼ रत्ती मिलाकर त्रिफलारिष्ट से एक मास तक दिन मे २ बार देवें।

(६) यूरिया स्टिबेमिन (Urea stıbamıne), निओ-स्टिबोसन (Neostıbosen), सोलूस्टिबोसन (Solustıtbo-sen), स्टिबेटिन (Stıbatın concentrated), सोल्यूस्टि-बामिन (Solustıbamıne), स्टिबिनाल (Stıbınol), मायोस्टिबिन (Myostıbın) स्टिलबामिडिन (Stılbamı-dıne), पेन्टामिडिन आइसेथायोनेट (Pentamıdıne Isothıonate) इत्यादि इन्जेक्शन विवरण पत्र के अनुसार देने से कालाजार नष्ट हो जाता है।
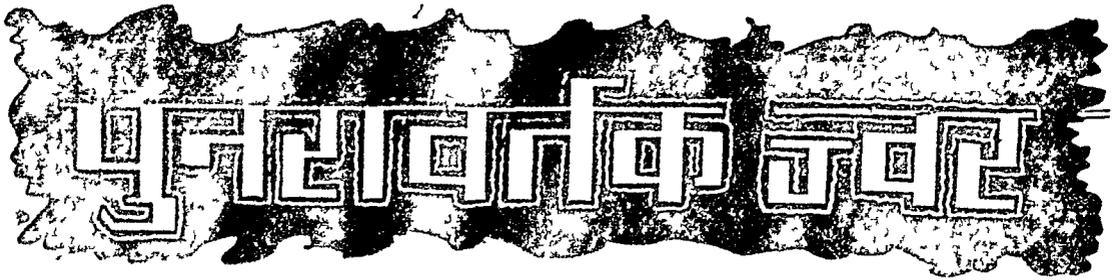
पर्याय—हेर-फेर का ज्वर (Relapsıng fever).

हेतु—इस रोग का कारण स्पायरोकीटा ड्यूटोनी और स्पा. रिकरटिस नामक चक्रकीटाणु है।

सहायक कारण—यह रोग शीतकाल में प्रारम्भ होकर, वसन्त मे अधिक रहकर गर्मियो मे बन्द हो जाता है। सर्व अवस्थाओं के स्त्री-पुरुषो मे यह होता है। परन्तु जवान पुरुष इससे अधिक पीडित होते हैं। जूओ से फैलने वाला रोग होने के कारण पुराने मलीन कपडो से सम्बन्ध रखने वालो मे जैसे धोबियो मे, रोगियो के नौकरो तथा परिचारकों में अधिक होता है।

संक्रमण—इस रोग का सक्रमण जू और किलनी (Ornıthodoıus moubata) द्वारा होता है।

यूका—सस्तन प्राणियो के रक्त पर निर्वाह करने वाले विना पख के ये कीडे हैं। मनुष्यो पर इसकी तीन उपजातियाँ मिलती हैं—(१) शीर्षयूका (Pedıculus capıtıs)—यह जुआँ सिर के बालो मे रहता है। (२) मानवी शरीर यूका (P Humanus corporıs)—यह जुआँ मनुष्यो के शरीर तथा कपडो पर रहता है। (३) गुह्याग यूका (Phthırus Pubıs)—इसको कर्कट यूका

(Crab louse) भी कहते हैं। यह जुआं जननेन्द्रियो के बालो में रहता है। जुआं अपने पैरो द्वारा, जिनमे बारीक नख होते हैं शरीर मे या बालो मे चिपट जाते हैं।

इसके सिवा कुत्तो के द्वारा भी इनका स्थानान्तर हो सकता है। एक ही व्यक्ति पर तीनों प्रकार के जुएँ मिल सकते हैं, परन्तु साधारणतया स्त्रियो में सिर के जुएँ और पुरुषो मे बाकी दोनो प्रकार के जुएँ अधिक मिलते हैं।

यूका नाशन—जिन लोगो मे जुएँ हो उनका सम्पर्क बन्द करो। प्रतिदिन शरीर की और कपडो की तथा बिस्तरे की सफाई रक्खो। त्वचा निकटवर्ती कपडो (जैसे बनियान, गञ्जी इत्यादि) को प्रतिदिन उबलते पानी से साफ करो। ऊनी कपड़े, रुई की बन्डी वगैरह जो इस प्रकार साफ नही किये जा सकते उनको प्रतिदिन धूप मे रक्खो और उनकी सीवनो को गौर से देखो कि उनमे जुएँ तो नही हैं। सिर के बालो को प्रतिदिन कघी से साफ करो। यदि जुएँ बहुत हो तो पुरुषो मे हजामत और स्त्रियों में बालो को कटवाना ही प्रशस्त है। वैसे ही बगल के और गुह्याग के बालो को कैंची से काटना या उस्तुरे से मूडना ही उचित है। इसके सिवा गरम पानी और साबुन से उसको साफ रखना भी चाहिए। सिर के जुएँ के लिए मिट्टी का तेल, गुडुवा तेल, पेट्रोल, तैलपर्ण तेल इत्यादि तेल बालो पर लगाये जाते हैं। इसके सिवा पारद का मरहम (Ammoniated mercury ointment 5 %) भी लगाया जाता है। तेलो का प्रयोग न बहुत देर तक करना चाहिए, न प्रयोग के समय आग या बत्ती के पास बैठना चाहिए।

रोग प्रतिषेध—प्रतिषेध के लिए रोग का निदान एक आवश्यक बात है। निदान होते ही १०% द्वि० द्वि० त्रि० से रोगी तथा उसके घर के लोग और कपडे निर्यूक करने चाहिये।

किलनी—उष्ण प्रदेशो में बहुत मिलने वाला यह एक साधारण कीडा है जो गाय, बैल, कुत्तो, घोड़े के उपर अकसर पाया जाता है और इनके संपर्क से मनुष्यो पर चिपट जाता है।

पुनरावर्तक ज्वर के सिवा किलनी से तद्रिक ज्वर का भी सवहन होता है।

किलनीवह रोग प्रतिषेध—मिट्टी की जमीन और घास फूस-बाँस इनकी झोपडियो से किलनी का नाश करना असभव है। प्रवास में झोपडी में न सोना चाहिए तथा बिस्तरा जमीन पर न रखकर ट्रक मे रखना चाहिए, जिससे ये उसमे न जाने पावें। जमीन पर न सोना चाहिए। मशहरी का उपयोग करना चाहिए। किलनी प्रकाश से दूर भागती है, इसलिए दिन में सुप्रकाशित स्थान में कोई डर नही होता तथा रात को बत्ती जलाने से भी उनकी तकलीफ कम हो जाती है। जिस मकान मे ये अधिक हो वह अगर पक्का हो तो उदस्यामिक वायु से उसका विशोधन करना जरूरी है। जमीन पर तथा दरारो में द्वि० द्वि० त्रि० या गमैक्सीन का छिड़काव करने से इनका नाश हो सकता है।

पुनरावर्त्तक ज्वर की चिकित्सा—(१) कस्तूरी भैरव रस, चन्द्रोदयरस, मकरध्वज या जवाहर मोहरा किसी एक को १–१ रत्ती की मात्रा मे प्रात. साय सेवन करें।

(२) सोमल पुष्प, रसपुष्प या मल्ल पुष्प को १–१ रत्ती की मात्रा में शहद से प्रात साय देवे।

(३) पेनिसिलीन का इन्जेक्शन ४ लाख यूनिट की मात्रा मे देने से लाभ होता है।

(४) नोवारसेनोबिलियम (N A B.) ०.३ की मात्रा में १० सी.सी जल में घोल सिरामार्ग से धीरे धीरे देवे।

(५) एसिटिलारसन (Acetylarson) ३ सी सी का एम्पूल पेशी मार्ग से देवे।

(६) स्टोवारसल (Stovarsal) ४ ग्रेन की गोली ३ बार प्रतिदिन सेवन करावें।

(७) नेयोसोलोनाल (Neo Solanol) ०.५ ग्राम की मात्रा में पेशीमार्ग से देवे।
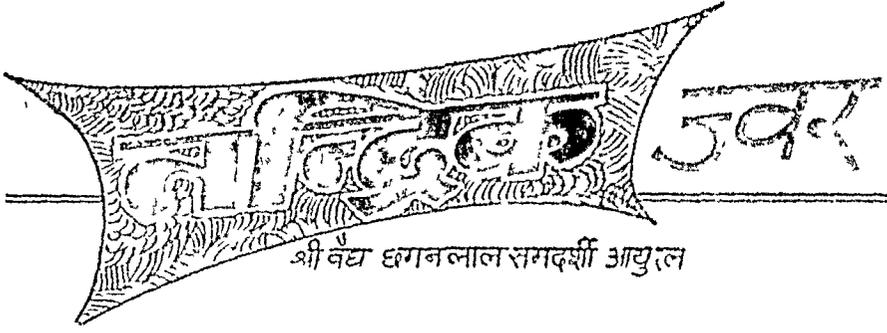
रिकेट्सीय रोग या तन्द्रिकज्वर

(Rickettsia diseases, Typhus fevers)

व्याख्या— रिकेट्सिया रोग औपसर्गिक ज्वर होते हैं जिनमे २-३ सप्ताह तक रहने वाला सन्तत या अर्ध विसर्गी स्वरूप का सताप रहता है, (कि ज्वर वर्ग को छोड़कर) त्वचा पर विस्फोट निकलते हैं, जिनमें महत्व के मानसिक और नाडी सस्थान के लक्षण होते हैं तथा जिनमें रोगी के रक्त में नानारूप (Proteus) जीवाणुओ के प्रति प्रसमूहिक द्रव्य उत्पन्न हुआ करते हैं।

हैतुकी—प्रधान हेतु रिकेट्सिया वर्ग के जीवाणु है।

प्रसार और प्रकार—रिकेट्सिया कोषान्तर्य जीव
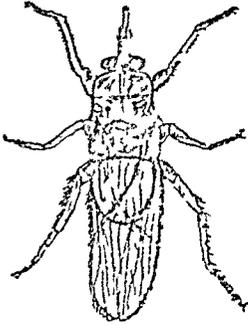
तन्द्रिक ज्वर वाहक मक्षिका

होने के कारण प्राणियो के शरीरो के बाहर था धातु कोशाओ के बाहर नही मिलते। कुत्ता, खरगोश, मूषक, चूहा इत्यादि रदनिन (Rodents) वर्ग के प्राणी इनके सचयाधार (Reservoir) होते हैं जिनमें मनुष्य भी होता है। इन रदनिन जीवो से तथा मनुष्यो से अन्य मनुष्यों पर इनका सक्रमण कुटकी, किलनी, मकडी इत्यादि अष्टपाद (Arachnids) तथा षट्पाद (कीटक Hexapods) वर्ग के जीवो से हुआ करता है।

इसके निम्न चार भेद है—

१ मरक तन्द्रिक

इसे Epidemic typhus, विस्फोट तन्द्रिक Typhus exanthematicus, शिविर या कारावास ज्वर Camp or jail fever, यूकावह तन्द्रिक Louse-borne typhus युद्धपिशन, तन्द्रिक, अकालज्वर Famine fever भी कहते है।

यह एक तीव्र तथा घातक रिकेट्सिया का उपसर्ग है जिसमे सन्तत ज्वर, त्वचा पर विस्फोट, नाड़ीसस्थान का प्रक्षोभ और अत्यधिक श्वसन्नता होती है। ठीक होने वाले रोगियो में १४वें दिन यदायक ज्वरमोक्ष होता है।

हैतुकी—इस रोग का कारणभूत जीवाणु रिकट्सिया प्रोवाभेकी (R. Prowazeki) है।

यह रोग प्राय महामारी या जानपदिक रूप धारण करता है। इसलिए इसको मरक तन्द्रिक नाम दिया गया है। ससार में इसके आज तक सौ से अधिक मरक हो चुके हैं। ये मरक अधिकतर युद्ध के समय आया करते हैं। १९१९ के महायुद्ध के समय अकेले पोलैण्ड में इससे दो लाख के करीब और रूस मे ढाई करोड के करीब लोग पीडित हुए थे।

२. पिस्सू तन्द्रिक

पर्याय—Flea typhus, मूषा तन्द्रिक Murine typhus, स्थानपदिक तन्द्रिक Endemic typhus.

व्याख्या—यह एक ससार व्यापी सौम्य तन्द्रिकसम ज्वर है जो महामारी के रूप मे नही होता। इसका सचयाधार चूहे तथा अन्य रदनिन जीव (Rodents) होते हैं और उनमे से मनुष्यो पर इसका सक्रमण पिस्सुओ से होता है।

हेतु—इस रोग का हेतु मरक तन्द्रिक के रि० प्रोवाझेकी के समान रि० मुसेरी (R. Moosen) है।

प्रसार—प्लेग का सक्रमण जिस पिस्सू से होता है उसी से इस ज्वर का भी सक्रमण से होता है। इसके शरीर मे भी जू के समान जीवाणुओ की विवृद्धि होती है। परन्तु यूकावह्र प्रकार के समान यह रोग मरक का रूप नही धारण करता।

रोगी या सौम्य रोगपीडित मनुष्यों से स्वस्थ मनुष्यो पर इसका सक्रमण शरीर पर रहने वाली जूँ के द्वारा होता है। यह जूँ वस्तुत शरीर पर न रह कर शरीर से सम्बन्ध रखने वाले कपडो मे रहा करती है। इसलिए इसको वस्त्रयूका (P. vestimenti) भी कहते हैं। इस रोग का प्रसार मुख्यतया वस्त्रयूका से होता है। शिरोयूका भी क्वचित् सवहन का कार्य कर सकती है। इसके अतिरिक्त चूहे के पिस्सू भी कभी-कभी रोग का संवहन करते हैं।

३. किलनी तन्द्रिक (Tick Typhus)

पर्याय–Rocky Mountain spotted fever, शैलपर्वत कर्बुरित ज्वर।

व्याख्या–यह एक महामारी के स्वरूप में न फैलने वाला तीव्र और तन्द्रिकसम ज्वर है जिसमे सचयाधार रदनिन जीव होते हैं। रोग का सक्रमण उनकी विविध जातियो की किलनी से होता है।

हेतु–रिकेट्सिया रिकेट्सी नामक जीवाणु है।

४. कुटकी तन्द्रिक (Mite typhus)

पर्याय–Tsutsugamushi disease त्सुत्सुगामूशी रोग, खरक तन्द्रिक, Scrub typhus, खरक उष्णकटिबन्धज Scrub tropical, तन्द्रिक, कूट-तन्द्रिक Pseudotyhus.

व्याख्या—रिकेट्सिया से उत्पन्न होने वाला यह एक तीव्र रोग है जिसमे २-३ सप्ताह का ज्वर, स्थानिक प्राथमिक व्रण तथा तत्स्थान सम्बन्धित लसग्रथि शोथ, सार्वदैहिक विस्फोट तथा लसग्रथिशोथ, कर्णबाधिर्य और फुफ्फुस मे अधस्तल रक्ताधिक्य आदि लक्षण होते हैं।

भारतवर्ष मे यह रोग मद्रास, बम्बई, शिमला पहाड, असम, पजाब, बगाल आदि स्थानो में पाया जाता है। इस रोग का कोई विशेषकाल नही होता। फिर भी नम और तर प्रदेशो मे नदियो के समीपवर्ती स्थानो मे जब भूमि पर घास-फूस तथा उद्भिज्जात (Vegitations) अधिक रहता है तब अधिक होता है।

प्रसार—इस रोग का प्रसार कुटकी (Trombicula Deliensis) की इल्लियो (Larva) द्वारा होता है।

प्रतिबन्धन—यूका तन्द्रिका का प्रतिबन्धन यूकावह्र परिवर्तित ज्वर के समान करना चाहिये। किलनी तन्द्रिक के प्रतिबन्धन के लिए किलनी उपजुष्ट स्थानो का त्याग, यदि ऐसे स्थानो मे रहने का या निवास करने का अवसर आ जाय तो शरीर पर कही किलनी चिपटी तो नही है इसको बार-बार देखना और यदि चिपट गयी हो तो उसको मिट्टी के तेल से छुडाना, शरीर पर डायमेथिलथ्यालेट से निषिक्त (Impregnated) मजबूत वस्त्रो को पहनना, कुत्ता या अन्य प्राणियो के शरीर से हाथो द्वारा किलनियो को न निकालना, घरो मे उनका नाश करना आदि उपायो का अवलबन करना चाहिए।

पिस्सू तन्द्रिक का प्रतिबन्धन प्लेग के समान करना चाहिये। कुटकी तन्द्रिक का प्रतिबधन किलनी तन्द्रिक के समान होता है। ये कीटे घास-फूस, झाडी इनसे युक्त स्थानो में होते हैं। अत: ऐसे स्थानो का घास-फूस काटकर और उस स्थान पर ज्वलनशील तेल डालकर जला दें।

तन्द्रिक ज्वर चिकित्सा

(१) मलावरोध दूर करने के लिए एरण्डतैल या ग्लिसरीन की पिचकारी का प्रयोग करें। अमृतकचुकी रस भी काम मे ले सकते हैं।

(२) कोष्ठशुद्धि होने के बाद लक्ष्मीनारायण रस, कस्तूरी भैरव रस, ज्वर केशरी रस या महाज्वराकुश रस का प्रयोग १-१ रत्ती की मात्रा मे प्रवाल पिष्टि २ रत्ती, मधुरान्तक वटी २ रत्ती के साथ दिन मे दो बार करें।

(३) बालो में जुओ को मारने के लिए डी. डी टी. (D D T.) या निम्बतैल भरना चाहिए।

(४) टेरामाइसीन, एक्रोमाइसीन आदि कैपसूल एवं सूची के रूप मे देने से शीघ्र लाभ होता है।

(५) एण्टीटाइफस वैक्सीन (Anti Typhus-Vaccine) के दो इन्जेक्शन १ सी. सी के १-१० दिन के अन्तर से दें।
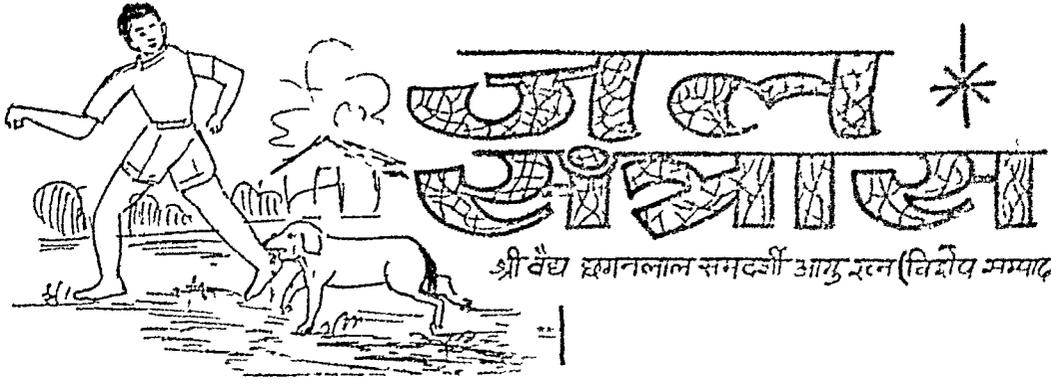
जल सन्त्रास और हाइड्रोफोबिया दोनो का योगार्थ एक है। रैबीज शब्द यद्यपि हाइड्रोफोबिया का पर्याय करके प्रयुक्त होता है तथापि वास्तव में यह पर्याय नही है। रैबीज का मतलब कुत्तो का उन्माद है। इसको संस्कृत मे अलर्क रोग कहते हैं। कुत्ते मे इस रोग से उन्माद अधिक होता है और पेशियो के आक्षेप कम होते है। मनुष्यो में उसी रोग से उन्माद कम और आक्षेप अधिक होते हैं। इन आक्षेपो का परिणाम जलसन्त्रास मे होता है। अर्थात् जलसन्त्रास का लक्षण कुत्तो मे नही होता, इसलिए कुत्तों के लिए जलसन्त्रास शब्द प्रयुक्त न करना चाहिये। जलसन्त्रास जो मनुष्यो मे उत्पन्न होता है उसको 'अलर्क विप या' आलर्क विप' कहते हैं।

पर्याय नाम—जलत्रास, अलर्क विप रोग, कुत्ते की हुड़क (Hydrofobia, Rabies)

व्याख्या—कुत्ता तथा तज्जातीय पशुओ का यह एक तीव्र औपसर्गिक रोग है। उसीसे पीडित पशुओ के काटने से मनुष्यो मे संक्रमण होता है।

हेतु—इस रोग का कारण कोई सूक्ष्मदर्शकातीत विषाणु है। यह विषाणु रोगी के मस्तिष्क में और लाला-ग्रंथियों में होता है। अतएव इसका उत्सर्ग लालास्राव में होता है। यह रोग अधिकतर कुत्ता, गीदड, भेड़िया, लोमडी, बिल्ली, सियार, बकरी, सूअर आदि प्राणियो मे होता है। इससे मृत प्राणियो के मस्तिष्क में एक विशेप प्रकार के पिण्ड मिलते हैं जो नेगरी पिण्ड (Negri Body) कहलाते हैं।

यह रोग पागल कुत्ता[1], गीदड, भेडिया विशेषतया कुत्ते के काटने से मनुष्य को होता है। पागल कुत्ते के काटने की अपेक्षा पागल गीदड या भेडिये के काटने से इसके होने का प्रमाण दुगुना अधिक होता है। जब कुत्ता पागल बनता है तब वह बिना कारण भोंकता है, दूसरे कुत्तो पर या मनुष्यो पर हमला करता है। बहुत दूर तक इधर उधर दौडता है और घास, लकडी, कोयला, पत्थर आदि अनाहार्य चीजो को भी खाता है। रोग के प्रारम्भ से १० दिन मे उसकी मृत्यु होती है। पागल कुत्ते के मुँह से लार अधिक टपकती है। इस लार में ही रोग का विप होता है। काटने पर मुख की लाला दंश के छेदो मे गिरती है। यदि किसी स्थान की त्वचा छिल गयी हो तो ऐसे स्थान मे पागल कुत्ते के चाटने से भी रोग हो सकता है।

सचयकाल—पागल जानवर के काटने पर साधारण-तया एक-दो मास मे रोग प्रादुर्भूत होता है। यह काल दंशो की संख्या, दंश का स्थान और गहराई, दंशस्थान पर वस्त्र का होना या न होना इत्यादि अनेक बातो पर न्यूनाधिक (पन्द्रह दिन से तीन वर्ष तक) हुआ करता है।

पागल कुत्ते में रोग निदान—रोग प्रतिषेध की दृष्टि

---

[1] शृगालश्वतरक्षवृक्षव्याघ्रादीना यदानिल ।
श्लेष्म प्रदुष्टोमुष्णाति सज्ञा सज्ञावहाश्रित ॥
तदा प्रस्रस्तलांगूलहनुस्कन्धोऽतिलालवान् ।
अत्यर्थंबधिरोऽन्धश्च सोऽन्योन्यमभिधावति ॥
—सुश्रुत

से कुत्ते में रोग निदान करना बहुत आवश्यक है। यदि कोई जानवर काटे तो उसको बांध रक्खो, जानसे मत मारो।

प्रतिषेध—रोग होने पर कोई इलाज[१] नहीं, परन्तु कुत्ते के या जानवर के काटने पर निम्न इलाज करने से रोग का प्रतिषेध होता है—

(१) **स्थानिक चिकित्सा**—दष्ट स्थान[२] से रक्त निकलवाकर पश्चात् साबुन के पानी से या रसकर्पूर के (१ १०००) घोल से दशस्थान को साफ धो डालो और अन्त में भूयिक (नाइट्रिक) या कार्बोलिक अम्ल से या तप्त लोहे से जलवाओ।

प्रत्यालर्क मसूरी (Antirabic Vaccine)—विशेष पद्धति से बनायी हुई मसूरी की १४-२१ सुई प्रतिदिन एक के हिसाब से त्वचा मे दी जाती हैं। इस टीका से उत्पन्न हुई क्षमता वर्ष सवा बर्ष तक टिकती है।

टीका लगवाने के दिनो में तथा उसके पश्चात् दस दिन तक मद्य सेवन, अधिक व्यायाम, खेल-कूद इत्यादि थकावट उत्पन्न करने वाले व्यवसाय न करने चाहिये।

परम क्षम लसिका (Hyper immune serum)—अत्यधिक पागल श्वान-शृगालदष्ट व्यक्तियो में रोग प्रतिबन्धन मे स्थानिक चिकित्सा और टीका से भी अनेक बार सफलता नही मिलती। उनमे उनके साथ-साथ परमक्षम-लसिका का भी प्रयोग किया जाने लगा है। इससे रोग प्रतिबन्धन मे ही अधिक सफलता नही टीका का। औषधि क्रम काल भी छोटा कर सकते है।

अङ्गारक्षत (Anthrax)

पर्याय-ऊर्णाव्यवसायी रोग, प्राणियो का प्लीहक ज्वर।

हेतु और विकारकारिता—यह रोग प्लीहज्वर दण्डाणु (B. Anthrasis) के उपसर्ग से होता है।

संक्रमण और प्रवेश मार्ग—जो प्राणि इससे मरते हैं उनके ऊन, बाल, खाल इत्यादि में इसके दण्डाणु या क्षुल्लक उपस्थित रहते है। इसलिए ऊन, बाल, खाल इत्यादि के व्यवसाय मे काम करने वालो मे या इनसे सम्बन्ध रखने वालो मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संसर्ग से यह रोग होता है। शरीर प्रवेश करने के मार्गो के अनुसार इसके तीन प्रकार होते है—

(१) **मारात्मक फोड़ा** (Malignant Pustule)—इसमे त्वचा के व्रण, क्षत, खरोंच, दरार इत्यादि के द्वारा दण्डाणु शरीर मे प्रवेश करते हैं और प्रवेश स्थान मे २४ घण्टे मे भयानक फोड़ा उत्पन्न होकर ५-६ दिन मे मृत्यु हो जाती है। यह प्रकार अधिकतर कसाइयो में, चमडा कमाने वालो मे, पशु चिकित्सको में और गडरियो मे दिखाई देता है। भद्र लोगो मे हजामत के और दाँतो के व्रण से यह रोग क्वचित् उत्पन्न होता है।

(२) **ऊर्णाव्यावसायिक रोग** (Wool-sorter's disease,—इसको फौफ्फुसिक अङ्गारक्षत कहते हैं। ऊन और बालो के व्यवसाय मे काम करने वालो मे यह प्रकार होता है। फुफ्फुसपाक होता तथा उसीके कारण मृत्यु होती है।

(३) आन्त्रिक अङ्गारक्षत—रोगग्रस्त पशुओ का मांस या दूध दण्डाणुओ से या क्षुल्लको से दूषित रहता है और उनके सेवन से यह प्रकार हो सकता है।

प्रतिबन्धन—जो प्राणि इससे मर गये हो उनके अधोर्ध्व द्वार उपसर्ग नाशक घोल मे भिगोये हुए कपड़े से बन्द करके भूमि मे ६ फुट से अधिक गहराई में चारो ओर चूना डालकर गाढ़ना चाहिए। उसका चमड़ा न निकालना चाहिए। यदि काफी इंधन हो तो उसको जला देना ही उचित है। प्राणियो मे प्रतिबन्ध के लिये टीका का उपयोग किया जा सकता है जिससे उनमे एक वर्ष तक क्षमता रहती है।

अङ्गारक्षत की चिकित्सा—(१) एण्टी-एन्थ्रेक्स सीरम १५०-३०० सी.सी. ८ से २४ घण्टे के अन्तर से नस मे लगायें।

(२) प्रोकेन पेनिसिलीन (Procaine Penicillin) ४ लाख युनिट 'मांस' मे रोजाना दें।

(३) सल्फेनीन १-१ टिकिया ४-४ घण्टे बाद जल से।

(४) सल्फाडायाजीन, थायजामाइड या सल्फाट्रायड मे से किसी की पहली मात्रा ४ या ६ टिकिया और बाद मे २-२ टिकिया ३-३ घण्टे से देवें।

(५) ब्राह्म रसेन्द्रम औषधिया प्रयोग करें।

---

[१] कुपितेन स्पृष्टः [illegible] यस्तु न स जीवति मानवः ॥ सुश्रुत॥

[२] विस्राव्य दंश तैर्दष्टे सर्पिषा परिदाहितम् ॥ सुश्रुत ॥ विस्राव्य निष्पीडनेन स्रावयित्वा बीजभूतस्य विषस्य नाशनार्थं, सर्पिषा दाहस्तु तच्छेष नाशनार्थम् ॥डल्हण॥
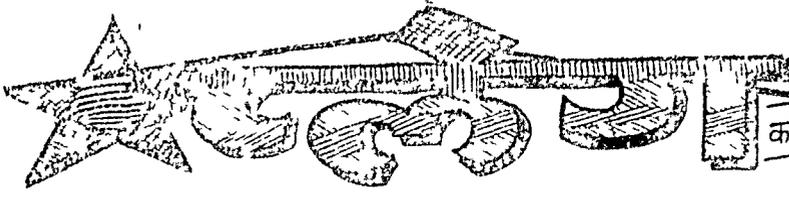
पर्याय नाम—प्लेग को सस्कृत मे अग्निरोहिणी, ग्रन्थिक ज्वर, भेल-सहिताकार ने वातालिका नाम दिया है।

व्याख्या—बैसिलस पैस्टिस द्वारा होने वाला एक तीव्रतर तथा प्रसिद्ध औपसर्गिक ज्वर है।

कारण

बैसिलस पैस्टिस नाम का सूक्ष्म जीवाणु है। यह अण्डाकार होता है, इसके दोनो सिरे अधिक रजित होते हैं। यह जीवाणु रोगी के रक्त, प्लीहा, लसीका, ग्रन्थिया, आन्त्र और वृक्क आदि अङ्गो में पाया जाता है।

सक्रमण—फौफ्फुसिक प्रकार मे थूक मे जीवाणु उपस्थित होने के कारण रोग का सक्रमण विदूत्क्षेपो द्वारा होता है। ग्रन्थिक ज्वर वास्तव मूसो तथा चूहो का रोग है। घूस और छछून्दर इससे प्राय. पीडित नही होते। अत ग्रन्थिक ज्वर या प्लेग की महामारी के समय मरी हुई घूस और छछूदर को विशेष महत्व देने का कोई कारण नही है। प्लेग की महामारी मनुष्यो में प्रारम्भ होने के पूर्व चूहो मे प्रथम फैलती है। जिससे असख्य चूहे मर जाते है। रोग के प्रादुर्भाव होने का यह प्रधान लक्षण है। ऐसे समय स्थान का परित्याग कर देना चाहिए। श्रीमद्भागवत नीलकण्ठी टीका मे स्पष्ट लिखा है कि—

मूषक पतितोऽस्य मृत दृष्ट्वा च यद् गृहे।
तद् गृह तत्क्षणं त्यक्त्वा सकुटुम्बो वन व्रजेत् ॥

जिस घर में चूहे गिरकर मर रहे हो, ऐसा दिखते ही उस घर को शीघ्र ही त्याग कर सकुटुम्ब शहर से दूर वन में झोपडी या टैन्ट लगाकर रहना उचित है। चूहो के शरीर पर सदैव असख्य पिस्सू होते हैं जो उनके शरीर से रक्त चूसकर अपना पोषण करते हैं। जिस समय चूहे की मृत्यु होती है उस समय पिस्सू उसे छोड़कर अन्य चूहे पर चले जाते हैं। प्लेग के समय किसी स्थान पर जब रोग प्रारम्भ होता है तब प्रथम उस स्थान के अधिकाश चूहे इससे पीडित होकर मृत हो जाते हैं और शेष चूहे स्थान छोडकर दूसरे स्थान मे चले जाते है। इस दशा मे पिस्सू अपनी प्राणरक्षा के लिये मनुष्यो को दश करता है। इस रोग का एक चूहे से दूसरे चूहे पर तथा चूहे से मनुष्य के ऊपर इसी पिस्सू द्वारा सक्रमण होता है। इसका दूरवर्ती स्थानो मे प्रसार-प्रचार केवल चूहे तथा पिस्सूओ द्वारा ही नही होता, अपितु मनुष्य जब रोगग्रस्त स्थान से अपने उपयोगी सामान के साथ अन्य स्थान को जाता है, तब उसके सामान के साथ पिस्सू भी चले जाते हैं और वहा के चूहो तथा मनुष्यो पर आक्रमण करके प्लेग का सक्रमण करता है।

पिस्सू की लम्बाई २ से ३ मिलीमीटर होती है, स्त्री की अपेक्षा पुरुष पिस्सू आकार मे छोटा होता है। पिस्सू गन्दे, अन्धेरे, पुराने मकानो मे तथा सीलयुक्त स्थानो में अधिक होते हैं। दिन के समय जमीन तथा दीवार में

जो दरार या संधि होती है उसमें निवास करते हैं। गोशाला और घुड़सार मे तथा पशुओ पर अधिक रहते हैं। स्त्री और पुरुष दोनो प्रकार के पिस्सू रक्तचूषण का कार्य करके प्लेग के प्रसार में भाग लेते हैं। पिस्सू की अनेक उपजातिया है जो मनुष्य, मूषक, मार्जार, पशु एव पक्षियो पर रहती हैं। किन्तु केवल निम्न जाति के पिस्सू प्लेग के जीवाणुओ का सक्रमण करते हैं—

प्लेग का उपसर्ग
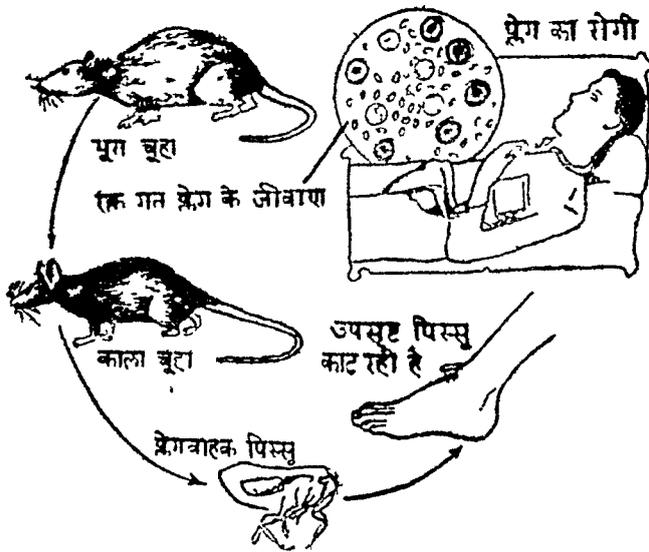
(१) जेनोप्सिला शोपिस (२) प्यूलेक्स इर्रीटेन्स (३) किरैटोफैल्लस फैशीएट्स। इनका विनाश मिट्टी का तैल, फार्मेलीन और पेस्टेरीन से होता है। सबसे श्रेष्ठ एव सुलभ तथा विश्वस्त मिट्टी का तैल है।

१. इसका इमलशन—साबुन ३ प्रतिशत, गर्म पानी १५ प्रतिशत से तैयार करके प्रयोग करना चाहिये।

२. कार्बोलिक लोशन—कार्बोलिक एसिड १ औन्स गर्म पानी १९ औन्स के साथ मिलाने से लोशन (घोल) तैयार होता है।

३ फिनाईल लोशन—फिनाईल १ औन्स, गर्म पानी १९ औन्स,

४. ब्लीचिङ्ग लोशन—ब्लीचिंग पावडर २ औन्स गर्म पानी ३ लीटर मे मिलाने से लोशन तैयार होता है। इसका मूल्य कम है।

५. ब्लीचिङ्ग पावडर, कार्बोलिक पावडर अथवा चूना (कलई) को छिड़कने से पिस्सू तथा सक्रमणता का नाश होकर भूमि की (स्थानीय) शुद्धता होती है। सूर्य के ताप से, गर्म पानी और उक्त रासायनिक द्रव्य के लोशनो आदि से प्लेग के जीवाणु मर जाते है। प्लेग के समय इन सब साधनो की सहायता से मकान की, रोगी के कमरे की, पाखाना, नाबदान, नाली की खूब सफाई चारो ओर रखना आवश्यक है।

सम्प्राप्ति—पिस्सू के दश द्वारा जीवाणु रोगी के चर्म में प्रविष्ट होते हैं अथवा पिस्सू दश के स्थान पर जीवाणु युक्त मल त्याग करता है, जिससे वहा पर खुजली होती है। खुजलाने से वहा पर क्षत बन जाता है और इस क्षत से जीवाणु मनुष्य शरीर मे प्रविष्ट होता है। दश–स्थान के समीप रहने वाली लसीका ग्रन्थियो में शोथ उत्पन्न होता है। पिस्सू प्राय पैर पर ही काटता है कारण कि ६ इन्च से अधिक ऊपर नही उड़ पाता, अत. जघा के ऊपरी भाग की लसीका ग्रन्थिया अधिक फूलती हैं। यदि मनुष्य लेटा रहे उस अवस्था में पिस्सू ग्रीवा में अथवा हाथ में दश करे तो ग्रीवा अथवा कक्ष की लसीका ग्रन्थियाँ विकृत होती हैं। इस प्रकार की ग्रन्थि-वृद्धि प्राथमिक लसीका ग्रन्थि वृद्धि कहलाती है। इसके पश्चात् इन शोथयुक्त ग्रन्थियो सम्बन्धी लसीका ग्रन्थियाँ भी फूल जाती हैं, परन्तु इनका शोथ पहले की अपेक्षा कम होता है। उनको द्वितीय लसीका ग्रन्थिवृद्धि कहते हैं। ग्रन्थियो के पास की धातु मे भी शोथ, रक्तस्राव तथा तन्तुओ की वृद्धि होती है। रक्त मार्ग से जीवाणुओ का प्रवेश होने पर सस्थानगत लसीका ग्रन्थियाँ फूलती हैं उनको तृतीयक लसीका ग्रन्थि वृद्धि (टर्शियरी व्यूबो) कहा जाता है। प्रारम्भिक लसीका वृद्धि में लसीका ग्रन्थि में वृद्धि होने के ४–५ दिन बाद जीवाणुओ के विष के कारण सडन उत्पन्न होती है। ग्रन्थि कोमल हो जाती है और काटने (आप्रेशन करने) पर उससे पूय तथा ग्रन्थि के सडे-गले भाग निकलते हैं। द्वितीय लसीका वृद्धि में सडन नही होती और न आस–पास की धातुओ में शोथ ही (जैसा कि प्राथमिक मे होता है) पाया जाता है। जीवाणु के प्रारम्भ में ही रक्त द्वारा शरीर मे प्रवेश होने से, लसीका ग्रन्थियों में वृद्धि न होकर आमाशय, यकृत,

प्लीहा, अंत्र, हृदय, फुफ्फुस, वृक्क, रक्तगत कलाएं इनमें प्रवेश करके रक्त स्राव तथा शोथ उत्पन्न करते हैं। इसके कारण, यकृत तथा प्लीहा बढ़ती है। ब्रांको न्यूमोनिया तथा रक्तवाहिनियो में रक्त जमना ये विकार उत्पन्न होते हैं। जीवाणु रक्त में प्रविष्ट होने के बाद सबसे अधिक बढते है। मृत्यु के समय इनकी संख्या सबसे अधिक रहती है। श्वास मार्ग से फुफ्फुस में जब जीवाणु प्रविष्ट होते हैं तब दोनो फुफ्फुस-विकृत होते हैं, और इस समय ब्रांकोन्यूमोनिया अथवा फ्लू (वातश्लैष्मिक ज्वर) की भांति लक्षण उत्पन्न होते हैं।

रक्त परीक्षा—श्वेतकण बीस हजार प्रतिघनविक मिलीमीटर में बढते हैं, रक्तकणो की संख्या साठ लाख तक बढ़ती है। मृत जीवाणुओं द्वारा जो विष बनता है वह रक्त में परिभ्रमण करता हुआ रक्तवाहिनियो की अन्त कला का नाश कर त्वचा, श्लेष्मिक त्वचा, रसयुक्त कला आदि में रक्तस्राव करता है तथा यकृत, हृदय और वृक्क मे कूरण-शोथ तथा मेदाप क्रान्ति उत्पन्न होती है।

लक्षण—

> पक्ष भागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारणा'।
> अन्तर्दाह ज्वरकरा दीप्तपावक सन्निभा ॥
> सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा हन्तिमानवम्।
> तामग्निरोहिणीं विद्यादऽसाध्या सर्वदोषजाम् ॥
> —भा० प्र० ज्वराधिकार

कक्ष भाग में (वंक्षण तथा कक्ष भाग में) मास को विदीर्ण करने वाले, प्रज्वलित अग्नि के समान, अन्तर्दाह तथा ज्वर को उत्पन्न करने वाले, स्फोट उत्पन्न होते हैं। सातवें-दसवें अथवा पन्द्रहवे दिन के भीतर मनुष्य को मार डालते हैं। इसे अग्निरोहिणी कहते हैं। यह सर्व-दोषज तथा असाध्य व्याधि है।

जीवाणु— के प्रवेश होने के बाद तीन दिन मे (कभी-कभी २ से १५ दिन मे भी) रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस रोग के चार प्रकार होते है—

(१) क्षुद्र प्लेग—यह सौम्य स्वरूप का रोग होता है। दंश-स्थान पर विस्फोट उत्पन्न होता है, उस स्थान के पास की लसीका ग्रन्थियो मे शोथ होता है। ज्वर भी सामान्य होता है। रोगी के चलने-फिरने मे बाधा नही होती। यह बहुत थोड़े रोगियो मे दिखलाई देता है।

(२) ग्रन्थिक प्लेग—यही प्रकार साधारणतया पाया जाता है। इसमे शीत सहित ज्वर चढ़ता है। ज्वर १०३ से १०४ डिग्री तक बढ़ता है। ज्वर के पहले सिर के पूर्व भाग मे पीड़ा, बेचैनी, चित्तविभ्रम, ये और भी बढते हैं। नेत्र लालिमायुक्त, मुख रक्तवर्ण, चलते समय पैर लड़-खड़ाते हैं. रोगी तुतलाता है, सुस्ती, थकान तथा दौर्बल्य मालूम होता है। रोग प्रारम्भ होने के दूसरे दिन वंक्षण प्रदेश मे यदि दंश शरीर के ऊर्ध्व भाग में हुआ हो तो कक्ष तथा ग्रीवा में शोथ उत्पन्न होता है। अधिकतर गिल्टियां वंक्षण प्रदेश मे ही निकलती है। ग्रीवा की ग्रन्थि का शोथ (गिल्टी) होना सबसे अधिक भयङ्कर तथा वंक्षण की ग्रन्थि वृद्धि सबसे कम हानिकारक होती है। रोगी बाहु को दूर रखकर या जङ्घा पर टांग को सिकोड़ कर रखता है। जिससे रुग्ण भाग पर भार न पड़े। दुर्बल रोगियो मे दूसरे या तीसरे दिन मे हृदय दुर्बल, नाड़ी मन्द, रक्तभार कम, मूत्र की मात्रा कम, तथा अल्ब्युमिन युक्त, प्रलाप, मूर्च्छा तथा सन्यास ये लक्षण प्रगट होते हैं। ऐसा रोगी छठें-सातवें दिन संसार से सदा के लिए अपना सम्बन्ध त्याग देता है। यदि रोग सौम्य हुआ तो पाचवें दिन से ज्वर शनै शनै कम होकर उतर जाता है। तथा बढ़ी हुई लसीका ग्रन्थि (गिल्टी) की पीडा कम होती है। कभी कभी वह बैठ जाती है। यदि ऐसा न हो तो दूसरे सप्ताह मे उसमे पूय पड़ जाती है। पूयोत्पादन के कारण अनियमित ज्वर भी उत्पन्न हो जाता है।

(३) रक्तगत प्लेग—यह कभी कभी उपद्रव रूप में भी होता है। इसमे ज्वरादि लक्षण अधिक प्रबल, प्लीहा वृद्धि, हृदयावसाद के लक्षण होते हैं। स्वल्प समय में रोगी की जीवन लीला समाप्त होती हैं।

(४) फुफ्फुसगत प्लेग—यह प्रधान तथा गौण स्वरूप का हो सकता है। प्रारम्भिक ग्रन्थिवृद्धि यदि कक्ष अथवा ग्रीवा मे प्रगट हो तो इस प्रकार की अधिक सम्भावना होती है। इस प्रकार मे रोगी के खांसने, छींकने, वातचीत करते समय तथा श्वास प्रश्वास के समय असंख्य जीवाणु थूक तथा उच्छ्वास के साथ बाहर निकलकर दूसरे मनुष्यो के श्वास-प्रश्वास मार्ग द्वारा फुफ्फुस में प्रविष्ट होकर प्लेग पैदा करते हैं। इस प्रकार के प्लेग में पिस्सू की

आवश्यकता नहीं होती। जीवाणु के फुपफुस में प्रवेश होने पर न्यूमोनिया की भांति फुपफुस में घनता उत्पन्न हो जाती है। फुपफुस मे जीवाणु बहुत बढते हैं और उनके रक्त में मिलने से रक्तगत-प्लेग प्रगट होता है। इस प्रकार में ज्वर शीत सहित सहसा प्रारम्भ होता है। शिर शूल, पिण्डलियों में ऐंठन, हाथ-पैर में पीडा, कास, नाडी तथा श्वास की गति का बढना, रक्तभारकम, शरीर पर नीलिमा दिखना, थूक पतला तथा फेनयुक्त अधिक और रक्त वर्ण का होता है। थूक मे प्लेग के अगणित जीवाणु रहते हैं। शरीर मे स्थान स्थान से रक्तस्राव भी होता है।

प्राथमिक ग्रन्थि न निकलकर, त्वचा की ग्रन्थियाँ कुछ फूलती है, प्लीहावृद्धि होती है। फुपफुस मे विकार (घनता आदि) बीच में होने के कारण उसके लक्षण अस्पष्ट होते हैं।

प्लेग का प्रधान स्वरूप शिर के सामने वाले भाग में तीव्र पीडा, वमन तथा ज्वर के साथ प्रारम्भ होता है। शरीर के विविध अङ्गों से रक्तस्राव तथा श्वास की गति भी बढती है। शरीर के सभी भागों में स्थित लसीका ग्रन्थियां फूलती हैं। इसमें प्रारम्भिक लसीका ग्रन्थि वृद्धि (जिसे सम्प्राप्ति मे लिख चुके है) नहीं होती। दो-तीन दिन में ही रोगी प्रलाप, सन्यास और अवसाद के कारण यमराज का अतिथि बन जाता है।

उपद्रव—

न्यूमोनिया, जीवाणुमयता, रक्त प्रवाह, कर्णमूलिक शोथ, नेत्रशोथ (पेन आपथलमाइटिस), विस्फोट, जहर-बाद, गर्भवती स्त्रियों में गर्भ का नष्ट होना।

अनुगामी विकार— मूकता, शरीर की पेशियों का घात- ये अनुगामी विकार विद्यमान होते है।

सापेक्ष निदान— इसे उपदंश अथवा फिरंग जन्य लसीका वृद्धि से, विषमज्वर, मन्थरज्वर तथा श्वसनकज्वर से पृथक करना चाहिए।

रक्त परीक्षा— श्वेत कणों की संख्या बढती हैं और उसमे लिम्फोसाइट अधिक बढ़ते हे। मृत्यु के पूर्व रक्त मे सदैव जीवाणु पाये जाते हैं। रक्तगत जीवाणुओं को सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा देखा तथा उनका वर्णन किया जा सकता है।

साध्यासाध्यता

प्लेग प्रायः असाध्य रोग है। विशेषकर रक्तगत तथा फुपफुसगत रोग असाध्य होता है। ग्रन्थिक प्लेग मे भी अधिकतर मृत्यु ६० से ७०% होती है। स्थान की दृष्टि से ग्रीवा तथा कक्ष की ग्रन्थि अधिक घातक होती है। तन्द्रा, प्रलाप, नाडी की गति शीघ्रगामी, रक्तभार मे कमी, रक्त मे जीवाणु मिलना, ज्वर का अत्यन्त तीव्र होना, शरीर के स्थान-स्थान से रक्तस्राव ये सब प्लेग के असाध्यता सूचक लक्षण हैं।

पूय उत्पन्न होने के समय तक यदि रोगी को बचाया जा सके तो उसके दीर्घ जीवन अथवा आरोग्यता की बहुत कुछ आशा हो सकती है।

साध्यलक्षण— शीघ्रपाकोहि ग्रन्थीनां बहूनां वासमुद्भवः।
वृद्धोवा बालको वापि सुखसाध्यस्य लक्षणम्॥

अरिष्टम् - संज्ञाचेष्टावहानांस्याविन्द्रियाणांविनाशनम्।
सपद्येवातिसारेणाक्रान्तोरोगी न जीवति॥
आकृष्णरक्त सकफंष्ठीवेत् य श्वासपीडितः।
आक्रान्तौ फुपफुसौ यस्यस यात्येव यमालयम्॥
अग्रन्थौग्रन्थिलिङ्गानि, प्रायश स्युर्यमातिथे।

उपद्रव — कास मूत्रावरोधश्च रक्तातिसार उल्वणः॥
छर्दिर्लोहितपित्तञ्च ग्रन्थिकेस्युरुपद्रवाः॥

माधवनिदानस्य— परिशिष्ट निदानम्

प्रतिषेध

प्लेग प्रतिषेध के प्रधान तीन उपाय हैं—१ स्थान परित्याग, २. प्लेग प्रतिबन्धक टीका, ३. मूषक निराकरण। इनमे प्रथम दो अस्थायी उपाय हैं जो जन-पदोध्वसकारी प्लेग के समय काम मे आते हैं। और तीसरा स्थायी उपाय है, जिसको काम में लाने से प्लेग होने की कम सम्भावना होती है। इसका उल्लेख पहले कर चुके है।

चिकित्सा

बालक-वृद्ध-निर्बल और गर्भवती स्त्री को छोड शेष प्लेग-पीडित रोगियों को प्रारम्भ मे लङ्घन कराना अभीष्ट है। दोषों का पचन न हो तब तक मोसमी का रस, गाय का दूध, पीपल अथवा सौंठ और शक्कर के साथ पकाया हुआ पानी उबालकर छानकर देना चाहिए।

(१) चण्डेश्वर रस (भा० भै० र०)— मात्रा १ से २ रत्ती, दिन मे तीन बार। आर्द्रकरस और मधु के साथ चाटना चाहिए। (शेषांश पृष्ठ ४१३ पर पर)

पर्यायवाचक नाम—मन्थर ज्वर, मोती ज्वर, पानी-झला, मोतीझला, मोतीझरा, आन्त्रिकज्वर, सन्निपातज्वर, मधुर ज्वर, मौक्तिक ज्वर, सन्तत ज्वर, सुषोन्क, सशोपक, मियादी ज्वर, मधुरिक, यूनानी–मर्वरीदक, तपमुवाग्खी, एलोपैथी–टाइफाइड फीवर (Typhoid fever), ऐन्टेरिक फीवर (Enteric fever)।

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो अतिसारो वमिस्तृषा।
अनिद्रा च मुखं रक्तं तालु जिह्वा च शुष्यति॥
ग्रीवायां परिदृश्यन्ते स्फोटकाः सर्षपोपमाः।
एभिस्तु लक्षणैर्विद्यान्मन्थराख्यं ज्वरं नृणाम्॥

—योग रत्नाकर

जिस ज्वर के रोगी को ज्वर, दाह, भ्रम, मोह, अतिसार, वमन, तृष्णा, निद्रा न लगना, मुख लाल वर्ण का हो जाना, तालु और जिह्वा का सूख जाना, गले पर सरसो के समान पीत या श्वेत वर्ण या लाल वर्ण की पिडिकाओ का होना ये सब लक्षण हो तो उसे मन्थर ज्वर या मधुर ज्वर हुआ जानना चाहिए।

सर्वत्र प्रचलित यह रोग भारतवर्ष के हर प्रदेश के कोने कोने मे है। इसमे गले से लेकर पैरो के नाखून पर्यन्त मोती के समान आभा वाली पिडिकायें निकलती हैं इस लिए इसे मोती ज्वर कहते हैं। अनेक वैद्य इसे पित्तोल्वण आशुकारी सन्निपात तथा कुछ वैद्य इसे पित्त श्लेष्मकज्वर एव कुछ कफ ज्वर में ही इसकी गणना करते है। अर्वाचीन आचार्यो ने "घृताशनात् स्वेदरोधात् मन्थरो जायते नृणाम्" अर्थात घी खाने से और पसीना रुक जाने से मन्थर ज्वर की उत्पत्ति मानी है। यह ज्वर प्रथम सप्ताह मे मन्दगति से प्रारम्भ होता है अत. मन्थर ज्वर कहा जाता है।

आन्त्रिक ज्वर के जीवाणु पित्ताशय में प्रचुर मात्रा में देखे गये हैं। दूसरे पाचक पित्त का प्रमुख स्थान भी आन्त्र ही है। तीसरे पित्त के जो पाच भेद बतलाये गये हैं उनकी कुछ न कुछ विकृति आन्त्रिक ज्वर में ही पाई जाती है उदाहरणस्वरूप त्वचा में भ्राजक पित्त का जहाँ स्थान है वही पर लाल या गुलाबी, या सफेद मोती वर्ण की पिडि-

कायें निकलती है। यकृत एव प्लीहा जो रजक पित्त के स्थान माने गये हैं उनकी वृद्धि भी इस रोग में मिलती है। नेत्रों में दाह आलोचक पित्त मे प्रभावकारी होती है तथा लाल रग की आभा वाली रेखा नेत्रो में सफेद पटल पर दायी तथा बाँयी ओर स्पष्ट दिखाई देती है जोकि आन्त्रिक ज्वर का संकेत देती है। आन्त्रिक ज्वर के रोगी की अत्ययावस्था मे नेत्रो की ज्योति में अल्पदृष्टि प्रतीत होती है।

मन्थर ज्वर का कारण

नित्यमार्ग गमन से परिश्रान्तया उपवास से जिनका शरीर क्षीण हो जो व्यक्ति दुर्गन्धियुक्त स्थानो मे व अधिक भीड़ मे व नमीदार स्थान मे रहते हैं उनके प्राय मलिन

आहार पानादि योग से सर्व ऋतुओं में व प्राय ग्रीष्म वर्षा शरद ऋतुओं में आन्त्रिक ज्वर कुच्छ लक्षण वाला ज्वर दिखाई देता है। इस ज्वर मे दण्डाकार जीवाणु ही मूल कारण पाश्चात्यवेत्ता मानते हैं। प्लीहा, मूत्राशय, पित्ताशय, रक्त में, आन्तों में व्रण हो जाते हैं, पीडिका तथा स्वेद, मल मे स्थान बनाकर रहते है। यही इस ज्वर का विशेष हेतु पाश्चात्य मानते हैं और इसे सक्रामक भी कहा है। यह दण्डाकार जीवाणु टाइफस बैसिलाई है।

मलमूत्र, स्वेद से उत्पन्न दोषो द्वारा आहारादि के दूषित होने से आन्त्रो में रहकर दोष रस तथा रक्त को दूषित करते हैं। क्षुद्रान्त्रो में रहकर वह जीवाणु शनैः शनैः छिद्र कर देते हैं तब आन्त्र क्षत की वृद्धि से रक्त निर्गम होने से तथा अन्त्र छिद्र होकर असाध्य हो जाता है।
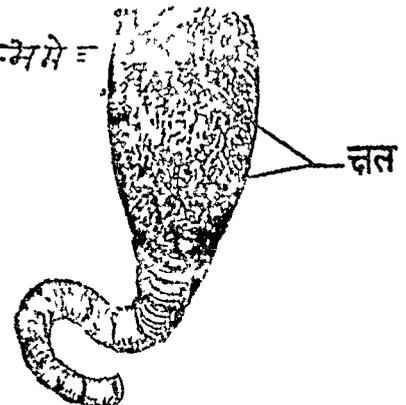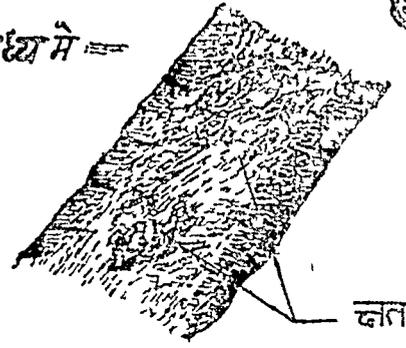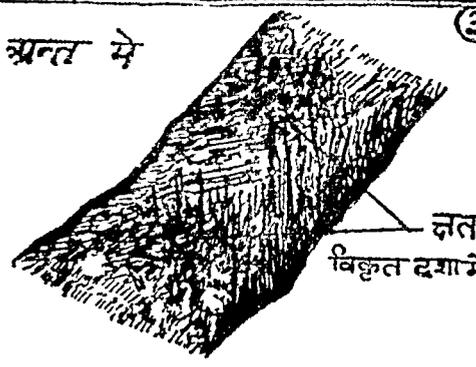
लक्षण

प्रारम्भ मे ज्वर होता है, तीव्र पिपासा होती है, मुख का स्वाद खराब एव कडवा हो जाता है, भूख लगना वन्द हो जाती है, किसी वस्तु के खाने को जी नही चाहता। ज्वर के साथ इतनी दुर्बलता हो जाती है कि कभी-कभी रोगी उठकर बैठ नही सकता। शरीर का वर्ण पीला एव पिलाई लिए हो जाता है। तीन या चार दिन ज्वर आने के पश्चात् प्रथम ग्रीवा और वक्ष पर मोती की भाँति श्वेत चमकदार छोटे-छोटे दाने दृष्टिगत होते हैं। रोगी को बहुत अचेतनता होती है। कभी-कभी प्रलाप भी होने लगता है। कभी कभी अचेतनावस्था मे मलमूत्र का त्याग हो जाता है। व्यग्रता एव आकुलता बढ जाती है। ज्वर किसी समय तीव्र होता है। किसी समय कम हो जाता है परन्तु नि.शेष नही उतरता। जब तक दाने भली भाँति प्रगट नही हो जाते व्याकुलता एव बेचैनी बढती जाती है। दाने निकल आने के पश्चात् किसी को सातवे दिन और किसी को दसवें दिन, किसी को बारवे दिन या चौदहवे दिन या १८ वे दिन या २१ वे दिन नाभि के नीचे उतर आने के पश्चात् लक्षण घटने प्रारम्भ हो जाते हैं। कभी-कभी यह दाने भली-भांति नही निकलते अथवा निकलकर अदृश्य हो जाते है या रोगी का विरेचन अथवा दस्त होने लगते है। इस प्रकार के लक्षण अरिष्टसूचक एव भयावह होते है।

मोतीज्वर का प्रभाव होने पर आलस्य, सम्पूर्ण गात्र मे पीडा, दाह और भ्रम उत्पन्न हो जाता है। पतले फोके दस्त लगते हैं। कभी जाडा लगता है तो कभी गर्मी लगती है। दिन में तन्द्रा (झपकी) सी लगी रहती है, रात्रि मे नींद नही आती है। यदि आती भी है तो बहुत कम। नाना प्रकार के आश्चर्यजनक स्वप्न दिखाई देते है। भूख नष्ट हो जाती है। किसी-किसी को नकसीर भी फूटने लगती है जिह्वा का मध्य भाग मैला श्वेत रग का हो जाता है और किनारे लाल वर्ण के हो जाते है। नाडी भरी हुई बलहीन तथा भारी चलती है। श्वास मे दुर्गन्ध आने लगती है किसी-किसी का पेट फूल जाता है। किसी-किसी को कै दस्त दोनो होने लगते है, किसी को केवल दस्त आते हैं और जी मिचलाता है। रात्रि के समय देह गरम तथा सूखी सी हो जाती है। उस समय शरीर का सन्ताप १०४ से १०५° F तक पहुच जाता है। निर्वलता बढ जाती है, कान्ति मलीन पड जाती है, नेत्र भीतर धुस जाते हैं। पेशाब (मूत्र) लाल रंग का थोडा-थोडा होता है। किसी-किसी को नही होता है। प्रथम सप्ताह में ज्वर कुछ कम रहता है पर दूसरे सप्ताह मे ज्वर काफी बढ जाता है। नौ दिन से चौदह दिन तक लक्षणो मे तीव्रता रहती है। नाडी महीन बलहीन एक मिनट मे १२० बार चलती है। श्वास जल्दी-जल्दी और दुर्गन्धयुक्त चलती है, ओष्ठ रूखे अथवा सूखे खुरदरे, जीभ फटी हुई श्वेत या लाल रग की कभी-कभी भूरी और चमकदार मालूम पडती है। पेट मे दर्द होता है। प्रात काल जितना शारीरिक सन्ताप होता है सायकाल उससे कम हो जाता है। प्राय. प्रथम सप्ताह में १०२ से लेकर १०४° F तक ज्वर रहता है। कभी-कभी प्रात काल घटता है तो कभी-कभी शाम को बढ जाता है और कभी-कभी शाम को घटता है तो प्रात बढ जाता है। यह क्रम लगभग ४ से ७ दिन तक चलता रहता है। व्याधि की तीव्र अवस्था में ज्वर १०६ से १०७° F तक बढ़ता देखा गया है। गर्दन पर से मोती के समान चमकीले दाने पैरो की ओर खिसकते जाते हैं। किसी-किसी को यह दाने गर्दन से लेकर जाघो तक एक साथ निकल आते है और उनमे पानी झलकता है जिसके कारण यह पानीझला भी कहलाता है। बड़े-बड़े दाने जिनमें पानी नही झलकता वह मोतीझरा या थोथाझला भी कहा जाता है।

प्राचीन पुस्तको मे मोतीझला के सामान्यतया दो ही भेदो का वर्णन मिलता है। परन्तु किसी-किसी पुस्तक में इसके चार भेद भी पाये जाते हैं। ज्वर सर्वस्व मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र और चाण्डाल यह पाच वर्ण बताये गये हैं। इसमे ब्राह्मण श्वेत वर्ण का, क्षत्रिय लालवर्ण का, वैश्य पीतवर्ण का, शूद्र कपिल वर्ण का, चाण्डाल कृष्ण वर्ण का होना लिखा है।

दोपो की गति विपरीत होने की दशा मे मोतीझला के दाने पैर से निकलते हुए भी देखे गये हैं। यह मोतीझला के दाने पैर से सिर की ओर बढते हैं। इसे उल्टा मोतीझला कहते हैं। यह विशेष कष्टदायक होता है।

प्राय ऐसा मोतीझला का रोगी असाध्य माना जाता है। यदि गम्भीरता से विचार किया जावे तो मोतीझला सन्निपात ज्वर का ही एक भेद है क्योंकि इसकी सम्प्राप्ति और लक्षण सन्निपात ज्वर से बहुत कुछ मिलते हैं। निदान भिन्नता से दोष दृष्टि मे अवश्य अन्तर पाया जाता है।

आधुनिक मतानुसार मोतीझला की निम्न चार अवस्थायें होती हैं—

(१) प्रथमावस्था (प्रथम सप्ताह)—जिह्वा मलावृत तथा किनारे साफ, नेत्र की पुतलिया विस्तृत, शिर शूल, उदरशूल, तापक्रम में क्रमश. वृद्धि (प्रातः कम साय पूर्वापेक्षा अधिक), यकृत् एव प्लीहावृद्धि, अल्प श्वसनिका शोथ, सातवें दिन मौक्तिक ज्वर के दाने दिखाई दे भी सकते हैं। रक्त परीक्षा करने पर श्वेत रक्तकणो मे कमी तथा रक्त मे बैसिलस टाइफाइड् मिलता है।

(२) द्वितीयावस्था (द्वितीय सप्ताह)—रोगी बेचैन, जिह्वा शुष्क, अनिद्रा, प्रलाप हो सकते हैं। तापक्रम १०१ से १०४ °F के बीच घटता बढ़ता है। नाडी गति लगभग १००। इस सप्ताह मे प्रायः अतिसार होता है।

(३) तृतीयावस्था (तृतीय सप्ताह)—रोगी अधिक बेचैन, प्रलाप, जिह्वा शुष्क चमकदार, शरीर में दर्द, अत्यधिक दुर्बलता एव कृशता। आंत में रक्तस्राव या छिद्र हो सकता है। यह सप्ताह रोगी के लिए खतरनाक रहता है। सप्ताह के अन्तिम १-२ दिन मे तापक्रम क्रमश. गिरना प्रारम्भ हो सकता है।

(४) चतुर्थावस्था (चतुर्थ सप्ताह)—तापक्रम क्रमश कम होता है। तथा रोग के लक्षण धीरे-धीरे कम होते जाते हैं तथा रोगी स्वस्थ हो जाता है।

लघ्वान्त्र एव बृहदान्त्र के सगम स्थल को उपान्त्र या (Caecum) कहते हैं। इसमे तथा इसके पास आन्त्र में किसी क्षत मे मन्थर ज्वर के कृमि बैसिलस टाइफोसस (B Typhosus) रुक जाते हैं तथा वृद्धि करना आरम्भ कर देते हैं। इस जीवाणु की लम्बाई ०.६ अणु तथा चौडाई ०३ अणु होती है। आंतो की लसिका ग्रन्थियो एव आंत्रक्षतो मे यह जीवाणु बढते हैं तथा आंतो मे क्षत बनाते जाते हैं। इस ज्वर में आधुनिक मतानुसार निम्न दो परीक्षायें की जा सकती हैं—

(१) विडाल परीक्षा (Widal Test) से मूत्र की परीक्षा—विडाल परीक्षा मे रक्त के जीवाणु देखकर परीक्षण होता है। ५ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक एसिड मे सल्फावेलिक एसिड (Sulphonalic Acid) का घन विलयन बनाना चाहिए। दूसरे सोडियम नाइट्रेट (Sodium Nitrate) का ५ प्रतिशत का विलयन बनाना चाहिए। अब मूत्र मे प्रथम बनाया गया विलयन और द्वितीय सोडियम का विलयन ३ बूंद डालें। खूब हिलायें ताकि झाग उठ आयें। इसमे अमोनिया डाल दे। इसके डालते ही यदि झाग का रङ्ग लाल हो जाये तो आन्त्रिक ज्वर, चेचक, बडी चेचक, फुफ्फुस प्रदाह या तीव्र प्रकार की टी० बी० रोग हुआ समझना चाहिए। किन्तु यह दूसरे सप्ताह से पूर्व ही या मृदु अवस्था मे नही हो सकती।

(२) एग्लूटिनेशन टैस्ट (Aglutination Test)—रक्त से परीक्षण किया जाता है। विस्तृत विवरण विकृति विज्ञान की पुस्तको में देखें।

मन्थर ज्वर के भेद

१. Pneumo Typhoid fever—इस आन्त्रिकज्वर मे फेफड़ो से सम्बन्धित रोग होते है जिन्हे Broncho-Pneumonia भी कहते है।

२ Nephro-Typhoid fever—इस आन्त्रिक ज्वर मे वृक्क ग्रन्थि के अन्दर विकार उत्पन्न हो जाते हैं पाचक या वृक्क ज्वर कहते हैं।

३. Meningo Typhoid fever—इस आन्त्रिक ज्वर मे मस्तिष्क आवरण कला और मज्जा आक्रान्त होती है इसे तन्द्राभज्वर कहते हैं।

४ Malarial Typhoid fever—इस ज्वर मे सतत ज्वर के लक्षण या विषमज्वर के सब लक्षण ज्ञात होते हैं अत. विषमज्वर कहते हैं।

५. Malt Typhoid fever—यह आन्त्रिक ज्वर अपने पुनराक्रमण के लिए विशेषता रखता है।

६ Para Typhoid fever—लघु आन्त्रिक ज्वर की परीक्षा विडाल (Widal) or Aglutination Test से ज्ञात होती है।

मोती ज्वर या मन्थर ज्वर जन्य विकार

ज्वर की तीव्रता और रूक्षता के कारण क्रिया तन्तुओ और सज्ञा सूत्रों के विकृत व नष्ट हो जाने से रोगी ज्वर

मुक्त हो जाने पर भी अनेक रोगियों को मूकता (गूंगापन) बधिरता (बहरापन) अन्धापन (कम दीखना अथवा बिल्कुल न दिखाई देना) उन्माद (पागलपन की सी चेष्टायें) अग वैकल्य (हाथ पैर आदि अग का रह जाना या सूख जाना आदि) प्रमेह, मधुमेहादि विकार बने रहते हैं, यह उपद्रव सभी रोगियो मे नही होते और न एक ही रोगी में यह मोती ज्वर जन्य विकार पाये जाते हैं। जब मोती ज्वर बिगड़ जाता है तो अन्त में यक्ष्मा भी किसी किसी रोगी को हो जाता है। किसी को इकतरा और तिजारी आदि ज्वर भी होते देखा गया है।

मोती ज्वर के विशिष्ट सकेत

१—मोती ज्वर में एक विशेष प्रकार का ज्वर होता है जिसमें तापक्रम चार्ट की आकृति सीढीनुमा होती है। ज्वर अल्पविसर्गी (Remitent) प्रकार का होता है तथा यह शनैं शनैं शान्त होता है। मोती ज्वर का ज्वर धीरे धीरे ही प्रारम्भ होता है ज्वर के साथ ही (१) भ्रान्ति (२) माथे मे दर्द (३) पेशियो मे शूल (४) भूख न लगना (५) वमन होना (६) शिथिलता आना (७) बेचैनी (८) अनिद्रा (९) श्वासनलिका में श्लेष्मिका का प्रसेक होना (१०) नकसीर का फूटना ये लक्षण हैं।

ज्वर धीरे धीरे एक एक सीढी करके बढता है फिर अपनी उच्चतम मर्यादा तक उठ जाता है। इस ऊँचाई पर कुछ समय तक स्थिर रहता है। पुनः प्राय तीसरे सप्ताह में या तीसरे सप्ताह के पश्चात् धीरे धीरे गिरना प्रारम्भ हो जाता है। देखा यह गया है कि प्रतिदिन सवेरे के समय तापक्रम थोडा गिर जाता है, सायंकाल कुछ अधिक हो जाता है। प्रथम सप्ताह तापक्रम १०३-१०४° F तक चला जाता है। यदि उपचार ठीक ठीक किया जावे तो न्यूनतम और उच्चतम तापक्रम १-१° F प्रतिदिन गिरता है और अन्त में दोनो एक हो जाते है ज्वर के साथ कभी कभी कम्प देकर जाडा चढता है।
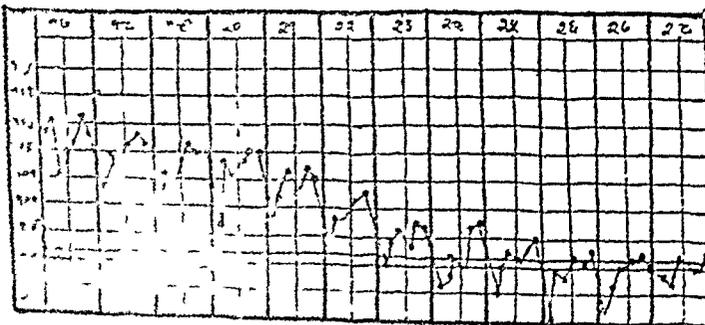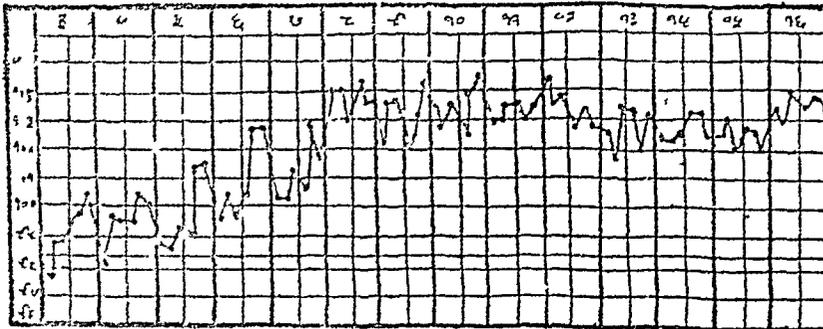
(२) नाडी—मन्थर-ज्वरो की नाडी तापक्रम की वृद्धि के अनुपात में धीमी चलती है। अन्य ज्वरो में ज्यो ज्यो तापक्रम बढ़ता है त्यो त्यो नाड़ी बढती है पर यहां यह नही होता। सामान्यत. नाडी प्रति मिनट १०० तक चली जाती है।

(३) मूत्र परीक्षा—रोगी का परीक्षार्थ रक्खे हुए मूत्र मे तैल की एक बून्द डालो। यदि यह बून्द पूर्व की ओर फैले तो समझना चाहिए कि रोग शीघ्र नष्ट होगा और रोगी शीघ्र आरोग्य होगा। यदि तैल की बून्द मूत्र तल पर दक्षिण की ओर फैले तो ज्वर का रोग समझना चाहिए और रोग क्रमश धीरे धीरे नष्ट होकर रोगी को आरोग्य लाभ पहुचता है। जीर्ण ज्वर मे मूत्र रक्त के सदृश पीला होता है।

(४) दृष्टि परीक्षा—नेत्रो मे रूक्ष, धूम्र वर्ण का विकराल, चञ्चल और जलता हुआ दिखाई दे तो वात रोग है। जिनके नेत्र पीले तथा रक्त वर्ण हो उन्हे पित्त प्रकोप तथा जल युक्त नेत्र कफ युक्त हैं तथा दोनो नेत्रो की दाईं ओर तथा बायीं ओर रक्त वर्ण की रेखा पार्श्व दिशा में होती हैं। यह मन्थर ज्वर का विशेष लक्षण है।

(५) जिह्वा परीक्षा—मोतीझला के रोगी की विशेष पहचान जिह्वा परीक्षा से होती है। जीभ के ऊपर मलाई के समान सफेद परत जम जाती है तथा मध्य जिह्वा ज्यादा सफेद होती है

लेकिन जिह्वा के किनारे गुलाबी लाल वर्ण के होते हैं।

(६) दाने निकलना—मोतीझला के दाने ७ दिन से पूर्व नही निकलते। कभी कभी एक या दो दिन के अन्तर से भी दाने निकल आते हैं। ये दाने स्पष्ट रूप से मोती के सदृश्य कानो के नीचे की लौर के मूल से निकलना प्रारम्भ होते हैं। उसके पश्चात् दाने गले पर एव छाती पर क्रमशः नीचे पेट और पैरो पर निकलते हैं।

मन्थर ज्वर या मोतीझला ज्वर के उपद्रव

१–शिरोशूल, २–ज्वर की उग्रता में अधिक वृद्धि, ३–अनिद्रा, ४–प्रलाप, ५–निद्रा, तन्द्रा तथा सन्यास, मूर्च्छा, ६–सन्निपात, ७–शीत का वेग, ८–स्वेद का अधिक आना तथा स्वेद में चिपचिपाहट, ९–हृदय एव नाडी की क्षीणता, १०–हाथ पैर आदि का मारा जाना अथवा लकवा होना, ११–श्वास कास, पार्श्वशूल, निमोनियां का होना १२–अतिसार, प्रवाहिका तथा रक्तातिसार एव पेट मे मरोड एव शूल, १३–पेट का फूल जाना अथवा अफरा होना, वमन, हिचकी, १४–रक्तस्राव तथा छिद्रोदर, १५–पित्ताशय एवं प्लीहा का बढना एव शोथ जिसे यकृदोदर एव प्लीहोदर, १६–मूत्रावरोध अथवा वृक्क का उपसर्ग, १७–मस्तिष्क सुषुम्नाशोथ, १८–अस्थि विकार, १९–आंखे आदि मे फूला आदि पडना २०–कर्ण बाधिर्य आदि मन्थर ज्वर में उपद्रव होते हैं।

मन्थर ज्वर या मोतीझला का पुनरावर्तन

मोतीझरा ज्वर का पुनरावर्तन होता है। चिकित्सा एव पथ्य के सेवन मे अनियमिततायें आने पर मोतीझला ज्वर का पुन आक्रमण हो जाता है और उसी प्रकार के सम्पूर्ण लक्षण उदय हो जाते हैं। कभी कभी मोतीझला ज्वर का पुनरावर्तन मारक भी हो जाता हैं। मोतीझला का ज्वर महीनो तक ग्रसित करता है।

मन्थर ज्वर या मोतीझला ज्वर की साध्या साध्यता

मोतीझला ज्वर का आक्रमण सौम्य होता है तथा जो मोतीझला ज्वर सीधा बिना जटिल उपद्रव चलता है वह साध्य है। जिस मोतीझला मे इन्द्रिय स्वस्थ हो तथा उपद्रवो का न होना हो तो यह मोतीझला साध्य है।

जो मोतीझला इन लक्षणो के प्रतिकूल लक्षण हो वह असाध्य कहलाता है। अतिसार, रक्तातिसार, तथा मल मे काला सड़ा हुआ बदबूदार पीव व रक्त मिश्रित मल हो, आध्यमान हो, हिक्का हो, प्रलाप एव आक्षेप हो, नाडी की गति मन्द हो गई हो, नाडी मे पित्त की नाडी लोप होगई हो और मासपेशियो में आक्षेप हो, मूर्च्छा हो और नेत्र की रोशनी भी खतम हो तो यह मोतीझला का रोगी असाध्य है। इसकी चिकित्सा नही करनी चाहिए तथा ऐसे रोगी को ईश्वर की अनुकम्पा पर छोड देना चाहिए। उल्टा मोतीझला जो पैरो से निकलता है असाध्य कहलाता है। जो मोतीझला काला पड जाता है उसे भी असाध्य ही समझते हैं।

मन्थर ज्वर या मधुर ज्वर व मोतीझला ज्वर की चिकित्सा

ज्वर मे जल का विधान—वात ज्वर, कफ ज्वर, और वातकफज ज्वर मे इससे पीडित रोगी को प्यास के समय गरम जल देना चाहिए। पैत्तिकज्वर मे तिक्त द्रव्यो के साथ गर्म करके ठण्डा किया हुआ जल देना चाहिए। ये दोनो शीत और उष्ण जल दीपन, पाचन, ज्वरघ्न, स्रोतो विशोधक, बल्य, रुचिदायक, स्वेद लाने वाले, और कल्याणकारी जल मोती-झला के लिए विशेष होता है।

उष्णोदक के गुण—उष्णोदक कफ, मेद, वायु और आम का नाशक है। दीपन, मूत्राशय का शोधन, कास, श्वास और ज्वर का नाशक और सदा पथ्य है।

उष्णोदक के लक्षण- पानी गर्म करने से वेगरहित, फेनरहित, और निर्मल हो जाय तथा आधा शेष रह जावे उसे उष्णोदक कहते हैं। जल गर्म करते समय चतुर्थांश कम होने पर उतार लिया जाय तो वातनाशक होता है। आधा कम होने पर पित्तनाशक, और तीन भाग जल जाने पर पानी उतारा जाय तो कफनाशक, पाचन, दीपन और लघु होता है। द्वन्द्वज और सन्निपात ज्वर रोग का नाशक होता है।

ऋतु के अनुसार जल पाक की विधि—शरद ऋतु मे जल अष्टमाश जलने पर पिलाना चाहिए। हेमन्त ऋतु मे चतुर्थाश जलने पर, शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतु मे

अर्धावशेष जल रोगी को पीने के लिए देना चाहिए। विपरीत ऋतु मे अर्थात् वर्षा ऋतु में आठवां भाग शेष रहने पर पानी पीने को देना चाहिए। अष्टमांश शेष रहा जल कफ के समूह तथा वायु का नाश करता है। गर्म करके शीतल किया हुआ जल त्रिदोष नाशक है। दिन मे गर्म किया हुआ जल शीतल होकर रात्रि के लिए गुरु हो जाता है और रात्रि में गर्म किया हुआ जल शीतल होकर दिनगुरु हो जाता है अर्थात् दिन का औटाया हुआ जल रात्रि को और रात्रि का औटाया हुआ जल दिन मे सेवन नहीं करना चाहिए। लोह पिण्ड को तपाकर या ढेले को तपाकर बुझाया हुआ जल सब प्रकार के ज्वरो के दोषो का नाशक तथा आरोग्यकारक होता है।

पावहीन जल—पानी १ सेर, तुलसी पत्र ३ नग, कृष्ण मरिच ५ नग अग्नि पर गर्म करना प्रारम्भ किया और ३ पाव शेष रहे इसी प्रकार आधा जल शेष रहने पर अर्द्धावशिष्ट जल बनता है। मोतीझरा में इस प्रकार का जल बहुत ही उपयुक्त है तथा आरोग्यवर्धक है।

मन्थर ज्वर में जयमगल रस

घटक—सिंगरफ से निकला हुआ पारद, शुद्ध गन्धक, सोहागे का फूला, ताम्र भस्म, वङ्ग भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, सैंधव नमक, सफेद मिर्च ये प्रत्येक एक एक तोला, स्वर्ण भस्म २ तो., लोह भस्म १ तो. और रौप्य भस्म १ तो लेना चाहिए। सब मिलाकर खरल करके धतूरे के पत्तो का रस, हारश्रृङ्गार के पत्तो का रस, दशमूल का क्वाथ और चिरायते का क्वाथ इन सबकी क्रमश ३-३ भावना देकर आध- आध रत्ती की गोलिया बनानी चाहिये।

मात्रा—आधा रत्ती से १ रत्ती तक दिन मे २ से ३ समय जीरे का चूर्ण और शहद के साथ या रोगानुसार अनुपान से देना चाहिये।

उपयोगिता—यह बडी दिव्य औषधि है। सब प्रकार के तापो को दूर करती है और मस्तिष्क मे पहुँची हुई ताप की ऊष्मा को दूर करके मस्तिष्क को शान्त बनाती है। बहुत काल का पुराना महाघोर जीर्ण ज्वर, साध्य और असाध्य आठो प्रकार के ज्वर वातपित्तादिक भिन्न भिन्न दोषो से होने वाले सब प्रकार के ज्वर, सब प्रकार के विषमज्वर, मेदोगत ज्वर, मांसाश्रित ज्वर अस्थि, और मज्जा मे रहा हुआ ज्वर, अन्तरवेग और बाह्य वेग वाला ज्वर, नाना प्रकार के दोषो से उत्पन्न ज्वर, शुक्रगत ज्वर एव अन्य सभी प्रकार के ज्वरो को यह रसायन दूर करता है। बलवीर्य की वृद्धि करता है तथा सर्व रोगो को नष्ट करता है। अनेक समय विषमज्वर कई दिनो तक त्रास पहुँचाता रहता हो एव जो मुद्दती तार औषधि या पथ्य मे भूल पड जाने से २-२ मास तक या इससे भी ज्यादा समय का हो गया हो तथा अन्य किसी भी प्रकार के ज्वर, जीर्ण होकर मासादि धातुओ के आश्रित रहे हुए हो और जो शीतल या गर्म उपचार से बढ जाते है ऐसे तापो को यह रसायन नाश करने मे अद्वितीय है।

इस रसायन के सेवन से अन्तर मे रहे हुए ज्वर के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, सेन्द्रिय विष जल जाता है निद्रा आने लगती है, दाह शमन होता है कफ सरलता से निकल दुष्ट कफ की उत्पत्ति बन्द हो जाती है। ज्ञानतन्तु बलवान बनने लगते हैं तथा मन प्रसन्न रहता है।

१ परम श्रद्धेय स्व श्री हरिहरदत्त जोशी जी भू० पू० प्रधानाचार्य ऋषिकुल आयुर्वेद कालेज हरिद्वार मे कालेज के ठीक सामने उनकी अपनी कोठी है उस स्थान पर श्रीमान आचार्य जी अपना निजी चिकित्सा कार्य करते थे। उस समय सौभाग्यवश में उनके चिकित्सा कार्य में सहयोग देना अपना अहोभाग्य समझता था और उन्होंने गुरु शिष्य धर्म को निभाते हुए मुझे एक अमूल्य योग चिकित्सा रूप में दिया है। उस समय घोर सन्निपातिक मन्थर ज्वर का एक रोगी आया और उसे माननीय आचार्य जी ने आयुर्वेदीय अनुभूत निम्न योग दिया था जिससे एक सप्ताह में स्वास्थ्यलाभ प्राप्त कर दिया—

प्रात.काल—कृष्णचतुर्मुख रज १ रत्ती, विषाण (श्रृङ्गभस्म) १ रत्ती. मुक्ता भस्म १ रत्ती मधु से

सायकाल—सौभाग्यवटी १ गोली, विषाण (श्रृङ्गभस्म) १ रत्ती मधु से

रात्रि को—चिन्तामणि चतुर्मुख आधी रत्ती, विषाण (श्रृङ्गभस्म) १ रत्ती मधु से

अर्ध रात्रि को—वृहत वात चिन्तामणि १ रत्ती, विषाण (श्रृङ्गभस्म) १ रत्ती, वृहत एला चूर्ण १ रत्ती, सितोपलादि चूर्ण ४ रत्ती, अष्टांगावलेह २ माशा मधु से

कफ प्रलाप को दूर करने के लिए रससिन्दूर आधी रत्ती, मृत सजीवनी १ गोली मधु से दी।

आदरणीय श्रीमान हरिहरदत्त जी जोशी भू० पू० आचार्य ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज हरिद्वार ने दूसरे सन्निपातिक प्रलापक सन्तत ज्वर के रोगी को निम्न आयुर्वेदिक योग दिया था जिससे १०दिन मे स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर चुका था—

प्रात काल—मकरध्वज ॥ रत्ती, अभ्रक भस्म ॥ र०, मुक्ता भस्म ॥ र०, विषाण भस्म १ रत्ती, मधु तथा खमीरा मरवारिद से

सायकाल—चिन्तामणि चतुर्मुख ॥ र०, मुक्ता भस्म ॥ र०, विषाण १ र० अद्रक रस मधु से

रात्रि को—अर्धनारीश्वर रस १ र० को पानी मे घिसकर आखो पर लगाया अर्धरात्रि को हृदर्णार्गभ पोटली रस १ र० अद्रक रस से दिया।

मन्थर ज्वर की क्वाथ चिकित्सा

नागर मोथा, पित्त पापडा, मुलेठी, मुनक्का सबको समभाग में लेकर यथाविधि क्वाथ बनाकर अष्टमाश शेष रहने पर शीतलकर मधु का प्रक्षेप देकर पीने से पित्तज विकार, भ्रम ज्वर दाह और वमन से युक्त मथर ज्वर नष्ट होता है।

२ रक्त चन्दन, खस, धनियाँ, सुगन्ध वाला, पित्त पापडा, नागरमोथा, सोठ, सबको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पीने से मन्थर ज्वर नष्ट होता है।

३. हुलहुल २० तो०, हारश्रृंगार के पत्र २० तो०, पटोलपत्र २० तो०, स्याहुतरा २० तो०, गिलोय २० तो० सबको कूटकर ३२ गुने पानी में क्वाथ कर लिया तथा चौथाई शेष रहने पर तब उतार, छानकर, नितार कर पुन साफ कढ़ाई मे डालकर गरम करें। जब गोली बनाने योग्य हो जाय उसे उतार कर चनाबराबर गोली बना सुखा लो।

क्वाथ विधि—हारश्रृंगार के पत्ते ११ नग को कुचलकर २० तो० पानी में क्वाथ करें।जब ५ तो० शेष रहे तब उतार छानकर ६ माशा शहद मिला शीशी में रक्खे ३ माशा गोली के साथ सेवन करायें। इसके सेवन से कुपित मोतीझला तथा जीर्ण ज्वर भी नष्ट हो जाता है।

४. मन्थर ज्वर हर वटी—मोती शुक्ति भस्म, प्रवाल भस्म, माक्षिक भस्म, सत्व गिलोय असली तुलसी के बीज, इलायची छोटी के बीज, कश्मीरी केशर और गोदन्ती भस्म ये समभाग लेकर ब्राह्मी के रस मे एक पहर मर्दन करें गुञ्जा फल के समान गोली बनाकर मधु तथा अद्रक रस के साथ सेवन करने मन्थर से ज्वर और उसके उपद्रव अवश्य शान्त होते हैं।

—आयुर्वेदाचार्य श्री डा० गजेन्द्रसिंह छौंकर ए., एम.बी.एस.
सादाबाद (मथुरा)

पृष्ठ ४०५ का शेषांश : : —प्लेग

(२) सजीवनी वटी (शा. ध) मात्रा २ से ४ रत्ती अनुपान आर्द्रकरस, तुलसीपत्र रस तथा मधु के साथ। दिन मे ४ वार।

(३) त्रिभुवनकीर्ति रस (र यो सा) मात्रा १ रत्ती से ३ रत्ती तक।

अनुपान—आर्द्रकरस या तुलसीपत्र रस तथा मधु के साथ। दिन मे ४ बार।

(४) मध्याह्न और रात्रि मे—महासुदर्शन चूर्ण (शा. ध) १ से ३ ग्राम। ताजा जल या दूध मिश्री के साथ।

(५) हृदय दौर्बल्य मे—मकरध्वज ½ से २ रत्ती तक।

अनुपान—मधु, दूध के द्वारा। दिन मे दो बार या आवश्यकतानुसार।

स्थानीय—दशाङ्गलेप (शा. ध.) और गूगल को गो मूत्र में महीन पीसकर गुनगुना करके ग्रन्थि पर लगाना दो वार। ऊपर से सेक करना ,बाद में बट पत्र या एरण्ड पत्र बांधना।

मैं भडारा जिले में शासकीय औषधालय मे प्रधान चिकित्सक पद पर था, सन् १९४६ मे गोदियामें प्लेग प्रबलतम रूप मे फैला था। उस समय ४० हजार लोगो को प्लेग का टीका लगाया। शासन की ओर से सीवाजाल टेवलेट और बेलडोना प्लास्टर वितरित करने को दिया गया। किन्तु मैंने सैकडो प्लेग से पीडित रोगियो को केवल संजीवनी वटी और दशाङ्ग लेप के प्रयोग द्वारा आरोग्य किया था।

—कविराज हरिबल्लभ म द्विवेदी सिलाकारी शास्त्री
निरजन—निवास, चकराघाट, सागर (म. प्र.)
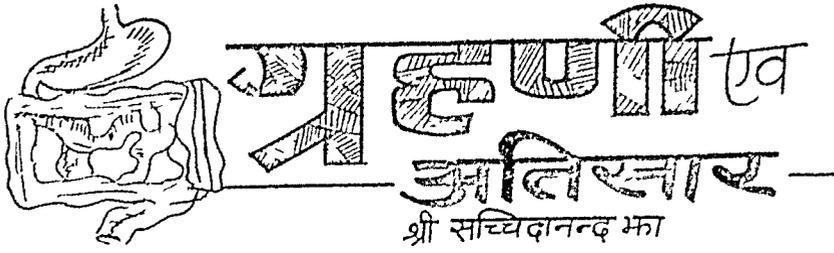
व्याख्या—यह एक आन्त्र का विकार है जिसमें पेट में पीडा, मरोड, कुंथन, आव और खून के साथ पतले दस्त होते हैं।

जैवकीय हेतु—इसके दो प्रकार होते हैं—दण्डाण्वीय और आमरूपीय (बैसीलरी और अमीबिक)। दण्डाण्वीय का कारण शिगा और फ्लेक्स्नर के दण्डाणु (B. Dysentery-shiga and flexner) हैं और आमरूपीय के कारण आन्त्रामरूपी धातुनाशी (Entamoeba Hystolytica) नामक कीटाणु हैं। कभी-कभी ये दोनो उपसर्ग मिश्र भी होते है। रोगी के मल में ये जीवाणु उपस्थित रहते हैं।

प्रसार—रोग का प्रसार आन्त्रिक के समान मल दूषित खाद्यपेय पदार्थों से तथा वाहकों से होता है। आमातिसार मे रोग का प्रसार आमरूपीयो से न होकर उनके कोष्ठो (Cysts) के द्वारा होता है। ये कोष्ठ आमरूपीयो के साथ मल में उत्सर्गित होते है। खाद्यपेयों की दुष्टि मलदूषित हाथो से, मक्खियो से, धूलि से और वाहको से होती है। आमातिसार के वाहक प्राय. स्वस्थ होते है जो मल के साथ कोष्ठो का उत्सर्ग करते हैं, परन्तु दण्डाण्वीय के प्राय व्याधित होते है। इसमें भी फ्लेक्स्नर के वाहक अधिक होते है। इतस्तत. मल त्यागने से तथा रोगी का मल इतस्तत. फेंकने से रोग प्रसार में सहायता होती है। मलस्थित आमरूपी शीघ्र मर जाता है, परन्तु उसके कोष्ठ नही मरते जो आमाशय अम्ल का प्रतीकार करके आन्त्र पहुँचने पर आमरूपी मे परिवर्तित होते है।

अतिसार के प्रकारो मे आमातिसार की अपेक्षा दण्डाण्डवीय अधिक होता है और उसमें भी शिगाजनित की अपेक्षा फ्लेक्सनरजनित अधिक होता है। दण्डाण्वीय अतिसार प्राय तीव्र स्वरूप का और आमातिसार कालिक स्वरूप का होता है। भारतवर्ष मे प्रतिवर्ष ३ लाख लोग अतिसार से मरते हैं ऐसा अनुमान है।

प्रतिषेध—आन्त्रिकज्वर के समान रोगी के मल का नाश करने पर अधिक ध्यान देना चाहिए। रोग निवृत होने के पश्चात् जब तक मल मे कोष्ठ या दण्डाणु मिलते हैं तब तक रोगियो का सम्बन्ध खाद्यपेयो से न रखना चाहिए। दण्डाण्वीय अतिसार के लिए टीका तथा मुख द्वारा सेवन करने की पित्त मसूरी (Bili vaccine) भी प्रयुक्त होती है।

परिचय—अतिसरणम् अतिसार। अर्थात् अधिक मात्रा में जल मिश्रित मल का वार वार नि.स्सरण होना ही अतिसार कहलाता है।

कारण—उड़द की दाल, सड़ा-गला वासी भोजन, दूध और मछली का एक साथ भोजन, अत्यन्त गर्म, रूक्ष और अति शीतल पदार्थो का सेवन, दूषित जल एव मद्य का सेवन, ऋतु-विपरीत आहार-विहार, मल के वेगो का धारण तथा कृमि-दोष से अतिसार रोग पैदा होता है।

भेद—

अतिसार के वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक, सन्निपातिक, शोकज तथा आमदोषजन्य ये छ भेद होते है।

वातातिसार के लक्षण—इसमें रोगी उदर शूल से पीडित रहता है। उसका मूत्र रुक जाता है अथवा अल्प मात्रा में होता है। उसके आन्त्र मे गुड-गुड शब्द होता है वह वार-वार फेनयुक्त, रूखा और काले रग का थोड़ा थोडा मल का त्याग करता है। मल त्याग करते समय वायु की आवाज होती रहती है।

पित्तातिसार के लक्षण—इसमें मल दुर्गन्धयुक्त, गरम एव वेग के साथ वाहर निकलता है। रोगी को वार-वार प्यास लगती है।

श्लेष्मातिसार के लक्षण—इसमे रोगी को तन्द्रा, निद्रा,जी मिचलाना आदि उपद्रव घेर लेते है। रोगी वार वार मल त्याग करता है। उसका मल कफयुक्त होता है मलत्याग के समय कोई आवाज नही होती है।

सन्निपातातिसार के लक्षण—इसमे रोगी तन्द्रा से युक्त रहता है। बार-बार प्यास लगती है। मल का रग विविध प्रकार का होता है।

शोकातिसार के लक्षण—धन, बन्धुनाश आदि हृदय विदारक कारणो से चिन्तायुक्त एव स्वल्प भोजन करने वाले मनुष्य के नेत्र, नासिका तथा गले से निकलवे वाले जलीयस्राव रूपी वाष्प की ऊष्मा का आवेग कोष्ठ में जाकर पाचकाग्नि को मथ करके रक्त को क्षुभित कर देता है। इसमे मल गन्ध देता हुआ कष्टपूर्वक गुदमार्ग से निकलता है। इसी को शोकोत्पन्न अतिसार कहते हैं।

आमातिसार के लक्षण—आमाजीर्ण से प्रकुपित हुए दोष कोष्ठ को क्षुभित करके भोजन के साथ मल को प्रवाहित कर देते हैं। यह मल अनेक प्रकार के वर्ण का होता है।

चिकित्सा

प्राय सभी प्रकार के अतिसारो के प्रारम्भ में आमदोष रहता है। अतएव सर्वप्रथम इसकी चिकित्सा करनी चाहिए। इसके लिये रोगी को पहले लघन कराना चाहिए। लघन के बाद रोगी को पाचक औषधियो का सेवन कराना चाहिए। जिस रोगी को बहुत बार कठिनाई से रुक-रुककर मलत्याग होता हो उसे हरीतकी का चूर्ण तीन माशे से छ माशे तक सेवन कराना चाहिए। इससे सचित दोष निकल जाते हैं। जो रोगी थोडा-थोडा एव रुक-रुककर शूल के साथ मलत्याग करता हो उसे मन्दोष्ण पानी के साथ बडी हरड का चूर्ण चार-छ माशे तथा पिप्पली का चूर्ण एक माशा देकर विरेचन कराना चाहिये।

आमातिसार से पीडित रोगी को हरीतकी, अतीस, शुद्ध हींग, नमक और वचा के चूर्ण को २ माशे से ४ माशे तक की मात्रा मे मन्दोष्ण जल के साथ दिन मे तीन बार सेवन कराना चाहिए। वातश्लेष्मातिसार से पीडित रोगी को सौंठ, मरिच, पिप्पली, जायफल और चित्रक का कल्क दही के साथ सेवन कराना चाहिए। पित्तातिसार में यवागू का प्रयोग अति लाभकारी होता है। बला, अतिबला, शालपर्णी, गोखरू, बडी कण्टकारी और शतावर इन्हे समान भाग लेकर यवकुट करके क्वाथ करें। जब चौथाई शेष रह जाये तो छानकर रोगी को पिलावें। कच्चे विल्वफल की मज्जा, इन्द्रयव, मोथा, नेत्रवाला और अतीस इनका क्वाथ पिलाने से आमदोषयुक्त पैत्तिक अतिसार नष्ट हो जाता है। शूलातिसार मे सौठ, मरिच, पिप्पली, जीरा, चित्रक की जड, चव्य, पिपरामूल और दाडिम की छाल सम मात्रा में लेकर कल्क बनावें। कल्क ४ पल (१पल=४ तोला), घृत १६ पल, दही १ प्रस्थ (प्रस्थ=आढक चतुर्थांश) तथा काँजी ४ प्रस्थ लेकर घृतावशेष पाक करले। शूल से पीडित अतिसार के रोगी पर दिन मे २-३ बार प्रयोग करने से अच्छा लाभ करता है। मुलेठी, कच्चे विल्वफल की मज्जा उन्हे समभाग मे लेकर चूर्ण करके १ माशे भर लेकर आधा माशा शर्करा तथा १ माशा मधु मिलाकर सेवन करने से अतिसार समूल नष्ट हो जाता है। चिरकालीन अतिसार मे पावभर दुग्ध को तीन पाव पानी के साथ उबालकर दुग्ध मात्र शेष रहने पर रोगी को थोडा-थोडा करके पिलाते रहना चाहिए।

मुलेठी, शक्कर, पठानी लोध्र, विदारीकन्द और अनन्तमूल इन्हे समभाग मे चूर्णित कर ३ माशे लेकर शहद के साथ मिलाकर बकरी के दूध के साथ सेवन करावे से रक्तातिसार नष्ट हो जाता है।

रक्त के साथ पतला पानी जैसा मल आने पर कच्चे विल्वफल की मज्जा का चूर्ण तीन तोला लेकर राब अथवा शहद के साथ भोजन के पहले रोगी को चटावे। यह योग आशु लाभकारी है। कच्चे विल्वफल की मज्जा का चूर्ण १ माशा, शर्करा २ माशे तथा शहद ३ माशेभर लेकर चावल के २ तोले धोवन में मिश्रितकर दिन में २-३ बार पिलावे से पित्तरक्तजन्य अतिसार नष्ट हो जाता है।

सविबन्ध रक्तातिसार के रोगी को वायविडङ्ग, हरड, बहेडा, आँवला और पिप्पली के क्वाथ से विरेचन कराना चाहिए। रोगी को भूख लगने पर शालपर्णी आदि वातनाशक एव दीपनीय औषधियो के क्वाथ में सिद्ध किया चावल या मू ग की यवागू देनी चाहिए।

मल का अधिक क्षय होने पर खरगोश का मास, लज्जालु, घृत और दही इन्हे मिश्रित कर आग पर पकाकर रोगी को सेवन कराना चाहिए। इसके अलावे भोजन में मू ग, यव और बदरीफल का क्वाथ बनाकर घृत और तैल से सस्कृत करके उसमें दही और अनार का

स्वरस मिलाकर देना चाहिए। विड लवण, कच्चे विल्व-फल की मज्जा और सोंठ इन्हें काञ्जी के साथ पीसकर घृत तैल भर्जित करके दही के ऊपर का मलाई का भाग मिलाकर खिलाने से मल क्षय में बहुत लाभ होता है।

अतिसारहर सफल योग—(१) अगस्तिसूतराज रस, हिंगुलवटी, शखोदर रस, अहिफेनवटी, जातिफलादि वटी, गगाधर चूर्ण, कनक सुन्दर रस, कुटजारिष्ट, कुटजवटी, कुटजावलेह, पीयूष वल्ली रस, दाडिमावलेह इत्यादि सफल योगो को यथाविधि रोग एव रोगी के अनुसार प्रयोग करने से सत्वर लाभ होता है।

(२) एण्टरोवायोफार्म, डाइडोक्वीन, ओरियोमाइसीन, टेरामाइसीन, सल्फाडायाजीन, क्लोरोस्ट्रेप, फ्युरोक्सोन, इत्यादि आधुनिक पेटेन्ट औषधियो को, रोग एव रोगी की अवस्था के अनुसार गोली, कैपसूल, पेय, इन्जेक्शन इत्यादि के रूप में प्रयोग करने से बहुत शीघ्र लाभ होता है।

—श्री सच्चिदानन्द झा,
द्वारा श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०,
पटना–१

अतिसार में तक्र से स्वास्थ्यलाभ

न तक्र सेवी व्यथते कदाचित्,
न तक्र दग्धा प्रभवन्ति रोगा।
यथा सुराणाममृत सुखाय,
तथा नराणां भुवितक्रमाहु॥

तक्र के भेद—
तक्र–घोल–मथित–उदश्वित–छाछ
लक्षण—

(१) विना पानी डाले दधि को मलाई सहित मथने पर घोल कहते हैं।

(२) मलाई निकाल कर विना जल का दही विलोया जाय उसे मथित कहते हैं।

(३) चौथाई भाग जल डालकर मथा जाय वह मट्ठा होता है।

(४) आधा पानी डाल मथा दही उदश्वित कहलाता है।

(५) मथकर मक्खन निकाल लिया हो, अधिक पानी डाल मथा हो उसे छाछ कहते हैं।

तक्र गुण—हल्का होने से मल को रोकता है, ग्राही है। कसैला खट्टा उष्णवीर्य–अग्निवर्द्धक, वातनाशक, मधुर रूक्ष होने से कफनाशक है। ग्रहणी में पथ्य है।

पाक मे स्वादु होने से पित्त प्रकोप नही करता है। अत. तक्र के सेवन करने वाले कदापि रोगी नही होते। ग्रहणी रोगी को तो रामबाण है।

दोष और व्याधि से तक्र गुण—वात मे सोंठ, सैंधव नमक मिला तक्र उत्तम है। पित्त में मिश्री (शक्कर) मिला मधुर तक्र उत्तम है। कफवृद्धि मे सोंठ मिर्च पीपल सम चूर्ण मिला श्रेष्ठ है। भुनी हींग, भुना जीरा, सैंधव चीता छाल मिला घोल अति वातनाशक-अर्श अतिसार रुचि-वर्द्धक–पुष्टि दायक-मूत्रकृच्छ्र-वस्तिशूल-पाण्डु मे उत्तम है।

तक्र पथ्यतम है–शीतकाल-मन्दाग्नि-अरुचि–वात रोगो मे तक्र अमृत तुल्य है तथा वमन--पाण्डुरोग -मेदवृद्धि संग्रहणी-भगन्दर–प्रमेहगुल्म--शूल--अतिसार, उदर रोग, क्रिमि–तृषा को नष्ट करता है।

निषेध— तक्र नैवक्षते दद्यात्–उष्ण काले न दुर्बले।
न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्त पित्त के॥

अपथ्य तक्र होता है जो क्षत मे–उष्ण काल में मूर्च्छा भ्रमरोग, दाह, रक्तपित्तज रोग में दुर्बलजन को भी सेवन का निषेध है। अविधि से तक्र लेने से अनेक रोग, अवगुण हैं। रात्रि मे दधि एव तक्र न खावें।

—श्री वैद्य राम प्रसाद शास्त्री
आयुर्वेदाचार्य, गीता विशारद, अलीगढ।
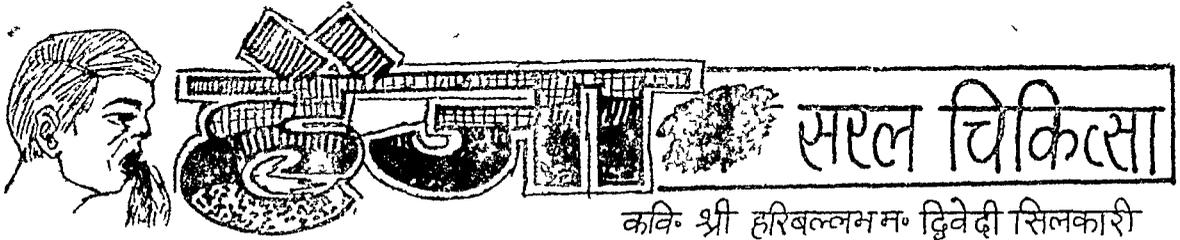
कवि॰ श्री हरिबल्लभ म॰ द्विवेदी सिलकारी

हैजा को सस्कृत मे विसूचिका, हिन्दी में महामारी, अरबी और हिन्दुस्तानी भाषा मे हैजा तथा अग्रेजी में कालरा कहते हैं। प्राय यह भारतवर्ष के किसी न किसी प्रदेश में ग्रीष्म या वर्षा ऋतु मे फैलता है जिससे अगणित मानव समाज अकाल में ही काल कवलित हो जाते हैं। हैजा एक से अनेक लोगो मे शीघ्रता से फैलने वाली सक्रामक (जनपदोध्वसक) व्याधि है।

परिचय—हैजा रोग अजीर्ण से उत्पन्न होता है, अत- इसका अधिक ध्यान रखना चाहिये कि अजीर्ण (अपचन) न होने पावे। हैजा का प्रधान कारण ऋतु की अनियमितता (ऋतु विपर्यय) और अजीर्ण-विकार है। जहा कही हैजा फैला हो वहा आहार-विहार मे विशेष सावधानी रखना नितान्त आवश्यक है। आयुर्वेदशास्त्र में हैजा जैसे सक्रामक रोगो का कारण ऋतु का हीन, मिथ्या और अतियोग बतलाया है, किन्तु पाश्चात्य मतानुसार विभिन्न प्रकार के जीवाणु विभिन्न रोगो को उत्पन्न करते हैं। दोनो के सिद्धान्त शास्त्र-सम्मत हैं क्योकि ऋतु के हीन, मिथ्या और अतियोग से रोगोत्पादक जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं।

कारण

ऋतुचर्या के नियमो का उलङ्घन कर ऋतु-विपरीत, प्रकृति-विरुद्ध, अनियमित और अप्रमाण आहार करना, गरिष्ट द्रव्य, वासा तथा ठडा भोजन, वगैर भूख के या भूख से अधिक खाना, रात्रि मे अधिक भोजन करके तुरन्त सोना, धूप से आकर शीघ्र ही जल-पान करना, लू लगना, गन्दी हवा, मैला पानी, घनी आबादी मे रहना, अधिक परिश्रम, रात्रि-जागरण, ग्रीष्म के सिवाय अन्य ऋतु मे दिन को सोना, अस्वच्छ-अधेरे—सील वाले गन्दे मकान मे रहना, अस्वच्छ कपड़े पहिनना, होटलो और बाजारो की वस्तुएं खाना, शोक तथा भय आदि विशेष मानसिक विकृति से जठराग्नि सहसा दुर्बल हो जाती है, इस कारण भोजन का परिपाक यथाविधि नही होता तथा इसी से भयभीत और सशकित मनुष्यो के ऊपर हैजा रोग का आक्रमण होता है। शास्त्रीय उल्लेख निम्न प्रकार है।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च सधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च।
कालेपि सात्म्यं लघुचापि भुक्तमन्न न पाक भजतेनरस्य॥
ईर्ष्याभय क्रोध परिप्लुतेन लुब्धेन रुग्दैन्य निपीडितेन।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्न न सम्यक्परिपाकमेति॥
मात्रयाऽप्यभ्यवहृत पथ्य चान्नं न जीर्यति।
चिन्ता शोक भय क्रोध दुःखशय्या प्रजागरै॥

उक्त कारणो से हैजा होने का अधिक भय रहता है, एतदर्थ हैजे के कारणो का प्रतिकार करना ही इससे सुरक्षित रहने का सरल-साधन है। वैसिलस-वाईब्रोयो कोलेरी नामक वेक्टीरिया (जीवाणु) हैजा प्रसारक है।

लक्षण

सामान्यत बार-बार दस्त और कय होती है। इसलिए लोग दस्त तथा कय होने पर यह समझ लेते हैं कि हैजा हो गया, किन्तु हैजे के दस्तो मे और साधारण दस्तो मे बहुत भेद होता है। हैजे मे पहिले तो १-२ मामूली दस्त आते है, परन्तु फिर बिलकुल पानी जैसे पतले तथा चावलो के धोवन के समान सफेद दस्त आने लगते हैं। कय भी पहिले १-२ बार अनाज की होती है और पीछे पानी-जैसी पतली होते हैं। हैजे मे अकेला (पृथक) पेशाब नही होता अपितु दस्त के साथ ही होता है। अन्त मे रोग के बढ जाने पर बन्द हो जाता है बार-बार दस्त और कय होते हैं।

मूर्च्छाऽतिसारो वमथुः पिपासा,
शूलो भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहा।
वैवर्ण्यकम्पौ हृदयेरुजश्च,
भवन्ति तस्यां शिरसश्चभेद.॥

बेहोशी, दस्त, कय, प्यास, उदरशूल, भ्रम, ऐंठन (मरोड), जम्हाई, दाह, विवरणता, हृदय और मस्तक पीडा होती है। नाडी की गति मन्द होती है। सभी रोगियो मे सम्पूर्ण लक्षण नही होते, बल्कि रोग की बलिष्टता के अनुसार न्यूनाधिक लक्षण देखे जाते हैं।

साध्यासाध्यता—

हैजे की साध्यावस्था मे बार-बार दस्त कय और घबराहट होती है। इस अवस्था में अविलम्ब उपचार आरम्भ हो जावे तो रोगी अवश्य आरोग्य हो जाता है।

कष्टसाध्य लक्षण—पेट मे पीडा, जीभ का सूखना, जीभ पर कांटे से मालूम पड़ना, प्यास, पेशाब बन्द हो जाना, नाडी की गति अधिक मन्द होना, हाथ-पैरो मे ऐंठन आदि लक्षण होते हैं। ऐसे रोगी भी स्वस्थ हो जाते हैं, परन्तु अनुभवी चिकित्सक द्वारा समुचित चिकित्सा शीघ्र होना आवश्यक है और रोगी की सुश्रुषा विधिवत् होनी चाहिए।

असाध्य लक्षण—हैजे की यह अन्तिम अवस्था अधिक भयकर होती है। इसमे रोगी के बचने की आशा कम ही होती है।

> यः श्यावदन्तौष्ठनखोल्पसंज्ञो,
> वम्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्र ।
> क्षामस्वर सर्वविमुक्तसन्धिर्या,
> यान्नर. सोऽपुनरागमाय ॥

य. पुरुष. श्यावदन्तादिलक्षणयुक्त. स्यात्, श्यावशब्दो दन्तादिभि प्रत्येक सवध्यते, क्षामस्वरः क्षीणध्वनि, सर्वविमुक्तसधिश्च, सनरोऽपुनरागमाय अनुपरावृत्तये मरणाय, (माधव निदान ग्रन्थे मधुकोश व्याख्या.)

रोगी के दात, ओठ, नाखून काले पड गये हो, सज्ञाहीन हो, कय का कष्टकर वेग हो, आखो के कोयें (कोष्ठ) भीतर को बैठ जावें, गले की आवाज बैठ जाय, क्षीण स्वर हो, शरीर की समस्त सन्धियो का ढीला पड जाना, ऐसा रोगी मरण को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त बेहोशी, झपकी, प्रलाप, अत्यन्त तृषा, बेचैनी, हिचकी, जीभ और श्वास का शीतल होना, नासिका ऊँची या टेढी होना, दांतो का बाहर निकल आना, टेम्प्रेचर ९५° से कम होना, शरीर का भाग खुला रहे वह मुर्दे का समान शीतल हो, शरीर से एव मल-मूत्र से सडी हुई मछली के समान दुर्गन्ध आना, अँगुलियाँ बहुत देर तक पानी में भीगी हुई मुरझाई सी होकर उनका अग्रभाग सूख जाना, शरीर में रक्ताल्पता के कारण वर्ण फीका पड जाना, एव नाडी की गति बहुत ही मन्द हो जाती है, ध्यानपूर्वक देखने से कोहनी के ऊपर मालूम देती है। कभी-कभी कोहनी पर भी नहीं मालूम पड़ती अथवा 'शीतल तन्तुवत् क्रमश. लुप्त हो जाती है।

अशक्तता के कारण रोगी मे उठने-बैठने-करवट बदलने तक की शक्ति नही रहती, इत्यादि सान्निपातिक घातक लक्षण उपस्थित होकर १-२ घण्टे मे ही रोगी-विकराल रूप धारण कर सदा के लिए काल के गाल मे समा जाता है। इसकी मृत्यु का समय निश्चित नही है। किसी-किसी रोगी की तो २-४ घण्टे मे ही मृत्यु हो जाती है और बहुत से रोगियो को ३-४ दिन तक महान कष्ट सहन कर अन्त मे यम का अतिथि होना पडता है।

इस अवस्था मे सिद्धमकरध्वज, अभ्रकभस्म, सजीवनी वटी को अदरख स्वरस अथवा लहसुन के स्वरस के साथ आध-आध घण्टे के पश्चात् प्रयोग करने से कदाचित रोगी बच जाता है।

उपद्रव—

> निद्रानाशोऽरति. कम्पो मूत्राघातो विसज्ञता।
> अमी ह्युपद्रवा घोरा विसूच्यां पञ्चदारुणा ॥

अनिद्रा, अरति, कम्प, मूत्राघात, विसज्ञता, ये पांच महान कष्ट कर उपद्रव हैजा के रोगी को होते हैं।

मूल व्याधि की चिकित्सा के साथ-साथ उपरोक्त उपद्रवो के उपस्थित होने पर उनका उपचार भी चिकित्सक को करना चाहिये।

हैजे की सुधरती हुई दशा के लक्षण—कय बन्द होती है, या कम आने लगती है, दस्त का रग पीला होकर कुछ बधा हुआ अधिक समय बाद आने लगता है। पेशाब होती है, प्यास कम, स्वाभाविक निद्रा शरीर के वर्ण का बदलना, पेट की पीडा शान्त, हाथ-पैरो का खिचाव या जकड़ाहट अथवा पेट-पिण्डलियो की ऐंठन बन्द हो जाती है, आँखें उभर आती हैं। नाड़ी वेगवती चलती है, शरीर का बाहरी शीत शात हो जाता है और शारीरिक सन्ताप टेम्प्रेचर १०२ से १०३° फारनहाइट बढकर ज्वर आने पर प्रकृति में सुधार प्रारम्भ होता है।

बचने के उपाय

जिस समय हैजा फैल रहा हो उस समय अपने पास कुछ विशेष औषधिया अवश्य रखना चाहिये। क्योकि यह नही कहा जा सकता कि रोग का दौरा कब हो जाय। प्रत्येक स्त्री पुरुष को भोजन के उपरान्त लशुनादि वटी अथवा अमृतधारा अर्क सौंफ के साथ सेवन करते रहना चाहिये। इससे हैजा होने का भय नहीं रहता।

(२) हैजे के समय घर मे और घर के बाहर खूब सफाई रखना, साथ ही सडास और नावदान मे कलई-चूना, या फिनाईल छिडकना चाहिये।

(३) सुबह-शाम घर मे गूगल, गधक, लोबान, कपूर नीम की सूखी पत्ती की धूप जलाना चाहिये। दरवाजो पर प्याज तथा ताजी नीम की पत्ती बाधना चाहिये।

(४) रात्रि मे सोते समय घर की खिडकियाँ खोल कर साफ हवा मे सोना चाहिये।

(५) कपडे पहिनने, ओढने और बिछाने के प्राय: प्रतिदिन धूप में डालना और हमेशा साफ रखना चाहिये।

(६) हैजे के समय में दिन को सोना और रात्रि में जागरण नही करना। धूप में नही घूमना और न वर्षा मे भीगना तथा भीगे कपडा और भीगे जूते नहीं रखना चाहिये।

(७) ब्याह बारातो तथा सिनेमा और मेलो में नही जाना चाहिये।

(८) प्रात तथा सायकाल दोनो समय बस्ती से बाहर खुली हवा में टहलने को जाना चाहिये।

(९) कपूर की डली को रूमाल में बाधकर सु घना, पाकेट में रखना या कलाई मे बाधना, इसी प्रकार ताजी प्याज छीलकर बाध सकते है। तामे का ताबीज या तामे का छेद वाला पैसा गले या बाहु मे शरीर मे स्पर्श होता रहे, इस प्रकार के बाधने से रक्षा होती है।

(१०) हैजे के समय खाली पेट रहकर नही घूमना और हैजे वाले रोगी के पास अथवा उस मकान मे नही रहना चाहिए।

(११) नियमित समय पर सादा-सुपाच्य, ताजा गर्म भोजन करना चाहिए। पानी उबालकर छानकर पीना चाहिए।

(१२) अजीर्ण न होने पावे इसका सदा ध्यान रखना चाहिए। अजीर्ण रहते हुए भूलकर भी भोजन नही करना। आदेश है कि अजीर्णमन्न विषम्, कच्ची भूख मे भोजन नही करना, प्रकृति के अनुकूल अल्प आहार अच्छी भूख लगने पर करना, ठण्डा और बासा तथा रात्रि मे भोजन नही करना।

(१३) गरिष्ठ—देर से पचन होने वाले पदार्थ जैसे पूरी, पराठे, हलुवा, खीर, दहीबडे, तैल की तली चीजे, वेजीटेबिल घी से बनी मिठाई, पनवाडियो के पान, हरी सब्जी नही खाना, होटलो में भोजन करना सर्वथा बन्द रखना चाहिए।

(१४) देर से हजम होने वाले फल यथा-केला, काशीफल, ककडी, कटहल, तरबूज, खरबूज, आम, अमरूद, पनीले एवं गरिष्ठ हरे शाक—तोरई, तुम्बी, भिण्डी, भटा, अरबी आदि नही खाना। कच्चे, सड़े, गले हुए फल नही खाना चाहिए।

(१५) शराब, गाजा, बीडी, सिगरेट, चाय, काफी, गोस्त, अण्डा, मछली कभी नही खाना चाहिए।

(१६) मल मूत्र के वेगो को कदापि न रोकें और ऐसे समय कोई तेज जुलाब भी नही लेना चाहिए।

(१७) शक्ति से अधिक आत्मिक, मानसिक तथा शारीरिक परिश्रम नही करना और ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना हितकर है।

(१८) अजवाइन, आमला, अदरख, सौफ, लौग, इलायची, डोडा, कपूर, पिपरमेंट, अमलवेंत, आलू बुखारा, मुनक्का, मौसम्बी, अनार, नीबू, पोदीना, प्याज, लहसुन, भुनी हीग, जीरा, लाल मिर्च, नीबू का अचार, सिरका गन्ना, जामुन, ताजी छाछ, हिंग्वष्टक, शिवाक्षारपाचन और अग्निमुख चूर्ण का सेवन करना हैजे से बचने का सरलतम साधन है।

चिकित्सा

हैजे के रोगी को आहार बिल्कुल बन्द कर देना चाहिए। रोगी बलवान हो और कय अधिक होती हो तो मृदु रेचन चूर्ण—सोठ, सोफ, हरड़, सेंधा नमक, सनाय

पत्र, गुलाब पत्र समान भाग कूट-छानकर ६ माशे की मात्रा दो बार घूट निवाये जल के साथ देना। राई का लेप घी लगाकर पसलियों पर लगाना। यदि दस्त अधिक हो रहे हो तो सेंधानमक गरम जल मे घोल कर पिलाने से वमन होगी। इससे अपरिपक्व आमरस निकल कर लाभ होगा। आरम्भ में दस्त बन्द करने की दवाई नहीं देना चाहिए। इससे रोग शमन होने की अपेक्षा और अधिक बढता है। अतएव अग्निदीपक पाचक औषधि का उपयोग करना उचित है। जैसे-सञ्जीवनी वटी, लशुनादि वटी, गंधक वटी, कर्पूररस, हिंग्वष्टक चूर्ण, लवण भास्कर चूर्ण और कर्पूरासव इन प्रसिद्ध आयुर्वेदीय औषधियो का अवस्थानुसार उपयोग करना चाहिये। इनमे से कोई एक औषधि आधा-आधा घण्टे या एक-एक घण्टे के अन्तर पर बराबर रोग शान्त न होवे तक देते रहना चाहिए।

पीने के पानी में सोंठ अथवा नागरमोथा तथा लोग डालकर पकाने के बाद जब एक लीटर का आधा लीटर शेष रहे, तब छानकर ठण्डा किया हुआ थोडा-थोडा देना चाहिए।

सरल प्रयोग—

अमृत धारा—अजवायन का सत्व, पिपरमेंट, देशी कपूर, लोंग का तैल, चारो को समान भाग लेकर काच की कागवाली शीशी में भरकर रख देवें। थोडी देर बाद हिलाकर उपयोग करे। मात्रा-५ से १५ बूंद तक। २-२ घण्टे बाद अथवा आवश्यकतानुसार। इससे कय, दस्त, जी घबराहट, मिचलाहट, शूल, प्यास और हैजा रोग आराम होता है।

अर्क कपूर—देशी कपूर १ औन्स, रेक्टीफाइड स्प्रिट ६ औंस दोनो को मिलाकर काच की शीशी मे भर कर काग लगाकर रख दीजियेगा।

मात्रा—२ से १५ बूंद तक। २-२ घण्टे बाद ताजे पानी के साथ अवस्थानुसार देते रहने से हैजा रोग अवश्य आरोग्य होता। यह प्रसिद्धोषधि है।

लशुनादि वटी—लहसुन छिला हुआ, शुद्ध गंधक, सफेद जीरा, हींग भुनी हुई, सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, सैंधा नमक सबको समान भाग लेकर कूट-छानकर कागजी नीबू के रस मे घोटकर चने प्रमाण वटी बनाकर रख लेना। मात्रा १ से ४ वटी तक २-२ घण्टे बाद, ताजे जल के साथ देना चाहिये। यह कृमिघ्न, अग्निदीपक-पाचक, हैजे की उत्तम औषधि है।

मुस्तकाद्यवटी—नागरमोथा, पीपल, देशी कपूर, हींग भुनी ये प्रत्येक १०-१० ग्राम, अफीम २½ ग्राम, सबको पीसकर कागजी नीबू के रस मे मर्दन कर मटर समान वटी बनाकर रख लेवें। मात्रा—१ से ४ वटी तक। २-२ घण्टे के अन्तर पर, अर्क सौंफ अथवा अर्क पोदीना के साथ सेवन कराने से हैजा मे लाभ होता है।

हिंग्वादिवटी—हींग भुनी हुई १० ग्राम, काली मिर्च १० ग्राम, देशी कपूर २० ग्राम, तीनो को अच्छी तरह घोट-पीस कर ताजे जल के साथ मटर बराबर वटी बना रखलें। मात्रा-२-२ वटी, १-१ घण्टे बाद, रोगशान्त होने तक देते रहने से हैजा में आराम होता है।

उपद्रवो का उपचार

निद्रानाश—स्वर्णमाक्षिक भस्म १ रत्ती, सर्पगधा का चूर्ण ४ रत्ती, पीपलामूल का चूर्ण २ रत्ती इस एक मात्रा को ६ माशे मधु मे मिलाकर सोने के दो घण्टे पूर्व देने से निद्रा आती है। अण्डी का काजल बनाकर नेत्रो मे आंजने से भी निद्रा आती है। धीरे-धीरे पैर दबाना चाहिए तथा मच्छरदानी बाँधना और रोगी के कमरे मे सुगन्धित अगर बत्ती जलाना।

अरति—स्वर्णसूतशेखर रस १ रत्ती, प्रवाल पञ्चामृत २ रत्ती, हृदयार्णवरस १ रत्ती, इसे शहद के साथ अथवा शर्बत अनार के साथ, दिन मे तीन बार देने से लाभ होता है।

कम्प—वृहत्वातचिन्तामणि रस १ रत्ती, शुण्ठ चूर्ण २ रत्ती अश्वगंध चूर्ण ४ रत्ती, दशमूल क्वाथ या रास्ना-सप्तक क्वाथ के साथ दो-तीन बार देना। महाविषगर्भ तैल तथा महानारायण तैल दोनो मिलाकर मर्दन करने से लाभ होता है।

मूत्राघात—पेशाब रुकने पर—चन्द्रप्रभावटी नं० १ (झण्डू) २ रत्ती, गोक्षुरादि गुग्गुल ४ रत्ती, गोखरू के के क्वाथ के साथ आवश्यकतानुसार देना।

केले की जड का रस एक तोला, गर्म किया हुआ शुद्ध घी आधा तोला दोनो को मिलाकर पिलाने से पेशाब होता है। पलाश पुष्प १½ तोला, कलमी शोरा २½ तोला दोनो को पानी में पीस पेडू पर लेप लगाना। यदि आप

(शेषांश पृष्ठ ४३३ पर पर)

पर्याय—औपसर्गिक, कामला (Infectious Jaundice) चक्रकीटाणुजन्य (Spirochaetal) कामला, वील का रोग (Weil's disease)।

हेतु—इसका कारण कामलास्रावी अतिकुन्तलाणु (Lepto Spiroicteroh-aemorrhagica) नामक चक्रकीटाणु है।

वासस्थान—इसका मुख्य सचयाघार जगली चूहे होते हैं। इनके मूत्र से ये उत्सर्गित होकर भूमि और जल को दूषित करते हैं। पानी में ये दीर्घकाल तक रह सकते हैं। रक्तस्रावी कामला पीडितो में ये रक्त, यकृत् वृक्को मे पाये जाते हैं और उनके मूत्र मे उत्तर काल मे उत्सर्गित होते हैं। यह रोग जापान मे बहुत होता है। भारतवर्ष के पास यह अन्दमान द्वीप मे वहुत है और कलकत्ते मे भी कभी-कभी मिलता है। यह एक व्यावसायिक रोग है जो आर्द्र खानें, नहरें, मोरी परनाला, धान और ईख के खेत, तालाब इनमे काम करने वालो मे, खन्दको के सैनिको में, नाविको में, मछली पकडने वालो में अधिक हुआ करता है, जब ये स्थान इन जीवाणुओ से सन्दूषित रहते हैं।

संक्रमण—मनुष्यो मे इनका उपसर्ग मुख्यतया त्वचा के द्वारा होता है, ये शरीर मे त्वचा के व्रणो, क्षतो विदारो के द्वारा तथा त्वचा अक्षुण्ण होने पर भी प्रवेश कर सकते हैं। जलसपृक्त (Water sodden) त्वचा इसके लिए अनुकूल होती है। इसलिए तालाब में, धान के खेतो मे, गीली भूमि मे काम करने वाले इससे उपसृष्ट होते है। सन्दूषित पानी के तालाब में स्नान करने से भी मनुष्य उपसृष्ट हो सकता है। इसके अतिरिक्त चूहे के मूत्र से दूषित खाद्यपेय पदार्थों के सेवन से भी इसका सक्रमण हो सकता है। कुछ लोगो के मत से इसके प्रसार मे कोई दशक कीटक भी सहायता करता है। रोगी से स्वस्थ मनुष्य पर इसका सक्रमण प्राय नही हो सकता।

प्रतिबन्ध—रोगी के मलमूत्र का अच्छी तरह नाश किया जाय। चूहो का नाश किया जाय। खाद्य-पेय चूहो से सुरक्षित रक्खे जाय। जहाँ पर यह रोग होता है वहाँ पर खानो में, खेतो में खाना खाने से पहले हाथ खूब अच्छी तरह धोये जाँय। पानी उबाल करके पिया जाय। नगे पैर न चला जाय। पैरो पर कही खरोचे, व्रण, घाव इत्यादि हों तो उनका सरक्षण पट्टीबन्धन इत्यादि से किया जाय। हाथ पैर धोने के लिए जमीन पर इकट्ठा हुए पानी का उपयोग न किया जाय। ऐसे पानी मे स्नान भी न किया जाय क्योकि उसके उपसृष्ट रहने की सभावना होती है। क्षमतावर्धन के लिए मृत चक्रकीटाणुओ से बनायी हुई मसूरी प्रयुक्त कर सकते है।

वील का रोग-चिकित्सा निर्देश

(१) माण्डूर भस्म ४ से ८ रत्ती मधु से, (२) नवायस लौह ४ से ६ रत्ती घृत से, (३) निशालौह २ से ४ रत्ती घृत से (४) कामलान्तक लौह २ से ४ रत्ती मधु से (५) धात्र्यारिष्ट १ से २½ तोला समान जल से भोजनोत्तर। (६) लीवर जीन (Livergen), लिव ५२ (Liv. ५२) की टिकिया या पेय (७) इमेटीन हाइड्रोक्लोराइड (Emetine Hydrochloride), बाल (B A L) मेक्राफोलीन (Mecrafolin), लीवर एक्सट्रेक्ट (Liver Extract), विटामिन बी कम्पलेक्स (Vit B Complex) इत्यादि के इन्जेक्शन यथा अवस्था, यथा मात्रा में देने चाहिये। सभी तुरन्त लाभकारी योग है।

संक्रामक यकृच्छोथ

हेतु—इसका कारण कोई विषाणु है और इसमे मुख्य विकृति यकृत् के शोथ की होती है। इसलिए इसको विषाण्वीय यकृच्छोथ (Viral hepatitis) भी कहते हैं। यह रोग जानपदिक रूप धारण करता है। इसलिए इसमें कामला भी उत्पन्न होती है। इसलिए इसको जानपदिक यकृच्छोथ या कामला भी (Epidemic jaundice) कहते हैं। इसमें उत्पन्न होने वाला शोथ प्रसेकी (Catarrhal) स्वरूप का होने से इसको प्रसेकी कामला भी कहते हैं।

इसका उपसर्ग मनुष्येतर प्राणियों मे नही होता। जो मनुष्य इससे पीडित होते हैं उनके रक्त और मल में विषाणु होते हैं। अत रोगी के मल, दूषित जल, दूध तथा अन्य खाद्यपेय पदार्थों के सेवन से रोग का प्रसार होताहै।

प्रतिबन्धन—रोगियो को अलग रक्खा जाय। मलनाशन पर ध्यान दिया जाय। जो रोग से निवृत्त हुए हैं उनको कुछ काल तक खाद्यपेयादि से दूर रक्खा जाय। विसूचिका अतीसार के समान अन्य उपायो को काम में लाया जाय। चिकित्सा सक्रामक कामला के अनुसार करें।

आयुर्वेद शास्त्र मे क्रिमि रोग से विभिन्न जाति के २० प्रकार क्रिमियो का ज्ञान होता है। पुरीषज क्रिमि के अतिरिक्त अन्यान्य आयुर्वेदोक्त क्रिमियो का महत्व आज के युग मे काफी कम हो चुका है—एतदर्थ सभी प्रकार के क्रिमियो का वर्णन अपेक्षित नही है। चरक संहिता में कृमि चार प्रकार के बताये गये हैं—पुरीषज, श्लेष्मज, शोणितज तथा मलज। इनमे से मलज क्रिमि—आभ्यन्तर तथा बाह्य भेद से दो प्रकार के हैं। श्लेष्मज व पुरीषज क्रिमि के निदान समान हैं—पार्थक्य केवल स्थान भेद से है—जैसे श्लेष्मज कृमि आमाशय में तथा पुरीषज कृमि पक्वाशय में उत्पन्न होता है। सुश्रुत संहिता मे क्रिमि तीन प्रकार के बताये गये हैं—पुरीषज, कफज व रक्तज मलज भेद पृथक नही माना गया है। परन्तु अष्टाग हृदय माधव निदान तथा भाव प्रकाश मे क्रिमि का भेद निम्न प्रकार है। मलज क्रिमि आभ्यन्तर व बाह्य भेद से दो प्रकार। बहिर्मल, कफ, रक्त व पुरीष से उत्पन्न होने के कारण चार प्रकार तथा नाम भेद से २० प्रकार बताया गया है। माधव निदान तथा भावप्रकाश में "बाह्य क्रिमि" मलोद्भूत"—अर्थात् शरीर के स्वेदादि मल से उत्पन्न बताया गया है—जो कि चरक संहिता के अनुरूप है। परन्तु अष्टाग हृदय में बाह्य कृमि "रक्तोद्भूत" कहा गया है। टीकाकार ने "रक्तेन बाह्यमलरूपेनोत्पन्ना. बाह्या"—कहकर व्याख्या की है—जो कि समीचीन प्रतीत नही होता है। चरक संहिता व सुश्रुत संहिता में पुरीषज कफज तथा रक्तज कृमियो के नाम में भी अन्तर हैं—जो साथ ही साथ वर्णन किया जावेगा। चरक संहिता में सहज क्रिमियो का भी उल्लेख है—परन्तु वे रोग कारक न होने से रोगाध्याय मे वर्णित नही है।

मलज क्रिमि—(चरक मतानुसार)—मल दो प्रकार का होता है—बाह्य तथा आभ्यन्तर। वातादिदुष्ट बाह्यमल से उत्पन्न होने वाले कृमियो को मलज कृमि कहा जाता है। स्नान, प्रक्षालन आदि से शरीर की सफाई न रखने से मलज कृमि उत्पन्न होते हैं। केश और श्मश्रु, रोम, पक्ष्म और शरीर पर पहने कपड़े—ये मलज कृमियो के
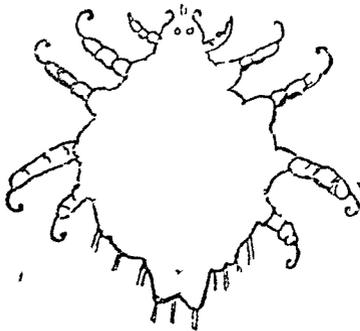
लीख
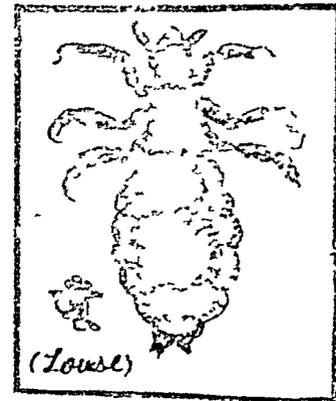
(Louse)

आश्रय स्थल है। ये कृमि आकृति मे छोटे, तिल के सदृश और अनेक पाव वाले होते हैं। इनका वर्ण काला या सफेद होता है। ये दो प्रकार के होते है । उनके नाम युका (जू) और पिपीलिका (वाग्भट्ट मतानुसार–लिक्षा, लीख) है। खुजली, ददोड़े, चकत्ते और फुन्सिया उत्पन्न करना—ये इनके प्रभाव हैं। सुश्रुत संहिता मे इसका वर्णन नहीं है ।

रक्तज कृमि—(चरक मतानुसार)—जिन कारणो से कुष्ठ की उत्पत्ति होती है उन्ही कारणो से रक्तज क्रिमियो की उत्पत्ति होती है। ये क्रिमि रक्त वाहिनी धमनियो और शिराओ मे रहते हैं। ये आकृति मे अणु (सूक्ष्म), गोल तथा पाद रहित (या अल्प पाद) होते है। इनमे से कई क्रिमि अति सूक्ष्म होने से आख से नही देखे जा सकते हैं। रक्तज क्रिमि लाल रङ्ग (ताम्र वर्ण) के होते हैं । केशाद, लोमाद, लोमद्वीप, सौरस, उदुम्बर और जन्तु माता—ये इनके नाम हैं। केश, श्मश्रु, रोम और पक्ष्म का नाश करना, व्रणगत कृमियो का रोम हर्ष, खुजली, सुई चुभने सी वेदना, व्रण मे फिरना–ये कर्म हैं। जब ये कृमि अत्यन्त बढ़ते हैं तब त्वचा, रक्तवाहिनी, स्नायु, मांस, तरुणास्थि आदि को नष्ट करते हैं। सुश्रुत के मतानुसार रक्तज क्रिमि—सयोग, मात्रा आदि से विरुद्ध पदार्थो और शाकादि के अधिक खाने से तथा अजीर्ण से उत्पन्न होते है। केशाद, लोमाद, नखाद, दन्ताद, किक्किश, कुष्ठज तथा परिसर्प–ये सात इनके भेद हैं। ये कृमि वर्ण मे रक्त या कृष्ण तथा स्निग्ध और चौड़े होते हैं। ये क्रिमि प्रायशः रक्तदोषज विकारो से उत्पन्न होते हैं।

कफज क्रिमि—(चरक मतानुसार)—दूध, गुड, तिल मछली, आनूप प्राणियो का मास, मैदे से बने हुए भक्ष्य खीर, कुसुम के बीजो का तेल, अध–कच्चा–पका अन्न, सड़े हुए पदार्थ, क्लेद उत्पन्न करने वाले पदार्थ, सयोग, मात्रा आदि से विरुद्ध पदार्थ, असात्म्य पदार्थ, मधुर अन्न सत्त नये चावल का भात—इनके और हित–अहित पदार्थो को एकत्र मिलाकर खाने से कफज कृमि उत्पन्न होते है। उनके रहने का स्थान आमाशय है। ये जब बढ़ते है तब ऊपर की ओर, नीचे की ओर या दोनो ओर फैलते है। उनकी आकृति और वर्ण इस प्रकार के होते हैं कोई चौडी कपडे की पट्टी जैसे और श्वेत वर्ण के, कई परिणाह में गोल, केंचुये की आकृति के और ललाई लिये हुए
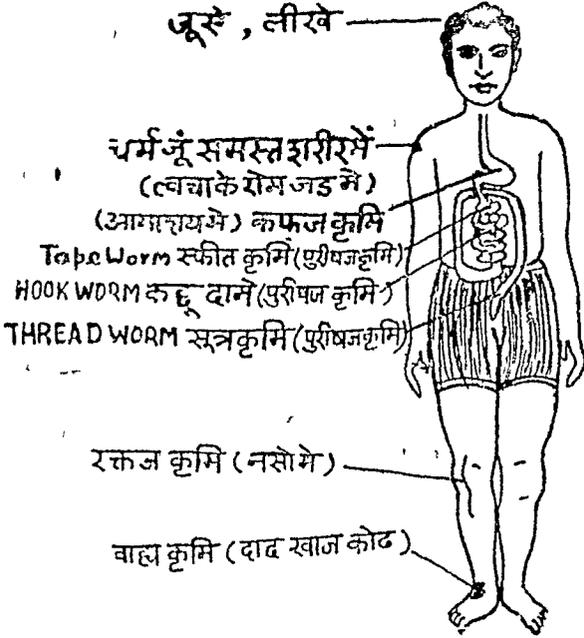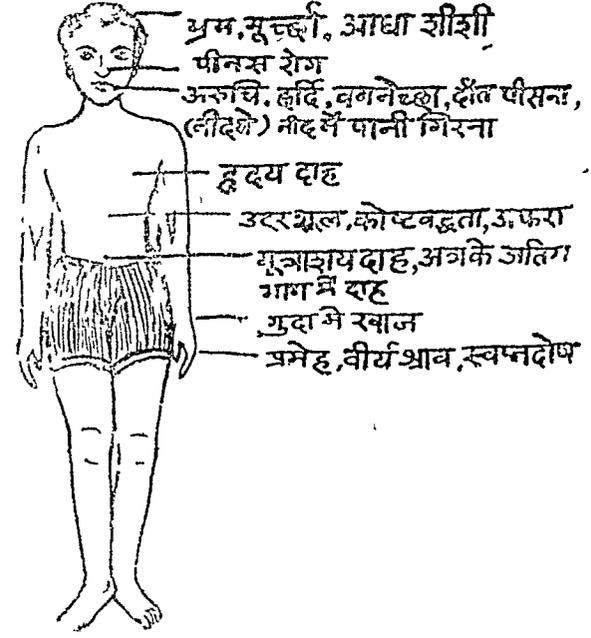
श्वेत वर्ण के, कई छोटे, लम्बे, तन्तु जैसे और श्वेत वर्ण के होते हैं। उपरोक्त तीनो प्रकार के कफज क्रिमियो के नाम हैं—अन्नाद, उदराद, हृदयाद, चुरु, दर्भपुष्प, सौगन्धिक और महा गुद। जी मिचलाना, मुंह से लार निकलना, अरुचि, अपचन, ज्वर, मूर्च्छा, उबासी, छींक आना, आनाह, शरीर में पीडा, वमन, कृशता और शरीर रूक्ष होना—ये कफज क्रिमियो का प्रभाव है। सुश्रुत के मतानुसार—मास, उडद, दूध, दही, और तेल के अति सेवन से कफज कृमि उत्पन्न होते हैं। कफ के प्रकोप से दर्भ पुष्प, महा पुष्प, प्रलून, चिपिट, पिपीलिका और दारुण—ये ६ प्रकार के क्रिमि होते हैं। कफज कृमि सारे शरीर पर या सिर पर से रोयें वाले, पूंछ वाले, काले मण्डल वाले, धान्य के अंकु जैसे पतले और श्वेत वर्ण के होते हैं। मज्जा का भक्षण, नेत्र से चिपकना, तालु और कान मे पाक उत्पन्न करना तथा शिरोरोग, हृद्रोग, वमन और प्रतिश्याय उत्पन्न करना—ये कफज क्रिमियो का कार्य हैं।
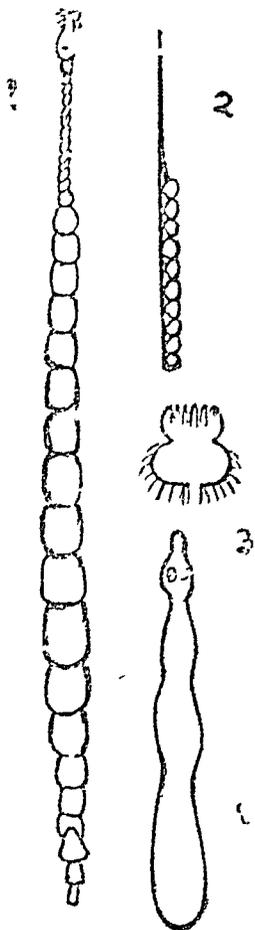
१. पुरीषज
(Tap Worm)
२ Whip worm
३ यूक (Acari)
४ हृदयादा
(Taenia Echinococus)

पुरीषज क्रिमि—जिन हेतुओ से कफज कृमि होते है उन्ही कारणो से पुरीषज कृमि भी उत्पन्न होते हैं। पुरीषज क्रिमियो का आश्रय स्थान पक्वाशय है। ये जब बढ़ते हैं तब प्रायश नीचे की ओर फैलते हैं—अत्यन्त बढ़कर जब आमाशय की ओर फैलते हैं तब रोगी के डकार तथा निश्वास मे विष्ठा की गन्ध आने लगती है। वर्ण और आकृति में कई सूक्ष्म, गोल, श्वेतवर्ण तथा लम्बे, अनेक धागे सदृश और कई स्थूल, गोल और श्याव-काले, हरे या पीले रङ्ग के होते हैं। ककेरुक, मकेरुक, लेलिह, सशूल और सौसुराद-ये इनके नाम है। मल पतला करना, शरीर की कृशता, रूक्षता तथा रोमहर्ष एव उदर के अन्त में सुई चुभने सी वेदना और खुजली उत्पन्न करना—ये उनके कार्य हैं। ये कृमि कई बार गुदा के बाहर भी आते है। सुश्रुत के मतानुसार उडद, मैदे से बने हुए भक्ष्य पदार्थ द्विदल धान्य और पत्रशाको को खाने से पुरीषज कृमि उत्पन्न होते हैं। अजव, विजव, किप्य, गण्डुपद, चुरु और द्विमुख ये सात उनके नाम है। पुरीषज कृमि श्वेतवर्ण और छोटे होते हैं। इनमें से कई कृमियो की पूंछ चौडी होती है। ये कृमि गुदा की तरफ फैलते हैं और वहा सूई चुभने सी वेदना तथा शूल, अग्निमान्द्य, पाण्डु रोग, विष्टम्भ, बलक्षय, लालास्राव, अरुचि, हृद्रोग और मल पतला—ये लक्षण उत्पन्न करते हैं। गण्डुपद कृमि रक्तवर्ण के और गुदा में कण्डु, शूल, पेट में गुटगुडाहट, मल पतला होना और जठराग्नि की मन्दता आदि लक्षण उत्पन्न करते हैं।

सामान्य निदान—चरक सहिता के अनुसार अजीर्ण, अत्यधिक भोजन, असात्म्य, विरुद्ध तथा मलिन भोजन, व्यायाम न करना, दिवानिद्रा, गुरु, अतिस्निग्ध, शीतल पदार्थ भोजन, उडद से बनाये हुए पिष्टकान्न सेवन, द्विदल धान, कमल के नाल और कन्द, पत्रशाक, मद्य, सिरका, दही, गुड, गन्ना, तिलकल्क, आनुप मास, खल्ली, चिवडा, मधु अम्ल द्रव पदार्थ—इनके सेवन से कफ और पित्त प्रकुपित होकर विभिन्न स्थान मे बहु प्रकार के कृमियो की उत्पत्ति होती है। प्रायश आम व पक्वाशय मे इनकी उत्पत्ति होती है। पाठान्तर मे कफज कृमि आमाशय में पुरीषज कृमि पक्वाशय में एव रक्तज कृमि धमनियो में ही प्रायश उत्पन्न होते हैं।

सामान्य लक्षण—सुश्रुत मतानुसार कृमिरोग उत्पन्न होने पर ज्वर, शरीर मे वर्ण का परिवर्तन, आमाशय व पक्वाशय में शूल, हृद्रोग, शरीर मे अवसाद, चक्कर आना, अरुचि, अतिसार आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

चिकित्सा-- प्रथमतः रोगी को वमन, विरेचन, आस्थापन तथा शिरोविरेचन के द्वारा अपकर्षण करना चाहिए। उसके बाद श्लेष्मा और पुरीष से विपरीत कटु, तिक्त, कषाय, क्षार तथा उष्ण द्रव्यो का प्रयोग करना चाहिए एव निदानोक्त द्रव्यो का परिवर्जन करना चाहिए। एतदर्थ कृमिरोगाक्रान्त व्यक्ति को ६ या ७ दिन दिन तक स्नेहन व स्वेदन के पश्चात् दूध दही, गुड, तिल, मत्स्य, आनूप मास, पिष्टकादिस्नेहयुक्त भोजन करावें। उसके पश्चात् रोगी को वमन, विरेचन तथा आस्थापन का प्रयोग करावें। वमन के लिए सुरसादिगण से साधित घृत का प्रयोग किया जाता है। मदनफल व पिप्पली चूर्ण के प्रयोग से भी वमन कराया जा सकता है। उसके बाद उपयुक्त विरेचन देना चाहिए। उसके पश्चात् जौ, बेर, कुलत्थ सुरसादि गण व विडग से साधित क्वाथ मे स्वर्जिकाक्षार तथा लवण मिलाकर आस्थापन बस्ति प्रयोग करना चाहिए। बस्ति प्रयोग के पश्चात् रोगी को अल्प गरम जल से स्नान कराकर कृमिनाशक बिड-गादि द्रव्यो से सस्कारित भोजन देना चाहिए। भोजन के पश्चात् पूर्वोक्त द्रव्यो से साधित तैल से अनुवासन बस्ति का प्रयोग करें।

औषध चिकित्सा —प्रधानतः कफज तथा पुरीषज कृमि की आभ्यन्तर चिकित्सा यहा वर्णन की जाती है। पहिले थोडा सा गुड खाकर बाद मे वासी जलके साथ खुरा-सानी अजवाईन का चूर्ण २ से ३ माशे की मात्रा मे खाने से कोष्ठस्थ कृमि बाहर निकल जाते है। पारिभद्रपत्र का स्वरस शहद के साथ, विडग चूर्ण शहद के साथ अथवा पलाश बीज चूर्ण तक्र के साथ सेवन करने से कृमि नष्ट हो जाते है। खजूर की पत्ती का स्वरस वासी करके पीने से कडवी लौकी के बीज का चूर्ण तक्र के साथ तथा पलाश बीज व खुरासानी अजवाईन चूर्ण के सेवन से कृमिनाश होता है। कच्ची सुपारी २ माशा पीसकर २ निबु के रस मे घोटकर पीने से अथवा खजूर की पत्ती का स्वरस व निबु का रस १-१ तोला मिलाकर पीने से कृमि नष्ट होता है। पलाश बीज, इन्द्रयव, विडङ्ग, नीमछाल व चिरायता चूर्ण २ से ३ माशे की मात्रा में ३ दिन तक सेवन करने से कृमि बाहर निकल जाता है। पारसीकादि चूर्ण (खुरासानी अजवाईन, नागरमोथा, पिप्पली, काकडा शृगी, विडङ्ग व अतीस) २ से ३ माशा के साथ अथवा कृमिशार्दूल चूर्ण (सोमराजी, विडङ्ग, चिरायता, कुटकी पलाशबीज, निशोथ, निम्ब व हरीतकी) २ से ३ माशे की मात्रा मे गरम जल के साथ लेने से कृमिनाश होता है। कृमिशार्दूल चूर्ण के प्रयोग से कृमियो के बाहर निकल जाने की सम्भावना है। अनार की जड का क्वाथ क्रिमि-नाशक है– यह परीक्षा सिद्ध है।

रसौषधि—कृमि मुद्गर रस (विडङ्ग, कुचिला, पलाश बीज) मात्रा १ से २ रत्ती, कृमिघातिनी (सोम-राजी बीज, कम्पिल्लक, पलाश बीज) मात्रा ३ से ४ रत्ती, कृमिकालानल रस (कज्जली, लौह, वत्सनाभ, विडङ्ग) मात्रा १ से २ रत्ती, कृमिकोष्ठानल रस (जय-पाल, मनसिल, हरिताल, सोमराजी, विडङ्ग—स्नुहीक्षीर मे मर्दन) मात्रा—१ रत्ती, विडगादिलौह (हरिताल, लौह विडङ्ग) मात्रा २ रत्ती आदि औषधि कृमिरोग के लिए उपयुक्त अनुपानो के साथ प्रयोग करने से विशेष लाभ होता है।

विडगारिष्ट का प्रयोग भी लाभदायक है. त्रिफलाद्य घृत (भै० र० कृमि रोगाधिकार), विडगादिघृत (भै० र०) आदि भी प्रयोग किया जाता है। बाह्य कृमि में विडगादि तैल, वृ विडगादि तैल, धुस्तूर तैल (भै० र०) आदि जू लीख आदि में प्रयोग किया जाता है और उससे लाभ होता है

रक्तज कृमि की चिकित्सा कुष्ठ के अनुरूप है।

पथ्यापथ्य—दुग्ध से बना हुआ पायसान्न, मास, घृत, दही, पत्रशाक, मधुर तथा अम्लरस युक्त पदार्थ का सेवन निषिद्ध है।

पाश्चात्य मतानुसार आयुर्वेदोक्त मलज तथा पुरीषज कृमियो को Helminths कहते हैं। साधारण भाषा में इसको Worms कहते हैं और इनकी विभिन्न जातियो का वर्णन पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्र में उपलब्ध है। इनमें से (१) Taenia Saginata एव Tenia Solium—जिसे साधारण भाषा मे Tape Worm या स्फीत कृमि (२) Oxyuris Vermicularis जिसे Thread Worm या सौत्रिक (सूत्र) कृमि, (३) Arochylostoma Duodenale
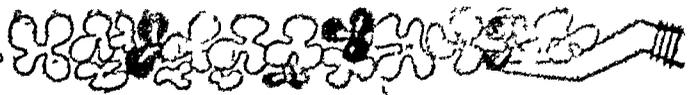
जिसे साधारण भाषा में Hook Worm, या अंकुश कृमि कहा जाताहै (४) Ascaris Lumbricoides जिसे Round Worm या गण्डूपद कृमि कहा जाता है। (५) Trichuris Turchura जिसे whip worm या प्रतोद कृमि कहते हैं। (६) Dracunculus Medinensis-जिसे साधारण भाषा में Guinea worm अथवा नहरुवा कहते हैं—ये ६ प्रकार के कृमि प्रधान हैं।

१. (अ) Tape worm-Taenia Saginata, स्फीत कृमि—ये कृमि १४ से २४ फीट तक लम्बे होते हैं। इसका सिर एक परन्तु चूषक चार हैं। मनुष्यों में पूर्णरूप से न पका हुआ गोमांस खाने से इसका संक्रमण होता है। इसका शरीर १ हजार से भी अधिक भागों में विभक्त है और मनुष्य के क्षुद्रान्त्र की श्लेष्मधराकला में चिपका रहता है। इससे पाचन सम्बन्धी तथा नाड़ी संस्थान सम्बन्धी लक्षण जैसे अरुचि, अत्यन्त क्षुधावृद्धि, अग्निमान्द्य, उदर में वेदना, शूल, अतिसार आदि उत्पन्न हो सकते हैं। वयस्कों में नाड़ी संस्थानज लक्षणों के रूप में प्रधानत: नाड़ी दौर्बल्य एवं बच्चों में शिरः शूल, आक्षेप आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। मल में कृमि के टुकड़े अथवा इनके अण्डे मिलने से रोग निर्णय हो सकता है।

स्फीत कृमि उपसर्ग
टी० सा०—गव्य कृमि, टी० सा०—सौकर कृमि
डा० ले०—मत्स्य कृमि

(ब) Taenia solium (शूकर कृमि)—ये कृमि ७ से १० फीट लम्बा होता है। इसका भी एक सिर व ४ चूषक हैं—इसके अतिरिक्त दो श्रेणी में २६ छोटे-छोटे अंकुश होते हैं। मनुष्यों में पूर्णरूप से न पका हुआ सुअर का मांस खाने से इसका संक्रमण होता है। इसका शरीर करीब-करीब ८५० भागों में विभक्त है। ये कृमि भी मनुष्य के अन्त्र की श्लेष्मधरा कला में चिपका हुआ रहता है। इस कृमि के संक्रमण से Taenia Saginata के समान लक्षण उत्पन्न होता है।

चिकित्सा—रोगी को दो दिन तक तरल पथ्य—जैसे दूध, साबूदाना, बार्ली का पानी, यूष, फलों का रस, घबकर मिलाकर देना चाहिए और मल को साफ रखना
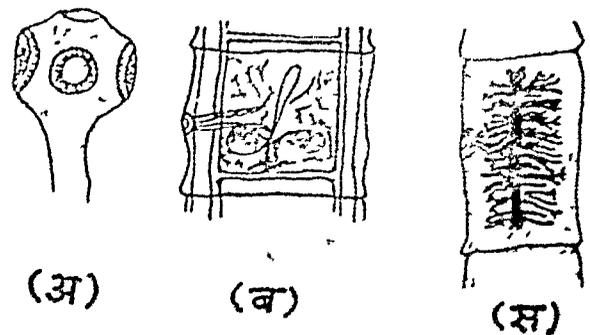
टीनिया सोलियम—(अ) सिर (ब—स) प्रजनन संस्थान
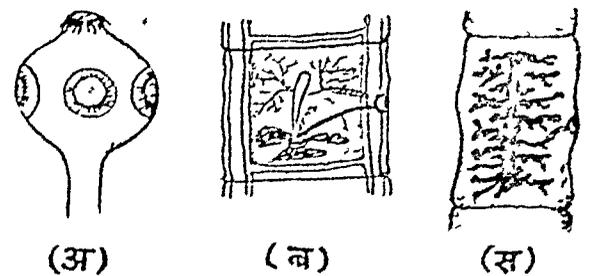
टीनिया सेजिनाटा-(अ) सिर, (ब—स) प्रजनन संस्थान

चाहिए। उसके पश्चात् Ext Filicis lip. ३० बूंद कैंपसूल में भरकर सुबह ८ बजे से शुरू करके २०-२० मिनट पर ४ खुराक देनी चाहिये। उसके बाद १० बजे Mag Sulph अथवा Sodi Sulph ½ औंस की मात्रा में प्रयोग करना चाहिये। जुलाब देने के पश्चात् जो मल निकले उसे छानकर काले रङ्ग के कपड़े या कांच पर कृमि के सिर के लिए खोज करनी चाहिए। एरण्ड तैल कमी भी प्रयोग में लेना नहीं। इससे विषक्रिया के लक्षण उत्पन्न होता है। अगर कृमि का सिर न दिखाई पड़े तो १० दिन के बाद पुन. उन औषधियो का प्रयोग पूर्वोक्त रूप से कराना चाहिए— अथवा तीन महीने का अवकाश देना चाहिये जिससे अगर कृमि जीवित रह गया हो तो उसके शरीर का अंश पुनः निकलना शुरू हो जावेगा अथवा Carbon Tetrachloride पूर्ण वयस्को के लिये अधिकतम मात्रा ३ सी सी. कैंपसूल में भरकर दिया जा सकता है और उसके ३ घण्टे के बाद पूर्वोक्त लवण जातीय विरेचक देना चाहिये।

(२) Thread worm (Oxyuris vermicularis or Enterobias vermicularis-(सौत्रिक कृमि)—ये कृमि
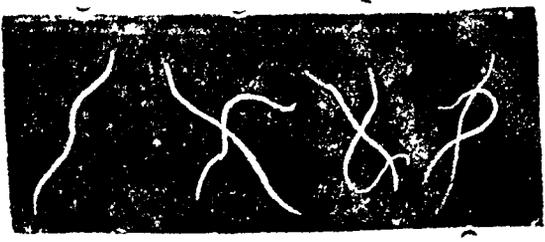
Thread worm (सूत्र कृमि)

पुरुष जाति के २ से ५ मि. मि एव स्त्री जाति के ८ से १३ मि. मि लम्बा होता है। ये बृहदन्त्र में विशेषतः कुण्डलिका में रहते हैं एव रात्रि मे रोगी के सोने के बाद मादा कृमि मलद्वार के पास आकर बच्चे देते हैं। इससे मलद्वार मे खुजली उत्पन्न होकर रोगी को काफी तकलीफ होती है। इसके कारण मलद्वार के आस-पास विर्चाचिका, खुजली आदि उत्पन्न होकर निद्रानाश तथा नाडी दौर्बल्य उत्पन्न कर सकता है। बस्ति की उत्तेजना, बार-बार मूत्र त्याग, मलमार्ग का बाहर निकल आना, श्लेष्मास्राव तथा प्रजनन सम्बन्धी विकृति उत्पन्न हो सकती है। छोटी
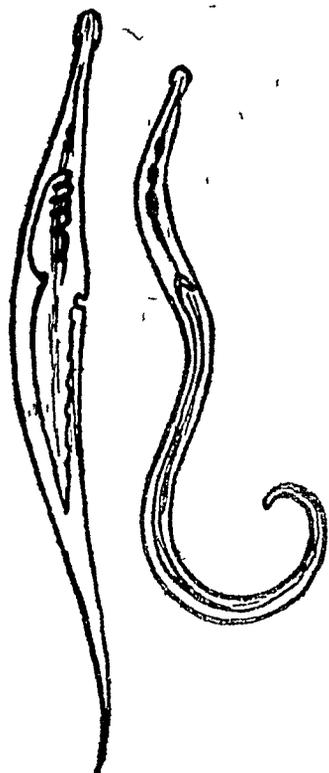
सूत्र कृमि

लडकियो मे योनिस्राव भी इससे उत्पन्न हो सकता है। कभी-कभी कृमियो के आमाशय तक पहुचना तथा अन्त्र-पुच्छ प्रदाह उत्पन्न करना भी देखा जाता है। रोगी के मल मे ये कृमि कम दिखाई पडते हैं—परन्तु मलद्वार के आस-पास अथवा रात को जब खुजली शुरू हो जाय तो रुई से मलद्वार के अन्दर तक पोंछ लेने से मादा कृमि दिखाई पड सकते हैं।

चिकित्सा—ये कृमि खुजली के समय पर अंगुली तथा नाखूनो द्वारा सक्रमित होता है। अतः हाथ, विशेषत. नाखूनों की सफाई परमावश्यक है। कपडे भी इस तरह से दूषित हो सकते हैं जिसका भी शोधन परमावश्यक है। खुजली शुरू होने से ही ४ से ८ औंस Hypertonic
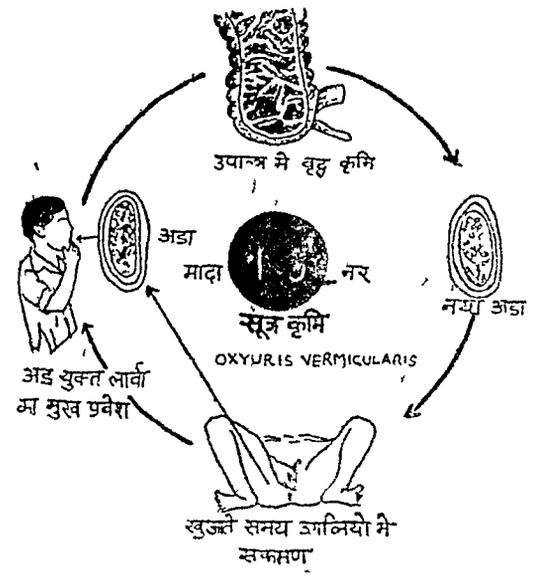
(१ पाइन्ट में १ औंस) लवण घोल से वस्ति प्रयोग करना चाहिए। कारण इस समय ही कृमियाँ अधिकतम सख्या में मलमार्ग मे मौजूद रहते हैं। वस्ति प्रयोग के पश्चात् Yellow oxide of mercury मलहम मलद्वार के भीतर व बाहर लगाना चाहिए। Gentian violet इस कृमि के लिए विशेष घातक है। एतदर्थ Keratin Coated टिकियाँ मिलती हैं। $\frac{1}{3}$ ग्रेन से १ ग्रेन की मात्रा में प्रतिदिन ३ बार भोजन के पहले ८ दिन तक दी जाती है। पूर्ण १ सप्ताह के पश्चात् यह क्रम फिर से चालू किया जा सकता है। इसकी विषक्रिया से अरुचि, जी मिचलाना, उदर की मांसपेशियो मे ऐंठन तथा वमन हो सकता है। नमकयुक्त नारियल के दूध से वस्ति क्रिया करने से विशेष लाभ होता है। Carbon Tetrachloride भी पूर्वोक्त विधि से प्रयोग करने से इस कृमि में भी लाभ होता है।

३. Hook worm (Ankylostoma Duodenale) अंकुश कृमि—इन कृमियो के पुरुष जाति ८ से १० मि.मि. और स्त्री जाति १२ से १८ मि.मि. तक लम्बा हो सकता है। इसका मुख विवर काफी बड़ा होता है और उसमें २ जोड़े दाँत सामने रहते है। मनुष्य शरीर में ये कृमि पैरो की त्वचा के मार्ग से रक्तवाहिनियो के जरिये से हृत्पिण्ड के दक्षिण भाग एव तत्पश्चात् वहाँ से फुफ्फुस, श्वासनलिका, अन्ननलिका आदि होकर अन्त मे इसके स्वाभाविक आवास स्थान क्षुद्रान्त्र की श्लेष्मधरा कला में चिपक कर रहता है और रक्त के सहारे पनपता है। प्रथमत यह कृमि त्वचा के ऊपर प्रदाह की उत्पत्ति करता है जो कि दो सप्ताह में ठीक हो जाता है। रोग सक्रमण के कारण ३-४ महीने मे, तीव्र आक्रमण के क्षेत्र में १-२ महीने मे रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं—इस रोग मे विशेषतया रक्ताल्पता—जो कि Microcytic Hypochromic श्रेणी की होती है—इस रोग में विशेषतया उत्पन्न होती है। रक्त के परिमाण में वृद्धि परन्तु रक्त कणो की सख्या में कमी होती है। प्रायश. १० लाख से २५ लाख तक रक्तकणो की सख्या हो सकती है एव रजकाण (Haemoglobin) १० से २५ प्रतिशत होता है। रंजनाक (Colour index) कम होकर ५ बन जाता है। श्वेत कणो की संख्या स्वाभाविक अथवा उसमे मामूली वृद्धि हो सकती है। Eosinophil जातीय श्वेतकणो की सख्या बढ़कर अनुपात अवश्य ही बढ़ जाता है। साधारण आक्रमण में शारीरिक तथा मानसिक अवसाद, खट्टी डकार, आमाशयोर्द्धभाग मे वेदना, दिल का धड़कना तथा दम फूलना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। तीव्र आक्रमण में कपाल तथा नासापुट में पीलापन, शरीर की त्वचा सूखी तथा मटमैला रगयुक्त, श्लेष्मधरा कला की पाण्डुता, श्वास कष्ट, कास, दिल की धड़कन, पैरों में शोथ अथवा फुफ्फुस या हृत्पिण्डधरा कलान्तराल मे स्राव सचय, आमाशयोर्द्ध भाग मे वेदना, आमाशय विस्फार, कोष्ठबद्धता तथा हृदय की परीक्षा मे रक्ताल्पताजन्य अस्पष्ट ध्वनि (Haemic murmurs) सुनाई देती हैं। यह रोग मनुष्य की शारीरिक तथा मानसिक कर्मशक्ति मे काफी हानि पहुचाता है—जिससे राष्ट्र को आर्थिक क्षति पहुँचती है और औपसर्गिक रोग प्रवण बना देता है।
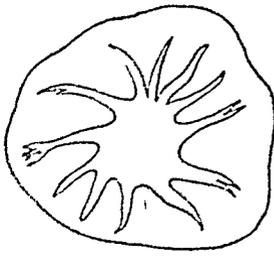
अकुश कृमि का अनुप्रस्थ काट

अकुशकृमि उपसर्ग का मुख्य मार्ग
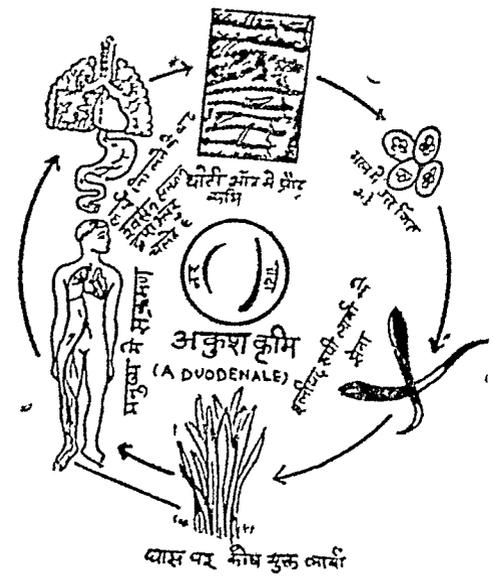
रोग निर्णय—उष्ण कटिबन्ध देश में Microcytic Hypochromic श्रेणी की रक्ताल्पता, विशेषतः Eosinophil जातीय श्वेत कणो की अनुपात वृद्धि के साथ देखने से इस रोग का सन्देह होना चाहिये और मल की परीक्षा से इस रोग का निर्णय सुनिश्चित कर लेना चाहिये।

इस रोग में यद्यपि मृत्यु कम होती है—तो भी इस व्याधि से मनुष्य कार्यक्षय हो जाते हैं। दूसरे औपसर्गिक रोगों के शिकार बन जाते हैं। बच्चो में इस रोग का प्रभाव बहुत ही खराब होता है—क्योंकि उनकी शारीरिक तथा मानसिक वृद्धि रुक जाती है।

चिकित्सा—सफाई का प्रबन्ध बहुत ही उत्तम होना चाहिये। पाखाना की सफाई, विष्ठा की व्यवस्था तथा सक्रमित जमीन का शोधन—रोग प्रतिषेध के लिये इन बातों पर अधिक ध्यान देना चाहिये। इस रोग के लिये (१) Tetrachlorethylene (२) Carbon Tetrachloride एव (३) oil of chenopodium—ये तीन औषधियाँ विशिष्ट मानी जाती हैं। पूर्वोक्त दोनो औषधियाँ oil of chenopodium के साथ प्रयोग करने से अधिकतर लाभ होता है। इन औषधियो के प्रयोग के बाद लवणजातीय विरेचन का प्रयोग करना चाहिये जिसका उद्देश्य औषधि तथा कृमि-दोनो को निकाल देना है। मल की परीक्षा करनी चाहिये और निकले हुए कृमियो को गिनना चाहिये। सात से दस दिन के बाद पुन मल की परीक्षा करनी चाहिये। अगर कृमि के अण्डे दिखाई पड़े तो पुन. औषधियो का प्रयोग करना चाहिये।

Tetrachlorethylene की मात्रा पूर्ण वयस्को के लिये २ से ३ सी. सी. है। यह सबसे निरापद तथा सस्ता कृमिनाशक औषध है और एक ही खुराक में दिया जाता है। इस औषधि को कैपसूल में भरकर अथवा ½ से १ औंस Mag. Sulph के घोल में १ सी. सी oil of chenopodium मिलाकर पिला देना चाहिये। प्रातः खाली पेट में इसका प्रयोग किया जाता है और जब तक विरेचन अच्छी तरह से न हो जाय तब तक भोजन नहीं करना चाहिये। आवश्यकता होने पर पुन Mag Sulph का प्रयोग कर विरेचन कराया जा सकता है।

Carbon Tetrachloride - की मात्रा पूर्ण वयस्को के लिये २ से ३ सी सी है। यह औषधि कैपसूल में,
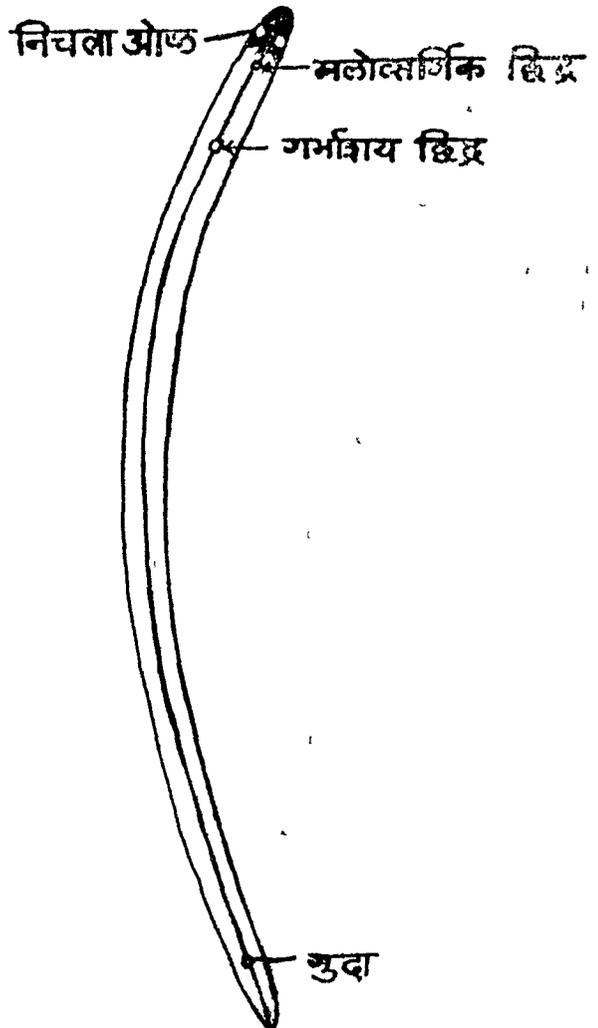
दूध में, अथवा Mag Sulph के घोल में मिलाकर दी जा सकती है। इस औषधि की प्रयोग विधि भी Tetra-chlorethylene के समान ही है। इस औषधि का प्रयोग निम्न प्रकार से भी किया जा सकता है। १½ सी. सी. Carbon Tetrachloride एवं ½ सी सी oil of chenopodium ½ औंस Mag Sulph के घोल में मिलाकर सुबह खाली पेट में पिला दें। १ घण्टा बाद फिर से इसका प्रयोग करें। आवश्यकता होने पर ३ घन्टे बाद पुन. Mag Sulph का प्रयोग किया जा सकता है। इस औषधि की अधिक मात्रा से यकृत में सड़न की उत्पत्ति हो सकती है और उसके लक्षण के रूप में वमन, यकृत में वेदना तथा स्पर्शासहत्व, कामला, रक्त मूत्रता अथवा सामयिक मूत्राघात आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। इससे मृत्यु तक हो सकती है। अत मद्यपानासक्त, केलसियम की कमी, यकृत पाथी सकोच अथवा वृक्क रोगो से पीडित व्यक्तियों में इस औषधि का प्रयोग नहीं करना चाहिये। oil of chenopodium—इसकी मात्रा पूर्ण वयस्को के लिये १ से २ सी. सी.। इस औषधि को अकेले कैपसूलमें भरकर अथवा पूर्वोक्त दोनो औषधियों के साथ मिलाकर Mag Sulph के घोल में प्रयोग किया जा सकता है। अकेले प्रयोग करने से ½ सी. सी. की मात्रा में आधे आधे घन्टे में २ घण्टा तक अथवा एक ही खुराक में २ सी. सी. देकर लवण जातीय विरेचन का प्रयोग करना चाहिये। इससे साग्रहिक विषक्रिया की उत्पत्ति हो सकती है। १० दिन के भीतर इस औषधि का पुन प्रयोग नही करना चाहिये। विषक्रिया के क्षेत्र में Digitalis अथवा Epinephrine का प्रयोग उपदिष्ट है। इसकी कोई रासायनिक विरोधी द्रव्य नही है। रोग लक्षणो में कमी तथा मल में अण्डों की अनुपस्थिति से रोग निरामयता का ज्ञान हो सकता है।

४ Round Worm (Ascaris Lumbricoides—गण्डुपद कृमि)—इन कृमियों के पुरुष जाति ६ इंच और स्त्री जाति १२ इंच तक लम्बा हो सकता है। इसका स्वाभाविक आवासस्थान क्षुद्रान्त्र है। इन कृमियों के अण्डे मनुष्य खाद्य अथवा पानीय जल के साथ निगल जाते हैं। क्षुद्रान्त्र में पहुंचकर कृमि के अण्डे अन्त्रप्राचीर में प्रवेश करता है जहां से वे रक्तस्रोतों के जरिये से फुफ्फुस में पहुंच जाता है। कभी कभी इससे श्वासक ज्वर की उत्पत्ति भी हो सकती है। फुस्फुस से वे श्वास नलिका, अन्ननलिका आदि के जरिये से क्षुद्रान्त्र में पहुंच जाता है रोग सक्रमण से २ से २½ महीने मे मल में इस कृमि के अण्डे निकलने लगते हैं।

लक्षण—पूर्णावयव कृमि क्षुद्रान्त्र में रहकर विष-क्रिया के द्वारा, यान्त्रिक उपाय अथवा प्रतिफलित क्रिया के द्वारा रोग लक्षणो को उत्पन्न कर सकता है। वयस्क रोगियो में दद्रु-चकत्ते निकलना, चेहरे पर सूजन, बच्चों मे दांतो को किड़किड़ाना, अनजाने शय्या में मूत्र निर्गम, आक्षेप आदि उत्पन्न हो सकता है। बहुसख्या में कृमि एक साथ गुच्छाकार में अन्त्र में अवरोध की सृष्टि भी कर सकता है। कभी कभी अन्त्र विदारण तथा उदर्यकला शोथ की उत्पत्ति हो सकती है। इतस्तत भ्रमणशील कृमियो से आन्त्रपुच्छ प्रदाह अथवा अग्न्याशय या पित्त-वाही स्रोत में अवरोध उत्पन्न करके कामला, यकृत में पहुचकर विद्रधि या पित्ताशय प्रदाह आदि उत्पन्न कर सकता है।

चिकित्सा—इस रोग के लिये oil of chenopodium (१½ सी. सी.), Tetrachlorethylene तथा Carbon Tetrachloride ३ सी. सी. विशिष्ट औषधि है। प्रयोग विधि भी पूर्ववत्। Santonin ३ से ५ ग्रेन तक का भी प्रयोग लाभदायक है। यह औषधि ३ दिन लगातार या १ दिन के अन्तर से प्रयोग करनी चाहिये। इसके बाद Mag. Sulph का प्रयोग करना आवश्यक है। Calomel का भी प्रयोग किया जा सकता है—परन्तु कभी भी Castor oil या तैल जातीय कुछ भी विरेचक औषधि का प्रयोग नही करना चाहिये, इससे विषक्रिया

की उत्पत्ति हो सकती है। करीब करीब ४८ घन्टे के बाद कृमि मल मार्ग से निकल आता है। मल परीक्षा में इस कृमि के अण्डे की स्थायी अनुपस्थिति ही रोग निरामय की प्रतीक माननी चाहिये।

(५) Whip worm (Trichuris Trichiura—प्रतोद कृमि—ये कृमि लम्बाई में १½ इंच होते हैं और प्रायश उण्डुक मे ही निवास करते हैं। इसका सामना आग धागे के समान होता है। खाद्य या पानीय के साथ कृमि के अण्डे मनुष्य शरीर मे प्रवेश पाकर उण्डुक में बच्चों को उत्पन्न करता है। यह कृमि वहां की श्लेष्मधरा कला में चिपककर रह जाते हैं। कभी-कभी ये अन्त्रपुच्छ, बृहदन्त्र अथवा शेषान्त्रक को आक्रमण करता है। इस कृमि के आक्रमण से कोई खास लक्षण उत्पन्न नहीं होता है। कभी-कभी ददोड़े चकत्ते आदि निकलते हैं। रक्त में Eosiusphil की अनुपात वृद्धि हो सकती है। कभी-कभी आन्त्रपुच्छ प्रदाह अथवा उदर्याकला प्रदाह उत्पन्न होता है। अजवाइन का सत्व (Thymol) तथा oil of chenopodium से लाभ मिलता है।

(६) Guinea Worm (Drecancular medinensis नहरूआ)—भारतवर्ष मे यह रोग विशेषरूप से राजस्थान मे बहुत होता है। इस कृमि की मादा जाति ४० से १२० सेन्टीमीटर तक लम्बी होती है। संक्रमण के पश्चात् यह कृमि मनुष्य के त्वचान्तर्गत तन्तुओ में निवास करता है और करीब-करीब १२ महीने मे यह त्वचा में आकर अपने शरीर से कुछ विषैली चीज निकालते है। जिसके कारण वहाँ एक फफोले की सृष्टि होती है और कुछ दिनों मे वहाँ एक क्षत की उत्पत्ति होती है। जल के सम्पर्क में आने के पश्चात् प्रतिफलित क्रिया से क्षतस्तल में आगत उभरा हुआ उसका गर्भाशय फट जाता है। जिसमें से छोटे छोटे भ्रूण कृमि निकलकर जल में मिल जाते हैं। इस जल के सेवन से मनुष्य इस कृमि से सक्रमित होता है। कृमि से स्रुत विषले पदार्थ—जिससे फफोले पड़ जाते हैं का यदि शरीर में शोषण होता है तो प्रोटीन असहनशीलता के लक्षण उत्पन्न होते हैं। अगर जल सस्पर्श के बिना ही गर्भाशय फट जाय तो वहा एक निर्दोष (Aseptic) व्रण की उत्पत्ति होती है। अगर त्वचा के बाहर आने पर खीचकर बाहर निकलते समय यह कृमि टूट जाय तो कृमि आभ्यन्तर तन्तु मे सिकुड जाता है। उसके साथ Staphylococaccus, B coli या Streptococaus के सक्रमण से वहा व्रण, त्वचान्तर्गत प्रदाह, सन्धि शोथ व प्रदाह अथवा रक्त विषमयता की उत्पत्ति हो सकती है।

लक्षण—पूर्वरूप मे खुजलीयुक्त चकत्ते का निकलना (४० प्रतिशत क्षेत्र मे)–जिसके साथ हृदयावसाद, वमन, अतिसार, श्वास कष्ट, Eosinophil के अनुपात में वृद्धि आदि उत्पन्न होकर कई घण्टो मे फफोला पैदा हो जाता है। दोनो पैरो मे आक्रमण अत्यधिक मात्रा मे (८६ ५%) दिखाई पडता है। इसके पश्चात् क्रमश दोनो हाथ, मध्याग, नितम्ब तथा फल कोष में आक्रमण दिखाई पड़ता है। इस रोग की परिणति में मास कण्डराओ में स्थायी सकोच अथवा सन्धियो में जडता आदि की उत्पत्ति हो सकती है। नाडी तन्तुओ मे प्रदाह अथवा मासपेशियो में वात वेदना आदि लक्षण त्वचाभ्यन्तर में कृमियो के चूना जातीय पदार्थ परिवर्तन के कारण उत्पन्न हो सकता है।

चिकित्सा—रोगी किस अवस्था मे चिकित्सार्थ उपस्थित होता है इसी के ऊपर चिकित्सा कार्य निर्भर है। Protein के असहनशीलता का लक्षण मे Adrenaline (1 in 1000) १० बूंद का सुचीवेध विशेष लाभदायक है। फफोले उत्पन्न होने पर वहा क्षत शोधक धावनो से शुद्धिकरण विशेष आवश्यक है। उसके पश्चात् कृमि को बाहर निकालने का प्रयत्न करना चाहिए। इसलिये धीरे-धीरे खींचकर निकालना और साथ ही साथ मालिश करना चाहिए। शल्य चिकित्सक इस समय स्थानिक सज्ञालोप के सहारे चीरा लगाकर कृमि को निकाल सकते हैं। त्वचा के ऊपर Ethylchloride छिडकाने पर कृमि का अवस्थान काफी स्पष्ट हो जाता है जिससे शस्त्र प्रयोग में मार्गदर्शन भी हो सकता है। अभी भी कृमि को प्रतिदिन धीरे-धीरे थोडा-थोड़ा खीचकर निकालने तथा नीम की पत्ती, निर्गुण्डी की पत्ती आदि से साधित जल से जब तक गर्भाशय शून्य न हो तब तक प्रतिदिन प्लावित करने की प्रथा चालु है। कृमि को प्रतिदिन खीचकर एक बारीक लकड़ी मे लपेट कर उसी स्थान पर बाँधकर रख दिया जाता है। परन्तु खीचते समय किसी भी तरह से कृमि टूट न जाय इसके

ऊपर विशेष ध्यान रखना चाहिये। व्रण की उत्पत्ति होने पर सलाई की सहायता से कृमि के स्थान का पता लगा कर वहाँ शस्त्र प्रयोग करना चाहिये। अन्यान्य लक्षणों की चिकित्सा तदनुसार करनी चाहिये।

उपरोक्त कृमिरोगों के लिये आयुर्वेदीय चिकित्सा पूर्व वर्णन के अनुसार ही करनी चाहिए। प्राच्य तथा पाश्चात्य औषधियों के समवेत प्रयोग से अधिकतर लाभ हो सकता है। Guinea worm को प्रचलित भाषा मे "नहरुआ" या "नारू" कहते हैं। इसके लिये कुछ अनुभूत योग दिये जा रहे हैं। जल शोधनादि प्रतिषेधात्मक चिकित्सा के अतिरिक्त इनके प्रयोग से लाभ होता है—
(१) ईसबगोल, कलिहारी, प्याज, देशी साबुन, सिन्दूर, वत्सनाभ, हिंगु, अफीम व कर्पूर समभाग कूट पीसकर शीशी में रख लें। व्रण अथवा नाडी व्रण की उत्पत्ति होने पर इस चूर्ण का १ या २ तोला, २० तोले पानी में डालकर पकाना और दर्वी चलाते रहना। जब प्रलेप के उपयुक्त गाढा हो जाय तब इसे उतारकर किसी हरे पत्ते पर रखकर बांधते रहने पर शीघ्र ही लाभ हो सकता है। (२) भिलावा, मुर्दाशख, सिन्दूर, खुरासानी अजवायन, देशी मोम प्रत्येक २० तोला, तिल तैल १½ सेर निम्न विधि से बनाना। पहिले भिलावे को सावधानी से सरोते से काटकर तेल मे डालकर काला-काला भून लें। तैल को छानकर अलग रख लें। अब भिलावा, मुर्दाशख व खुरासानी अजवायन को खूब बारीक पीस ले। तेल को आग पर रखकर गरम करने के पश्चात् उसमे मोम डाल दें। जब पिघल जाय तो सिन्दूर डाल दें और करछुली से जल्दी-जल्दी हिलाते रहे जिससे गाढा न पड जाय। जब सिन्दूर अच्छी तरह से मिल जाय तो बाकी चीजो को कड़ाही में डाल दें। जल्दी-जल्दी अच्छी तरह से मिलाकर उतार ले। इस मरहम को आक के पीले पत्ते पर रखकर नहरुआ के स्थान पर बांध दें। ३ दिन पट्टी बाँधने पर आराम हो जाता है। (३) यदि कृमि निकलना रुक जाय या टूट जाय तो रोहितक के पत्ते को पीसकर लुगदी बनाकर उस पर बाँध देवें। २४ घण्टे के पश्चात् तमाम विष व टूटा हुआ कृमि रस्सी के रूप मे निकल जावेगा। (४) भुनी हिंगु १ रत्ती १ तोला मिश्री मे मिलाकर २१ दिन तक खिलावें और [illegible] में पीसकर लेप करें।

सभी कृमि रोगों की आयुर्वेदिक चिकित्सा—

(१) पलाश बीज, नीम की छाल, [illegible], किरमानी, बायविडङ्ग प्रत्येक १ तोला लेकर कपड़छन चूर्ण करें। ३ माशा चूर्ण पुराने गुड़ के साथ रात्रि को सोते समय ७ दिन तक दें। सभी प्रकार के कृमियों को नष्ट करने वाला योग है।

(२) सोंठ, त्रिफला, देवदारु और सहजन बीज ५-५ माशा तथा जल १० तोला लेकर आधा [illegible] शेष रहने तक क्वाथ कर छान ले। इसमें पीपर चूर्ण ४ रत्ती तथा विडङ्ग चूर्ण ४ रत्ती मिलाकर प्रात. साय दें। सम्पूर्ण प्रकार के कृमि नष्ट होते है।

(३) कृमिमुद्गर रस (र० सा० स०) १-४ माशा या कृमिघातिनी वटी १-१ गोली प्रात. साय उपरोक्त क्वाथ नं० २ के साथ देवें।

(४) विडङ्ग लौह (र० सा० स०) की १-१ गोली मधु के साथ प्रात साय देवें।

कृमि रोग की आधुनिक चिकित्सा

(५) सैन्टोनिन (Santonin) $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ ग्रेन ५ वर्ष के बच्चो को तथा १२ वर्ष तक के बच्चों को ३ ग्रेन तक रात्रि में सोते समय देवें। यह गण्डूपद कृमिनाशक है।

(६) सैण्टोनिन ३ ग्रेन, केलोमल १ ग्रेन, सोडाबाई कार्ब ३ ग्रेन, ग्लूकोज ५ ग्रेन की १ मात्रा बनाकर रात्रि सोते समय देवे तथा दूसरे दिन सवेरे कोई कोष्ठशोधक विरेचन देना चाहिए।

(७) हेल्मासिड विद सिना (Helmacid with senna) के ग्रेन्यूल्स $\frac{1}{2}$ से १ चाय का चम्मच भर कर दिन में तीन बार देने से कृमि रोग नष्ट होता है।

(८) एन्टीपार, एण्टेसोल, फिस्टोयड्स जेनशियन वाइलेट, टेट्राकैप, सिगलाजान, हेट्राजान इत्यादि पेटेण्ट योगो की टिकिया या पेय देने से शीघ्र कृमि रोग नष्ट होते हैं।

(७) सम्पूर्ण लीवर एक्सट्रेक्ट (Whole Liver Extract) १ या २ सी सी की मात्रा में प्रति तीसरे दिन दें।

अपनी अभिज्ञता—Indian Council of Medical Research, New Delhi द्वारा शासकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, ग्वालियर में जो अनुसन्धान कार्य चलाया गया है—उसमें कृमि रोग पर पलाशबीज की उपयोगिता पर भी कार्य किया गया। पलाश बीज को रात को पानी में भिगा दिया जाता था और ३६ या ४८ घण्टे बाद उसकी ऊपर की लाल छिलका निकाली जाती थी। ऊपर के लाल छिलके अतिरिक्त विषैले है। यह शुरू शुरू मे प्रयोग के द्वारा देख लिया गया था। उससे काफी वमन, जी मिचलाना, शारीरिक अवसाद, अतिसार आदि लक्षण उत्पन्न होते थे। छिलका निकाले हुआ पलाश बीज को धूपमे सुखाया जाता था और कूट छान कर बारीक चूर्ण उपयोग मे लिया जाता था। उस चूर्ण को ४।४ रत्ती की मात्रा मे कैपसूल मे भर कर रोगी को प्रयोग कराया जाता था। प्रारम्भ मे ४-४ घण्टे में २।२ कपसूल गण्डुपद तथा सौत्रिक कृमि के रोगियो को दिया जाता था। इससे पहले रोगी को अच्छा विरेचन कराया जाता था और कैपसूल देने के बाद भी आवश्यकता होने पर विरेचक औषधियो का प्रयोग किया जाता था। इससे गण्डुपद कृमि पर अच्छा लाभ मिलता था। परन्तु बाद में एक ही मात्रा मे ६से८ कैपसूल देकर उसका फल देखा गया इससे फल अधिकतर अच्छा था और काफी सख्या मे गण्डुपद कृमि बाहर निकल जाते थे। रोगो की हालत मे काफी सुधार होता था और जब तक ऐसा एक भी गण्डुपद कृमि निकलता था तब तक इसका प्रयोग किया जाता था। विभाजित मात्रा मे पलाश बीज के प्रयोग से कुछ जी मिचलाना, कभी वमन, क्षुधामान्द्य आदि अनभिप्रेत लक्षणो की उत्पत्ति होती थी, किसी किसी रोगी मे २-१ वार वमन भी हो जाता था। परन्तु रात्रि को सोते समय पूर्ण मात्रा मे औषध प्रयोग करने पर ये लक्षण बहुत ही कम उत्पन्न होते थे। २-१ रोगी मे ४-६ महीनो के बाद इस रोग से पुनराक्रमण की सूचना मिलती थी। हो सकता है—यह रोग का पुनराक्रमण हो अथवा पूर्ण रोग की जीर्णावस्था हो। किन्तु पलाशबीज के इस प्रकार प्रयोग से लाभ अवश्य मिलता था और रोगी पूर्ण स्वस्थ समझ कर घर चले जाते थे। सौत्रिक कृमि के रोगियो मे मुख मार्ग से प्रयोग करने पर आशानुरूप फल नही मिला था। उन रोगियो मे प्रात पहिले गरम जल से वस्ति प्रयोग के पश्चात् पलाश बीज के क्वाथ से वस्ति दी जाती थी। इससे अच्छा फल मिला था। साधारणत. पलाशबीज के क्वाथ की ४ औस मात्रा Retentive enema के रूप मे दी जाती थी और २-४ दिन मे मल कृमिरहित तथा रोगी लक्षणो से मुक्त हो जाता था। बाद मे १ दिन के अन्तर मे, दो दिनो के अन्तर मे इस तरह से अन्तर बढाकर दो हफ्ते में रोगी सम्पूर्ण आराम मे होते थे। परन्तु मुख मार्ग से पलाशबीज का प्रयोग पूर्णरूप से विषैली प्रतिक्रिया से मुक्त नही है—इस पर ध्यान देकर पलाश बीज पर अधिकतर अनुसधान कार्य अपेक्षित है।

— कविराज श्री एस एन बोस, डी एस सी ए, आयुर्वेद वृहस्पति इत्यादि, भूतपूर्व प्रिन्सिपल, दयानन्द आयुर्वेद कालेज, जालन्धर तथा आयुर्वेद विश्वभारती, सरदार शहर, राजस्थान तथा भूतपूव रिसर्च आफिसर, महात्मा गाधी स्मृति चिकित्सा महाविद्यालय, इन्दौर तथा इण्डियन काउन्सिल आफ मेडिकल रिसर्च, नई दिल्ली-१

(पृष्ठ ४२० का शेषांश)

घण्टे मे पेशाव न हो तो फिर से नया लेप लगाना चाहिये।

देशी कपूर की डली को मूत्रेन्द्रिय के अग्रभाग पर रखने मूत्र होता है। उत्तरवस्ति (रबर केथेटर) का उपयोग कर मूत्र निकालना चाहिए।

विसज्ञता—स्मृतिसागर रस २ रत्ती, ब्राह्मी चूर्ण ४ रत्ती, शखाहुली चूर्ण ४ रत्ती, सीरप शख पुष्पी के साथ देना। शिर पर बादाम का तैल, ब्राह्मी तैल का मर्दन करना चाहिए। रोगी की अवस्थानुसार उक्त औषधियो की मात्रा एव अनुपान मे परिवर्तन करना चाहिये।

पथ्य

रोग शात होने के बाद भी एक सप्ताह तक अन्नाहार नही देना। अग्निदीप्त होने पर दो दिन तक आधा पाव ताजी छाछ में ३ माशा लवणभास्कर चूर्ण डालकर पिलाना या हींग-जीरे से बघारकर सेंधानमक मिलाकर देना। इस प्रकार २-२ घण्टे बाद पिलाना चाहिए। रोगी की स्थिति सुधरती जाय और जैसे-जैसे भूख बढती जाय वैसे-वैसे छाछ की की मात्रा बढ़ाते जाना चाहिए।

—कविराज हरिवल्लभ म द्विवेदी सिलाकारी शास्त्री
निरजन-निवास, चकराघाट, सागर (म प्र.)

घरेलू मक्खी

मक्खी की जीवनी—मक्खी की आयु एक महीने के लगभग होती है। वह अपने जीवन में ५-६ बार अण्डे देती है और प्रत्येक बार अण्डों की संख्या १००-१५० तक होती है। अर्थात् एक महीने में एक मक्खी २००० मक्खियाँ उत्पन्न कर सकती है। घोड़े की लीद, मल, कूड़ा-कर्कट, तरकारियों के टुकड़े, छीलन इत्यादि अण्डे देने के स्थान होते हैं। अण्डों की वृद्धि के लिए आर्द्रता, और कुछ गरमी की आवश्यकता होती है। अनुकूल परिस्थिति में ८-२४ घण्टे। अण्डे से इल्ली बन जाती है। इसकी आयु २-५ दिन की होती है जिसमें यह तीन चोलियाँ बदलती है। इसके बाद कुप्पक की अवस्था आती है जिसकी आयु ३-७ दिन की होती है। कुप्पा से मक्खियाँ निकलती हैं। इस तरह अण्डा, इल्ली, कुप्पक और मक्खी इन चार अवस्थाओं में मक्खी का जीवन विभक्त होता है जिसके लिए औसत १०-१२ दिन लगते हैं।

मक्खी रोग कैसे फैलाती है?—मक्खी की आदतें बड़ी खराब होती हैं वे मनुष्यों के पाखाना, थूक, बलगम, मूत इत्यादि त्याज्य चीजों से बहुत प्रेम करती हैं, उनको खाती हैं। खाने के पश्चात् वहाँ से उठकर मनुष्यों के भोजन के पदार्थों (जैसे रोटी, दूध, मिठाई इत्यादि) पर बैठती हैं, बैठते समय विष्ठा भी त्यागती हैं। भोजन को अपने थूक में घोलकर चूसा करती हैं। अतः पाखाने में जो जीवाणु होते हैं वे उनके टांगों से, परों से, थूक से तथा विष्ठा से हमारे भोज्य में मिल जाते हैं। पूययुक्त व्रण पर बैठकर पुनः स्वस्थ आंख, या व्रण आदि पर बैठ कर भी संक्रमण फैलाती हैं।

मक्खियों से रक्षा—(१) अण्डे, इल्ली, प्यूपा का नाश—घोड़े की लीद, पाखाना, कूड़ा करकट इत्यादि के नाश का तुरन्त और उचित प्रबन्ध करें। जहाँ पर मक्खियाँ अण्डे देती है वहाँ पर गोहागे का १-२% या क्रिसोल (Cresol) का ५% घोल छिड़कने से अण्डे या इल्लियाँ मर जाती है। (२) मक्खियों का नाश—यह कार्य मक्खी पकड़ कागजों (Fly-Papers) द्वारा, तार की जाली के पंखा द्वारा, फ्लिट या अन्य कीटक नाशक फुहारों द्वारा, फार्मेलिन जैसे विषैले घोल के द्वारा करें।
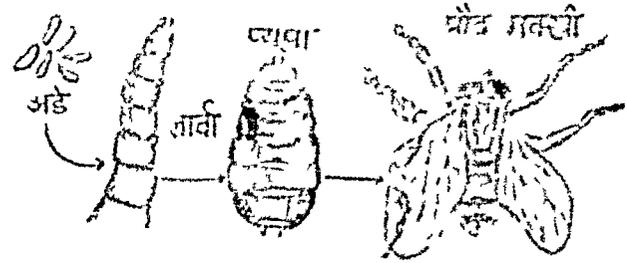
डि डि. टि (D D T.)—इसका पूर्ण नाम द्विनीर द्विदर्शतत्रिनीर दत्तीप्य (Dichloro-diphenyl-trichloroethene) है। यह स्थिर स्वरूप का बहुगुणी कीटक नाशक है जिसके केवल स्पर्श से मक्खियाँ, मच्छर, खटमल, जूँ तथा अन्य कीटक समूल नष्ट होते हैं। इसका प्रयोग मिट्टी के तेल में बनाए हुए ५% घोल के रूप में किया जाता है। यदि इसका उपयोग फव्वारे से घरों या झोपड़ियों के किवाड़ों पर तथा भित्तियों पर मास भर में एक बार किया जाय तो उस पर बैठने वाली सब मक्खियाँ मच्छर, झिंगुर, खटमल इत्यादि कीड़े नष्ट हो जाते है।

धूपेन्य षण्नीरेय (Benzene hexachloride (666)—यह भी डि डि टि. के समान कीटक नाशक है। परन्तु बड़े पैमाने पर अभी तक प्रयोग नहीं किया गया है।

पर्याय—क्षय, शोष, रोगराट्, तपेदिक, राजयक्ष्मा, Phthisis, Consumption, Tuberculosis

उपसर्ग स्थान—क्षयी गौ और मनुष्य राजयक्ष्मा के उपसर्ग स्थान होते हैं। क्षयी गौ के दूध में क्षय दण्डाणु
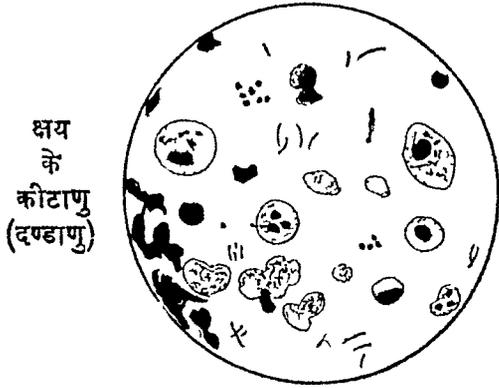
उत्सर्गित होते हैं। मनुष्य में राजयक्ष्मा शरीर के प्रत्येक अग प्रत्यग में (आमाशय को छोडकर) हो सकता है और उसके अनुसार अस्थिक्षय, आन्त्रक्षय, ग्रन्थिक्षय इत्यादि नाम दिए जाते हैं। सबसे अधिक फुपफुस में होता है और केवल उसी को क्षय या राजयक्ष्मा कहते हैं। जिस अङ्ग मे विकृति होती है उस अग के स्राव या मल में दण्डाणु पाए जाते हैं परन्तु फौपफुसिक विकृति को छोडकर अन्य अङ्गो की विकृति मे इनकी सख्या अत्यल्प या नगण्य होती है। तृतीयावस्था के फुपफुसक्षयी के २४ घण्टे के थूक में इनकी संख्या २ अब्ज से भी अधिक रहती है। इसलिए रोग प्रसार की दृष्टि से फुपफुसक्षयी उपसर्ग का प्रधान स्थान होता है।

सहायक कारण—(१) वश—राजयक्ष्मा के लिए ससार की मनुष्य जाति के सब वश (Race) एक से होते हैं और कोई भी अग्रहणशील नही है।

(२) आयु—राजयक्ष्मा सब अवस्थाओ मे हो सकता है। परन्तु बचपन में ४ साल की अवस्था तक कम होता है और उसमे उसका स्वरूप फौपफुसिक की अपेक्षा मस्तिष्कावरणगत अधिक रहता है।

(३) धन्धे—जिन लोगो को धूलि, धूआँ, वालू, तन्तु इत्यादि से भरी हुई वायु में काम करना पडता है उनमे क्षय उत्पन्न होने की अधिक सभावना होती है।

(४) परिस्थिति—अधिक जनसम्पर्क गन्दगी, तरी, अँधेरा, खराब हवा इत्यादि से युक्त गुञ्जान मुहल्लो और मकानो मे रहने वाले राजयक्ष्मा से अधिक पीडित होते हैं।

(५) सामाजिक कुरीतियाँ--परदा, बाल्यावस्था में मातृपदप्राप्ति और जल्दी जल्दी बच्चे होना, एक ही थाली से और प्याले से खान पान, इतस्तत. थूकना।

(६) दारिद्र्य या श्रमाधिक्य—इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। दारिद्र्य के कारण लोगो को अधिक काम करना पडता है। इसलिए यह रोग अल्पवेतन पर काम करने वालो मे अधिक हुआ करता है।

(७) कुलजप्रवृत्ति—राजयक्ष्मा न कुलज है न सहज।

(८) अन्य रोगो से सहायता--बच्चो मे अस्थिवक्रता, कुकुरखाँसी, रोमान्तिका, स्त्रियो में गर्भावस्था और प्रसव, सब मे विषमज्वर, कालाजार, मधुमेह इत्यादि रोग क्षय की उत्पत्ति मे सहायता करते हैं।

संक्रमण—फुपफुसक्षयी के थूक में अगणित यक्ष्मदण्डाणु विद्यमान होते हैं। इसलिए रोगी का थूक सबसे भयावह उपसर्गकारी वस्तु होता है।

प्रतिबन्धन

आजकल अन्य अनेक रोगो के समान राजयक्ष्मा के लिए टीका द्रव्य उपलब्ध हो गया है। इसको बी० सी० जी० मसूरी कहते हैं। यह मसूरी राजयक्ष्मा दण्डाणुओ से (Bacilli) कालमेटी (Calmette) और ग्यूरिन (Guerin) नामक वैज्ञानिको ने बनायी। इसलिए तीनो के आद्यक्षर लेकर उसका नामकरण किया गया। इस मसूरी मे जो दण्डाणु है वे गव्य जाति के है और जीवित होते हैं। परन्तु विशेष संस्कार द्वारा उनको विकार-

कारिता नष्ट की गयी है और क्षमताजनकता कायम रखी गयी है।

मात्रा— ०५-.१ सहस्त्रिधान्य (Mg)

मार्ग— इसका टीका चर्मान्तर्गत लगाया जाता है— इससे कई बार स्थानिक विद्रधि उत्पन्न होती हैं और कभी-कभी तत्स्थान सम्बन्धित लसग्रन्थियाँ फूलती हैं या पकती हैं।

व्यक्तिगत प्रतिषेध—(१) रोगी को स्वतन्त्र, सुप्रकाशित और हवादार कमरे मे रक्खें या क्षय भवन मे भेज दें। (२) रोगी के थूक से रोग फैलता है, इसलिए थूक के नाशन पर ध्यान दें। (३) रोगग्रस्त व्यक्ति के कमरे में न सोवें। (४) बालक दुर्बल हो, उनको खसरा, कुकुरखाँसी या अन्य छाती के और गले के विकार हो तो उनकी तुरन्त चिकित्सा करावें। (५) सोने के कमरो की खिडकिया रात को पूर्णतया न बन्द करें।

राजयक्ष्मा की आयुर्वेदिक चिकित्सा

(१) वसन्त मालती १ र०, शिलाजत्वादि लौह २ र०, चन्दनादि लौह २ र०, प्रवाल पिष्टी २ र०, सितोफलादि चूर्ण १ माशा—इन सबको १ मात्रा बनाकर प्रात साय मधु एव विषम मात्रा मे घी के साथ लेने से क्षय की सभी अवस्थाओ लाभप्रद में योग है। १ माह तक लेना चाहिये।

(२) हिंगुलोत्थ पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध सुहागा, ताम्र भस्म, सेंधानमक, मरिच चूर्ण, स्वर्ण भस्म, लौह भस्म, बग भस्म, रौप्य भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म—प्रत्येक सममाग लेकर एकत्र कर क्रमश. एक एक दिन धतूर रस, हर्रसिंगार रस, दशमूल क्वाथ तथा चिरायता क्वाथ में खरल कर १ रत्ती प्रमाण की टिकिया बनावें। १-१ टिकिया मधु तथा श्वेत जीरा चूर्ण के साथ प्रात. साय लेने से क्षय की सभी अवस्थाओ में लाभप्रद प्रधान योग है।

(३) श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन द्वारा निर्मित रुद्दन्ती कैपसूल (स्वर्ण वसन्त मालती युक्त) तथा कासनाशी प्रयोग करें।

राजयक्ष्मा की आधुनिक चिकित्सा]

(१) आयसोपास कैल कम सी० डी०, आइसोनेक्स पेलाजिड, विस्त्राजाइड, टीबीजाइड, आइसो-निया-पास, एनाजिड़, एउवरोल, कैपेजाइड, कैलपास, डाइपैक्षोन, पामिजिड, पास(P A.S) पासोप्लोन, पी. ए सी मेक्सेमिन, विटाजायड १००, आदि पेटेन्ट गोलियो में से किसी एक का सेवन योग्य चिकित्सक के निर्देश में करें।

(२) आइसोजाइड शर्बत, एडवीराल, कोडोमोल, च्यवनप्राश, काडलिवर आयल के साथ, जेनेविस डी, टीबीजाइड विद कैल्सियम पास वी विटामिन, शार्कोफेराल, फेरोडाल, आदि प्रमुख पेयो में से किसी भी पेय का उपरोक्त गोलियो के साथ सेवन कराना चाहिये।

(३) एम्बिस्ट्रीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन इत्यादि के इन्जेक्शन इस प्रकार लगाये कि कुल मात्रा ७०-८० ग्राम तक शरीर मे पहुँच जाय। यह क्षय रोग के पेटेण्ट इन्जेक्शन है। इनके साथ पैनविट, बीमिक्स इत्यादि मल्टीविटामिन युक्त इन्जेक्शनो का प्रयोग करने से क्षय रोगी शीघ्र ही लाभ प्राप्त करता है।
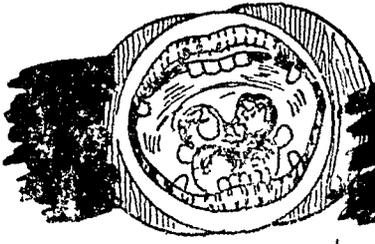
गलेऽनिल पित्तकफौ च मूर्च्छितौ,
प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम् ।
गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहंत्यसून्,
व्याधिरियं हि रोहिणी ॥ सुश्रुत ॥

यह एक तीव्र औपसर्गिक रोग है जिसमे गले में खराबी होकर एक झिल्ली बन जाती है और विषमयता के कारण हृदय दौर्बल्य, पेशियो का घात, वृक्क शोथ इत्यादि उपद्रव होते हैं। मृत्यु प्राय गले की झिल्ली के कारण श्वासावरोध से या हृद्भेद से होती है।

हेतु—इस रोग का कारण रोहिणी द.(B. Diphtheria)

या क्लेब्स लोफ्लर का दण्डाणु है। यह सलाई के आकार का ३-४ णु लम्बा और आधा णु चौडा होता है।

रोहिणी शीत और समशीतोष्ण प्रदेशो का रोग है। जहाँ पर यह तीव्र जानपदिक स्वरूप धारण करता है। भारतवर्ष में यह रोग बड़े शहरो मे और पहाडो पर शीतकाल मे और वर्षाऋतु मे कभी-कभी हुआ करता है। यह बचपन का रोग है जो दस बारह साल की आयु तक अधिक हुआ करता है। रोमान्तिका, कुकुरखाँसी, इन्फ्लुएञ्जा तथा गले के अन्य रोगो से पीडित हुए इसके जल्दी शिकार बन जाते है और उनमें यह रोग अधिक घातक भी होता है। रोगलब्ध क्षमता अल्पकालीन होने से कई लोग इससे दोबारा पीडित हो जाते हैं। कुछ बालक स्वभाव से ही इसके लिए अक्षम होते हैं। इस अक्षमता का ज्ञान शिक की कसौटी (Schick's test) द्वारा किया जाता है।

सङ्क्रमण—रोगी के गले मे जो कला होती है उसमें असख्य दण्डाणु होते हैं। ये खासने, छीकने और बोलने के समय थूक और कला के सूक्ष्म कणो या बिन्दुक्षेपो के साथ बाहर हवा में आते हैं और समीपस्थ मनुष्यो के मुख मे श्वास द्वारा प्रवेश करके रोग उत्पन्न करते हैं। बालको मे प्राय यह रोग पेन्सिल, रूमाल, तौलिया, गिलास इत्यादि मुख के साथ सम्बन्ध रखने वाली चीजो से तथा चुम्बन से फैलता है। दूध से भी यह रोग फैलता है।

वाहक इस रोग को फैलाने मे बहुत भाग लेते हैं। रोगी के सम्पर्क में आने वालो मे से बहुतेरे बालक स्वस्थ वाहक बन जाते हे। प्रत्येक रोहिणी पीडित मनुष्य के मुख मे रोग-निर्मुक्त होने के पश्चात् एक महीना तक दण्डाणु होते हैं। तदनन्तर वे आप से आप नष्ट होते हैं। क्वचित् ये दो तीन महीनो तक भी गले मे रहते हैं। दण्डाणु उपस्थित होने की इस अवस्था मे ये लोग अन्य मनुष्यो पर रोग का सङ्क्रमण करते हैं।
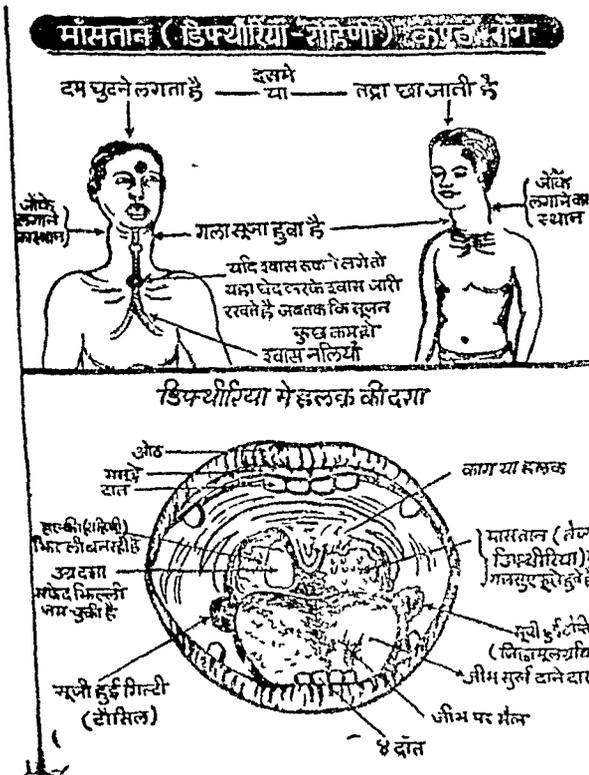
प्रतिषेध—(१) पृथक्करण—रोगी को हवादार स्वतन्त्र कमरे में या अस्पताल मे अलग करना तथा गला, नाक, कान, मुख इनके स्राव से दूषित वस्त्रपात्रादि को अच्छी तरह विशोधित करना या जला देना।

(२) टीका—रोहिणी में क्षमता बढाने के लिए सक्रिय और निष्क्रिय दोनो पद्धतियो का उपयोग किया जाता है। रोगी के सम्पर्क मे आए हुए लोग, जिनमे रोग की क्षमता नहीं है, जल्दी रोग से पीडित होने की सम्भावना होती है, इसलिए इनको प्रतिविष का टीका लगाया जाता है। इसकी मात्रा वयनिरपेक्ष १००० २००० एकक होती है। इस टीका से २४ घण्टे मे क्षमता उत्पन्न होती है और ३-४ सप्ताह तक रहती है।

सक्रिय क्षमता जनन—रोहिणी की क्षमता प्रतिविष जन्य होने के कारण इसमे शरीर मे प्रतिविष उत्पन्न करने का प्रयत्न निम्न टीका द्रव्यो से किया जाता है—

(१) विष—प्रतिविष मिश्रण। (२) विषाभ—प्रतिविष मिश्रण। (३) विषाभ—प्रतिविष ऊर्णिकायें (T A F) (४) स्फटीनिस्सादित विषाभ (A P. T) (५) विषाभ (F. T) इनमे विषाभ प्रतिविष ऊर्णिकायें और स्फटी निस्सादित विषाभ इन दोनो का प्रयोग अधिक होता है क्योंकि इनमे औरो की अपेक्षा क्षमताजनन की शक्ति अधिक और तीव्र प्रतिक्रिया उत्पन्न करने की शक्ति कम होती है।

(३) व्यक्तिगत उपाय—जिस घर मे कोई व्यक्ति रोहिणी से पीडित हो उस घर मे बच्चो को न भेजें तथा उस घर के लोगो के साथ उनका सम्बन्ध बन्द करें। मरक के दिनो मे बच्चो को पाठशाला मे न भेजें तथा प्रतिदिन नीरजी, पोटास परमेगनेट या हाइड्रोजन पेरोक्साइड के घोल से कुल्ला करावे।

रोहिणी चिकित्सा निर्देश—(१) डिफ्थीरिया एण्टीटोक्सीन सीरम (Diphtheria Antitoxin Serum) २००० यूनिट से ३०००० यूनिट तक व्याधि की तीव्रता के अनुसार उचित मात्रा मे करने से अभीष्ट लाभ होता है। प्रतिविष लसिका की मात्रा व्याधि का अधिष्ठान, उसकी गम्भीरता, विषमयता तथा उपद्रव आदि पर अधिक निर्भर करती है, अवस्था पर कम। व्याधि की तीव्रता आदि का निर्णय कर यथाशक्ति लसिका का प्रयोग एक ही पूर्ण मात्रा मे करना चाहिए। इसके प्रयोग से रोहिणी दण्डाणु के विष का निर्विषीकरण होता है।

(२) पेनिसिलीन या आइलोटायसिन का प्रयोग करने से द्वितीयक उपसर्गों का प्रतिकार होता है।

वात श्लैष्मिक ज्वर (इन्फ्लुएन्जा)

श्री वैद्य नथमल शर्मा 'कौशिक'

एक तीव्र संक्रामक रोग है जो ज्वर, प्रतिश्याय, सिरदर्द आदि प्रधान लक्षणो को लिए हुए होता है। इसका प्रसार शरद से बसन्त ऋतु मे होता है। उक्त रोग में श्लेष्मा विकृत होकर वात को प्रकुपित करता है अत आयुर्वेदज्ञो ने इसे वात-श्लेष्मिक ज्वर के नाम से पुकारा है। सन् १९१२, १९१९ तथा १९५७ मे यह महामारी के रूप मे सम्पूर्ण विश्व मे जोरो से फैला था।

कारण—

वातश्लेष्मकरैर्वातकफावामाशयाश्रयौ।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्नि रसगौ ज्वरकारिणौ॥

वात तथा कफ को उत्पन्न करने वाले आहार विहारो के करने से वात तथा कफ ये दोनो कुपित होकर जब आमाशय मे पहुँचते है तब वहा के आम रस को दूषित करते हुए कोठे की अग्नि की गर्मी को बाहर निकाल कर ज्वर उत्पन्न करते हैं। आधुनिक चिकित्सा शास्त्री इसे जीवाणु द्वारा उत्पन्न होना मानते हैं। इस जीवाणु को 'बैसिलस इन्फ्लुएन्जा' नाम दिया गया है। ये अति सूक्ष्म होते हैं तथा स्टफिलोकोकस आरियस ((Staphylo coccus Aureus) भी रोगोत्पादक कारणो मे से एक है।

क्षण —

इसमें यकायक तेज बुखार, सिर दर्द, जुकाम आदि को लेकर रोग का आक्रमण होता है। सम्पूर्ण शरीर मे दर्द, कठ मुह में जलन, तेज, खांसी मुख मडल का रक्ताम होना, तथा कमर की हड्डियो मे दर्द होता है। ज्वर १०१° से १०४° तक चढता है। जो ५-७ रोज रहकर अचानक उतर भी जाता है। बुखार तेज होते हुए भी नाडी की गति मद होती है। आयुर्वेद मे इस ज्वर के लक्षणो को निम्न श्लोक से स्पष्ट किया है—

स्तैमित्यं पर्वणा भेदोऽनिद्रा गौरवमेव च।
शिरोग्रह प्रतिश्याय कास स्वेदा प्रवर्तनम्॥
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्म ज्वराकृति॥

शरीर का गीले कपड़े से ढका हुआ अनुभव होना, सधियो मे टूटने की सी पीड़ा, शरीर में गुरुता, शिरदर्द, जुकाम, खासी, सर्वांग से पसीने का अधिक निकलना, सताप तथा मध्य वेग से ज्वर ये सब लक्षण वातकफ ज्वर वाले रोगी के होते हैं।।

प्रकार- नवीन चिकित्सा विज्ञान की दृष्टि से इसके पाच भेद है—

(१) ज्वर प्रधान—तीव्र ज्वर, शूल, पीठ व अस्थियो में पीड़ा, चक्कर आना, नेत्रो की श्लेष्मिक त्वचा का प्रदाह, कमजोरी आदि। सप्ताह भर ज्वर का तीव्र आक्रमण।

(२) श्वसन विकृति प्रधान—श्वसन यत्र में प्रदाह, चिपचिपा व दुर्गन्धयुक्त थूक आना, तेज खांसी, फुफ्फुसावरण शोथ तथा निमोनिया के सदृश लक्षण।

(३) घातक लक्षण—सन्निपातिक लक्षण, ज्वर, जुकाम, खासी, हृदयावरोध, पक्षाघात, निद्राभाव आदि

(४) आन्त्रिक प्रकार—आन्त्र कला मे विकृति, वमन, अतिसार, तथा कामला भी हो सकता है।

(५) वात संस्थान विकृति लक्षण—भयानक वेदना, सिर दर्द, प्रलाप, दुर्बलता, पार्श्वशूल, उत्क्लेश आदि।

सापेक्ष निदान—इसका निदान मलेरिया, दण्डक ज्वर, न्यूमोनिया आदि को ध्यान मे रखते हुए करना पडता है।

सुरक्षा के उपाय—रोगी को शुद्ध हवा, विश्राम, हल्के व सुपाच्य पथ्य की आवश्यकता होती है। रोगी परिचर्या का विशेष ध्यान रखना चाहिये अन्यथा न्यूमोनिया होने का डर रहता है। रोगी के गले व छाती पर पचगुण तैल की मालिश करें। रोगी को विबन्ध न रहने दे लेकिन ध्यान रहे निरेचक औषधि का प्रयोग हानि-

कारक है। सक्रमण के दिनो मे गर्म जल में नमक मिला गरारे करना भी उपयुक्त है। रोगी को नीच गिरी का तैल सुंघाना चाहिये।

चिकित्सा

(१) पीपल, पिपरामूल चव्य, चीता और सोंठ, इनका क्वाथ वात कफ ज्वर दूर करने वाला होता है।

(२) चिरायता, सोठ, गिलोय, कटेरी, बड़ी कटेरी, पिपरामूल, लहसुन और सम्भालू इन सबका क्वाथ बना कर पीने से वात-कफ ज्वर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

(३) दशमूल क्वाथ बनाकर उसमे पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से वात कफ सम्बन्धी ज्वर, अविपाक, अनिद्रा पसलियो मे पीडा, श्वास तथा कास मे लाभ होता है।

(४) अमलतास का गूदा, पीपरामूल, कुटकी, हरड इनका काढा पीने से शीघ्र ही वात कफ जनित ज्वर शान्त हो जाता है।

(५) बिजोरे नीबू को काट उसमे से बीज निकाल कर सेंधा नमक, व काली मिर्च का चूर्ण डाल कर मुख मे रख कर चूसने से वात कफ ज्वर मे मुख शोष, मुख की जड़ता व अरुचि आदि नष्ट होते हैं।

(६) तुलसी के पत्ते, पुराना गुड तथा काली मिर्च का क्वाथ पीना भी फायदेमन्द रहता है।

विशिष्ट चिकित्सा

इस रोग में निम्न रसादि विशेष काम मे आते हैं।

(१) महा लक्ष्मी विलास रस (नारदीय) (२) श्वास कास चिन्ता मणि (३) त्रिभुवन कीर्ति रस (४) शृंग भस्म (५) कस्तूरी भैरव (६) तथा वातश्लेष्मान्तक रस

इन्हे उचित मात्रा मे मिला कर मधु के साथ दिन मे तीन मात्रा देवें।

मुख चूषनार्थ—(१) कर्पूरादि वटी (२) व्योषादि वटी (३) बनफसादि वटी।

शुष्क कास की अधिकता मे—(१) शृंग भस्म (२) अभ्रक भस्म (३) प्रवाल पिष्टि—इन्हे अडूसे के पत्ते, मुलहठी, बहेडा और सुहागे के फूले के साथ शहद में चटावें।

रोग की प्रबलता में—(१) सुतराज रस, (२) काल कूट रस, (३) सचेतनी वटी,

निद्रा नाश व प्रलाप आदि उपद्रव मे—(१) महा-वात गजांकुश रस, (२) कस्तूर्यादि वटी, (३) अभ्रक भस्म।

हृदयावरोध अधिक होने पर—(१) हिंगुलेश्वर रस, (२) पूर्ण चन्द्रोदय या त्रिलोक्य चिंतामणिरस अथवा रस सिन्दूर, (३) सितोपलादि चूर्ण के साथ दें।

चन्द्रामृत रस, कफकेतु रस, कृष्ण चतुर्मुख रस, कफ कुठाररस तालीसादी चूर्ण, सूर्य शेखर रस आदि भी लाभप्रद हैं। चिकित्सक उपर्युक्त योगो मे अपनी आव-श्यकतानुसार हेर फेर कर अवस्था, बलाबल के अनुसार उचित मात्रा में दे सकते हैं।

—श्री वैद्य नथमल शर्मा "कौशिक"
ग्राम बड़गाव तह० मेड़ता (राज)

दुष्ट या जीर्ण प्रतिश्याय चिकित्सा

१. (अ) सितादि चूर्ण १ माशा, मधुयष्टी चूर्ण आधा माशा या मधुयष्टी सत्व ३ रत्ती, यवक्षार ३ रत्ती, कलमी शोरा १ माशा मधु से, ऐसी तीन मात्रा दिन मे दें।

२ शुष्क कास मे (ब) एलादि वटी, श्रेष्ठादि वटी, व्योषादि वटी मे कोई सी एक चूसने को दें।

३. पीने को द्राक्षासव या द्राक्षारिष्ट या वासा-रिष्ट दें।

४ यदि खांसी तर है, कफ पतला निकलता है तो आनन्द भैरव रस २ रत्ती, टंकण भस्म २ रत्ती, गोदन्ती भस्म, तालीसादि चूर्ण २ माशा तथा सैंधव २ रत्ती मिला मधु से तीन बार दिन मे दें।

५ लक्ष्मी विलास रस, विषाण भस्म, गोदन्ती भस्म १॥-१॥ रत्ती आर्द्रक स्वरस, पानस्वरस ३-३ माशा को गर्मकर ठण्डा करके मधु से ३ बार दिन मे दें।

६. षड् बिन्दु तैल नाक मे ३-४ बूंद नित्य डालें।

७ दालचीनी को चन्दनवत पीस मस्तक पर लेप करें।

८ दोष पुराने होने पर—चित्रक हरीतकी अवलेह,

—शेषांश पृष्ठ ४४५ पर देखें

श्री डा० प्रकाश चन्द्र गगराडे

यह एक सक्रामक रोग होने के कारण इससे ग्रस्त बालक को अन्य बालको के सम्पर्क मे नही जाने देना चाहिए नही तो इस बीमारी को फैलने का मौका मिल सकता है। साधारणतया यह रोग ७ वर्ष से कम की आयु के बच्चो को होता है किंतु कभी कभी इसका आक्रमण बडो को भी हो सकता है। इसका कारणभूत जीवाणु हीमोफीलस पर्टुसिस (Haemophylus Pertussis) है। इसे बेसिलस पर्टुसिस भी कहते हैं।

लक्षण

कुकुरखासी का प्रारभ प्राय सामान्य सर्दी जुकाम से होता है। श्वसन मार्ग में प्रदाह से नाक से पानी बहता है। सामान्यत ऐसी अवस्था एक सप्ताह तक रहती है। कभी-कभी दो तीन दिन पश्चात् ही खाँसी के कठिन दौरे आना प्रारम्भ हो जाते हैं। इस समय शरीर में सुस्ती छाई रहती है, हल्का ज्वर भी रहता है। धीरे-धीरे खाँसी बढकर एक विशेष प्रकार की सुनाई देने लगती है, मानो कोई कुत्ता खास रहा हो। इस विशेष प्रकार की ध्वनि के कारण ही लोग इसे "कुकुर कास" के नाम से पुकारते है। यह ध्वनि साँस अन्दर लेते समय उत्पन्न होती है। जब इस खाँसी का दौरा पड़ता है उस समय बच्चे की हालत बडी दयनीय हो जाती है। बच्चा खासी को रोकने की कोशिश करता है, किंतु दौरा नही रुकता और सारा शरीर अकड सा जाता है। देखने वाले को लगता है मानो श्वास रुक जायेगा। इसी अवस्था में बडी तकलीफ के साथ सास लेने पर 'हूप' की आवाज उत्पन्न होती है। बच्चे का चेहरे लाल हो सकता है। आंख और नाक से पानी तथा मुँह से थूक मिला हुआ कफ निकलता है। कफ या वमन हो जाने के पश्चात् ही दौरा समाप्त हो जाता है और बच्चा राहत पाता है।

इस प्रकार के दौरे प्रारम्भ में २-४ बार प्रतिदिन आते हैं और कुछ दिनो के बाद प्रति घण्टे आधे घण्टे मे आ सकते हैं। रात्रिकाल में इनकी सख्या अधिक होती है। दौरा आने के पूर्व ही बच्चे को इसका आभास हो जाता है। खाँसी के दौरे के अन्त में वमन होना या कफ निकलकर राहत पाना कुकुर खाँसी का एक निश्चित लक्षण है। भोजन एव उत्तेजना से खाँसी आती है और दौरा प्रारम्भ हो जाता है। दो दौरो के मध्य बच्चा अपने को स्वस्थ समझता है। दौरे के डर के मारे बच्चा खाना कम खाता है। अतः भोजन व निद्रा की कमी के कारण बच्चे मे कमजोरी आ जाती है। इस रोग का सामान्यतः व्याधिकाल ३ से ४ सप्ताह माना गया है। उसके पूर्व इसे खत्म करना एक कठिन कार्य है।

निदान व भविष्य—इस खासी का स्वर विशेष प्रकार का होने के कारण आसानी से निदान किया जा सकता है। आसपास की बस्ती मे अन्य बच्चो का इस रोग से ग्रसित मिलना भी इसके निदान मे सहायक होता है। कफ या वमन पदार्थ में एच० पर्टुसिस जीवाणु का मिलना भी इसका निदान सुगम करता है। यह बच्चो को जितनी कम आयु मे होता है उतनी ही घातकता अधिक रहती है। कभी कभी श्वासावरोध के कारण मृत्यु भी हो सकती है। कुकुर खाँसी के पश्चात् कई उप-सर्ग उत्पन्न हो सकते हैं। उनमें ब्राको न्यूमोनियाँ, हर्निया, गुदाभ्रश, स्वरभग, उदरामय, मुह से खून आना आदि प्रधान हैं।

चिकित्सा

बच्चो को प्राय. रोने के बाद ही खाँसी का दौरा आता है अत. इस बात को ध्यान मे रखते हुए ऐसी कोशिश करनी चाहिए कि बच्चा रोने ही न पाये। बच्चे के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए ऐसे पाच्य भोज्य पदार्थ की व्यवस्था करनी चाहिए जो पौष्टिक भी हो। खाद्य पदार्थ देने का उचित समय दो दौरे के मध्य का होता है। इसलिए इस बात का पता लगा लेना

चाहिए कि एक दौरे के बाद दूसरा दौरा कितने समय पश्चात् आता है। दौरा आने के १०–१५ मिनट पश्चात् हलका पथ्य देना चाहिए जैसे—दूध, साबूदाना, बार्ली व फलों का रस इत्यादि जो कि दूसरे दौरे के आने के पूर्व ही पच जाना चाहिए। भरपेट भोजन की व्यवस्था एक ही बार में नहीं करनी चाहिए। बच्चे के द्वारा उत्पन्न कफ या वमन आदि को नष्ट करने की व्यवस्था करनी चाहिए। सक्रामक रोग होने के कारण अन्य बच्चों के सम्पर्क में इस बीमारी से ग्रसित बालक को नहीं आने देना चाहिए।

(१) अडूसे के पत्तों के १ तोला रस में छः माशा शहद मिलाकर सुबह शाम चटाने से प्रायः हर प्रकार की खाँसी में बहुत लाभ होता है।

(२) मघान, काली मिर्च एक एक तोला, जवाखार ६ माशा, अनार का छिलका दो तोला कूटकर बेर के बराबर गोली बनावें। खाँसी जिसमें दम फूल जाय, कुकुर खाँसी में एक एक गोली मुह में रख कर चूसने से लाभ होता है।

(३) केले के पत्तों को सुखाकर (छाया में) मिट्टी के बर्तन में कंडों में जलाकर भस्म बनायें। एक रत्ती की मात्रा में शहद या मलाई में मिलाकर तीन चार बार चटावें।

(४) मुलहठी घन सत्व का प्रयोग भी इस रोग में लाभदायक पाया गया है।

(५) श्री ज्वाला आयु भवन, मामू भाजा रोड, अलीगढ द्वारा निर्मित ज्वाला बाल घुट्टी का सेवन कराने से यह बालकों के लिये संजीवनी का काम करती है। इसके सेवन से बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है। कुकुर खासी के इलाज के साथ-साथ इसे भी सेवन कराने से अधिक लाभ मिलता है।

(६) कासनाशी—हर प्रकार की हर खासी को दूर करने वाली, एक अनुभूत एव प्रशसित अद्वितीय औषधि है। यह महत्वपूर्ण आयुर्वेदिक द्रव्यों से निर्मित होती है।

(७) श्वासहारी कैपसूल अल्प मात्रा में शहद मे चटाने से लाभ होता है।

(८) सितोपलादि चूर्ण ४ रत्ती, प्रवाल भस्म २ रत्ती प्रात साय शहद से या कासनाशी से चटायें।

(९) मक्के के भुट्टे की ठूंठ को जलाकर नमक और यमानी सत्व १/१६ भाग मिलाकर उचित भाग में दिन में २-३ बार मधु से चटाने से बहुत लाभ होता है।

(१०) कुक्कर कासहर मिश्रण—प्रवाल पिष्टी और शृंग भस्म १०-१० तोले, गोदन्ती भस्म, वसलोचन और गिलोय सत्व ५-५ तोले, छोटी इलायची के बीज २॥ तोले लेवें। पहले वशलोचन और छोटी इलायची के दानों को अच्छी तरह खरल कर एक जीव कर लें। फिर शेष औषधियों को मिलाकर खरल कर लें। १ से २ रत्ती दिन में ३ या ४ बार बनफशा के शर्बत या शहद के साथ देवें।

(११) इफेड्रेक्स (Ephedrex), क्लोरोमाइसेटीन पामीटेड विथ विटामिन बी कम्पलेक्स, जेफ्रोल सीरप, सीरप पर्टुसिम, सिन्थोमाइसेटीन सीरप, हुपको-इत्यादि पेटेन्ट योगों को मात्रानुसार देने से कुकुर कास नष्ट हो जाती है।

(१२) पर्टुसिस मिक्सड वैक्सीन, हूपिंग कफ-वैक्सीन का उपयोग बहुत लाभकारी है। पहले १/४ सी. सी., दूसरे दिन १/२ सी. सी. मांस में तथा बाद मे १ सी. सी. हर तीसरे दिन देवें।

—डा० श्री प्रकाश चन्द्र गगराडे,
बी एस. सी , डी. एच. बी , विद्या रत्न
१०/३३ नार्थ टी. टी. नगर, भोपाल (म प्र)

चेचक — एक भयानक संक्रामक रोग

श्री वैद्य पं. गोपाल जी द्विवेदी

यह प्राण लेवा रूपनाशक सक्रामक बीमारी जो वायरस नामक (अति सूक्ष्म जीवाणु) से फैलती है। व्यक्ति में चेचक से बचने की प्राकृतिक अवरोध शक्ति नही होती। अत इस रोग की सामान्य जानकारी जनसाधारण को रखना जरूरी है, बहनो के लिए तो और भी आवश्यक है क्योकि उन पर ही बच्चों एव परिवार की देख-रेख का भार होता है। यह बीमारी दूषित आहार, अम्ल, लवण, क्षार आदि विरुद्ध आहार से होती है। सार्वजनिक रूप मे दूषित पेय जल वायु ऋतु परिवर्तन ऋतु विकृति एव सक्रमण द्वारा इसका प्रकोप होता है। चूंकि वसन्त ऋतु में चेचक अधिक होती है, अत इसे वासन्तिक रोग भी कहते हैं।

सामान्य लक्षण

ज्वर के तीव्र वेग के साथ दाह, प्यास, शिर शूल आदि होता है, चेहरा तमतमाया सा होता है। दो या तीन दिन में ही सारे शरीर विशेष कर मुख मण्डल पर दाने निकल आते हैं। दाने मसूर के दाने के समान होवे से मसूरिका कहते हैं। रोमान्तिका की अपेक्षा इसमे अधिक कष्ट और उपद्रव होते हैं। यदि दाने बडे-बडे फफोलो के के रूप मे हो तो उसे विस्फोटक या बडी माता कहते हैं। अन्यान्य उपद्रवो के साथ ही यह रोग यदि उग्र हुआ और उचित चिकित्सा न हुई तो दाने मुख के भीतर, गला और आंख आदि के भीतर हो जाते हैं। आख मे दाना पड कर फुल्ली उत्पन्न कर देता है, और चेहरे पर दाग डाल देता है।

सामान्य चिकित्सा

इसमें उष्ण अहृद्य और दूषित औषधिया तथा गदगी बहुत हानिकारक होती है। इन सारी परिस्थितियो का विचार कर इनकी भावनाओ के अनुकूल आयुर्वेद मे अपेक्षित औषधियाँ उपलब्ध है। जैसे गुलाब जल, चन्दन कपूर, निम्बपत्र, घी आदि सभी पवित्र एव हृद्य हैं।
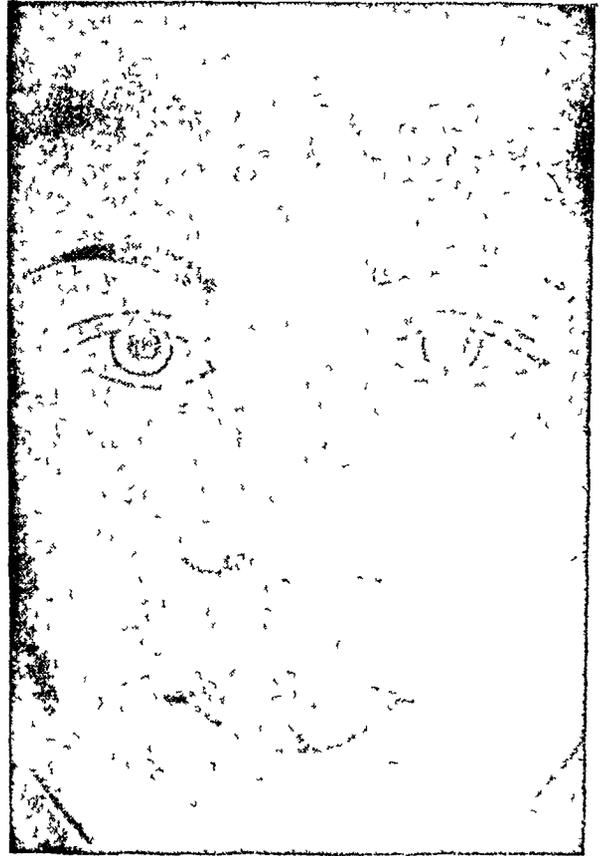
चेहरे के दाहिने भाग में चेचक की पिडिका में निकने के दूसरे दिन की अवस्था, तथा बायें भाग में छठे दिन की अवस्था दिखाई है।

आँख, कान, हृदय और मस्तिष्क की सुरक्षा पर ध्यान देना और जरूरी है। आख में गुलाबजल प्रतिदिन तीन चार बार डालें, कानो मे गुलाब का चन्दन का इत्र

दो वार डालें। मस्तिष्क और छाती पर पुराना घृत एक दो वार अवश्य मलें। घृत में कपूर भी मिला रहे तो अति उत्तम।

चेचक मे ज्वर का सामान्य क्रम

नीम के कोमल पत्तों से रोगी की हवा करें। रोगी की शय्या पर व चारो ओर निम्ब पत्र या सुगन्धित पुष्प रक्खें। कमरे को स्वच्छ रखें तथा फर्श को कपूर वासित जल से एक दो वार अवश्य धो दें।

रोगी को दाह प्यास अधिक लगे तो लाल चन्दन पानी के साथ घिसकर पिलावें। निम्ब पत्र स्वरस में मिश्री मिलाकर देने से लाभ मिलता है। वासी जल मधु मिला कर भी रोगी को ऐसे समय विशेष लाभप्रद होता है। कास, श्वास हो जाय तो शीतोपचार बन्द कर दें और छाती पर पुराण घृत का मर्दन चालू रक्खें।

आख, कान, नाक, मुख के अलावा अन्य स्थानों मे दाने अधिक निकलें तो उत्तम है। इससे योग्य वैद्य से राय लेकर "भैषज्य-रत्नावली" का निम्बादि क्वाथ (निम्बछाल, पित्त पापडा, पाढ, परवल की पत्ती, कुटकी, अडूसा की छाल, यवासा, आवला, खस लाल चन्दन और सफेद चन्दन) का प्रयोग शक्कर डालकर दिन मे दो बार करें। स्वर्ण माक्षिक भस्म १ रत्ती की मात्रा में कचनार की छाल के क्वाथ से ३, ४ वार देने से दाने अधिक निकल आते हैं।

दानों में पानी पड़ने लगें तो रोगी के विस्तरे पर उपलों की स्वच्छ राख विछावें। दानो या शरीर के किसी अंग को धोने की आवश्यकता हो तो कपूरयुक्त निम्ब पत्र क्वाथ से धोयें
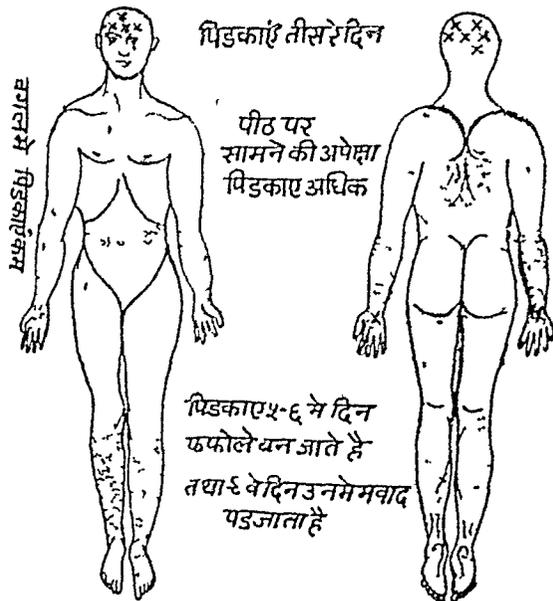
चेचक की पिडिकाओ तथा स्थलो के निकालने का क्रम तथा विभिन्न भागों मे उनकी स्थिति

मुह मे दाना हो जाने पर खैर सार के काढे या फिटकरी गर्म जल मे मिलाकर कुल्ला करावें और गीला कत्था लगावें। आंख मे यदि दाने पड जाय तो गुलाब जल छोडते रहे। दाने सूखने लगें तो उनके छिलको से अत्यन्त सावधान रहे। इन्ही से रोग का संक्रामण होता है। इन्हे जला दें। मुख और सर्वांग मे दाग पडने का भय रहता है। इनमे गधी का दूध मलने से दाग मिट जाता है, इसके अभाव मे छिले मसूर और खरबूजा के बीज का उबटन करें। नागरमोथा से खौलाये हुए जल से मुह धोवें।

शीतला के जनपदव्यापी प्रसार की सम्भावना मे निम्ब के बीज, रुद्राक्ष और हल्दी का सममाग चूर्ण १ माशा की मात्रा मे प्रात साय, शीतल जल से १ सप्ताह तक लेने से शीतला (चेचक) के प्रकोप की सम्भावना नही रहती और होने पर प्रकोप कम कम होता है। गधी का दूध पीने से रोग नही होता।

स्कन्द पुराण के अनुसार गधा पर आरुढ शीतला देवी की आराधना भी भारतीय जनता मे प्रचलित है

इसका भी वैज्ञानिक रहस्य है, जो आप जान गये होगे। गधे मे शीतला का प्रकोप नही होता।

मसूरिका मे औषधि चिकित्सा—

विशेष उपद्रव मे दोषानुसार चिकित्सा करें। संक्रमण से बचने के लिए टीका लगवाना विशेष जरूरी है। टीका ३ मास की आयु से १ साल के बच्चो को भी लगवा देना चाहिये।

आयुर्वेद की निम्न औषधियो से लाभ मिलता है—

इन्दुकला वटी १ रत्ती तुलसीपत्र रस से, दुर्लभ रस १ रत्ती असमान घृत मधु से, सर्व तो भद्र रस १ रत्ती अनुपान दोषानुसार। हृदय को बल देने और दाह को कम के लिए मुक्ता पिष्टी १/२ रत्ती या अभाव में प्रवाल भस्म २ रत्ती देने से बड़ा लाभ मिलता है।

१. बसन्तसुन्दर रस—स्वर्णमाक्षिक भस्म, रौप्य भस्म, अभ्रक भस्म, बसलोचन और सोंठ इन ५ औषधियो को सममाग मिला ३ दिन सिरस के क्वाथ की भावना देकर १/२ रत्ती गोलियां बनावें। १-१ गोली दिन मे २-३ बार दूध से देवें।

२. शीतलाशामक वटी—ब्राह्मी, काली मिर्च, हंसराज तुलसी के पान २-२ तोले, गोरोचन ३ माशा लेकर सबको मिला तुलसी के रस में १२ घण्टे खरल कर आधी-आधी रत्ती की गोलिया बनावें। १ से २ गोली ४-४ घण्टे पर तुलसी के रस के साथ देवें।(र० सा० सि० स०)

३ गोरोचन मिश्रण—गोरोचन १ तोला, प्रवाल पिष्टी, शृंग भस्म और अमृतासत्व २-२ तोले तथा सोना गेरू ३ माशे लेकर सबको मिलाकर खरल मे घोटलें। १ से ३ रत्ती दिन में ३ बार शहद या तुलसी के रस के साथ दें।

४. मसूरिकान्तक रस, इन्दुकलावटी, मसूरिकान्तक वटिका का उपयोग सद्यलाभदायक है। इनके विषय में रसतन्त्र सार व सिद्ध प्रयोग संग्रह भाग देखना चाहिए।

५ ओरियोमाइसीन, क्लोरोमाइसेटीन के कैपसूल, पेनिसिलीन के इन्जेक्शन (साथ मे विटामिन सी आदि) देने से रोग शांत हो जाता है।

६. त्वचा पर चन्दन का तेल या पेनिसिलीन की मरहम लगानी चाहिए।

७. श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन द्वारा निर्मित चेचकावरोध कैपसूल यथाविधि सेवन कराने से चेचक होने का भय नही रहता तथा निकलने पर अधिक प्रकोप नही होता।

—श्री वैद्य प० गोपालजी द्विवेदी
चिकित्साधिकारी-जिला परिषद आयुर्वेदिक औषधालय
नरहनकलाँ पो० मैढ़ी (चन्दौली)
जिला वाराणसी (उ० प्र०)

दुष्ट या जीर्ण प्रतिश्याय चिकित्सा : पृष्ठ ४४० का शेपांश

वासावलेह, कण्टकारी अवलेह, च्यवनप्राश अवलेह, रुदन्ती फल चूर्ण तथा लघु मालती वसन्त युक्त के साथ दो बार दिन में उष्ण जल, दूध मधु मिश्रित करके दें।

९ धूम्रपान—यदि बीडी सिगरेट पीते हैं तो उसकी जगह पर अजमोद, खस, विजयापत्र मिलाकर बीडी या चिलम में भरकर पीवें।

१०. शृंग भस्म ६ रत्ती, अभ्रक भस्म १ रत्ती, महालक्ष्मी विलास रस १ रत्ती की १ मात्रा बनाकर दिन मे तीन बार दें।

११ मृत्युन्जय रस १ रत्ती, सौभाग्य वटी २ रत्ती, रत्नागिरी रस आधा रत्ती की १-१ मात्रा मधु व आर्द्रक स्वरस से दिन मे ३ बार दें।

१२. सौभाग्य वटी ३ टिकिया, व्योषादि वटी ३ टिकिया, नरसार १ माशा की ३ मात्रा बनावे तथा दिन में ३ बार लें।

१३. प्रोकेन पेनिसिलीन, डाइक्रेस्टीसिन, टेरामाइसीन, ओम्नेसिलीन के इन्जेक्शन शीघ्र लाभकारी है।

१४. नोवालजीन, एण्टीफ्लू, पेटेण्ट सल्फा इत्यादि गोलियाँ, टेरामाइसीन, एक्रोमाइसीन के कैपसूल भी इन्जेक्शन के साथ प्रयोग करें। शीघ्र लाभ होता है।

—वि वाचस्पति श्री डा० आर वी द्विवेदी
वैद्य A S V, बी एन. एस.
जसराना पो० सामनी (अलीगढ़)

श्री डा० दाऊदयाल गर्ग, आयु० बृह: ए० एम० बी० एस०
सम्पादक 'धन्वन्तरि'

कारण

इसका कारण एक बहुत सूक्ष्म जीवाणु (Virus) होता है। यह जीवाणु रोगी की नासिका से होने वाले स्राव मे तथा रक्त में प्राप्त होता है। जिन रोगियो को इस रोग के प्रसित होने पर मस्तिष्क शोथ (Encephalitis) भी हो गया हो उनके मस्तिष्क में भी यह जीवाणु पाया जाता है। इस जीवाणु का प्रसार रोगी की नासिका से होने वाले स्राव तथा खाँसी के पश्चात् आने वाले थूक से होता है। रोगी खसरा के दाने निकलने से एक सप्ताह तक सक्रमणशील रहता है। अत बच्चो को इस बीच रोगी से दूर रखना चाहिये। खसरा के रोगी मे प्राय स्ट्रेप्टोकोकाई तथा न्यूमोकोकाई नामक कीटाणु का सक्रमण हो जाता है जिसके कारण अनेक उपद्रव उठ खड़े होते हैं। खसरा के एक बार हो जाने पर रोगी मे इसके प्रति जीवनपर्यन्त रोगक्षमता उत्पन्न हो जाती है। ३ मास से ५ मास के बच्चे में यह रोग अधिक होता है।

लक्षण

लघु-मसूरिका का सप्राप्तिकाल (Incubation period) ७ से १४ दिन है और प्राय. लक्षण- सप्राप्तिकाल की समाप्ति पर ही होते है। कभी कभी सक्रमण होने के कुछ घण्टे पश्चात् कुछ ठड सी लगती है। त्वचा में कुछ शोथ तथा नेत्रो मे लाली हो जाती हैं।[1]

पिडिका निकलने से पूर्व के लक्षण— यह लक्षण प्राय पिडिका निकलने से ४ दिन पूर्व से प्रारम्भ होते हैं। प्रारम्भ में आख तथा नाक से पानी निकलता है, छींक अधिक आती हैं, खाँसी तथा गले में खरास हो जाती हैं, आखें लाल हो जाती है, तापक्रम प्रथम दिन ही १०२ या १०३ डिग्री हो जाता है। टासिल बढ जाते हैं, उनमे दर्द होता है तथा कभी कभी उनमे स्राव भी निकलता है। कभी कभी बच्चे को ज्वर अधिक नहीं होता और उस समय लक्षण साधारण प्रतिश्याय जैसे होते है।
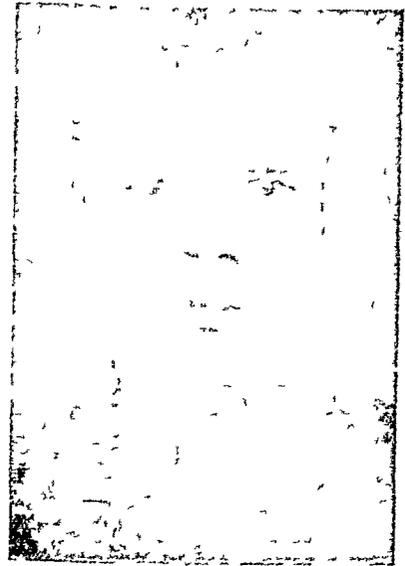
प्रारम्भिक लक्षणो के तीन दिन पश्चात् मुह के अन्दर की श्लेष्मिककला पर चर्वणक (Molar) दन्तो के सम्मुख जहा पर कि कर्णमूलिक लालाग्रन्थि की नलिका आकर खुलती हैं उसके चारो ओर छोटे छोटे दाने से दिखाई देते है जो कि कापिलिक के स्पोट्स (Koplic's spots) के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह कृत्रिम प्रकाश की अपेक्षा दिन के प्रकाश में आसानी से दिखाई देते हैं तथा किसी एक ओर के गाल पर दूसरे की अपेक्षा अधिक होते

---

[1] तासा पूर्व ज्वर. कण्डूर्गात्रभङ्गोरतिर्भ्रमः।
त्वचि शोथ सवैवर्ण्यो नेत्ररागश्च जायते ॥

है। यह पिन की नोक के बराबर होते हैं तथा प्रत्येक के चारो ओर लालिमा होती है। यह रगडने से मिटते नहीं हैं। कापलिक के स्पोट्स ६० प्रतिशत रोगियो में मिलते हैं अत. मसूरिका (खसरा) का सदेह होने पर यह अवश्य देखे जाने चाहिए।

रोगी की जिह्वा पर मैल जमा होता है। बच्चा देखने पर बहुत दयनीय लगता है। प्रकाश में आंखें कठिनाई से खोल पाता है।

पिडिका निकलने के पश्चात् लक्षण—प्रारम्भिक लक्षण प्रारम्भ होने पर प्राय तीन दिन पश्चात् या कभी कभी ४ दिन पश्चात् पिडिकायें निकलती हैं। प्रारम्भ में पिडिकायें कान के पीछे, शङ्ख प्रदेश, गर्दन तथा सामने मस्तिष्क पर बालो के पास निकलती हैं। कुछ घण्टो में पिडिकायें पूरे चेहरे पर निकल आती हैं। (देखें चित्र) तथा २४ घण्टे के अन्दर यह पिडिकायें सम्पूर्ण शरीर पर निकल आती हैं। (देखें चित्र नम्बर ६८) सर्वाधिक पिडिकायें प्रारम्भ मे एक लाल सा धब्बा जैसा होता है तथा थोड़ी देर में ही यह धब्बे ददोरो का रूप धारण कर लेते हैं। ददोरो वाली त्वचा को यदि उगली से दबाया जाय तो त्वचा की लालिमा गायब हो जाती है तथा दो ददोरो के बीच सफेदी आ जाती है। लेकिन दबाव हटाने पर फिर पहले जैसा रग आ जाता है। ऊपर हमने जो कापलिक के स्पोट्स बताये हैं, वह शरीर पर पिडिकाओ की निकासी के साथ साथ समाप्त हो जाते है।

पिडिका निकलने के २ से ५ दिन के अन्दर अन्दर पिडिकायें गायब होनी प्रारम्भ हो जाती हैं। जिस स्थान पर पिडका सबसे पहले निकलती हैं उस स्थान की पिडिकायें सबसे पहले गायब होती हैं तथा देर से निकलने वाले स्थान की पिडिकायें बाद मे गायब होती हैं। पिडिकायें समाप्त हो चुकने पर भी त्वचा मे कुछ लालिमा रह जाती है। जब पिडिकायें गायब होना प्रारम्भ होती हैं तो देह से बहुत हल्के-हल्के पर्त से झरते हैं।

पिडिकायें निकलने के साथ साथ रोगी के तापक्रम में १ या २ डिग्री की वृद्धि होती है तथा यह वृद्धि दो या तीन दिन तक रहती है। रोगी के पिडिका निकलने के बाद २ या ३ दिन सबसे अधिक तकलीफ रहती है। पिडिका समाप्त होना प्रारम्भ होने पर रोगी का तापक्रम एकदम कम हो जाता है। यह तापक्रम प्राय: प्रारम्भिक लक्षण प्रारम्भ होने के छठे, सातवें या आठवें दिन कम होता है तथा साथ ही रोगी के अन्य लक्षण (तकलीफ) भी कम हो जाते हैं।
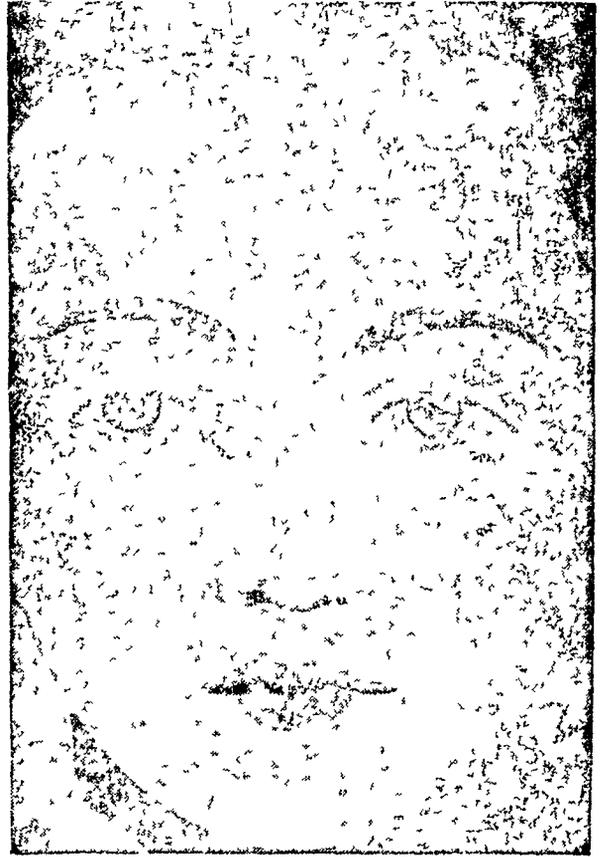
पिडिकाए निकलने के १८ घण्टे पश्चात् का चित्र
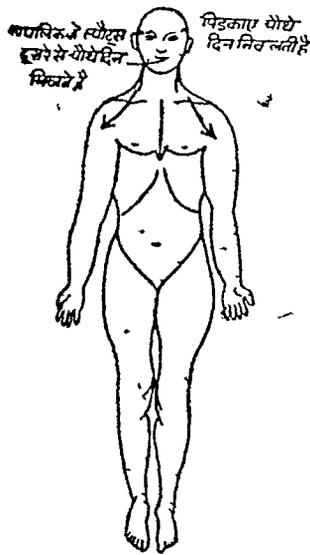
खसरा में पिडिकाओ के निकलने की स्थिति का चित्र
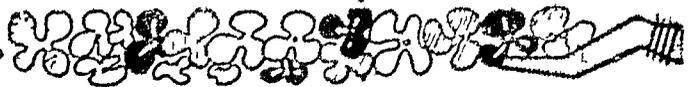
खसरा के प्रकार—

(१) साधारण—इसमें लक्षण बहुत अल्प होते हैं। कभी कभी टीका लगवाने के पश्चात् भी खसरा हो जाता है। ऐसी मसूरिका (खसरा) में लक्षण अल्प होते हैं। तीन माह से कम के बच्चों को खसरा नहीं होता है तथा ४ माह से कम के बच्चों को खसरा होने पर उसमें अल्प लक्षण होते हैं। इस साधारण प्रकार में तापक्रम की वृद्धि २४ घण्टे से अधिक के लिये नहीं होती है, कापलिक के स्पोट्स नहीं मिलते हैं, पिडिकायें थोड़ी दूर दूर तथा कम लालिमायुक्त निकलती हैं। इस प्रकार में उपद्रव भी नहीं होते हैं।

(२) तीव्र प्रकार—सौभाग्यवश यह प्रकार कम ही मिलता है। यह बहुत घातक होता है। प्रत्येक लक्षण इस प्रकार में अपनी तीव्रावस्था में पाया जाता है। पिडिकाओं में रक्तस्राव हो जाता है। इस प्रकार की मसूरिका (खसरा) से ग्रसित बच्चे की प्राय मृत्यु हो जाती है। पिडिकायें प्राय कम निकलती हैं लेकिन विषमयता बहुत अधिक होती है।

(३) फुफ्फुसीय प्रकार—प्रथम बच्चे को वात श्लैष्मिक ज्वर (Pneumonia) होता है तथा ज्वर के मध्यकाल में इसका भी सक्रमण पहुंच जाने पर बाद में खसरा हो जाता है। खसरा का यह प्रकार प्रथम प्रकार की अपेक्षा अधिक तथा द्वितीय प्रकार की अपेक्षा कम घातक है।

उपद्रव—

(१) खसरा के रोगी को सर्वाधिक होने वाला उपद्रव वात-श्लेष्म ज्वर है। (२) स्वर-यन्त्र शोथ, तथा बहुत कम अवस्थाओं में स्वर-यन्त्र का आक्षेप (Laryngitis or Laryngismus) या स्वर यन्त्र रोहिणी (Laryngeal diphtheria) (३) तीव्र मध्य कर्ण शोथ (Acute Otitis Media) (४) नेत्राभिष्यन्द, कनीनिका पर व्रण या उसमें छिद्र हो जाना (Corneal ulcer or perforation) (५) तीव्र आन्त्रशोथ (६) मस्तिष्क-शोथ (Encephalitis) यह प्राय मसूरिका का ज्वर उतर जाने के पश्चात् होता है। बच्चे को यकायक आक्षेप आने लगते है।

आयुर्वेद में निम्न उपद्रव बताये हैं—

मसूरिकान्ते शोथः स्यात् कूर्परे मणिबन्धके।
तथांसफलके चापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः॥

चिकित्सा—

(१) प्रतिषेधात्मक—५ वर्ष से कम उम्र के तथा कमजोर बच्चों में विशेष सावधानी रखने की आवश्यकता है। रोगी बच्चे को पिडिकायें निकलने के दिन से चौदहवें दिन तक अन्य बच्चों में विशेषत. ५ वर्ष से कम उम्र के बच्चों में नहीं मिलने देना चाहिए।

कनवेलसेंट सीरम (Convalescent serum)—यह ५ सी. सी. की मात्रा में ५ वर्ष तक के बच्चे को मांसान्तर्गत
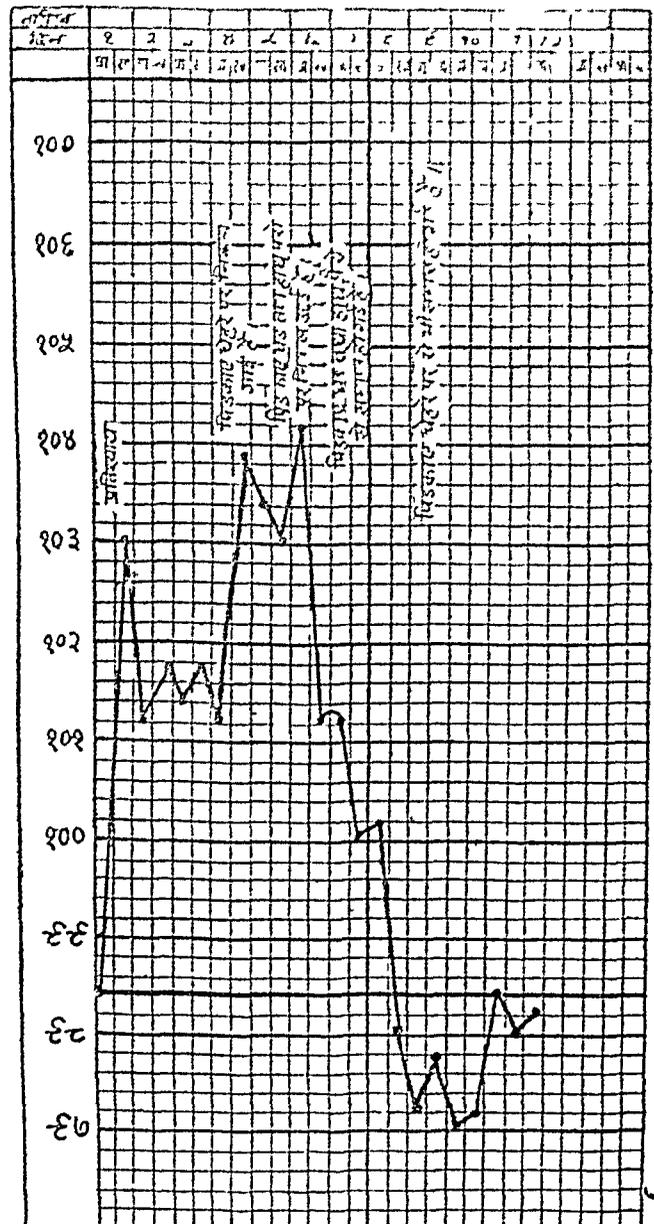
खसरा का तापमान चार्ट

(intramuscular) लघु मसुरिका के फैलने पर प्रतिरोध के लिये दिया जाता है।

(२) औषधि चिकित्सा–रोगी को चारपाई मे आराम करना चाहिए तथा ज्वर उतरने के दो दिन पश्चात् तक उसे चारपाई मे ही रहना चाहिए। कमरे का तापक्रम ६० से ६५ डिग्री रहना चाहिए। रोगी का मुंह उधर की ओर नही रखना चाहिए जिधर से प्रकाश आ रहा हो, क्योकि इससे रोगी को चकाचौंध सा रहता है तथा उसे विशेष परेशानी महसूस होती है। जिस कमरे में रोगी रहे उसमे वायु खूब आनी जानी चाहिये लेकिन रोगी के शरीर पर सीधी वायु न लगे। यदि रोगी को उपद्रवस्वरूप वातश्लेष्म ज्वर हो गया हो तो कमरे के वायु मण्डल मे कुछ नमी रहनी चाहिये और इसके लिए अगीठी पर पानी को उबलता रहने दें। यदि रोगी को ज्वर अधिक हो अथवा उसे बेचैनी अधिक हो तो दिन में एक या दो बार उसका शरीर गीले तौलिये से पोछवा दे। यदि पिडिकायें ठीक प्रकार से न निकली हो तो रोगी के शरीर पर रबड की गरम पानी की थैली मे गरम पानी भर कर सेक करना चाहिए। आखो को बोरिक एसिड के घोल से दिन मे ३-४ बार धोकर पलको में अन्दर बैसलीन लगा देनी चाहिए।

रोगी की आवश्यकतानुसार सल्फाडाइजीन का प्रयोग करें। प्रोकेन पैन्सलीन का ४ लाख यूनिट का मासान्तर्गत सूचीवेध प्रतिदिन एक बार तथा यदि आवश्यकता समझें तो दो बार करें। तीव्र मध्य-कर्ण शोथ उत्पन्न होने से रोकने के लिये या उत्पन्न होने पर कान में पैन्सलीन घोल (१ सी. सी. में १००० यूनिट) की बूंदे प्रति ४ घटे बाद डालें, यदि तीव्र मस्तिष्क शोथ हो गया हो तो कटि वेधन (Lumber Puncture) करना चाहिए।

रोगी को चाहिए कि वह ऊचे, प्रशस्त तथा शुष्क गृह में रहे और भारी एव गरम वस्त्रो को पहिने। शीतल वायु, शीतल जल, आग सेकना, आतप सेवन, मैथुन, दिन मे सोना, अधिक चलना फिरना, रात्रि जागरण–इनका त्याग करना चाहिए।

खदिर काष्ठ, त्रिफला, नीम की छाल, पटोल पत्र, गिलोय, अडूसाछाल— इनका क्वाथ रोमान्तिका, मसूरिका, कुष्ठ, विसर्प तथा कण्डू आदि को नष्ट करता है। इसे "खदिराष्टक" कहते हैं।

ऊपणा चूर्ण (भै र.) १ माशा की मात्रा में उष्ण जल से प्रात. साय सेवन कराये। इसके सेवन से विस्फोट, लोहित ज्वर, रोमातिका, खसरा तथा जीर्णज्वर नष्ट होता है।

सर्वतोभद्र रस, दुर्लभ रस या इन्द्रकला वटिका इनमे से किसी एक को १ रत्ती प्रात साय शहद से चटाये। छोटे बच्चे को कम मात्रा दे। सजीवनी वटी, लक्ष्मीविलास रस, महालक्ष्मीविलास रस, लघुमालती बसन्त यह योग भी मसूरिका मे उत्तम कार्य करते है।

पथ्य—पुराने साठी एव शालि चावल, मूग, मसूर, जौ, परवल, करेला, पुनर्नवा, केला, अगूर, अनार पथ्य है।

अपथ्य–मैथुन, स्वेदन, परिश्रम, तैल से बने पदार्थ, भारी भोजन, मटर, आलू, नमक, पत्र शाक।

—श्री दाऊदयाल गर्ग ए., एम बी. एस., आयु वृह
सम्पादक 'धन्वन्तरि'
अलीगढ़
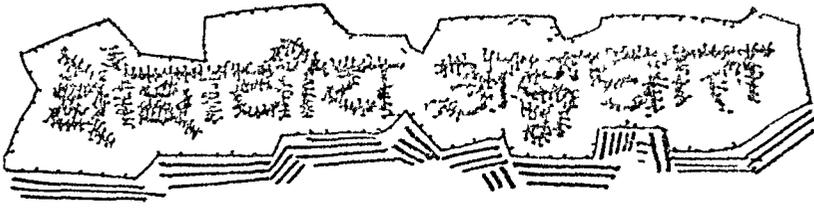
पर्याय—तीव्र पूर्व पलितमज्जाशोथ (Acute anterior poliomyelitis, Infantile paralysis)

बालकों में होने वाला यह एक औपसर्गिक तीव्र रोग है जिसमें मुख्यतया सुषुम्ना के धूसर भाग स्थित पूर्व श्रृङ्गों का शोथ होता है जिसके कारण शरीर के एक वा अनेक पेशिसमूहों का घात होता है।

हैतुकी—इस रोग का प्रधान कारण विषाणु है जो सूक्ष्मतम विषाणुओं में से एक है और इसका व्यास ८-१२ सिणु (Millimicrons) है।

रोग का प्रसार—रोग के विषाणु वाहकों और रोगियों के नासामार्ग और तुण्डिकाओं में वास करके बढ़ते हैं और बिन्दूत्क्षेपों द्वारा बाहर निकलते हैं। इनका दूसरा स्थान आन्त्र है और वहाँ से ये मल के साथ बाहर निकलते हैं।

प्रतिबन्धन—रोगी को रोग के प्रारम्भ से ६ सप्ताह तक तथा रोगी से सबन्धित व्यक्तियों को ३ सप्ताह तक अलग रखना चाहिए। खाद्यपेयों से तथा बिन्दूत्क्षेप से फैलने वाले रोगों की दृष्टि से जो सावधानियां रखनी पड़ती हैं वे रक्खी जाय।

सन्निवृत्त लसिका—मरक के समय रोग प्रतिबन्धन के लिए तथा रोगी के सम्पर्क में आये हुए व्यक्तियों में रोग न होने पावे इसलिए इसकी १० घ० शि० मा० (सी० सी०) की मात्रा त्वचा द्वारा दी जाती है। यदि १ मास में मरक बन्द न हो तो दूसरी बार उतनी ही मात्रा देनी चाहिए।

शैशवीय अंगघात की चिकित्सा—(१) शुद्ध कारस्कर चूर्ण १ भाग, सूतशेखर रस ४ भाग, कासतरू रस ४ भाग, मुक्ताप्रवाल पचामृत ४ भाग, तण्डुल चूर्ण ४ भाग सबको एकत्र खरल में लेकर ६ से १२ घण्टा तक पीसकर बोतल में भरलें। २ से ४ रत्ती मधु के साथ दिनमें ३-४ बार दें।

(२) दशमूलारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट, रेरिकाल (Rericol), फेकाल आदि औषधियाँ देना चाहिये।

मस्तिष्क-सुषुम्ना ज्वर

पर्याय—Cerebrospinal fever, गर्दनतोड़ बुखार।

मस्तिष्कगोलाणु के उपसर्ग से होने वाला यह एक सक्रामक रोग है जिसमें मस्तिष्क तथा सुषुम्ना के आवरणों में शोथ उत्पन्न होकर पीडायुक्त पेशीस्तम्भ, ज्वर, त्वचा पर विस्फोट इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस रोग का प्रधान कारण मस्तिष्कगोलाणु (Meningococcus, Neisseria meningitidis) है।

सहायक कारण—(१) जलवायु—शीतकटिबन्ध के देशों में यह रोग शीतकाल में हुआ करता है। भारत में वसन्त और ग्रीष्म (मार्च, एप्रिल) में अधिक हुआ करता है, और वह भी स्थानपदिक और स्थानाश्रित होता है।

(२) जन सम्बाधता (Crowding)—बिन्दूत्क्षेपों से फैलने वाला रोग होने के कारण जहाँ भीड़-भाड़ अधिक होती है वहाँ पर रोग अधिक होता है।

(३) लिंग और आयु—स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो में यह अधिक होता है। इसकी ग्रहणशीलता बाल्य, विवर्धमान और तरुण अवस्था में अधिक होती है। प्रथम वर्ष में यह रोग सबसे अधिक होता है। उसके पश्चात् १५ वर्ष तक बराबर कम होता जाता है, १५-२५ तक स्थिर रहता है, ३५ वर्ष पर फिर घटता है और ५१ पर बहुत अधिक घटता है।

मस्तिष्क-सुषुम्ना ज्वर चिकित्सा—

(१) पीडा के स्थान पर राई का प्लास्टर लगावें या निर्गुण्डी के पत्तो का सेक देवें।

(२) लहसुन के सत्व का इन्जेक्शन लगावें।

(३) गर्दन अकड़ने पर वृहद योगराज गूगल १ माशा, ४ तोले एरण्ड तैल तथा थोडा दूध मिलाकर पिलावे।

(४) सूतराज रस या मृत्युञ्जय रस २-२ रत्ती दशमूल क्वाथ से पिलावें।

(५) आक्षेप होने पर कृमिमुद्गर रस या महावातविध्वसन रस २-२ रत्ती देवें।

(६) एल्कोसिन, एम. बी ६९३, सल्फाडायजिन, सोबाजोल-इत्यादि गोलिया, ओरियोमाइसनि, टेरामाइसिन इत्यादि के कैपसूल दें।

कर्णमूलिक शोथ

पर्याय—हप्पु, औपसर्गिक कर्णमूलिक शोथ (Mumps), कनफेड

व्याख्या—यह एक औपसर्गिक रोग है जिसमें कर्णमूलिक लालाग्रन्थियो का शोथ होता है, ज्वरादि सार्वदहिक सौम्य लक्षण होते हैं और पुरुषो मे वृषणो में शोथ उत्पन्न होने की प्रवृत्ति होती है।

हेतु—यह रोग शहरो में तथा घनी बस्तियो में वसन्त और शरद् ऋतु में होता है। ५-२५ उम्र के बालक और नोजवान इससे अधिक, शिशु और बूढे कम पीडित होते हैं। स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो में अधिक होता है। इसका उपसर्ग अधिकतर पाठशाला, छात्रालय, जेल इत्यादि स्थानो मे शुरू होता है और प्राय वहीं मर्यादित रहता है। इसका कारण एक विषाणु है।

सक्रमण—रोग प्रकट होने से पहले कुछ दिन रोग के कारणभूत विषाणु रोगी की लाला मे उपस्थित रहते हैं जो खांसते छीकते समय हवा मे लाला कणो के साथ उडकर समीपस्थ मनुष्य पर आक्रमण करते हैं। क्वचित् लालादूषित पदार्थो से भी इसका संवहन हो सकता है।

प्रतिषेध—रोग के प्रारम्भ से रोगी को हवादार कमरे मे गले की सूजन पूर्णतया बैठ जाने के बाद एक सप्ताह तक पृथक् रखना चाहिए। रोगी के साथ सम्बन्ध में आये हुए लोगो को अगर वे पहले इससे पीडित न हुए हो तो चार सप्ताह तक अलग रखना चाहिए। उपसर्गनाशक द्रव्य से मुख की सफाई रखनी चाहिए। रोग निवृत्त की लसिका प्रतिबन्धनार्थ लाभप्रद होती है।

चिकित्सा—

(१) धत्तूरमूल २ तोला, सेंधानमक ४ रत्ती को जल के साथ पीस किंचित गरमकर दिन मे ३-४ बार शोथ पर लगावें। शोथ नष्ट होता है।

(२) मैनसिल, कूठ, हल्दी, हरताल, देवदारु सब समभाग लेकर जल के साथ पीस किंचित गरम कर शोथ पर ३-४ बार लगावें।

(३) गरम जल मे तारपीन का तेल डाल मोटा कपडा या तौलिया भिगोकर पानी निचोड़ कर सहता सहता वाष्प स्वेद करना लाभकारी होता है।

(४) बेलोडना प्लास्टर या बी आई. फ्लोजिस्टीन प्लास्टर कनपेड पर चिपका दे।

(५) एक्रोमाइसीन, टेरामाइसीन, डाइक्रिस्टीसिन ओम्नेसिलीन के इन्जेक्शन या कैपसूल देकर रोगी को शीघ्र लाभ दिया जा सकता है।

(७) दर्द के लिए नोवाल्जिन, सिवाल्जिन, कोडोपायरिन, इरगापायरीन इत्यादि गोलिया देनी चाहिये।
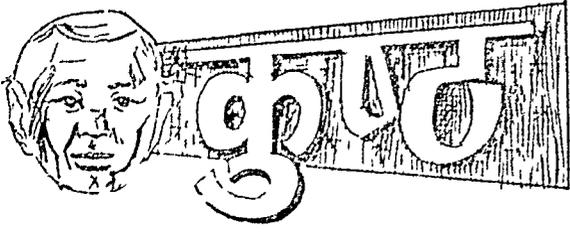
मिथ्याऽहार-विहारेण विशेषेण विरोधिना ।
साधु निन्दा वदान्य स्वहरणाद्यैश्च सेविते ॥

हमारे महान वेदाचार्य वाग्भटाचार्य जी ने बहुत पहले ही बताया है कि—

(१) विरुद्ध गुण धर्म के आहार का बहुत ज्यादा सेवन नियमित करने से भी इस रोग का उद्‌भव होता है जैसे—दही और मछली, दूध और मछली एक साथ या बहुत खाना या सेवन करना, दही और उड़द के दाल के पदार्थ एक साथ और रात्रि को बहुत काल तक सेवन करना, मूली या मूली का साग या लड्डू, जव (तिल) दूध गुड आदि बहुत सेवन करना इत्यादि।

(२) आहार सेवन, खाने पीने के बारे में कोई बधन तथा निति नियम न रखना जैसे—अपचन होने पर भी भोजन करना, आवश्यकता न होते हुए भी भोजन करना, जल्दी हजम न होने वाले खाद्य पदार्थों का ज्यादा सेवन करना, इत्यादि ।

(३) भोजन के बाद त्वरित सम्भोग करना या कष्टप्रद श्रम करना जैसे दौडना, खोदना इत्यादि ।

(४) शारीरिक श्रम अवस्था मे अथवा भय पिडित अवस्था में ठण्डा जल पीना ।

(५) दिन के समय नियमित निद्रा करना ।

इत्यादि बातो का जीवन में परहेज न रखने से या इस मामुली लेकिन आवश्यक नियमो का पालन न करने से शरीर में वातादि दोष प्रकुपित होकर रक्त, मास, उदक (तथा-पित्त-कफ) और त्वचा को दूषित करके भयकर कुष्ठ रोग का निर्माण करते हैं।

यह मुख्य कुष्ठ ७ प्रकार के और क्षुद्र कुष्ठ ११ प्रकार के ऐसे कुल मिला के १८ प्रकार के कुष्ठ रोग होते हैं। इसमे वात, कफ, पित्त यह तीनो भी दोष शरीर में बढ़ते हैं जिसका रक्त, मास, त्वचा और उदक के साथ घनिष्ट सम्बन्ध होने से इस पर दूषित परिणाम होकर यह रोग तथा दोष सम्पूर्ण धातुओ के अन्दर पहुँचकर शरीर में सूक्ष्म और दारुण कृमियो को उत्पन्न करता है। और यह कृमि फिर शनै शनै. रोम, त्वचा, स्नायु, धमनी और तरुणास्थियो को खाते हैं। इस प्रकार दोष से यह रोग उत्पन्न होना शुरू होता है। बाह्य त्वचा मे दोष दूषित होता है तो उसे "मिश्र कुष्ठ" या "सफेद कोढ" या या "सफेद दाग" कहते हैं।

हमें विश्वास है कि योग्य चिकित्सा और पथ्यापथ्य रखने से देरी से भी क्यो न हो लेकिन यह रोग निश्चित ही दूर हो सकता है। अपने अनुभूत चिकित्सा प्रयोग नीचे प्रस्तुत करता हू—

(१) शुरू में मरीज को जुलाब देकर कोठे को साफ रखा जाय। बाद में बावची, मुण्डीफल, चित्रक, त्रिफला आदि सेवन कराके महामजष्ठादि काढा रोज प्रातः और सायकाल को देते रहे। और बाह्य त्वचा को हरताल पत्री, मुर्दासग और हल्दी गोमूत्र मे पीसकर उसका लेप दाग के ऊपर लगाना जारी रखें। यह इलाज ५-६ महीने प्रयत्नपूर्वक जारी रखें लेकिन दाग हटाने का या कम होने का कोई चिह्न नजर नही आया। अत इस प्रयोग को त्यागकर दूसरा प्रयोग शुरू कर दिया।

(२) अर्कमुण्डी (भाप से स्वय निकली हुई) ५ तोला मात्रा मे पिलाते रहे और उसके बाद बावची, चित्रक, तरोटा बीज, चाक्सू, हल्दी, कडु निम्बकी छाल इन सब का चूर्ण मधु के साथ हर रोज सुबह शाम देते रहे और ऊपर प्रयोग किया हुआ लेप बाह्य त्वचा को निरन्तर लगाते रहे। चिह्न पर काफी दिन तक लगाने के बाद भी यश मिलने का कोई सम्भव नजर नही आया। लेकिन हमने अपने प्रयत्न नहीं छोडे, बल्कि पूरे जिद के साथ भगवान धन्वन्तरि की प्रार्थना करते हुए अपना अभ्यास जारी रखा। हमे विश्वास था कि एक न एक दिन हमें यह अनुभूत और चमत्कारी वनस्पति का खोज लग ही जायगा कि जिसके प्रयोग से यह रोग दूर हटकर रोगी निरोगी बन जायगा। और अन्त में निष्ठा से तथा अथवा प्रयत्न से की हुई हमारी कोशिश को सफलता मिली और भगवान धन्वन्तरि की कृपा से हम इसमें कामियाब रहे। अत अब हम वह सफल प्रयोग प्रस्तुत करते हैं।

(३) रोगहारी सफल चिकित्सा प्रयोग—हल्दी, पीपल, वायविडग, सोंठ, चित्रक, सोनामुखी भस्म, जटामासी, मजिष्ठ (सब सम प्रमाण) यह सब ५-५ तोले लेकर चूर्ण बनाकर कपडछन करें और उसमे निम्नलिखित दवायें मिला दें—बावची २ छ०, तरोटा बीज, १ छ०, जगली भेडी की जड २ छ०, जगली अन्जीर की जड १ छ०, कडवे निम्ब का पचाग १ छ०, सरपुंखा १ छ० जिसे शरपुंखा भी कहते हैं। चाकसु ॥ छ० ताजे गोमूत्र में खूब पके हुए हरडे २ छ०, त्रिफला १ छ०, मुडी (गोरख मुण्डी) ॥ छ०, निर्गुण्डी के वृक्ष की जड ॥ छ०, गोखरू २॥ तोला, तुलसी के पत्ते या जड २॥ छ० इन सबका चूर्ण बनाकर कपड़छन की हुई युक्त दवा में मिलावें। फिर उसमें लोह भस्म ॥ तोला, हरताल भस्म १ तोला, माणिक्य रस १ तोला आदि मिश्रण करदें। बस अनुभूत और फलदायी परीक्षित दवा तैयार हो गई।

सेवन विधि—रोज सुबह और शाम को चाय के चम्मच भर (बताई हुई) दवा मधु के साथ सेवन करें और बाद में थोड़े से काले जव (तिल) सेवन करें।

बाह्य त्वचा को लगाने का लेप—बावची ५ तोला, चित्रक २॥ तोला, तरोटा बीज २ तोला, चाकसु १ तोला, जगली मेंडी की जड २ तोला, अन्जीर की जड १ तोला, सफेद गोकर्णी जड २ तोला, गुमची गुज २ माशे, हिराबोल ॥ माशा, कालाबोल ॥ माशा, खैरकी छाल २ माशा, सोनामुखी २॥ तोला, वायविडग २ तोला, जाई जई की लताकी जड २॥ तोला, निम्ब का पचाग २॥ तोला, त्रिफला २॥ तोला, मुरदारसिंग २॥ तोला पत्रहरताल ५ तोला, गोमूत्र युक्त हल्दी ३ तोला, निम्बका तैल २॥ तोला, सत्यानाशी की जड २॥ तोला यह बारीक पीसकर रखें और इसमे कडू इन्द्रायण २-३ लेकर उसमे आमियाँ हल्दी की डालिया खुपस दें और उष्ण भूमि पर जहाँ कचरा डाला जाता है वहाँ कमर बराबर (३-४) का गड्ढा खोद कर उसमे गाढ़ दें और ४० दिन के (Treatment) बाद बाहर कर उसे साफ करके चूर्ण बनाकर ऊपर बनाये हुए दवा के मिश्रण में मिलादें। फिर याकुट ५ तोला (एक प्रकार का दवा मे मिलाने का गोंद) मिलाकर उसमे ताजा गोमूत्र डालकर उसकी गोलिया बनाकर रखें या सुखाकर पाउडर बनाकर रख दे। यह पावडर या गोली का लेप सफेद दाग पर नित्य लगाने से सफेद दाग नाश हो जायेगा। यह लेप इस दाग का और रोग का दुश्मन है।

लेप को लगाने की विधि—रोजाना ३ बार गोमूत्र में अथवा जामुन के सिरके मे सानकर लेप करे,

परहेज पथ्य—दही, उडद, मछली, मिर्च मसाला, चिंता बहुत करना, दिन में सोना आदि।

यह प्रयोग निष्ठा से व नित्य नियमो से शुरू से २४ महीने सेवन करने से और साथ ही लेप न करने से अवश्य ही पीडित रोगी भी इस रोग से छुटकारा पायेगा।

(४) मंजिष्ठादि क्वाथ (शा० स०)—२ तोला लेकर १ पाव जल मे क्वाथ करें। ॥ छटाक जल शेष रहते छान रोगी को प्रात साय पिलावें।

(५) महामञ्जिष्ठादि क्वाथ उपरोक्त विधि के अनुसार रोगी को दें।

(६) अमृताकुट लौह असमान मात्रा मे घी तथा मधु से १ रत्ती की मात्रा मे प्रात साय। ऊपर से दूध देवें।

(७) तालकेश्वर रस (र० यो०) २ रत्ती गोमूत्र के साथ प्रात. साय देव।

(८) पचतिक्त घृत ॥ तोला प्रात. साय देवें।

(९) महासिन्दुराद्य तैल, सोमराजी तैल, मरिच्यादि तैल या चालमूग्रा तैल की मालिश करनी चाहिये।

(१०) चालमोग्रा तैल ३ से ३० बूद तक कैपसूल में भरकर ३ मास तक देवे।

(११) ई० सी० सी० ओ० (E C C O-Ethyl ester of Hydnocarpus Creojute Camphor & olive oil) ½ सी. सी. से प्रारम्भ कर ५ सी. सी. तक अधस्त्वक सूचीवेध द्वारा लगभग २-३ माह तक दें।

(१२) सल्फेट्रोन (Sulphetrone) २-४ गोली प्रतिदिन यीस्ट (yeast) के साथ दे। इसके अलावा डायमिडीन (Diamidin P. D.) प्रोमीजोल (Promizole P D) एवलोसल्फोन (Aulosulphon 1 c 1)-इत्यादि गोलियों का प्रयोग विवरण पत्र के अनुसार करें

(१३) उपरोक्त औषधियो के साथ लौह, यकृतसत्व, विटामिन आदि रक्तवर्धक पोषक द्रव्यो का प्रयोग करना चाहिए।

—श्री वैद्य प्र० रा० सराफ
जाफराबाद (औरंगाबाद)

व्याख्या—रति का अर्थ कामदेवता (Venus veneris) है। उसके जाल मे फँसने से जो उपसर्ग उत्पन्न होते है वे रति जन्य (Veneral) कहलाते हैं।

रोग प्रसार—उपसर्ग का मुख्य स्थान वेश्यायें होती हैं और इन्ही से रोगो का प्रसार होता है। इनके साथ मैथुन करने से रोग होते है इसलिए इनको मैथुनी रोग भी कहते हैं।

सख्या—इस समय रतिजन्य रोगो की सख्या सात तक पहुँच गयी है—

(१) उपदश (Shoft sore, Chancroid)
(२) सोजाख (Gonorrhoea)
(३) फिरग (Syphilis)
(४) वक्षणीय लसकणिकार्बुद (Lymphogranuloma Inguinale)
(५) लिंगार्श, रतिजन्य कणिकार्बुद (Granuloma-venereum)
(६) शिश्नमणि शोथ (Venereal Fusospirochetosis)
(७) मूत्रप्रसेक शोथ (Trichomonas Vaginitis)

इन रोगो मे सामाजिक दृष्ट्या फिरंग और सोजाख अधिक महत्व के हैं। रतिजन्य रोगो से पीडितो मे ९०% रोगी इन दोनो के होते हैं और १०% इतर रोगो के रहते हैं।

फिरंग[1] (Syphilis)

इसमे त्वचा से लेकर शरीर के विविध अङ्गो मे विकृतियाँ होती हैं जिसमे प्रायमिक, द्वितीयक, तृतीयक और चतुर्थक करके चार अवस्थाएँ होती है और जो सन्तान मे भी सक्रान्त होता है।
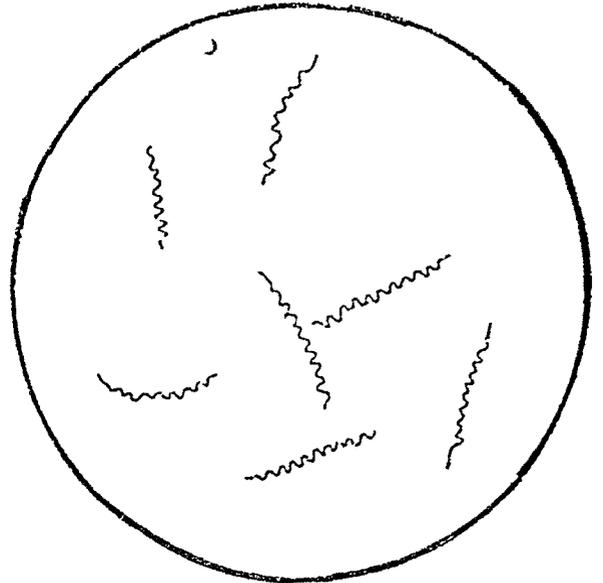
फिरग के चक्राणु (T. Pallidum)

हेतु और प्रसार—इसका हेतु फिरंग चक्रकीटाणु या सुकुन्तलाणु (Treponema or Spirochaeta Pallidum) है। इसका उपसर्ग फिरग पीडित के साथ मैथुन करने से (८५%) होता है। प्राथमिक अवस्था मैथुन के २-४ सप्ताह के पश्चात् प्रारम्भ होती है जिसमे गुह्याग पर कठिन सदश या क्षत (Hard Chancre) उत्पन्न होता है और वक्षण की लसग्रन्थियो की अभिवृद्धि होती है। ६-१८ सप्ताह के पश्चात् द्वितीयावस्था प्रारम्भ होती है जिसमे त्वचा श्लेष्मत कला पर अनेक प्रकार के क्षत उत्पन्न होते हैं और इसके अतिरिक्त नेत्र, अस्थि सन्धि, लसग्रन्थि इनमे विकृतियाँ होती हैं। २-३ साल के बाद तृतीयावस्था प्रारम्भ होती है जिसमे त्वचा मे धातुनाशक व्रण और आभ्यन्तरीय अङ्गो मे गोदार्बुद (Gumma) उत्पन्न होते है। १०-२० वर्षों के पश्चात्

[1] फिरगसज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत। तस्मात् फिरग इत्युक्त। फिरगिनोऽङ्गससर्गात् फिरगिण्या. प्रसगत.। —भावप्रकाश

चतुर्थावस्था उत्पन्न होती है जिसमें नाडीसस्थान मे विकृति होती है। इस अवस्था को नाडी फिरग (Neuro syphilis) भी कहते है। प्रथमावस्था मे रोग की औपसर्गिकता अधिक, द्वितीयावस्था में बहुत अधिक या सबसे अधिक, तृतीयावस्था में अल्प और चतुर्थावस्था मे अत्यल्प होती है। फिरगी विक्षतो (Lesions) पीडित व्यक्ति उपसर्गी होता है। इसमे जरा सा भी सदेह नही है। परन्तु उपसर्ग सक्रान्त करने के लिए शरीर पर प्रकट विक्षत होने की आवश्यकता नही होती। पुरुष के शुक्र में चक्र-कीटाणु उपस्थित रहते है जो स्वस्थ स्त्री को उपसृष्ट कर सकते हैं। साधारणतया फिरगोपसृष्ट होने के प्रारम्भिक दो वर्षों में औपसर्गिकता अधिक होती है और उसके पश्चात् प्रतिवर्ष वह घटती जाती है और ५ साल के पश्चात् वह लगभग नष्ट हो जाती है। स्त्रियो मे यह काल पुरुषो की अपेक्षा अधिक होता है।

मैथुन के अतिरिक्त फिरगोपसृष्ट व्यक्ति के चुम्बन से या गात्र सस्पर्श से या फिरगस्राव दूषित वस्त्र-पात्र-यन्त्र शस्त्रादि के सम्पर्क से रोग हो सकता है। माता-पिता के फिरगोपसृष्ट होने पर उनकी सन्तान में फिरग सक्रान्त होता है। मैथुन और गात्र सस्पर्श से प्राप्त विकार को अर्जित (Acquired) और माता से प्राप्त को सहज (Congenital) कहते हैं।

सुजाक

यह तीव्र औपसर्गिक रोग है जिसमे मूत्र प्रसेक शोथ, मूत्रकृच्छ्र, पूयोत्सर्ग इत्यादि लक्षण होकर उसके साथ साथ या पश्चात् नेत्राभिष्यन्द, अन्तर्हृच्छोथ, सन्धिशोथ इत्यादि उपद्रव तथा अनुगामी विकार होते हैं।
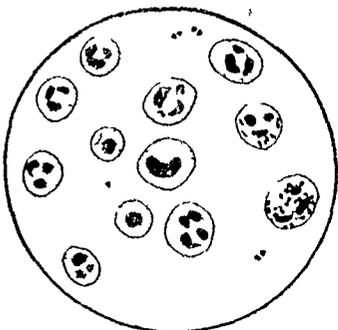
सुजाक के जीवाणु

हेतु और प्रसार—इस रोग का कारण गुह्य गोलाणु (Neisseria Gonorrhoea) है। मूत्रमार्ग स्राव में ये उत्सर्गित होते है। अत. उपसर्ग का मुख्य मार्ग मैथुन है। इसके अतिरिक्त स्राव से दूषित वस्त्रपात्रादि द्वारा, द्रोणी स्नान द्वारा उपसर्ग हो सकता है। स्त्रियो में मूत्रमार्ग स्राव के अतिरिक्त योनिस्राव, गर्भाशय ग्रीवा स्राव भी उपसर्गी होते हैं। नेत्राभिष्यन्द होने पर उसका स्राव भी उपसर्गी होता है। उपसृष्ट व्यक्तियो की औपसर्गिकता बरसो तक जारी रहती है।

व्यक्तिगत प्रतिबन्धन—आहार, आचार, विचार, व्यवहार इत्यादि के द्वारा अपने काम पर अधिक से अधिक काबू करने की कोशिश करो। शृङ्गारिक नाटक, चलचित्र (सिनेमा) उपन्यास इत्यादि से दूर रहो। पतिव्रत या पत्नीव्रत बनो। विवाहेतर व्यक्ति से समागम न करो। यदि किसी समय काम के प्रभाव से व्यभिचार करने की नौबत आ जाय तो निम्न नियमो और उपायो द्वारा इन रोगो से बचने की कोशिश करो। मैथुनी रोग पीडित तथा दुर्गन्धित जननेन्द्रिययुक्त व्यक्ति के साथ मैथुन न करो। मैथुन करने से पूर्व शिश्न पर मृदुसा (वैसलीन) मल लो अथवा फ्रेंच लैदर (Condom) का उपयोग करो। इससे जीवाणुओ से शिश्न की रक्षा होती है। मैथुन के पश्चात् मूत्रत्याग करके साबुन से शिश्न और फोतो को धो डालो। पश्चात् पोटास परमेगनेट के (१:५०००) या रस कपूर के (१:५०००) घोल से इनको साफ करो। इसके पश्चात् भी यदि गरमी की शका हो तो शिश्न को पोछकर उस पर ३३% केलोमल का मरहम अच्छी तरह मलो। यदि सुजाक की शका हो तो पिचकारी द्वारा मूत्रमार्ग मे पोटास परमेगनेट (१.१०००) के या पोटार्गोल (एक औस पानी मे १० ग्रेन) के या आरजिरोल (१ ड्राम १ औस पानी में) के घोल के ४-१० सी० सी० प्रविष्ट करके कुछ मिनटो तक उस घोल को शिश्न में रोकने की कोशिश करो। इसके सिवाय खाने के लिए सोडा बाय कार्ब इत्यादि क्षारीय द्रव्य प्रयुक्त करो।

रतिजन्य उपसर्गों की चिकित्सा

(१) गैरिक ६ माशा, कपूर ६ रत्ती, शीतलचीनी

६ माशा का कपडछन चूर्ण कर ३ माशा की मात्रा मे दिन मे ४ वार जल के साथ दें । शीघ्र लाभकारी है । पूयमेह नाशक है ।

(२) कलमी शोरा १।। तोला, खडिया मिट्टी ।। छ० शीतलीचीनी १० तो०, फिटकरी ६ माशा, गेरू ४ माशा कपूर ३ माशा लेकर सवका कपडछन चूर्ण बना ४ माशा की मात्रा में दिन मे ४ वार शीतल जल के साथ दें। अपूर्व लाभकारी औषधि है । पूयमेह नाशक है ।

(३) रसकपूर १। तोला, छोटी इलायची के दाने १। तोला, शीतलचीनी १। तोला, केशर १। तोला लेकर वकरी के दूध में खरल कर ४ रत्ती की गोली वनावें। प्रात.काल ४ गोली गाय के दूध के साथ लें। भोजन मे खीर, घी, चीनी तथा गेहू की रोटी लें। नमक, अम्ल पदार्थों को नही लें। इसका सेवन ७ दिन से अधिक नही करें। फिरग नाशक है।

(४) पारद १ तोला, गन्धक १ तोला, चावल १ तोला की कज्जली कर ७ गोली वनावें। इनका धूम्रपान करने से फिरग रोग अवश्य नष्ट हो जाता है।

(५) गोनारि कैपसूल (श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन अलीगढ द्वारा निर्मित) प्रात दोपहर साय १-१ जल के साथ निगलवायें। यदि पचतृण कषाय के साथ निगलवायें तो और शीघ्र लाभ होगा । यह सुजाक के लिए अत्युत्तम हैं। जलन शान्त होगी। मवाद आना क्रमश वन्द होगा ।

(६) चन्दनासव—१-१ तोले दिन मे तीन-चार वार वरावर जल मिलाकर पीने को दें।

(७) पैन्सलीन—यह उपदश एव सुजाक दोनो के लिए विशिष्ट औषधि हैं। पैन्सलीन १२ लाख यूनिट के इन्जेक्शन सप्ताह मे २ वार दें। पैन्सलीन का तैलीय सूचीवेध सप्ताह मे २ वार मांसान्तर्गत देना भी अतीव लाभप्रद है।

(८) व्राडस्पैक्ट्रम यथा क्लोरमफैनीकाल कैपसूल या टैट्रासाइक्लिन कैपसुल आदि ६-६ घण्टे के अन्तर से पानी के साथ दिलायें।

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन द्वारा निर्मित

विशुद्ध आयुर्वेदिक आशुफलप्रद कैपसूल

मदनशक्ति कैपसूल

बल, वीर्य, कांति, पुरुषार्थ बढाने वाली दिव्य ओषधियो के मिश्रण से यह कैपसूल तैयार किया गया है। नामर्दी, नपुंसकता, वृद्धावस्थाजन्य निर्बलता तथा शीघ्रपतन की विशेष उत्तम दवा है। इसके सेवन से काफी स्तम्भन होता है तथा सम्भोग के कारण हुई निर्बलता दूर होती है। ४० वर्ष की अवस्था के पश्चात् मनुष्य को अपने मे जो कमी महसूस होती है उसे इस कैपसूल के सेवन से दूर किया जाता है। परीक्षित कैपसूल है। मूल्य ५० कैप० १८ २५, १०० कैप० ३५.५० ।

ज्वरान्तक कैपसूल

इसके व्यवहार से सभी प्रकार के ज्वर और विशेषत: वातज्वर, कफ एव विषम ज्वर मे लाभ होता है। सर्दियो में होने वाले प्रतिश्याय (जुकाम) के लिए भी उत्तम है। इसके प्रयोग से सर्दी मे होने वाले ज्वर का वेग शीघ्र ही कम हो जाता है तथा शरीर का दर्द भी कम हो जाता है। श्वास के वेग एव आन्तरिक ज्वर में इसका प्रयोग नही करना चाहिये। बढे हुये ज्वर मे एक कैपसूल गर्म पानी से लेकर उसके पश्चात् लगभग १ प्याला खूब खौलता हुआ जल चाय की तरह पीवें तथा भारी कपड़ा ओढकर सो जावें। ३-३ घण्टे पश्चात् ऐसा करने से पसीना आकर ज्वर का वेग कम हो जायगा। निमोनिया या इन्फ्लूएन्जा मे इसे चाय के साथ सेवन करें। मूल्य ५० कैप १३.५०, १०० कैप २६ ०० ।

रुद्न्ती कैपसूल

(स्वर्ण वसन्त मालती युक्त)

स्वर्ण वसन्त मालती आयुर्वेद शास्त्र की प्रसिद्ध और चमत्कारिक औषधि है जिसे वैद्य ही नही ऐलोपैथिक एव होमियोपैथ भी प्रयोग करते हैं। यह जीर्ण ज्वर, विषम ज्वर, धातुगत ज्वर, हृदय रोग धातुगत क्षीणता को दूर करती है। जीर्ण ज्वर के कारण निर्बल हुए रोगियो के लिए तो यह अमृत के समान है। गर्भवती स्त्रियो और छोटे बच्चो को निर्भयता के साथ प्रयोग कराया जाता है। लेकिन हम हिंगुल के स्थान पर सिद्ध मकरध्वज न० १ तथा स्वर्ण वर्क के स्थान पर स्वर्ण भस्म डालकर बनाई स्वर्ण वसन्त मालती न. १ तथा उसके साथ रुदन्ती फल का घनसत्व व अन्य प्रभावकारी औषधियो का मिश्रण कर इन कैपसूलो में भरते है जिससे यह क्षय रोगियो के लिए बहुत अधिक लाभ करते हैं। प्रवाल भस्म भी होने के कारण यह पित्त का शमन करता है। जिसने भी हमारे रुदन्ती कैपसूल को अपने रोगियो को प्रयोग कराया है। वह सदैव के लिए भक्त बन गये है। मू. ५० कै० २५ ५०, १०० कै० ५० ०० ।

ल्यूकोना कैपसूल

इसके व्यवहार से श्वेत एव रक्तप्रदर, योनिशूल, कमर का दर्द, मासिक धर्म विकृति मूत्रकृच्छ आदि रोग नष्ट होते हैं। उस अवस्था मे जबकि प्रदर के साथ शरीर मे दर्द हो या यकृत की विकृत अवस्था हो यह कैपसूल शीघ्र लाभप्रद प्रमाणित होगे। प्रात साय एक-एक कैपसूल शीतल जल या अशोकारिष्ट के साथ देना चाहिये। छोटे बच्चो को कभी-कभी पेशाब मे सफेदी या कुछ बालू जैसी आने लगती है उस अवस्था मे भी कैपसूल खोलकर अवस्थानुसार मात्रा बनाकर शहद मे चाटने से लाभ होता है। इन कैपसूलो के सेवन काल मे फिटकरी युक्त जल या योनिशोधक क्वाथो से दिन मे एक बार योनि प्रक्षालन कराने से शीघ्र लाभ होता है। मू० ५० कैप० १८ २५, १०० कैप० ३५ ५० रु० ।

रक्तशोधक कैपसूल

इसके व्यवहार से सभी प्रकार के कुष्ठ, खाज, खुजली आदि सम्पूर्ण रक्तविकारो में लाभ होता है। रक्त विकार नाशक अन्य औषधियाँ तथा हरताल भस्म, तालसिंदूर आदि पित्त की वृद्धि करती हैं तथा पित्तज प्रकृति वाले रोगियो को अनुकूल नही पडती। किन्तु 'इस कैपसूल के प्रयोग से पित्तज प्रकृति के रोगियो को कोई

विकार नहीं होता तथा रक्तविकार भी दूर हो जाता है। महामंजिष्ठादि अर्क, खदिरारिष्ट या रक्तशोधिकारिष्ट के साथ इन कैपसूलो का प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है है। यदि कब्ज रहता हो या आम सचित हो तो ३-३ या ४-४ दिन बाद विरेचन लेना चाहिये। इसके लिए शुद्ध एरण्ड तेल (Coastor Oil) लेना सर्वोत्तम है। विबन्धहारी कैपसूल भी ले सकते हैं। मू० ५० कैं० १३.५०, १०० कैं० २६.००।

वातरोगहर कैपसूल

स्वर्ण युक्त औषधियो से निर्मित यह कैपसूल समस्त वात रोगो की उत्तम औषधि है। इनके व्यवहार से वात रोगो में अवश्य लाभ होता है, जैसे कि गठिया हाथ पैरो की सूजन, कमर का दर्द, गृध्रसि आदि। इस कैपसूल के प्रयोग से पक्षाघात (Facial Paralysis) अपतन्त्रक, आक्षेपक, सिर में चक्कर आना आदि वात रोगो में अवश्य लाभ होता है। सुपरीक्षित एव सफल महौषधि है। विश्वास के साथ व्यवहार करें। ५० कैं० २५.५०, १०० कैं० ५०.००।

श्वासहारी कैपसूल

इसके व्यवहार से तीव्र श्वास वेग का शमन होता है तथा इसका लगातार प्रयोग करने से श्वास का आगामी वेग नही होता। यदि श्वास शुष्क होतो एक कैपसूल थोडे गुनगने जल से निगलवा कर थोडी सी मलाई चटा दें। प्रातः काल या रात को सोते समय जब श्वास का वेग प्रारम्भ होता मालूम पडे उसी समय या उससे आधा घण्टा पूर्व एक कैपसूल लेने से श्वास वेग नही आयेगा तथा श्वास कष्ट दूर हो जायेगा। बच्चो की कासी खासी मे भी इसे अवस्थानुसार मात्रा बनाकर शहद से दें। मू० ५० कैं० ९.०० १०० कैं० १७.००

विबन्धहारी कैपसूल

इसके व्यवहार से मलावरोध, अपचन, ज्वरकालीन विबन्धता में शीघ्र लाभ होता है। जिनको भोजन नही पचता, तबियत गिरी-गिरी रहती है, पेट मे हल्का-२ दर्द रहता है, दस्त कडा या कठिनता से होता है, भोजन के बाद पेट मे अफरा होता या गैस की शिकायत रहती है, उनको रात्रि मे एक कैपसूल लेने से प्रात काल दस्त साफ हो जाता है और सभी परेशानिया दूर हो जाती हैं। कठिन कोष्ठ वालो को कभी-कभी २ कैपसूल भी लेने पड सकते है। मू० ५० कैं० ११.५० १०० कैं० २२.००।

अतिसारान्तक कैपसूल

यह उत्तम ग्राही आमहर, पाचक, अग्नि पाचक है। संग्रहणी के प्रत्येक कारणों के कारण विभिन्न प्रकार होता है। बच्चो की हरी पीली टट्टियों में लाभ करता है। बच्चो के दांत निकलने के समय होने वाले विकार दूर होते हैं। अपचन के कारण जो निरन्तर अतिसार होता है। तीव्रातिसार मे १ दिन मे ही लाभ करता है। पेट की मरोड़ दूर करता है। मू० ५० कैं० ११.५०, १०० कैं० २२.००।

रजावरोधान्तक कैपसूल

मासिक धर्म मे कष्ट होना, अल्प रहना या असमय मे मासिक धर्म होना, मासिक धर्म की विकृति के कारण सिर दर्द, नेत्रो की निर्बलता और कमर में पीडा रहना आदि विकार दूर होते हैं। अपचन, मलावरोध जन्य उदर शूल, गुल्म, आध्मान भी इसके सेवन से नष्ट होते हैं। मू०—५० कैं० ९.००, १०० कैं० १७.००।

गोनारि कैपसूल

आजकल सुजाक का रोग बहुत अधिक पाया जाता है क्योकि आजकल चटपटी मसालेदार चीजें, चाट आदि का प्रयोग बहुत अधिक हो गया है। संक्रमण से भी इसका प्रसार होता है। इस रोग मे ग्रसित रोगी को भयकर तकलीफ होती है पेशाब करने मे तो उसे भयकर वेदना होती है। लेकिन इन कैपसूलो के प्रयोग से अल्प समय में ही रोगी की समस्त वेदनायें दूर हो जाती हैं तथा पेशाब ठीक तरह से बिना तकलीफ के उतरने लगता है। अनेक रोगियो पर परीक्षित हैं। मू०— ५० कैपसूल १४.००, १०० कैपसूल २७.००,

मेधाशक्ति कैपसूल

ब्राह्मी एव शखपुष्पी मस्तिष्क की दुर्बलता को दूर करने वाली एव स्मरण शक्ति को बढाने वाली आयुर्वेद की प्रसिद्ध वनौषधियो के घन सत्व एव अन्य बहुमूल्य आयुर्वेदिक औषधियो के मिश्रण से तैयार किये गये हैं। इनके सेवन से स्मरण शक्ति बढती है, मस्तिष्क मे हर समय रहने वाली थकावट दूर होती है। जो छात्र काफी परिश्रम करते हुए भी अपना पाठ भूल जाया करते हैं। उनके लिए अत्युपयोगी है। पित्त की अधिकता से होने वाले विकार जैसे हाथ पैरो की जलन, सिर दर्द आदि विकार भी इससे नष्ट होते हैं।

मू०—५० कैपसूल १३.५० रु १०० कैप० २६.०० रु

कैल्सी कैपसूल

इसके प्रयोग से कैल्शियम की कमी दूर होती है। बुखार (ज्वर) के बाद की कमजोरी, क्षय रोग, नजला, जुकाम, पुरानी खाँसी को दूर करके बजन बढ़ाने में गुणकारक हैं। कैल्शियम ग्लुकोनेट या कैल्शियम से बनी एलोपैथिक औषधियो से कही अधिक लाभ करते हैं तथा किसी प्रकार का नुकसान नही करते है।

मू०—५० कैपसूल ८ ००, १०० कैपसूल १५ ००।

कैल्सी लौह कैपसूल

यह लौह युक्त कैल्सी कैपसूल है कैल्शियम तथा लोह की कमी को पूरा करते हैं तथा रक्त वर्द्धक हैं।

पैकिंग--५० कैपसूल ९ ५०, १०० कैपसूल १८.००।

पुंसवनो कैपसूल

आजकल परिवार नियोजन पर बहुत जोर दिया जा रहा है तथा व्यवहारिक जीवन मे इसका उपयोग भी है लेकिन किन्ही-किन्ही स्त्रियो के साथ ऐसी समस्या है कि उन्हे बार-बार लडकियाँ ही होती है तथा वह चाहती हैं कि कम से कम एक लडका हो जावे तब वह परिवार नियोजन अपनायें ऐसी स्त्रियो से हमारा निवेदन है कि जैसे ही गर्भावस्था का पता चले यह हमारा कैपसूल का एक सैट प्रयोग करें। उनकी मनोकामना अवश्य पूरी होगी, ये सुपरीक्षित है। पूर्ण विश्वास के साथ प्रयोग करावें। पैकिंग—७ तथा ४० कैपसूलो को मिलाकर इसका एक सैट होता है। मू०—२६ ५०।

अर्शान्तक कैपसूल

खूनी तथा बादी दोनो प्रकार के अर्श में रोगी को महान कष्ट होता है। मल शुष्क हो जाता है तथा जब वह अर्श के मस्सो से रगडता हुआ बलपूर्वक बाहर आता है तो रक्त बह निकलता है गुदा मे घाव हो जावे हैं, हर समय घाव रहता है। गुदा के बल रोगी बैठ नही सकता। हमारे इन कैपसुलो को प्रयोग करने से थोडे ही दिनो में रोगी की स्थिति सुधर जाती है। उसके मस्से बैठ जाते है, मल ढीला पड जाता है जिससे कि मस्से छिलकर रक्त स्राव नहीं होता। गुदा की वेदना कम हो जाती है।

मू०—५० कैपसूल ९.००, १०० कैपसूल १७.००।

शूलारि कैपसूल

दर्द किसी तरह का क्यो न हो इस कैपसूल के सेवन से ही वह दूर हो जायेगा। सर्दी, जुकाम, इन्फ्लुएन्जा, अधकपारी मलेरिया ज्वर की बेचैनी, पसली का दर्द, वायु का दर्द, चोट, फोडे का दर्द मे यह तुरन्त आराम देता है। वायु के कारण होने वाले जोडो के दर्द, दन्तशूल में भी इससे लाभ होता है। शरीर के किसी भी अङ्ग के दर्द मे तत्काल लाभकारी है। निरापद है हृदय को हानि नही पहुचाता मौसम बदलने, पानी मे भीगने से होने वाले शरीर या सिर दर्द मे लाभकारी है।

मू०—५० कैपसूल १० ००, १०० कैपसूल १९ ००।

पाण्डुनौल कैपसूल

दीर्घकालीन व्याधि के पश्चात् हुई रक्ताल्पता या अवरोधज कामला के लिए यह कैपसूल अचूक लाभ करने वाले हैं। इसके सेवन से यकृति वृद्धि के कारण होने वाले सभी रोग, कमजोरी जीर्ण ज्वर, वृक्क विकार, प्लीहा-वृद्धि, रक्ताल्पता, कब्जियत, मन्दाग्नि आदि विकार दूर होते। बच्चो के लिए यकृत दोष को अक्सीर है।

मू०—५० कैपसूल १२ ००, १०० कैपसूल २३ ००।

रक्तचापहारी कैपसूल

जब किसी रोग मे बेचैनी या पीडाओ के कारण नीद नही आती तब इसके प्रयोग से बेचैनी दूर हो जाती है और अच्छी नीद आ जाती है। अधिक शराब पीने से और अधिक ब्रनाइन के प्रयोग से पैदा हुई बेचैनी और अनिद्रा पर भी लाभकारी है। हिस्टीरिया, उन्माद मस्तिष्क की उत्तेजना मे इनका प्रयोग लाभदायक है। रक्तचाप वृद्धि (हाईब्लड प्रेसर) मे यह कैपसूल बहुत श्रेष्ठ है। इससे मस्तिष्क का दबाव कम होता है और शान्त निद्रा आ जाती है। ये शामक कैपसूल है।

मूल्य—५० कैपसूल ११ ५०, १०० कैपसूल २२.००

त्रिशक्ति कैपसूल

यह लोहयुक्त कैपसूल है जो किसी भी उग्र बीमारी के पश्चात् की कमजोरी को दूर करने मे बहुत ही प्रभावशाली है। शरीर मे आई हुई लोह की कमी को पूरा करते हैं। ढीले अङ्गो को मजबूत करके शरीर मे कडापन लाते हैं। पाचक, पित्त के विकार को दूर करके अग्नि प्रदीप्त करते हैं जिनसे भूख बढ जाती है और खाना-पीना हजम हो जाता है। यह उत्तम रक्त वर्धक है और कान्ति तथा उत्साह मे वृद्धि करते है।

किसी प्रकार की रक्ताल्पता व रक्तचाप की कमी (Low Blood Pressure) मे बडे विश्वसनीय हैं।

मूल्य—५० कैपसूल ११ ५०, १०० कैपसूल २२ ००

शोषान्तक कैपसूल

अस्थि मार्दव एवं बाल शोष (सूखा) पर अच्छा काम करता है। गर्भावस्था में माता निर्बल होने पर या बाल्यावस्था में माता के रुग्ण हो जाने से या अन्य किसी कारण से बालक का योग्य पोषण नहीं होता। माता की ग्रन्थियाँ निर्बल होने पर दुग्ध (स्तन्य) में अस्थि पोषक तत्व कम होता है। इस हेतु से बालक को अस्थि मार्दव रोग हो जाता है, नितम्ब पर सिकुड़न पड़ जाती है, बच्चे को ज्वर रहा आता है। इस स्थिति में इनके सेवन से तुरन्त लाभ दृष्टिगोचर होता है। कैल्शियम की कमी बच्चे में तुरन्त पूरी होती है। बच्चे की पाचन क्रिया सुधर जाती है और शरीर बलवान और नीरोग बन जाता है।

मूल्य—५० कैपसूल १२.००, १०० कैपसूल २३.००

हृद्रोगारि कैपसूल

हृदय के सभी रोगों यथा हृच्छूल, चक्कर आना, जलन होना आदि इनके प्रयोग से दूर होते हैं। इसके प्रयोग से दिल की धड़कन तुरन्त ठीक होकर हृदय की क्रिया नियमित होती है। मूल्य ५० कैपसूल १४), १०० कैपसूल २७)।

क्लीबारि कैपसूल

नपुंसकता, शीघ्रपतन, इन्द्रिय की निर्बलता, वीर्य-अभाव, पतलापन, स्तम्भन शक्ति की कमी के लिये अत्युत्तम हैं। नियमित व्यवहार करने से बल, वीर्य, कान्ति ओज तथा शक्ति बढ़ती है। मूल्य—५० कैपसूल २०.००, १०० कैपसूल ३९.००।

चेचकावरोध कैपसूल

चेचक एक भयंकर एवं संक्रामक व्याधि है। जिस समय किसी गाँव या शहर में फैलती है। तो प्रत्येक बच्चे को इसके होने का भय रहता है। किसी घर में एक बच्चे को यदि चेचक निकल आये तो अन्य बच्चों को भी अवश्य ही निकलती है। ऐसे अवसर पर आप यह कैपसूल प्रयोग करायें तो चेचक होने का भय नहीं रहेगा या यदि चेचक का संक्रामक इन कैपसूलों के प्रयोग से पूर्व ही हो चुका होगा तो चेचक भयंकर रूप धारण नहीं करेगी, कोई विकृति नहीं होगी।

मूल्य—५० कैपसूल ९.००, १०० कैपसूल १७.००

गैसोना कैपसूल

ये कैपसूल गैस के लिये उत्तम हैं। अजीर्ण, भूख का कम लगना, अफारा, पेट का भारीपन। पेट में गैस बनना बन्द होता है। उदर शूल में भी लाभदायक हैं। खाया पीया हजम होता है। गैस से होने वाले विकार, सुस्ती भी आयी रहना, शरीर का भारीपन थकावट आदि ठीक होती है। उदर विकार में ये बहुत ही प्रभावशाली हैं।

मूल्य—५० कैपसूल १२.००, १०० कैपसूल २३.००

कृमिघातिनी कैपसूल

पेट के हर प्रकार के कीड़ों पर प्रभावशाली हैं। कृमियों तथा कृमियों से होने वाले विकार, जी मिचलाना, उबकाई या उल्टी होना, कृमिज आमाशय शूल, नजला, जुकाम, अरुचि, ज्वर, कमजोरी, मलावरोध प्रमेह आदि ठीक होते हैं।

मूल्य—५० कैपसूल १२.००, १०० कैपसूल २३.००

हिस्टीरियाहर कैपसूल

यह कैपसूल स्त्रियों को होने वाले दौरों के लिए उत्तम है। यह दौरे मस्तिष्क में कुविचार होने के कारण होते ये कैपसूल मगज को शांत करते हैं। कुविचारों का शमन होता है। पाचन क्रिया को सुधारता है। शक्तिदायक है।

मूल्य—५० कैपसूल १३.५०, १०० कैपसूल २६.००

मलेरिया हर कैपसूल

यह पाली देकर आने वाले ज्वर के लिए उत्तम है। इसके १ कैपसूल को ज्वर आने से एक घण्टा पूर्व गुनगुने जल से देना चाहिये अगर ज्वर न आये तो १ कैपसूल और देना चाहिए ज्वर चढ़ते समय कैपसूल नहीं देना चाहिये। इस तरह २-३ दिन के प्रयोग से ही मलेरिया ज्वर समाप्त हो जाता है। बच्चे को मात्रा आयु के अनुसार कैपसूल तोड़कर दें। गर्भावस्था में कैपसूल नहीं देने चाहिए।

मूल्य—५० कैपसूल १५.००, १०० कैपसूल २९.००

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ़-।

बडा कष्ट होता है। गुदा मे जलन महसूस होती है। मलहम के साथ ही साथ हमने 'अर्शान्तक कैपसूलो' का भी निर्माण किया है। १-१ कैपसूल प्रात दोपहर साय शीतल जल के साथ निगलवाने तथा इस मलहम के प्रयोग से शीघ्र लाभ होता है। २५ ग्राम की शीशी ३ ५० रु।

उदरामृत पेय

थोडा सा खाना या कुछ भी चीज खाने पर पेट फूल जाता है, डकारें आती हैं, अधो वायु का सरण नहीं होता। ऐसे रोगी को इसका प्रयोग करावें। इसके सेवन से गैस का रोग शीघ्र ही दूर होता, अजीर्ण, मन्दाग्नि, आध्मान उदरशूल आदि रोग तुरन्त दूर हो जाते है। मू० १०० मि लि. की शीशी २ ५०, ४०० मि लि. ६ ५०।

नेत्रामृत अञ्जन

नित्य लगाने से धुन्ध और जाला कट जाता है, नेत्रो की ज्योति बढ़ जाती है, प्रारम्भिक मोतियाबिन्दु ठीक हो जाता है, पुराने से पुराने रोहे ठीक हो जाते हैं, आँखें साफ रहती हैं, नेत्रो मे खुजली आना दूर होकर ज्योति बढती है। अगर स्वस्थ व्यक्ति प्रयोग करें तो उनकी दृष्टि शक्ति क्षीण न होगी तथा उपरोक्त विकारो से बचे रहेंगे। मूल्य-५ ग्राम की शीशी १ ७५, एक दर्जन २० ०० ।

नेत्रामृत-बिन्दु—दुखती आखो के लिए शीघ्र प्रभावकारी दवा ,१४ मि लि १शीशी १ २५

नपुंसकत्वारि

यह प्रयोग 'धन्वन्तरि' के सैक्स रोगाक मे प्रकाशित हुआ है। इसके विषय मे लिखा था कि इसके सेवन से इन्द्रिय की कमजोरी, सुस्ती, क्लीवता, ढीलापन ,पतलापन टेढापन, रगो का फूलना, दम फूलना, स्तम्भन शक्ति की कमी शीघ्रपतन आदि विकार दूर होकर काम शक्ति बढ जाती है। २-२ रत्ती की ६० गोलियो का मू० २२ ५०है।

यदि इसके साथ ही बसन्त कुसुमाकर रस का प्रयोग किया जाय तो अधिक शक्ति देता है और शीघ्र लाभ होता है बसन्तकुसुमाकर रस की एक माह के लिए १-१ रत्ती की ६० मात्रा का मूल्य ४५.०० है।

काम शक्ति केशरी

यह प्रयोग भी "सैक्स रोगाक" मे उक्त प्रयोग के साथ ही प्रकाशित हुआ था तथा इसमे हीरा भस्म एव स्वर्ण भस्म का मिश्रण है जिससे यह अपूर्व गुणकारी है १ माह के लिए ६० गोली ८५ ।

मनोहर चूर्ण

स्वादिष्ट, शीतल, पाचक चूर्ण है। एक बार चख लेने पर शीशी समाप्त होने तक आप खाते ही रहेंगे। गुण और स्वाद दोनो में लाजवाब है। ४० ग्राम १.५०

पायरो अंजन

इस मजन के नित्य व्यवहार करने से दातो के खून तथा मवाद जाना, टीस मारना, पानी लगना दूर होते हैं पायरिया दूर होता है। मू० ४०ग्राम १ ०० ।

खाजारि

गीली या सूखी कैसी भी खाज हो अक्सीर है। रात को लगाकर सो जायें तथा सुबह नहाने के बाद लगायें। साथ मे रक्त शोधन कैपसूल प्रात साय पानी से लें। अवश्य लाभ होगा। मू० ५०मि. लि. २ ५० ।

दाद की दवा

यह दाद की अक्सीर दवा है। दाद को साफ करके किसी स्वच्छ एव मोटे वस्त्र से खुजाकर उस पर दवा लगायें। स्नान करने के बाद वस्त्र से अच्छी प्रकार से पोछ लिया करें। साथ में रक्तशोधन कैपसूल दिन मे ३ बार जल से निगलें। अवश्य ही दाद का नाश होगा। १५ ग्राम की शीशी १ ०० ।

श्वेत कुष्ठ नाशक सैट

हजारो रोगियो पर परीक्षण के पश्चात् सफेद दागो को नष्ट करने वाली तीन दवाओ का १ सैट हमने प्रस्तुत किया है। इस रोग के दूर होने मे समय अधिक लगेगा लेकिन सफेद दाग अवश्य ही नष्ट हो जायेंगे। आन्तरिक विकृति को दूर करती हुई स्थाई लाभ करने वाली बहुमूल्य दवायें हैं। नि शङ्क होकर सेवन करें।

श्वेत कुष्ठ नाशक वटी—३२ गोली की एक शीशी ३ ५०
श्वेत कुष्ठ नाशक घृत—२५ मि लि की १ शीशी ३ ००
श्वेत कुष्ठ नाशक अवलेह—३५० ग्राम ५ ००

उपरोक्त तीनो औषधिया १५-१६ दिन को पर्याप्त होगी। इस १ सैट का मूल्य १०), पोस्टादि व्यय प्रथक।

	५० ग्राम	१० ग्राम
चन्द्रामृत रस	७ ००	१.५०
चन्द्रप्रभावटी	६ ००	१.३०
ज्वराकुश रस (महा)	७ ००	१ ५०
नवायस लोह	८ ००	१ ७०
प्रताप लकेश्वर रस	१० ००	२ १०
प्रदरातक लोह	१०.००	२.१०
पुनर्नवादि मण्डूर	५ ५०	१ २०
वृ० वात गजाकुश रस	१०.५०	२ २०
विषमुष्टिका वटी	५ ००	१ २०
महामृत्युञ्जय रस	१४ ००	३ ००
मालती वसन्त (लघु)	१५ ००	३ १०
योगराज गूगल	३.००	० ८०
वृ० योगराज गूगल	१२ ००	२ ५०
रामवाण रस	८ ००	१ ७०
लशुनादि वटी	५ ५०	१ २०
लक्ष्मी विलास रस (नारदीय)	१७ ५०	३ ८०
शख वटी	७.००	१ ५०
श्वास कुठार रस	८.००	१ ७०
सजीवनी वटी	४ ५०	१ ००
त्रिभुवनकीर्ति रस	७ ००	१ ५०

शोधित द्रव्य

	५० ग्राम	१० ग्राम
शुद्ध गन्धक (आमलासार)	३ ००	० ७०
कज्जली न० १ (सम गन्धक पारद)	२० ००	४ २५
ताल (हरताल) शुद्ध	१२ ००	२ ५०
शिला (मनसिल) शुद्ध	८ ००	१ ७०
वत्सनाभ शुद्ध १ किलो ४० ००	२ ५०	×
विषबीज (कुचला) शुद्ध	५.००	१ १०
हिंगुल (हंसपदी) शुद्ध	२० ००	४.२५
पारद (हिंगुलोत्थ) शुद्ध (डमरू यन्त्र से निकाला)	२५ ००	५.२५

	१ किलो	१०० ग्राम
शिलाजीत सूर्यतापी	२०० ००	२०.५०
गिलोय सत्व असली	४० ००	५ ००
यवक्षार असली	३५ ००	४ ००
रुदन्ती फल	२०.००	२ ५०
रुदन्ती फल चूर्ण	२५.००	३.००
रुदन्ती टेबलेट	३० ००	३ ५०

चूर्ण

	१ किलो	५० ग्राम
हिंग्वाष्टक चूर्ण	३५ ००	१ ८०
लवण भास्कर चूर्ण	२२ ००	१.३०
सितोपलादि चूर्ण	५० ००	२ ७०
त्रिफला चूर्ण	१४ ००	१ ००

तैल

	४०० मिली	१०० मिली	५० मिली.
महानारायण तैल	२० ००	५ २०	२ ७०
लाक्षादि तैल	२० ००	५ २०	२ ७०
विषगर्भ तैल	२० ००	५ २०	२ ७०
महामरिच्यादि तैल	२० ००	५ २०	२.७०

च्यवनप्राशावलेह—अत्युत्तम द्रव्यों से शास्त्रीय विधानानुसार निर्मित च्यवनप्राश अवलेह एक बार हमारे यहां से मगाकर देखें। मू०–१ किलो २१) ४५० ग्राम की शीशी ११) २५० ग्रा. ६) १२५ ग्रा. ३)२५

पता—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, सासू भांजा रोड, अलीगढ़।

चर्मरोगारि मलहम (ट्यूब पैकिंग में)

अत्यन्त आकर्षक ट्यूब पैकिंग में भरी हुई सुपरीक्षित चर्मरोग नाशक आयुर्वेदिक मलहम यह मलहम खाज खुजली, फोड़ा-फुन्सी, घाव आदि चर्म रोगों में अत्युपयोगी है। खाज गीली हो या सूखी शीघ्र नष्ट होती है। शरीर पर दाग धब्बे पड जाते हैं वह भी इसकी मालिश से नष्ट होते हैं। मूल्य २८ ग्राम का ट्यूब २.५०।

श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, सासू भाँजा रोड, अलीगढ़-२२

पैन टार्च—यह जेब में पैन की तरह लगाई जाती है। इसमे बहुत पतले दो सैल पड़ते है। चिकित्सकों के लिये गले, नाक आदि की परीक्षा करने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य दो सैल सहित केवल १५ ००

थर्मामीटर (तापमापक यन्त्र)—४ ५०

थर्मामीटर केश—धातु के निकल किये क्लिप सहित ३ ००। थर्मामीटर केश—प्लास्टिक का २ ००।

आटोमाइजर—गले मे या नाक कान मे अन्दर तक कोई दवा पहुँचानी है तो यह दवा इस यन्त्र मे भरकर पहुचायी जाती है। मूल्य ११ ००।

धमनी संदंश (Artery Forceps)—शल्यकर्म करते समय रक्तस्राव करती हुई धमनी को इससे पकड़कर रक्तस्राव रोका जाता है। मूल्य ५ इन्ची ६ ५०, ६ इन्ची ८ ००, स्टेनलैसस्टील की ५ इन्ची ९.५०, ६ इन्ची ११ ००।

सूचिका संदंश (Needle Holder)—शल्यकर्म मे मांस तन्तु आदि एव त्वचा को सीते समय सुई को इसी से पकडा जाता है। इसके बिना सीवन कर्म सम्भव नही। स्टेनलैसस्टील का मू० १५ ५०

धागा सीवन कर्म को—नाइलीन का १ पैकिट २.५०, रेशमी १ गुच्छा २ ५० सफेद या काली रील १० ५०

कैटगट—मासपेशियो के सीवन कर्म को ७ ५०।

सुचिका (Needles)—सीवन कर्म के लिये ६ सुई का पैकिट ११ ५०।

शीशे पर लिखने की पेंसिल—मू० केवल १ २५।

मसूढे चीरने का चाकू—सीधा २ ५०, फोल्डिग ४ ७५, स्टेनलैसस्टील का सीधा ४ २५, स्टेनलैसस्टील का फोल्डिग ६ ००।

इन्जेक्शन सिरिंज (कम्पलीट)—सम्पूर्ण कांच की २ Ml की ४.००, ५ Ml की ६.००, १० Ml की ९ ००, २० Ml की १४ ५०, ३० Ml. २० ००, ५० Ml की ३२ ००।

रेकार्ड सिरिंज—२ Ml की ११ ००, ५ Ml. १५ ००, १० Ml की १८ ००।

ल्यूर लाकभारतीय—२ Ml ६ ००, ५ Ml. ८ ५० १० Ml. १०.५०, २० Ml २२ ५०, ३० Ml ३०.०० ५० Ml ४०.००।

नाईलोन की सिरिंज—२Ml ४.००, ५ Ml ६ ००, १० Ml. ८ ५०।

इन्जेक्शन की सुई (नीडिल)—१ दर्जन १० ५०, बढ़िया १४ ००।

सिरिंज केश धातु के—सिरिंज सुरक्षित रखने के लिये १ केश २ Ml. की सिरिंज के लिये ४ ००, ५ Ml. की सिरिंज के लिये ५ ५०, १० Ml की सिरिंज के लिये ८.००, २० Ml. की सिरिंज के लिये १७ ५०, ३० या ५० Ml. की सिरिंज के लिये २८.००

सिरिंज केश प्लास्टिक—२ Ml, ५ Ml तथा १० Ml. की सिरिंज तथा नीडिल एक साथ रखी जा सकती हैं। मू० ७.५०।

परवाल उखाड़ने की चीमटी (Cilia Forceps)—मू० ३.००, स्टेनलैस स्टील की ७ ५०।

एनीमा सिरिंज (वस्ति यन्त्र)—इस यन्त्र से जल या औषधि द्रव्य गुदा मे आसानी से चढाया जा सकता है। मू० रबड़ का भारतीय उत्तम ९ ५०।

दवा नापने का गिलास (Measuring Glass)—मूल्य २ ड्राम का १.७५, १ औंस(२५ Ml) का २.००, २ औंस (५० Ml) का २.२५, ४ औंस (१०० Ml) का ३.००।

घाव मे डालने की सलाई (Probe)—घाव में गह राई, उसकी दिशा जानने तथा किसी नाड़ी व्रण में अन्द गौज भरने के लिये। मू० १ ००।

गला व जबान देखने की जीभी (Tongue Depressure)—मूल्य साधारण सीधी २ ००, फोल्डिग ५ ७५ स्टेनलैसस्टील की सीधी ५ ५०।

गरम पानी की थैली—उदरशूल, फोडा, शोथ या अन आवश्यक स्थानों पर इस थैली में गरम पानी भर क सुगमता से सिकाई की जा सकती है। मू ११ ५०

बरफ की थैली—तेज बुखार, प्रलापावस्था, शिर की पीडा एव अन्य रोगो में चिकित्सक सिर पर बरफ रखवा हैं। इस थैली में बरफ भरकर रखने से सुविधा रहती है रोगी को इससे ठण्डक पहूँचती है किन्तु उससे वह भीगत नही है। मू० ७ ५०।

कान धोने की पिचकारी—धातु की एक औंस (२५ Ml.) १४ ५०, २ औंस (५० Ml) की १७ ५०, ४ औं (१०० Ml) की २० ००।

आपरेशन करने का चाकू—इसमें हैंडिल पृथक होत है तथा काटने वाला ब्लेड पृथक होता है जो कि खरा

होने पर बदला जा सकता है। मू. ६ ब्लेड सहित १०.००, स्टेनलैसस्टील का ६ ब्लेड सहित १२ ७५।

विश्तूरी—इसका फलक पतला तथा तिरछा होता है। इसके द्वारा भेदन किया जाता है। सीधी का मूल्य २.५०, फोल्डिंग ४.७५, स्टेलैसस्टील की सीधी ४ २५, स्टेनलैसस्टीन की फोल्डिंग ६ ००

चीमटी-४ इन्ची १ २५, ५ इन्ची १.५०। स्टेनलैसस्टील की ४ इन्ची ४.२५, ५ इन्ची ५ ००। दातो मे दवा लगाने की चीमटी ४.००, स्टील की ७.५०।

चाकू—सीधा २ ५०, फोल्डिंग ४.७५, स्टेनलैसस्टील का सीधा ४ २५, स्टेनलैसस्टील का फोल्डिंग ६.००।

दांत उखाडने का जमूड़ा—इससे दांत मजबूती से पकडकर उखाड़ा जा सकता है। मू ११ ५०, स्टेनलैसस्टील का २८ ००।

दांत उखाडने के जमूड़ो का सैट—इसमे ७ प्रकार के जमूडे, दन्त उन्नामक यन्त्र, मसूडे चीरने का चाकू आदि आवश्यक उपकरण एक बहुत सुन्दर कपडे से मढे डिब्बे मे हैं। मू० १२५.०० ।

आंख में दवा डालने की पिचकारी–१ दर्जन १ ००।

कान में से दाना निकालने का यन्त्र—यह यत्र दाने आदि को सुगमता से खींचकर लाता है। मू० ३.५०।

ग्लेसरीन की पिचकारी (प्लास्टिक)–गुदा मे ग्लेसरीन के चढ़ाने के लिए प्लास्टिक की उत्तम क्वालिटी की पिचकारी का मूल्य १ औंस (२५ एम एल) ३ ००, २ औंस (५० एम एल) ४.५०, ४ औंस (१०० एम.एल) की ६.७५।

तीन मार्ग वाला यन्त्र(Three way Canula)–किसी रोगी के द्रव पदार्थ अधिक मात्रा में चढ़ाना है तथा आपके पास सिरिंज छोटी है तो आप इसका प्रयोग करें अथवा जो चिकित्सक बडी सिरिंज द्वारा ठीक प्रकार इन्जेक्शन नहीं लगा पाते वे इसका प्रयोग करें। मू० १२.५०

कान देखने का आला—इस यन्त्र (आले) से कान के अन्दर का स्पष्ट दृश्य दीख पडता है। कपडे से मढे एक सुन्दर मजबूत लकडी के डिब्बे मे रखे दो अतिरिक्त ईअर पीस सहित का मू० २७ ५०।

आमाशय मे दूध चढ़ाने की नली—जब रोगी मुँह से आहार ग्रहण न कर सके यथा बेहोशी पक्षाघात में, किसी दौरे आदि मे तो आप इस नली द्वारा दूध या अन्य कोई पोष्य द्रव पदार्थ आमाशय मे पहुँचा सकते हैं। मू० ४.५० ।

गुदा परीक्षण (Proctoscope)—गुदा की अन्दर से परीक्षा करने के लिए यह आवश्यक है। मू० २०.००।

स्तनो से दूध निकालने का यन्त्र—स्त्री के स्तन से इस यन्त्र द्वारा दूध आसानी से निकाला जाता है मू० ४.००, बढ़िया ६.५०।

मूत्र कराने की नली (कैथीटर)–रबड का १.२५, स्त्रियो के लिए धातु का ३.२५, पुरुषो के लिए धातु का ५ ००।

जलोदर मे उदर से पानी निकालने का यन्त्र—जलोदर रोग मे उदर गह्वर से पानी निकाल देने से रोगी जल्दी स्वास्थ्य लाभ करता है तथा उस पर प्रभाव भी अच्छा पडता है। मू ६ ०० स्टेनलैसस्टील का १२ ५०।

आख टैस्ट करने का चार्ट—साधारण तौर से आप इन चार्टों को रोगी से पढवाकर दृष्टि परीक्षा कर सकते हैं। मू० ३.०० प्रति चार्ट।

मलहम लगाने का यन्त्र(Ointment introducer)-गुदा में मलहम लगाने के लिए उपयोगी मू० ४ ००।

खरल चीनी का गोल—ये खरल दवा मिलाने घोटने के लिये उपयोगी हैं। मू० ४ इन्ची ६ ००, ५ इन्ची ७ ५०, ६ इन्ची ९ ००।

आपेक्षिक घनत्वमापक यन्त्र(Urinometer)—मूत्र अथवा किसी अन्य द्रव का आपेक्षिक घनत्व इस यत्र द्वारा मालूम किया जाता है। मू० ३ ००, बडा (१००० से २००० तक चिह्न वाला) ४.०० ।

मवाद साफ करने की पिचकारी–मूत्र नली में मवाद अन्दर चिपक कर व्रण पैदा कर देता है। जब तक वह अन्दर से साफ नहीं होता रोग का नष्ट होना कठिन हो जाता है। इस पिचकारी से दवा पहुचा कर सफाई कर सकते है। मू० मनुष्य के लिए १ ७५, जनानी २.००।

कैंची—४ इन्ची २.५०, ५ इन्ची ३.००, ६ इन्ची ४.५०, ७ इन्च ५ ००, कैंची मुडी हुई ४ इन्ची २ ७५, ५ इन्ची ३ २५, कैंची एक ओर को मुड़ी हुई ४ इन्ची ३ ००, ५ इन्ची ३ ५०, कैंची सीधी स्टेनलैसस्टील की ४ इन्ची ५ ७५, ५ इन्ची ६ ७५, ६ इन्ची ८ ००, ७ इन्ची ९ ००।

रबड़ के दस्ताने—चीडफाड करते समय सक्रमण से रोगी को और अपने को बचाने के लिए चिकित्सक इन दस्तानो को हाथ मे पहनते हैं। मू० १ जोडी ३.५०।

थूकने का पात्र–तामचीनी (इनामिल) का पात्र ५ ७५, प्लास्टिक का सुन्दर ६ ७५, धातु का ८ ५०।

स्प्रिट लैंप—मूल्य धातु की दो औंस की ७ ५०, ४ औस री ९ ०० ।

डाक्टस इमर्जेंसी बैग—आवश्यकता के समय चिकित्सक अपना आवश्यक सामान रखकर रोगी की परीक्षार्थ जा सकता है । मू० १० इञ्ची सम्पूर्ण चमड़े का जिप (जजीर) लगाकर सुन्दर २५.००, १२ इञ्ची ३० ००, साधारण १० इञ्ची १७ ५०, १२ इञ्ची २१ ०० ।

काटा (Scales)—निकल पालिश किया हुआ लकडी के बक्स के अन्दर रखे है । मू० १० ग्राम के बाटो सहित २४ ०० ।

डूस—इससे फोडा आदि धोने मे बडी सुविधा रहती है । इससे एनीमा भी लगाया जाता है । मू० रबर की टोटनी आदि से पूर्ण ४ पिंट का १२.५०, १ पिंट का १७ ५०, २ पिंट का नाइलोन का पात्र रबड टोटनी सहित १६ ५० ।

मुखविस्फारक यन्त्र(Mouth gag)—मुख के अन्दर परीक्षा करते समय, या कोई दवा लगाते समय, या शल्य कर्म करते समय, या किसी विष के खा लेने पर आमाशय प्रक्षालिनी नलिका के प्रयोग में इसी यन्त्र की सहायता से मुख खुला रखा जाता है । स्टेनलैसस्टील का ३६.०० ।

दन्त उन्नामक यन्त्र (Dental Elevator)—दात यदि कम हिलता है तथा किसी रोग के करण उखाड़ा जाना आवश्यक है तो इस यन्त्र की सहायता से दात को उकसाया जाता है । वैसे तो बाजार मे अलग-अलग दातो के लिए पृथक-पृथक उन्नामक आते हैं लेकिन हमने इस प्रकार का उन्नामक तैयार करवाया है जो प्रत्येक दांत के लिये यही एक काम करेगा । मू० १४.५० ।

नासिका प्रेक्षण यन्त्र—यह यन्त्र नाक मे डालकर चौडा दिया जाता है जिससे नाक चौड़ जाती है मू० ८ ५० ।

अगुली के दस्ताने(Finger Stalls)—यह अगुली पर चढा योनि, गुदा आदि अङ्गो की परीक्षा की जाती है । सस्ते रहते हैं । मू० ३५ नये पैसे, १ दर्जन ३.५० ।

मूत्र पात्र(Urinal pot)—तामचीनी का मूल्य १२ ५०, नाइलोन का बढ़िया १४ ०० ।

कपिंग ग्लास—उदर शूल तथा अन्य अनेक रोगो में इन ग्लासो का प्रयोग किया जाता है । तीन ग्लासो के सैट का मू० ६ ०० ।

सुरमा लगाने की सलाई--(काच की) १ ग्रोस ३.५०

योनि प्रक्षालनयन्त्र—मू० १७ ५० ।

योनि परीक्षण यन्त्र—मू० २२ ५० ।

कान का मैल करने कीचम्मच(Ear Spoon)—२.२५, स्टेनलैसस्टील की ६ ०० ।

अन्वेषक(Director)—इसको किसी नाड़ी व्रण में डालकर उसके सहारे चीरा लगाया जाता है जिससे कोई महत्वपर्ण अङ्ग भूल से कट न जाये । मू० २.२५ ।

नीडिल केस प्लास्टिक के—इन्जेक्शन की सुई रखने को एक दर्जन मू० ३ ०० ।

कार्क स्क्रू—शीशी से कार्क को सुविधापूर्वक निकालने को ०.७५ ।

विसंक्रामक पात्र–६ इञ्ची × २॥ इञ्ची × १॥इञ्ची ३५.५० ।

विसक्रामक पात्र–बिजली से चलने वाला–५६ ०० ।

नाडी संदश(Sinus Forceps)—किसी विद्रधि को खोलने के लिए स्टेनलैस स्टील का ५ इञ्ची १०.००, ६ इञ्ची १२ ०० ।

टूर्नीकेट—स्क्रू से कसने वाला शिरान्तर्गत इन्जेक्शन लगाने के लिए अति उपयोगी २४ ५० ।

गाज—घावो में दवा लगाने आदि को २० गज लम्बा मू० ७.५० ।

पट्टिया(Bandages)–१ इञ्च की १२पट्टियाँ १ ५०, २ इञ्च की १२ पट्टिया २.७५, ३ इञ्ची १२ पट्टियाँ ४.०० ।

बिजली की मशीन

आधुनिक विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया है कि बिजली मे असीम शक्ति है तथा उसका प्रत्येक क्षेत्र मे उपयोग किया जा सकता है। हमने अनेक प्रयत्नो के पश्चात् चिकित्सको के काम मे आने वाली ऐसी सस्ती तथा बहु-रोगोपयोगी मशीन का निर्माण किया है जो अनेक रोगो मे इतना शीघ्र लाभ करती है कि वह एक चत्मकार ही प्रतीत होता है जिससे यह अन्य रोगियो को भी, जोकि आपके चिकित्सालय मे बैठे है, अपनी ओर आर्कापित करती है।

इसे सैलो द्वारा चलाया जाता है जो सर्वत्र मिल जाते है। तथा इसे दुर्गम ग्रामो तथा बडे-बड़े शहरो में समान रूप से प्रयोग किया जा सकता हे। इसमे खर्चा भी बहुत कम होता है लेकिन आप प्रति रोगी १-२ रुपया आसानी से प्रतिदिन ले सकते है। मशीन टिकाऊ है, सुन्दर है तथा बहुत दिनो तक निर्बाध कार्य करने वाली है।

इस मशीन के प्रयोग से तीव्र पार्श्वशूल, गृध्रसी, सन्धिशूल, कटिशूल, उदरशूल, अकडन, लङ्गडापन, लकवा (पक्षाघात), दात का दर्द, तीव्र वातज शिर शूल, किसी अङ्ग मे ठड लग जाने के कारण होने वाला दर्द, पुरानी चोट का दर्द, मोच जाना आदि अनेक रोग तुरन्त ही दूर होते है। प्रत्येक चिकित्सक के पास इस मशीन का होना आवश्यक है। इसके निम्न प्रकार हमारे पास उपलब्ध हैं। आप किसी भी प्रकार की बिजली की एक मशीन मगाकर रोगियो मे यश एव धन प्राप्त करे।

१.	बिजली की मशीन ३ या ६ बडे गोल सैलो से चलने वाली	६०.००
२	,, ,, ,, (रेडियोनुमा रेगूलेटर सहित) ३ या ६ बडे गोल सैलो से चलने वाली	७५.००
३	,, ,, ,, डाइनुमायुक्त तथा रेगूलेटर सहित	११० ००
४	,, ,, ,, केवल बिजली से चलने वाली	९० ००
५	,, ,, ,, बिजली तथा सैल किसी से भी चलने वाली तथा रेगूलेटर सहित	११५ ००

दाऊ मैडीकल स्टोर्स, मामू भांजा रोड, अलीगढ़।

सर्जरी बक्स

यह सर्जरी बक्स इस उद्देश्य से बनाया गया है कि चिकित्सक बाहर जाते समय अपने साथ ले जा सकें। निम्न उपकरण इसके साथ भेजे जाते हैं—

चीमटी ४ इंची, चीमटी ५ इची, चाकू सीधा ५ इची, चाकू टेढे ब्लेड वाला (बिश्चूरी) ५ इची, गला व जबान देखने की जीभी, कैथीटर रबड का, कैंची ४ इची, कैंची ५ इची, घाव में डालने की सलाई (प्रोब) प्रत्येक १-१।

इस प्रकार उपरोक्त नौ यन्त्र-शस्त्र इस बक्स मे हैं। बक्स पर ऊपर सुन्दर मजबूत आइल क्लाथ चढ़ाया गया है। प्रत्येक चिकित्सक के लिए उपयोगी है।

मूल्य उपरोक्त यन्त्र-शस्त्र सहित १७ ५०, पोस्ट-पैंकिग व्यय लगभग ४.७५ पृथक, सेल टैक्स पृथक।

सर्जरी बक्स स्टेनलैस स्टील का

नोट —चीमटी चाकू बिश्चूरी तथा कैंची स्टेनलैस स्टील की मगाने पर मू. ३६.००, पोस्ट पैंकिग व्यय ५ ५०

पता —दाऊ मैडीकल स्टोर्स

मामू भांजा रोड, अलीगढ़।

सेक करने हेतु बिजली का हीटर

इस मशीन (हीटर) मे आप बिजली द्वारा किसी भी स्थान की सिकाई कर सकते हैं। जिस प्रकार से चोट लगने पर पोटली से या रुई से सिकाई करते हैं उसी प्रकार इसकी भी गर्मी पहुचती है। अगीठी जलाने आदि किसी प्रकार का झंझट नही। बिजली मे लगाकर तुरन्त सिकाई कर सकते हैं। इसको इस प्रकार से बनाया गया है कि चारो ओर से बन्द रहता है जिससे किसी भी प्रकार का झटका लगने का डर नही रहता। प्रत्येक चिकित्सक एव गृहस्थ के लिए प्रतिदिन के उपयोग की वस्तु है। ए सी. एव डी॰ सी दोनो प्रकार की बिजली से चल सकता है। मूल्य १७ ५०, पोस्ट पैंकिग व्यय ५ ५० एव सेलटैक्स प्रथक।

दाऊ मैडीकल स्टोर्स,

मामू भांजा रोड, अलीगढ़

पत्थर के खरल

मूल्य तथा साइज का विवरण

	हसराज	तामडा	मोतिया	कसोटी
३ इची	×	×	५ ४०	३.६०
४ ,,	२९ ५०	१९ ५०	८.००	५.२०
५ ,,	३५.००	२२ ५०	१० ५०	८.००
६ ,,	४७ ००	३१ ५०	१३ ५०	१२ ९०
७ ,,	५६ २५	३६ ७५	१९ ००	१७ ००
८ ,,	७२ ५०	४५ ५०	२४.२५	२१ ६०
९ ,,	८३ ००	५५.००	३०.६०	२७.००
१० ,,	९८ ५०	६५ ००	३७.००	३५ ००
११ ,,	११४ ००	७६ ५०	४५ ००	×

	हसराज	तामडा	मोतिया
१२ इन्ची	१३० ००	८७ ००	५२.००
१३ ,,	१४५ ६५	९७ ७५	६०.५०
१४ ,,	१७० ५०	११४ ००	७०.८०
१५ ,,	२०० ००	१३० ००	८५ ५०
१६ ,,	२४४.००	१५५ ५०	९९ ००
१७ ,,	२८८ ००	१७५ ००	११९.००
१८ ,,	३३७ ५०	२०२ ००	१४३ ५०
१९ ,,	×	×	१७३.००
२० ,,	×	×	२०५.००

नोट- खरलो का आर्डर देते समय अपने पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखे तथा चौथाई रकम पेशगी भेजें।

दाऊ मैडीकल स्टोर्स, मामू भांजा रोड, अलीगढ़।

पुस्तक	मूल्य
मार्डन एलो मेडीसिन्स —डा० रामकुमार	६ ००
एलो. नुक्ते —डा० एम एल वर्मा	४ ००
एलो० सग्रह (दवान्त साजी)	१५ ००
आई डाक्टर—डा महेश्वर प्रसाद उमाशकर	२.००
क्लीनिक मेडीसिन—अत्रिदेव	२५.००
व्रण शोथ विमर्श	३ ५०
एलोपैथिक चिकित्साविज्ञान—श्री अवध विहारी	३० ००
अभिनव विकृति विज्ञान—प रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी	३० ००
पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान—रामसुशील सिंह २ भाग	६०.००
वर्मा एलोपैथिक चिकित्सा—डा. रामनाथ वर्मा	१८.००
वर्मा एलोपैथिक निघण्टु „ „	१५.००
सूचीवेध विज्ञान—डा० रमेशचन्द्र वर्मा	७.५०
अभिनव स्त्री रोग विज्ञान—श्री राजेन्द्रप्रसाद भट.	२० ००
मार्डन निरीक्षण विज्ञान—डा. ओमप्रकाश शर्मा	६ ००
कम्पाउडर्स गाइड „ „	८.००
मार्डन एलो मेटेरिया मेडिका—डा जे. पी सक्सैना	६ ००
एलो पेटेन्ट चिकित्सा—वी. पी असारी	३.००
एवोरजन गाइड	७ ००
अशोक एलो. गाइड—शिवकुमार व्यास	२०.००
एलो. मैडीकल प्रेक्टिशनर माहेश्वरप्रसाद उमाशकर	२० ००
मार्डन एलोपैथिक मैटेरिया मैडिका (द्वि० स०)	११ ००
शरीर रचना एव क्रिया विज्ञान सचित्र	६ ००
सफल आधुनिक औषधिया (द्वितीय स०)	५ ५०
बालरोग चिकित्सा (पञ्चम स०)	७ ००
अभिनव शवच्छेद विज्ञान (चतुर्थ स०) दो भाग	२२ ००
सरल दत विज्ञान (द्वितीय स०)	३ ५०
स्त्रियो के रोग और उनकी आधुनिक चिकित्सा	२२ ००
सक्रामक रोगो का उपचार	२.००
बीसवी शताब्दी की औषधियाँ	१०.००
यन्त्र शस्त्र परिचय—डा० दाऊदयाल गर्ग	१० ००
पेटेन्ट प्रेस्क्राइवर—रमानाथ	१५ ००
सचित्र हार्निया हायड्रोसील आपरेशन	६ ००
आई डाक्टर	२.००

श्री चन्द्रशेखर जैन शास्त्री द्वारा लिखित उपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
तत्काल फलप्रद प्रयोग प्रथम भाग	२ ००
„ „ द्वितीय	३.५०
„ „ तृतीय	३.५०
„ „ चतुर्थ	३.२५
„ „ पचम	५.५०
सौ रोगो का सरल इलाज	२.५०
धमार्थ औषधायो के प्रयोग प्रथम	१ ७५
„ „ द्वितीय	२ ५०
धमार्थ औषधालयो के चिकित्सानुभव प्रथम भाग	१ ७५
„ „ द्वितीय भाग	२ ५०
चिकित्सा चन्द्रशेखर	६ २५
उपदश सुजाक चिकित्सा	१ ५०
तिलिस्मी औषधि भण्डार (गुप्त योग)	२.००
कुमारी विज्ञान	० ६५
सुखा रोग विज्ञान	२.५०
आठ औषधो से औषधालय चलाना	० ७५
अनुभव भण्डार	२.५०
तीन खजाने	१ २५
कुकर कास विज्ञान	२ ५०
आहार और पथ्य विज्ञान	१.२५
अनुभव हजारा (चार सौ रोगो पर हजार अनुभव)	७ ००
पाक भण्डार (प्रथम खण्ड)	२.००
पाक भण्डार (द्वितीय स्वादिष्ट व्यञ्जन सहित)	३ ५०
नारू रोग विज्ञान	२.००
आधुनिक सल्फा-ड्रग विज्ञान	२ ५०
सरल औषधि विज्ञान (हिन्दी मे डाक्टरी)	३ ००
फार्मेसी कपनी भवन कार्यालयो के गुप्त प्रयोग (प्रथम)	४ ५०
„ „ „ (द्वितीय)	४ ५०

परीक्षा गाइडें

हिन्दी साहित्य समेलन की परीक्षा पास करने के लिये

पुस्तक	मूल्य
वे विशारद गाइड—ज्ञानेन्द्र पाण्डेय प्रथम	१०.००
„ „ —शिवकुमार व्यास प्रथम	८ ००
„ „ —ज्ञानेन्द्र पाण्डेय द्वितीय	१२ ००
„ „ —शिवकुमार व्यास द्वितीय	१५.००
आयु रत्न गाइड प्रथम—शिवकुमार व्यास	२० ००
„ „ द्वितीय „	२० ००
आयु रत्न दिग्दर्शन गाइड प्रथम—भूदेवशर्मा व्यास	२० ००
„ „ द्वितीय „	२० ००

पता—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भान्जा रोड, अलीगढ़

ग्रहस्थों के लिए पठनीय

काम-विज्ञान की प्रामाणिक पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
यौवन के गुप्त रहस्य	६ ००
आधुनिक यौन विज्ञान	४ ००
कामकला (पुरुषो के लिए)	२ ००
,, (स्त्रियो के लिए)	३.००
विवाह विशेपाङ्क	७.००
यौन प्रेम	२ ००
यौन व्यायाम और आसन अङ्क	७ ००
कुचिमार तन्त्र	१ २५
युवतियो के यौन रोग	२ ००
काम शक्ति कैसे बढे	३ ००
रतिरहस्य	४ ००
गुप्त रोगों का इलाज	३ ००
यौन रोगो का प्राकृतिक इलाज	३.००
गर्भपात अङ्क	७ ००
जच्चा-बच्चा अङ्क	२ ००
नपु सकता	२ ००
किशोर अङ्क	० ७५
यौन समागम कला	४.००
यौन दुर्वलता और उसका इलाज	४ ००
हस्थ मैथुन और स्वप्न दोष	४ ००
सम्भोग क्यो—कब—कैसे	५ ००
यौन समस्यो और समाधान अङ्क	७ ००
योवन विज्ञान पर नया प्रकाश (लक्ष्मी नारायण)	४ ००

प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
फलो के चमत्कार (नवीन स०) गणपतिसिंह वर्मा	१० ००
योगासन— आत्मानन्द	५ ००
उपवास चिकित्सा—के ले बर्नर मेक फेडन	४ ००
जीने का मर्म—डा० कान्ती कुमार	३ ००
सुगठित शरीर—डा० चतुर्भुजदास मोदी	८ ००
जल चिकित्सा—फादर क्नाइप	४ ००
उठो—स्वामी कृष्णानन्द	२ ००
जीने की कला—बिठ्ठलदास मोदी	४ ००
बडो—डा० कान्ती कुमार	३ ००
बच्चों का स्वास्थ्य व उनके रोग—विठ्ठलदास मोदी	५ ००
आहार चिकित्सा—	४ ००
कच्चा खाने की कला—	२ ००
आदर्श आहार—डा० सतीशचन्द दास	४ ००
विटामिन द्वारा स्वास्थ्य—डा० हीरालाल	१ २५
अपक्व भोजन	१०.००
स्वमूत्र चिकित्सा—	३ ००
रोगो की सरल चिकित्सा—विठ्ठलदास मोदी	१०.००
प्राकृतिक जीवन की ओर—	७.००
दुग्ध कल्प—	२.००
सर्दी जुखाम खासी—	२.००
प्राकृतिक शिशु चिकित्सा—सुरेशप्रसाद	२ ००
सूर्य रश्मि चिकित्सा—वैद्य बाँकेलाल	०.७५
देहाती प्राकृतिक चिकित्सा—अमोलचन्द	८.२५
अपना कद कैसे बढ़ाये—राजेश दीक्षित	४ ५०
पेट के रोगो की प्राकृतिक चिकित्सा—डा० दिलकश	२.२५
रोगो की प्राकृतिक चिकित्सा—डा० दिलकश	७ ५०
रोगो की अचूक चिकित्सा शहद	२ ००
आपको जानना चाहिए—डा० हीरालाल	१ ५०
फल गुणाक (धन्वन्तरि अङ्क)	२.५०

होम्यो वायोकेमिक पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
मेटेरिया मेडिका विलियन वोरिक (रिपर्टरी सहित)	२० ००
जार फोट्टी इयर प्रेक्टिश	८ ००
एलन्स की नोट्स	६ ००
रीजनल लीडर्स	२ ७५
होम्यो बाल चिकित्सा	५ ००
सफल होम्यो प्रेस्क्रिप्शन	१ ००
होम्यो पारिवारिक चिकित्सा	२० ००
स्त्री रोग चिकित्सा	६.२५
आर्गेनन	५ ५०
होम्यो मटेरिया मैडिका (सुरेश प्रसाद)	६.००
रोगी की सेवा और पथ्य	३ ००
होम्यो ग्रह चिकित्सा	४ ००

पता—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भान्जा रोड, अलीगढ़

दिल्ली के विद्वान प्रोफेसर श्री कविराज वी.एस. प्रेमी एम. ए. एम. ने किया है। इसके प्रथम खण्ड मे पाचन सस्थानगत सम्पूर्ण विशेप व्याधियो का विस्तृत, सचित्र क्रमवद्ध साहित्य, अनुभव पूर्ण चिकित्सा विधि, सफल प्रयोगो का अत्युपयोगी संग्रह है। आयुर्वेदिक, यूनानी, एलोपैथिक तथा होमियोपैथिक चिकित्सा पद्धति से विस्तृत विवेचन तथा चिकित्सा दी गई है। मूल्य १०.००।

चिकित्सा विशेषांक [द्वितीय भाग]

इसका सम्पादन श्री वी एस. प्रेमी ने किया है। इसमें स्वर यंत्र के रोग, हृदय के रोग, कुष्ठादि चर्मरोगाधिकार तथा रक्त सस्थान के रोगो का वर्णन किया गया है। श्री कृष्ण प्रसाद त्रिवेदी आयु सूरि. द्वारा लिखित 'चिकित्सा रहस्य' नामक अप्रकाशित ग्रन्थ से कुछ रोगो तथा उनकी चिकित्सा को उद्धृत किया गया है जो अति उपयोगी है। मूल्य १०००।

धन्वन्तरि के लघु विशेषांक

"धन्वन्तरि" ने जिस प्रकार विशाल विशेषांक प्रकाशित करने की परम्परा चालू की तथा उसकी आयुर्वेदिक जगत मे अद्यावधि कोई सानी नहीं है उसी प्रकार धन्वन्तरि ने लघु विशेषांकों की परम्परा भी प्रारम्भ की है। इसमें धन्वन्तरि के एक साधारण अङ्क मे किसी एक विषय पर लेख दिये जाते है। अनेक लघु विशेषांक अब तक प्रकाशित हो चुके है। थोड़े ही शेष हैं जिनका विवरण नीचे दिया गया है—

सफल सिद्ध प्रयोगांक द्वि भा. (इसमे नारीरोगांक, पुरुष रोगांक, बाल रोगांक के सरल सफल प्रयोगो का संकलन है) मूल्य २.५०।

	२.००
नेत्र रोगांक	२.००
आयुर्वेद सूची [illegible]	४ ००
यन्त्र-तन्त्र मन्त्रांक २ भाग	१ ५०
कैंसर रोगांक	२ ००
आयुर्वेदिक [illegible] अङ्क	१ ००
कान रोगाङ्क	४ ००
[illegible] अङ्क (२ भाग)	२.५०
[illegible]	१.५०
[illegible]	२ ००
[illegible] रोगांक	२ ००
[illegible]	२ ००
आयुर्वेद [illegible]	२.५०
[illegible]	२.००
[illegible]	२ ००
[illegible]	२ ५०
[illegible]	२ ५०
[illegible]	

सफल सिद्ध प्रयोग की पुस्तकें

अनुभूत योग प्रकाश—गणपतिसिंह वर्मा	१० ००
अनुभूत योग चिन्तामणि (प्रथम भाग)	८.५०
,, ,, (द्वितीय ,,)	६ ५०
अनुभूत योग चर्चा (प्र.) वासरीलाल सहानी	४.००
,, ,, (द्वितीय)	६.००
सिद्ध योग संग्रह—यादव जी विक्रमजी	३.००
रसतन्त्र सार व सिद्ध प्रयोग संग्रह प्र.	१४.००
सजिल्द	१६.००
,, द्वितीय खण्ड	१० ००
सजिल्द	१२ ००
पैसे पैसे के चुटकले—गणपति सिंह वर्मा	४ ००
,, अमोलचन्द	६ ००
नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह	१ २५
,, चूर्ण संग्रह	१.२५
,, गुटिका ,,	२ ००
महात्माजी के १२५१ नुस्खे	४ ००
देहाती अनुभूत योग संग्रह—अमोलचन्द प्र. खण्ड	८.२५
,, ,, द्वितीय खण्ड	८ २५

वैद्यों के लिए आवश्यक

यह कानूनी दृष्टि से आवश्यक है कि आप अपने रोगियो का समुचित विवरण तथा उनसे होने वाली आय का हिसाब एक रजिस्टर में नियमित लिखें। यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तो अब तुरन्त करना प्रारम्भ करदें अन्यथा कभी भी आप कानून के सिकंजे मे फस जायेंगे। हमने सभी आवश्यक कालम देकर रोगी रजिस्टर तैयार कराये हैं उनको मगालें।

रोगी रजिस्टर—१०० पृष्ठ का मू. ४ ०० पोस्ट व्यय ३ ५० प्रथक, २०० पृष्ठ का मू. ७ ७५ पोस्ट व्यय ५ ०० प्रथक

रोगी प्रमाण पत्र—अवकाश प्राप्त हेतु दिये जाने वाले प्रमाण पत्र २ रङ्ग में उत्तम कागज पर छपे ४०प्रमाण पत्रों की पुस्तिका अ ग्रेजी या हिन्दी में। मूल्य २ ००

स्वास्थ्य प्रमाण पत्र—अवकाश से कार्य पर जाते समय स्वस्थ्य होने का प्रमाण पत्र। हिन्दी या अ ग्रेजी में २० प्रमाण पत्रों की पुस्तिका मू. २.००

रोगी व्यवस्था पत्र—रोगियो को दिये जाने वाले पर्चे आवश्यक हिदायतों सहित।

छोटे साइज मे ० ७५ पैसे तथा बड़े साइज में १.५० सैकड़ा

तापमान तालिका—रोगी के ज्वर का विवरण रखने की तालिका २५ प्रति का मू० १ २५

पता—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भांजा रोड, अलीगढ़

आवश्यक

१— इस वर्ष कतिपय ग्राहकों के नम्बर बदल गये हैं इस कारण सभी ग्राहकों से निवेदन है कि विशेषाक के ऊपर रेपर पर लिखा ग्राहक नम्बर तथा पोस्ट आफिस का नम्बर इस विशेषाक के टाइटिल पृष्ठ २ पर नोट करलें।

२— भविष्य में पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर पत्र मे अवश्य लिख दिया करें।

३— कोई भी अक मिलने पर देख लिया करे कि उससे पहिले माह का अक मिला है या नही। यदि न मिला हो तो कृपया पोस्ट आफिस मे तलाश करे और उसके उत्तर के साथ हमको लिखे।

४— "धन्वन्तरि" के नवीन ग्राहक बनाने का अवश्य प्रयत्न करें।

५— आप "धन्वन्तरि" के नये ग्राहक बनने को मनियाआर्डर भेजें या लेख समाचार प्रकाशनार्थ भेजे या श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन द्वारा निर्मित औषधियाँ पुस्तकें, यन्त्र उपकरण, बिजली की मशीन आदि मगावें या किसी अन्य कारण से हमको पत्र लिखें तो पता सदैव इस प्रकार लिखे—

"श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, अलीगढ़"

पते मे– कही भी 'विजयगढ' शब्द न लिखे अन्यथा आपके द्वारा प्रेषित वस्तु हमें न मिल सकेगी। 'धन्वन्तरि-कार्यालय' शब्द भी पते मे नही लिखना चाहिए।

समाचार पत्र पञ्जीयन कानून (केन्द्रीय) १९५६ के नियम नं ८ के अन्तर्गत अपेक्षित

'धन्वन्तरि' से सम्बद्ध विवरण-फार्म ४ (रूल ८)

१ प्रकाशन का स्थान—मामू भाजा रोड, अलीगढ। २. प्रकाशन का काल—मासिक

३. मुद्रक का नाम—श्रीनाथ अग्रवाल, मीरा प्रिंटिंग प्रेस, अलीगढ़। राष्ट्रीयता—भारतीय
पता—मीरा प्रिंटिंग प्रेस, मामू भाजा रोड, अलीगढ।

४ प्रकाशक का नाम—ज्वाला प्रसाद अग्रवाल। राष्ट्रीयता—भारतीय
पता—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भाजा रोड, अलीगढ

५ सम्पादक का नाम—ज्वाला प्रसाद अग्रवाल, राष्ट्रीयता—भारतीय
पता—श्री ज्वाला आयुर्वेद भवन, मामू भाजा रोड, अलीगढ

६ भागीदार—ज्वाला प्रसाद अग्रवाल दाऊ दयाल गर्ग, श्रीनाथ अग्रवाल,
रामकृष्ण अग्रवाल, गिर्राज किशोर अग्रवाल - मामू भाजा रोड, अलीगढ।

मै, ज्वाला प्रसाद अग्रवाल, घोषित करता हू कि ऊपर दिया सभी विवरण जहा तक मैं जानता तथा विश्वास करता हू सत्य है।

ह० ज्वाला प्रसाद अग्रवाल
२८ फरवरी १९७६